सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

२१

(अगस्त – दिसम्बर १९२१)

प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

भारत सरकार

भूमिका

प्रस्तुत खण्डमें २१ अगस्त १९२१ से १४ दिसम्बर १९२१, अर्थात् पाँच महीनेकी सामग्री संगृहीत है। "एक वर्षमें स्वराज्य" के कार्यक्रमको सफल बनानेके प्रयत्नका अन्तिम महीना सितम्बर था; इसलिए अगस्तमें एक ऐसे जोरदार कार्यक्रमकी पृष्ठभूमि तैयार की जा रही थी जो सरकारको हिला दे सके और उसे लोकमतके आगे झुकनेपर विवश कर दे। गांधीजी स्वराज्यको किसी राजनीतिक अवस्थाकी बजाय एक आध्यात्मिक अवस्था ही अधिक मानते थे। किन्तु इस अर्थकी गहराई तक सबका पहुँच सकना सम्भव नहीं था। तमाम लोगोंको ऐसा लगता था कि गांधीजीने जब एक सालमें स्वराज्य दिलानेकी बात की है, तो किसी दिन अवश्य ही कोई बड़ा चमत्कार होगा और साल समाप्त होते न होते तक स्वतन्त्रता सामने आकर खड़ी हो जायेगी। तथापि गांधीजीको खटका था कि जो अवधि निश्चित की गई है, उसमें स्वराज्यकी प्राप्ति कदाचित् सम्भव न हो सके और इसीलिए गुजरातके बारडोली और आनन्द जिलोंके चुने हुए अंचलोंमें सविनय अवज्ञा और सत्याग्रहकी तैयारीके बीच भी उनका मन परेशान बना हुआ था। इस खण्डमें एक ओर संघर्षके अन्तिम दौरकी यह तैयारी और दूसरी ओर गांधीजीके मनकी बेचैनी उभरकर सामने आ जाती है।

गांधीजी देशमें जिस शान्तिपूर्ण क्रान्तिकी अवतारणा करना चाहते थे, उसके लिए जनताको अहिंसात्मक प्रशिक्षण देनेकी दृष्टिसे गांधीजीने समूचे देशकी "प्रदक्षिणा" प्रारम्भ की। पश्चिममें कराचीसे पूर्वमें डिब्रूगढ़ तक और उत्तरमें रावलपिण्डीसे दक्षिणमें तूतीकोरिन तक इसी क्रान्तिको सुदृढ़ आधार देनेकी दृष्टिसे वे अनवरत यात्रा-रत रहे। जिन दिनों अपनी इस यात्राके दौरान वे असममें थे, उन्होंने अखबारों-में समाचार पढ़ा कि मलाबारमें एकाएक हिंसक काण्ड शुरू हो गया है। इतिहासमें यह घटना मोपला काण्डके नामसे जानी जाती है। मोपला अरबोंके वंशज होते हैं। यह हमारे देशके दक्षिण पूर्वके समुद्री किनारेके एक छोटेसे टुकड़ेमें बस गये थे और राष्ट्रीय जीवनके मुख्य स्रोतोंसे उनका शताब्दियोंसे कोई सम्बन्ध नहीं था। एकाएक २० अगस्त १९२१को इन्होंने विद्रोह किया और "खिलाफत राज" की घोषणा कर दी। उन्हें खिलाफत आन्दोलनकी लगभग कोई खबर नहीं थी और अहिंसक असह-योगकी तो कल्पना थी ही नहीं। क्रोधमें अन्धे होकर उन्होंने अपने हिन्दू पड़ौसियों-पर हमले शुरू कर दिये और ऐसे जघन्य अत्याचार किये कि देशमें हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके बढ़ते हुए पौदेकी जड़ें हिल गईं। कुछ मुस्लिम नेताओंके रुखसे ऐसा जान पड़ा, मानो वे इन अत्याचारोंको तरह देना चाहते हों। परिस्थिति इससे और भी खराब हो गई। दक्षिणमें हिन्दुओंकी भावनाओंका शमन करना गांधीजीके लिए कठिन हो गया। वे यह तो जानते थे कि मोपलोंने सन्तुलन खो दिया है, किन्तु उन्होंने हिन्दु-ओंसे अपील की कि वे अपना सन्तुलन न खोयें और मोपलोंकी गलतीको हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यकी जड़ें खोखली करनेका कारण न बनने दें। परिस्थितिने जो भयंकर स्वरूप

धारण कर लिया था, उसके लिए उन्होंने सरकारकी ढिलाईको दोष दिया और इस बातपर भी उसकी लानत-मलामत की कि उसने असहयोग आन्दोलनके नेताओंको उस अंचलमें जाकर शान्ति और साम्प्रदायिक मैत्रीभाव फैलानेमें सहायक नहीं होने दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने देशको यह भी कहा कि सरकार मोपलोंपर जो अत्याचार कर रही है उसके विरुद्ध देशकी सहानुभूति मोपलोंके प्रति ही होनी चाहिए। गांधीजीकी तमाम कोशिशोंके बावजूद देशके एक छोटेसे अंचलमें घटित इस दुर्घटनाकी प्रतिक्रिया एक लम्बे अरसे तक देशमें होती ही रही।

उसी समय अली-बन्धुओंकी गिरफ्तारीके कारण भी हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यको बनाये रखनेके प्रयत्न अपर्याप्त प्रतीत होते थे। साम्प्रदायिक एकताके विचारोंको मुस्लिम जनता तक समझाकर कहनेका काम मुख्यतया अली-बन्धु ही करते थे। जुलाईके महीने-में उन्होंने अपने भाषणमें दो-चार ऐसी बातें कह दीं जिनमें हिंसाको बढ़ानेकी प्रवृत्ति दिखाई देती थी — इन बातोंको लेकर देशके सार्वजनिक जीवनमें बहस छिड़ गई और इन भाषणोंके कारण वे पहले-जैसे मान्य और सर्वप्रिय नहीं रहे। कराचीके खिला-फत अधिवेशनके समय सैनिक सेवाओंसे सम्बन्धित प्रस्तावका समर्थन करनेके अपराधमें उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और उनपर मुकदमा चलाया गया। गांधीजीने अली-बन्धुओंकी हिम्मतकी ताईद की और उनके खिलाफ कही जानेवाली बातोंका खण्डन करते हुए उनके व्यवहारको न्याय्य और उचित ठहराया। कराचीके अपने भाषणमें अली-बन्धुओंने जो कुछ कहा था, गांधीजीने अपने अनेक भाषणोंमें वही बात दोहराई तथा एक घोषणापत्र तैयार किया और उसपर अली-बन्धुओंकी बातके समर्थनमें देशके प्रमुख नेताओंके दस्तखत लिये (पृष्ठ २४४-४५)। उन्होंने कांग्रेसकी कार्यकारिणी तकको इस बातपर राजी कर लिया कि वह कराचीके उक्त प्रस्तावका समर्थन करते हुए एक प्रस्ताव पास करे (पृष्ठ २८४-८५)। उन्होंने चुनौतीके स्वरमें "राजभक्तिको भ्रष्ट करनेका आरोप" शीर्षक एक लेख भी लिखा और उसमें उन्होंने कहा: "मैं निःसंकोच कहूँगा कि चाहे सैनिकके रूपमें हो या गैर-सैनिक अधिकारीके रूपमें, किसी भी हैसियतसे किसी भी व्यक्तिके लिए उस सरकारकी चाकरी करना पाप है जिसने भारतके मुसल-मानोंके साथ धोखेबाजी की है और जो पंजाबमें अमानवीय व्यवहार करनेकी अपराधिनी है। मैंने यह बात कई मंचोंसे सिपाहियोंकी उपस्थितिमें कही है" (पृष्ठ २३१)। मार्च १९२२को गांधीजीपर जो मुकदमा चलाया गया और जिसके बाद उन्हें सजा दी गई, उस मुकदमेके अनेक आधारोंमें यह लेख भी एक था।

हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यको गांधीजी एक ऐसा कोमल पौधा मानते थे जिसकी सार-संभाल बड़ी ही सावधानीके साथ की जानी चाहिए। साथ ही वे खादीके व्यापक प्रचारको भी कम महत्त्व नहीं देते थे और मानते थे कि उसे सबके बीचमें प्रतिष्ठित और स्वीकृत करानेके लिए बड़े ही कठिन परिश्रमकी आवश्यकता है। देशमें विदेशी वस्त्रोंकी होलियाँ जलाई जा रही थीं और अनेक लोगोंको लगता था कि यह उचित नहीं है। श्री सी० एफ० एन्ड्रयूज-जैसे मित्र तक भ्रममें पड़ गये थे और उन्हें ऐसा आभास हुआ था कि यह विदेशी व्यक्तियोंके प्रति तर्कहीन घृणाकी अभिव्यक्ति है (पृष्ठ ४१)। इस प्रकारकी आलोचनाका जवाब देते हुए गांधीजीने कहा: "विदेशी

कपड़ोंकी यह होली स्वदेशी कपड़ेकी उत्पत्तिको उत्तेजन देनेका अधिकसे-अधिक गतिपूर्ण उपाय है। अपनी सारी शक्ति लगाकर एक प्रचण्ड प्रयत्नके द्वारा और इस आवश्यक विध्वंसात्मक कार्यको तेजीसे पूरा करके हमें हिन्दुस्तानको उसकी मोह-निद्रासे जगाना है, उसकी मजबूरीसे उत्पन्न सुस्तीको दूर करना है" (पृष्ठ ४४-४५)। एक अन्य सज्जनकी आलोचनाका जवाब देते हुए गांधीजीने कहा कि विदेशी कपड़ोंकी होली जलाकर हम वास्तवमें अपनी शौकीनीको ही जला रहे हैं। . . . इसमें उद्देश्य विदेशियोंको नहीं, अपनेको ही दण्ड देनेका है। . . . विदेशी कपड़ोंकी होलीके विचारके पीछे घृणाकी नहीं, बल्कि अपने अतीतके पापोंके लिए प्रायश्चित्तकी भावना रही है।. . . रोग इतना गहरा बैठ गया था कि शल्य-चिकित्साके अतिरिक्त उसका कोई उपचार नहीं बचा था . . .(पृष्ठ १०६)।

इस सबके बावजूद लोगोंके मनमें विदेशी कपड़ोंको जलानेके औचित्यके विषयमें सन्देह बना रहा। अक्तूबरमें कविश्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर और गांधीजीके बीच इसको लेकर जो लिखा-पढ़ी हुई, वह इस दृष्टिसे सर्वाधिक मार्मिक थी। ६ सितम्बरको कलकत्तामें दोनोंकी भेंट हुई थी और उस भेंटमें कुछ मतभेद सामने आये। समाचार-पत्रोंमें उक्त भेंटके त्रुटिपूर्ण विवरण प्रकाशित हुए और ऐसा जान पड़ा मानो विव-रणोंका उद्देश्य देशके इन दो महान् व्यक्तियोंके बीचमें मतभेद उत्पन्न करनेका ही हो। रवीन्द्रनाथ ठाकुरका 'मॉडर्न रिव्यू' के अक्तूबर-अंकमें "सत्यकी पुकार" शीर्षक एक शानदार निबन्ध प्रकाशित हुआ। स्वदेशी आन्दोलनको उसमें रवीन्द्रनाथने देशको आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय सुप्रभावोंसे वंचित करनेका एक प्रयत्न कहा था। गांधीजीने "महान प्रहरी" शीर्षक जोरदार लेख लिखकर इस निबन्धका उत्तर दिया। "वे हमारी चमत्कृत आँखोंके सामने एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हैं — उषःकालमें पंछी अपने बसेरोंसे निकलकर आकाशमें ईश्वरका गुणगान करते हुए उड़े चले जा रहे हैं। किन्तु वे भूल जाते हैं कि इन पंछियोंको उस रातसे पहलेके दिन, पूरा आहार मिला था और जब ये प्रातःकाल उड़कर चले तब इनके डैने काफी विश्राम पा चुके थे और उनकी नसोंमें पिछली रात नये रक्तका संचार होता रहा था। लेकिन मैंने तो शोक-विह्वल मनसे ऐसे पंछी भी देखे हैं जो शक्तिके अभावमें लाख प्रोत्साहन और हिम्मत देनेपर भी अपने डैने फड़फड़ा तक नहीं पाये। भारतीय आकाशके तले रहनेवाले मानव-पंछीको रातमें नींद नहीं आती। वह सोनेका महज बहाना करता है और प्रातःकाल जब उठता है तब वह पिछले दिनसे भी ज्यादा कमजोर उठता है। . . . मैंने तो किसी रुग्ण व्यक्तिकी पीड़ाको कबीरका भजन सुनाकर दूर कर पाना असम्भव ही पाया है। करोड़ों भूखे लोग आज एक ही कविताकी माँग कर रहे हैं — भूख मिटानेवाली भोजन-रूपी कविताकी। लेकिन वह उन्हें कोई नहीं दे पा रहा है। उन्हें अपना भोजन स्वयं प्राप्त करना है और वे उसे प्राप्त कर सकते हैं सिर्फ अपने भालका पसीना बहाकर" (पृष्ठ ३०५)।

गांधीजीने देशकी अभावग्रस्त जनताके साथ जिस तीव्रताके साथ अपना साधा-रणीकरण किया, उससे उनका व्यक्तिगत जीवन भी बदलता चला गया। खादीकी कमीकी चर्चा करते हुए गांधीजी प्रायः लोगोंसे अपने कपड़ेकी जरूरतको अधिकाधिक

कम करनेकी बात कहा करते थे। वे जो-कुछ कहते थे, उसका आचरण करते थे। इसलिए २३ सितम्बरके सवेरे मदुराके जुलाहोंकी एक सभामें वे केवल एक लंगोटी पहनकर गये और उन्होंने कहा: "हमारे यहाँकी जलवायु ऐसी है कि गर्मियोंके दिनोंमें शरीर-रक्षाकी दृष्टिसे ज्यादा कपड़े जरूरी नहीं होते। पहनावेके बारेमें कोई मिथ्या शिष्टाचार बरतना आवश्यक नहीं है" (पृष्ठ १८७)। ३१ अक्तूबरको गांधीजीने शामके भोजनके पहले तक नित्यप्रति आधा घंटा सूत कातनेका संकल्प किया और शपथ ली कि यदि वे किसी दिन किसी कारणसे शाम तक आधा घंटा कात नहीं पायेंगे, तो उस दिन रातका भोजन नहीं करेंगे। इसी अवधिमें गांधीजीने प्रति सप्ताह सोमवारको उपवास और मौन रखनेका व्रत लिया और आजन्म इस व्रतपर दृढ़ रहे। उपवास और मौन रखनेका यह व्रत १७ नवम्बरको बम्बईमें हुए उस दंगेका नतीजा था जो नगरमें प्रिंस ऑफ वेल्सके आगमनके समय हुआ था। प्रिंस ऑफ वेल्सके आगमनके बारेमें गांधीजीकी राय यह थी कि युवराजकी यात्राका नाजायज फायदा उठाकर भारतमें ब्रिटिश शासनके "कल्याणकारी" रूपका प्रचार किया जा रहा है। उन्होंने कहा कि इस "कल्याणकारी" रूपका प्रचार देशमें दमन-चक्र चलाकर किया जा रहा है (पृष्ठ ३६६)। इसलिए उन्होंने जनतासे कहा कि युवराजके स्वागतमें आयोजित किसी भी कार्यक्रममें कोई भाग न लिया जाये, किन्तु साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि ऐसे कुछ लोग अवश्य होंगे जो किसी भय, आशा अथवा अपनी मर्जीसे विभिन्न समारोहोंमें शामिल होना चाहेंगे। उन्हें भी अपनी इच्छाके अनुसार चलनेका उतना ही अधिकार है जितना हमें (पृष्ठ ३६८)। इसी १७ तारीखको जब गांधीजी एक सार्वजनिक सभामें लोगोंको उनके शान्तिपूर्ण व्यवहार और बहिष्कारकी सफलतापर बधाई दे रहे थे, नगरके दूसरे भागमें लोगोंने कुछ ऐसे लोगोंसे हाथापाई शुरू कर दी जो बहिष्कारमें शामिल नहीं हुए थे। १९१९ के अप्रैलमें जो उपद्रव हुए थे (देखिए खण्ड १५) उनसे गांधीजीको इतना दुःख नहीं हुआ था, जितना इन उपद्रवोंसे हुआ। उसी तिथिको लिखे गये अपने एक पत्रमें वे लिखते हैं: "स्वराज्यकी अग्रिम झाँकी देखकर मैं लज्जित हूँ" (पृष्ठ ४८५)। दो दिन बाद उन्होंने नागरिकोंके नाम एक अपील प्रकाशित करते हुए स्वीकार किया: "उक्त दो दिनोंमें मैंने स्वराज्यका जो रूप देखा है, उसकी सड़ांध मेरे भीतर तक पैठ गई है (पृष्ठ ४८९)। उन्होंने यह भी कहा: "आप लोग अनायास यह समझ ले सकते हैं कि उन लोगोंको अधिकसे-अधिक राहत पहुँचाना मेरा कर्त्तव्य है जिन्हें मुख्यतया मेरे निमित्तसे उद्भूत हलचलका शिकार बनना पड़ा है" (पृष्ठ ४९०)। प्रायश्चित्त और तपश्चर्याके रूपमें उन्होंने उपवासकी घोषणा कर दी और स्पष्ट कर दिया कि जबतक विभिन्न सम्प्रदायोंके बीच स्नेह और शान्तिका सम्बन्ध स्थापित नहीं हो जाता, उपवास चलता रहेगा।

परिस्थितियाँ जल्दी ही इतनी सुधर गई कि गांधीजीने अपना उपवास तोड़ दिया। किन्तु फिर भी उनकी दृष्टिमें देशका राजनीतिक वातावरण इतना खराब तो हो ही चुका था कि जिस सार्वजनिक सविनय अवज्ञाको देशके कुछ चुने हुए हिस्सेमें प्रारम्भ करनेकी तैयारी हो रही थी उन्हें उसका विचार छोड़ देना पड़ा। किन्तु

सरकार ताकत आजमानेपर तुली हुई थी। बंगाल, उत्तरप्रदेश, पंजाब और दिल्लीमें स्वयंसेवकोंके संगठनोंको गैरकानूनी करार दिया गया, राष्ट्रीय अखबारोंपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और लाला लाजपतराय, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू-जैसे राष्ट्रीय नेताओंके साथ-साथ अहमदाबादमें होनेवाली आगामी कांग्रेस अधिवेशनके मनोनीत अध्यक्ष चित्तरंजन दास भी गिरफ्तार कर लिये गये। गांधीजीने देखा कि यह तो एक चुनौती है और उन्होंने लोगोंको यह चुनौती स्वीकार कर लेनेके लिए कहा। २९ अक्तूबरको अहमदाबादमें बोलते हुए उन्होंने जनतासे प्रश्न किया: "अब हमारे सामने पूरे दो महीने भी नहीं रह गये हैं। दिसम्बरकी २५ तारीखको कांग्रेस अधिवेशन शुरू होगा। अगर उस समय तक हम स्वराज्यके झण्डेको न फहरा सके, तो कांग्रेस अधिवेशनको बुलानेका क्या अर्थ है" (पृष्ठ ३७७)।

अहमदाबादके कांग्रेस अधिवेशनकी तैयारियोंके सिलसिलेमें गांधीजीने 'नवजीवन' में (पृष्ठ ५०-५२, १४८-४९) लेख लिखकर छोटी-छोटी बातोंके विषयमें भी जो दिशा-दर्शन किया, उससे गांधीजीकी व्यावहारिक दृष्टि और तफसीलके प्रति जागरूकताका बड़ा अच्छा उदाहरण सामने आता है। उन्होंने बताया कि पाखाने किस तरह बनेंगे, पेशाब-घर कैसे और कहाँ-कहाँ होंगे; पीनेका पानी, बिजली, भाषावार रसोईघर आदि बीसियों बातोंपर उन्होंने प्रबन्धकोंका मार्गदर्शन किया — और सो भी उस समय जब वे देशकी बड़ीसे-बड़ी समस्याओंको लेकर अत्यन्त व्यस्त थे। एक दूसरे सन्दर्भमें उन्होंने अखबारोंमें प्रकाशित भाषणोंके विवरणोंके प्रति लोगोंको सावधान किया: "अधिकसे-अधिक सद्भावना रखते हुए भी संवाददाता मेरे भाषणोंकी बिलकुल सही रिपोर्ट कदाचित् ही दे पाये हैं। दरअसल सर्वोत्तम बात तो यह होगी कि जबतक भाषणोंके विवरण स्वयं वक्ताओंको न दिखा लिये जायें, तबतक वे अखबारोंमें प्रकाशित ही न हों। अगर इस सीधे-सादे नियमका पालन किया जाये, तो बहुत-सी गलफहमियाँ टाली जा सकती हैं" (पृष्ठ ५६४)।

इस खण्डमें संगृहीत सामग्रीका सम्बन्ध यद्यपि राजनीतिक समस्याओंसे अधिक है — और यह स्वाभाविक भी है, किन्तु इसमें ऐसी सामग्री भी पर्याप्त परिमाणमें है जो गांधीजीके व्यक्तित्वके दूसरे पहलुओंको भी सामने रखती है। असमके दौरेका उनके द्वारा लिखा हुआ वर्णन (पृष्ठ ५३-५८, ८६-९३) स्पष्ट करता है कि गांधीजीकी दृष्टि प्रकृतिके सौन्दर्यको कितने प्रकृत भावसे ग्रहण कर सकती थी और वे उसके सम्पर्कमें आकर कोमलताके भावोंसे किस तरह भर उठते थे और आनन्द-विभोर हो जाते थे। उसी विवरणमें हम यह भी देखते हैं कि मानव-स्वभावकी सादगी उन्हें किस तरह छूती थी। बारीसालमें "पतित बहनों" की सामाजिक समस्याने तो उन्हें लगभग विचलित कर दिया था। पुरुषने स्त्रीको जिस अत्याचारका शिकार बनाकर रखा है, उसका विचार करते हुए उनका सिर लज्जासे झुक गया। "ज्यों-ज्यों इन बहनोंका चित्र मेरी आँखोंके आगे सजीव होता है, त्यों-त्यों मुझे खयाल आता है कि अगर ये मेरी ही बहनें या लड़कियाँ होतीं तो — ? और 'होतीं तो' क्यों, हैं ही" (पृष्ठ ९६)। हिन्दू धर्मके बारेमें उन्होंने एक परिपूर्ण वक्तव्य दिया जिसमें उन्होंने उत्कृष्ट प्रबन्धकारों-जैसी मनोहारिणी स्पष्टवादिताके साथ यह दर्शाया कि वे उसपर इतने

मुग्ध क्यों हैं। उन्होंने लिखा: "जैसे अपनी पत्नीके बारेमें अपनी भावनाका वर्णन करना मेरे लिए कठिन है, वैसे ही हिन्दू धर्मके बारेमें भी। मुझपर उसका जितना असर होता है, वैसा संसारकी किसी स्त्रीका नहीं हो सकता। ऐसा नहीं कि उसमें दोष ही नहीं हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि मुझे दरअसल जितने दोष उसमें दिखाई देते हैं, उससे कहीं अधिक दोष उसमें होंगे। लेकिन मुझे उसके साथ एक अटूट बन्धनका अनुभव होता है। मेरी यही भावना हिन्दू धर्मके बारेमें भी है, भले ही उसमें चाहे जितने दोष हों, उसकी चाहे जैसी सीमाएँ हों। हिन्दू धर्मकी दो ही पुस्तकें ऐसी हैं जिनके जाननेका मैं दावा कर सकता हूँ। वे हैं गीता और तुलसीकृत 'रामायण'। इनका संगीत मुझको जितना आह्लादित करता है उतनी आह्लादित कोई और चीज नहीं करती (पृष्ठ २६०)।

वर्ष समाप्त होते-होते तक उन्होंने देख लिया कि आत्मशुद्धिकी दृष्टिसे प्रस्तुत किये गये रचनात्मक कार्यक्रमके माध्यमसे उन्होंने स्वराज्यका जो सन्देश दिया था, उसे लोगोंने सार्थक नहीं किया। उन्होंने देखा कि लोग बातको सुन तो लेते हैं, ऊपरी उत्साह भी दिखा देते हैं, किन्तु उसे हृदयमें अंकित नहीं करते, आचरणमें नहीं उतारते। उन्होंने इसे अपनी ही विफलता माना और कहा: "क्या मुझे पूर्ण विनयके साथ अपने सृजनहारके सामने घुटने टेककर यह प्रार्थना नहीं करनी चाहिए कि वह मेरे इस अनुपयोगी शरीरको समाप्त करके उसे सेवाके किसी अधिक उपयुक्त साधनका रूप दे?" (पृष्ठ ४८०)। किन्तु निराशापूर्ण यह मानसिक स्थिति दीर्घकालतक नहीं टिकी। वर्षके अन्त तक देशमें गांधीजीने जिस संजीवनीके संचारकी आशा की थी, उसे सफल न होते देखकर उन्हें अवश्य दुःख हुआ। किन्तु उनकी स्थितप्रज्ञता इस उद्वेगपर जल्दी ही हावी हो गई। उन्होंने एक वर्षकी जो अवधि स्वराज्य-प्राप्तिके लिए दी थी, उसे सफल बनानेके लिए आवश्यक था कि जनता आध्यात्मिकताका महत्त्व समझती और आत्मशुद्धिको राजनीतिक स्वतन्त्रताका अनिवार्य साधन मानती। गांधीजीने लोगोंके सामने जो शर्तें रखी थीं, वे सरल थीं और उन्होंने कहा भी था "इन शर्तोंका पालन करो और स्वराज्य ले लो" (पृष्ठ ५८५-८६)। किन्तु वह सम्भव नहीं हुआ और गांधीजी स्वयं अनतिकाल अवसन्न रहकर फिर एक सच्चे साधककी प्रसन्न मनःस्थितिमें आ गये। वे ईश्वर-निष्ठ होनेके नाते निराशावादी हो ही नहीं सकते थे। उन्होंने कहा: "यदि हिन्दुस्तान स्वराज्य प्राप्त नहीं करता, तो मैं आत्महत्या क्यों करूँ? . . . यदि हिन्दुस्तानको गरज है, तो वह उसकी कीमत चुकाये और स्वराज्य ले" (पृष्ठ ३४५)।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास (साबरमती आश्रम प्रिजर्वेशन ऐंड मेमोरियल ट्रस्ट) और संग्रहालय, नवजीवन ट्रस्ट, गुजरात विद्यापीठ ग्रंथालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि व संग्रहालय, नई दिल्ली; बम्बई सरकार गृह-विभाग, बम्बई; नगरपालिका संग्रहालय, इलाहाबाद; श्रीमती तेहमिना खम्भाता, बम्बई; श्री द० प० जोशी, पूना; श्री वालजी गोविन्दजी देसाई, पूना; श्री महेश पट्टणी, भावनगर; 'टू अवेकिंग इंडिया', 'बापुना पत्रो–२ : सरदार वल्लभभाईने', 'बापुना पत्रो–४ : मणिबहेन पटेलने', 'बापुनी प्रसादी', 'माई डियर चाइल्ड', 'सेवन मंथ्स विद महात्मा गांधी', पुस्तकोंके प्रकाशकों तथा निम्नलिखित समाचारपत्रों और पत्रिकाओंके आभारी हैं : 'अमृत बाजार पत्रिका', 'आज,' 'गुजराती', 'ट्रिब्यून,' 'नवजीवन', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'यंग इंडिया', 'हिन्दी नवजीवन' तथा 'हिन्दू।'

अनुसन्धान और सन्दर्भ-सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय (मिनिस्ट्री ऑफ इन्फरमेशन ऐंड ब्रॉडकास्टिंग) के अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग (रिसर्च ऐंड रेफरेंस डिवीजन), नई दिल्ली; तथा श्री प्यारेलाल नय्यर और कागजातकी फोटो-नकल बनानेके लिए सूचना और प्रसारण मन्त्रालयके फोटो-विभागके आभारी हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमें गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मिली है उसे अविकल रूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरों द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जोंकी स्पष्ट भूलोंको सुधार दिया गया है। अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय उसे मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद प्राप्त हो सके हैं, हमने उनका मूलसे मिलान और संशोधन करनेके बाद उपयोग किया है। छापेकी स्पष्ट भूलें सुधारनेके बाद अनुवाद किया गया है और मूलमें प्रयुक्त शब्दोंके संक्षिप्त रूप यथासम्भव पूरे करके दिये गये हैं। यह ध्यान रखा गया है कि नामोंको सामान्यतः जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा जाये। जिन नामोंके उच्चारणोंमें संशय था उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजीने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई सामग्री सम्पादकीय है। गांधीजीने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजीके कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं।

शीर्षककी लेखन-तिथि जहाँ उपलब्ध है वहाँ दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है, जहाँ वह उपलब्ध नहीं है वहाँ उसकी पूर्ति अनुमानसे चौकोर कोष्ठकोंमें की गई है और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। शीर्षकके अन्तमें सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गांधीजीकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख, जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ़ आधारपर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नहीं हुआ है वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये हैं।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज पत्रोंका और 'सी० डब्ल्यू०' 'सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय' (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा संगृहीत पत्रोंका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये हैं। अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

चित्र-सूची

१. अस्पृश्यता

शास्त्री वसन्तरामके उस पत्रपर[1] जिसमें उन्होंने अस्पृश्यताके सम्बन्धमें अपना निर्णय दिया था, अपने विचार प्रकट करते हुए अनेक लोगोंने मुझे पत्र लिखे हैं। यदि मैं इन पत्रोंको छापूँ तो उससे बहुत स्थान घिरेगा। किन्तु इतने लोगों द्वारा की गई इन समीक्षाओंको मैं शुभ लक्षण समझता हूँ। सभी पत्र-लेखक इस प्रश्नका धार्मिक या तात्विक दृष्टिसे निर्णय कराना चाहते हैं। उनके पत्रोंसे प्रकट होता है कि उन्हें केवल व्यावहारिक निर्णयसे सन्तोष नहीं हो सकता। हिन्दू समाज अन्त्यजोंको बहुत-सी सुविधाएँ दे फिर भी यदि वह उन्हें मैलेका स्पर्श करनेके बाद नहा लेनेपर भी अस्पृश्य मानता रहे तो यह बात इन तात्विक निर्णय चाहनेवाले लोगोंको असह्य और पापपूर्ण लगती है। ये पत्र-लेखक सुधारक नहीं हैं। इनकी मान्यता यह नहीं है कि हमारी सब बातें खराब हैं और यूरोपकी सब बातें अच्छी हैं। ये लोग विवेकी और संयमी हैं, अपने आपको हिन्दू मानते हैं और इसका उन्हें अभिमान है। वे मर्यादाको प्रधान स्थान देते हैं। इस बातसे मुझे तो अतिशय हर्ष होता है; और उनके आग्रहसे लगता है कि हम अस्पृश्यताके पापसे जल्दी मुक्त होंगे।

हम शास्त्रका अर्थ करनेकी झंझटमें इतना ज्यादा फँस गये हैं कि हमने धूलका धान करनेके बजाय धानकी धूल कर दी है। हम चावलको छोड़कर छिलकेसे चिपट गये हैं। हमने मक्खन छोड़ दिया है और बेस्वाद मट्ठेके पीछे दौड़ रहे हैं। मेरे पास जो पत्र हैं उनसे पता चलता है कि अब हम ऐसे युगमें प्रवेश कर रहे हैं जिसमें हमें गीत नहीं गाने हैं, बल्कि काम करना है। वर्ण पाँच नहीं, चार हैं। अस्पृश्यता संयम नहीं है, वह वर्णाश्रमकी मर्यादा नहीं है। वर्णेतर लोगोंको भी अस्पृश्य मानना दयाधर्म नहीं, बल्कि क्रूरता है। कोढ़से पीड़ित लोगोंको स्पर्श करनेसे आत्मा अशुद्ध नहीं होती, उलटे, यदि उनका स्पर्श सेवाभावसे किया जाये तो वह ऊँची उठती है। भंगीकी सेवा करना धर्म है। रोगसे पीड़ित भंगीकी शुश्रूषा पहले करना दया है। भंगीने मैला उठाया हो तो स्नान करना शौच-क्रिया है; यह आवश्यक है; किन्तु यदि वह न नहाये तो इससे उसका अधःपतन नहीं होता। आवश्यकता होनेपर भंगीको स्पर्श न करनेमें पाप हो सकता है। जो भंगी नहा-धोकर आया है उसे आदरपूर्वक अपने पास न बैठाना पाप है और जो लोग यह मानते हैं कि भंगीको छूना पाप है यह उनका अज्ञान है। ऊपरके पत्रोंसे मैं देखता हूँ कि इस तरहके विचार अब बहुत व्यापक हो गये हैं। इन पत्रोंमें से एक पत्र मैं दे चुका हूँ। अब दूसरा पत्र श्री साकरलाल अमृतलाल दवेका[2] नीचे दे रहा हूँ:

अस्पृश्यताके सम्बन्धमें शास्त्री वसन्तरामकी शास्त्रीय चर्चा प्रेमपूर्वक पढ़ी। किन्तु मेरे जैसा अ-शास्त्रज्ञ शास्त्रके भंवरजालमें भ्रमित न हो जाये इस दृष्टिसे

१. **नवजीवन**, १७-७-१९२१ में प्रकाशित ।

२. गुजरातके एक शिक्षाशास्त्री ।

क्या वे नीचे लिखे दो मुद्दोंका स्पष्टीकरण करनेकी कृपा करेंगे?

(१) आपने श्री भगवानके चरणोंमें अपना मन, वचन, कर्म, अर्थ और प्राण अर्पित कर दिया है। क्या आप चाण्डालको स्पर्श करके स्नान करेंगे? ऐसे चाण्डालके स्पर्शसे आप पवित्र होंगे या अपवित्र? यदि वह भगवानके मन्दिरमें आना चाहे तो आप उसे प्रवेश करने देंगे या नहीं?

(२) आपका पाखाना साफ करनेवाला भंगी दोपहर-बाद दो बजे नहा-धोकर, बहुत साफ होकर आपके घर आये तो आप उसे प्रवेश करने देंगे और अपनी बैठकमें बैठने देंगे कि नहीं?

मैं यह मानता हूँ कि इन दोनों मुद्दोंके स्पष्टीकरणमें अस्पृश्यता-सम्बन्धी समस्त चर्चा पूरी हो जायेगी।"

शास्त्रीजीके लेखका अर्थ मैं तो एक ही कर सकता हूँ। फिर भी यदि शास्त्रीजी उसका उत्तर देंगे तो मैं उसे अवश्य प्रकाशित करूँगा। तबतक मैं श्री साकरलालको सावधान कर देना चाहता हूँ कि शास्त्री वसन्तरामके निर्णयसे ही अस्पृश्यताके सम्बन्धमें होनेवाली चर्चा समाप्त नहीं हो जायेगी। शास्त्रीजीका उत्तर हमारी आशाके अनुरूप हो तो भी दीर्घकालसे जमा हुआ यह मैल एक-दो बारकी चर्चा-मात्रसे दूर नहीं होगा। यह मैल तो केवल कार्य करनेसे ही दूर होगा। हममें से जो लोग यह समझते हैं कि किसीको भी स्पर्श करनेसे पाप नहीं लगता, और शरीर शुद्ध करके आये हुए भंगीको स्पर्श करनेके बाद नहाना पाप है, वे भंगी आदि अस्पृश्य वर्गके लोगोंकी सेवा करते हुए समय-समयपर उनका स्पर्श करेंगे तभी उनका यह मैल दूर होगा। वैसे ऐसा कहने और माननेवाले लोग तो तब भी रहेंगे कि सौ पीढ़ियाँ बदल जानेपर भी अन्त्यजका स्पर्श करना पाप है। ऐसे लोगोंको हम विनयपूर्वक किन्तु उतने ही आग्रहपूर्वक किये गये अपने आचरणसे एवं उसके शुभ परिणामोंसे जीत सकेंगे।

मैं तो, जिस तरहकी अस्पृश्यता इस समय व्यवहारमें आ रही है उसको पाप रूप मानकर उसका त्याग करनेका आग्रह धर्मकी दृष्टिसे ही करता हूँ। किन्तु स्वामी श्रद्धानन्दजीने[1] अपने एक पत्रमें लिखा है कि उत्तर भारतमें कितने ही अंग्रेज अन्त्यज-वर्गको असहयोगके विरुद्ध भी भड़का रहे हैं। और यदि भारतमें सर्वत्र हमने अस्पृश्यताका विरोध न किया होता तो इस समय हमारे विरोधियोंने उसका बहुत दुरुपयोग किया होता। शैतान हमेशा एक छेदसे होकर घुसता है और फिर ऐसा बड़ा दरवाजा अपने आने-जानेके लिए बना लेता है जिसे सभी देख सकें। जिसे अपने जीवनका निर्माण धार्मिक दृष्टिसे करना है वह तो अपने धर्मके दुर्गमें एक भी कमजोर ईंट नहीं लगने देगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१–८–१९२१

१. (१८५६–१९२६); राष्ट्रवादी नेता; संन्यास लेनेके पूर्व महात्मा मुन्शीरामके नामसे प्रसिद्ध; गुरुकुल काँगड़ीके संस्थापक।

२. टिप्पणियाँ

बिहारका दौरा

चम्पारनमें जो-कुछ सेवा मुझसे बन पड़ी है उसके तथा बिहारियोंके स्वभावके कारण मेरी बिहार-यात्रा बहुत-कुछ कष्टप्रद हुई। छोटे-छोटे गाँवोंमें भी झुण्डके-झुण्ड लोग चरणस्पर्शके लिए एकत्र होते थे और इतना कोलाहल होता था कि मैं तो घबरा जाता था। 'दर्शन'के मारे जरा भी फुरसत नहीं मिलती थी। इससे न रातको शान्ति मिलती थी, न दिनको। फिर घूमने-फिरनेकी तो बात ही दूर रही। यदि थोड़े ही, परन्तु कुशल कार्यकर्त्ता हों तो भी ऐसे श्रद्धालु लोगोंसे अभीष्ट काम लिया जा सकता है। और बिहार ऐसा काम करके दिखा रहा है। बिहारमें कितने ही कार्यकर्त्ताओंका जीवन इतना सादा और पवित्र है और शान्तिमय असहयोगपर उनका विश्वास इतना पक्का है कि समाजपर उनका गहरा प्रभाव जम गया है और उन्होंने शान्तिपूर्वक बहुत काम किया है। एक वर्ष पहले जहाँ बहुत थोड़े चरखे चलते थे वहाँ आज हजारों घरोंमें चल रहे हैं। हजारों गज खादी बुनी जा रही है और हजारों लोगोंने केवल खादी ही पहनना अखत्यार कर लिया है।

यह दो आना रोज मजदूरी देनेवाला चरखा बिहार, उड़ीसा इत्यादि प्रान्तोंमें कितने ही लोगोंकी सम्पूर्ण आजीविकाका साधन हो गया है। खेतोंपर काम करनेवाले बहुतसे मजदूर भी इतनी मजदूरी नहीं पाते। खेतोंपर काम करनेके लिए शरीर मजबूत होना चाहिए। पर चरखेको तो एक कोमलांगी बालिका भी चला सकती है और चाहे तो उससे दो आना रोज पैदा कर सकती है। लोगोंपर चरखेका जैसा असर हो रहा है वैसा असहयोगके दूसरे अंगोंका नहीं पड़ा। कितने ही लोग तो चरखेको एक बरकत देनेवाली चीज समझते हैं और उसकी पूजा करते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों चरखेको एक दृष्टिसे देखते हैं और दोनों ही को वह प्रिय हो गया है। ऐसी दशामें यदि चरखा सब जगह न फैल जाये और ३० सितम्बरके पहले उसके द्वारा हम आवश्यक कपड़ा न तैयार कर सकें और विदेशी कपड़ेका बहिष्कार न कर सकें तो कहना होगा कि इसका कारण केवल हमारी संगठनशक्ति और कार्यदक्षताकी कमी ही होगी।

बुनकरोंकी सभा

बिहार-शरीफ नामका एक छोटा शहर बिहारमें है। उसकी आबादी कोई पच्चीस हजार है। उसके पास ही प्रसिद्ध जैन तीर्थंकर महावीर स्वामीका जन्म हुआ था और उसीके पास वे समाधिस्थ हुए थे। उस स्थानपर बड़े विशाल मन्दिर हैं। बिहार-शरीफ जाते हुए ये रास्तेमें पड़ते हैं। यह एक मशहूर पीरका स्थान है, इसलिए शरीफ कहलाता है। कहते हैं कि अजमेरके पीरके बाद, दूसरे नम्बरपर इसी स्थानकी महिमा है। यहाँ कोई ५०० जुलाहे — बुनकर बसते हैं। इनमें मुसलमान ही ज्यादा हैं। यहाँ कांग्रेस कमेटी और खिलाफत कमेटीकी ओरसे जुलाहोंकी सभा खास तौरपर की गई। उसमें हमने समस्त बुननेवालोंसे निवेदन किया कि अब आजसे आप लोग केवल

हाथका ही सूत बरतिए। उन्होंने यह बात मंजूर की और कहा कि काम रुक जानेपर ही वे मिलका सूत काममें लायेंगे। आजतक तो वे विदेशी सूतको बरतते जा रहे थे, पर खुद उन्होंने ही यह कहा कि हमारे बाप-दादे तो सिर्फ हाथका ही सूत इस्तेमाल करते थे। अब यदि इन जुलाहोंको हाथका ही कता सूत दिया जायेगा तो ये जरूर उसीको काममें लेंगे। पर यदि इसके लिए उत्साही कार्यकर्ताओंका अभाव रहा तो वे, हाथका सूत बरतना स्वीकार कर चुकनेपर भी, जरूर ही विदेशी सूतको काममें लेंगे। अब हमारा काम यह है कि हम जुलाहे, पिंजारे, धुनिया, बढ़ई, लुहार इत्यादिको देशके काममें दिलचस्पी लेनेके लिए प्रवृत्त करें। मैं आशा करता हूँ कि राष्ट्रीय सभाके कार्यकर्त्ता प्रत्येक गाँवमें जा-जाकर इन लोगोंसे मिलेंगे, उन्हें सभासद बनायेंगे और उनसे देशकी सेवा लेंगे। अपना काम वे लोग मजेमें करते रहें और कमायें, पर देशके कार्यको पहला स्थान दें और उसके लिए सामान्यसे कुछ-कम मेहनताना लें। बस, हमें उनकी इतनी ही सेवापर सन्तोष हो सकता है।

महायज्ञ

विदेशी कपड़ेका त्याग हमारा एक महायज्ञ है। इसमें हमें पूरी तरह सफलता मिलना ही स्वराज्य है। काम बड़ा है लेकिन हमें यह भय रखनेका कोई कारण नहीं कि यह एक माहमें कैसे हो जायेगा। चिन्तित और भयभीत मनुष्य विमूढ़ हो जाता है, उसकी आँखोंके सामने अन्धेरा छा जाता है और उसे मार्ग नहीं दिखाई देता। यदि हम जरा-भर सोचें तो मालूम हो जाये कि स्वराज्य तो बड़ा आसान है, क्योंकि यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। इसलिए यह निश्चय रखकर कि स्वदेशी मुश्किल नहीं हो सकती, हमें काममें जुट जाना चाहिए। कार्यपरायण होनेके लिए हमें निश्चयी और उद्योगी बनना चाहिए। ज्यों-ज्यों मैं भ्रमण करता हूँ त्यों-त्यों मुझे तो यह अनुभव होता जाता है कि इसका आसानसे-आसान उपाय यही है कि हम अपनी जरूरतका कपड़ा घर ही में तैयार करा लें। एक करोड़ आदमियोंको एक जगह इकट्ठा करके उनसे काम करवानेकी बनिस्बत तो यह कहीं ज्यादा आसान है कि हम लोगोंको यह सिखा दें कि वे अपने ही गाँवोंमें रहकर और अपने ही घरोंमें बैठकर कातने और बुननेकी क्रिया किस तरह कर सकते हैं। जैसा श्री अमुभाईने बताया है, बहुत जल्दी करनेपर भी मिलोंके द्वारा जिस कामके लिए हमें कमसे-कम २५ वर्ष चाहिए, वही काम यदि हम समझ जायें तो घर बैठे २५ दिनमें कर सकते हैं। परन्तु जिस तरह नया अन्न पकानेवाला पहले अपने बरतन साफ कर डालता है उसी तरह हमें पहले विदेशी कपड़े-रूपी मैलको धो डालना चाहिए। उसके बिना हमारा आलस्य दूर नहीं हो सकता। जो आदमी एक बार लँगड़ा हो जाता है वह अच्छा हो जानेपर भी जिस प्रकार लकड़ीका सहारा छोड़ते हुए डरता है और गिर जानेके भयसे लँगड़ाते हुए ही चलता है उसी प्रकार जबतक हम विदेशी कपड़ेके सहारे चलते रहेंगे तबतक हमारे पाँवोंमें बल नहीं आ सकता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१–८–१९२१

३. बिहार-निवासियोंके प्रति

तेजपुर
असम
भाद्रपद कृष्ण ४ [२२ अगस्त, १९२१][१]

बिहारकी श्रद्धा और भक्ति अवर्णनीय है। गो-माताके प्रति आपके प्रेमको मैं अच्छी तरह जानता हूँ। आप भक्तशिरोमणि तुलसीदासके पुजारी हैं। आप दयाधर्मके पालक हैं। गो-माताको बचानेका सुवर्ण-मार्ग एक ही है। आप मुसलमान भाइयोंकी खिलाफत-रूपी गायको बचानेमें सहायता करें। मुसलमान-भाई प्रेमके वश होकर गायको बचा सकते हैं। हमारा धर्म यह नहीं सिखाता कि हम एक प्राणीको बचानेके लिए मनुष्यकी जान लें। जिसको हम बचाना चाहते हैं उसके लिए हम अपना ही प्राण दें। इसीको हमारा धर्म तपश्चर्या कहता है। तपश्चर्यासे ही हम धर्मका पालन कर सकते हैं। तपश्चर्या दयामूलक है, और दयामें ही धर्म है।

जबतक हम स्वयं पापरहित नहीं हो चुकते तबतक हम दूसरोंसे कैसे कुछ कह सकते हैं? क्या हमारे ही हाथोंसे गो-हत्या नहीं होती? हम गो-माताके वंशके प्रति कैसा बर्ताव करते हैं? बैलोंपर हम कितना बोझ लादते हैं? बैलोंको तो ठीक, पर क्या हम गायको भी पूरा खाना देते हैं? गायके बछड़ेके लिए हम कितना दूध रखते हैं? गायको बेचनेवाले लोग कौन हैं? थोड़े पैसेके लिए जो हिन्दू गायको बेचते हैं उनसे हम क्या कहते हैं? उन्हें रोकनेके लिए क्या करते हैं?

अंग्रेज सिपाहियोंके लिए हमेशा गायें काटी जाती हैं। इसके लिए हमने क्या किया है? इन सब बातोंको समझते हुए भी हम क्यों अपने मुसलमान भाईपर ही, जो अपना धर्म समझकर गो-कुशी करता है, क्रोध करें? कमसे-कम हमें अपने हाथ तो साफ कर डालने चाहिए।

ईश्वरका बड़ा अनुग्रह है कि हमारे मुसलमान भाइयोंने बकर-ईदके दिन बड़ी शान्ति रखी, हमारा लिहाज किया और जहाँतक हो सका उन्होंने गो-कुशी नहीं की। इसलिए हम उनके एहसानमंद हुए हैं।

लेकिन भविष्यमें भी ऐसा ही हो, इसका खयाल रखना आवश्यक है। इसलिए हम बकरे इत्यादिका मांस छोड़ दें। ऐसा करनेसे मांसका भाव गिरेगा और गायकी कीमतें बढ़ेंगी। गायका बेचना-खरीदना ही हमें असम्भव कर देना चाहिए। यह सब कार्य हम तभी कर सकेंगे जब हम अपने प्रत्येक कार्यमें विवेक, दया, बुद्धि और त्यागका प्रयोग करेंगे।

आप लोगोंमें धर्मके प्रति बड़ी श्रद्धा है। जिस देशमें जनक, बुद्ध और महावीर-ने जन्म लिया है ऐसे पवित्र स्थानमें रहकर आप धीरज और धर्मको साथ रखते हुए

१. गांधीजी इस दिन तेजपुरमें थे।

बड़ा कार्य कर सकते हैं, और गोमाताकी रक्षा करनेका धर्म-मार्ग सारे भारतवर्षको बता सकते हैं।

आपका सेवक,

मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दी नवजीवन, २–९–१९२१

४. पत्र : महादेव देसाईको

तेजपुर

मौनवार [२२ अगस्त, १९२१][1]

भाईश्री महादेव[2],

तुम्हें मेरे पत्र मिले होंगे। तुमने भी मुझे लिखा ही होगा लेकिन मुझे कोई पत्र मिला नहीं है। असम में तुम मेरे साथ होते तो तुम्हारी काव्यशक्तिको अच्छा भोजन मिलता। लेकिन हम इस कर्मभूमिमें कोई भोग-भोगनेके लिए पैदा नहीं हुए हैं। इसलिए असम और प्रयाग[3] दोनोंमें से हमें काव्य-शक्तिको सींचनेके लिए जो मिल जाये उसीसे सन्तोष करना है।

निम्नलिखित कार्यक्रम लगभग ठीक है।

२३	जोरहाट
२४–२५	डिब्रूगढ़
२७	सिलचर
२८–२९	सिलहट
३१–१	चटगाँव
३	बारीसाल
४	कलकत्ता

कलकत्तामें हम लगभग दस दिन रहेंगे। बीचमें एक दिनके लिए शायद बोलपुर जाना पड़े।

अन्य समाचार तुम 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया'में देखोगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ११४२२) की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजी २२ तारीखको तेजपुरसे नाव द्वारा रवाना हुए और नौगांवके रास्ते २३ की बजाय २४ अगस्त, १९२१ को जोरहाट पहुँचे।

२. १८९२–१९४२; २५ वर्षोंतक गांधीजीके सेक्रेटरी।

३. महादेवभाई उस समय प्रयागमें थे।

५. वक्तव्य : रियासतोंमें दमनके सम्बन्धमें

[२५ अगस्त, १९२१ के पूर्व]

अपनी यात्रामें जब मैं ग्वालियर जा रहा था तो मुझे यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि लोग स्टेशनपर हमारी गाड़ीके पास आनेमें भी डरते थे। प्लेटफार्मपर स्वदेशी वस्त्र नामको भी दिखलाई नहीं पड़े। इसका कारण मुझे शीघ्र ही मालूम हो गया। इस रियासतमें असहयोग आन्दोलन एकदम बन्द कर दिया गया है। खादीकी टोपी पहनना तथा अपने पास चरखा रखना रियासत पसन्द नहीं करती, बल्कि ऐसा करना जुर्म समझा जाता है। मेरा विश्वास है कि महाराजा साहबके विचार इतने गिरे हुए नहीं हैं। मेरी पूर्ण सहानुभूति महाराजा साहबके साथ है। गवर्नमेंटका विषैला प्रभाव जितना हिन्दुस्तानी रियासतोंमें देख पड़ता है उतना और कहीं नहीं। इसका कारण यह है कि हिन्दुस्तानी रियासतें किसी प्रकारका सुधार तो कर ही नहीं सकतीं, बल्कि बहुधा उनसे जबर्दस्ती अपनी प्रजाकी स्वतन्त्रतापर आक्षेप कराया जाता है। इसके अतिरिक्त गवर्नमेंटकी छत्रछायामें समस्त भारतकी तरह वे भी कमजोर तथा गैरजिम्मेदार हो गई हैं। इस कारण यदि कोई राजा जिद्दी हो और जुल्म करना चाहे तो वह अपनी रियासतमें वाइसरायसे भी अधिक उपद्रव कर सकता है। वर्तमान शासन-प्रणालीका सबसे बड़ा दोष यही है। मैं आशा करता हूँ कि ग्वालियर स्टेशनपर जो बातें मुझे बताई गई हैं, वे बहुत बढ़ाकर कही गई थीं और उस रियासतमें इतना घोर दमन नहीं हो रहा है जितना कि कहा जाता है।

आज, २५–८–१९२१

६. टिप्पणियाँ

आन्ध्रमें असहयोग

ये टिप्पणियाँ मैं पटनामें गंगा तटपर स्थित श्री मज़हरुल हकके[1] सदाकत आश्रम-से लिख रहा हूँ। मैंने हमेशा असहयोगमें बिहारका स्थान सर्वोत्तम माना है। और उसके बाद आन्ध्रका। लेकिन अब कहना कठिन है कि कौन-सा प्रान्त बाजी मार ले जायेगा। लेकिन जो भी हो स्थानीय सरकार लोगोंको अनुशासन सीखनेमें अवश्य योग दे रही है। अपने पिछले पत्रमें श्री कोण्डा वेंकटप्पैया लिखते हैं:

> मैंने अपने पिछले पत्रमें आपको सूचना दी थी कि मेरी और मेरे तीन व्यापारी मित्रोंकी गिरफ्तारीके बाद इस नगरके वकीलोंने ३१ दिसम्बर तक अदालतोंका बहिष्कार करनेका निश्चय किया है। हमारी रिहाईके बाद बाप-

१. बिहारके नेता; मुस्लिम लीगके संस्थापकोंमें से एक और बादमें उसके अध्यक्ष; चम्पारन सत्याग्रहके दिनोंमें उन्होंने गांधीजीकी सक्रिय सहायता की थी।

टला — जो हमारे जिलेका दूसरा बड़ा नगर है — के वकीलोंने भी यही करनेका निश्चय किया। श्री प्रकाशम्[1] और मैं वकीलोंसे अदालतोंका ऐसा ही बहिष्कार करानेके उद्देश्यसे इस जिलेके दूसरे शहरोंके दौरेपर निकल रहे हैं। गण्टूर नगरमें दो जिला मुन्सिफ कचहरियों और कई मजिस्ट्रेटकी कचहरियोंके अतिरिक्त एक जिला अदालत और दो छोटी अदालतें भी हैं। बापटलामें एक छोटी अदालत और दो जिला मुन्सिफ कचहरियाँ हैं। आजकल इक्का-दुक्का लोगोंके अलावा सबने इन कचहरियोंको छोड़कर उजाड़ बना दिया है। हमें आशा है कि जिलेके और शहरोंमें भी अदालतें इसी प्रकार उजड़ जायेंगी। नये मुकदमों और अपीलोंकी सुनवाई और निर्णयके लिए पंचायती कचहरियाँ स्थापित की गई हैं, और इन कचहरियोंका पहला इजलास परसों शुरू होगा (यानी सोमवार ८ तारीखको)। हमारा लक्ष्य तो यह है कि ब्रिटिश अदालतोंमें चालू सब मुकदमों और अपीलोंको वहाँसे हटाकर पंचायती कचहरियोंमें पेश किया जाये। समान कचहरियोंकी नियमित स्थापना और उसके फलस्वरूप ब्रिटिश अदालतोंकी न्याय-व्यवस्थाके ठप हो जानेके बाद मुझे आशा है कि और दूसरे जिले भी इस दृष्टान्तका अनुगमन करेंगे। हमारा उद्देश्य यह है कि पहले इस जिलेमें हम यह काम समाप्त कर लें और फिर दूसरे जिलोंकी ओर बढ़ें — यदि इस बीचमें वे स्वयं ही ऐसा काम शुरू नहीं कर देते।

इस जिलेके, खासकर इस नगरके व्यापारी वर्गमें उल्लेखनीय जाग्रति हुई है। लोकमान्य तिलककी[2] निधन-तिथिपर लगभग वे सभी नये स्वदेशी कपड़े पहनकर जुलूस और सभामें शामिल हुए। कपड़ोंके व्यापारी स्वदेशी कपड़ेका धन्धा करनेको तैयार हैं यदि हम उनके विदेशी मालके भण्डारको निपटानेका कोई उपाय उनको बताएँ। इस समूचे जिलेमें २९ लाख रुपयेकी कीमतका विदेशी कपड़ा और सूत है। उसमें से आधा हिन्दुस्तानी मिलोंसे प्राप्त है। इस गण्टूर नगरमें व्यापारियोंके पास ३ लाख रुपयेकी कीमतका विदेशी कपड़ा और सूत पड़ा है। इस मालको वे भारतके बाहर कहीं भी भेजनेके लिए और फिर केवल स्वदेशी कपड़े और सूतका धन्धा करनेके लिए तैयार हैं।

अतः आपसे मेरी विनय है कि आप कृपापूर्वक मेरा बम्बईके ऐसे मित्रोंसे सम्पर्क करा दीजिये जो मुझे यह बतानेको तैयार हों कि बम्बईके कपड़ेके व्यापारी अपने विदेशी मालकी क्या व्यवस्था करनेवाले हैं और यह कि यहाँ हम अपने व्यापारी मित्रोंको बिना हानि उठाये भारतके बाहर अपना माल निर्यात कर सकनेमें क्या सहायता दे सकते हैं?

१. टी० प्रकाशम् (१८७६–१९५७); स्वराज्यके सम्पादक; आन्ध्र-केसरीके नामसे विख्यात; मद्रास राज्यके प्रथम मुख्य-मन्त्री।

२. बाल गंगाधर तिलक (१८५६–१९२०); राजनीतिज्ञ नेता, विद्वान् और लेखक।

मुझे आशा है कि वकीलोंका उत्साह सच्चा और स्थायी सिद्ध होगा। अदालतोंका यह बहिष्कार, फिर चाहे वह सरकारकी नीतिके खिलाफ, मात्र अपना विरोध प्रकट करनेके लिए ही क्यों न किया जा रहा हो, उन्हें और देशको लाभ पहुँचायेगा। व्यापारियोंकी समस्याके विषयमें मैं यही सलाह दे सकता हूँ कि उनको स्वयं कोई ऐसा तरीका ढूँढ़ना चाहिए जिससे वे प्रधान व्यापारियोंके जरिये अपने मालका निर्यात कर सकें। मुझे उम्मीद है कि बम्बईके व्यापारी भारत-भरके व्यापारियोंकी सहायता करेंगे और जितना अधिक माल निर्यात किया जा सकता हो, करनेकी कोशिश करेंगे। परन्तु मान लें कि इसकी कोई व्यवस्था नहीं हो पाती तो व्यापारी अपने मालको जिदसे न बेचें बल्कि केवल उन ग्राहकोंको बेचें जो विदेशी ही खरीदनेकी जिद करें। मैं यह आशा तो नहीं करता कि सारा भारत अचानक ही विदेशी कपड़ेके उपयोगके त्यागके औचित्यको समझ लेगा और उसे कर्त्तव्यके रूपमें स्वीकार कर लेगा। अभी एक महीना शेष है और यदि अब विदेशी कपड़े या सूतकी और खरीद न हो तो इस अवधिमें बहुत कुछ किया जा सकता है।

हिन्दू-मुस्लिम एकता

उन्नाव खिलाफत समितिके सभापति श्री सैयद मुहम्मद लिखते हैं:

> **आपके पत्रोंमें मुसलमानोंके कांग्रेसमें शामिल न होनेके बारेमें जब-तब छिट-पुट कुछ निकलता ही रहता है। मुझे इससे दुःख और चिन्ता होती है। खेदकी बात है कि जिलोंमें हिन्दू नेता आम तौरपर अपने मुसलमान पड़ोसियोंसे कुछ परायापन महसूस करते हैं और छोटे जिलोंमें हिन्दू और मुसलमान कार्य-कर्ता व्यक्तिगत विज्ञापनकी महत्वाकांक्षा रखते हैं और अपनी श्रेष्ठताका दावा भरते हैं, जो कि सच्ची एकताके लिए घातक है। फल यह है कि हिन्दू कार्य-कर्त्ता खिलाफत आन्दोलनमें शायद ही कोई सक्रिय भाग लेते हैं और इस तरह बीचकी खाई चौड़ी होती जाती है। जहाँतक प्रचारके कामका सम्बन्ध है, कांग्रेस कमेटियोंने कुछ भी नहीं किया है, और वे समझती हैं कि उनका काम खिलाफत समितियोंसे बिलकुल भिन्न है। छोटे जिलोंमें यह दूषण बहुत शोचनीय है और पूरी एकताके लिए मेरे नितान्त सच्चे प्रयत्नोंके बावजूद हम सतही एकतासे अधिक कुछ नहीं पा सके हैं। हिन्दू एक बार एकताकी इस शक्तिको समझ लें और महसूस करें तो मैं दावेके साथ कह सकता हूँ कि इस जिलेमें गो-बलि नगण्य रह जायगी। उनका अलग रहना ही हमारे लिए सबसे बड़ी रुकावट है।**

यदि उन्नावके हिन्दू खिलाफतके सवालके प्रति उदासीन हों, तो मुझे सचमुच बड़ा दुःख होगा। मुझे कोई सन्देह नहीं कि खिलाफतमें हिन्दू जितनी ज्यादा दिलचस्पी लेंगे उतना ही स्वराज्य निकट आयेगा। हमें याद रखना चाहिए कि अभी यह सम्भव नहीं कि हम खिलाफतके सिवा किसी अन्य रूपमें मुसलमानोंको स्वराज्यमें दिलचस्पी लेनेके लिए प्रेरित कर सकें। यह दुःखकी बात है, पर है सत्य। दोनों जातियाँ एक-

दूसरेसे इतने समयतक विमुख रही हैं कि मुसलमान अनजाने लगभग यही समझने लगे थे कि भारत उनका घर नहीं। खिलाफतके खतरेने उनकी आँखें खोल दी हैं। हिन्दू इस तथ्यको ध्यानमें रखें और अपने मुसलमान भाइयोंकी मदद करके अपनी भी मदद करें और हमेशाके लिए हिन्दू-मुस्लिम एकताको पक्का करें। दोनोंके लिए सौभाग्यकी बात है कि — उन्नावमें जैसा भी हो — दूसरी अनेक जगहोंमें निश्चय ही ऐसा नहीं है। वहाँ हिन्दू खिलाफत आन्दोलनके लिए भरसक पूरी सहायता कर रहे हैं।

तमिल बहनोंके बारेमें कुछ और

एक दक्षिण भारतीय वकील लिखते हैं :

> तमिल प्रान्तमें खादीका उतना व्यापक व्यवहार नहीं जितना और प्रान्तोंमें है — मुख्यतः इसलिए कि स्त्रियाँ उसे नहीं पहनतीं। इसी कारण चरखा भी उतना नजर नहीं आता। सधवाएँ यहाँ सादा सफेद कपड़ा नहीं पहन सकतीं। वे केवल रंगीन साड़ी ही पहन सकती हैं। पहले समयमें महिलाओंमें केवल सूती-का ही चलन था। अब जो बिलकुल ही गरीब हैं, उनके सिवा सभीने सूती साड़ियोंका त्याग कर दिया है और दैनिक व्यवहारमें रेशमी साड़ियाँ ही आती हैं। रेशमी साड़ियाँ पहले यहीं कोरनाडु (मायावरम्के निकट)में बनती थीं, बादमें कांजीवरम्में बनने लगीं; ये साड़ियाँ देशी रंगोंमें रंगी जाती थीं। उनका मूल्य रु० १० से ३० तक होता था। उन्हें कभी-कभी ही पहना जाता था। लेकिन इधर कुछ अरसेसे बाजारमें बंगलौरी साड़ियोंका ही बोल-बाला है जो जर्मन या अंग्रेजी रँगोंसे रँगी जाती हैं और सबसे घटिया भी लगभग रु० ५० की होती है। इसका निर्धन ब्राह्मण गृहस्थपर बुरा प्रभाव पड़ता है, खासकर इसलिए कि उसे अपने परिवारके सभी सदस्योंको केवल रेशम ही पहनाना पड़ता है और चूँकि दैनिक व्यवहारमें भी रेशमी साड़ीका ही उपयोग होता है इसलिए उसे रेशमी साड़ियाँ काफी संख्यामें खरीदनी पड़ती हैं। विवाहके अवसरपर भेंट देने लायक साड़ीका कमसे-कम मूल्य ही १०० रु० से ऊपर होता है। कितने ही संभ्रान्त परिवारोंकी इसी कारण जर्जर दशा हो जाती है। यह है नाशकारी प्रथा जो ब्राह्मणोंतक ही सीमित थी, अब दूसरे वर्गोंमें भी फैल गई है।
>
> खर्चके प्रश्नके अलावा आराम और सुविधाकी दृष्टिसे भी यह बात विचारणीय है। रेशममें पसीना नहीं मरता और वह भारी भी है, इसे पहनकर काम करना या खाना पकाना तो मानो मौत ही है। यहाँ सालमें दो-एक महीनोंको छोड़कर हमेशा गर्मी ही रहती है। एक और विचित्र और गन्दी आदत है : लोग बहु-मूल्य साड़ियोंको इस डरसे कि कहीं उनका रंग बिगड़ न जाये और सलवटें न पड़ जाये, धोते नहीं हैं। पसीना और दुर्गन्ध दोनों असह्य होते हैं।
>
> बरबादीकी खाईपर खड़े बहुतेरे गृहस्थ आपका उपकार मानेंगे यदि आप मितव्ययिता, सादगी और आराम वापस ला सकें।

मुझे आशा है कि मद्रासके कार्यकर्त्ता इस पत्रमें जिस कुप्रथाकी शिकायत की गई है, उससे निपटेंगे। पत्रलेखककी तरह मुझे भी मद्रासकी अपनी अगली यात्राके बारेमें अब डर-सा लग रहा है कि तमिल स्त्रियोंको रेशमी साड़ियोंका बहुत मोह है। मद्रास-जैसी गरम जलवायुमें रेशमसे बढ़कर दूसरा हानिकर वस्त्र नहीं है। और हमारे निर्धन देशमें एक साड़ीपर सौ रुपये खर्च करना धनका ऐसा अपव्यय है जिसे अपराध ही कहा जा सकता है। इस मामलेमें पुरुष भी समान रूपसे दोषी हैं क्योंकि वे हाथकी बुनी पगड़ियों, धोतियों और अंगवस्त्रमें तो मान समझते हैं, और यह भूल जाते हैं कि इन सभीमें सूत तो विदेशी ही होता है। आश्चर्य तो होगा परन्तु पसीनेको अपने भीतर सोख लेनेवाली खादी इन सब सुन्दर वस्त्रोंसे, जिनपर पुरुषोंको इतना नाज है ज्यादा ठंडी होती है। लेकिन मुझे आशा है कि मेरा यह विश्वास कि तमिल लोग आध्यात्मिक विषयोंमें रुचि रखते हैं, स्वदेशी-जैसे टेढ़े मामलेमें भी सही सिद्ध होगा और वे विदेशी वस्त्रके पूर्ण बहिष्कार और चरखेको स्वीकार करनेकी नैतिक आवश्यकताको समझेंगे। मद्रास और आन्ध्रके मैदानोंकी गर्मीमें कोई दूसरा उद्योग उतना सहायक नहीं हो सकता जितना कि मधुर-मन्थर गतिवाला चरखा। द्रविड़ देश भारतके बाहर गुलामीका जीवन बितानेके लिए सबसे ज्यादा प्रवासी भेजता है। चरखेकी पुन:स्थापनासे लाचारीके प्रवासकी यह कठिन समस्या अपने-आप सुलझ जाती है। केवल जमीन भारतकी निर्धन किसान जनताका भरण-पोषण नहीं कर सकती, चाहे उन्हें लगान न भी देना पड़े।

वकालतमें लगे हुए वकील

ऐसे वकीलोंके विषयमें जिन्होंने वकालत नहीं छोड़ी है पर फिर भी कांग्रेस कमेटियोंमें भिन्न-भिन्न पदोंपर काम कर रहे हैं, मेरे पास बराबर पत्र आ रहे हैं। जबसे मैं बंगालमें आया हूँ तबसे तो यह सवाल मुझसे और भी आग्रहके साथ पूछा जा रहा है। ढुबरीके एक भूतपूर्व विद्यार्थी लिखते हैं कि क्या आप उन वकीलोंके नेतृत्वमें, जो अब भी वकालत कर रहे हैं, इस आन्दोलनके सफल होनेकी आशा रखते हैं। यदि स्वार्थ-त्यागपर आधारित यह आन्दोलन ऐसे वकीलोंके नेतृत्वमें चलता है जो स्वार्थ-त्यागमें विश्वास नहीं करते तो उसके सफल होनेकी आशा मैं नहीं करता। बल्कि मैंने तो नि:संकोच यह राय दी है कि ऐसे वकीलोंको, चाहे वे बड़ी योग्यता रखनेवाले हों तो भी, अपना अगुआ बनानेके बजाय तो यह बेहतर है कि मतदाता लोग उनसे कम योग्यता रखनेवाले दूसरे लोगोंको अपना नेता बनायें। किसी डरपोक और शक्की वकीलकी बनिस्बत तो मैं खयाल करता हूँ कि कोई बहादुर और निष्ठावान मोची या जुलाहा नि:सन्देह बहुत अच्छी तरह नेताका काम कर सकता है। क्योंकि सफलता तो वीरता, त्याग या कुर्बानी, सत्य, प्रेम और विश्वासपर अवलम्बित है — कानूनी ज्ञान, बौद्धिक कुटिलता, कूट-नीति, द्वेष और अविश्वासपर नहीं।

रोटीका सवाल

इसी विद्यार्थीने एक सवाल और उठाया है। वे कहते हैं कि बहुतेरे बंगाली रोटीकी समस्याके कारण राष्ट्रीय कार्य नहीं कर पाते या ऐसा कहें कि अपनी गुलामी

नहीं छोड़ पाते। मैं कहूँगा कि कारण रोटीकी समस्या उतना नहीं है जितना कि रोटी कमानेके लिए शरीर-श्रम करनेकी अरुचिकी समस्या। हम शिक्षित भारतीयोंने रोटीके लिए शरीर-श्रम करनेकी कला खो दी है। बुनने, धुनने और कातनेवालोंकी मजदूरी रोज-ब-रोज बढ़ती जा रही है — ऐसी हालतमें हम यह नहीं कह सकते कि रोटी कमाना कोई बड़ी समस्या है। प्रतिदिन आठ घंटे बुनाईका काम करनेवाला शुरूमें ही कमसे-कम एक रुपया रोज कमा सकता है। सिद्धहस्त बुनकर आज दो रुपया रोज तक कमा लेते हैं। हमें अपनी जीविकाके लिए केवल टेबल-कुर्सीका ही काम चुननेकी बात नहीं सोचनी चाहिए।

नीतिके तौरपर अहिंसा

इस विद्यार्थीका अन्तिम प्रश्न सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है।

> **"क्या आप यह आशा करते हैं कि यह शान्तिमय संग्राम जिसका आधार प्रेम और आत्मिक बल है, उन लोगोंके शामिल होनेसे जो कि अहिंसा या शान्तिको एक नीति मात्र समझते हैं, सफल हो सकता है? शुद्ध अहिंसाके लिए अधिक साहस और देशप्रेमकी आवश्यकता है। परन्तु अगर यह "कमजोरोंका हथियार" हो तो भावी दमनके मुकाबलेमें इससे लोगोंमें भयका संचार होगा।**

प्रश्नकर्त्ताने सवालका कुछ जवाब तो खुद ही दे दिया है। अहिंसा धार्मिक विश्वासके रूपमें न सही, नीतिके ही रूपमें स्वीकार की जाये तो भी उसमें सफलता मिल सकती है। पर कब? जब उसके साथ साहस और देशका अथवा स्वीकृत कार्यका सच्चा प्रेम मिला हुआ हो। अन्याय करनेवालोंके प्रति द्वेष रखनेका अर्थ देश-प्रेम हो, सो बात नहीं। हमारे रास्तेमें तो कठिनाई इस बातसे पैदा होती है कि बहुतसे लोग दरअसल तो नीतिके तौरपर भी अहिंसाके कायल नहीं होते पर ऐसा बताते जरूर हैं। अलीबन्धु[1] अहिंसाको बिलकुल नीतिके तौरपर ही मानते हैं; परन्तु मेरे खयालमें अहिंसामें नीतिके तौरपर सच्चा विश्वास करनेवाला उन दो भाइयोंसे बढ़कर आज कोई नहीं है। वे मानते हैं कि शान्तिभंग होनेसे हमारे कामको धक्का पहुँचनेके सिवा और कुछ नहीं हो सकता और यदि व्यापक पैमानेपर अहिंसा या शान्तिका व्यवहार किया गया तो पूरी तरह सफलता मिल सकती है। जो मनुष्य एक नीतिके तौरपर ही सत्यका अवलम्बन करता है वह उसके भौतिक फलोंको अवश्य पाता है। परन्तु जो केवल सत्यका ढोंग रचता है वह हरगिज नहीं पा सकता।

कार्यसमितिकी आज्ञाओंका पालन

यदि हम इसी वर्ष स्वराज्य प्राप्त कर लेना चाहते हैं तो हमें अपने जीवनके प्रत्येक अंगमें और, सबसे अधिक, कांग्रेसी संस्थाओंके काममें उसके आनेके लक्षण दिखाने होंगे। जो कानून और नियम हमने आज स्वयं बनाये हैं उनके अनुसार यदि हमने

१. मौलाना मुहम्मद अली (१८७८–१९३१) और शौकत अली (१८७३–१९३७); खिलाफत आन्दोलनके प्रमुख नेता।

आचरण न किया तो जब हम स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे तब भी हमारी यही वृत्ति रहेगी। कार्य-समितिकी पिछली बैठकमें कोषाध्यक्षने इस बातकी बड़ी शिकायत की थी कि कितनी ही प्रान्तीय कमेटियोंने अभीतक उनके पास अपने द्वारा इकट्ठे किये गये चन्देकी चौथाई रकम नहीं भेजी। कहा गया है कि कुछ प्रान्तोंने तो अपनी रकम इसलिए रोक रखी है कि दूसरे प्रान्तोंने अभीतक अपनी रकम नहीं भेजी। मैं तो इसके विपरीत यह कहूँगा कि कांग्रेसके प्रति अपने कर्त्तव्योंका पालन ठीक-ठीक करनेमें प्रत्येक प्रान्तको एक-दूसरेसे होड़ करनी चाहिए। बस, केवल इसी रीतिसे हम स्वराज्यके योग्य होनेकी आशा रख सकते हैं और तभी हमारी माँगें आदरके साथ सुनी जायेंगी। यदि कांग्रेस संस्थाओंका काम अच्छी तरह चलाना है तो कार्यसमितिकी तमाम सूचनाओं और आदेशोंका पालन सचाई और तत्परताके साथ होना चाहिए। कार्यसमितिने यह निश्चय किया है कि हर प्रान्तके कुल चन्देका कमसे-कम चौथाई हिस्सा स्वदेशी — अर्थात् हाथ-कताई और हाथ-बुनाईके काममें लगाना चाहिए। यदि हमें खादीकी माँग पूरी करनी है तो २५ लाख रुपये सारे भारतके लिए कोई बड़ी रकम नहीं है। सच तो यह है कि जो प्रान्त इस मदपर जितना ज्यादा खर्च करेगा, उसका काम उतना ही ज्यादा अच्छा होगा।

ईसाई और असहयोग

उत्तरी बसरासे एक हिन्दुस्तानी ईसाईने लिखा है:

"मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि आप हिन्दुस्तानी ईसाइयोंको हिन्दुस्तानकी प्रजा नहीं समझते। मैंने कई बार आपके 'यंग इंडिया' में देखा है कि आप मुसलमान, हिन्दू, सिख आदिका नाम तो लेते हैं, पर ईसाइयोंका उल्लेख नहीं करते।

आप विश्वास कीजिए कि हम हिन्दुस्तानी ईसाई भी हिन्दुस्तानकी प्रजा हैं और हिन्दुस्तानके हितके कामोंमें बहुत रस लेते हैं।

मैं पूरे विश्वाससे कहता हूँ कि असहयोगकी प्रगतिमें हिन्दुस्तानी ईसाइयोंने जितनी दिलचस्पी ली है उतनी और किसीने नहीं। अपनी मातृभूमिके कल्याणके कामोंके साथ मेरी बड़ी हमदर्दी है। मैं खुद भी एक असहयोगी हूँ।

मैं वादा करता हूँ कि मैं आपको कभी-कभी मेसोपोटेमियामें रहनेवाले हिन्दुस्तानियोंकी हालतके बारेमें कुछ लिखता रहूँगा।"

मैं इन पत्र भेजनेवाले महाशय तथा अन्य हिन्दुस्तानी ईसाइयोंको विश्वास दिलाता हूँ कि असहयोगमें जातियों और पन्थोंके लिहाजकी गुंजाइश नहीं है। वह तो अपने दायरेमें सबको निमन्त्रित करता है और प्रवेश देता है। कितने ही हिन्दुस्तानी ईसाइयोंने तिलक स्वराज्य कोषमें चन्दा दिया है। कुछ प्रसिद्ध हिन्दुस्तानी ईसाई तो असहयोगकी सबके आगेकी कतारमें हैं। हिन्दुओं और मुसलमानोंका जिक्र तो बार-बार इसलिए आता है कि आजतक वे लोग एक दूसरेको अपना दुश्मन समझते रहे हैं। इसी प्रकार जब-जब किसी जातिका उल्लेख खास तौरपर 'यंग इंडिया' में हुआ है तब-तब उसके लिए वैसा कोई सबब रहा है।

मेरी महत्वाकांक्षा

शिमलाके एक आग्रही सज्जन मुझसे पूछते हैं कि क्या मेरी इच्छा कोई नया सम्प्रदाय स्थापित करनेकी या दैवी पुरुष होनेका दावा करनेकी है। मैंने उन्हें एक निजी पत्रमें उनके प्रश्नका उत्तर दे दिया था। लेकिन वे चाहते हैं कि भावी पीढ़ियोंका खयाल करके मैं इस प्रश्नपर अपनी बात लोगोंके सामने सार्वजनिक रूपसे भी कह दूँ। मेरा खयाल था कि अपने दैवी पुरुष होनेकी बातका खण्डन मैं काफी सख्त शब्दोंमें कर चुका हूँ। हाँ, मैं भारत और मनुष्य-जातिका एक नम्र सेवक होनेका दावा अवश्य करता हूँ और ऐसी सेवा करते हुए मरनेकी इच्छा रखता हूँ। सम्प्रदाय स्थापित करनेकी मेरी कतई कोई इच्छा नहीं है। सच पूछिए तो मेरी महत्वाकांक्षा इतनी बड़ी है कि वह सम्प्रदाय स्थापित करके और चन्द अनुयायी पाकर सन्तुष्ट नहीं हो सकती। कारण यह है कि मैं किसी नये सत्यका प्रतिपादन नहीं कर रहा हूँ। मेरी कोशिश सत्यको जिस रूपमें मैं जानता हूँ, उस रूपमें उसका अनुसरण करनेकी और उसे अपने जीवनमें उतारनेकी है। कई पुराने सत्योंपर नया प्रकाश डालनेका दावा मैं जरूर करता हूँ। मैं आशा करता हूँ मेरे इस वक्तव्यसे मेरे प्रश्नकर्त्ता और उनके जैसे दूसरे लोगोंका सन्तोष हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५–८–१९२१

७. न्यायका स्वांग

मैं पहले एक अंकमें[1] इस बातका उल्लेख कर चुका हूँ कि २५ जुलाईको कराची-में लोकप्रिय धर्म-प्रचारक, समाज सुधारक और धरना-आन्दोलनके प्राण स्वामी कृष्णा-नन्दकी गिरफ्तारी, मुकदमेकी सुनवाई और एक सालकी सख्त कैद —— तीनों बातें तीन घंटेके अन्दर समाप्त कर दी जानेकी खबर पानेपर भीड़ने लज्जास्पद व्यवहार किया था। कचहरीके चारों ओर सैनिक तैनात थे और मुकदमा एक प्रकारसे बन्द कमरेमें किया गया था। स्वामीजी २० तारीखको गिरफ्तार हुए थे परन्तु एक घंटेकी हवालातके बाद ही छोड़ दिये गये थे। गत पच्चीस तारीखको उसी अभियोगमें बिना चेतावनीके उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया गया। उनपर कर्त्तव्यपालनमें संलग्न एक कान्स्टेबलको मारनेका अभियोग लगाया गया। प्रोफेसर वासवानी[2], जो स्वामीजीके सम्पर्कमें थे और अदालतमें मौजूद थे, साक्षी देते हैं[3] कि स्वामीजीने सिपाहीको कदापि नहीं मारा बल्कि सिपाहीने ही उन्हें मारा और काफी मारा। कारण यह था कि वे एक मित्रके साथ बातें कर रहे थे, और उन्होंने अपनी जगहसे हटनेसे इनकार किया था। भीड़को

१. देखिए खण्ड २०, पृष्ठ ४८४ ।

२. टी० एल० वासवानी (१८७९–१९६६); सिन्धके एक सन्त पुरुष; लेखक; मीरा शिक्षण-संस्था, पूनाके संस्थापक ।

३. प्राइसको लिखे अपने पत्रमें; देखिए परिशिष्ट १ ।

स्वामीजीकी निर्दोषितापर पूरा विश्वास था। और फिर उसने आवेशमें आकर वहाँसे गुजरनेवाले प्रत्येक यूरोपियनपर तथा यूरोपीय हैट पहने हुए यात्रीपर अपना गुस्सा उतारा। मार खानेवाले यूरोपीयोंमें विधान-सभाके सदस्य श्री प्राइस भी थे। रोषका चाहे कितना भी बड़ा कारण रहा हो, स्वामीजीकी निर्दोषिता कितनी भी असंदिग्ध रही हो, उनका पद चाहे जो-कुछ भी रहा हो, भीड़को क्रोधित कदापि न होना चाहिए था। जबतक हम बड़ेसे-बड़ा कारण होते हुए भी क्रोधको वशमें रखनेमें समर्थ न हों तबतक विजय असम्भव है। गोलियोंकी वर्षाके बीच शान्ति रखना सैनिकका अनिवार्य गुण है। यदि असहयोगी बड़ीसे-बड़ी उकसाहटके बीच भी शान्त न रह सके तो वह किस कामका? हमें अपनी चुनी हुई शैय्यापर ही सोना होगा। हमें सरकारसे हर परिस्थितिमें शान्त रहनेकी अपेक्षा न करनी चाहिए। हमारे समान उसके भी अपने सिद्धान्त हैं। वह एक हदतक ही शान्त रह सकती है। जबतक हम खिलवाड़ करते दिखेंगे, तबतक वह खामोशी अख्तियार किये रहेगी। ज्योंही ऐसा मालूम होगा कि हम सचमुच कुछ करने जा रहे हैं उसी क्षण दमन शुरू कर देना उसकी दृढ़ नीति है। स्वामीजी और उनके अनुयायी अपनी निष्ठामें गम्भीर थे इसलिए सरकारने वार किया। यही हमारी परीक्षाका अवसर था और हम उसमें असफल हुए। यह कहना कि प्रोफेसर वासवानी और उनके कर्मठ कार्यकर्ताओंने भीड़का क्रोध रोकनेका प्रयत्न किया और कुछ हदतक सफल भी हुए और अधिक भीषण घटनाएँ घटित होनेसे रोक सके, सच तो है परन्तु है असंगत। जिस बातपर हमें ध्यान देना चाहिए वह यह है कि भीड़का आत्म-नियन्त्रण टूटा ही क्यों? लोगोंका वहाँ इकट्ठा होना कोई जरूरी न था। इकट्ठा होनेपर उसे पूरे समय शान्त और स्थिर रहना चाहिए था। भीड़का अधिकार तो यह था कि वह अपना क्रोध विदेशी कपड़ोंको त्यागकर घरोंमें कपड़े बुनने और शराबकी दूकानोंपर धरना देनेका निश्चय करके उतारती। सरकारपर सांघातिक वार वही होता। वस्तुतः हुआ ऐसा कि उसके निष्फल रोषके फलस्वरूप उस आन्दोलनकी ही, जिसके पक्षमें वे प्रत्यक्षतः काम कर रहे थे, भारी क्षति हुई।

ठीक-ठीक रूपसे समझ लिया जाये कि जबतक भीड़ अनुशासित सैनिकोंके समान व्यवहार करना न सीखे, सविनय अवज्ञा असम्भव है। और हम सविनय अवज्ञाके मार्गको तबतक अपना नहीं सकते जबतक हम प्रत्येक अंग्रेजको इस बातका विश्वास दिला न सकें कि वह भारतमें भी अपने घरके समान ही सुरक्षित है। कोरा आश्वासन देना काफी नहीं है। प्रत्येक अंग्रेज स्त्री और पुरुषको यह लगना भी चाहिए कि उसकी सुरक्षाको कोई भय नहीं है और उसका कारण उनकी संगीनोंका बल नहीं बल्कि हमारा जीवित सिद्धान्त है। यह शर्त सफलताके लिए ही लागू नहीं है बल्कि वर्तमान रूपमें आन्दोलन चलानेकी हमारी क्षमताकी भी यही शर्त है। असहयोग संघर्ष चलानेका और कोई दूसरा तरीका नहीं है।

हम स्वामीजीके विदाईके सन्देशको ध्यानमें रखें: "मद्यपानके विरुद्ध आन्दोलन जारी रखा जाये और भंगियोंकी मदद की जाये।" इससे और अच्छा सन्देश हो ही नहीं सकता था। यदि हम मद्य-निषेध कर सकें और भंगीको अपने स्तरसे — यद्यपि वह स्तर नीचा है — उठा सकें, तो हम स्वराज्यके बहुत निकट आ जाते हैं।

निस्सन्देह सिन्धका अधिकारी-वर्ग अपनी बुद्धि खो बैठा है। मैं उनके द्वारा की गई ऐसी घोषणाएँ देखता हूँ जिनमें लोगोंको जहाँ और जैसे उनकी इच्छा हो घूमनेकी तथा छड़ीके अलावा और कुछ लेकर चलनेकी मनाही है।

यूरोपीय भी आत्मसंयम खो बैठे हैं। मुझे इसपर आश्चर्य नहीं। बहुतोंके बीचमें वे मुट्ठीभर हैं। प्रोफेसर वासवानीने दुर्घटनापर शोक प्रकट करते हुए श्री प्राइसको उच्च भावनाओंसे पूरित पत्र भेजा है। वे श्री प्राइससे परिचित थे। श्री प्राइसने उसका रोषपूर्ण उत्तर भेजा। प्रो० वासवानीने फिर पत्र लिखा। श्री प्राइस फिर भी नाराज हुए। मैं अन्यत्र इनके रोचक पत्रव्यवहारमें से दो विशिष्ट पत्र छाप रहा हूँ — एक श्री प्राइसका, उनका सबसे बुरा पत्र नहीं, और एक प्रो० वासवानीका, शान्त और गाम्भीर्यपूर्ण। दूसरा पत्र असहयोगीकी स्थितिके स्पष्टीकरणके रूपमें भी बहुमूल्य है।

'न्यायके' इस 'स्वांग' से जैसा कि प्रो० वासवानीने इसे कहा है और उसके बादकी घटनाओंसे हमें यही नसीहत लेनी है कि जैसे-जैसे असहयोगकी तेजी बढ़ती जायेगी और सालका अन्त समीप आता जायेगा तैसे-तैसे हमें न्यायके साथ खिलवाड़के ऐसे अनेक अवसरोंके लिए तैयार रहना चाहिए, और निर्दोष व्यक्तियोंकी गिरफ्तारीको बिना क्रोध किये और बिना बदला लिए सहन करनेके लिये भी तैयार रहना चाहिए; और यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो फिर हमें उस विफलताके लिए तैयार रहना चाहिए जिसके कि उस हालतमें हम पात्र होंगे। जब हम अपने ध्येयकी प्राप्तिके इतने निकट पहुँच चुके हैं तब जनसमुदायोंको वशमें रखनेकी असमर्थताके कारण हमें उससे पीछे हटना पड़े — यह कैसी करुणाजनक स्थिति होगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५–८–१९२१

८. चिरला-पेरला

चिरला-पेरला सच पूछो तो एक गाँव ही है। यह समुद्रके पास ही बसा है; इसकी जलवायु बहुत अच्छी है। कोई १५००की घनी आबादी है। यह आन्ध्र प्रदेशमें है, और श्री० गोपाल कृष्णय्या नामके एक बहुत बुद्धिमान और स्वार्थत्यागी नेता उसमें रहते हैं। अपने अध्यवसाय और त्यागके बलपर उन्होंने वहाँके लोगोंको बिना दिक्कतके एकताके सूत्रमें बाँध रखा है। वहाँका नागरिक शासन अब भारतीय मंत्रीके अधीन है। उसने पिछले सालसे वहाँके बहादुर लोगोंपर रौब जमाना शुरू किया है। उनपर एक बेजा और कष्टकर व्यापारिक अनुमति-पत्र लेनेकी बाध्यता लादी गई। पर लोगोंने इसका उत्तर अनुमति-पत्र लिए बिना ही अपना व्यापार जारी रखकर दिया। फल यह हुआ कि मुखालिफत करनेवाले लोगोंपर मामला चला और सजाएँ हुई। उनमें एक बूढ़ी स्त्रीको भी जेल जाना पड़ा। सरकार वहाँ लोगोंपर नई नगरपालिकाका बोझ लादनेकी कोशिश कर रही है। लोगोंने इसका विरोध किया है। परन्तु जिस मन्त्रीने, लोकमतका अत्यन्त विरोध होते हुए भी मन्त्रित्वका पद ग्रहण किया हो वह इसके

सिवा और कर ही क्या सकता है कि लोगोंपर अपने निर्णय लादनेकी कोशिश करे और यह दिखाये कि मुझे उनके मतकी जरा भी परवाह नहीं है।

अच्छा, अब हम यह देखें कि इस नगरपालिकासे जनताका कितना हित साधन हुआ। गाँव पहलेकी अपेक्षा ज्यादा साफ-सुथरा हुआ है, यह तो कहा ही नहीं जा सकता, क्योंकि लोगोंने खुद ही उस स्थानको असाधारण रूपसे अच्छी हालतमें बना रखा है। अधिक शिक्षा-प्रचार भी नहीं हुआ, क्योंकि वहाँके लोग तो असहयोगी हैं। एक ही बात हुई कि और भी ज्यादा कर बैठाये गये और लोगोंकी स्वतन्त्रतामें और भी ज्यादा दस्तंदाजी की गई। यह बुराई लोगोंके लिए असह्य थी।

अतएव, उन लोगोंने निश्चय किया कि हम लोग नगरपालिकाकी हदको छोड़कर उसके बाहर पास ही खुली जगहमें जा बसेंगे। उन्होंने वहाँ झोंपड़ियाँ बनाईं और पिछली मईके आसपास चिरला-पेरला खाली करके लोग उनमें रहने चले गये। मन्त्रीने बेधड़क होकर मालगुजारीके महकमेंकी मदद ली और उस महकमेकी ओरसे यह कारण बताते हुए उनपर कर बिठा दिया गया कि तुम लोगोंने सरकारी बंजर जमीनपर अपने छप्पर डाले हैं। हर छप्परपर रु० १०–२–६के हिसाबसे कर बैठाया गया है, यद्यपि उनमें से प्रत्येककी कीमत कुल मिलाकर २५) ही है। कर अदा न करनेकी हालतमें रहनेवालोंको अपनी झोंपड़ियाँ खाली कर देनी होंगी।

इस दमनके आरम्भका वर्णन आन्ध्र प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीने इस प्रकार किया है:—

"चिरला-पेरलाके दमनके "सम्मान-पत्रक"में वृद्धि हो रही है। नगरपालिका टैक्स देनेसे इनकार करनेके कारण १२ पुरुष और १ स्त्री तो पहले ही सजा काटकर बाहर आ चुके हैं। अब उसी सम्बन्धमें ३ पुरुष राजमहेन्द्रीकी सेन्ट्रल जेलमें सख्त सजा भोग रहे हैं और छः आदमी कारावासके हुक्मकी बाट जोह रहे हैं। अनोखी बात तो यह है कि कैदकी सजा इन छः आदमियोंको एक माह पहले सुनाई गई थी पर रोक रखी गई। हमारे सुननेमें ऐसी कोई घटना नहीं आई जिसमें कि लोगोंको सजा तो ठोक दी जाये परन्तु जमानत तक तलब न करके उनसे चुपचाप कह दिया जाये कि घर जाओ और हुक्मका इन्तजार करो। चिरला-पेरलामें और भी कितने ही लोग जेलोंको भर देनेके लिए तैयार बैठे हैं। संघर्ष प्रशंसनीय वीरता और दृढ़ताके साथ चलाया जा रहा है। यद्यपि गाँवोंके खाली कराये जानेसे कारोबार अस्तव्यस्त हुआ है और अधिक गरीब लोगोंकी आजीविका समाप्त हो जानेके फलस्वरूप बहुत बड़ी कठिनाई उत्पन्न हुई है।

सजायाफ्ता लोगोंकी जायदाद जब्त कर ली गई है और बपतला तथा गन्टूरमें कई बार नीलामपर चढ़ाई गई थी ताकि उसे बेचकर जुर्मानेकी रकम वसूल कर ली जाये। परन्तु इन दोनों स्थानोंमें से किसीमें भी किसीने बोली नहीं लगाई। चिरला-पेरलाके कष्ट-सहनके कारण उनके प्रति लोगोंकी जो सहानुभूति आमतौरपर देखनेमें आ रही है उसका यह एक उज्ज्वल प्रमाण है।"

इस प्रकार हमारे सामने यह ठोस उदाहरण मौजूद है जिससे सुधारों और उत्तरदायित्वका सही रूप प्रकट हो जाता है। मुझे इसमें सन्देह नहीं कि मन्त्री महाशय जो कुछ करते हैं वह इसी विश्वाससे करते हैं कि इसमें लोगोंका हित है। जब-जब अंग्रेज अधिकारियोंने जबरदस्ती कुछ भी, यहाँतक कि रौलट ऐक्ट भी, हमपर लादा, तब-तब उन्होंने क्या उसका समर्थन यही कहकर नहीं करना चाहा कि यह तो प्रजाके कल्याणके लिए ही है। असहयोगका संघर्ष अन्य बातोंके सिवा, आश्रयदानकी भावनाके विरुद्ध भी है। हम कुछ अच्छा करना सीखें उसके पूर्व हमें इस बातकी स्वाधीनता जरूर होनी चाहिए कि हम अपने प्रयत्नसे जो चाहें सो करें फिर वह बुरा भी क्यों न हो। "स्वाधीनता" भी हमपर "जबरदस्ती" न लादी जाये। जनसत्ताकी भावना तो यही चाहती है कि मन्त्री या तो लोकमतके आगे सिर झुका दे या इस्तीफा पेश कर दे। सब प्रकारसे दोष रहित सुधार-कार्योंमें भी उसे प्रबुद्ध जनमतको धैर्यपूर्वक अपने साथ लेकर चलना चाहिए।

चिरला-पेरलाके बहादुर लोगोंने सरकारसे कह दिया है कि वह उससे जो बने सो कर ले, वे उसके दमनके आगे नहीं झुकेंगे और नगरपालिका गठित करनेसे इनकार कर दिया है। उन्हें ऐसा करनेकी आवश्यकता नहीं थी। वे "स्वराज्य" तक इसका इन्तजार कर सकते थे। परन्तु उन्होंने इसके विपरीत करना अच्छा समझा। इसकी जवाबदेही पूर्णतः उन्हींपर है। अब वे किसी भी हालतमें अपनी टेक न छोड़ें। उत्तेजना और सनसनीकी हालतमें रोषको पास फटकने न दें। वे सरकारको बड़ी खुशीके साथ वह जो चाहे, इसकी सजा देने दें। अपने इस नम्र परन्तु अटल कष्टसहनकी बदौलत वे स्वयं अपनेको तथा भारत-माताको गौरवसे भूषित करेंगे एवं देशको अहिंसा और शान्तिका पदार्थ-पाठ पढ़ायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५–८–१९२१

९. पत्र: मणिबहन पटेलको

डिब्रूगढ़, [असम]
२५ अगस्त, १९२१

चि० मणि[1],

तुम्हारा पिछला पत्र मैं अपने साथ लिये घूमता रहा हूँ। काका विट्ठलभाईको समझाना बड़ा मुश्किल काम मानता हूँ। अपनी इस उम्रमें और एक प्रकारकी लड़ाईमें[2] फतह पानेकी मान्यता बन जानेके बाद अब उन्हें नये प्रकारको ग्रहण करना कठिन मालूम होता है। हम धीरज रखकर उनका मतभेद सहन करके अपने रास्ते चलते रहें, इसके सिवा और कोई उपाय मुझे दिखाई नहीं पड़ता।

१. वल्लभभाई पटेलकी पुत्री।
२. विधान-सभाकी सदस्यताके लिए।

वहाँ बहिष्कारका[1] और खादी-उत्पादनका काम जोरोंसे हो रहा होगा।

असम एक नया ही देश लगता है। यात्राका जानने लायक भाग 'नवजीवन'[2] में दे चुका हूँ। इसलिए यहाँ नहीं लिख रहा हूँ। भाई इन्दुलालके[3] साथ मैंने बात कर ली है। कुमुदबेनके[4] साथ मैं जी-भरकर बातें करना चाहता हूँ और उन्हें शान्ति देनेका प्रयत्न करना चाहता हूँ। इसका आधार उनकी इच्छा और मेरी फुरसतपर रहेगा। मैं उधर अक्तूबर माससे पहले आ सकूँगा, ऐसा नहीं लगता। तुम दोनों भाई[5]-बहन बापूकी[6] खूब मदद करते होगे। उनपर बहुत बोझा आ पड़ा है। परन्तु प्रभुकी इच्छा होगी तो वे उसे उठा लेंगे।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः] मेरे प्रवासका कार्यक्रम : ३१ से ३ तक चटगाँव और बारीसाल; ४ से १२ तक कलकत्ता।

बहन मणिगौरी,
द्वारा श्री वल्लभभाई झवेरभाई पटेल[7], बार-एट-लॉ
भद्र, अहमदाबाद।

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने

१०. भाषण : डिब्रूगढ़में

[२५ अगस्त, १९२१][8]

भाइयो,

आज असममें हमारी आखिरी रात है। कल हम असम छोड़कर चटगाँव चले जायेंगे। असमसे जो कुछ कहना था सो हम लोगोंने अबतक कह दिया है। और, इससे पहले कि मैं अब और कुछ कहूँ, आपसे यह जानना चाहता हूँ कि चायके बागीचोंमें काम करनेवाले मजदूरोंमें से कितने लोग यहाँ आये हैं। यदि मेरी आवाज

१. विदेशी कपड़ेका।

२. देखिए "असमके अनुभव-१", ४-९-१९२१ तथा "असमके अनुभव-२", ११-९-१९२१।

३. इन्दुलाल याज्ञिक; एक सक्रिय राजनैतिक कार्यकर्ता; गांधीजीने इन्हींसे **नवजीवन** लेकर उसे साप्ताहिक रूप दिया था।

४. इन्दुलाल याज्ञिककी पत्नी।

५. डाह्याभाई पटेल।

६. व ७. वल्लभभाई पटेल (१८७५-१९५०); गुजरातके प्रमुखनेता; भारतके प्रथम उप-प्रधान मन्त्री।

८. गांधीजी इस दिन डिब्रूगढ़में थे; देखिए "पत्र : महादेव देसाईको", २२-८-१९२१।

आप लोगोंतक पहुँचती है तो जो मजदूर लोग यहाँपर आये हों वे अपना हाथ ऊँचा उठा दें। मैं देखता हूँ कि इस जलसेमें बहुत कम मजदूर आये हैं।

मुझे उम्मीद थी कि यहाँपर मजदूर भाइयोंसे भी मेरी मुलाकात हो जायेगी। मैंने अपनी जिन्दगीके कमसे-कम बीस साल आफ्रिकामें मजदूरोंके साथ बिताये हैं। हिन्दुस्तानमें भी मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ, मजदूरोंकी जानकारी रखता हूँ। असममें मजदूरोंकी हालत कैसी है, यह मैं नहीं जानता। बागान-मालिकोंके प्रतिनिधियोंसे कल मैं बातचीत कर लूँगा। परन्तु मैं उम्मीद करता था कि उसके पहले मैं अपने मजदूर भाइयोंसे भी बातें कर लूँ। मैं जिस कामके लिए इस तरफ आया हूँ उसने मेरा इतना वक्त ले लिया कि मैं बागीचोंमें जाकर मजदूर भाइयोंसे बातचीत न कर सका। इस बातका मेरे मनमें अफसोस ही रह जायेगा। परन्तु इस अफसोसके साथ असमको छोड़ते हुए भी मैं इस खयालसे धैर्य रखे हूँ कि जिस कार्यको मैंने हाथमें लिया है उसमें यदि ईश्वर सफलता दे दे तो फिर मजदूरोंके पास जाना ही न पड़े। हिन्दुस्तानके लोगोंका दुःख मिट जाना चाहिए अन्यथा स्वराज्यके कोई मानी नहीं हैं। एक छोटेसे छोटा मजदूर या चायके बागीचेमें काम करनेवाली बालिका, काश्मीरसे लेकर कन्याकुमारीतक, आजादीके साथ घूम-फिर सके और एक भी बदमाश उसे तकलीफ न दे सके, ऐसा स्वराज्य जबतक न होगा तबतक वह "स्वराज्य" हो ही नहीं सकता। यह जो लड़ाई शुरू है इसका कारण यही है कि अंग्रेजी राजसे हिन्दुस्तानका भला नहीं हुआ है। अब मैं छोटी-छोटी बातोंमें नहीं फँस सकता। मैं कुछ दिनोंतक ऐसा समझता था कि मुहब्बतके साथ सब-कुछ अच्छा हो जायेगा। परन्तु पंजाबके अनुभवसे और मुसलमानोंके साथ इन्साफके नामपर जो अत्याचार किया गया है उससे मैं समझ गया कि ऐसा अन्याय दूसरी सल्तनतमें नहीं हो सकता। और तभीसे मैं इस सल्तनतको "शैतानी" सल्तनत कहने लगा।

अगर हम शैतानियतको मिटाना चाहते हैं, यदि मजदूरोंके दुःखोंको कम करना चाहते हैं और औरतोंपर होनेवाले अत्याचारोंको नष्ट करना चाहते हैं तो कोई शक्ति ऐसी नहीं है जो हमें रोक सके।

यदि हमारा ईश्वरपर विश्वास कम न हो जाता तो हिन्दुस्तानमें कंगाली न छा जाती।

हमारा संघर्ष दुश्मनीका नहीं है। इतना अवश्य है कि हम किसीकी सरदारी कुबूल करना नहीं चाहते। **ईश्वरके सिवा और किसीको हम अपना सरदार नहीं समझते।** यही स्वराज्यके मानी है। जिस सल्तनतमें झूठका बोलबाला है, अत्याचार किये जाते हैं, झूठे खरीते भेजे जाते हैं, उससे मुहब्बत करना हराम समझना चाहिए। इसलिए हम इस सरकारकी अदालतोंसे न्याय नहीं चाहते, उसके मदरसोंमें लड़के नहीं पढ़ाना चाहते और इसीको हम तर्के मवालात —असहयोग-कहते हैं। हम किसीको दंगा-फिसादके लिए नहीं कहते। हम ईश्वरका नाम लेकर, शान्तिपूर्वक स्वराज्य प्राप्तकर सकते हैं, और मुसलमानोंके घावोंको सुखा सकते हैं।

'आत्मशुद्धि' क्या चीज है, यह हमको अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। आप शराब, गांजा, अफीम और वेश्यागमन छोड़ दें। मैं मजदूरोंकी आदतोंसे खूब वाकिफ

हूँ। आपको जो आठ-नौ रुपया महीना मिलता है, उससे आप सुख और चैनसे नहीं रह सकते। आप जो शराब पीते हैं सो दुःखको भूल जानेके लिए पीते हैं। परन्तु दुःख मिटानेका सीधा-सा उपाय तो यह है कि आप दुःखको सहन करें; यदि गैर-इन्साफके साथ कोई जालिम सजा दे तो उसको खुशीसे स्वीकार करें। हिन्दुस्तानने इस उसूलको अभी अच्छी तरह नहीं समझा है। जब मैं यह समझ लूँगा कि हिन्दुस्तानको इसका पूरा इल्म हो गया है, बस उसी दिन हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हो सकता है। आज हिन्दुस्तानमें कानूनका सविनय-भंग शान्तिपूर्वक करनेकी ताकत नहीं है। मुझे आशा है कि यह ताकत अक्तूबरके पहले आ जायेगी। परन्तु यह ताकत शराब पीनेसे, वेश्यागमन करनेसे नहीं आ सकती। इसलिए शराब पीना छोड़ दो, वेश्यागमन छोड़ दो। इसका बड़ा गहरा अर्थ है। आप यदि किसी गन्दी चीजसे सम्बन्ध रखना नहीं चाहते तो पहले आप खुद शुद्ध हो जाइए।

हमको पता नहीं है कि हमारा देश शराब और अफीम पीनेकी अपेक्षा विदेशी व्यापारके कारण कितना अधिक गिर गया है। हमने विदेशी व्यापारकी गन्दगी और पापकी ओर नजर नहीं फेंकी। मेरे प्यारे भाई एन्ड्रयूज साहब[१] भी मुझसे पूछते हैं कि खुलनामें कहतके होते हुए भी आप विलायती कपड़ा क्यों जलाते हैं? हमें पता नहीं कि परदेशी कपड़ा पहनना कितना गुनाह है। आत्मशुद्धिके लिए, और दुनियाको आत्मशुद्धिकी पहचान बतानेके लिए, विदेशी कपड़ा छोड़ देना चाहिए। हिन्दुस्तान यदि इतना कर सके तो अक्तूबरतक वह आजाद हो सकता है।

डिब्रूगढ़के मारवाड़ी भाइयोंसे मैं नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि आप यदि असमकी सेवा करना चाहते हैं, यदि धर्मकी सेवा करना चाहते हैं — और मैं जानता हूँ कि आपमें धर्मकी सेवाका ज्ञान है और धर्मके लिए प्रेम भी है — तो आप विदेशी कपड़ेका व्यवहार छोड़ दें।

मुझे दुःख है कि असमकी इस आखिरी रातको डिब्रूगढ़में परदेशी कपड़ा जलानेका पवित्र काम करनेकी कोई तजवीज नहीं की गई। दुःखकी बात है कि डिब्रूगढ़ इतना भी यज्ञ नहीं कर सकता। क्या आप लोग मैलको भी जलानेसे डरते हैं?

आप यदि मजदूरोंके दुःखको मिटाना चाहते हैं, स्त्रियोंकी पवित्रता और हिन्दुस्तानकी प्राचीन सभ्यताकी रक्षा करना चाहते हैं तो विदेशी कपड़ा जला दीजिए। इतनी दूर-दूरसे मजदूर लोगोंको यहाँपर क्यों आना पड़ता है? इसका कारण मैं यही समझता हूँ कि उन्होंने चरखा छोड़ दिया है। किसानोंने भी चरखा छोड़ दिया है। इधर खेतीमें काफी पैदायश नहीं होती। इसलिए १० लाख लोग असममें बाहरसे आये हैं। यह हमारे पापकी निशानी है।

"परमेश्वर हमको विदेशी कपड़ेका त्याग करनेकी और हमारी स्त्रियोंकी लाज बचानेकी शक्ति दें", ऐसी प्रार्थना करता हुआ मैं अपना भाषण खत्म करता हूँ।

हिन्दी नवजीवन, ९–९–१९२१

१. सी० एफ० एन्ड्रयूज (१८७१–१९४०); अंग्रेज धर्म-प्रचारक जिनकी मानवतापूर्ण सेवाओंके कारण भारतवासी उन्हें "दीनबन्धु" के नामसे पुकारने लगे।

११. पत्र : महादेव देसाईको

सिलचरके रास्तेपर
शनिवार [२७ अगस्त, १९२१][1]

भाईश्री महादेव,

कांग्रेस द्वारा बताई गई असमकी हदको आज छोड़कर हम अब सुरमा घाटीमें प्रवेश कर रहे हैं। दृश्यावली भी बदल गई है। ब्रह्मपुत्रकी यात्रामें हमने तुम्हें काफी याद किया। लेकिन क्या हम अपने मनचाहे भोजनको हमेशा प्राप्त कर सकते हैं, या खा ही सकते हैं? तुम्हारी ओरसे कोई भी पत्र नहीं मिला है। वस्तुतः गोहाटी छोड़नेके बाद हमें डाक मिली ही नहीं और ऐसी आशंका है कि अभी कलकत्ता पहुँचनेसे पहले मिलेगी भी नहीं। वहाँ तो मुश्किलसे चार तारीखतक ही पहुँचेंगे। अन्नपूर्णादेवीका पता है: चतापारु, एलौर, मद्रास प्रान्त।

एस्थर फैरिंगका[2] पता याद हो तो लिख भेजना।

तुम्हारे स्वास्थ्यके बारेमें समाचार जाननेको आतुर हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ११४१२) की फोटो-नकलसे।

१२. तार : सरदार वल्लभभाई पटेलको

सिलहट
आसाम
३० अगस्त, १९२१

इष्ट दिन[3] समीप आ रहा है। गुजरातमें उस दिन हड़ताल करायें। मजदूरोंको चाहिए कि वे अनुमति लेकर शरीक हों। बुधवार और बृहस्पतिवारको चटगाँव रहूँगा। शनिवारको बारीसालमें। इतवारको व उसके बाद कलकत्ता।

[अंग्रेजीसे]

बापुना पत्रो–२ : सरदार वल्लभभाईने

१. देखिए "पत्र : महादेव देसाईको", २२–८–१९२१ ।

२. एक डेनिश मिशनरी जो १९१६ में भारत आई थीं और बादमें कुछ समयतक साबरमती आश्रममें रहीं, गांधीजी उनके साथ पुत्रीका-सा व्यवहार करते थे ।

३. प्रिंस ऑफ वेल्सके भारत-आगमनका दिन ।

१३. पत्र : सरदार वल्लभभाई पटेलको

सिलहट
असम
[३० अगस्त, १९२१][1]

भाईश्री वल्लभभाई,

आपका पत्र मिला। मैंने आज जो तार[2] दिया है, उसकी नकल भी भेजता हूँ। अगर हममें शक्ति है तो मैं तो यही कहूँगा कि वे[3] जबतक अहमदाबादमें रहें तबतक ही हड़ताल रखी जाये और गरीब लोगोंको जो सामान चाहिए, उसके मिल सकनेका बन्दोबस्त किया जाये। इसका परिणाम मार्शल लॉ हो सकता है। उसे हम बरदाश्त करें और मर जायें। परन्तु ऐसा लगता है कि इतना तो हमसे नहीं हो सकेगा। इतनी शक्ति हममें नहीं आई है। इसलिए हम उतना ही करें जितना हमसे हो सके। लोगोंको यह समझा दें कि हम उनके साथका सम्बन्ध किस तरह बन्द कर सकते हैं। नगरपालिका जितना सम्बन्ध तोड़ सके उतना तोड़े। उन्हें कोई सलाम न करें। जो विद्यार्थी सरकारी पाठशालाओंमें पढ़ते हैं, वे भी उनके पाठशालामें आनेपर न उठें। हममें जोर हो तो उनके दफ्तरपर पहरा लगाकर लोगोंको जानेसे रोका जा सकता है। इसके अलावा भी अपनी नापसन्दगी सभ्यतापूर्वक बतानेके अन्य अनेक रास्ते सूझ जायेंगे। उन्हें अपनाकर हमें अपनी स्थिति प्रकट करनी चाहिए। मेरी सलाह है कि उनके बहिष्कारका सारा कार्यक्रम हम आजसे ही घोषित कर दें और लोगोंको भी शान्ति किन्तु दृढ़तासे काम लेनेकी तालीम दें। वे प्रिन्स आफ वेल्सके नाते अह-मदाबादमें रुआब न दिखा सकें, इतना करनेकी हममें ताकत होनी चाहिए।

इससे ज्यादा यहाँ बैठा हुआ मैं नहीं कह सकता। इतना जरूर कहूँगा कि बूतेसे बाहर कुछ न करें। यह जरूरी है कि हम पीठ न दिखायें। हमारे बहिष्कारका आग्रह रखनेसे अशान्ति होनेकी सम्भावना हो, तो मेरी सूचनाओंका अमल मुलतवी रखें।

आपने स्वागत-समितिका[4] अध्यक्ष-पद स्वीकार किया सो ठीक ही हुआ। जब हमने सेवाको ही धर्म माना है, तब ऐसी सम्मानकी उपाधियाँ भी हमें गिरा नहीं सकतीं।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – २ : सरदार वल्लभभाईने

१. डाक-मुहरकी तारीख ।
२. देखिए पिछला शीर्षक ।
३. प्रिन्स आफ वेल्स ।
४. अहमदाबादमें होनेवाली कांग्रेसकी ।

१४. भाषण : चटगाँवमें, रेल कर्मचारियोंके समक्ष

३१ अगस्त, १९२१

(असम-बंगाल रेलवेमें जो हड़ताल हुई थी वह कर्मचारियोंने अपना कोई स्वार्थ साधनेके खयालसे नहीं की थी। बल्कि चाँदपुरमें चायबागानोंसे निकल कर आये हुए मजदूरोंपर जो अत्याचार किये गये, उनका परिमार्जन करानेके लिए की थी। सरकारने चायबागानके मजदूरोंको चाँदपुर स्टेशनसे मार-मार कर निकाल दिया और उनको उनके घर भेजनेसे इनकार कर दिया। इससे रेलवेके कर्मचारियोंको बहुत दुःख हुआ। बागानके मजदूरोंसे कर्मचारियोंका कोई सम्बन्ध नहीं था। मजदूर बिहार आदि प्रान्तोंके हैं और रेल कर्मचारी प्रायः बंगालके हैं। अर्थात् इस हड़तालमें रेल कर्मचारियोंका कोई स्वार्थ नहीं था। इन हड़तालियोंसे मैं चटगाँवमें मिला, वहाँ मैंने उनको यह बताया कि उन्हें क्या करना चाहिए। वह भाषण लिखा लिया गया था। इस भाषण-में मैंने जो विचार प्रकट किये थे वे बहुत-कुछ उपयोगी हैं, इस कारण, यद्यपि रिपोर्ट पूरी नहीं है और उसमें मैं कोई सुधार या काट-छाँट भी नहीं कर सका हूँ, फिर भी मैं उसे पठनीय समझकर यहाँ देता हूँ।

मोहनदास करमचन्द गांधी)

आप भाइयोंने मुझे जो मानपत्र दिया है, उसके लिए मैं आप सबका आभार मानता हूँ। किन्तु शिष्टाचारकी भाषाका उपयोग करके आपका अधिक समय लेना नहीं चाहता।

आपने हड़ताल की, और इतने दिनोंतक जारी रखी, यह आपने उचित किया या अनुचित किया, इस सम्बन्धमें मैं गहराईसे विवेचन न करूँगा; क्योंकि इसकी मुझे पूरी जानकारी नहीं है। यहाँ आनेपर कल जितना सुना है उतना ही मैं जानता हूँ। उतनेसे मैं इस सम्बन्धमें आपको अपना मत नहीं दे सकता। असम-बंगाल रेलवेकी हड़तालके सम्बन्धमें 'यंग इंडिया' में मैंने एक बार चर्चा की है। उसका उल्लेख किसी नेताने आपसे किया ही होगा। किन्तु मैंने उसमें भी अपना कोई मत प्रकट नहीं किया है, क्योंकि मेरे पास इतनी सामग्री न थी कि मैं कोई मत दे सकता। मैं यह नहीं जानता था कि आपकी हालत कैसी है, आपके अभियोग क्या हैं। मैं यह भी न जानता था कि आपको हड़ताल करनेका उचित कारण मिला है या नहीं और यह बात मैं अभीतक नहीं जानता। फिर भी मैं यह देखता हूँ कि आपने जो हड़ताल की है वह दूसरी हड़तालोंकी तरह स्वार्थके कारण नहीं की गई है। आपने अपने वेतनोंमें वृद्धि करानेके लिए हड़ताल नहीं की है, बल्कि परहितार्थ हड़ताल की है। चाँदपुरमें जो अत्याचार किया गया और यहाँ आपके भाइयोंको जो कष्ट उठाने पड़े उसमें उनके प्रति अपनी सहानुभूति दिखानेके लिए आपने यह हड़ताल की है। मुझे यह बात सूझी ही नहीं थी कि भारतके मजदूरोंमें दूसरोंके कष्ट निवारणार्थ हड़ताल करनेकी

शक्ति आ गई है। सब मजदूरोंकी स्थिति ऐसी नहीं है; फिर भी आपने तो यह हड़ताल अपने भाइयोंके दुःखोंके निवारणार्थ ही की है, यह मुझे बताया गया है।

और यदि आपने उनके दुःखोंके निवारणार्थ ही हड़ताल की हो तो जबतक इनके कष्ट निवृत्त न हों, जबतक इन लोगोंको न्याय न मिले, तबतक आपमें से एक भी मनुष्य कामपर लौट कर न जाये, यह आपका कर्त्तव्य है।

इन लोगोंके कष्ट दूर हो गये यह कब समझा जायेगा? चाँदपुरमें किये गये अत्याचारका परिमार्जन हो गया, यह कब माना जायेगा? जब सरकार पश्चात्ताप करे तब; मजदूरोंको जो मारा-पीटा गया, उसके लिए वह माफी माँगे और बागान-मालिकोंके दबावमें आकर उसने मजदूरोंको जो रेलभाड़ा नहीं दिया है वह उन्हें दे दे, तब। जिस कमिश्नरने इन हारे-थके गरीब स्त्री-पुरुषों और उनके बाल-बच्चोंको आधी रातके समय स्टेशनके मुसाफिर खानेसे निकाल देनेका भयंकर आदेश गोरखा सैनिकोंको दिया वह भारतमें ही पैदा हुआ हमारी ही जातिका आदमी है। उसे लज्जित होना चाहिए और स्वयं ही माफी माँगनी चाहिए।

जब इतना हो जाये तब आप फिर कामपर वापस जा सकते हैं। सरकार इतना कर दे; फिर रेलवे कम्पनी आपको बिना नोटिस हड़ताल करनेपर पिछले दिनोंका वेतन न दे, तो वह सहन किया जा सकता है। वह आपकी नौकरी नई नौकरी समझे और आपको कहे कि "ज्यों-ज्यों जगहें खाली होती जायेंगी त्यों-त्यों आपको लेते जायेंगे", और आपसे नई शर्तें भी करा ले — यह सब सहा जा सकता है; किन्तु यह सब तभी हो सकता है जब सरकार एक बार झुक जाये। जबतक वह नहीं झुकती तबतक आपको चाहे जितना रुपया दिया जाये, आपको चाहे कितना ही समझाया जाये, आप कामपर वापस नहीं जा सकते।

इस हड़तालमें आपको कांग्रेसकी ओरसे रुपया नहीं दिया जाये या नेता लोग आपका साथ छोड़कर खिसक जायें तब भी आपको दीन नहीं बनना चाहिए। जिस मनुष्यके हाथ-पाँव काम देते हैं, उसके लिए दीन बननेकी क्या बात है? उसे तो किसीका तनिक भी आश्रित हुए बिना स्वावलम्बी ही रहना चाहिए। क्या मैं और क्या कांग्रेस — कोई भी क्यों न हों, यदि तुम्हारे नेता हड़ताल करानेके बाद तुम्हारा साथ छोड़कर खिसक जायें तो भी आपको अडिग ही रहना चाहिए। कल आपको जो नोटिस दिया गया है, वह मैंने पढ़ा है। उसमें यह लिखा है:

> "आपमें से अनेक लोग कामपर वापस आ गये हैं। आप भी जल्दी कामपर लौट आयें। हम आपकी भलाईके लिए ही यह कहते हैं। कुछ गैर-जिम्मेदार लोगोंने आपसे हड़ताल करवा दी और अब वे आपके पाससे खिसक गये हैं। आप उनके बहकानेसे गुमराह न हों। यदि आप कामपर लौटनेमें विलम्ब करेंगे तो आपकी नौकरी भी चली जायेगी।"

आपको इस नोटिससे घबरानेकी जरूरत कतई नहीं है। आपको नौकरीपर नहीं जाना है। जो लोग चले गये हैं, उन्हें जाने दें; उन्होंने यह काम अनुचित किया है। अब आप अपनी नाक रखें।

युग निरन्तर बदलता रहता है। यह युग बुनकरोंका युग है। यदि आप इस धन्धेको अपना लें तो आप अपने पैरोंपर खड़े रह सकते हैं। यह न समझें कि यह काम करनेसे काम न चलेगा। आज बुनकर तो दुगुनी मजूरी कमा सकते हैं। फिर आपमें से जिनको अपने घर जाना हो वे जायें; आपका किराया पूरा कर दिया जायेगा। आप वहाँ जानेके बाद अपनी छोटीसी जमीनमें खेती करें और साथ ही चरखा चलायें। इसके अतिरिक्त आप अपने गाँवमें अपनी पसन्दका कोई और काम भी करें और स्वावलम्बी बनें। यदि आप सब लोग चटगाँववासी ही हों तो आप यहींपर ऊपर बताये गये अनुसार खेती और बुनाईका धन्धा करें। और इस प्रकार चटगाँवको भारतकी नाक बनाएँ। ऐसा करना कोई कठिन काम भी नहीं है। ईश्वर बहुत ही दयालु और न्यायकारी है। सूत कातना तीन दिनमें सीखा जा सकता है। रुई पींजनेकी क्रिया भी सुगम है। और मनुष्य कपड़ा बुननेका काम नियमित रूपसे सीखनेपर एक महीनेमें सीख लेता है। हाँ, यह जरूर है कि रेल विभागके कर्मचारियोंको रिश्वत लेने और चोरी करनेकी लत पड़ जाती है। यदि आप मेहनत किये बिना अपना पेट भरना चाहेंगे तो आप अवश्य ही दूसरे दिन मुझे यह लिखेंगे कि "हमसे बुनाईका काम नहीं होता।" किन्तु यदि आप मेहनत करेंगे, दिनमें बारह घंटे काम करेंगे तो आप मुझे एक महीनेमें ही यह अवश्य लिख देंगे कि "आपने हमें जो उपाय सुझाया है, उससे हम स्वावलम्बी बन गये हैं। अब हमें ईश्वरके सिवा अन्य किसीकी परवाह नहीं है।" और बारह घंटे काम करना कोई कठिन बात नहीं है। मैं बूढ़ा हो गया हूँ, अब मुझमें कोई शक्ति नहीं रही है; फिर भी बारह घंटे काम कर सकता हूँ। तब आप जवान लोग क्यों नहीं कर सकते? यदि आप मेहनत करेंगे, विचारपूर्वक जीवन बितायेंगे, तो आप ईश्वरको पहचान जायेंगे। क्योंकि जिस मनुष्यका चरित्र अच्छा नहीं है, जो शराब पीता है और जो व्यभिचार करता है वह बारह घंटे काम कर ही नहीं सकता। आप कांग्रेससे गुजारेके लिए पैसा नहीं माँग सकते; आपने हड़ताल की है तो आप उससे चरखा माँग सकते हैं। आप अपनी रोटी चरखा चलाकर कमा सकते हैं। आप चरखेका सहारा लेकर अपनी हड़ताल जारी रखें, दुःखी लोगोंको दिलासा दें और जबतक यह राक्षसी राज्य न झुके तबतक आपमें से एक भी मनुष्य कामपर वापस न जाये।

मैं आज कमसे-कम तीस सालसे मजदूरोंके जीवनमें ओतप्रोत हूँ। मैं जब वकालत करता था तब भी मजदूरोंके बहुतसे मुकदमे हाथमें लेता था। मैं उनके साथ रहता, उनके साथ चलता-फिरता, उन्हींके साथ सोता और खाता-पीता था। मैंने आजतक कितनी ही हड़तालें चलाई हैं। मैं अपने आपको हड़ताल-शास्त्री मानता हूँ। किन्तु मैंने जितनी हड़तालें हाथमें ली हैं उन सबमें ईश्वरकी कृपासे सफलता पाई है। इसका कारण यही है कि हर हड़तालमें मैंने मजदूरोंको खुद अपने पैरोंपर खड़ा होना सिखाया है, मैंने पैसा उगाहकर हड़तालियोंका उदर-पोषण कभी नहीं किया। हाथों-पावोंसे पूरा कोई स्वस्थ मनुष्य दूसरोंसे पैसा लेकर अपना पेट क्यों भरे? मेरी नौकरी चली जाये या मेरा व्यापार डूब जाये तो मैं अपने भाई या मित्रसे रुपया माँगने न जाऊँगा। मुझे रोग हो जाये, मैं अपंग हो जाऊँ तभी मैं अपने भाईके सामने अपना हाथ फैलाऊँगा।

दक्षिण आफ्रिकामें जब चालीस हजार मजदूरोंने हड़ताल की, तब मैंने तुरन्त श्री गोखले[1] को तार दिया, 'कोई चिन्ता न करें। भारतसे रुपया इकट्ठा करके यहाँ भेजनेकी कतई जरूरत नहीं है।' और जब पैसा न था तब बहुत अच्छी तरह काम चलता था। जब पैसा आने लगा तभी कठिनाइयाँ सामने आईं। मजदूरोंको जिसकी जरूरत थी वह मिल गया। हड़ताल छः महीने भी नहीं चलानी पड़ी। हड़ताल समझौता होने पर कुछ हफ्तोंमें ही बन्द हो गई। हड़तालियोंको दिनमें एक रोटी और एक औंस खाँड दी जाती थी। इतने अल्प भोजनपर वे बीस-बीस मीलकी मंजिल तय करते थे और साथमें स्त्री-बच्चे भी होते थे।

यह हड़ताल बहुत बड़ी थी। उसके आगे आपकी हड़ताल कुछ भी नहीं है। उसमें बहुतसे लोग मार खाते थे और मुँहतक न खोलते थे। यों दस हजार लोग जेलमें गये थे पर किसीने मुँहसे एक शब्द भी नहीं निकाला था। इनमें लम्बे-तगड़े पठान भी थे। एक बार कोयला खदानमें काम करनेवाला एक पठान मेरे पास आया और मुझे अपनी सूजी हुई और घायल पीठ दिखा कर बोला : "यह देखो; तनिक भी हिले-डुले बिना मैंने यह सब मार खाई है। इस जालिमने मेरी खाल उतारनेमें कोई कसर नहीं रखी है; किन्तु फक्त इसलिए मैंने यह मार खाई है कि मैं आपके सामने खुदाके नामपर कसम ले चुका था। नहीं तो उसकी क्या मजाल थी कि वह मुझे मारता। उस जैसेको तो मैं कुचल देता।"

मैंने उससे कहा, तू खरा बहादुर है। और उस हड़तालमें ऐसा एक ही पठान न था; बहुतसे थे। उसमें चोरी और खून वगैरा जुर्ममें जेल गये हुए लोग भी थे। फिर भी उनके मनमें एक ही बात थी कि "उन्होंने कसम जो ली है; मर जायेंगे पर उसपर कायम रहेंगे।" ये सभी लोग बहादुर थे। मैं चाहता हूँ कि आप सब भी ऐसे बहादुर बनें। मैं आप सभीसे फिर कहता हूँ कि आप कांग्रेसकी ओर न ताकें। ईश्वरने दाँत दिये हैं तो वह चबैना भी देगा। बंगालकी जमीन कितनी उपजाऊ है। यहाँ इतनी वर्षा होती है। प्रकृतिकी आपपर पूरी कृपा है। यहाँके लोग भूखों कैसे मरेंगे? यहाँके लोग किसीके गुलाम कैसे हो सकते हैं? उन्हें तो बिलकुल स्वतन्त्र होना चाहिए। वे निश्चय कर लें तो आज समस्त भारतको स्वराज्य दिला सकते हैं। मुझे तो तब शर्म आती है जब खुलनामें अकाल पड़ता है और उसके निवारणार्थ बम्बईके व्यापारियोंसे रुपया माँगा जाता है और जब वह रुपया मिलता है तब खुलनाके लोगोंका लंघन खुलता है।

अब हम यह सोचें कि हमें करना क्या चाहिए। या तो आप अपने-अपने घरोंको चले जायें और वहाँ आजीविकाके दूसरे साधन खोज लें अथवा अपनी कोई संस्था बना लें। यदि आप अपने-अपने घर जाना चाहें तो कांग्रेस समितिका कर्त्तव्य है कि वह आपको किराया दे। किन्तु मेरी सलाह तो यह है कि आप अपनी संस्था बना लें। एक स्वराज्यवादीके नाते आपको मेरी यह सलाह है कि आप पीजें, कातें और बुनें।

१. गोपाल कृष्ण गोखले (१८६६–१९१५); शिक्षाशास्त्री और राजनीतिज्ञ; भारत सेवक समाज (सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी) के संस्थापक।

एक महीनेतक काम सीखनेके बाद इससे आप एक रुपया रोज कमा सकेंगे। इसमें आप ज्यों-ज्यों कुशल होते जायेंगे त्यों-त्यों आपको अधिक मजदूरी मिलती जायेगी। इससे आप देशकी सेवा भी करेंगे। इसमें कुटुम्बीजनोंका बोझ भी नहीं रहेगा, क्योंकि इसमें वे भी आपकी सहायता कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त आपके इस साहसका प्रभाव लोकमतपर पड़ेगा और जो लोग आपका साथ छोड़ कर चले गये हैं वे भी आपके साथ आ जायेंगे। इसमें आपको दृढ़ताकी आवश्यकता अवश्य होगी। हमारे पूर्वजोंने प्रतिज्ञाके पालनपर बहुत जोर दिया है। महाराज दशरथने कहा था, 'रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाहिं पर वचन न जाई।'

आपमें से बहुतसे फिर रेलकी नौकरीमें वापस चले गये हैं। वे नासमझ हैं और कमजोर हैं। आप उन्हें गालियाँ देकर और मारपीट करके फिर नौकरी छोड़नेके लिए मजबूर न करें। ऐसा करना आपका धर्म नहीं है। यदि आप अपनी प्रतिज्ञाको न छोड़ेंगे चुपचाप अपनी हड़तालको जारी रखेंगे, कताई और बुनाईसे अपना पेट भरेंगे और ईश्वर-स्मरणमें अपना जीवन बितायेंगे तो इससे उन्हें अपने-आप शर्म आयेगी और उन्हें लोकमत भी शर्म दिलायेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-९-१९२१

१५. टिप्पणियाँ

रम्य असम

मैं ये टिप्पणियाँ महानद ब्रह्मपुत्रके तटपर बसे तेजपुरमें बैठा लिख रहा हूँ। तेजपुरका नाम किसी समय शोणितपुर था और कहा जाता है कि वह राक्षस बाणासुरकी, जिसकी पुत्री ऊषाका विवाह अनिरुद्धसे हुआ था, राजधानी थी। भक्तगण वह जगह भी दिखाते हैं जहाँ हरि और हरका संग्राम हुआ था। असमकी भूमिमें सुन्दर हरियाली ही हरियाली दीख पड़ती है। इस नदीके कुछ दृश्य तो इतने सुन्दर हैं कि उनसे बढ़कर संसारके किसी भागके दृश्य शायद ही हों। मैंने टैम्स नदीके भव्य दृश्य देखे हैं परन्तु इस महान् नदीको, जिसके तटपर बैठा मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ, प्रकृतिने जितने वैभवसे सजाया है उससे बढ़कर कोई दृश्य मुझे याद नहीं आता।

केवल उत्तरी असमकी जनसंख्या ३७ लाखसे अधिक है। असमकी प्रत्येक स्त्री जन्मजात बुनकर है। जिस असमिया लड़कीको बुनना न आता हो वह पत्नी बननेकी आशा नहीं रख सकती। और वह अपने बुने वस्त्रोंमें मानो परी-देशका सौन्दर्य खींच लाती है। हमारे मेजबान श्री फूकेनने मुझे जो पुराने नमूने दिखाये उनका सौन्दर्य अद्वितीय था। उन सुन्दर नमूनोंको देखते हुए भारतके बीते गौरव और खोई कलाको यादकर मेरी आँखोंमें आँसू उमड़ आये। आँखोंको ठंडक पहुँचानेवाला, सौम्य रँगोंका ऐसा मधुर सामंजस्य विदेशकी भड़कीली बढ़िया साड़ियोंमें कहाँ मिलेगा? असमके

वनज रँग अब लगभग लुप्तप्रायः हैं। जब असम अंग्रेजोंके आधिपत्यमें आ गया तब स्त्रियोंने कातना छोड़ दिया और विदेशी सूतको बुननेका पापमय कार्य प्रारम्भ कर दिया। अब असमकी स्त्रियाँ बुननेमें जितनी बचत कर लेती हैं उतना ही विदेशी सूत खरीदनेके कारण खो देती हैं। आज जो साड़ियाँ मैं देखता हूँ वे सुन्दरता या कोमलतामें पुराने नमूनोंकी तुलनामें कुछ भी नहीं है। यदि असमके कार्यकर्त्ता अपने कर्त्तव्यका पालन करें तो स्वदेशीके विकासमें उसका योग महत्त्वपूर्ण हो सकता है। वहाँकी स्त्रियाँ अपनी आवश्यकतासे कहीं अधिक कपड़ा बुन सकती है। वहाँ आज चालीस हजार एकड़ भूमिपर कपासकी खेती होती है, और एक एकड़की औसत उपज १३३ पौण्ड है। लेकिन निश्चय ही असम इससे बहुत अधिक उपजा सकता है। कुछ कपास जो मैंने यहाँ देखी है सुन्दर है और लम्बे रेशेवाली है। आन्ध्रके समान ही यहाँ भी छिटपुट घरोंमें महीन कताई अब भी हो रही है। सभी मानते हैं कि असमियोंके पास समय काफी रहा करता है। किसी और स्थानपर मैंने एक अंग्रेज लेखकके इसी धारणाकी पुष्टि करनेवाले विचार उद्धृत किये हैं। असममें पक्की और टिकाऊ लकड़ीकी बहुतायत भी है जो चरखे बनानेके लिए बिलकुल उपयुक्त है। हम आशा करें कि स्वदेशीके मामलेमें असम अपनी पूरी क्षमता दिखायेगा।

असमिया अफीम खानेके आदी हैं, परन्तु सम्पूर्ण भारतमें इस कुटवके विरुद्ध आन्दोलन फैल चुका है। मैंने सुना है कि बहुतेरे लोगोंने इस कुटेवका सर्वथा त्याग कर दिया है और नशीली चीजोंसे परहेजका आन्दोलन बढ़ रहा है।

मैंने सुना है कि कुछ सरकारी अफसरोंने मेरी एक भूलका उपयोग किया है जो मैंने 'हिन्द स्वराज्य' नामक पुस्तिकामें की थी; उसमें एक जगह मैंने असमियोंकी गिनती पिण्डारियों और दूसरी जंगली जातियोंके साथ की है।[1] मैं जनताके सामने इस भूलको स्वीकार कर चुका हूँ और मैंने उसमें सुधार कर लिया है। असमकी महान् जनताके प्रति मेरा यह घोर अन्याय था; वे निश्चय ही सब प्रकारसे भारतके दूसरे भागों जितने ही सभ्य हैं। उनका उत्तम साहित्य है, जिसका कुछ भाग अगरु पेड़की छालपर लिखा गया है जो अनेक रंगीन चित्रोंसे युक्त है, और बहुत प्राचीन है। असमकी स्त्रियोंसे तो, जैसे ही उनके कुशल बुनकर होनेका पता चला, मुझे सहज ही प्रेम हो गया। बुनकर होनेके नाते वे अपनी वेशभूषामें किफायतसे काम लेती हैं और खूबी यह है कि इससे न तो उनकी सुन्दरतामें कोई कमी हुई है और न शरीरको ढकनेकी उनकी क्षमतामें। असमी महिलाएँ और कन्याएँ थोड़े ही या नगण्य गहने पहने दीखती हैं — यह भी उनकी उत्तम संस्कृतिका चिह्न है, मैं तो ऐसा ही मानता हूँ। वे भारतके और सब भागोंकी स्त्रियोंके समान ही स्वभावतः संकोची और सुशील हैं और उनके चेहरे सुसभ्य और निष्कपट हैं।

असमियोंके विषयमें मेरी उपर्युक्त गलत धारणा बनी १८९०में, जब मैंने मणिपुरकी चढ़ाईका वृत्तान्त पढ़ा था, उसमें स्वर्गीय सर जॉन गॉर्स्टने वहाँके स्वर्गीय सेनापतिके प्रति अधिकारियोंके व्यवहारका बचाव करते हुए कहा था कि सरकार हमेशा

१. संशोधित संस्करणके लिए देखिए खण्ड १०, पृष्ठ २४ तथा पृष्ठ ६ पा० टि० १।

मुखिया-रूपी ऊँचे पौधोंको तराशना पसन्द करती है। इतिहासका कच्चा पाठक होनेके कारण मेरे मनमें यह धारणा रह गई कि असमिया जंगली होते हैं और १९०८ में[1] वह लिखनेमें भी आ गई। जो भी हो, मेरी इस भूलसे कुछ अफसरोंको कुछ चैन मिला, उस जनताको हँसीका मसाला मिला जिसके सामने मैंने अपनी भूल सुधारी और मुझे शानदार मौका मिला कि असमी बहनोंके सादे और अकृत्रिम सौन्दर्यकी प्रशंसा कर सकूं तथा उन्हें भारत और स्वदेशीके पक्षमें करूँ।

मुझे इस तथ्यकी चर्चा भूलनी न चाहिए कि लगभग अठत्तर असमी वकीलोंमें से पन्द्रह वकीलोंने वकालत छोड़ दी है जो सम्भवतः भारत-भरमें सबसे ऊँची प्रतिशत संख्या है।

अन्तमें मैं कांग्रेस कमेटियोंको धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने सब सभाओंमें सुन्दर व्यवस्था रखी है और अद्भुत अनुशासन द्वारा सब हड़बड़ी और हो-हल्लेका निराकरण किया है।

अनुचित दस्तंदाजी

असमके अधिकारी, साफ मालूम होता है, बड़े प्रदर्शनों और बड़ी सभाओंके आदी नहीं हैं। उन्होंने सभाएँ आदि करनेवालोंको सार्वजनिक स्थानोंका उपयोग करनेकी भी इजाजत नहीं दी। नौगाँवके अधिकारियोंने तो अपनी कार्रवाईसे लोगोंको एकदम चिढ़ा ही दिया। एक फुटबालके मैदानमें सभाके लिए मचान बनाने और उसपर शामियाना खड़ा करनेकी तजबीज की गई थी। पर वहाँके डिप्टी कमिश्नरने ऐसा नहीं होने दिया। तुर्रा यह कि पहले मैदानके उपयोगकी अनुमति देकर उसने बादमें शामियाना उखड़वा दिया। अब इसका कारण सुनिए। आप फरमाते हैं कि मचान बनाकर कमेटीके अध्यक्षने हुक्मकी मंशाके खिलाफ कार्रवाई की। कमेटीने लाचार होकर अपनी सभा एक खानगी जगहमें की। इतना ही नहीं; डिप्टी कमिश्नरने स्टेशन जानेवाले लोगोंपर भी पाबन्दियाँ लगानेकी कोशिश की। उसने उन चुने हुए लोगोंके नाम माँगे जो प्लेटफॉर्मपर जानेवाले थे। उपद्रवोंके डरसे उसने किसी किस्मका जुलूस भी नहीं निकलने दिया। सच पूछो तो मैंने भीड़का व्यवहार असममें जितना संयत और शिष्ट पाया उतना किसी दूसरी जगह नहीं पाया। वे प्रेमके प्रदर्शनके प्रसंगमें सीमाका उल्लंघन नहीं करते। कोई भी अनुभवी अधिकारी यह समझ सकता था कि प्रेमभावसे प्रेरित इन प्रदर्शनोंसे, उनमें शोर-गुल चाहे जितना हो, दंगा-फसाद होनेका कोई डर नहीं हो सकता। लेकिन असम ऐसा प्रान्त है जहाँ, मुझे मालूम हुआ है, अधिकारी जनतामें किसी तरहकी जागृतिका होना सहन नहीं करते। अभी कुछ ही दिन पहलेकी बात है। तेजपुरमें एक अधिकारीने कुछ मकान उन मकानोंमें रहनेवाले लोगोंसे जबरदस्ती और एकदम इस कारण खाली करा लिये कि उन मकानवालोंकी भैंसोंसे उसके खेलमें खलल पड़ता था। युद्धके दिनोंमें एक दूसरे अधिकारीने सीमापर रहनेवाले कूकी नामके कबीलेके लोगोंमें हत्याकाण्ड मचा दिया; उसने उन्हें भेड़-बकरियोंकी तरह काट डाला। न स्त्रियोंको छोड़ा, न बच्चोंको। मुझे मालूम हुआ है कि

१. १९०९ में; **हिन्द स्वराज्य** पुस्तिका सन् १९०९ में ही लिखी गई थी।

इस शर्मनाक हत्याकाण्डको लोगोंसे छिपानेका प्रयत्न किया गया था, यद्यपि उसे जानते तो सब हैं। तब कोई आश्चर्य नहीं कि असममें परिस्थिति इस हदतक पहुँची है कि उसकी स्थायी राजधानी समुद्र-तल से ४००० फुट ऊपर है। नीचे मैदानमें तो उसका कोई सदर मुकाम है ही नहीं। मुझे बताया गया है कि शिलांग तो व्यवहारतः यूरोपीयोंकी ही बस्ती है। और वहाँकी सरकार अपनी अगम्य ऊँचाइयोंसे कभी नीचे उतरती ही नहीं।

नगरपालिकामें खादी

रायपुर (मध्यप्रान्त)की नगरपालिकाने बहुमतसे नीचे लिखे प्रस्ताव पास किए हैं—

> १ अगस्त, १९२१ से नगरपालिका स्कूलोंके तमाम लड़कोंको राष्ट्रीय पोशाक —खादीका कोट या कुरता और खादीकी टोपी—पहनना चाहिए।
>
> तमाम नगरपालिकाके स्कूलों और दफ्तरोंमें १ अगस्त, १९२१ को लोकमान्य बाल गंगाधर तिलककी बरसीके उपलक्ष्यमें छुट्टी रखी जाये।
>
> नगरपालिका अपने तमाम नौकरोंसे उम्मीद करती है कि वे देशी कपड़ा बरतेंगे।
>
> नगरपालिकाके नौकरोंको खादीकी वर्दी दी जाये।

रायपुरकी नगरपालिकाने अपने अधिकारोंका बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग किया है। इसमें कोई शक नहीं कि हरएक नगरपालिका, पूरी असहयोगवादी हुए बिना भी, असहयोगके तमाम विधायक स्थायी अंगोंको अपना सकती है। ऊपरके प्रस्तावोंमें ऐसा एक भी प्रस्ताव नहीं है जिसपर कोई किसी भी प्रकारका आक्षेप कर सके। जो नगरपालिका स्वदेशीको अपनायेगी, अपनी कार्रवाई अपने प्रान्तकी भाषामें करेगी, दबी हुई जातियोंको ऊपर उठायेगी, शराबकी बिक्री तथा वेश्याओंके धन्धेको बन्द करेगी, वह मानो राष्ट्रीय शुद्धिके काममें मदद देगी। और, तभी यह कहा जा सकेगा कि हाँ, नगरपालिका हो तो ऐसी हो।

खादीके नाशका प्रयत्न

खादी टोपीके ऊपर भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें सरकारी अधिकारियोंने जो प्रतिबन्ध लगाया है उससे तो हम लोग परिचित ही हैं। मैंने सुना है कि बिहारमें एक मजिस्ट्रेटने विलायती कपड़ा बेचनेके लिए, सचमुच फेरी लगानेवालोंको भेजा। पर धारवाड़में नाम पैदा करनेवाले श्री पेंटर तो और भी आगे बढ़ गये हैं। उन्होंने सरकारी तौरपर एक परिपत्र निकाला है, जिसमें वे कहते हैं—

> **जिला मजिस्ट्रेट और कलेक्टरके मातहत तमाम अफसरोंको चाहिए कि वे लोगोंको यह बतलायें कि चूँकि हिन्दुस्तान अपने तमाम लोगोंकी जरूरतसे कम माल तैयार करता है, विलायती कपड़ेका बहिष्कार करनेसे अथवा उसके जलाने या बाहर भेजनेसे कपड़ेके दाम जरूर ही बहुत बढ़ जायेंगे। इसका नतीजा यह हो सकता है कि बड़ी अव्यवस्था फैले और लूटमार हो; और यह सब सरकारके किसी कामसे नहीं, बल्कि श्रीयुत गांधीके आन्दोलनकी बदौलत होगा।**

इसके बाद, दो अनुच्छेदोंमें उन्होंने यह भी बताया है कि इस स्वदेशी-प्रचारका मुकाबला किस तरह किया जाये — (१) सभाएँ की जायें और (२) जो व्यापारी बहिष्कारके खिलाफ हों उन्हें नियत समयपर कलेक्टरके दफ्तरमें बुलाया जाये। मद्रास सरकारने तो इससे भी बढ़कर अपनी कानूनी-शेखी बघारनेवाला एक परिपत्र निकाला है। इन हुक्मनामोंका मतलब साफ है। सरकार व्यापारियों और दूसरे लोगोंपर दबाव डालना चाहती है जिससे वे बहिष्कारमें साथ न दे सकें। अब नीचेके हुक्काम इसमें इतनी आजादीसे काम लेंगे जितना कि उन परिपत्रोंके निकालनेवालोंने सोचा भी न होगा। परन्तु अब देशके सौभाग्यसे हाकिमोंकी इन धमकियोंका असर लोगोंपर बिलकुल ही नहीं या बहुत थोड़ा होता है और हाकिम लोग दबे-छुपे अथवा खुलेआम न्याय-नीतिको ताकमें रखकर अथवा भलमनसीके साथ चाहे कितना ही विरोध करें, स्वदेशी-आन्दोलन तो आगे बढ़ता ही रहेगा।

हाकिम लोग इतने अज्ञानी और हठीले हैं कि जिस अव्यवस्था और लूटमारका डर उन्हें हो रहा है उसको टालनेका रामबाण उपाय वे नहीं करते; और वह उपाय यही है कि स्वदेशी-प्रचारमें वे लोगोंका साथ दें और देशी माल तैयार करनेमें प्रोत्साहन दें। पर विलायती कपड़ोंके खिलाफ उठाये गये इस आन्दोलनको वांछनीय और आवश्यक समझना तो एक ओर रहा, वे तो उलटा उसे दबाने-योग्य बुराई समझते हैं और फिर भी जब मैं इस शासन-व्यवस्थाको, जो कि जनताके सद्भावपूर्ण आन्दोलनको रोकना चाहती है, "शैतानी" कहता हूँ तो शिकायत की जाती है। देशी कपड़ोंकी तंगी यहाँ क्यों होनी चाहिए? क्या हिन्दुस्तानमें कपास काफी नहीं है? क्या यहाँ ऐसे स्त्री-पुरुषोंकी संख्या काफी नहीं है जो सूत कात सकते हैं और कपड़ा बुन सकते हैं? क्या यह मुमकिन नहीं है कि जरूरतके लायक तमाम चरखे थोड़े ही दिनोंमें बनकर तैयार हो जायें? हरएक घरमें जिस प्रकार अपना भोजन बनाया जाता है उसी प्रकार अपना कपड़ा भी क्यों नहीं तैयार होना चाहिए? अकालके दिनोंमें क्या अकाल-पीड़ितोंको कच्चा अनाज बाँटना ही काफी नहीं है? तो फिर, जो लोग कपड़ेके मोहताज हैं उन्हें कोरी कपास ही देना काफी क्यों न होना चाहिए? तब फिर कपड़ेकी तंगीका यह पाखण्ड-भरा या झूठमूठका शोर क्यों मचाया जाता है जब कि कल-कारखानोंकी सहायताके बिना ही भारतमें एक महीनेके अन्दर उसकी जरूरतके मुताबिक काफी कपड़ा बन सकता है? लोग बेचारे अबतक जानबूझकर अथवा बे-जाने-बूझे ही अँधेरेमें रखे गये हैं। उन्हें जो यह विश्वास रखना सिखाया गया है कि अपनी जरूरतके मुताबिक कपड़ा हिन्दुस्तानके घरोंमें, प्राचीन समयकी तरह, नहीं बनाया जा सकता, बिलकुल गलत है। अगर अलंकारिक भाषामें कहें तो वे पहले अपंग बना दिये गये हैं और फिर उन्हें विलायती या मिलके बने कपड़ोंका सहारा लेनेके लिए बाध्य किया गया है। कितना अच्छा हो कि वे लोग जिनके यहाँ ये परिपत्र निकाले गये हैं, इसका योग्य और गौरवपूर्ण उत्तर दें। और वह उत्तर यही हो सकता है कि वे फौरन अपने सारे विलायती कपड़े जला डालें या बाहर भेज दें और साहसपूर्वक यह प्रतिज्ञा कर लें कि अपनी जरूरतके लायक हम खुद ही कातेंगे और खुद ही बुनेंगे। निकम्मे और सुस्त आदमीको छोड़कर हरएकके लिए ऐसा करना बायें हाथका खेल है।

झूठे विज्ञापन

"स्वदेशी"के सम्बन्धमें झूठे विज्ञापनोंकी शिकायतें बराबर मेरे पास आ रही हैं। सत्याग्रहाश्रमके व्यवस्थापक — जिन्होंने इन सुधरे हुए और ईजाद किये हुए कहे जानेवाले लगभग तमाम चरखों और करघों आदिको आजमा देखा है — लिखते हैं कि अभी हालमें मुझे कलकत्तेसे एक विज्ञापन मिला है, जिसने पिछले सब विज्ञापनोंके कान काट लिए हैं। उनकी राय है कि अभीतक कोई ऐसा चरखा नहीं पाया गया जो सादगी, आराम और अधिक सूत-कताईमें पुराने चरखेसे बढ़कर हो। वे तमाम सूत कातनेवालोंको चेतावनी देते हैं कि आप किसी नये ढंगके चरखेके लिए रुपया बरबाद न करें। वे तमाम कांग्रेस कमिटियोंको सलाह देते हैं कि वे अपने-अपने क्षेत्रमें ऐसे सारे विज्ञापनोंकी जाँच करें और ऐसी हरएक कलको कमसे-कम एक महीनातक आजमा कर देखें और फिर उसके बारेमें अपनी राय घोषित करें। जैसे-जैसे स्वदेशीकी जड़ जमती जाती है वैसे-वैसे बनावटी आविष्कार भी लोगोंके सामने आये बिना न रहेंगे। इसलिए ऐसे तमाम मामलोंमें कांग्रेस कमेटियोंको जरूर रहनुमा होना चाहिए।

एक तूणी सज्जन लिखते हैं कि बम्बईके कुछ दुकानदार महीन कपड़ा खरीदनेके लिए आन्ध्र देश गये हैं। और मेरे खबरदार कर देनेपर भी, कुछ सौदागरोंने बेज-वाड़ासे विलायती सूतका कपड़ा भेजा। मैं तमाम खरीदारोंको होशियार किये देता हूँ कि वे ऐसे कपड़ेसे दूर रहें। यहाँ स्वदेशी कपड़ेका सारा स्टॉक खतम हो चुका है। इससे क्या नसीहत लेनी चाहिए सो साफ जाहिर है। वह नसीहत यह है कि "महीन कपड़ोंसे बचो।" महीन हाथ-कता सूत बहुतायतसे मिलना मुश्किल है और इसलिए कांग्रेसके कार्यकर्त्ताओंके लिए सबसे अच्छी बात यही है कि वे महीन खादीसे अपने को बचायें। जैसा कि श्रीमती सरोजिनी नायडूने[1] फरूखाबादमें कहा है, विलायती कपड़ा पहननेकी बनिस्बत तो पेड़के पत्तोंसे अपना बदन ढक लेना अच्छा है। जिनके दिलमें यह भावना दिनरात जगमगाती रहती है वे अभी नफीस और महीन कपड़ेके खतरनाक जालमें न फँसे। वह समय जल्द ही आयेगा जब कि हमें बुने जाने लायक हाथकते महीन सूतकी कमी न रहेगी।

एक सामयिक प्रकाशन

पटनाके डा० सयद महमूदने खिलाफत और इंग्लैंडपर अपनी पुस्तिका प्रकाशित करके खिलाफतकी सेवा की है। यह पढ़नेमें सुगम है और व्यस्त व्यक्तिके सामने भी खिलाफतका लगभग समूचा पक्ष पेश करती है। डा० महमूदने अपनी सभी बातोंकी पुष्टिमें प्रचुर उद्धरण देनेकी सावधानी बरती है। उन्होंने अंग्रेज मन्त्रियोंके भाषणों और लेखोंसे ही उद्धरण लेकर उनका विश्वासघात सिद्ध किया है। उन्हें यह प्रमाणित करनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई कि इंग्लैंड जब टर्कीका मित्र समझा जाता था तब भी उसकी यह मित्रता विवशताजन्य थी, क्योंकि रूस उसका शत्रु था। इंग्लैंड और टर्कीके सम्बन्धका इतिहास टर्कीके हितोंके विरुद्ध गुप्त सन्धियों और विश्वासघातसे भरा हुआ है, जब कि वीर

१. १८७९–१९४९; प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और कवयित्री; अ० भा० कांग्रेसकी अध्यक्ष, १९१५; उत्तर प्रदेशकी राज्यपाल।

और विश्वासशील तुर्क हमेशा इंग्लैंडके वायदोंपर भरोसा रखते रहे। लॉर्ड पामर्स्टनके जमानेमें टर्कीके समर्थनका कारण उन्हींके शब्दोंमें यह है, "हम टर्कीका समर्थन अपने हितकी खातिर ही करते हैं।" जब यह महत्वपूर्ण कारण न रहा तब टर्कीका सौदा कर दिया गया। १८७७ में बर्लिन कांग्रेसके अवसरपर इस बातका भंडाफोड़ हो गया कि ब्रिटेनने टर्कीसे साइप्रस द्वीप ऐंठ लिया था। डिज़रायली और सैलिस्बरी इन दोनों अंग्रेज राजदूतोंने कांग्रेससे यह भेद छुपा रखा था, हालाँकि उनका कर्त्तव्य उसे गुप्त न रखकर प्रकट कर देना था। इस तरह, "उन्होंने झूठका अपराध किया — सीधे और लिपिबद्ध झूठका!" इस भेदके प्रकट हो जानेसे क्या टर्कीको साइप्रस वापस मिल गया? बिलकुल भी नहीं। किन्तु इंग्लैंडके इस व्यवहारसे फ्रांस बहुत नाराज हुआ था। इंग्लैंडने ज्यों ही पहला अवसर उसके हाथ आया, ट्यूनिसपर कब्जा करनेका उसका अधिकार मानकर, यह स्वीकार करके कि सीरियामें अपने स्वार्थकी दृष्टिसे उसकी दिलचस्पी है और मिस्रकी आर्थिक लूट-खसोटमें उसको सम भाग देकर उसे सन्तुष्ट कर दिया। "पूर्वी देशोंकी और उत्तरी आफ्रिकाकी स्वतन्त्रताके विरुद्ध हमारी पुश्तमें हुए अत्याचारोंमेंसे आधेका मूल साइप्रस सम्बन्धी षड्यन्त्रमें देखा जा सकता है।" श्री ब्लंटका यह कहना कोई विचित्र बात नहीं है। डा० सैयद महमूदने इंग्लैंडकी मिस्र तथा ट्रिपोली और बालकन युद्ध-सम्बन्धी विश्वासघातपूर्ण कार्रवाइयोंका इतिहास प्रस्तुत किया है और साफ-साफ दिखाया है कि टर्कीको इंग्लैंडके साथ उसकी सन्धिसे लगभग बाहर धकेल दिया गया था। तब क्या आश्चर्य कि कोई मुसलमान अंग्रेज मंत्रियोंके मैत्रीपूर्ण वचनोंपर विश्वास नहीं करता? यदि वे टर्की और भारतके प्रति न्याय करानेमें अंग्रेजोंको विवश किये बिना चैनसे बैठ जायें तो वे इस्लाम धर्मके अनुयायी होनेका दावा खो बैठेंगे।

पंजाबके मुकदमे

मौलवी सैयद हबीबको तीन सालका सपरिश्रम कारावासका दण्ड दिया गया है — प्रकट रूपसे उनके 'सियासत' नामक पत्रमें उनके लेखोंके कारण, परन्तु वास्तवमें मुसलमानोंपर उनके प्रभावके कारण। श्री जफरअली खाँके पुत्र श्री अख्तर अली खाँ और उनके एक सम्बन्धी श्री गुलाम कादिरपर मुकदमा चल रहा है। परिणाम तो अभीसे निश्चित है। इस तरह उन सभी विशिष्ट मुसलमान और सिख असहयोगियोंको, जिन्हें सरकार अपने रास्तेका काँटा मानती है, रास्तेसे हटा दिया जायेगा। वे माफी माँगनेको तैयार नहीं हैं और न अपने शब्द ही वापस लेंगे, क्योंकि वापस लेनेको कुछ है ही नहीं। उनके लेखोंमें मैत्रीभावका अभाव अवश्य था। परन्तु असहयोगके नामको सार्थक करनेवाले किसी भी पत्र द्वारा [सरकारके प्रति] अमैत्री भावका प्रचार तो होना ही चाहिए। अतः इन महानुभावोंको मैं उनके इस सुअर्जित मानपर बधाई देता हूँ। मैं यही आशा रख सकता हूँ कि मुसलमान और सिख स्वदेशी कार्यक्रममें अपना योगदान पूरा करते हुए सरकारके इस कदमका सम्मान करेंगे। इन मुकदमों और दण्डोंके लिए जनता अपनेको तभी सत्पात्र सिद्ध कर सकेगी जब वह इतनी शक्ति पैदा करे कि इन मित्रोंकी रिहाई अवधिसे बहुत पहले ही हो जाये।

इस्तगासोंका एक नमूना

एक मित्रने मुझे नागपुरके पण्डित राधामोहन गोकुलजीपर जारी किये गये नोटिसकी नकल भेजी है। नोटिसमें कहा गया है कि या तो वे नेकचलनीके लिए मुचलका दें या जेल जानेके लिए तैयार रहें। पण्डितजी इन दिनों जेलमें बन्द हैं। नोटिसके साथ कुछ उद्धरण भी जोड़े गये हैं जो उनके समय-समयपर दिये गये भाषणोंसे लिये गये बताये जाते हैं। इन उद्धरणोंको मैंने बार-बार पढ़ा है। अब मैं उन्हें पाठकोंके सामने उसी क्रममें पेश करता हूँ जिस क्रममें वे उक्त नोटिसमें दिये गये हैं:

२० जून, १९२१ का सिवनीका भाषण

१. हम एक जुल्मी सरकारके खिलाफ लड़ रहे हैं। देखें. . .यह जुल्मी सरकार कबतक हमपर मुकदमे चलाती है? पश्चिमके लोग . . . ईसाई नहीं हैं।

२. जबतक हिन्दुस्तानकी सारी जेलें हिन्दुस्तानियोंसे भर नहीं जातीं तबतक हम अपना मकसद हासिल नहीं कर सकते। एक भी बालक जबतक जीवित है . . . तबतक हमारी यह आजादीकी लड़ाई जारी रहनी चाहिए।

३. जिस समय रोमके लोग इंग्लैंडपर राज्य कर रहे थे वे क्रूर और विचारशून्य हो गये। उन्होंने एक बार रानी बॉडीसियाको कोड़े लगाये; नतीजा क्या हुआ — आज रोमके साम्राज्यका कहीं पता नहीं है।

४. इस राक्षसी सरकारके इन गुलामखानों (स्कूलों) को बन्द कर दो।

५. भारतीयोंके लिए अलग कानून है और यूरोपीयोंके लिए अलग। ऐसी हालतमें हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि सरकार बेईमान है और वह जनताका भला नहीं चाहती।

६. जबतक आप इस जुल्मी सरकारसे लड़ रहे हैं तबतक बच्चे पैदा न करें।

२१ जून, १९२१का सिवनीका भाषण

१. इसके बाद उन्होंने असहयोग आन्दोलनका उल्लेख किया और कहा कि इस आन्दोलनके द्वारा रक्तहीन क्रान्ति की जा सकती है, इस अन्यायी सरकारको भंग किया जा सकता है और स्वराज्य प्राप्त किया जा सकता है।

२. जो सरकार ऐसी बेईमानी कर सकती है उसका नाश करना हमारा कर्त्तव्य है।

३. इस सरकारको हमने जो पैसा दिया और जो आदमी दिये उसका बदला हमें क्या मिला? रौलट कानून, जिसमें न अपीलकी गुंजाइश है, न बहस की।

४. आज हमारे ऊपर 'इम्पीरियल प्रिफरेन्स' लादा जा रहा है जिसके कारण न तो हम ब्रिटिश साम्राज्यके बाहरके देशोंसे उनका माल सस्ते भावपर खरीद सकते हैं और न अपना उन्हें ज्यादा अच्छी कीमतपर बेच सकते हैं।

५. वे सारे कानून जिनपर हमारी इज्जतका दारोमदार है विदेशी भाषामें बनाये जाते हैं, उसी भाषामें उनपर बहस होती है। ऐसे कानूनोंको माननेके लिए हम बाध्य नहीं हैं।

६. आप लोगोंको निर्वासनके लिए और रॉबर्ट मूरकी तरह फाँसीपर चढ़नेके लिए तैयार रहना चाहिए।

७. जिस बदजात सरकारने औरतोंके गुप्त अंगोंमें लकड़ियाँ घुसेड़वाईं उसको बरबाद करना अगर तुम अपना कर्त्तव्य नहीं समझते हो तो क्या तुम इन्सान कहलानेके लायक हो?"

५ जुलाई, १९२१का नागपुरका भाषण

१. इस पापी ब्रिटिश सरकारने चीनियोंको अफीम पीना और भारतीयोंको शराब पीना सिखाया।

२. इस पापी ब्रिटिश सरकारने तुर्की साम्राज्यके तो टुकड़े कर डाले किन्तु युरोपीय राज्योंको ज्योंका-त्यों रहने दिया।

३. ये भारतीय (मारवाड़ी) व्यापारी तो डाकू हैं जो और ज्यादा बड़े डाकुओंके लाभके लिए जनताको लूटते हैं।

४. ब्रिटिश और जापानी सरकारें भाई-भाई हैं। जैसे यहाँ ब्रिटिश सरकारने लोगोंको जेलोंमें बन्द कर रखा है उसी तरह जापानी सरकारने वहाँ कोरियामें असहयोगी विद्यार्थियोंको मरवा डाला है।

५. यह सरकार इतनी पापी है कि इसके पापका घड़ा इसीके सिरपर फूटेगा और रोमन तथा मिस्री साम्राज्योंकी तरह यह भी नेस्तनाबूद हो जायेगी।

इन उद्धरणोंमें ऐसा कुछ नहीं है जिसे मैंने या सैकड़ों अन्य वक्ताओंने विभिन्न अवसरोंपर हजारों मंचोंसे न कहा हो। केवल एक ही वाक्य ऐसा है जिसके खिलाफ आपत्ति की जा सकती है — यह वाक्य है दूसरे भाषणका सातवाँ उद्धरण। यह इलजाम कांग्रेस कमेटीके सामने पेश किये गये बयानोंमें जरूर आया है लेकिन वह कुछ आदमियोंके खिलाफ है, सारी संस्थाके खिलाफ नहीं है। सरकारके विषयमें यह कहना जितना वाजिब हो सकता है कि उसने अमृतसरकी गलियोंमें लोगोंको पेटके बल रेंगाया उतना वाजिब यह कहना नहीं हो सकता कि उसने ऐसा निन्दित और जंगली अत्याचार करवाया। लेकिन पण्डितजीको जो सजा दी गई है वह उनके भाषणोंमें उनकी किसी भूल या अतिरंजनाके लिए नहीं दी गई है। उनका इस्तगासा तो बड़ा तेज और मुकम्मिल है जिसमें उनके तीन भाषणोंके १८ उदाहरण दण्डनीय माने गये हैं और उनमें से प्रायः हरएककी पुष्टि की जा सकती है। टीका करनेमें वक्ता निष्पक्ष रहा है जैसा कि उसके मारवाड़ियों और जापानियों-विषयक उद्गारोंसे प्रगट होता है। लेकिन यह भी याद रखना चाहिए कि भाषण हिन्दीमें दिये गये थे और ये उद्धरण सन्दर्भके बिना ही पेश किये किये हैं। जो हो, हम कार्यकर्त्ताओंको तो इससे

यही सबक लेना है कि हम अपना काम निर्भयतापूर्वक जारी रखें और पण्डित गोकुलजी तथा दूसरे सज्जनोंकी तरह जेल जानेको तैयार रहें।

नागपुरके वकील

नागपुरके दौरा जजने वहाँके वकीलोंकी जो अग्निपरीक्षा ली थी उसमें वे अच्छी तरह पास हुए हैं। असहयोग करनेवाले वकीलोंसे उन्होंने पूछा कि वकीलोंके नाते तुम लोगोंने जो राजभक्तिकी कसम खाई है उसमें और वकालत मुल्तवी कर देनेमें किस तरह संगति बैठ सकती है? सब वकीलोंने एक स्वरसे कहा कि हमने वकालत कांग्रेस-की आज्ञाके अनुसार बन्द की है। श्रीयुत मुहम्मद समीउल्ला खाँने यह भी कहा कि मेरी राजभक्तिकी प्रतिज्ञा खुदा और उसके पैगम्बरकी भक्तिकी सौगन्धसे नीची है। खुदा और पैगम्बरकी भक्ति सबके ऊपर है, कोई दूसरी प्रतिज्ञा उससे बढ़कर नहीं हो सकती। श्रीयुत नारायणराव टी० वैद्यने कहा कि अब जमाना बहुत बदल गया है और राजभक्तिकी शपथमें भी परिस्थितिके अनुसार फेर-बदल करना होगा। नहीं तो कोई भी स्वाभिमानी वकील किसी भी अंग्रेजी अदालतमें वकालत करना न चाहेगा। अपने इस निर्भय व्यवहारके लिए उपरोक्त वकीलगण बधाईके पात्र हैं। हाँ, वह जमाना अब बेशक चला गया है जबकि लोगोंको डरा धमकाकर गुलामोंकी तरह कायल किया जाता था। मनुष्यका जीवन केवल रोटियोंके बलपर नहीं चलता। उसे पोषणका ऐसा स्रोत प्राप्त है, जो किसी बढ़ियासे-बढ़िया भोजनसे ज्यादा समृद्ध और शक्तिदायी है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १–९–१९२१

१६. राष्ट्रीय शिक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा विषयक मेरे विचारोंके सम्बन्धमें अबतक इतनी अजीब-अजीब बातें कही गई हैं कि लोगोंकी जानकारीके लिए यहाँ उनका सिलसिलेवार वर्णन कर देना अप्रासंगिक न होगा।

शिक्षाकी वर्तमान पद्धतिका सम्बन्ध एक नितान्त अन्यायी सरकारके साथ है, यह दोष तो इसमें है ही किन्तु उसके सिवा भी यह तीन अत्यन्त महत्वपूर्ण बातोंमें सदोष है।

(१) यह विदेशी संस्कृतिपर आधारित है, देशी संस्कृतिका तो इसमें नामोनिशान तक नहीं है, ऐसा कहा जा सकता है।

(२) यह हृदय और हाथकी संस्कृतिपर ध्यान नहीं देती, सिर्फ दिमागकी संस्कृति तक ही सीमित है।

(३) विदेशी माध्यमके द्वारा वास्तविक शिक्षा असम्भव है।

अब हम इन दोषोंकी छानबीन करें। पहले पाठ्य-पुस्तकोंको ही लीजिए। उनमें ऐसी बातोंका अभाव होता है जिनकी जरूरत लड़कों और लड़कियोंको अपने घरेलू

जीवनमें हमेशा हुआ करती है; बल्कि उनमें वे बातें भरी रहती हैं जिनसे वे बिलकुल अपरिचित होते हैं। पाठ्य-पुस्तकोंके द्वारा लड़का यह नहीं जान पाता कि गृह-जीवनमें कौनसी बात ठीक है और कौनसी बात अनुचित। उसे ऐसी शिक्षा कभी नहीं दी जाती जिससे उसके मनमें अपने पास-पड़ोसियोंके विषयमें अभिमान जाग्रत हो। पढ़ाई-लिखाईमें वह जितना ही आगे बढ़ता जाता है वह अपने घरसे उतनी ही दूर होता जाता है — यहाँतक कि अपनी शिक्षाकी समाप्तिके दिनतक अपने आसपासवालोंसे उसका चित्त हट जाता है। गृह-जीवनमें उसे आनन्द नहीं आता। गाँवोंके दृश्योंका उसके लिए होना न होना बराबर है। उसीकी सभ्यता उसे निःसत्व, जंगली, अंधविश्वासोंसे भरी हुई और सारे अमली कामोंके लिए निकम्मी बताई जाती है। यह शिक्षा इस ढंगसे दी जाती है कि विद्यार्थी अपनी परम्परागत संस्कृतिसे विमुख हो जाये। इतना होनेपर भी, आज शिक्षित लोग राष्ट्रीयतासे जो पूरी तरह हीन नहीं हो गये हैं उसका कारण यही है कि उनके दिलमें प्राचीन संस्कृतिकी जड़ इतनी गहरी जम चुकी है कि वह, उसके विकासमें बाधा पहुँचानेवाली शिक्षाके द्वारा भी, बिलकुल नष्ट नहीं हो सकती। यदि मेरा वश चलता तो मैं अवश्य ही आजकी बहुतेरी पाठ्य-पुस्तकें जलवा डालता और ऐसी पाठ्य-पुस्तकें लिखवाता जो गृह-जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली तथा उसके अनुरूप होतीं, जिससे लड़का ज्यों-ज्यों उन्हें पढ़े त्यों-त्यों अपने आसपासके जीवनकी ओर अधिक आकर्षित होता जाये और उसमें हिस्सा लेकर उसे प्रभावित करे।

दूसरे, और देशोंके विषयमें चाहे जैसा हो, भारतमें तो, जहाँ ८० फी सदीसे भी ज्यादा लोग खेती करनेवाले और १० फी सदी उद्योग-धन्धा करनेवाले हैं, केवल साहित्यिक शिक्षा देना और लड़के-लड़कियोंको अपने आगेके जीवनमें हाथसे काम करनेके अयोग्य बना देना एक जुर्म है। मेरी तो बेशक यही धारणा है कि अब चूँकि हमारा अधिकांश समय अपनी रोजी कमानेके उद्योगमें जाता है, हमारे बालकोंको लड़कपनसे ही परिश्रमको गौरवकी दृष्टिसे देखनेकी तालीम दी जानी चाहिए। हमारे बालकोंको ऐसी शिक्षा हरगिज न दी जाये जिससे वे मेहनतको हिकारतकी नजरसे देखने लगें। कोई वजह नहीं कि एक किसानका लड़का मदरसेमें तालीम पाकर निकम्मा बन जाये और खेतोंपर काम न करे। हमारे मदरसोंके लड़के हाथका काम करना घृणित नहीं तो हेय तो समझते ही हैं। यह दुःखकी बात है। इसके सिवा, यहाँ हिन्दुस्तानमें, अगर हम यह उम्मीद करें, जैसी कि हमें जरूर करनी चाहिए, कि मदरसा जाने योग्य उम्रका हरएक लड़का और लड़की मदरसे जाये तो हमारे पास आजकी प्रथाके अनुरूप उनकी शिक्षाके लिए खर्चके साधन नहीं हैं और न करोड़ों माता-पिता उतनी फीस ही देनेकी स्थितिमें हैं जो आज लगाई जाती है। इसलिए शिक्षाको यदि अधिक व्यापक करना हो तो फीस न लगानी चाहिए। मेरा खयाल है कि आदर्श शासन-व्यवस्थामें भी हम २ अरब रुपये जो कि तमाम मदरसे जाने लायक उम्रके लड़के-लड़कियोंकी शिक्षाके लिए दरकार हैं, खर्च न कर सकेंगे। इससे यह नतीजा निकलता है कि हमारे बालक जो कुछ शिक्षा ग्रहण करें उसका सारा या अधिकांश भाग वे "परिश्रम" के रूपमें अदा करें। और ऐसा सार्वत्रिक काम जो फायदेमन्द हो,

मेरे खयालमें तो हाथ-कताई और हाथ-बुनाई ही हो सकता है। परन्तु मेरे कथनकी सिद्धिके लिए यह बात कोई महत्व नहीं रखती कि हम सूत-कताईका ही अवलम्बन करें अथवा किसी दूसरे कामको करें, बशर्ते कि उसमें लाभ होते रहनेकी गुंजाइश हो। लेकिन बात केवल इतनी ही है कि जाँच करनेपर ऐसा ही मालूम होगा कि दूसरा ऐसा कोई धन्धा नहीं है जो कपड़ा बनानेसे सम्बन्धित क्रियाओंसे बढ़कर अमली और फायदेमन्द साबित हो और जो बहुत बड़े पैमानेपर किया जा सकता हो तथा सारे हिन्दुस्तानके मदरसोंमें दाखिल किया जा सकता हो।

हमारे जैसे दरिद्र देशमें हाथसे काम करनेकी तालीमसे दुहरा काम बनेगा। एक तो उससे हमारे बालकोंकी शिक्षाका खर्च निकलेगा और दूसरे, वे एक ऐसा धन्धा सीख जायेंगे जिसका वे चाहें तो अपनी जीविकाके लिए आगेकी जिन्दगीमें सहारा ले सकते हैं। ऐसी प्रणालीसे हमारे बालक अवश्य ही आत्मावलम्बी होंगे। हम मेहनत-मजदूरीसे घृणा करना सीखें, इससे हमारा राष्ट्र जितना कमजोर होगा, उतना किसी और वस्तुसे नहीं।

अब मैं हृदयकी शिक्षाके सम्बन्धमें एक बात कहना चाहता हूँ। मैं नहीं मानता कि यह पुस्तकोंके द्वारा दी जा सकती है। यह तो सिर्फ शिक्षकके प्राणप्रेरक सहवासके ही द्वारा मिल सकती है। और, आरम्भिक तथा माध्यमिक पाठशालाओंमें भी, शिक्षा कौन लोग देते हैं? क्या उन पुरुषों और स्त्रियोंमें निष्ठा और चारित्रिक बल होता है? क्या खुद उन्होंने हृदयकी शिक्षा पाई है? क्या उनसे यह उम्मीद भी की जाती है कि वे अपने सुपुर्द किये गये लड़कों और लड़कियोंके स्थायी गुणोंपर ध्यान रखें? नीची कक्षाओंके मदरसोंके लिए मुर्दारिस तजवीज करनेका तरीका क्या शील-चारित्र्यके विकासके लिए एक बड़ी भारी बाधा नहीं है? क्या शिक्षक गुजर-बसरके लायक तनख्वाह पाते हैं? और यह बात तो हम जानते ही हैं कि प्राइमरी स्कूलोंके शिक्षकोंका चुनाव, उनमें कितनी देशभक्ति है इसे देखकर नहीं किया जाता है। वहाँ तो सिर्फ वे ही लोग आते हैं जिनकी रोटीका सहारा कहीं दूसरी जगह नहीं होता।

अब रही शिक्षाके माध्यमकी बात। इस विषयपर मेरे विचार इतने विदित हैं कि यहाँ उनके दुहरानेकी जरूरत नहीं। इस विदेशी भाषाके माध्यमने लड़कोंके दिमाग-को शिथिल कर दिया है और उनकी दिमागी शक्तियोंपर अनावश्यक बोझ डाला है। उन्हें रट्टू और नकलची बना दिया है। मौलिक विचारों और कार्योंके लिए अयोग्य कर दिया है और अपनी शिक्षाका सार अपने परिवारवालों तथा जनतातक पहुँचानेमें असमर्थ बना दिया है। इस विदेशी माध्यमने हमारे बच्चोंको अपने ही घरमें पूरा-पक्का परदेशी बना दिया है। वर्तमान शिक्षा-प्रणालीका यह सबसे बड़ा दुःखान्त दृश्य है। अंग्रेजी भाषाके माध्यमने हमारी देशी-भाषाओंके विकासको रोक दिया है। यदि मेरे हाथमें मनमानी करनेकी सत्ता होती तो मैं आजसे ही विदेशी भाषाके द्वारा अपने देशके लड़के-लड़कियोंकी पढ़ाई बन्द करवा देता, और सारे शिक्षकों और अध्यापकोंसे यह माध्यम तुरन्त बदलवाता या उन्हें बरखास्त करा देता। मैं पाठ्य-पुस्तकोंकी तैयारीका इन्तजार न करता। वे तो परिवर्तनके पीछे-पीछे चली आयेंगी। यह खराबी तो ऐसी है, जिसके लिए तात्कालिक इलाजकी जरूरत है।

विदेशी माध्यमके मेरे इस अटल विरोधके कारण ही लोग मुझपर यह अनुचित आरोप मढ़ते हैं कि मैं विदेशी संस्कृतिके या अंग्रेजी भाषा पढ़नेके खिलाफ हूँ। 'यंग इंडिया'में अक्सर मैंने यह विचार प्रतिपादित किया है कि मैं अंग्रेजीको अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और कूटनीतिकी भाषा मानता हूँ और इसलिए उसके ज्ञानको हममें से कुछ लोगोंके लिए आवश्यक समझता हूँ। 'यंग इंडिया'के पाठकोंकी नजरसे यह गुजरा ही होगा। मैं यह जरूर मानता हूँ कि अंग्रेजी भाषामें साहित्यकी और विचारोंकी अत्यन्त समृद्ध निधियाँ प्राप्त हैं। अतएव जिन लोगोंको भाषाकी ईश्वरी देन हो उन्हें उसके सूक्ष्म अध्ययनके लिए मैं अवश्य ही उत्साहित करूँगा और उनसे यह अपेक्षा करूँगा कि वे अपने देशके लिए उसकी ज्ञान-राशिको देशी भाषाओंके द्वारा प्रकट करें।

दुनियासे अलहदा रहने या उसके और अपने बीच दीवार खड़ी करनेकी बात तो मैं कदापि नहीं कहता। यह तो मेरे विचारोंसे बड़ी दूर भटक जाना है। परन्तु हाँ, यह मैं जरूर अदबके साथ कहता हूँ कि दूसरी संस्कृतियोंके गुणका ज्ञान और मान अपनी निजी संस्कृतिके गुणके ज्ञान-मानके पीछे तो अच्छी तरह चल सकता है, पर आगे कभी नहीं। मेरा तो यह निश्चित मत है कि दुनियामें किसी संस्कृतिका भण्डार इतना भरा-पूरा नहीं है जितना कि हमारी संस्कृतिका है। हमने उसे जाना नहीं है, हम उसके अध्ययनसे दूर रखे गये हैं और उसके गुणको जानने और माननेका मौका हमें नहीं दिया गया है। हमने तो उसके अनुसार चलना करीब-करीब त्याग ही दिया है। बिना आचारके कोरा बौद्धिक-ज्ञान वैसा ही है जैसा कि मोमिया लगाया हुआ मुर्दा। वह देखनेमें तो शायद सुन्दर दिखाई देता है परन्तु उसमें स्फूर्ति या प्रेरणा देनेवाली कोई भी बात नहीं। मेरा धर्म मुझे यह अनुज्ञा नहीं देता कि मैं दूसरेकी संस्कृतिको तुच्छता या अनादरकी दृष्टिसे देखूँ; उसी तरह वह इस बातपर भी जोर देता है कि मैं खुद अपनी संस्कृतिको भी मानूँ और उसके अनुसार चलूँ, क्योंकि ऐसा न करनेका अर्थ सामाजिक दृष्टिसे आत्महत्या कर लेना होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १–९–१९२१

१७. विनाशका नैतिक औचित्य

श्रीयुत एन्ड्रयूज साहबने मुझे एक बड़ा ही सुन्दर और करुणा पैदा करनेवाला पत्र लिखा है। उसे मैं यहाँ देता हूँ। आशा है, पाठक उसकी कद्र करेंगे।

मैं यह बात जानता हूँ कि आप जो विलायती कपड़ा जलाते हैं वह गरीबोंको मदद पहुँचानेके खयालसे जलाते हैं। मगर मुझे लगता है कि इसमें आपने गलती की है। अगर विलायती कपड़ोंके पूरे, या ज्यादातर बहिष्कारमें आपको सफलता मिली तो मुझे यह स्वयंसिद्ध मालूम होता है कि मिलके बने कपड़ेकी कीमत बढ़ जायेगी और इससे गरीबोंको धक्का पहुँचेगा। लेकिन इसके सिवा, यह "विदेशी" शब्द बहुत ही चुपचाप जाति-विरोधकी भावनाको उकसाता है और मैं समझता हूँ कि इसको उत्तेजना देनेके बजाय रोकनेकी ही आवश्यकता है। आपके हाथों उस भारी ढेरके, जिसमें बढ़िया-बढ़िया और सुन्दर कपड़े थे, जलाये जानेका चित्र देखकर मेरे दिलको गहरा धक्का पहुँचा। ऐसा जान पड़ता है कि जिस विशाल सुन्दर जगत्के हम एक अंग हैं उसका ध्यान हम भुला रहे हैं और स्वार्थवश होकर केवल भारतको अपना लक्ष्य बना रहे हैं। मुझे अन्देशा है कि यह वृत्ति फिरसे हमें उसी पुराने स्वार्थमूलक और अनिष्ट राष्ट्रवाद तक खींच ले जायेगी। अगर ऐसा हुआ तो हम भी उसी पापपूर्ण घेरेमें पहुँच जायेंगे — कूप-मण्डूक हो जायेंगे जिसमें से निकलनेका प्रयत्न आज यूरोप यों जी-तोड़कर कर रहा है। लेकिन मैं इस विवादको खींचना नहीं चाहता। मैं तो फिर भी यही कह सकता हूँ कि इससे मेरे दिलको धक्का लगा है और मुझे तो यह प्रायः हिंसाका ही एक रूप नजर आता है, यद्यपि मैं यह जानता हूँ कि हिंसासे आपको कितनी विरक्ति है। विदेशी कपड़ा जलानेको धार्मिक कर्तव्यका रूप देनेकी बातको मैं बिलकुल पसन्द नहीं करता।

जिस समय आप बड़े-बड़े बुनियादी नैतिक दोषोंपर — जैसे कि शराबखोरी, नशा-पत्ता, छुआछूत, जातिका घमण्ड इत्यादिपर जोरका प्रहार कर रहे थे, जिस समय आप वेश्यावृत्तिके घृणित पापको दूर करनेका प्रयत्न, अपने हृदयकी उस अनोखी और सुन्दर कोमलताके साथ कर रहे थे, तब उसे देखकर मुझे परम सुख होता था। लेकिन यह विलायती कपड़ोंकी होली जलाना और लोगोंसे यह कहना कि विदेशी कपड़ोंको पहनना पाप है, अपने ही साथी स्त्री-पुरुषों, दूसरे देशके अपने ही भाइयों और बहनोंके हाथकी बढ़िया कारीगरीको यह कहकर आगमें जला देना — कि इनको पहनना अपवित्र होना है — यह सब, मैं नहीं कह सकता कि मुझे कितना भिन्न, कितना अटपटा मालूम होता है। क्या आप जानते हैं कि अब मैं आपके दिये खद्दरको पहननेसे प्रायः चौंकता

हूँ? मुझे यह खयाल होता है कि कहीं मैं अपनेको एक "फैरिसी"की तरह यह कहते हुए कि "मैं तुझसे ज्यादा पवित्र हूँ" दूसरेसे श्रेष्ठ न समझने लगूँ। इससे पहले मेरे दिलमें कभी ऐसा खयाल नहीं उठा था।

यह तो आप जानते ही हैं कि जब-जब मेरे दिलको आपकी किसी बातसे चोट पहुँचती है तब-तब अपनी पुकार आपको पहुँचानेके सिवा मुझे कुछ और नहीं सूझता। और आपकी इस बातसे मुझे बड़ा दुःख हुआ है।

'माडर्न रिव्यू'के ये लेख जिन्हें मैं इसके साथ भेज रहा हूँ, मैंने बड़े उत्साह और हर्षके साथ लिखे थे क्योंकि मुझे यकीन हो गया था कि मैंने आपके जीवनके रहस्यका पता पा लिया है। परन्तु अब मेरा मन आपतक पहुँचकर पुकार मचाता है कि आपका यह काम हिंसापूर्ण, कुछका-कुछ और अस्वाभाविक-सा हो रहा है। जब आपने अपने भाईको कुछ बेजा काम करते हुए पाया था तब आपका प्रेम उसके प्रति और भी बढ़ गया था। उसी तरह मेरे हृदयमें भी इस समय प्रेमका भाव जोरके साथ उमड़ रहा है। मुझे बताइये कि इसमें आपका क्या हेतु है? 'यंग इंडिया'में अबतक इस सम्बन्धमें आपने जो कुछ कहा है[1] उससे मेरा जरा भी समाधान नहीं हुआ।

पत्र उनके स्वभावके अनुरूप है। जब कभी मेरे किसी कामसे उनको व्यथा होती है (और यह ऐसा पहला ही मौका नहीं है) तभी वे मुझपर इस तरह पत्रोंकी भरमार करते हैं। उत्तरका रास्तातक नहीं देखते; क्योंकि यह तो हृदयसे हृदयकी और प्रेमसे प्रेमकी बातचीत है, बहस नहीं। यह एक व्यथित मित्रके हृदयके उद्‌गार हैं। और इसका कारण है विदेशी कपड़ोंका जलाया जाना।

जो बात एन्ड्रयूज साहबने प्रेम-भरी भाषामें कही है उसीको इससे पहले बहुतसे लोग, जो मुझसे सहमत नहीं हैं, भद्दे, गुस्सा-भरे और ग्राम्य शब्दोंमें कह चुके हैं। एन्ड्रयूज साहबके शब्द प्रेम और दुःखसे भरे होनेके कारण, मेरे दिलमें गहरे पैठ गये हैं और पूरा उत्तर पानेके अधिकारी हैं। परन्तु जिन लोगोंके शब्द क्रोध-भरे थे उन्हें वैसे ही अलग रख देना पड़ा — कहीं चलते-चलते यों ही कोई बात कह दी तो भले ही। एन्ड्रयूज साहबके शब्दोंमें हिंसाका लेश नहीं है और ये प्रेमसे सने हुए हैं, इसलिए वे मुझपर असर कर गये हैं। दूसरे लोगोंके शब्द हिंसा और द्वेषसे युक्त थे, इसलिए कुछ भी असर न डाल सके और अगर मैं उलटके वैसा ही जवाब दे सकता होता या मेरी वैसा जवाब देनेकी आदत होती तो उनका गुस्सा-भरा ही जवाब मिलता। एन्ड्रयूज साहबका यह पत्र उस अहिंसाका नमूना है जो स्वराज्यको शीघ्र प्राप्त करनेके लिए आवश्यक है।

खैर; यह तो प्रसंगवश कह दिया। हाँ, विदेशी कपड़ोंको जलानेकी आवश्यकताके विषयमें तो मेरा मत अब भी वैसा ही पक्का बना हुआ है। इसकी क्रियामें जाति-विरोधपर कहीं भी जोर नहीं है। अपने परिवारमें अथवा चुने हुए मित्रोंकी मण्डलीमें

१. देखिए खण्ड २०, पृष्ठ ४५०–५२, उप-शीर्षक "विदेशी कपड़े क्यों जलायें?"।

भी मैं ठीक ऐसा ही करता। मैं जो कुछ करता हूँ या जिसके करनेकी सलाह देता हूँ उसे मैं एक अचूक कसौटीपर कसता हूँ। कसौटी यह है कि मैं अपने अजीज और नजदीकी लोगोंके सम्बन्धमें भी ठीक वही काम करूँगा या नहीं? इस विषयमें मेरे धर्मका, मेरे विश्वासोंका आदेश बिलकुल साफ है। चाहे मित्र हों चाहे शत्रु, मुझे तो सबके साथ एक ही सा रहना चाहिए। और यही विश्वास इस बातका कारण है कि मुझे अपने ऐसे कितने ही कार्योंपर यकीन होता है जिनसे अक्सर मेरे मित्र उलझनमें पड़ जाया करते हैं।

मुझे याद है कि मैंने एक दफा एक बड़ी अच्छी दूरबीनको समुद्रमें फेंक दिया था। क्योंकि उसके कारण मेरे एक प्यारे मित्रमें[१] और मुझमें बराबर बहस हुआ करती थी। पहले-पहल तो वे भी हिचकिचाये, लेकिन फिर उन्होंने समझ लिया कि हाँ, इस कीमती और सुन्दर चीजका भी नाश कर देना ठीक ही था, यद्यपि वह उन्हें एक मित्र द्वारा भेंटमें दी गई थी। अनुभवसे मालूम होता है कि बड़ेसे-बड़ा और बढ़िया तोहफा भी, अगर वह हमारी नैतिक उन्नतिमें बाधा डालता है तो जरूर ही नष्ट कर डालना चाहिए; उसमें जरा भी हिचकिचानेकी अथवा यह सोचनेकी जरूरत नहीं कि उसके बदले हमें क्या मिलनेवाला है। अगर घरकी कीमतीसे कीमती पुरानी चीजोंमें भी प्लेग-के जन्तु फैल जायें तो उन्हें "स्वाहा" कर देना क्या हमारा पवित्र कर्त्तव्य नहीं हो जाता है? मुझे याद पड़ता है कि जब मैं नौजवान था, मैंने खुद अपनी धर्मपत्नीकी प्रिय चूड़ियाँ टुकड़े-टुकड़े कर डाली थीं। क्योंकि वे हमारे बीचमें मतभेदका कारण बन गयी थी। और, अगर मुझे ठीक-ठीक याद होता है तो वे चूड़ियाँ उसकी माँ की दी हुई थीं। मैंने यह काम घृणा या द्वेषके वश होकर नहीं, बल्कि प्रेम-वश किया, यद्यपि अब अपनी पकी उम्रमें मैं देखता हूँ कि उसमें मेरा अज्ञान था; पर इस विनाशने हमको सहायता दी और हमारी जुदाई दूर की।

हाँ, अगर तमाम विदेशी चीजोंपर जोर दिया गया होता तो यह बात जातिका विरोध करनेवाली, संकीर्णतायुक्त और शरारत-भरी होती। जोर तो सिर्फ तमाम कपड़ों-पर दिया जाता है। इस मर्यादाके कारण प्रस्तुत बहिष्कार एक बिलकुल अलग चीज बन जाती है। मैं यह नहीं चाहता कि अंग्रेजी लीवर घड़ियाँ या जापानकी वार्निश की हुई लकड़ीकी सुन्दर वस्तुएँ भारतमें न आने पायें। लेकिन मुझे यूरपकी उम्दासे-उम्दा किस्मकी शराब जरूर नष्ट करनी होगी, फिर चाहे वह कितने ही परिश्रम और कितनी ही खबरदारीके साथ क्यों न बनाई गई हो। शैतानका जाल बड़ी मायाके साथ बिछा रहता है और जहाँ कार्य और अकार्यका भेद इतना सूक्ष्म रहता है कि उसका पह-चानना कठिन होता है वहाँ तो वह बहुत ही मोहोत्पादक हो जाता है, लेकिन भले और बुरेकी विभाजक रेखा तो फिर भी वैसी ही सुदृढ़ और अमिट बनी हुई है। उसकी सीमाका जरा उल्लंघन हुआ नहीं कि बस, निश्चयपूर्वक मौत समझिए।

भारतमें आज जाति-विरोध विद्यमान है। बड़ी ही कोशिशोंके बाद लोगोंके दुर्विकारों-दुर्भावोंकी गतिको रोक रखना सम्भवनीय हुआ है। आम तौरपर लोगोंके

१. हरमान कैलेनबैक; एक जर्मन वास्तुकार; दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके सहयोगी।

दिल बुरे भावोंसे भरे हुए हैं। इसका कारण यह है कि वे कमजोर हैं और अपनी कमजोरीको निकालनेका उपाय बिल्कुल नहीं जानते। उनके इसी दुर्भावको मैं मनुष्यों परसे हटाकर वस्तुओंकी ओर ले जा रहा हूँ।

विदेशी कपड़ेके प्रेम या मोहके ही कारण यहाँ विदेशियोंका आधिपत्य हुआ, मुफलिसी छा गई और इससे भी बुरा और क्या होगा कि कितने ही घरोंकी लाज भी जाती रही। पाठक, शायद, यह बात न जानते होंगे कि थोड़े ही दिन पहले, काठियावाड़के सैकड़ों "अछूत" बुनकर बम्बईकी नगरपालिकामें मेहतरोंका काम करने लगे क्योंकि उनका बुनाईका धन्धा खत्म हो गया था। और अब इन लोगोंका जीवन इतना दूभर हो गया है कि बहुतेरे लोग तो अपने बाल-बच्चोंसे हाथ धो बैठे हैं और उनका स्वास्थ्य और चरित्र, दोनों ही चौपट हो चुका है। कुछ लोग तो इतने बेबस हो गये हैं कि अपनी बेटियों और बीवियोंतक की लाजको अपनी आँखों जाते हुए देखते हैं, पर कुछ कर नहीं सकते। पाठक शायद नहीं जानते होंगे कि गुजरातमें इस श्रेणीकी बहुतसी औरतें, कोई घर-धन्धा न होनेके कारण, आम सड़कों पर काम करनेके लिए लाचार हुई हैं और वहाँ वे, किसी न किसी ढंगके दबावसे अपनी इज्जतको बेचनेपर मजबूर होती हैं। पाठक यह भी न जानते होंगे कि पंजाबके स्वाभिमानी बुनकरोंको जब कोई पेशा न रहा तो वे -- बहुत बरसोंकी बात नहीं है -- फौजमें भरती हो गये और अपने अफसरोंके हुक्मपर स्वाभिमानी और बे-गुनाह अरबोंका संहार करनेके लिए एक हथियार बन गये। और यह उन्हें अपने देशके लिए नहीं, बल्कि रोटियोंके लिए करना पड़ा। और अब इन बहके हुए भड़ैतियोंको समझाकर उनसे यह खूनी पेशा छुड़ाना कठिन मालूम होता है। जो पेशा किसी जमानेमें इज्जत और कारीगरीका माना जाता था आज वही उन्हें बदनामीवाला दिखाई देता है। जब ढाकाके बुननेवाले जुलाहे विश्वविख्यात शबनम नामकी मलमल बनाते थे तब तो वे "बदनाम" नहीं समझे जाते थे।

तो, क्या अब यह कोई ताज्जुबकी बात है जो मैं विदेशी कपड़ेको छूना पाप समझूँ? क्या उस मनुष्यके लिए, जिसका मेदा बहुत कमजोर पड़ गया है, भारी भोजन करना "पाप" नहीं होगा? क्या ऐसे खानेको उसे नष्ट नहीं कर देना चाहिए? अथवा फेंक न देना चाहिए? अगर मेरा लड़का बीमार पड़ा हो और उसे भारी भोजन करना बिल्कुल मना हो, परन्तु फिर भी वह उसे खाना चाहे तो मैं जानता हूँ कि उस समय मुझे उस अन्नका क्या करना चाहिए। उसकी हवस छुड़ानेके लिए, उसे हजम करनेकी ताकत होते हुए भी, मैं खुद उसे न खाऊँगा और उसके सामने ही उसको नष्ट कर दूँगा, जिससे कि वह खाना पाप है यह बात उसे अच्छी तरह जँच जाये।

यदि विदेशी कपड़ेका जलाना, ऊँचीसे-ऊँची नैतिक दृष्टिसे उचित ठहरता हो तो स्वदेशी कपड़ेकी कीमत बढ़ जानेकी सम्भावनासे हमें घबराना नहीं चाहिए। विदेशी कपड़ोंकी यह होली स्वदेशी कपड़ेकी उत्पत्तिको उत्तेजना देनेका अधिकसे-अधिक गतिपूर्ण उपाय है। अपनी सारी शक्ति लगाकर एक प्रचण्ड प्रयत्नके द्वारा और इस आवश्यक विध्वंसात्मक कार्यको तेजीसे पूरा करके हमें हिन्दुस्तानको उसकी मोह-निद्रासे जगाना

है। उसकी मजबूरीसे उत्पन्न सुस्तीको दूर करना है। असम 'गजेटियर'के रचयिता मि० ऐलनने १९०५ में कामरूपके विषयमें लिखा था—

> **इधर कुछ वर्षोंसे लोग विदेशी कपड़ोंको पसन्द करने लगे हैं। यह परिवर्तन ऐसा है कि जिसका समर्थन नहीं किया जा सकता; क्योंकि जो समय पहले करघोंपर बिताया जाता था उसमें अब कोई दूसरा उपयोगी काम-धन्धा नहीं किया जाता।**

असमियोंसे मैंने यह बात कही और वे बहुत नुकसान उठानेके बाद, इन शब्दोंकी सच्चाईका अनुभव करते हैं। हिन्दुस्तानके लिए विदेशी कपड़ा वैसा ही है जैसा कि शरीरके लिए विजातीय द्रव्य। हिन्दुस्तानके आरोग्य-लाभके लिए विदेशी कपड़ेको दियासलाई दिखाना उतना ही आवश्यक है जितना कि शरीर-स्वास्थ्यके लिए विजातीय द्रव्यका नाश करना आवश्यक है। एक बार जहाँ आपने स्वदेशीकी अविलम्ब आवश्यकताको स्वीकार कर लिया कि फिर विदेशी कपड़ोंका अग्निसंस्कार किये बिना छुटकारा ही नहीं है।

और न हमें इसी बातसे डरना चाहिए कि सर्वांगपूर्ण स्वदेशीकी भावनाका विकास करते हुए हम कहीं संकीर्णता और दूसरे लोगोंसे अपनेको अलग रखनेकी भावना न पैदा कर बैठें। बात यह है कि दूसरोंकी पवित्रताकी रक्षा करनेके पहले हमें स्वयं अपने शरीरको भोगसे होनेवाले विनाशसे बचाना चाहिए। भारत आज एक बिलकुल निर्जीव पिण्ड है, जो दूसरोंकी इच्छाके अनुसार संचालित होता है। आत्मशुद्धि अर्थात् संयम और त्यागके द्वारा उसमें प्राणका संचार होने दीजिए और वह स्वयं अपने लिए तथा सारी मनुष्य-जातिके लिए एक वरदानरूप होगा। पर अगर लापरवाहीके के साथ उसे भोगलोलुप, उद्धत और लोभी होने दिया गया और फिर उसका उत्थान हुआ तो वह कुम्भकर्णके सदृश केवल संहार ही करेगा और अपने तथा मनुष्यजातिके लिए शाप-रूप हो जायेगा।

और जो मनुष्य स्वदेशीमें दृढ़ विश्वास रखता है उसे "फैरिसी"की तरह खादी पहनकर ऐसा न सोचना चाहिए कि मैं औरोंसे श्रेष्ठ हूँ। "फैरिसी" तो अपने बड़प्पनके लिए सद्‌गुणोंको मानो आश्रय देता है। स्वदेशीकी दृष्टिसे खादी पहनना तो इतना स्वाभाविक होना चाहिये जैसे मनुष्यके लिए श्वासोच्छ्वास लेना। दूसरे लोग जो इसकी आवश्यकता या उपयोगिताके कायल नहीं हैं वे चाहे इसे अशुद्ध भावसे करें अथवा बिलकुल इससे दूर रहें, पर हमें तो इसे एक स्वाभाविक और नित्यकर्म की तरह करना है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १–९–१९२१

१८. पत्र : रैहाना तैयबजीको

असंशोधित

चटगाँव
१ सितम्बर, [१९२१]

मेरी प्यारी रैहाना,[1]

तुम्हारा प्यारा पत्र मिला। तुम और माताजी दोनों सही हो और मुझे जरा भी सन्देह नहीं कि तुम ज्यादा ठीक हो। माताजीने व्यावहारिक समझदारीकी बात कही है। तुमने जीवनके कटु अनुभवोंसे सर्वथा अप्रभावित अपनी अन्तरात्मामें सहज उपजी बातको ज्योंका-त्यों व्यक्त कर दिया है। परित्याग किए हुए विदेशी वस्त्र मध्यवर्गके लोगोंको नहीं दिये जा सकते। वह कोई स्वदेशी नहीं होगी। यदि लोग मुझे संत बताकर आरामसे बरतरफ कर दें तो मेरा क्या बस है? मैं जनतासे वह सब कुछ करनेको नहीं कहता जो मुझे संतके गुणोंसे विभूषित करे। मैं तो केवल लोगोंसे सैनिककी भावना अपनानेको कहता हूँ जो स्वराज्यके लिए अपरिहार्य है। यदि स्वराज्य हासिल करनेका अर्थ संत बनना है तो मैं चाहता हूँ कि हम सब संत बन जाएँ और तुम अपने मनोहारी ढंगसे माताजीके विरोधका शमन कर सकती हो। हमें बनियों जैसी नफा-नुकसान और सौदेबाजीकी भावना छोड़कर धर्म-सैनिकोंकी तरह शुद्ध त्याग करना चाहिए।

हमारे यहाँ सुन्दर रंगवाले बारीक वस्त्र पहले भी हुआ करते थे। तुम्हारी अहंतुष्टि या रुचिके लिए जो चीज जरूरी लगे उसके लिए तुम्हें काम करना चाहिए। आज तो केवल एक ही रुचि हो सकती है, दूसरी नहीं; और वह है स्वराज्यके लिए। इसके अलावा कुछ नहीं। यदि मेरा तर्क तुम्हारा समाधान कर सके तो मैं यह दायित्व तुमपर डालता हूँ कि तुम माताजीको समझाओगी और मुझे सूचित करोगी कि तुमने अपनी कपड़ोंकी अल्मारीसे सारा कूड़ा साफ कर दिया है। मैं इतवारको कलकत्ता पहुँच रहा हूँ और शायद १२ तक वहाँ रहूँगा। मेरा पता होगा: ४, पोलक स्ट्रीट।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ९६३४) की फोटो-नकलसे।

१. अब्बास तैयबजीकी पुत्री।

१९. पत्र : महादेव देसाईको

चटगाँव,
१ सितम्बर, [१९२१]

भाईश्री महादेव,

पैन्सिलसे लिखा तुम्हारा एक लम्बा पत्र मुझे मिला है। तुम्हारे इस पत्रको पढ़नेमें मुझे तकलीफ हुई। कभी-कभी पैन्सिलसे लिखे हुए अन्य लोगोंके पत्र भी मुझे प्राप्त होते हैं और उन्हें पढ़नेमें मुझे दिक्कत होती है; इससे मेरी समझमें यह आ गया है कि पैन्सिलसे लिखे हुए मेरे पत्र भी लोगोंके लिए कष्टकर होते होंगे। मुझे यह आशंका तो थी ही कि पैन्सिलसे लिखना गुनाह है लेकिन अपनी विषम स्थितिको देखते हुए मैंने यह छूट ले ली थी। लेकिन जब दूसरा कोई यह गुनाह करता है तब मुझसे नहीं सहा जाता। तुमने तो गुनाह नहीं किया है, यह मैं जानता हूँ। तुम्हें एक प्रति अपने लिए रखनी थी। बहुत बार पहली कार्बन कापी अधिक साफ होती है।

विचार बदलता हूँ।[1] तुम मुझे पहले कलकत्तेमें मिलो और बादमें देवदासको[2] बुलाओ — यही अधिक उचित जान पड़ता है। तुमने फिलहाल वहीं रहनेका निश्चय किया हो तो देवदासको तार कर देना। लेकिन मुझे ऐसा लगा कि मेरे साथ तुम सलाह-मशविरा कर लो, उसके बाद ही कुछ करना ठीक होगा; इसलिए मैं एक बिलकुल ही अलग प्रकारका तार[3] भेज रहा हूँ।

मलाबारमें जो-कुछ हुआ उसका समाचार मैंने बादमें देखा। उसके सम्बन्धमें 'यंग इंडिया'[4] के लिए एक टिप्पणी लिखकर मैंने भेज भी दी है। तुम्हें उसकी एक प्रति भेजी होती तो अच्छा होता। तुम्हारे लेख तो मुझे कलकत्ता पहुँचनेपर ही देखनेको मिलेंगे।

मालवीयजी[5] अथवा कविके मनमें मेरे प्रति कोई ईर्षा-भाव है, यह बात तो मैं स्वप्नमें भी नहीं सोच सकता। दोनोंमें भीरुता है और दोनोंको अपने विचारोंके सम्बन्धमें अभिमान है। यदि अभिमानके साथ भीरुता न हो तो अभिमानको सहन किया जा सकता है। हम जिस दृष्टिसे असहयोगको देखते हैं, असहयोगियोंके दोषोंको दरगुजर कर देते हैं वैसा ये दोनों नहीं कर सकते और इसीलिए इसका विरोध करते हैं। इसके अतिरिक्त मेरे विचारोंकी नवीनता और सरलता उन्हें भ्रमित भी करती

१. गांधीजीने यहाँ दो वाक्य लिखकर काट देनेके कारण यह लिखा है।

२. १९००–१९५७; गांधीजीके सबसे छोटे पुत्र।

३. यह उपलब्ध नहीं है।

४. देखिए अगला शीर्षक।

५. १८६१–१९४६; बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके संस्थापक; १९०९ और १९१८ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष।

है। उनके सम्बन्धमें इससे अधिक कुछ मानना मुझे तो पापरूप ही लगता है। विपिन-बाबू[1] अथवा विजयराघवाचार्यके[2] मनमें अवश्य बहुत-कुछ हो सकता है। रमाकान्तको मैं बालक मानता हूँ। ऐसा जान पड़ता है कि उसने स्वतन्त्र विचार रखनेका दावा करनेकी खातिर ही मेरा विरोध किया है। हमें उसका विचार ही नहीं करना चाहिए और पत्रकारके रूपमें मधुर टीका करनेके कामको करते रहना चाहिए। . . .[3] के सम्बन्धमें कवि और मालवीयजीके विचारोंको अवश्य बताते रहो। यह काम 'यंग इंडिया' में अधिक नहीं हो सकता लेकिन 'इंडिपेंडेंट' में आरामसे और बखूबी हो सकता है।

इन्दुके लिए हाथसे कते सूतके हार सहज ही बनाये जा सकते हैं।

तुम काफी पिओ तो इससे मुझे तनिक भी बुरा नहीं लगेगा। मेरे लिए यह ज्यादा जरूरी है कि तुम अपने स्वास्थ्यको बनाये रखो। अलबत्ता, मेरा ऐसा अनुभव है कि सामान्य रूपसे काफीकी जरूरत नहीं होती, और मैं ऐसा मानता भी हूँ। जब मैं काफी पीता था, मुझे कोई फायदा नजर नहीं आया। अब नहीं पीता, इससे भार तो कम हुआ ही है, और बला टली सो अलग।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ११४१८) की फोटो-नकलसे।

२०. मोपला उत्पात

मलाबारमें एकाएक जो अशान्ति फैल गई है उसकी थोड़ी-बहुत खबरें, यहाँ मेरे पास सुदूर उत्तर-पूर्वमें भी, आ पहुँची हैं। यह लेख मैं जन्माष्टमीके दिन रेलगाड़ीमें बैठे हुए लिख रहा हूँ। पाठकोंके हाथमें यह लेख नौ दिन बाद पहुँचेगा; तबतक और भी बातें प्रकट हो जायेंगी। तो भी जो खबरें अबतक मालूम हुई हैं उनसे निकलनेवाले सिद्धान्तोंका विचार तो, अगले समाचारोंके अनुसार तथ्योंमें कमीबेशी होनेपर भी, हम कर सकते हैं।

मोपला लोग मुसलमान हैं। उनकी नसोंमें अरब लोगोंका खून बहता है। कहते हैं कि उनके बाप-दादे, कितने ही वर्षों पहले, अरबिस्तानसे आकर मलाबारमें बस गये थे। उनका मिजाज बड़ा तेज है। वे बहुत जल्दी आवेशमें आ जाते हैं; जरा-सी बातमें बिगड़कर लड़ पड़ते हैं। उनके हाथों अनेक हत्याएँ हुई हैं। उनको वशमें करनेके लिए, बहुत बरस पहले, एक खास कानून भी बनाया गया था। उनकी आबादी दस लाख गिनी जाती है। यह जाति अपढ़ किन्तु बहादुर है। मौतका तो उन्हें डर ही नहीं। जब लड़ाईपर निकलते हैं तब पीछे पाँव न हटानेकी कसम खाकर ही निकलते

१. विपिनचन्द्र पाल (१८५८–१९३२); बंगालके शिक्षाशास्त्री, पत्रकार, वक्ता और राजनीतिक नेता।

२. १८५२–१९४३; अध्यक्ष, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, १९२०।

३. साधन-सूत्रमें यहाँ एक शब्द स्पष्ट नहीं है।

हैं। इससे, कहा जाता है कि वे मारते या खून करते जरा भी नहीं हिचकते। उन्हींके लड़ पड़नेके डरसे जनाब याकूब हसन[1] रोके गये थे और फिर कैद भी कर लिये गये थे। इस बार वे क्यों बिगड़ खड़े हुए, यह बात अभी तो साफ-साफ मालूम नहीं हुई है। कहते हैं कि उन्होंने छः सरकारी नौकरोंको मार डाला है, जिनमें दो गोरे और चार भारतीय थे। कुछ और भी मारे गये होंगे। उनमें से कोई ५०० आदमी मारे गये हैं। यह भी सुनते हैं कि उन्होंने कितने ही मकानोंको जला डाला और लूट लिया। कालीकट तथा उसके ऊपरके हिस्सेमें आजकल फौजी कानून जारी है।

इस तरह अभी मलाबारमें प्रगति रुक गई है और सरकारकी बन आई है। सरकार तो ऐसे उपद्रवोंको दबानेकी कला खूब जानती है। कितने ही बे-गुनाह लोग मर चुके होंगे और मरेंगे। सरकारको बुरा कौन कहेगा? और कहे भी तो सरकार उसे सुनने क्यों लगी?

जो अशान्तिको रोके अथवा उसका शमन कर सके वही सरकार है। मलाबारने दिखा दिया है कि हम असहयोगियोंका प्रभाव अभी पूरा-पूरा नहीं जमा। जो लोगोंको अपने वश कर सके वही सरकार है। हम तो लोगोंको एक ही रीतिसे वशमें कर सकते हैं — शान्तिसे।

अशान्तिके यानी मार-काटके द्वारा हम विजय प्राप्त करना चाहें तो भी इच्छित काम करनेकी ताकत हममें होनी चाहिए। उस शक्तिको प्राप्त करनेके लिए हमें क्या करना चाहिए, यह सोचना फिजूल है; क्योंकि इस उपायसे फतह हासिल करना हमारी बुद्धि और अनुमानके बाहरकी बात है।

पर यह तो साफ दिखाई देता है कि हमारी शान्ति भंग हो गई। दो प्रतिकूल वस्तुएँ एक साथ नहीं चल सकतीं। एक तरफसे शान्ति और दूसरी तरफसे अशान्ति हो तो इसमें किसीकी भी जीत नहीं हो सकती।

यह तो पक्की बात है कि हम मोपलाओंके ऊपर असर न डाल सके। उनके दिलोंका इतना परिवर्तन नहीं हो पाया कि जिससे वे अशान्त हों ही नहीं। उनकी अशान्ति तो हमको चौंका देनेवाली है, वह हमारी प्रगतिको रोकती है।

अब, जो लोग यह मानते हैं कि हमारी जीत शान्तिके ही द्वारा हो सकती है, उन्हें तो समझना ही चाहिए कि शान्तिकी रक्षाके लिए हमें दुगुना प्रयत्न करना होगा। हमें यह सदा याद रखना होगा कि अशान्तिको हमें अपने दिलमें भी स्थान नहीं देना है।

दूसरे प्रान्तोंको भी अपने कर्त्तव्यके पालनमें जुट जाना चाहिए। एक प्रान्त भी अगर पूरी कोशिश करे तो इसी सालमें स्वराज्य स्थापित करना नामुमकिन नहीं। अगर दूसरे प्रान्त पिछड़ जायें और सिर्फ एक ही प्रान्त पूरी तरहसे असहयोग करे तो भी मैं इसी सालमें स्वराज्य प्राप्त करना बिलकुल सम्भव मानता हूँ। परन्तु, यदि दूसरे प्रान्तोंमें अथवा किसी एक ही प्रान्तमें अशान्तिके जारी रहनेपर केवल एक ही प्रान्तके शान्त साहससे मैं यह दावेके साथ कहनेकी हिम्मत नहीं करता कि स्वराज्य

१. दक्षिण आफ्रिकी भारतीय लीगके मन्त्री।

मिल ही जायेगा। विघ्न तो मैं बहुतेरे देखता हूँ; परन्तु अपना कर्त्तव्य भी मुझे बिलकुल साफ दिखाई देता है। हमें अधिक संयम रखना है, अधिक शुद्ध होना है, अधिक जागृत या सचेत रहना है, अधिक कुरबानियाँ करना है। दोनों शक्तियोंकी दिशाऐं जुदी-जुदी हैं। इसलिए जब हमारी शान्तिका बल अधिक होगा तभी हमारी गाड़ी आगे चल सकती है। एक गाड़ीमें चार बैल हों और उनमें से एक मर जाये या छूट निकले तो उसका बोझ बाकीके तीन बैलोंको उठाना पड़ता है। परन्तु अगर चारमें से एक छूटे या मरे तो नहीं, पर विद्रोही हो जाये — उलटे रास्ते जाने लगे, तो फिर बाकीके तीन बैलोंका काम केवल इतना ही नहीं रहेगा कि एकका बोझा और उठायें, उन्हें उस उलटा चलनेवालेके उपद्रवको रोकनेकी शक्ति भी प्राप्त करनी होगी। इस तरह सच्चे असहयोगियोंका बोझ अब और भी बढ़ गया है।

मैं तो यह बराबर देखता हूँ कि हमारे रास्तेमें भारीसे-भारी विघ्न सरकारकी तरफसे नहीं, बल्कि खुद हमारी ही तरफसे आते हैं। हमारी उलटी गति, हमारी नासमझी, हमारे काममें जितनी अधिक रुकावट डालती है, उतनी सरकारकी उलटी गति हमें नहीं रोकती। यदि सरकारकी विपरीत गतिको हम समझ लें तो हम आगे बढ़ें। परन्तु, स्वयं अपनी कमजोरी और उलटी गतिके कारण हम पीछे हटेंगे। सच है, आत्मा ही हमारा शत्रु और हमारा मित्र भी है। इस शत्रुको जीतनेमें ही शान्तिमय असहयोगकी पूरी विजय है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-९-१९२१

२१. अधिवेशनकी तैयारी

बहुत वर्षोंके बाद अहमदाबादमें कांग्रेसकी बैठक फिरसे होनेवाली है। फिर इस बारका अधिवेशन भी दूसरे अधिवेशनोंसे बिलकुल अलग प्रकारका होगा। नया संविधान, नई आशा, नया युग! कारण, अगर कांग्रेस अपने सम्बन्धमें किये हुए प्रस्तावके अनुसार चलेगी — अर्थात् अगर जनता अपनी की हुई प्रतिज्ञाका पालन करेगी तो हम लोगोंको यहाँ इसलिए इकट्ठा होना है कि हम स्वराज्यका उत्सव मनायें। परन्तु ऐसा सुन्दर अवसर कहीं इन बाकीके चार महीनोंमें आ सकता है? बरसोंकी बेड़ियां कहीं एक क्षणमें टूटती हैं?

इसका जवाब इस शंकाके अन्दर ही है। अगर किसी बीमारको अच्छा होना हो तो जरूर कुछ वक्त लगता है; पर बीमारको अगर अपने मर्जका सिर्फ वहम ही हो, और मर्ज अगर जाना है तो क्षण-मात्रमें ही चला जायेगा। जब वह जायेगा तो एक क्षणमें ही जायेगा। दस साल पहले जिसने बेड़ियाँ पहनी हों उसकी बेड़ियाँ टूटनेका भी जब वक्त आता है तब क्या तोड़नेकी क्रियामें बहुत-कुछ वक्त लगता है? बस, बात सिर्फ हमारे भयके भागनेकी है। किसीकी आँखोंपर पट्टी चढ़ा दी गई और वह अन्धा बना दिया गया। तब, पट्टीके खुलते ही वह तुरन्त देखने न लगेगा

तो और क्या होगा? हाँ, अगर बन्धनको तोड़नेकी शर्तें कठिन होतीं तो कुछ ज्यादा सोचनेकी जरूरत होती। पर यहाँ तो सिर्फ तीन अनिवार्य शर्तें हैं—(१) हिन्दू-मुसलमानोंकी एकता, (२) शान्तिका पालन और (३) स्वदेशीका व्यवहार।

पहली दो शर्तोंको पालनेके लिए सिर्फ दिलके परिवर्तनकी जरूरत है। इसमें न तो इतनी पैसेकी जरूरत है, न भारी तालीम की और न तलवारकी अर्थात् पशु-बलकी। परन्तु यह लेख मैं यह बतानेके लिए नहीं लिख रहा हूँ कि स्वराज्य इस सालमें मिलेगा ही, अथवा वह किस तरह मिल सकता है। इस लेखका हेतु तो व्याव-हारिक दृष्टिसे इस बातपर विचार करना है कि कांग्रेसके आगामी अधिवेशनको सफल बनानेके लिए अहमदाबादको और गुजरातको क्या करना चाहिए।

गुजरातका कर्त्तव्य होगा कि मेहमानोंकी सुविधाओंका पूरा ध्यान रखा जाये। हम उनका समुचित स्वागत कर सके तो इस प्रसंगमें हमारा पहला और विशेष कर्त्तव्य पूरा हो गया।

हमें इसकी पूरी व्यवस्था करनी है कि मेहमानोंको रहने, खाने-पीने, नहाने-धोने, शौच-सफाई और प्रकाश आदिकी सारी सुविधायें मिल जायें।

इस वक्त हम रहने और खाने-पीनेका इन्तजाम एक ही ढंगका कर सकेंगे और वह भी हिन्दुस्तानी ढंगका। मुझे लगता है कि अधिवेशनका आयोजन जहाँ किया जा रहा है, उस जगह हम लोग अंग्रेजी ढंगसे रहनेवाले मेहमानोंके लिए कोई प्रबन्ध नहीं कर सकेंगे। हमें पहले ही से खबर दे देनी चाहिए कि जो लोग सिर्फ अंग्रेजी ढंगसे ही रहना चाहेंगे, उनकी सुविधाकी जिम्मेवारी लेनेमें हम असमर्थ हैं। उन्हें हम यहाँके होटलोंका नाम-ठाम लिखकर भेज दें, इतना ही काफी समझा जाना चाहिए।

परन्तु हिन्दुस्तानी व्यवस्था तो हमें ऊँचे दरजेकी करनी चाहिए। आजकल तो यह माना जाता है कि हिन्दुस्तानी व्यवस्थाके मानी हैं—गन्दगी और अंग्रेजी व्यवस्था-के मानी हैं—सफाई। पर नियम असलमें यह होना चाहिए कि जितनी ही अधिक सादगी उतनी ही अधिक सफाई और जितना ज्यादा ढोंग-ढकोसला, उतनी ही ऊपरी शानबान और अन्दर मैलापन। परन्तु अपने आजकलके बरतावमें हमने सादगीके साथ गन्दगीको मिला दिया है। हमें इसमें से बाहर निकलना होगा।

टट्टी-पाखानेका इन्तजाम, आम तौरपर, बहुत ही खराब होता है। हमें पाखानोंकी तादाद बहुत रखनी होगी और उनको साफ रखनेके लिए भी आवश्यक व्यवस्था करनी होगी। अगर अकेले मेहतरोंपर ही हमारा दारोमदार रहा तो हम जितनी चाहिए उतनी सफाई न रख सकेंगे। हम अगर छुआ-छूतकी बुराईसे मुक्त हो चुके हों तो हमें पाखाना साफ करनेमें कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए। पाखानोंके लिए गड्ढे खोदने होंगे और अगर हम सूखी मिट्टीके बड़े-बड़े ढेर तैयार रखेंगे तो साफ करनेमें जरा भी कठिनाई न होगी। मेरी तो सलाह यह है कि हिन्दी, उर्दू, गुजराती आदि जितनी भाषाओंमें यदि हमसे बन सके, इस विषयकी सूचनायें निकाली जायें तो वे प्रतिनिधियोंमें बाँटी जा सकेंगी।

जिस तरह पाखानोंकी, उसी तरह नहाने-धोनेकी भी समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। जिसे गरम पानी चाहिए उसे गरम पानी और जिसे ठंडे पानीकी जरूरत

हो, उसे ठंडा पानी मिलना चाहिए। इस विभागके लिए अलग स्वयंसेवक होने चाहिए।

पेशाब-घर विशेष रूपसे अलग बनाये जाने चाहिए।

मैंने अकसर देखा है कि पीनेके पानीकी व्यवस्था जैसी होनी चाहिए, वैसी नहीं होती। कामचलाऊ नलों या किसी दूसरे सस्ते उपायों द्वारा हमें उसकी ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि पानी सबको आसानीसे मिल सके। इसके सिवा, जिस तरह यह प्रबन्ध होना चाहिए कि लोगोंको आसानीसे पानी मिल सके उसी तरह नीचे ढुलनेवाले पानीके निकासका भी प्रबन्ध होना चाहिए। नागपुरमें हमने जहाँ-तहाँ पानीके गड्ढे भरे देखे थे।

खाने-पीनेकी व्यवस्थाके बारेमें भी हमें पूरा विचार करना पड़ेगा। ऐसा खयाल है कि नागपुरमें यह व्यवस्था काफी अच्छी थी। यदि हम बंगाल, मद्रास, पंजाब आदि प्रत्येक शिविरके लिए अलग रसोड़ेका प्रबन्ध कर दें तो हम बहुतेरी असुविधाओंसे बच जायेंगे। उत्तम तो यह होगा कि हम प्रत्येक प्रान्तीय कमेटीसे अभीसे उनकी आवश्यकताओंके बारेमें पूछ लें। प्रत्येक जगहसे ज्यादासे-ज्यादा कितने लोग आ सकते हैं, यह तो हम जानते ही हैं, अतः उनका प्रबन्ध कर सकनेमें हमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

एक सूचना अभीसे कर देनेकी इच्छा मुझे हो रही है। गुजरातके सब प्रतिनिधि स्वयंसेवक हो जायें। दूसरे स्वयंसेवकोंकी तो जरूरत हमें होगी ही, परन्तु गुजरातके प्रतिनिधि सेवक बनकर हर तरहके इन्तजामकी देखभाल करें और खुद सेवा लेनेका हक छोड़ दें तो हमारी मेहमानदारी बहुत चमक उठे। यदि हम चाहते हों कि कहीं भी अव्यवस्था न हो तो हम सबको पूरी तरह सेवक बन जाना चाहिए।

हमें यह आशा रखनी है कि सब मिलकर एक लाख लोग जमा होंगे और ऐसी ही आकर्षक साधन-सामग्री भी हमें जुटानी होगी।

इस समय हमने इस विषयका विचार अपनी सुविधाकी दृष्टिसे ही किया है, बाकी इसके बाद किसी अगले अंकमें करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४–९–१९२१

२२. टिप्पणियाँ

धोखेसे कैसे बचें?

मुझे जगह-जगहसे पत्र मिल रहे हैं कि लालची लोग खादीके नामसे विदेशी अथवा मिलोंका बना कपड़ा बेच रहे हैं और वे उसके दाम भी बढ़ा देते हैं। मुझे इसमें कोई आश्चर्य नहीं लगता। जब समस्त शासनतन्त्र ही धोखेकी नींवपर खड़ा है तब लोगोंसे दूसरी बातकी आशा कैसे की जा सकती है? अदालतोंमें जायें तो धोखा, दुकानोंमें जायें तो धोखा, अस्पतालोंमें जायें तो धोखा और धारासभाओंमें जायें तो वहाँ भी वैसी ही हालत। इससे बचनेके लिए ही तो असहयोग किया जा रहा है। हमारा असहयोग मनुष्योंसे नहीं, मनुष्योंके दुष्कर्मोंसे है। किन्तु एक पापसे पीछा छुड़ाने पर दूसरे पापमें फँसनेका डर हमेशा ही रहता है। और जबतक मिलोंके जैसा कपड़ा लेनेकी इच्छा रहेगी और जबतक हमारा कपड़ा खुद अपनी आँखोंके सामने नहीं बुना जायेगा तबतक धोखा खानेका भय तो रहेगा ही। इसका सबसे आसान तरीका तो एक ही है और वह यह है कि हरएक गाँव अपनी जरूरतकी खादी खुद बना ले और शहरोंके लोग वैसी ही खादी लें जो मिलोंके कपड़ों जैसी न लगे। उसपर कांग्रेसकी छाप लगी हो तो अच्छा। इतनी सावधानी रखनेपर भी धोखेका डर न रहेगा, यह नहीं कहा जा सकता। लेकिन इतना तो अनिवार्य मानकर सहन ही करना होगा। यह जानने योग्य है कि धोखादेहीकी शिकायतें सिर्फ शहरोंसे ही आ रही हैं। मुझे आशा है कि कुछ समयमें ही लोग बम्बईसे खादी नहीं मँगायेंगे, बल्कि बम्बईवासी अपनी जरूरतकी खादी आसपाससे मँगायेंगे। गाँवोंसे जो खादी आयेगी उसमें धोखेकी गुंजाइश सम्भवतः कम होगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-९-१९२१

२३. असमके अनुभव — १

देश और उसके निवासी

असमका तो मैंने सिर्फ नाम ही सुना था। जब मैं विलायतमें था तब मैंने मणिपुरकी चढ़ाईकी कहानी पढ़ी थी और तबसे मेरा यही खयाल हो गया था कि असमके लोग असभ्य और जंगली होंगे। इसीलिए मैंने 'हिन्द-स्वराज्य'में उन्हें जंगली लिखा था। यह बात असमी भाइयोंको अखरती थी। हाकिमोंने उस वाक्यका दुरुपयोग भी खूब किया। और, जिसने असमियोंको जंगली लिखा, उस अज्ञानीको भला असमी लोग भी कैसे चाह सकते हैं। परन्तु लोग तो अब मनुष्यके हृदयको परखने लगे हैं; तब यह कैसे हो सकता है कि वे निर्दोष अज्ञानपर बुरा मानें? तथापि मैंने, अपनी

इस भूलके लिए, सभामें लोगोंके सामने सबसे पहले ही माफी माँग ली। जब मैंने अपनी भूलका जिक्र किया तब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े। क्योंकि वे तो माफीकी उम्मीद ही नहीं करते थे।

असमके लोगोंको जंगली कौन कह सकता है? कहनेवाला ही मुझ जैसा जंगली होना चाहिए। जिनकी स्त्रियाँ सुन्दरसे-सुन्दर कपड़ा बुनती हैं और अपने हाथका ही बुना कपड़ा पहनती हैं, उन्हें कौन जंगली मान सकता है?

गुजरात जिस तरह हिन्दुस्तानके पश्चिममें और विन्ध्याचलके दक्षिणमें है उसी तरह असम ठेठ पूर्व और उत्तरमें है। असम हिन्दुस्तानका उत्तर-पूर्वी कोना है। वहाँसे ब्रह्मपुत्रके किनारे-किनारे तिब्बत जानेका रास्ता है और वहाँसे दक्षिणकी ओर पहाड़ोंमें से होकर ब्रह्मदेश जानेका खुश्की रास्ता है। असममें जहाँ देखिए वहाँ हरियाली-ही-हरियाली छाई हुई है। असमकी एक पहाड़ी — चीरापूँजीपर — हिन्दुस्तानमें सबसे ज्यादा वर्षा होती है। हर साल औसतन कोई ३६८ इंच पानी बरसता है। १८६१ ईसवीमें तो यहाँ ८०५ इंच पानी बरसा था और उसमें भी, अकेले जुलाई मासमें ही ३६६ इंच। साठ इंचसे कम बरसात तो यहाँ कहीं नहीं होती। इस तरह, जहाँ एक ओर बरसात और दूसरी ओर ब्रह्मपुत्र-जैसी नदी हो, वहाँ हरियालीका क्या पूछना? फिर नदीके आसपास जहाँ-तहाँ टेकड़ियाँ खड़ी हैं, इससे जहाँ-जहाँ नजर फेंकते हैं वहाँ-वहाँ बड़े ही सुन्दर और मनोहर दृश्य दिखाई पड़ते हैं।

जिस मकानमें हम लोग ठहराये गये हैं वह ठीक नदीके किनारेपर ही है। सामने नदी शान्तिके साथ बह रही है। 'शान्तिके साथ' शब्दोंका प्रयोग मैंने जान-बूझकर किया है। पानी खूब गहरा है। इससे उसमें जरा भी छलछलाहट नहीं दिखाई देती। ब्रह्मपुत्रमें इतनी ताकत है कि बड़े-बड़े स्टीमर उसमें बारहों महीने चल सकते हैं। उसके जैसी गहराई हम लोगोंमें आ जाये और उसके जैसी शान्ति हम लोगोंमें छा जाये, तो हमें स्वराज्य प्राप्त करनेमें किस बातकी देर लगे? हमें उथले पानीकी छलछलाहट नहीं चाहिए। हमें तो गहरे पानीकी शान्ति और उसमें से प्रकट होनेवाले बलकी जरूरत है।

असममें तरह-तरहके पेड़-पौधे और फल फलते हैं। चाय तो वहाँ है ही। उससे फायदा तो कौन जाने क्या हुआ है; पर नुकसानसे तो हम सब लोग परिचित हैं। असममें केले, अनन्नास, नारंगी, शरीफा इत्यादि बहुतेरे फल होते हैं। अनाजमें चावलकी फसल मुख्य है।

लोग भोले-भाले और सीधे-सादे हैं। हिन्दू-मुसलमान दोनों असमी बोली बोलते हैं। असमिया भाषा बंगलाकी बहन मानी जाती है। लिपि बंगला है। मैं ज्यों-ज्यों ज्यादा घूमता हूँ त्यों-त्यों यही देखता हूँ कि अगर हिन्दुस्तानकी सारी भाषाएँ देवनागरी लिपिमें लिखी जाया करें तो इससे हमारी राष्ट्रीयताको बहुत बड़ी ताकत मिले। लिपियाँ तो बस, दो ही हो सकती हैं — उर्दू और देवनागरी। असमिया, बंगला, पंजाबी, सिन्धी इत्यादि भाषाएँ यदि देवनागरीमें लिखी जायें, तो उनके समझनेमें बहुत ही थोड़ी दिक्कत हो, इसमें कोई शक नहीं। ऐसा होनेसे इन सब भाषाओंके पढ़नेवालोंका बहुत-सा समय बच जाये और भाषा बड़ी आसान मालूम होने लगे।

पर यह तो मैं बीचमें एक नया ही मसला छेड़ बैठा। असमके लोगोंको और लोगोंसे सुखी कह सकते हैं। उनकी जमीनको बहुत जोतना नहीं पड़ता। नदीकी धारायें जमीनको खाद देती रहती हैं। इससे लोग थोड़ी मेहनतसे ही अपनी रोजी कमा सकते हैं। असम बड़ी देर बाद अंग्रेजोंके कब्जेमें आया, जिससे उसमें 'सुधारों'का, नई सभ्यताका प्रवेश कम हो पाया है। इससे लोग अपना धन और अपनी समृद्धि कायम रख पाये हैं। असमके लोग मजदूरी तो करते ही नहीं। पर चायके खेतोंपर तो मजदूरोंके बिना काम चल ही नहीं सकता। इसलिए संयुक्त प्रान्तसे मजदूर बुलाये जाते हैं। यही कारण है कि मजदूरोंके साथ अत्याचारोंकी कितनी ही बातें सुनाई देती हैं, और इसीसे चान्दपुरके जैसी घटना घटित हो सकी।

असममें, पचास साल पहले, ऐसा जमाना था कि वहाँके लोगोंकी तमाम जरूरतें वहीं पूरी हो जाती थीं। पाठक यह जानकर खुश होंगे कि आज भी असममें हरएक औरत बुनना जानती है। अपना कपड़ा वे खुद ही बुन लेती हैं। छोटे-बड़े सब घरोंकी स्त्रियाँ बुनना जानती हैं। वे पेशेके तौरपर बुननेका काम नहीं करतीं; बल्कि घरमें जब-जब फुरसत मिल जाती है तब-तब वे बुनाई किया करती हैं। जो लड़की बुनाई नहीं जानती उसकी तो सगाई होना ही मुमकिन नहीं। जिस घरमें मैं ठहरा हूँ उसके मालिक बड़े जमींदार हैं; पैसेकी कमी नहीं; लेकिन उनकी ७० वर्षकी बूढ़ी माँ, और बहनें और पत्नी, सब कपड़ा बुनती हैं। उनकी एक दस-ग्यारह सालकी लड़की है। वह भी बुनाई करती है।

असममें रेशम भी अच्छा पैदा होता है। इससे वहाँकी औरतें रेशम और सूत दोनों बुनती हैं। उनपर अनोखे बेलबूटे भी काढ़ सकती हैं। पचास बरस पहले प्रत्येक स्त्री सूत भी कातती थी और बुनती भी थी। पर जबसे अंग्रेजी राज्य आया तबसे उसके साथ ही, विलायती सूत भी वहाँ आ पहुँचा। इसी सूतने सब-कुछ चौपट कर दिया। इसी सूतसे ललचाकर औरतोंने कातनेका काम छोड़ दिया। सौभाग्यसे यह नियम था कि जो बुनना नहीं जानती वह शादी करनेका भी हक नहीं रखती, इस-लिए बुननेकी कला कायम रह गई। जिन औरतोंको अभ्यास है उनके लिए तो कातना आसान ही है। इससे अब फिर औरतोंमें जागृति हुई है और कातनेका काम भी शुरू हुआ है। पर जिन दिनों असममें विलायती सूतका प्रवेश हुआ उन्हीं दिनों एक अंग्रेजी अवलोकनकर्त्ताने यह टीका की थी कि विदेशी सूतको अंगीकार करके इन स्त्रियोंने कुछ कमाया नहीं। क्योंकि उन्होंने कताईके बदले किसी दूसरे उद्योगकी तजवीज नहीं की।

असममें आज भी ४० हजार एकड़ जमीनमें कपास पैदा होती है। यह रुई बड़े ऊँचे दरजेकी होनी चाहिए, क्योंकि इसकी जो पूनियाँ मुझे दिखाई गई थीं उन्हें देखकर मुझे आन्ध्र देशकी पूनियोंकी याद आ गई। पूनियाँ बहुत ही साफ-सुथरी, और मुलायम थीं और उनमें कचरा नहीं था। मुझे एक कपड़ेका नमूना भी दिया गया था, वह भी इतना बढ़िया था कि प्रायः आन्ध्रके कपड़ेकी बराबरी करता था।

असममें असमिया भाषा बोलनेवालोंकी आबादी ३७ लाख है। इनमें कमसे-कम १० लाख औरतें हैं। यदि ये दस लाख औरतें हिन्दुस्तानके लिए कातें और बुनें तो

असम न केवल अपनी जरूरतका सारा कपड़ा खुद तैयार कर सकता है, बल्कि सारे हिन्दुस्तानको भी बहुत-सी खादी दे सकता है।

मालूम होता है कि असमके कांग्रेसके कार्यकर्त्ता बहुत अच्छे हैं। जिनके यहाँ मैं ठहरा हूँ वे असमके 'सेनापति' घरानेके हैं। पुराने बैरिस्टर हैं। भारी जमींदार हैं। विधानसभाके सदस्य थे। बहुत सार्वजनिक सेवाएँ की हैं। अब वे पक्के असहयोगी हैं। मन्त्री हैं — श्रीयुत बारदोलाई। वे भी पुराने वकील हैं। घरबार और जमीन-जायदाद उनके पास भी काफी है। आपने भी पूरा असहयोग किया है। असमी वकीलोंकी संख्या ७८ है। उसमें १५ लोगोंने वकालत छोड़ दी है और सबके-सब असहयोगके काममें लगे हुए हैं। उनके साथ कोई ५०० स्वयंसेवक हैं। उनमें बहुतेरे कालेज छोड़कर आये हुए विद्यार्थी हैं।

असमके लोगोंको अफीम खाने-पीनेकी बुरी टेव है। इसमें वे लाखों रुपया गँवाते हैं। कार्यकर्त्ता लोग कहते हैं कि असहयोगकी हलचलके बादसे अफीम-सेवनकी कुटेव बहुत कुछ कम पड़ गई है। कहते हैं कि उससे प्राप्त होनेवाला सरकारी कर कोई २५ प्रति सैकड़ा कम हो गया है। विलायती सिगरेट भी लोग बहुत पीते थे, पर उनमें से अब शायद ही कोई पीते हुए नजर आते हैं। जो लोग पीते हैं वे सिर्फ स्वदेशी बीड़ियाँ पीते हैं। परन्तु यह व्यसन भी हालमें तो छूटता जा रहा है। मुझे यह भी खबर दी गई है कि असहयोगके फलस्वरूप लोग अपने आप सुधार करते जाते हैं।

स्त्रियोंकी सभा

स्त्रियोंकी अलग-अलग तीन सभाएँ हुईं: — एक मारवाड़ी बहनोंकी, दूसरी असमी बहनोंकी और तीसरी बंगाली बहनोंकी। इनमें असमी और बंगाली बहनें तो अपनी कीमतीसे-कीमती विलायती साड़ियोंकी जगह सादीसे-सादी धोतियाँ पहन कर आई थीं। बहुत-सी बहनें, खादीकी साड़ी अपने पास न होनेके कारण, शर्मिन्दा हो रही थीं; मारवाड़ी बहनें तो बिलकुल विलायती कपड़े पहनकर आई थीं। परन्तु श्री जमनालालजीने[1] मुझसे कहा कि उन बहनोंने भी अब खादीकी साड़ियाँ मँगवाई हैं। इस सभामें मौलाना मुहम्मद अलीकी धर्मपत्नी[2] भी आई थीं। उनकी खादीकी पोशाक देखकर लोग बड़े खुश हुए। उनमें बोलनेकी शक्ति अच्छी है। उन्होंने खुद, बुरका ओढ़े-ओढ़े, भाषण भी दिया था।

विलायती कपड़ोंकी होली

मैं यह गोहाटीमें बैठे हुए लिख रहा हूँ। गोहाटी असमका मुख्य शहर है। कलकत्तेसे १९ घंटेका रास्ता है। यहाँ एक भारी सभा हुई थी, जिसमें विलायती कपड़ेके बड़े भारी ढेरकी होली की गई थी। उसमें मैंने कितनी ही महीन धोतियाँ,

१. जमनालाल बजाज (१८८८–१९४२); प्रसिद्ध गांधीवादी उद्योगपति; जिन्होंने गांधीजीकी रचनात्मक योजनाओंमें भरपूर सहयोग दिया; गांधीजीके निकटतम साथियों और सलाहकारोंमें से एक।

२. बेगम साहिबा; देखिए "भाषण: मद्रासमें", १५–९–१९२१ तथा "टिप्पणियाँ", २९–९–१९२१ का उप-शीर्षक "एक बहादुर स्त्री"।

पतली साड़ियाँ, टोपियाँ और लेसें देखीं। होली सुलगानेका पवित्र काम तो मेरे ही हाथों कराया जाता है। होली सुलगानेके बादका दृश्य मुझे बड़ा भव्य दिखाई दिया। सैकड़ों बारीक कमीजें और दूसरे कपड़े हवामें उड़ते हुए होलीमें गिर रहे थे। इस प्रान्तमें टोपी कम पहनी जाती है। इससे विदेशी टोपियाँ कम उछलीं। खादी तो यहाँ भी पहुँच गई है। इससे जो लोग टोपी पहनते हैं वे बहुत करके खादीकी ही पहनते हैं।

मारवाड़ी

असममें मारवाड़ी भाइयोंकी संख्या काफी अधिक है। बाहरका तमाम व्यापार उन्हींके हाथोंमें है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि आसामके लोगोंके अपने खेतोंमें फसल अच्छी होती है इसलिए वे व्यापारमें अथवा नौकरीकी झंझटमें बहुत कम पड़ते हैं। इससे व्यापारको मारवाड़ियोंने अपना लिया है और सरकारी नौकरियाँ बंगालियोंके हाथमें आ गई है। इनमें से बहुतसे मारवाड़ी विदेशी सूत और कपड़ेका व्यापार करनेवाले हैं। उनमें से कितने ही — कोई ६५ — व्यापारियोंने प्रतिज्ञा की है कि अब वे विलायती कपड़ा और विलायती सूत नहीं मँगायेंगे।

मुसलमान भाई

असममें मुसलमान भाइयोंकी आबादी बहुत बड़ी है। परन्तु फिर भी वे सार्व-जनिक कामोंमें कम हिस्सा लेते हैं। खिलाफतके मामलेका भी उन्हें पूरा ज्ञान नहीं है। पर अब उनमें भी अच्छी जागृति देखी जाती है। कहा जा सकता है कि हिन्दू नेताओंने उन्हें जगाया है। इससे यहाँ हिन्दू-मुसलमानोंमें वैर-भाव नहीं देखा जाता। मौलाना मुहम्मदअली और मौलाना आजाद सोबानीके आनेसे मुसलमानोंमें अधिक जागृति और हिम्मत आ गई है।

दूसरेके धनपर चैन

मैंने ऊपर कहा है कि गोहाटी असमका मुख्य शहर है। लेकिन गोहाटी असम-की राजधानी नहीं है। असमकी राजधानी तो शिलाँग है। गोहाटीसे कोई पाँच घंटेमें मोटरके जरिये वहाँ पहुँचा जाता है। शिलाँग समुद्रकी सतहसे ४ हजार फीट ऊँचा है। मैं वहाँ नहीं जा सका। पर कहते हैं कि वह तो केवल यूरोपीय लोगोंके ही रहनेकी जगह है। अगर शिमलामें भी बारहों मास रहनेकी सुविधा होती तो वहाँ भी केवल गरमी-भरकी राजधानी नहीं रहती, वरन् हमेशाकी हो जाती। यदि दार्जिलिंगमें लोग हमेशा रह सकते होते तो दार्जिलिंग बंगालकी बारहों मासके लिए राजधानी हो जाता। क्या बम्बई अहातेमें तीन राजधानियाँ नहीं हैं? कभी बम्बई, कभी गणेशखिण्ड और गर्मियोंमें महाबलेश्वर। परन्तु शिलाँगकी आबहवा ऐसी है कि वहाँ यूरोपीय लोग बारहों महीने मजेमें रह सकते हैं। इसलिए शिलाँग असमकी राजधानी बनाया गया है। इतने ऊँचेपर भला कहीं खेतोंमें काम करनेवाले मजदूरोंकी पुकार पहुँच सकती है? हर बातमें 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाला मामला देखा जाता है। 'प्लांटर' — बागान-मालिक — शिलाँगमें रह सकते हैं और जब चाहें तब वहाँ जा सकते हैं। उनके

मजदूरोंमें से किसीकी ताब नहीं कि वहाँ जा सके। उस बेचारेकी तो अर्जी भी शिलाँग तक पहुँचते-पहुँचते फटकर चिथड़ा हो जाती है।

कहाँ ब्रह्मपुत्र और कहाँ सरकार?

ब्रह्मपुत्र इतनी विशाल नदी है कि वह नारीसे नर — नदीसे नद हो गई है। फिर भी उसकी नम्रताका पार नहीं। हिमालयकी चोटीपर रहते हुए भी वह नीचे उतरकर लोगोंको सुखी करती है और अपनी छातीपर उठा-उठाकर हजारों मनुष्योंको और उनके माल-असबाबको एक जगहसे दूसरी जगह पहुँचाती है। इस कारण सारा असम उसकी पूजा करता है। और मुझ जैसे भारतके ठेठ पश्चिमसे आनेवाले प्राणीका भी सिर अपने-आप उसके चरणोंपर झुक जाता है। पर हमारी सरकार अपोलो बन्दरपर[1] उतरकर बे-शुमार मजदूरोंकी, भापकी और बिजलीकी मदद लेकर, नीचेसे ऊपर चढ़कर, शिमला और शिलाँगपर जाकर विराजमान होती है और वहाँसे बैठे-बैठे लोगोंको घुड़कती है। फिर लोग बेचारे भयभीत होकर "बचाओ! बचाओ!" की पुकार लगायें तो इसमें कौन ताज्जुबकी बात है? ब्रह्मपुत्र आश्वासन देता है। शिलाँगमें रहनेवाली सरकार ऊपर चढ़कर लोगोंको सताती है। इसीलिए असमियोंने सरकारकी सलामी — उसका सहयोग — छोड़ दिया है। ब्रह्मपुत्र अगर मस्तीमें आकर लोगोंके खेतों और गाँवोंको डुबोने लगे तो लोग उससे दूर हटनेके सिवा और क्या कर सकते हैं? सरकारके दावानलसे जलनेवाले लोग उससे भागें नहीं तो क्या करें? असमी लोग समझ चुके हैं कि हमारे लिए तो, बस, असहयोग ही एकमात्र राज-मार्ग है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ४–९–१९२१

२४. पत्र : एस्थर मेननको[2]

दौरेपर
४ सितम्बर, १९२१

मेरी प्यारी एस्थर,

अपने पूर्वी बंगालके दौरेसे कलकत्ता वापस लौटनेपर मैंने देखा कि तुम्हारा पत्र कई रोज पहले वहाँ पहुँच चुका था।

मैं तुम्हारे और तुम्हारे पतिके लिए सुखी और सेवामय जीवनकी कामना करता हूँ।

मैं तुम्हारे पत्रके लिए उत्कण्ठित था और जानना चाहता था कि तुम कैसी हो।

१. बम्बईमें।

२. यह पत्र एस्थरको डेन्मार्कमें ई० के० मेननके साथ उनके विवाहका समाचार सुननेके पश्चात् लिखा गया था।

मेरी समझमें नहीं आता कि तुम्हें 'यंग इंडिया' क्यों नहीं मिलता है। मैं पता लगा रहा हूँ।

जब तुम भारत लौटोगी, तब तुम्हें आश्रमके अन्दर अधिकांश समय धुनने, कातने-बुननेमें व्यतीत होता दिखाई देगा। यदि डेन्मार्कमें हाथकी कताई-बुनाईका काम होता हो तो मेरी इच्छा है कि तुम वहाँकी यह कला सीख लो।

ईश्वर महान है। हम जो प्रयत्न कर रहे हैं उनसे नहीं, किन्तु उसकी कृपासे इसी साल स्वराज्य पाना सम्भव हो सकता है। और तब तुम बिना रुकावट वापस आ सकोगी।[1] स्वराज्य पानेके लिए जितनी दृढ़ताकी जरूरत है उतनी ही उसे स्थापित करनेमें भी होगी। एन मेरीको[2] स्वराज्य प्राप्तिके लिए यहाँ काम करने दो और तुम वहाँ इसको सफल बनानेके लिए काम करती रहो।

तुम दोनोंको प्यारसहित,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

२५. पत्र : सरदार वल्लभभाई पटेलको

१४८ रसा रोड,
कलकत्ता
मौनवार [५ सितम्बर, १९२१][3]

भाईश्री वल्लभभाई,

आपका पत्र मिला। मैं दर्शकोंके बारेमें 'यंग इंडिया'[4] में लिखूँगा।

मेरा जी तो वहाँ आनेके लिए तड़प ही रहा है। मगर यहाँसे छुट्टी नहीं मिल सकती। मद्राससे राजगोपालाचार्यका[5] तार आया है कि उनका तार मिलनेके बाद ही मैं यहाँसे रवाना होऊँ। १२ तारीखतक मुझे यहाँ काम भी है।

बंगालमें स्वदेशीका काम शिथिल हो गया है। चरखे जरूर ठीक चले हैं। मगर सूतका वजन रखने और खादीपर ध्यान देनेका काम कम हुआ है।

१. कुछ समयके लिए ब्रिटिश सरकारने एस्थरको भारत लौटनेकी अनुमति देनेसे इनकार कर दिया था।

२. एन मेरी पीटर्सन, जिन्होंने एस्थरके साथ दक्षिण भारतमें काम किया था; वे कुछ समयतक साबरमती आश्रममें रहीं थीं।

३. महादेव देसाईके नाम, २२-८-१९२१ के पत्रमें दिये गये कार्यक्रमके अनुसार गांधीजी कलकत्ता ४ सितम्बर, १९२१ को पहुँचनेवाले थे और वहाँ १२ सितम्बरतक ठहरनेवाले थे। इस अवधिमें मौनवार ५ सितम्बरको ही था।

४. देखिए "टिप्पणियाँ" २२-९-१९२१ का उप-शीर्षक "कांग्रेस-अधिवेशन कोई तमाशा नहीं"।

५. चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य; (१८७९-); राजनीतिज्ञ, १९४८ में पहले भारतीय गवर्नर-जनरल।

ऐसा लगता है कि इस महीनेके लिए कानून-भंग रुक सके तो अच्छा। दिल्ली [के प्रस्ताव] की शर्तके अनुसार भी जितना धरना दिया जा सके उतना भले दिया जाये। जब हम कानून तोड़ें, तब जान हथेलीपर लेकर ही तोड़ें, यह ज्यादा ठीक लगता है। एक बार हमारी मण्डलीके साथ मेरी चर्चा हो जाये, तो मुझे ज्यादा पता चलेगा। फिलहाल स्वदेशीपर — विदेशी कपड़ेका बहिष्कार और खादीकी उत्पत्ति इन दोनों अंगोंपर — खूब ध्यान दिया जाये तो अच्छा।

आपके पत्रसे मान लेता हूँ कि आजकल वहाँ विद्यापीठमें कोई झगड़ा नहीं चल रहा है।

अपनी तबियत सँभालकर रखना। दिसम्बरतक बहुत काम करना है। हिन्दुस्तानका चेहरा तो जरूर बदलेगा। सिंह होगा या सियार, यह या तो ईश्वरके हाथ है या हमारे।

वाइसरायके भाषणसे मेरा मोह तो और भी कम हो गया है। युवराज अगर राजनीतिक कामसे नहीं आ रहे हैं तो किसलिए आ रहे हैं और किसके खर्चसे? परन्तु इसका हमें अभी विचार ही नहीं करना है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

भाईश्री वल्लभभाई पटेल, बैरिस्टर
भद्र, अहमदाबाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – २: सरदार वल्लभभाईने

२६. पत्र: मणिबहन पटेलको

कलकत्ता
मौनवार [सितम्बर ५, १९२१][1]

चि० मणि,

अभी-अभी तुम्हारा पत्र मिला। मेरी माँग तो पहननेके ही कपड़े जलानेकी है। किसीके घर विलायती जाजमें वगैरा रखी हैं, कोचोंपर विदेशी कपड़े चढ़े हैं — ये सब अधिकांश लोग नहीं देंगे। इसलिए उनकी माँग नहीं की। ऐसी कोई नई चीज वे अब न लें तो उतना काफी है। हमें पहननेके कपड़ोंकी ही माँग करनी है। मैं 'नवजीवन' में लिखूँगा।

पर्युषणमें उपासरे[2] जाना तय किया, वह अच्छा है। इन बहनोंमें से कोई अपने कपड़े देती है?

१. देखिए पिछला शीर्षक।
२. जैन साधुओंका निवास-स्थान।

१२ तारीखतक तो कलकत्तेमें रहना है। बादमें क्या करना है यह सोचूंगा।

बेजवाड़ाकी साड़ियोंमें अब धोखा जरूर घुसा होगा। अच्छा यही है कि उन्हें हाथ ही न लगाया जाये।

कुमुदबहनको पत्र भेजा सो अच्छा किया। पत्र लिखते रहनेसे उन्हें आश्वासन मिलेगा।

कल बहुत करके महादेव आकर मुझसे मिल जायेंगे।

यहाँ भी तुम्हारी ही उम्रकी केवल खादी ही पहननेवाली और खूब उत्साही दो बहनें हैं। वे अभी देशबन्धु दासकी[1] बहनको उनके नारी-मन्दिरमें मदद दे रही हैं।

मोहनदासके आशीर्वाद

चि० मणिबहन,
द्वारा भाई वल्लभभाई पटेल बैरिस्टर,
भद्र, अहमदाबाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने

२७. भाषण : पंजाब-सभाकी बैठकमें

कलकत्ता,
७ सितम्बर, १९२१

खालसा दीवान एसोसिएशनके ६२, शम्भुनाथ पण्डित स्ट्रीट, भवानीपुर स्थित ठिकानेपर बुधवारकी शामको पंजाब-सभाके तत्वावधानमें एक सभा हुई। लाला मेघराज जयने सभाकी अध्यक्षता की। लोग बहुत बड़ी संख्यामें एकत्र हुए थे, जिनमें अधिकांश सिख थे। कुछ मारवाड़ी तथा कुछ सिख स्त्रियाँ भी थीं।

श्री गांधीने अपने भाषणके दौरान कहा कि पिछली बार जब म कलकत्ता आया था तब मैंने लोगोंसे तिलक स्वराज्य कोषमें दान देनेकी अपील की थी। और देशभरके कल्याणार्थ तत्काल उसकी अनुकूल प्रतिक्रिया हुई जिसे देखकर मुझे खुशी हुई थी। श्री गांधीने कहा कि मैं चाहता हूँ कि विदेशी कपड़े या तो जला डाले जायें या स्मर्ना भेज दिये जायें। उन्होंने लोगोंसे विदेशी वस्तुओंका पूर्ण बहिष्कार करनेका आग्रह किया और श्रोताओंसे कहा कि आप लोग हाथके कते अर्थात् चरखेके सूतसे बुने कपड़े पहना कीजिए। उन्होंने कहा कि यदि सभी लोग स्वदेशी वस्त्र पहननेकी पूरी चेष्टा करें तो मैं सारे भारतके लोगोंको 'स्वराज्य' दिलाने और

१. चित्तरंजन दास (१८७०–१९२५); वकील, वक्ता और लेखक, कांग्रेसके गया-अधिवेशनके अध्यक्ष, १९२१।

खिलाफत तथा पंजाबके सम्बन्धमें सरकार द्वारा किये गये अन्यायोंको दूर करानेको तैयार हूँ। इसी आशयका प्रस्ताव कांग्रेस कमेटी और खिलाफत समिति, दोनोंने ही, पास किया है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने इस आशयका भी एक प्रस्ताव पास किया है कि इसी ३० तारीखसे पहले ही विदेशी वस्तुओंका पूर्ण बहिष्कार हो जाना चाहिए और लोगोंको अपने ही देशमें बने कपड़े पहनने चाहिए। श्री गांधीने श्रोताओंसे कहा यदि आप लोग वास्तवमें देशकी भलाई चाहते हैं तो उक्त प्रस्तावको कार्यान्वित करें। आगे बोलते हुए श्री गांधीने कहा कि मैं जानता हूँ कि सिख समाज एक बहुत ही सशक्त समाज है। यदि इस समाजके लोग सचमुच अपने कामको निष्ठा और लगनके साथ करेंगे और चरखेको अपनायेंगे तो मेरे मनमें इस बातका जरा भी सन्देह नहीं कि वे न केवल अपने समाजको वरन् सारे भारतके लोगोंको जरूरत-भरका कपड़ा दे सकेंगे। मैं चाहता हूँ कि आप लोग अहिंसात्मक असहयोगके सिद्धान्तका समग्र रूपसे पालन करें और किसी हालतमें भी कोई ऐसा तरीका न अपनाएँ जिसका परिणाम हिंसा हो। उन्होंने ननकाना साहबकी दुखद घटनापर[1] बहुत ही खेद व्यक्त करते हुए कहा कि यह घटना पंजाबकी घटनासे भी ज्यादा निन्दनीय और खून खौलानेवाली है। सिखोंने इसे जिस रूपमें लिया है वह स्वाभाविक ही था। मैंने उनकी सभाओंकी रिपोर्ट पढ़ी है और उनके बारेमें सुना भी है, परन्तु उनसे मेरा निवेदन यह है कि वे उन सब घटनाओंको भूल जायें। यह सच है कि शहरोंने जो पाप किया है उसका प्रायश्चित्त नहीं है। और सामान्यतः यही माना जा रहा है कि उन अन्यायोंका एकमात्र निराकरण यही है कि उन अधिकारियोंको दण्ड दिया जाये। श्री गांधीने कहा कि मैं उन्हें दण्ड दिया जाना पसन्द नहीं करता। मेरी रायमें केवल भगवान ही उन्हें दण्ड देनेका अधिकारी है। अन्तमें श्री गांधीने सिखोंको सलाह दी कि जिस महान कार्यमें आप लगे हुए हैं उसे शान्तिपूर्वक पूरा करनेका प्रयत्न करें।

मौलाना आजाद सोबानी और लाला लाजपतरायने[2] भी असहयोग और बहिष्कारपर भाषण दिया।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ९-९-१९२१

१. देखिए खण्ड १९, पृष्ठ ४०१-४।

२. लाला लाजपतराय (१८६५-१९२८); समाज सुधारक, लेखक और राजनीतिक नेता; १९०७ में निष्कासित; सर्वेन्ट्स आफ पीपुल्स, सोसाइटीके संस्थापक; १९२० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष।

२८. मारवाड़ी व्यापारियोंसे बातचीत

७ सितम्बर, १९२१

श्री गांधीने १२४ कैनिंग स्ट्रीट, कलकत्तामें रातके समय कपड़ेके व्यापारियोंकी सभामें चर्चा की। यह बातचीत आधी राततक चलती रही। श्री गांधीने उनसे आग्रह किया कि वे विदेशी कपड़ा न बेचें और इस सम्बन्धमें कोई नया अनुबन्ध न करें। व्यापारियोंने बताया कि वे पहले ही मारवाड़ी उद्योग-मण्डल द्वारा पास किये गये उस प्रस्तावके अनुसार काम करनेको सहमत हो चुके हैं, जिसमें साफ-साफ कहा गया है कि ३१ दिसम्बर, १९२१ तक वे विदेशी कपड़ा नहीं खरीदेंगे। श्री गांधीने उनसे यह वादा करा लेना चाहा कि वे अब और विदेशी कपड़ा बिना किसी समय-सीमाके नहीं खरीदेंगे। तथापि महात्मा गांधीने उन्हें इस मामलेपर विचार करनेके लिए और समय दिया और १३ तारीख, जिस दिन वे कलकत्ता छोड़नेवाले थे, से पहले उनके बीच भाषण देनेका वचन दिया।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ९-९-१९२१

२९. टिप्पणियाँ

अली भाइयोंपर मुकदमा

अली भाइयोंपर मुकदमा चलनेकी अफवाह फिरसे उड़ी है। मुझे उम्मीद है कि यह खबर गलत होगी। अगर सरकार दरअसल यह चाहती हो कि उसके और प्रजाके बीचका यह मामला गुण-दोषके आधारपर तय हो और इसके लिए लोकमतको परिपक्व बनने दिया जाये तो उसे अली भाइयोंको नहीं छेड़ना चाहिए। परन्तु अगर उनपर मामला चलाया ही जाये और उन्हें कैदकी सजा हो जाये तो भी मुझे आशा है कि लोग अपनी शान्तिको डिगने न देंगे, और अपनी बातपर दृढ़ताके साथ डटे रहेंगे। अलबत्ता, उनके कैद हो जानेसे शान्तिकी रक्षाका काम पहलेसे भी ज्यादा मुश्किल हो जायेगा। इन दो देशभक्त भाइयोंने मुसलमानोंकी तबीयतको जितनी कामयाबीके साथ भड़कनेसे रोका है उतना और किसीने नहीं। क्या मौका और क्या बेमौका, क्या खानगीमें और क्या आम लोगोंमें, हर जगह और हर स्थानपर उन्होंने 'अहिंसा' का ही उपदेश किया है और खुद भी उसके पाबन्द रहे हैं। यहाँतक कि अपने उन भाषणोंमें भी, जिनके कुछ अंशोंके मानी हिंसाके पक्षमें लगा देनेका अन्देशा हो सकता है, मैं कह सकता हूँ कि उनका मतलब हिंसासे हरगिज नहीं था। ऐसी दशामें अली भाइयोंपर मुकदमा चलानेके मानी यही होंगे कि सरकार हिन्दुस्तानमें

दिन-ब-दिन बढ़नेवाले खिलाफत-आन्दोलनका गला घोंट देना चाहती है। यह तो सरासर सारे मुसलमानोंको और मुसलमानोंको ही क्यों, सारे हिन्दुस्तानको सीधी चुनौती देना है; क्योंकि खिलाफतका सवाल अब सारे हिन्दुस्तानका मसला हो गया है। अब यह महज मुसलमानोंकी ही शिकायत नहीं रह गया है।

लेकिन यह लिखनेमें मेरा आशय सरकारको उतना नहीं जितना लोगोंको सचेत कर देनेका है। अगर लोगोंने अली भाइयोंके सन्देशका मर्म समझ लिया हो तो उन्हें अपने मजहबके लिए, और अपने मुल्कके लिए, सरकारके द्वारा चाहे जितना उकसाये जाने पर भी शान्त बने रहना चाहिए। उन्हें अपने देश और धर्मके लिए हद दर्जेतक कष्ट सहन करना चाहिए। उनका सन्देश यह है कि हिन्दुओं और मुसलमानोंका हित एक दूसरेमें मिला हुआ है; उन्हें साथ-साथ तैरना या साथ-साथ डूबना होगा। उन्हें फौलादकी तरह पक्के रहना होगा और शेरकी तरह बहादुरी दिखानी होगी और चाहे वे फाँसीपर क्यों न चढ़ा दिये जायें, जिस बातको वे सत्य समझते हैं उसे कहे बिना कभी न रहेंगे। ऐसे वक्तमें लोग अली भाइयोंकी जो बड़ीसे-बड़ी इज्जत कर सकते हैं वह यह है कि असहयोगके कार्यक्रमके एक-एक अक्षरका अनुसरण करें और इसी सालके भीतर स्वराज्य प्राप्त कर लें। उनके जेल जानेपर गुस्सा दिखाना सिवा पागलपनके और कुछ न होगा। हमने हिम्मतके साथ यह इरादा जाहिर किया है और इस बातकी तैयारी की है कि इस मौजूदा शासन-प्रणालीको नेस्तनाबूद कर दें और उसके हाकिमों और अफसरोंको चुनौती दी है कि वे हमारे लिए बुरेसे-बुरा जो कर सकते हैं, करें। ऐसी हालतमें अगर वे हमारी चुनौतीको स्वीकार कर हमारे साथ संजीदगीसे पेश आयें तो न हमें ताज्जुब करनेकी जरूरत है, न गुस्सा करनेकी। क्योंकि किसी-न किसी दिन या तो यह मानकर कि हम जो कहते हैं वैसा करनेका इरादा भी रखते हैं, उन्हें हमें उस परीक्षाकी आँचमें, जिसे हम खुद ही बुला रहे हैं, तपाना होगा और या हमारी मर्जीके मुताबिक उन्हें सुधार करना होगा। अगर, इस तरह हम अपनी ही बनाई तराजूपर तौले गये और हलके साबित हुए तो मतलब यह होगा कि हमने इस खेलके नियमोंको बुरी तरह तोड़ा। इसलिए, जब कभी कोई गिरफ्तार हो तो उस हालतमें असहयोगियोंके पास सिर्फ एक ही इलाज है और वह है असहयोग-के कार्यक्रमको पूरा करनेमें दूने उत्साह और दूनी सरगर्मीके साथ अपनी ताकतोंको लगाना। अर्थात् वे विलायती कपड़ेका बहिष्कार कर दें और अपनी जरूरत-भरका कपड़ा अपने ही घरोंमें तैयार करें। हाँ, हड़तालें तो हरगिज न की जायें।

श्री पेण्टर गुजरातपर थोपे जा रहे हैं

मैंने अभी-अभी सुना है कि श्री पेण्टरको जिन्होंने धारवाड़के लोगोंको अपने क्रूर व्यवहारसे दुःखी करके काफी कुकीर्ति कमाई है[1] तरक्की दी जानेवाली है और उन्हें कमिश्नर बनाकर गुजरातपर थोपा जा रहा है। एक ऐसा सरकारी अधिकारी जिसने जनताकी निगाहमें अपनी प्रतिष्ठा खो दी है, सरकारसे अपनी प्रशंसनीय सेवाओंके लिए इनाम पाता है — इसे विडम्बना ही कहना चाहिए। मैं आशा करता हूँ कि

१. देखिए "टिप्पणियाँ", १–९–१९२१ का उप-शीर्षक "खादीके नाशका प्रयत्न"।

धारवाड़के इस कलेक्टरको गुजरातपर थोपकर उसका जो अपमान किया जा रहा है, गुजरात उसके खिलाफ समुचित ढंगसे अपनी नाराजी व्यक्त करेगा। अगर यह नियुक्ति सचमुच की जाती है तो गुजरातको यह दिखानेका एक अद्वितीय मौका मिलेगा कि असहयोगकी भावनाके अनुसार ऐसे किसी अपमानका जवाब किस तरह दिया जा सकता है। हमें व्यक्ति और कमिश्नरमें फर्क करना चाहिए। हमें कमिश्नरका तो बहिष्कार करना है किन्तु व्यक्तिके रूपमें श्री पेण्टरको अपनी सेवा अवश्य देनी है। इसलिए शारीरिक आराम और सुविधाकी दृष्टिसे एक व्यक्तिके रूपमें श्री पेण्टरको समुचित मर्यादाके भीतर जिन वस्तुओंकी आवश्यकता हो सकती है, वे वस्तुएँ तो हम उन्हें लेने देंगे लेकिन अपने पद और उसकी शानकी रक्षाके लिए, अगर जनता हमारे साथ है तो, उन्हें एक तिनका भी नहीं मिलेगा। इसलिए हमें लोगोंको यह सिखाना होगा कि वे कमिश्नर पेण्टरको सलाम करनेसे इनकार कर दें। वे कमिश्नरको अर्जियाँ न भेजें। कमिश्नरकी तरह जब वे देहातोंका दौरा कर रहे हों तो लोग उन्हें किसी भी तरहकी सुविधा न दें। शान्तिपूर्वक और शिष्टतापूर्वक हमें उन्हें यह महसूस करा देना है कि सरकारी अधिकारीके रूपमें गुजरातमें लोग उन्हें पसन्द नहीं करते। जिन नगरपालिकाओंमें असहयोगी हों उन्हें श्री पेण्टरको कमिश्नरके रूपमें किसी तरहकी मान्यता नहीं देनी चाहिए। अगर हममें सच्ची स्वतन्त्रताकी भावना और पुरुषोचित वीरता आई है तो हम एक ऐसे अधिकारीको कदापि सहन नहीं करेंगे जिसने लोगोंका आदर खो दिया है। श्री पेण्टरने यह आदर खो दिया है। उदाहरणके लिए, यदि हमारे ऊपर कर्नल फ्रैंक जॉनसन या कर्नल डायर[1] थोप दिये जायें और हम इसे सह लें तो हमारे बारेमें क्या कहा जायेगा। स्वशासनकी अपनी क्षमता प्रमाणित करनेके लिए हमें कुछ कठिन परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होना चाहिए। एक परीक्षा यह है कि हम राष्ट्रीय अपमानकी कोई बात सहनेसे इनकार करें। सच तो यह है कि यदि यह क्षमता काफी मात्रामें हम प्राप्त कर चुके होते तो मैं उन कर्मचारियोंसे, जिन्हें सीधे श्री पेण्टरके नियंत्रणमें काम करना होगा, इस परिस्थितिके खिलाफ अपना विरोध जाहिर करनेके लिए इस्तीफा दे डालनेकी उम्मीद करता। हमें अपनी जीविकाके चले जानेका भय इतना ज्यादा है कि राष्ट्रीय अस्तित्वके लिए जो स्वाभिमान जरूरी होता है उसकी अपेक्षा नौकरीमें लगे हुए अपने देशवासियोंसे हम अभी कर ही नहीं सकते; उनमें तो यह भावना सबसे बादमें ही आयेगी। लेकिन यदि जनतासे हमें अपनी माँगका पर्याप्त उत्तर मिला तो इसी वर्षमें स्वराज्यकी प्राप्तिके हमारे ध्येयमें नौकरीवालोंकी अनिच्छाके कारण कोई खास बाधा नहीं आयेगी। समय आ गया है जब कि लोगोंको व्यक्तिशः और संघशः अपने अधिकारोंका आग्रह करना चाहिए; उनकी रक्षाके लिए अपनी ताकत लगानी चाहिए। और हमें अपने इस संघर्षका आरम्भ, अगर यह अधिकारी आता है तो, जिस समय वह अहमदाबाद आये उस समय, शहरमें सम्पूर्ण हड़ताल मनाकर करना चाहिए; अलबत्ता हड़ताल बिलकुल अनुशासित होनी चाहिए।

१. रेजिनाल्ड एडवर्ड हैरी डायर (१८६४–१९२७); अमृतसर क्षेत्रके कमाण्डिंग आफिसर जिन्होंने जलियाँवाला बागमें एकत्र हुई शान्त जनतापर गोलियाँ चलानेका हुक्म दिया था।

और चूँकि अभी काफी समय है इसलिए इस उद्देश्यको ध्यानमें रखकर गुजरातकी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीको कांग्रेसकी कार्यकारी समितिसे इस बातकी इजाजत ले लेनी चाहिए कि यदि श्री पेण्टर अधिकारीकी हैसियतसे गुजरात भेजे जाते हैं तो प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी सारे गुजरातमें हड़ताल करा सकती है। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि यदि यह हड़ताल जरूरी हो जाये तो वह सर्वथा स्वेच्छाप्रेरित होनी चाहिए। मजदूर लोग उसमें मालिकोंको पूर्व-सूचना देकर और उनकी अनुमति लेकर ही शामिल हों।

ढोंगका पर्दाफाश

सरकारी चिट्ठियाँ अभीतक अपनी बात बिना किसी रुकावटके नपे-तुले ढंगसे पेश करती रही हैं; यह उनकी एक विशेषता रही है। अधिकारीका मंशा बुरा-भला कहनेका, रोष दिखानेका रहा हो, तो भी ऐसा खुलकर कभी नहीं किया गया; उसे अत्यन्त संयमित भाषामें लपेटकर ही प्रस्तुत किया गया है। लेकिन अधिकारियोंने अब इस नकाबको उतार फेंका है और इसके बजाय कि उनका अभिप्राय उनके कार्योंके द्वारा ही प्रकट हो वे भी सामान्य मनुष्योंकी तरह अपनी खुशी और नाराजी खुलकर शब्दोंमें व्यक्त करने लगे हैं। यह फर्क मैंने असम प्रदेशके सरकारी अधिकारियोंके पत्र-व्यवहारमें तो देखा ही था लेकिन इसका बहुत ही उचित उदाहरण गुजरातमें भी मिला है। 'प्रजाबन्धु' पत्रके सम्पादकने नमक और आबकारीके डिप्टी कमिश्नरको एक पत्र लिखा था जिसमें उन्होंने उनका ध्यान उनके मातहतों द्वारा धरना रोकनेके सिलसिलेमें बरती गई अनियमितताओंकी ओर खींचा था। सम्पादकके इस पत्रमें ऐसी कोई बात नहीं थी जो बुरी लगे। उन्होंने सीधी सरल सभ्य भाषाका ही उपयोग किया था। कोई विवाद खड़ा करनेकी कोशिश नहीं थी; सिर्फ एक सवाल पूछा था। लेकिन डिप्टी कमिश्नर तो धरनेसे नाराज हुए बैठे थे; उन्हें अपने दिलका गुबार निकालनेका मौका मिल गया और वह उन्होंने इस तरह निकाला:

> आपने मुझे अपने अखबारका उद्धरण भेजा है और आग्रहपूर्वक जवाब चाहा है इसलिए जवाब भेजता हूँ। [शराबकी दूकानोंपर] धरना देनेका आपका यह तथाकथित अभियान सरकारको नुकसान पहुँचानेके घोषित उद्देश्यसे ही किया जा रहा है; उसे जनताके हितकी दृष्टिसे किये जा रहे सामाजिक कार्यका नाम नहीं दिया जा सकता। यह तो हाथीको नहलाने-जैसी बात है। मेरी जानकारी तो यह है कि आपके इस अभियानमें हिस्सा लेनेवालोंकी — धरना देनेवालों-की — हिंसाके कारण अहमदाबादके आबकारी विभागके कर्मचारी, जिन्हें अपना सामान्य कर्त्तव्य तो करना ही पड़ता है, शान्ति और व्यवस्था बनाये रखनेके काममें इतने ज्यादा व्यस्त हो गये हैं कि अनुमति-पत्रोंकी शर्तोंके प्राविधिक भंगसे सम्बन्धित आपकी शिकायतोंकी जाँच-पड़तालके लिए उनके पास समय ही नहीं बचता। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि आप यह शिकायत (जिसे विभाग निरा-धार मानता है) सरकारी अधिकारियोंको और ज्यादा हैरान करनेके लिए ही कर रहे हैं और मैं ऐसे किसी प्रयोजनकी सिद्धिके लिए तो अपनी सत्ताका

उपयोग कदापि नहीं करूँगा। हाँ, आपका हेतु इससे भिन्न हो तो अपने अनुयायियोंके आपत्तिजनक व्यवहारका नियन्त्रण करनेके बाद आप अपनी शिकायत पुनः पेश करें।

मैं तो इतना ही कहूँगा कि सम्पादक न तो धरनेका अभियान चला रहा है और न उसके कोई अनुयायी हैं। उसने तो शराबकी बिक्रीसे सम्बन्धित कानूनका शराब बेचनेवालोंके द्वारा जो भंग हो रहा था, और जो प्राविधिक न होते हुए भी गम्भीर है, उसकी ओर ध्यान खींचकर अपने सामाजिक कर्त्तव्यका पालन ही किया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८–९–१९२१

३०. खिलाफतका अर्थ

खिलाफतके सवालमें मैं जो दिलचस्पी लेता हूँ, उसके विरुद्ध मुझे दूर-दूरसे चेतावनी-भरे पत्र मिलते रहते हैं। ऐसा ही एक पत्र नीचे दे रहा हूँ, जिसे न्यूज़ीलैंडसे एक पुराने मित्रने लिखा है:

ये चन्द लाइनें यह बतानेको लिख रहा हूँ कि मैं आपको भूला नहीं हूँ। अगर ऐसा कोई खतरा होता भी, तो हमारे समाचारपत्रोंमें जो तार अक्सर छपते रहते हैं, वे मुझे आपको भूलने न देते। मैं देखता हूँ आपके सामने भारतकी एक बहुत बड़ी समस्या है, जिसे हल करनेकी आप कोशिश कर रहे हैं। उसका मुकाबला आप सबसे अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण ढंगसे कर रहे हैं या नहीं, मैं नहीं कह सकता, क्योंकि मैं इसका फैसला करनेकी स्थितिमें नहीं हूँ। मैं १० शिलिंगका पोस्ट आफिस ऑर्डर संलग्न कर रहा हूँ। आपका अखबार, मेरा खयाल है उसका नाम 'यंग इंडिया' है, यदि अंग्रेजीमें छपता हो तो यह रकम आप उसके प्रकाशकको दे दें। अन्यथा, अंग्रेजीका जो भी अखबार आपके पक्षका प्रतिपादन करता हो, उसके प्रकाशकको दें दे तो आभार मानूँगा। सम्भव है, मैं जो-कुछ कहूँ वह पूरी जानकारीपर आधारित न हो, लेकिन एक पुराने मित्रके नाते यदि मैं निस्संकोच भावसे अपनी बात कहूँ तो आशा है आप उसका बुरा नहीं मानेंगे। मुझे यह देखकर सदैव दुःख तो हुआ है कि आप जैसा व्यक्ति टर्की साम्राज्यका कट्टर समर्थक है; और ब्रिटिश सरकारकी जड़ खोदने, उसे पंगु और कमजोर बनानेके लिए खिलाफतके सवालका राजनीतिक उद्देश्योंसे उपयोग किया जा रहा है। बलगेरियाई, यूनानी और आर्मीनियावालोंके प्रति टर्कीने जो अपराध किये हैं, उनका न्याय ईश्वरके दरबारमें होगा। हालके वर्षोंमें अपनी अखिल भारतीय खिलाफत कांग्रेसमें मुसलमानोंने उन अत्याचारोंके विरुद्ध कोई रोष प्रकट किया है, और एक शानदार, उद्यमशील तथा नेक जाति (आर्मीनिय-

नों)का समूल नाश करनेकी टर्की-नीतिसे अपनेको अलग घोषित किया है, इसमें मुझे सन्देह है। इन शहीदोंका खून ईश्वरसे न्यायकी पुकार करेगा, और जो प्रभु एक गौरैयाकी भी खोज-खबर रखता है, वह टर्कीके इन अपराधोंमें से एक भी भूलेगा नहीं। यदि यह सत्य है कि टर्कीका इतिहास लूट-पाट और हत्याओंका इतिहास है, तो क्या उससे उसकी शक्ति छीन नहीं लेनी चाहिए? वह ऐसी शक्ति रखनेके योग्य नहीं है। यदि राजनीतिक सत्ताका उपयोग, अधिकृत जातियोंके लिए न्याय, स्वतन्त्रता और भ्रातृत्व बनाये रखनेके लिए नहीं बल्कि अत्याचार, उत्पीड़न, समूल नाश, लूटपाट और खून-खराबीके लिए किया जाता हो, तो क्या अन्य राष्ट्रोंको ऐसे राष्ट्रके अन्यायोंका प्रतिकार करनेके लिए उसकी दुष्ट सत्ता समाप्त नहीं कर देनी चाहिए? इस्लामकी राजनीतिक सत्ता छीननेका अर्थ उसे उसकी आध्यात्मिक शक्तियोंसे वंचित करना नहीं है, बशर्ते कि कोई आध्यात्मिक शक्ति उसमें हो। यदि उसमें आध्यात्मिक शक्तियाँ हैं तो उनके बलपर वह जिये। यदि नहीं है तो उसे मर जाने दीजिए। किसी भी धर्मके लिए राजनीतिक सत्ता अभिशाप है, और इतिहास बताता है कि इस शक्तिका उपयोग अक्सर अत्याचारके लिए किया गया है, उदाहरणार्थ रोमन कैथोलिक चर्च द्वारा।

मैं नहीं जानता कि असहयोगियोंके उद्देश्य ठीक-ठीक क्या हैं, लेकिन लगता यही है कि उन्हें देशमें एक भी अंग्रेज अधिकारीकी उपस्थितिपर आपत्ति होने लगी है। रोमका निर्माण एक दिनमें नहीं हो गया था, और किसी देशकी परिस्थितियाँ अनुकूल हों, उससे पहले ही उसका भावी संविधान नहीं बनाया जा सकता। मान लें कि तमाम ब्रिटिश अधिकारी बोरिया-बिस्तर समेटकर कल ही भारतसे चले जायें, और उनकी जगह भारतीय लोग ले लें, तो क्या जितना शुद्ध प्रशासन अब है, उतना ही शुद्ध वह रहेगा? क्या आपके महान देशकी अदालतोंके जरिये सभी जगह न्याय किया जायेगा? जहाँतक मैं समझता हूँ, भारतीय लोग देशी पुलिससे डरते हैं और पुलिसके भारतीय अधिकारी लोगोंमें घूसखोरी और भ्रष्टाचारकी प्रवृत्ति बहुत ज्यादा है। इससे पहले किसी जातिको स्व-शासनका अधिकार मिले, उसमें एक राष्ट्रीय चरित्र होना आवश्यक है, जिसकी बुनियादपर, और जिसकी सहायतासे स्व-शासन स्थापित किया जा सके। क्या आप समझते हैं कि अब ऐसा समय आ गया है कि जब नवशक्ति प्रदान करनेवाली और शुद्ध करनेवाली शक्तियाँ आपके देशके सामाजिक, शैक्षणिक और राजनीतिक जीवनमें व्याप्त हो गई हैं?

राजनीतिक प्रचार यदि क्रान्तिकारी ढंगका हो तो आसानीसे नीचतम और दुष्टतम लोगोंको अपनी ओर खींच सकता है, और यदि ऐसे लोग संगठन-यन्त्रपर कब्जा जमा लें, तो उनकी बात सुनने-माननेवाले लोगोंको ये अन्धे और

अन्धेसे भी बदतर लोग खड्डमें गिरा देंगे। मुझे विश्वास है कि व्यक्तिगत रूपसे आप स्वयं अपने उच्च आदर्शोंसे, न्याय, देशभक्ति और आत्माकी मुक्तिकी निस्स्वार्थ भावनासे विमुख नहीं हैं, किन्तु आपके चारों ओर समाजमें सुषुप्तावस्थामें पड़ी ऐसी प्रबल शक्तियाँ जागृत हो सकती हैं जो आपको बुद्धिमत्तासे बहुत परे खींच ले जायें और आपसे ऐसे कार्य करा डालें जो राष्ट्रके सच्चे हितके विपरीत हों। आपके देशमें वे सारे तत्त्व मौजूद हैं जो भारतको रूस बना दे सकते हैं, या आयरलैंडके सिन-फैन आन्दोलनसे ग्रस्त बना सकते हैं, या उसे गृह-युद्धका मैदान बना सकते हैं, विभिन्न सम्प्रदायों और जातियोंके बीच भयंकर रक्तपात करवा सकते हैं। भारत जैसे देशमें विभाजनकी स्थिति फैला सकते हैं जिसमें आपके यहाँके स्वतन्त्र रजवाड़े दो दलोंमें बँटकर एक-दूसरेके मुकाबले उठ खड़े हों; और सबपर नियन्त्रण और सबको मिलाकर रखनेवाली कोई ऐसी ताकत न हो जो शान्ति कायम रख सके, प्रगतिके कदम न रुकने दे, और एक अधिक पूर्ण राष्ट्रीय जीवनकी ओर समग्र देशको ले जा सके। आपके रास्तेमें चारों ओर छिपे हुए जाल और गढ़े हैं, जिनसे आप ईश्वरकी इच्छाका स्पष्ट बोध होनेपर और उस इच्छाका पालन करनेपर ही बच सकते हैं। यदि आप जनताकी इच्छाओंको सब-कुछ मानकर उसके हिसाबसे चलेंगे तो बहुतसे लोग आपकी जय-जयकार करेंगे और आपके पथपर फूल-पत्तियाँ बिछादेंगे। किन्तु यदि आप आग्रहपूर्वक ईश्वरकी इच्छापर चलते रहेंगे तो वे ही लोग शोर मचायेंगे और कहेंगे "इसे सूलीपर चढ़ा दो, इसको दूर कर दो।" आपको इसका उदाहरण मालूम ही है। ईसाने अविचल भावसे ईश्वरकी इच्छाका अनुसरण किया। नतीजा यह हुआ कि जनताने उन्हें ठुकरा दिया। ईसाके उद्देश्य परम पुनीत थे, उनका राज्य अत्यधिक आध्यात्मिक था, उनके तरीके बहुत ही दिव्य थे, जो जनताकी समझमें नहीं आये। वे मर गये, किन्तु ईश्वरने उन्हें फिर जिला दिया, और इस पुनरुज्जीवनको विश्व-चिन्तनका जीवन-सम्बल बना दिया। उन्हें मानव-मात्रकी आवश्यकताएँ पूरी करनेवाला त्राता बना दिया, अपना प्रतिनिधि और शास्ता बना दिया।

लड़खड़ाओ मत भाई, साहस करो,
भले ही तुम्हारा पथ रातकी तरह अँधेरा हो;
लेकिन दीन लोगोंका पथ-प्रदर्शन करनेवाला
एक तारा आकाशमें है,
ईश्वरमें आस्था रखो और सत्कर्म करो।

भले ही रास्ता ऊबड़-खाबड़ और कठिन हो
और मंजिल दूर हो,
शक्ति हो या पैर थक गये हों,

लेकिन बहादुरीके साथ कदम बढ़ाओ;
ईश्वरमें आस्था रखो और सत्कर्म करो।

छल प्रपंचका नाश होता है
प्रकाशसे भयभीत होनेवाली सभी चीजों
का नाश हो जाता है।
पराजयमें या विजयमें,
ईश्वरमें आस्था रखो और सत्कर्म करो।

किसी दल, सम्प्रदाय या गुटमें
विश्वास मत करो,
इस युद्धमें किसी नेताका भरोसा मत करो;
प्रत्येक शब्द और कर्ममें,
ईश्वरमें आस्था रखो और सत्कर्म करो;

भावनाओंके मोहन रूपके
भुलावेमें मत आओ,
मित्र देवदूत-जैसे दिख सकते हैं;
किसी रीति-रिवाज, विचारधारा या फैशनका
भरोसा मत करो,
ईश्वरमें आस्था रखो और सत्कर्म करो।

कुछ तुमसे घृणा और कुछ प्यार करेंगे
कुछ लोग चाटुकारिता,
और कुछ अपमान करेंगे;
मनुष्यकी ओर ध्यान मत दो,
ऊपरकी ओर देखो,
ईश्वरमें आस्था रखो और सत्कर्म करो।

सरल नियम और सर्वोत्तम पथ-प्रदर्शन,
आन्तरिक शान्ति और आन्तरिक शक्ति
यही हमारा पथ-प्रदर्शक ध्रुवतारा हो,
ईश्वरमें आस्था रखो और सत्कर्म करो।

लड़खड़ाओ मत, भाई, साहस करो
भले ही तुम्हारा पथ अंधकारमय हो,
लेकिन दीन लोगोंका पथ-प्रदर्शन करनेवाला
एक तारा आकाशमें है।
ईश्वरमें आस्था रखो और सत्कर्म करो।

सबसे बड़ी चीज दैवी प्रकाश, सिद्धान्तोंमें देख सकनेवाली पैनी दृष्टि और सच्चे राजनीतिज्ञकी दूरदर्शी बुद्धि है। निस्सन्देह आप अब्राहम लिंकनके जीवनसे, उनकी स्पष्टदर्शी दृष्टि, उनकी असंदिग्ध ईमानदारी, कोमल सहृदयता, विनम्रता, विनोद और मानवीयतासे परिचित हैं।

मैं अपने मित्रोंसे अक्सर कहता हूँ, "यदि आप श्री गांधीका पक्ष सुनें और वर्तमान प्रणालीके अन्तर्गत जो जबर्दस्त शिकायतें उनकी हैं, उन्हें सुनें तो आप उनके विरोधका कारण समझ जायेंगे।"

प्रश्न यह है कि वर्तमान बुराइयोंको दूर करनेके लिए भारतके सामने सबसे कल्याणप्रद तरीका क्या है। हड़तालों, और हिंसासे लोगोंमें क्रोध और घृणा और तरह-तरहकी सैकड़ों दुर्भावनाएँ और असन्तोष उत्पन्न होता है, और परिणामतः ज्यादातर मामलोंमें उनका उद्देश्य ही विफल हो जाता है। यदि प्राप्त होनेवाले लाभके साथ सद्भावनाएँ, एकता और शान्तिकी अपेक्षा हो, तो जरूरी है कि जो भी सुधार हों, वे संवैधानिक तरीकेसे प्राप्त किये गये हों। विप्लवकारी तरीकोंसे होनेवाली उपलब्धि सहज और प्राकृतिक नहीं है। इतनी दूर एक कोनेमें बैठा हुआ मैं सच्चे मनसे यही प्रार्थना कर सकता हूँ कि ईश्वर आपका दिशा-दर्शन करे और आपको अपनी कृपा प्रदान करे, तथा आपको भारतके सच्चे कल्याणका साधन बनाये।

इन पंक्तियोंमें लेखककी हार्दिकता और सचाई स्पष्ट झलकती है। मैं जानता हूँ कि यह मित्र सच्चे और ईश्वर-भीरु ईसाई हैं। लेकिन जिसे टर्कीके सवालका तनिक भी ज्ञान है, वह देख सकता है कि पत्र-लेखकके मनमें टर्कीके खिलाफ जबर्दस्त पूर्वग्रह हैं। आर्मीनियनोंको "एक शानदार उद्यमशील तथा नेक" जाति बताकर उन्होंने इस प्रश्नके बारेमें अपनी अनभिज्ञता ही सिद्ध की है। इसके लिए उन्हें दोषी नहीं ठहराया जा सकता। अंग्रेजी लिखने-पढ़नेवाली जनताके सामने टर्कीके पक्षकी बातें न आने पायें, इसकी पूरी कोशिश की गई है। विश्वके विभिन्न भागोंमें फैले हुए इन नेकदिल ईसा-इयोंको केवल एक ही ढंगकी चीजें पढ़नेको मिलती है। मिशनरी पत्रिकाएँ घोररूपसे, बल्कि मैं कहने जा रहा था, अपराधकी सीमातक टर्की-विरोधी और इस्लाम-विरोधी हैं। सन्त पॉलने उदारताके बारेमें इतना ज्यादा लिखा, लेकिन ईसाई धर्म प्रचारकोंकी पत्रिकाओंमें लिखनेवाले लोग जब इस्लाम और टर्कीके बारेमें कुछ लिखते हैं तो उनके मनमें उदारता शब्दका भी कहीं आभास नहीं मिलता। उनके विचारसे तुर्क लोग घोर अधर्मी हैं जिनका निर्माण ईश्वरने सिर्फ इसलिए किया है कि दुनिया उन्हें कोसे, अभिशाप दे। यह पूर्वग्रह किन्तु ईमानदारी-भरा दृष्टिकोण ही सत्य और न्यायका रास्ता रोककर खड़ा है।

मैं आर्मीनियनों या यूनानियोंके मुकाबले तुर्कोंका बचाव नहीं करना चाहता। तुर्कोंके कुशासन और उनके बुरे कार्योंसे मैं इनकार नहीं करता। लेकिन यूनानियों और आर्मीनियनोंका इतिहास इससे लाख दर्जे बुरा है। इससे भी बड़ी बात यह है कि

खिलाफतका पक्ष लेनेका मतलब है एक पवित्र और शुद्ध विचारका पक्ष लेना। पोप-वादके समर्थनमें इक्के-दुक्के पोपोंके आचरणके पक्षमें कुछ कहना आवश्यक नहीं है। तुर्कोंके कुशासनका आप हर तरहसे विरोध कीजिए, लेकिन तुर्कोंके कुशासनकी आड़ लेकर यूरोपसे तुर्कों और उनके साथ-साथ इस्लामको भी मिटा देनेकी कोशिश करना तो दुष्टता है।

जो बात इससे भी बुरी है वह यह कि धुरी राष्ट्रोंकी पराजयका उपयोग इस्लाम को कुचलनेके लिए किया जाये। यह महायुद्ध, जिसमें शामिल होनेके लिए भारतके मुसलमानोंको भी आमंत्रित किया गया था, क्या इस्लामके खिलाफ कोई धर्म-युद्ध था? जो ऐसा कहते हैं कि मुसलमान चाहे जिसे भी अपना धार्मिक प्रधान चुन सकते हैं, किन्तु तुर्कोंके विघटनमें उन्हें कोई दस्तंदाजी नहीं करनी चाहिए, वे लोग खिलाफतका अर्थ नहीं जानते। खिलाफतको तो बराबर पैगम्बर मुहम्मदके धर्मका रक्षक बनकर रहना है; इसलिए जिस क्षण सम्बन्धित व्यक्तिको सारी दुनियाके खिलाफ इस्लामकी रक्षा करनेकी शक्तिसे वंचित कर दिया जाता है या वह उसकी रक्षा करनेकी शक्ति खो देता है, उसी क्षण वह खलीफा होने या बने रहनेके अयोग्य हो जाता है। सैद्धान्तिक तौरपर कोई भले ही खिलाफतकी मान्यताकी नैतिकतामें शंका कर सकता हो, लेकिन इंग्लैंड इस्लामके खिलाफ इस कारण नहीं पड़ा हुआ है कि वह अनैतिक है। उस हालतमें तो इंग्लैंडको उन करोड़ों आदमियोंसे अपना सम्बन्ध तोड़ना पड़ेगा जिनके धर्ममें [इंग्लैंडकी कल्पनाकी] नैतिकताके लिए स्थान नहीं है।

असली सवाल तो यह है कि अगर कोई धर्म राजनीतिक शक्ति प्राप्त करके अपनी रक्षा करनेकी कोशिश करे तो उसमें क्या कोई अनैतिकता है? व्यवहारतः ईसाई धर्मकी रक्षा भी क्या राजनीतिक शक्तिके बलपर ही नहीं होती रही है? और हिन्दू धर्मकी भी बात लें तो क्या राजपूत राजे उसके रक्षकका काम नहीं करते रहे हैं?

जो ईसाई अपने दिलसे वैसा ही मानते हों, जैसा मेरा यह मित्र मानता है, उनसे मैं यही निवेदन करूँगा कि वे एक विचारगत आदर्शके रूपमें खिलाफतकी रक्षाके प्रयत्नमें शामिल हों और इस तरह यह स्वीकार करें कि असहयोग आन्दोलन अधर्मके खिलाफ धर्मकी लड़ाई है।

जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, इस मामलेमें मेरा मन बिलकुल साफ है। मेरा लक्ष्य न्यायसम्मत है। मैं किसी फरेब या अन्यायको शह देनेके लिए नहीं लड़ रहा हूँ। मेरा साधन भी उतना ही न्यायसम्मत है। यह लड़ाई सिर्फ सत्य और अहिंसा, इन दो हथियारोंसे ही लड़नी है। स्वेच्छासे कष्ट सहना अपने लक्ष्यके प्रति उत्कटताकी सबसे सच्ची कसौटी है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८–९–१९२१

३१. हिंसा और अहिंसा साथ-साथ नहीं चल सकती

हिंसा और अहिंसा दो परस्पर विरोधी, एक दूसरेका विनाश करनेवाली शक्तियाँ हैं। अहिंसा इसलिए कि सफलताके लिए पूर्णतः अहिंसक वातावरणकी आवश्यकता है। मोपलाओंके विद्रोहने वातावरण जितना खराब कर दिया है उतना असहयोग आन्दोलन के आरम्भसे अबतक किसी अन्य कारणसे नहीं हुआ। मैं ये पंक्तियाँ सिलहटसे लिख रहा हूँ। आज २९ अगस्त है। जबतक यह लेख छपेगा जनताके पास और अधिक जानकारी पहुँच जायेगी। जो-कुछ वहाँ हुआ है इसकी मुझे बहुत थोड़ी जानकारी है। मैंने दैनिक समाचारपत्रोंके तीन अंक देखे हैं जिनमें 'एसोशिएटेड प्रेस' के तत्सम्बन्धी समाचार प्रकाशित हैं। इन समाचारोंका जिस सावधानीसे सम्पादन किया गया है उसकी ओर बरबस ध्यान खिंच जाता है। किन्तु यह स्पष्ट है कि मोपलाओंके हाथों आधा दर्जन व्यक्ति मारे गये हैं और वहाँ उनके भी सैकड़ों व्यक्तियोंकी जानें गई हैं। मलाबारमें फौजी कानून लागू है। अभी सरकार द्वारा बदला लेना बाकी है। विद्रोही जितने बहादुर होंगे उन्हें उतना ही कठोर दंड दिया जायेगा। सरकारोंका यही कानून होता है। यदि मोपला पूरी तरह अहिंसक बने रहते तो जितनी जनहानि उन्होंने सही है उससे भी दस गुनी हानिकी मैं परवाह नहीं करता। वैसा हुआ होता तो वे स्वराज्यको बहुत ही पास ले आते। स्वराज्यके लिए अपने जीवनमें हम जो भी कुछ दे सकें थोड़ा है। मोपलाओंके लिए तो इसका अर्थ खिलाफत-सम्बन्धी अन्यायका दूर होना भी हो सकता था। ईश्वर पुनीत बलिदान चाहता है। हमारे रक्तमें क्रोध या घृणाका लेश भी नहीं होना चाहिए। जो त्याग अपनी कीमत माँगे वह स्वेच्छासे किया गया त्याग नहीं है। मोपलाओंने कीमत माँगी है। इससे बलिदानकी पवित्रता, उसकी शोभा बहुत हदतक नष्ट हो गई है। अब तो कहा जायेगा कि मोपलाओंको ठीक ही सजा मिली।

यदि केवल मोपला ही मरते तो किसी भी प्रकारका फौजी कानून लागू न होता और यदि होता तो वह बहुत स्वागत-योग्य होता। उससे हमारे देशको बरबाद करने-वाली यह सरकार ही खतम हो जाती।

आजकल तो चाहे अकाल हो, या कुलियोंका स्थानान्तरण अथवा मोपलाओंका विद्रोह, हर विपत्तिके लिए असहयोगको ही उत्तरदायी ठहराना फैशन बन गया है। यह असहयोगकी व्यापकताका अत्युत्तम प्रमाण है। किन्तु इस अभियोगके समर्थनमें मद्रास सरकारने अभीतक कुछ नहीं कहा है।

हमारा कर्त्तव्य स्पष्ट है। असहयोगियोंको स्पष्ट कर देना चाहिए कि इस उत्पात-में उनका कोई हाथ नहीं है। हमारे व्यवहारसे कहीं भी यह जाहिर नहीं होना चाहिए कि मोपलाओंने जो कुछ किया है उसका हम मानसिक रूपसे या गुप्त समर्थन करते हैं। हमें स्पष्ट जान लेना चाहिए कि हिंसाका किसी भी प्रकारसे समर्थन करना हमारे लिए अशोभनीय होगा। हमें मोपलाओंकी ओरसे हुई हिंसाकी गुरुताको कम करनेवाले

कारणोंकी खोज नहीं करनी चाहिए। हमने अपने लिए एक कठिन आदर्श चुना है और हमें उसपर टिकना चाहिए। हमने प्रतिज्ञा की है कि चाहे कितनी भी उत्तेजक परिस्थितियाँ क्यों न हों हम किसी भी प्रकारकी हिंसा नहीं करेंगे। हम तो यह मानते हैं कि उत्तेजना दिलानेवाली गंभीरतम परिस्थितियोंमें हमारी अन्तिम परीक्षा होगी। इसलिए कहना पड़ता है कि इस्लाम तथा स्वराज्यके पवित्र कार्यको गुमराह मोपलाओंने स्पष्ट ही बहुत हानि पहुँचाई है।

हम कह सकते हैं और अगर हमने ईमानदारीसे वैसा प्रयास किया हो तो — हमें कहना भी चाहिए कि अपने प्रयासोंके बावजूद हम अपने समाजके उपद्रवी तत्त्वोंको नियंत्रित या अनुशासित नहीं रख पाये। लोगोंको स्वेच्छासे स्वीकृत अहिंसा और असहयोगके सहज नियंत्रण अथवा सरकारके कठोर शासनके बीच किसी एकको चुनना है। अब सरकार अपनी बढ़ी-चढ़ी और प्रशिक्षित हिंसाके द्वारा हिंसाकी शक्तियोंका प्रतिकार कर सकनेकी अपनी शक्ति तथा सामर्थ्यका प्रदर्शन कर रही है। यदि हम यह नहीं दिखा पाते कि हमारा जनतापर अधिक प्रभाव है तो सरकारकी इस कार्रवाईका कोई जवाब नहीं दे सकते। हमें स्वयं साफ-साफ देख सकना चाहिए और लोगोंको दिखा सकना चाहिए कि सरकारके खिलाफ हमारा शक्ति-प्रदर्शन उस बालकके प्रयत्नके समान है जो एक तिनकेसे नदीके प्रवाहको रोकना चाहता है।

मुझे यह जानकर दुःख होता है कि हमारे लोगोंमें अभीतक यह स्थिर विश्वास पैदा नहीं हुआ है कि केवल पूर्ण अहिंसाके माध्यमसे ही स्वराज्य जल्दी मिल सकता है। हमें यह भी नहीं दिखता कि हिंसाके कारण हिन्दू-मुस्लिम एकता समाप्त हो जायेगी। हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेका विश्वास नहीं करते उसका कारण इसके सिवा और क्या है कि उन्हें — हिन्दुओंको मुसलमानोंकी ओरसे और मुसलमानोंको हिन्दुओंकी ओर से — हिंसाका भय है। और दोनोंमें सच्ची हार्दिक एकताके बिना स्वराज्यकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

स्वराज्य-प्राप्तिमें जो चीज बाधक है वह हिंसाका भय नहीं तो और क्या है? उसके लिए हमें जो कदम उठाना है उन्हें हम तुरन्त क्यों नहीं उठाते? क्या उसका कारण यही नहीं है कि हमें हिंसाके भड़क उठनेका भय है? अगर हमें यह विश्वास हो जाये कि हम दृढ़तापूर्वक अहिंसापर डटे रहेंगे तो क्या हम सरकारको आज ही यह चेतावनी नहीं दे सकते कि या तो वह हमारे साथ सहयोग करे या यहाँसे निकल जाये? माडरेट लोग हमारे आन्दोलनसे दूर रहना चाहते हैं उसका कारण क्या यही नहीं है कि उन्हें अहिंसाका वातावरण पैदा कर सकनेकी हमारी क्षमतापर विश्वास नहीं है? मोपलाओंके इस उत्पातसे उनके इस डरको पोषण मिलेगा।

तब हमें क्या करना चाहिए? बेशक हमें निराश नहीं होना है। अपने साधनमें, अहिंसामें हमारा विश्वास और प्रबल हो जाना चाहिए और इस प्रबलतर विश्वासको लेकर हमें अधिक उत्साहसे आगे बढ़ना चाहिए, अधिक आशासे अपना कदम उठाना चाहिए। हमें अपने देशवासियोंको, नादानसे-नादान देशवासीको, यह समझाना है कि खिलाफत-सम्बन्धी अन्यायके निराकरण तथा स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए अहिंसा ही एकमात्र और अनिवार्य उपाय है और अपने इस प्रयत्नमें हमें लगातार जुटे ही रहना चाहिए।

मोपला हमारे देशके बहादुरसे-बहादुर लोगोंमें से हैं। वे खुदासे डरते हैं। हमें उनकी बहादुरीको निखारकर शुद्ध करना है। मेरा विश्वास है कि यदि एक बार वे अपने धर्मको, अपने विश्वासोंकी रक्षाके लिए, जिसके लिए अभी उन्होंने जानें ली हैं, अहिंसाकी आवश्यकता समझ जायें तो बिना किसी हिचकिचाहटके वे अहिंसाका पालन करेंगे। मोपले कितने बहादुर होते हैं, इसके प्रमाणमें एक साक्षी देखिए। 'इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया' का लेखक लिखता है —

> **उनके स्वभावमें एक चीज हमेशा होती है, धर्मके मामलेमें अन्धी और उन्मत्त कट्टरता। वे झुकना तो जानते ही नहीं। लड़ने जायें उसके पहले ही भावी शहीदोंको देवार्पित कर दिया जाता है और मरनेके बाद उनका गुण-गान किया जाता है।**

ऐसे बहादुर लोग निश्चय ही ज्यादा अच्छे व्यवहारके हकदार हैं। लेकिन उनकी बहादुरीके प्रति सरकारका रवैया इस बातसे जाहिर होता है कि उसने उनके खिलाफ वर्षों पहले एक विशेष कानून पास किया था। मौजूदा उपद्रवसे निपटनेके लिए उसने अपना चक्र गतिमान कर ही दिया है। मोपला लोग निस्सन्देह मौतको हँसते-हँसते गले लगायेंगे। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम उनकी इस बहादुरीको अहिंसाकी अधिक विशुद्ध और उदात्त बहादुरीमें बदल डालें? वह एक चमत्कार ही होगा और चमत्कार महज मानवीय प्रयत्नके द्वारा सम्भव नहीं है। लेकिन ईश्वर तो चमत्कार कर ही सकता है। बहुत लोगोंका खयाल है कि अगर हम इसी वर्ष स्वराज्य प्राप्त कर लेते हैं तो वह निस्सन्देह एक चमत्कार होगा। लेकिन उस चमत्कारके पहले हमें एक और चमत्कार कर दिखाना है। हमें भारतकी जनताका, उसके बहादुरसे-बहादुर सपूतोंका मन जीतकर उन्हें अहिंसाके मार्गपर कमसे-कम इस हदतक अवश्य लाना है कि वे स्वीकार कर लें कि भारतकी आजादी अहिंसाके द्वारा ही पायी जा सकती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८–९–१९२१

३२. गो-रक्षाका उपाय

मौलाना मुहम्मद अली तथा मौलाना आजाद सोबानीके साथ मेरी बिहार-यात्राका उद्देश्य गायके प्रश्नपर फैली हुई गलतफहमीको रोकना था। कई स्थानोंपर हमारे भाषण हुए। एक मित्रके सौजन्यसे, जिन्होंने मेरे एक भाषणका सार लिपिबद्ध किया था, अपने उसी भाषणकी मुख्य-मुख्य बातें मैं यहाँ पाठकोंके लिए प्रस्तुत कर रहा हूँ।

> **अपने भाषणके प्रारम्भमें गांधीजीने लोगोंकी 'चरण' छूनेकी आदतका उल्लेख करते हुए कहा कि यह मेरे लिए परेशानीकी चीज बन गई है।**

लोग इस कार्यको वीर-पूजाकी भावनासे करते हैं। और खासकर बिहारमें यह वृत्ति बहुत ज्यादा है। लोग मेरे अवतार होनेकी बाततक कह डालते हैं। हिन्दू होनेके नाते मैं अवतारोंमें विश्वास जरूर करता हूँ। मेरा विश्वास है कि अपनी योजना

पूरी करनेके लिए परमात्मा समय-समयपर पृथ्वीपर अपने विशेष दूत भेजता रहता है। इनमें परमात्माका तेज या प्रताप विशेष रूपसे दृष्टिगोचर होता है। इन्हींको हमारे शास्त्रोंमें अवतारका नाम दिया गया है। परन्तु प्रस्तुत परिस्थितिमें यह बात लागू नहीं है। मेरे विचारमें आज भारतकी स्थिति ऐसी है कि यहाँ अभी किसी भी अवतारका अवतरित होना सम्भव नहीं। किसी अवतारके अवतरित होनेकी कल्पनातक करनेसे पहले, हमें सही रास्तेपर चलते हुए कठोर परिश्रम करना चाहिए तथा इस तरह अपनेको तथा अपने देशको पवित्र बनाना चाहिए। और आजके भारतको जो वस्तु चाहिए वह वीरपूजा नहीं अपितु सेवा है। उत्तरोत्तर अधिक संख्यामें हमें देशसेवक चाहिए। जो स्वराज्य हम चाहते हैं उसका अर्थ वर्तमान राजाको खत्म करके किसी दूसरे व्यक्तिके शासनकी स्थापना करना नहीं है — चाहे वह गांधी हो या मेरे साथी मौलाना शौकत अली या मौलाना मोहम्मद अली। हम जानते हैं कि पिछले जमानेमें चाहे जो हुआ हो, परन्तु भारत अब इतना जाग चुका है कि अब इन बातोंकी पुनरावृत्ति होनेवाली नहीं है। हम यह नहीं चाहते कि एक आदमी तो शासन करे और बाकी सब उसके दास बने रहें। हम काफी दासता भोग चुके हैं। हम जो चाहते हैं वह यह है कि अपनी निष्ठाके द्वारा लोगोंमें देशसेवाकी सजीव भावना पैदा करें। हम चाहते हैं कि प्रत्येक भारतीय गांधी बने, मौलाना शौकत अली बने, मौलादा मुहम्मद अली बने और तब हमारी कल्पनाका स्वराज्य हमें मिल जायेगा — अपने सम्पूर्ण रूपमें। इसलिए मेरा आपसे निवेदन है कि आप चरण छूकर या जय-घोष करके अथवा अनावश्यक नारे लगाकर हमारे काममें बाधा न डालें। यह असम्भव है कि भीड़का प्रत्येक व्यक्ति मुझे छू सके। परन्तु जब वे लोग जो मेरे निकट हैं मेरे पैरोंपर झुकना आरम्भ कर देते हैं तो भीड़ भी ऐसा ही करनेके लिए लालायित हो जाती है। इससे अकथनीय गड़बड़ी मच जाती है। इसलिए मेरे पास खड़े लोगोंको मेरे पैर कदापि नहीं छूना चाहिए। उन्हें तो मेरा आदर करनेके अभिप्रायसे मेरे आगे झुकना भी नहीं चाहिए। यही नहीं कि मुझे ऐसी बातें पसन्द नहीं, वल्कि ऐसा करनेसे मुझे काफी चोट पहुँचनेकी सम्भावना भी रहती है। मैं चाहता हूँ कि देश पंजाब एक्सप्रेसकी गतिसे भी अधिक तेज रफ्तारसे चले। हमें स्वराज्य इसी वर्ष लेना है ताकि हम आगामी दिसम्बरतक उसकी खुशियाँ मना सकें। मैं एक बार फिर आपसे सविनय प्रार्थना करता हूँ कि आप ऐसा कोई भी काम न करें जिससे हमारे काममें रुकावट पैदा हो, क्योंकि इससे रुकावटके प्रमाणमें देशकी हानि ही होती है, और कुछ नहीं।

अब मैं उस सवालपर आता हूँ जिसके लिए हम लोग यहाँ आये हुए हैं। ज्यों ही मैं यहाँ पहुँचा मैंने लोगोंसे दरयाफ्त किया कि यहाँके हिन्दुओं और मुसलमानोंमें अनबन तो नहीं है। और जब मैंने यह सुना कि ससरामके हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच जरा भी मनोमालिन्य नहीं है, मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। परन्तु मुझे बताया गया है कि इस नगरके लोग कांग्रेसके कार्यके प्रति दिलचस्पी नहीं रखते। यहाँकी कांग्रेस कमेटी तथा खिलाफत समिति, दोनों ही शिथिल हैं। इन दोनोंसे मेरा निवेदन यही है कि वे अपने-अपने कामोंमें ज्यादा दिलचस्पी लें। मैं अन्य अनेक बातोंके बारेमें भी पूछताछ करनेवाला था, परन्तु मैं इतना थका हुआ था कि ऐसा न कर सका। गो-रक्षाके सम्बन्धमें मेरा

विचार तो यह है कि गायकी रक्षा करना हिन्दुओंका धर्म है। धार्मिक विश्वासोंमें तथा धार्मिक एवं सामाजिक रीति-रिवाजोंमें हिन्दुओंमें, आपसमें ही, बहुत अन्तर है, परन्तु गोरक्षाके विषयमें सब हिन्दू एकमत हैं। मैं तो यहाँतक कहनेको तैयार हूँ कि गो-रक्षा हिन्दू धर्मकी एक केन्द्रीय और सर्वमान्य वस्तु है; यह एक ऐसी वस्तु है जो उसे दुनियाके दूसरे धर्मोंसे अलग करती है। भारतवर्षमें गो-रक्षाकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। लोग उसका दूध पीते हैं इतना ही नहीं, बल्कि उसकी नर सन्तान — बैल — से हम खेत जोतनेका काम लेते हैं। हिन्दू लोग गायके प्रति उतनी ही श्रद्धा रखते हैं जितनी ब्राह्मणके प्रति। परन्तु भारतके बाहर गायके प्रति ऐसी भावना नहीं है। इसीलिए हमारे मुसलमान भाइयोंके मजहबमें गो-वध निषिद्ध नहीं माना गया है। और अगर हमारा कोई मुसलमान भाई किसी दिन — जैसे ईदवाले दिन — गो-वध करता है तो कोई हिन्दू उसे मारनेके लिए हाथ कैसे उठा सकता है? क्या शास्त्रोंमें यह लिखा है कि गायको बचानेके उद्देश्यसे किसी मनुष्यके प्राण लिये जा सकते हैं? सच पूछिए तो शास्त्र ऐसा कोई आदेश नहीं देते। बल्कि ऐसा करना उनकी आज्ञाके विपरीत है। अंग्रेज लोग गोमांस खाते हैं परन्तु इस बातको लेकर कोई भी हिन्दू किसी अंग्रेजपर हाथ नहीं उठाता और न कोई हिन्दू भारतमें रहनेवाले अंग्रेजोंके लिए आवश्यक गोमांसकी पूर्ति के लिए कसाईखाने ले जाई जानेवाली लाखों गायोंको ही वहाँ पहुँचनेसे रोकता है। मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि गायके प्राणोंकी रक्षा करनेके लिए आप अपने प्राण न्योछावर कर सकते हैं, दूसरेके प्राण ले नहीं सकते और न आप उसके प्रति अपने मनमें रोष ला सकते हैं। मेरे भाई मौलाना मुहम्मद अलीने आज दिये गये अपने भाषणों-में से एकमें जो बात कही उसे मैं बिलकुल ठीक मानता हूँ। उनका कथन है कि भारतमें जो गो-वध हो रहा है उसके दोषका तीन-चौथाई भाग हिन्दुओंके हिस्सेमें आता है और मुसलमानोंके हिस्सेमें केवल एक चौथाई भाग। इसका कारण यह है कि जिन गायों का वध किया जाता है वे हिन्दुओंसे ही प्राप्त की जाती हैं। मैंने बम्बईमें जहाजोंपर लादी गई हजारों गायोंको कत्लके वास्ते विदेशोंमें भेजा जाते देखा है। हिन्दू ही गायोंकी बिक्री करते हैं, न कि मुसलमान लोग। मेरे भाईने जो यह सुझाव दिया है कि गायका कोई कृत्रिम मूल्य — जैसे सौ रुपये फी गाय — रख दिया जाये तो गोवध स्वतः कम हो जायेगा, मुझे बहुत व्यावहारिक लगा है। सब-कुछ हम हिन्दुओंपर ही निर्भर करता है। बम्बईमें तिलक स्वराज्य-कोषके लिए भेंट की गई एक गायकी कीमत पाँच सौ रुपये आई और दूसरी उससे भी ऊँचे मूल्यपर बिकी। अगर खरी-दनेवाले तथा बेचनेवाले दोनोंकी श्रद्धाको जगाया जाये तो यह सब काम बिलकुल सुगम और व्यावहारिक हो जायेगा। इसलिए हिन्दुओंसे मेरा यही निवेदन है कि यदि आप लोग वास्तवमें गो-माताके प्राण बचाना चाहते हैं तो मुसलमान भाइयोंसे झगड़ा मत कीजिए बल्कि उनके साथ शान्तिपूर्वक रहिए। उनको किसी बातके लिए विवश मत कीजिए। उनके इस संकट कालमें, बदलेकी इच्छा किये बिना उनकी सेवा सच्चे दिलसे कीजिए। मेरी नजरोंमें मुसलमानोंकी खिलाफतकी समस्या उतना ही महत्त्व रखती है जितना महत्त्व हिन्दुओंके लिए गो-रक्षाका प्रश्न रखता है। मेरा यह पक्का

विश्वास है कि यदि पहली समस्या सुलझ गई तो दूसरी अपने-आप सुलझ जायेगी। मेरा यह कथन किसी सौदेबाजीके भावसे प्रेरित नहीं है। यदि हम अपने मुसलमान भाइयोंको जो सहायता अर्पित करना चाहते हैं वह हार्दिक है और स्वेच्छाप्रेरित है, यदि हम उनके मजहबकी हिफाजतकी खातिर दरअसल अपनी जानोंकी बाजी लगानेको तैयार हैं तो इसमें कोई शक नहीं कि लेन-देन के कानूनसे कोई उच्चतर कानून प्रवर्तित होने लगेगा और भारतमें गो-रक्षाकी समस्या सुलझे बिना न रहेगी।

अपना कथन समाप्त करनेके पहले मैं आपका ध्यान एक और बातकी ओर दिलाना चाहता हूँ। मुझे मालूम हुआ है कि यहाँपर लगभग ५०० मुसलमान जुलाहा परिवार हैं। उनकी प्रवृत्ति अपना व्यवसाय छोड़नेकी हो रही है, क्योंकि दूसरे मुसलमान उनके प्रति हीनभाव रखते हैं। इस प्रवृत्तिकी रोकथाम करना अत्यन्त आवश्यक है। हम हिन्दुओंमें कर्मपर आधारित सामाजिक भेदभाव मौजूद है, परन्तु जहाँतक मुझे मालूम है, इस्लाम ऐसे भेदको नहीं मानता। मुस्लिम समाज परिपूर्ण समानतापर आधारित है। इसलिए इन जुलाहोंका समाजमें अप्रतिष्ठित समझा जाना मुझे असंगत प्रतीत होता है। बुनकरका काम कोई ओछा काम नहीं है। मेरे विचारमें भारतकी बिलकुल अनिवार्य दो आवश्यकताएँ, जिनपर भारतका जीवन निर्भर हैं, कृषि तथा बुनाईका काम हैं। भारतके लिए उनका वही महत्त्व है जो जीवित व्यक्तिके लिए उसके दो फेफड़ोंका होता है। यदि इनमें से एक निकम्मा हो जाता है या उसमें कोई रोग लग जाता है अथवा कोई खराबी आ जाती है, तो दूसरा फेफड़ा कुछ समयतक तो काम अवश्य चला सकता है परन्तु अधिक समयतक नहीं। ठीक ऐसी ही अवस्था भारतकी है। जैसे-जैसे बुनाई उद्योग समाप्त होता गया वैसे-वैसे हमारा देश भी कमजोर होता गया। और हमने स्वदेशीका जो कार्यक्रम आरम्भ किया है वह बीमार फेफड़ेके उपचार-जैसा है जिससे कि कमजोरी ठीक की जा सके और नए रक्तका संचार हो सके और वह फेफड़ा स्वस्थ एवं शक्तिशाली बने। ज्यों ही भारतके लिए कृषि तथा बुनाईकी नितान्त आवश्यकता हमारी समझमें आ जायेगी त्यों ही हम इन कामोंकी अवगणना या उनका तिरस्कार करना छोड़ देंगे और तभी हमारी समझमें आयेगा कि ये दोनों उद्योग हमारे सर्वोच्च आदरके पात्र हैं। हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि बुनकरोंकी मददके बिना भारतमें स्वदेशीके कार्यक्रमको सफलता नहीं मिल सकती। स्वदेशीसे मेरा तात्पर्य है कि प्रत्येक प्रान्त अपना कपड़ा स्वयं तैयार करे। यदि आप अपने कपड़ोंके लिए बम्बईपर निर्भर रहेंगे तो इसका मतलब यह होगा कि बिहारने स्वदेशीका अमल नहीं किया। इसलिए कांग्रेस कमेटीसे मेरी प्रार्थना है कि वह शीघ्रातिशीघ्र बिहारके प्रत्येक घरमें चरखा पहुँचा दे। इस कामके पूरा हो जानेपर हमारा प्रत्येक घर कताईका कारखाना बन जायेगा। यदि इस पैमानेपर सूत काता जाये तो हम प्रत्येक गलीको आसानीसे बुनाईके कारखानेका रूप देनेकी उम्मीद कर सकते हैं। यह प्रश्न सारे भारतके लिए बहुत जरूरी है, किन्तु बिहारके लिए तो विशेष रूपसे है, क्योंकि भारतके प्रान्तोंमें बिहार सबसे अधिक गरीब है। यहाँ मैं उड़ीसाको भी बिहारमें ही शामिल कर रहा हूँ। किन्तु यदि इन्हें अलग मानें तो [गरीबीमें] उड़ीसाका स्थान सबसे निम्न स्तरपर होगा तथा बिहार प्रान्तका बस उसके

ऊपर। चम्पारनमें अपना काम करते हुए मुझे बिहारकी गरीबीका अनुमान हो गया था। मुझे उन्हीं दिनों पता लगा था कि बिहारकी अधिकांश स्त्रियाँ केवल एक वस्त्रसे ही काम चला लेती हैं। सच तो यह है कि जो वस्त्र वे पहनती हैं उसके अतिरिक्त उनके पास और कुछ होता ही नहीं। यह बात सीधे मुझे बतानेमें तो उन्हें शर्म लगती थी किन्तु उन्होंने मेरी पत्नीसे कहा था कि यदि मैं उनके घर जाऊँ तो मुझे पुराने चिथड़ोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलेगा। उन्होंने यह भी कहा था कि "गांधीजी हमें प्रतिदिन स्नान करनेको कहते हैं। किन्तु यदि उस वस्त्रको धोनेके लिए जिससे हम अपना तन ढाँकती हैं, हमें नग्न होना पड़े तो यह काम हम गांधीजीके कहनेसे भी नहीं कर सकतीं।" बिहारकी गरीबीका यह हाल है! यदि इन स्त्रियोंको चरखे दे दिये जायें तथा उन्हें दो-दो आना दैनिक मजदूरी मिल जाया करे तो मुझे पूर्ण आशा है कि वे यह काम पूरे उत्साहसे शुरू कर देंगी और उसमें पूरी शक्तिसे लगी रहेंगी। मुझे मालूम है कि नीलकी खेती करानेवाले जमींदार मजदूरोंको मजदूरीमें प्रतिदिन ६ पैसे देते हैं। यदि उन्हें यह पता चले कि चरखेसे उन्हें छः पैसेकी जगह दो आना प्रतिदिन मिलेगा तो हमें समझाने-बुझानेकी भी जरूरत नहीं होगी और बात अपने-आप बन जायेगी। हमें अपना कार्य इन तरीकोंसे तुरन्त आरम्भ कर देना होगा। बिहारसे मुझे बहुत आशा है। उसपर मेरा विशेष अधिकार है। आशा है कि वह मुझे मेरे अधिकारसे वंचित नहीं करेगा। मैं चाहता हूँ कि मैंने जो बातें कहीं हैं, आप लोग गाँवोंमें रहनेवालोंको समझायें। ये बातें शायद गाँववाले न समझ पायें, पर आप लोगोंको, जो शहरोंके रहनेवाले हैं, दुनियाका विस्तृत अनुभव है। इसलिए यह आपका कर्त्तव्य है कि आप गाँवके लोगोंको ये बातें समझाएँ। स्वराज्यके आन्दोलनके लिए तीन बातें बहुत महत्त्व रखती हैं। इनको पूरा किए बिना हम अपने संघर्षमें आगे नहीं बढ़ सकते। पहली है सम्पूर्ण हिन्दू-मुस्लिम एकता। हिन्दुओं और मुसलमानोंमें भाईचारेकी भावना पैदा होनी चाहिए। स्वराज्य आन्दोलनकी सफलताकी यह पहली शर्त है। दूसरी बात यह है कि हमारा यह शान्तिपूर्ण तथा अहिंसात्मक आन्दोलन हमेशा शान्तिपूर्ण तथा अहिंसात्मक ही रखा जाये। जो आदमी इस विषयपर थोड़ा-सा भी विचार करेगा, वही आसानीसे समझ सकता है कि हम हिंसा द्वारा कभी भी सफल नहीं हो सकते। यदि हम तलवार खींचेंगे तो हम केवल अपनी ही हानि करेंगे, क्योंकि दूसरे कारणोंको चाहे हम न मानें लेकिन यह तो मानना ही होगा कि हमारे पास हवाई जहाज आदि जैसे युद्धके आधुनिकतम साधन नहीं हैं। इसलिए किसी भी परिस्थितिमें आप शान्ति भंग न करें। हमें अंग्रेजोंके साथ और स्वयं अपने बीच, सहयोगियों और असहयोगियोंके तथा जमींदार और रैयतके बीच, मनसा, वाचा और कर्मणा शान्ति बनाये रखनी है। तीसरी बात यह है कि हमें विदेशी कपड़ेका बहिष्कार तुरन्त ही करना है और अपनी आवश्यकताके लिए अपने घरों तथा गाँवोंमें कपड़ा उत्पादन करना है। तभी हम अपने तीन लक्ष्योंकी प्राप्ति कर पायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-९-१९२१

३३. भाषण : हरीश पार्क, कलकत्तामें

८ सितम्बर, १९२१

. . .श्री गांधीने कहा कि कुछ महीने पहले जब मैं तिलक स्वराज्य कोषके लिए चन्दा करने कलकत्ता आया था तब मैंने कहा था कि अपेक्षित रकम पिछले ३० जूनसे पहले इकट्ठी हो जानी चाहिए और मुझे यह सुनकर प्रसन्नता हुई है कि वह काम पूरा हो गया है। इस बार मैं इसी ३० सितम्बरसे पहले विदेशी चीजोंका पूर्ण बहिष्कार चाहता हूँ। अन्य सभी प्रान्तोंमें स्वदेशी पूरे जोरोंपर है और मैं बंगालके भाई-बहनोंसे इस बातका आश्वासन चाहता हूँ कि मेरी इस नई योजनामें आप लोग मेरी मदद करें। स्वदेशीके मामलेमें बंगाल अन्य सभी प्रान्तोंसे पिछड़ा हुआ है। मुझे इस बातका दुःख है कि बंगालने इस कार्यक्रमके सम्बन्धमें बहुत कम उत्साह दिखाया है। मैं जानता हूँ कि बंगाल बौद्धिक दृष्टिसे काफी सम्पन्न है और अन्य प्रान्तोंसे बढ़ा-चढ़ा है, किन्तु मेरी समझमें नहीं आया कि इस महान कार्यमें वह क्यों पिछड़ा हुआ है। बंगालने ही स्वदेशी धर्मको पहले-पहल अपने यहाँ चलाया। पुराने जमानेमें बंगालमें ही अच्छा बारीक हाथका कता कपड़ा तैयार हुआ करता था और मुझे यह सुनकर आश्चर्य होता है कि यह काम बंगाल अब नहीं कर पा रहा है। मुझे विश्वास है कि जब बंगाली लोग यह समझ जायेंगे कि स्वदेशीके इस्तेमालसे स्वराज्य मिलना सम्भव है तो वे इस महीनेके शेष २४ दिनोंमें ही यह महान कार्य पूरा कर दिखायेंगे। मुझे दुःख है कि वकील लोग अभीतक वकालत जारी रखे हुए हैं परन्तु जिस समय श्री दास और पण्डित मोतीलाल नेहरूने[1] अपनी वकालत छोड़ी थी उसी समय मेरा उद्देश्य पूरा हो गया था। दुर्गा पूजा बिलकुल पास आ रही है और यह हिन्दुओंका एक बहुत बड़ा उत्सव है। इस अवसरपर काफी कपड़े खरीदे जाते हैं। मैं आप लोगोंसे करबद्ध प्रार्थना करता हूँ कि आप एक पैसेके भी विदेशी मालकी, खासतौरपर कपड़ोंकी, खरीद न करें। मुझे आशा है कि यदि लोग तत्काल ही मेरे निवेदनपर अमल करेंगे तो वे ईश्वरके आशीर्वादके भागी बनेंगे।

आगे बोलते हुए श्री गांधीने कहा कि बंगालके विभाजनके समयके स्वदेशी आन्दोलनमें और वर्तमान आन्दोलनमें काफी फर्क है। बंगालके विभाजन-कालमें यदि कोई प्रतिबन्ध थे भी, तो सख्त नहीं थे, और वे विदेशी वस्त्रके बहिष्कारतक ही सीमित थे। विदेशी वस्त्रोंका अर्थ था लन्दनमें बने कपड़े, किन्तु जापानमें बनी चीजोंके इस्तेमालकी छूट थी। वर्तमान स्वदेशी धर्मका अर्थ हर तरहके विदेशी वस्त्रका पूर्ण बहिष्कार है और केवल हाथके कते सूतसे बुने कपड़े ही स्वदेशी माने जायेंगे। उस

१. (१८६३–१९३१); वकील और प्रमुख राजनीतिज्ञ; भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके दो बार अध्यक्ष।

समयका आन्दोलन कुछ कष्टोंके निवारणके लिए शुरू किया गया था, परन्तु वर्तमान आन्दोलनका उद्देश्य अधिक ऊँचा और महान् है, अर्थात् स्वराज्यकी प्राप्ति है। आप लोग विदेशी मालका पूर्णरूपसे बहिष्कार कीजिए उन्हें जला डालिए। कुछ लोगोंने मुझसे कहा है कि इन कपड़ोंको खुलनाके अकाल पीड़ित लोगोंको भेज दिया जाये। मैं इस सुझावके विरुद्ध हूँ क्योंकि मैं नहीं चाहता कि इन गरीब लोगोंका कलेवर विदेशी वस्त्ररूपी जहरसे दूषित हो। यदि आप इन लोगोंकी मदद करना चाहते हैं, तो आप अपने स्वदेशी कपड़े भेजिए और स्वयं लुंगियाँ धारण कीजिए।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ९-९-१९२१

३४. तार : फरीदपुरकी कांग्रेस और खिलाफत समितियोंको

[१० सितम्बर, १९२१ के पूर्व]

बादशाह मियाँ आबू खलीद रशीदुद मियाँको[1] उनकी गिरफ्तारीपर मुबारकबाद। उनके हजारों अनुयायियों और मित्रोंके उत्तेजित हो उठनेकी सम्भावना है। मैं उनसे अनुरोधपूर्वक कहूँगा कि वे तत्काल ही स्वदेशी अपनाकर अर्थात् सभी विदेशी-वस्त्रोंका बहिष्कार और हाथकी कती और हाथकी बुनी खादीका उत्पादन करके नेताओंके प्रति अपना आदरभाव व्यक्त करें। मेरा विश्वास है कि लोग निरुद्विग्न, शान्त और मर्यादित रहेंगे। लोगोंको शान्त करनेके लिए मौलाना आजाद सोबानी कुछ मित्रोंके साथ फरीदपुर रवाना हो रहे हैं।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १०-९-१९२१

१. बंगालके एक धार्मिक पुरुष।

३५. परोपकारी पारसी

[१० सितम्बर, १९२१][1]

मैं पारसियोंकी उदारताका विचार जब-जब करता हूँ तब-तब मुझे यह लगता है कि मुट्ठी-भर पारसियोंने दुनियामें जो इतनी कीर्ति कमाई है वह केवल अपनी दान-शीलतासे कमाई है। प्रसिद्ध जातियोंमें सबसे अल्पसंख्यक जाति पारसियोंकी है। इन अस्सी हजार स्त्रियों और पुरुषोंका इतना खयाल दुनिया क्यों करती है? पारसियोंके पास शस्त्र-बल नहीं है, उनमें कोई ढोंग या पाखण्ड नहीं है और उनके पास कोई जादू नहीं है अथवा यदि कोई जादू है तो वह यह दानशीलताका ही जादू है।

यदि पारसी लोग करोड़ों रुपये कमानेपर भी उन्हें पेटियोंमें बन्द करके रख देते तो उनका अस्तित्व कभीका मिट गया होता। दानशीलता आत्मशक्ति है और आज पारसी अपनी इस आत्मशक्तिसे ही अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं और कीर्ति प्राप्त कर रहे हैं।

किन्तु पारसियोंकी दानशीलता धनकी है। धन तो आता-जाता रहता है। यदि पारसी धन कमाना बन्द कर दें तो उनकी क्या दशा होगी? धनकी दानशीलता आत्मशक्तिका एक अंश-मात्र है। मैंने अपने पारसी मित्रोंसे बात करते हुए बहुत बार कहा है कि पारसियोंकी परीक्षा तो इस समय हो रही है। यदि वे अपने करोड़पतियोंकी संख्यासे ही अपनी कीर्ति कायम रखना चाहेंगे तो नहीं रख सकेंगे। असीम धनसे पारसियोंका आत्मविकास रुक जानेका पूर्ण भय है। मेरा पारसी जातिपर बहुत अनुराग है, यह बात हर पढ़े-लिखे पारसीको मालूम है। मैंने अपने इस अनुरागका कारण भी बता दिया है। अपने इस अनुरागके कारण ही मैंने पारसियोंमें अवनतिके जो चिह्न देखे हैं उनसे मुझे दुःख होता रहा है।

कोई जाति केवल अनुकरण करके अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकती। कोई जाति विलासितामें पड़कर जीवित नहीं रह सकती। मैंने देखा है कि पारसियों-की जिन्दगी आरामतलबीकी हो गई है। पारसियोंके लिए अस्पताल, पारसियोंके लिए आरामसे रहनेका इन्तजाम, पारसियोंके लिए अलग कोष। मैं घबरा गया। मैंने देखा कि दानशीलताने ऐसा रूप ग्रहण किया है कि इससे पारसियोंकी जाति शायद पिछड़ जायेगी। जो जाति दान-पुण्यके सहारे जीवित रहती है उसका नाश ही हो जाता है। अपने शरीरके पसीनेसे प्राप्त सुविधाएँ ही मनुष्यको पच सकती हैं। जो मनुष्य अपनी जातिकी दी हुई सुख-सुविधाओंका कमसे-कम उपयोग करता है उसीका पुरुषार्थ सच्चा है। मनुष्यको कठिनाइयोंकी निहाईपर ही परखा जाना चाहिए।

मनुष्य एक-दूसरेकी नकल करनेके लिए ही नहीं जन्मा है। एक बालकका भी विशेष व्यक्तित्व होता है। खान-पान आदि क्रियाएँ तो पशुओंमें भी होती हैं। हम

१. यह लेख पहले **साँझ वर्तमान**के पटेटी-अंक (नववर्षांक) में प्रकाशित हुआ था। १९२१ में पटेटी इसी तारीखको थी।

पशुत्वसे ऊँचे उठ गये हैं उसका एक ही कारण है — हममें बुद्धि है, विवेक है, सार-असारके विवेचनका गुण है। जिस कार्यको हम ज्ञानपूर्वक करते हैं उसको पशु अज्ञान-पूर्वक करते हैं। हम चाहें तो एक चींटीके व्यवहारको देखकर उसकी उद्योगशीलता-का अनुकरण कर सकते हैं, किन्तु यदि हम इस अनुकरणको ज्ञानपूर्वक करेंगे तो उसमें विविधता होगी। ज्ञानपूर्वक किये गये अनुकरणमें नकल नहीं होती, किन्तु जब एक गुलाम मालिककी नकल करने बैठता है तब वह नीचे ही गिरता है।

इसलिए जब पारसी युवक भाइयों और बहनोंने असहयोगमें भाग लेना आरम्भ किया तो मुझे प्रसन्नता हुई। असहयोगका हेतु सरकारको अथवा सरकारके अन्यायको पराजित करना भले ही हो, किन्तु पारसी भाइयों और बहनोंके मस्तिष्कमें मैं उसका मुख्य हेतु ही बैठाना चाहता हूँ। असहयोगका अर्थ है आत्मशुद्धि। चिकित्सा-शास्त्रका नियम है कि जिसके शरीरमें बिलकुल शुद्ध रक्त है उसपर रोगके कीटाणुओंका प्रभाव नहीं हो सकता। शुद्ध रक्त स्वयं रोगके कीटाणुओंका नाशक है। इसी प्रकार यदि हम स्वयं शुद्ध होकर न्यायशील बन जायें तो अन्याय हमारी क्या हानि करेगा? अन्यायीको दण्ड देना अनुचित नीति है। हमें उसके अन्यायके वश न होकर स्वयं दुःख भोगना चाहिए और उसका उत्पीड़न सहना चाहिए, यही उचित नीति है; क्योंकि इस प्रकार कसौटीपर चढ़नेके बाद हमारा उत्पीड़न कोई नहीं कर सकता।

आत्मशुद्धिकी कोई हद नहीं। किन्तु हमने अपने लिए आत्मशुद्धिकी जो हद रखी है वह तो इतनी करीब है कि वहाँतक तो एक बालक भी पहुँच सकता है।

१. हम अपनी छोड़कर परायेकी फिक्र क्यों करें? भारतमें करोड़ों लोग भूखे मरें और हम बाहरके लोगोंके साथ व्यापार करें यह अपनोंके प्रति हमारा अत्याचार है। इस अत्याचारको दूर करनेके लिए हमें अपने देशका बना कपड़ा ही पहनना चाहिए और विदेशी कपड़ा चाहे कितना ही सुन्दर लगता हो, फिर भी त्याग देना चाहिए। ऐसा करनेके लिए हम सबको पींजने, कातने और बुननेका काम करने लग जाना चाहिए। इस तरहका आचरण करके हम स्वावलम्बी बन जायेंगे।

२. इस तरहके शुद्ध स्वदेशी-व्रतका पालन करनेके लिए हमें सादगी अपनानेकी बहुत जरूरत है। सादगी अपनानेमें हमारा कपड़े पहननेका हेतु भी बदलेगा। हमें कपड़ा सजावटके लिए नहीं बल्कि शरीरको ढकनेके लिए पहनना चाहिए। इसलिए हमें वैसे ही और उतने ही कपड़े पहनने चाहिए जैसे और जितने कपड़े हमारे देशकी जलवायुके लिए उपयुक्त हैं। भारतके लिए सफेद रंग सबसे ठण्डा रंग है। वह आँखको भी सुहाता है। सफेद कपड़ेमें मैल तुरन्त दिखाई देता है, इसलिए सफेद कपड़ा पहनने-पर हमारे लिए साफ रहना जरूरी हो जाता है। बनियान, कमीज और वास्कट पहनना और उनके ऊपर कोट डाल लेना यह तो शरीरपर अत्याचार करने जैसा है। यदि बनियानके साथ दूसरा कोई कपड़ा पहनना हो तो वह कुरता हो सकता है। इससे अधिक कपड़े पहनना व्यर्थ है। अंग्रेजी पतलून खादीके पाजामेका मुकाबला नहीं कर सकती। हमारे देशमें कुर्सियोंकी जरूरत नहीं है। अधिक ठण्डी और तरल जलवायुके देशमें उनकी जरूरत भले ही हो। हम लोग कलफसे कड़ी बनी हुई और तंग पतलून पहन ही नहीं सकते। हमारे लिए तो ढीला और नरम पाजामा पहनना ही अच्छा

है। इससे हमें जमीनपर बैठनेमें दिक्कत नहीं होती। इस देशके लिए मोजेसे गंदी चीज शायद दूसरी नहीं। गर्मीमें मोजे दो घंटे पहननेके बाद दुर्गंध देने लगते हैं। पैर नंगे रखे जाते हैं तो अधिक अच्छे रहते हैं और उनको ढकनेमें कोई सुन्दरता नहीं है। जिन अंगोंको देखनेसे अपनी वृत्तियाँ मलिन हो सकती है उनके सिवा बाकी अंगों-को ढकनेमें मर्यादाकी रक्षाका कोई सवाल नहीं उठता। इस देशमें बूट पहनना भी शरीरपर अत्याचार ही है। चप्पल अथवा स्लीपरसे हमारे पैरोंकी कीचड़से पूरी रक्षा हो जाती है। इसीलिए हमारे देशमें तो जूतेका नाम पदत्राण है।

३. पारसियोंमें शराबखोरीकी लत कहाँसे आ गई, यह मैं नहीं जानता। महात्मा जरतुश्तने शराब पीनेकी अनुमति दी होगी, ऐसा मैं नहीं कह सकता। किन्तु जो बात बुद्धि-विरुद्ध हो वह शास्त्रके अनुकूल मानी जाती हो तो भी शास्त्रसम्मत नहीं हो सकती। जो अनीति सिखाये वह शास्त्रसम्मत नहीं हो सकता। उत्तरी ध्रुवमें शराबकी जरूरत हो सकती है, किन्तु समशीतोष्ण कटिबन्धमें शराब पीना महापाप ही है। इंग्लैंडमें मैं एक पारसी समारोहमें गया था। उसमें पहले सब बातें मर्यादित रूपमें चलीं: गाना-बजाना हुआ; फिर शराबके प्याले चले। मर्यादा टूटी, मुझे वहाँ बैठनेमें शर्म मालूम हुई और मैं वहाँसे भाग आया। मैंने इंग्लैंडमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके समारोहोंमें ऐसा ही देखा है। जहाजोंमें मुसाफिर शराब पीकर मस्त हो जाते हैं और मर्यादासे बाहर व्यवहार करते हैं। इस बातको जहाजमें यात्रा करनेवाला कौन मुसा-फिर नहीं जानता? सीमाके भीतर रहकर शराब पीनेवाले 'मॉडरेट ड्रिंकर' मैंने काफी देखे हैं। वे नालियोंमें नहीं लोटते, यह सच है, परन्तु —?

इसलिए पारसी भाई-बहनोंको शराब बिलकुल छोड़ देनेकी प्रतिज्ञा अवश्य करनी चाहिए।

४. मैं तो मांसाहार करता नहीं। अज्ञानावस्थामें किया तो उसके लिए पछताता हूँ। मैंने उसका बहुत प्रायश्चित्त किया है। पति और पत्नी — दोनोंने मरणासन्न हालत-में और डॉक्टरके कहनेपर भी मांस खानेसे इनकार किया है। मांस भक्षण करके मैं एक पल भी जीवित नहीं रहना चाहता। मैंने मुसलमानोंसे बातचीत की है। उससे मुझे पता लगा है कि उनमें भी परहेजगार फकीर होते हैं जो अपने क्रोधपर और अपनी इन्द्रियोंपर काबू पानेके लिए मांस खाना छोड़ देते हैं। किन्तु मैं पारसी भाइयों और बहनोंसे निरामिष-भोजी होनेके लिए नहीं कहता। उनके भोजनमें मांस और मुर्गेकी बहुलता रहती है ऐसा मैंने उनके निकट सम्पर्कसे जाना है। मैं अपने पारसी भाइयों और बहनोंसे अपनी स्वादेन्द्रियोंपर अंकुश रखनेकी दृष्टिसे यह निवेदन अवश्य करता हूँ कि वे मांस-मुर्गेका अति सेवन न करें। करोड़ों मुसलमान नित्य मांस नहीं खाते। इससे उनकी कोई हानि नहीं होती, ऐसी मेरी मान्यता है।

मैंने पारसियोंसे विनोदमें "पा ऋषि"[१] कहा है। मैं अस्सी हजार लोगोंकी इस जातिसे आत्मज्ञान और आत्मशक्तिकी बहुत अधिक आशा रखता हूँ। उनकी संख्या ज्यादा नहीं है इसलिए उनमें महत्वपूर्ण परिवर्तन जल्दी हो सकते हैं। इस परिवर्तनको

१. अर्थात् "पाव ऋषि, एक चौथाई ऋषि।

करके आप पारसी भारतके पूरे आधुनिक ऋषि बनें, यही मेरी इच्छा है। महात्मा जरतुश्तका जीवन नीतिसे भरा हुआ है। मैं चाहता हूँ कि पारसियोंमें नीतिका पूरा विकास हो। स्वराज्यमें नीतिवान, निर्भय, सीधे-सादे, वीर, सच्चे और दृढ़ चरित्र स्त्री-पुरुषोंकी जरूरत है।

अब मेरा खयाल है कि हम दानशीलताका नया अर्थ ग्रहण करनेके लिए तैयार हो गये हैं। दानशीलताका अर्थ केवल धन देना ही नहीं है बल्कि दानशीलताका अर्थ है तन, मन, धन देना। पारसी भाई और बहन अपनी इन समस्त शक्तियोंको भारतके हितार्थ अर्पण करें, मैं उनसे यह माँग पारसी नववर्ष-दिवस — पटेटीकी बधाई देते हुए करता हूँ। उससे पारसियोंकी दानशीलता और भी चमकेगी और पारसी सदा परोपकारी माने जायेंगे। मेरी ईश्वरसे प्रार्थना है कि पारसी भाई ऐसे बनें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५–९–१९२१

३६. भाषण : कलकत्ताके खिलाफत स्वयंसेवकोंकी सभामें

१० सितम्बर, १९२१

शनिवारकी शामको खिलाफत समिति और बड़ा बाजार कांग्रेस कमेटीके लगभग ५०० स्वयंसेवकोंकी सभा श्री चित्तरंजन दासके निवासस्थानपर हुई। श्री गांधी, मौलाना मुहम्मद अली और पण्डित मोतीलाल नेहरूने उनका निरीक्षण किया। स्वयंसेवकोंके समक्ष भाषण देते हुए श्री गांधीने कहा कि मैं आपसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। मेरा विश्वास है कि स्वयंसेवकोंकी मददसे मैं स्वराज्य प्राप्त कर सकूँगा। मैं जानता हूँ कि स्वयंसेवकोंने स्वराज्य और खिलाफत तथा पंजाबकी खातिर अपने प्राण न्यौछावर करनेकी तैयारीके साथ अपने नाम दर्ज कराये हैं। **उन्होंने स्वयंसेवकोंसे कहा कि** आप लोग अनुशासन बनाये रहें। . . . मुझसे बाहरी लोगोंने और मारवाड़ियोंने भी शिकायत की है कि स्वयंसेवक लोगोंका व्यवहार कभी-कभी खराब रहा है। स्वयंसेवकोंके ऐसे आचरणका, यदि उन्होंने वास्तवमें ऐसा किया है तो, मुझे बहुत खेद है।

धरनेका उल्लेख करते हुए श्री गांधीने कहा कि स्वयंसेवक लोग धरना देना जारी रखेंगे परन्तु उसमें दया, सौजन्य, और मैत्रीभाव होना चाहिए। वे कोई भी ऐसा काम न करें जो किसीकी भी भावनाको चोट पहुँचाये क्योंकि अन्यथा वे हमारे उद्देश्यको बहुत बड़ी क्षति पहुँचायेंगे और उसका भारी अहित करेंगे।

अली भाइयोंकी सम्भावित गिरफ्तारीके बारेमें बोलते हुए उन्होंने कहा कि मैं जानता हूँ कि मेरे ये दोनों भाई शीघ्र ही गिरफ्तार होनेवाले हैं, और वे जेल भेज दिये जायेंगे। मुझे आशा है कि यदि ऐसी नौबत आ ही जाये तो उन्हें उत्तेजित नहीं होना चाहिए और अपना क्रोध काबूमें रखना चाहिए . . .।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ११–९–१९२१

३७. भेंट: संवाददाताओंको

[११ सितम्बर, १९२१ या उसके पूर्व]

डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर और श्री गांधीकी भेंटके[1] प्रकाशित विवरणोंके बारेमें एक प्रेस संवाददाता द्वारा यह पूछे जानेपर कि आपमें और उनमें क्या वार्तालाप हुआ था गांधीजीने कोई भी वक्तव्य देनेसे यह कहकर इनकार कर दिया कि यद्यपि हमारी भेंटमें कुछ भी गोपनीय नहीं था फिर भी दो सार्वजनिक व्यक्तियोंकी आपसी भेंटमें क्या-क्या बातें हुईं यह जाननेका जनसाधारणको क्या हक है? उन्होंने इसलिए भी कोई वक्तव्य देनेसे इनकार किया कि उनके कथनके अनुसार सभी मनगढ़न्त विवरणोंमें[2] मुझे और मेरे उद्देश्यको बदनाम करनेकी कोशिश की गई है, किन्तु मैं जानता हूँ कि मेरा उद्देश्य और मैं, दोनों ही कविके हाथोंमें सुरक्षित हैं; अखबारोंमें चाहे जो-कुछ कहा गया हो।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ११–९–१९२१

३८. असमके अनुभव — २

ब्रह्मपुत्रपर

जहाज नदीपर चल रहा है। मेरा तीसरे दर्जेमें मुसाफिरी करना तो कभीका बन्द हो चुका है। हम सब पहले दर्जेके डेकपर बैठे हुए हैं। जब कभी तीसरे दर्जेकी याद आती है, पहले या दूसरे दर्जेमें अपनी यात्रापर शर्म मालूम होती है। किन्तु यह भी ठीक है कि ऐसे लम्बे दौरेमें जहाँ विश्रामकी गुंजाइश नहीं है, मेरा स्वास्थ्य तीसरे दर्जेकी यात्रा बर्दाश्त नहीं कर सकता। तथापि, मैं यह मानता हूँ कि हम लोगों-को तीसरे दर्जेमें सफर करने लायक मजबूत होना चाहिए और हमारे शरीरको इस सबका खासा अभ्यास होना चाहिए। जबतक हम तीसरे दर्जेसे डरकर दूर रहेंगे तबतक उसकी हालत नहीं सुधर सकती, वहाँकी मुसीबतें जैसीकी-तैसी बनी रहेंगी। सैकड़ों कार्यकर्त्ता अगर पहले-दूसरे दर्जेमें ही मुसाफिरी करने लग जायें तो जनता बेचारीका सारा पैसा उनके सफर खर्चमें ही लग जाये और हमारी स्वराज्यकी नैया तिलभर भी आगे न बढ़ सके। रैयतका पैसा खर्च करते समय हमें हर बार विचार करना चाहिए। मैं यह इसलिए कह रहा हूँ कि इस सम्बन्धमें एक धनी आदमीकी कही गई बात मैं भूल नहीं पाता। वे स्वयं एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता हैं। मेरे खादीकी बात

१. ६ सितम्बरको कलकत्तामें।

२. १०–९–१९२१ के **स्टेट्समैन**में।

छेड़ते ही उन्होंने मुझसे कहा कि "हम लोगोंका हाल आपको मालूम नहीं होता। क्योंकि आपको तो जब चाहें तभी बैठनेको मोटर तैयार। एक प्याला माँगते ही दस प्याले बकरीका दूध हाजिर। खादी भी लोग आपको घर आ-आ कर दे जाते हैं। लेकिन मुझ-जैसे पैसेवाले आदमीको भी जब हर वक्त मोटरका और होटलोंका किराया देना पड़ता है और अपनी जरूरत-भरकी खादीके दाम चुकाने पड़ते हैं, तब तो जनताकी सेवा हमें अखरने लगती है और महँगी मालूम पड़ती है।" ये महाशय अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सदस्य हैं और देशकार्यमें पैसा खर्चते हुए हिचकते भी नहीं; लेकिन मैं यह समझ सकता हूँ कि वे जब बम्बई जाते होंगे, बीस रुपये रोजसे कम खर्च न आता होगा। मुझे उनकी दलीलमें काफी सार मालूम होता है। लेकिन इस समय तो मैं निरुपाय हूँ। मैं कमजोर हो गया हूँ और यह भी जानता हूँ कि इससे मेरी सेवा करनेकी शक्ति घट गई है। इसीलिए अब सब लोगोंको पैदल सफर करनेकी सलाह देनेकी हिम्मत नहीं पड़ती। चूँकि मैं खुद कमजोर हूँ, इस कारण कई बार दूसरोंको भी कमजोर समझकर उनपर नाहक ही ममता कर बैठता हूँ। वरना जनताकी सेवा करनेवालोंको ज्यादा खर्च करनेकी जरूरत ही नहीं पड़ती। तीसरे दर्जेका किराया इतना नहीं होता कि भारी जान पड़े; अलबत्ता जहाँ दुकान करें वहाँ वाहन आदि पर खर्च न किया जाये। भोजन और पोशाक भी सादे ही रहें। किन्तु हमने खुद अपने-को इतना आरामतलब बना लिया है कि लाखों आदमी जो काम रोज करते हैं, उसके लिए हम अपनेको असमर्थ मानते हैं।

मुझे करना तो था नदीका वर्णन, और मैं लिख गया वह सब जो भीतर खटकता रहता है। खैर! नदी समुद्रकी तरह विशाल जान पड़ती है। बहुत दूरीपर दोनों तरफके किनारे दिखाई देते हैं। नदीका पाट लगभग दो मील या इससे भी कुछ अधिक होगा। १५ घंटेका सफर है। नदीकी भव्य शान्ति मनोहर प्रतीत होती है। बादलोंमें छिपा हुआ चन्द्रमा, पानीपर अपनी हल्की रोशनी बखेरे है। स्टीमर बढ़ रहा है और उसके पंखोंसे पानी काटनेकी मन्द ध्वनि कर्णगोचर हो रही है। इसे छोड़कर सर्वत्र शान्ति छाई हुई है। पर फिर भी मेरे मनको चैन कहाँ? क्योंकि यह स्टीमर और यह महानद मेरे नहीं हैं। जिस सत्ताके अत्याचारने मेरी आँखें खोल दी हैं, जिसकी करतूतोंने देशको घायल, निस्तेज और भिखारी बना दिया है, उसी सत्ताकी मेहरबानीसे मैं नदी-पर इस जहाजमें बैठा हुआ यात्रा कर रहा हूँ — इस सारी शान्तिके बीच यह विचार मुझे विकल बनाये हुए है। तथापि मैं सत्ताको दोष नहीं दे सकता। तीस करोड़ हिन्दुस्तानी यदि अपने कर्त्तव्यको न समझें तो इसके लिए मैं सत्ताको दोषी कैसे कहूँ? सूदखोर मुझसे मनमाना वसूल करता है, इसके लिए उसे दोष दूँ या खुद अपनेको — जो उसे उतना सूद देता है। व्यापारीका तो धन्धा ही व्यापार करना है। मैं उससे लेन-देनका व्यवहार रखूँ या न रखूँ यह तो मेरी मर्जीकी बात है। मैं उससे सम्बन्ध ही क्यों जोड़ूँ? अगर मैं न चाहूँ तो विदेशी कपड़ा मेरे गले कौन मढ़ सकता है? इसलिए यह समझकर कि व्यापारीकी पीठपर जिस सत्ताका हाथ है, उसे दोष देना मेरी कमजोरी है, मैं शान्त हो जाता हूँ, और इस खयालसे कि मुझे जनसाधारणमें ही काम करना है, अपने कर्त्तव्यपालनमें लग जाता हूँ।

असमका हाथी

असम जिस प्रकार अपनी बुनाईकी कलाके लिए मशहूर है उसी तरह हाथियोंके लिए भी। भोजपत्रपर लिखी हुई, दो सौ वर्ष पुरानी हस्ति-विद्याकी एक पुस्तक भी मुझे दिखाई गई थी। उसमें मज़मूनके अलावा हाथी वगैराके कई खूबसूरत चित्र भी थे। उनके रंग अनूठे थे। वैसे सुहावने रंग क्वचित् ही दिखाई देते हैं। चित्रोंमें तारतम्यका खयाल भी इतना रखा गया है कि देखनेवालेके मनमें असमकी प्राचीन कलाके प्रति अभिमान उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकता।

एक हाथीकी कीमत ६,००० रुपयेतक आँकी जाती है। और वह बोझ ढोने और शिकारके अवसरोंपर काममें लाया जाता है। एक अनुभवी आदमीने मुझसे कहा कि जंगली हाथीको पकड़ते समय उसके साथ बड़ी क्रूरता बरती जाती है। हाथी संगीतप्रिय होता है, इस कारण कभी-कभी महावत गाना सुनाकर उसे अपना बना लेनेका प्रयत्न करता है। हाथीको हमारी भाषाकी अच्छी परख है। यहाँतक कि वह गुस्से या प्रेमके शब्दोंको भी पहचान लेता है। उसने मुझसे यह भी कहा कि 'शाबाश' शब्दसे असमका हरएक हाथी परिचित है। हाथीदाँत तो असममें बहुतायतसे होना स्वाभाविक ही है। मैं यह जानकर बहुत खुश हुआ कि असममें हाथीदाँतके लिए हाथी नहीं मारे जाते। यही नहीं, इसके लिए हाथियोंको मारनेकी मनाही भी है।

असमका रेशम

असममें दो तरहका रेशम होता है। और दोनों ही तरहका रेशम कीड़ोंसे पैदा होता है। एकका नाम है—अंडीकेरी और दूसरेका नाम मूँगा। अंडीका रेशम तैयार करनेमें कीड़ेका नाश नहीं किया जाता। उसका कोया रुईकी तरह काता जाता है। मूँगेका रेशम मूँगा खुद ही कातता है। जब कताई खतम हो जाती है तब मूँगेको धूपमें रखकर मार डालते हैं। इसके बाद कोयेको पानीमें उबालकर रेशम चरखीपर लपेट लिया जाता है। यह काम हमारे सामने करके भी दिखाया गया। दोनों तरहका रेशम असममें बहुतायतसे तैयार किया जाता है। इस उद्योगके चलते हुए भी वहाँ विदेशी रेशमका चलन बहुत बढ़ गया है, और बहुतसे जुलाहे स्त्री-पुरुष दोनों, तानेमें सिर्फ विदेशी रेशमका ही इस्तेमाल करने लगे हैं।

रुईकी क्रिया

रुईकी क्रिया भी मैंने देखी। मैं समझता हूँ कि आन्ध्रकी तरह महीन कपड़ा असममें भी तैयार होने लग जायेगा। हाल ही में तैयार किया हुआ ऐसा एक कपड़ा मुझे दिया गया है। दो सौ वर्ष पुरानी सूतकी महीन साड़ियाँ भी मुझे दिखाई गईं। अब कितनी ही जगह मिस्रकी कपासके पौधे भी लगाये जा रहे हैं। और मैंने सीधे उसकी बौंडीसे ही सूत कतते देखा। दूसरी तरहकी रुई आन्ध्रकी प्रणालीसे काती जाती है। हरएक बीजको पहले तो मछलीके दाँतसे सँवारते हैं, ताकि उसके सब रेशे अलग-अलग हो जायें। दाँतोंमें जो रुई रह जाती है उसे वैसी ही कातकर उस सूतसे खादी बुनते हैं। इसके बाद बिनौलेमें चिपकी हुई रुईको अलग करके धुना जाता है। हर बौंडीपर यही किया जाता है। इस तरहकी रुईको कातकर महीनसे-महीन

सूत तैयार किया जाता है। अगर असमकी स्त्रियोंमें उत्साह पैदा हो तो उनसे मिल सकनेवाली सहायताका पारावार ही न रहे। स्वदेशीके पालनमें मदद करनेकी असमकी शक्ति मुझे तो पंजाबसे भी ज्यादा मालूम होती है। असमकी औरतें पैसेकी गरजसे नहीं, बल्कि देशप्रेमके कारण ही कातेंगी और बुनेंगी। यहाँ भी स्त्रियाँ अपनी रुई स्वयं ही तैयार कर लेती हैं।

शोणितपुर

अब हम तेजपुर आ पहुँचे हैं। इसका पुराना नाम शोणितपुर है। कहा जाता है कि किसी अंग्रेज हाकिमको 'शोणितपुर' शब्दका उच्चारण कठिन मालूम हुआ। उसने जब शोणितका असमिया भाषामें अर्थ पूछा तो उसे मालूम हुआ कि असमिया लोग शोणितको 'तेज' कहते हैं। इसलिए उसने शोणितपुरका नाम तेजपुर रख दिया। कहा जाता है कि तेजपुर पहले बाणासुरकी राजधानी था; इसीसे पुराण-लेखकोंने उसे शोणितपुर लिखा है। आख्यायिका है कि उषाके लिए चित्रलेखा, अनिरुद्धको द्वारिकासे यहाँ उठाकर लाई थी। कहते हैं, अर्जुन ठेठ मणिपुरतक गया था। ब्रह्मपुत्रके पूर्वी किनारेपर पहला शहर पाण्डु है। पाण्डव लोग अज्ञातवासके समय वहाँतक आये थे। पाण्डुसे पाँच मीलके फासलेपर ब्रह्मपुत्रके किनारे ही गोहट्टी है जहाँसे हम तेजपुर पहुँचे हैं। गोहट्टीका भी प्राचीन नाम है। कहते हैं, हरिहरयुद्ध तेजपुरके पास ही हुआ था और श्रद्धालु लोग, जहाँ रुद्रने खड़े होकर युद्ध किया था, वहाँ उनकी पादुका भी बतलाते हैं। इस तरह मैं जहाँ जाता हूँ, वहीं इस बातके प्रमाण मिलते हैं कि पहले हिन्दुस्तान एक था।

बागान-मालिक-राज्य

तेजपुरकी आबादी ६ हजार होगी। लेकिन वहाँ नगरपालिका है, रेलवे और बिजलीकी रोशनी है और पानीके नल भी हैं। यह सब क्यों है? इसका उत्तर फौरन ही दिया जा सकता है। तेजपुरके नजदीक ही चायके बड़े-बड़े बागान हैं। बस इसी चायको ढोनेके लिए रेलें हैं और इस बन्दरगाहके रास्तेसे चाय भेजी जाती है। लोग यही मानते हैं कि असममें बागान-मालिकोंका राज्य है और अंग्रेजी राज्य तो है ही लेकिन कर्त्ता-धर्त्ता सब बागान-मालिक ही हैं। चाँदपुरमें गरीब मजदूरोंपर जो ज्यादती हुई थी वह मि० एन्ड्र्यूजका कहना है कि इन बागान-मालिकोंके ही लिए हुई थी।

ब्रह्मपुत्रका पानी गंगाकी तरह आरोग्यवर्धक नहीं माना जाता। इस कारण असममें कितनी ही जगह दरवाजेके सामनेसे नदीके बहनेपर भी लोग नलका पानी ही काममें लाते हैं। इसे कुछ खारोंसे निथारकर काममें लाया जाता है। खास तेजपुरमें ९० फुट ऊँचा एक हौज़ बनाया गया है, उसमें पानी निथारा जाता है और फिर वह नलके द्वारा लोगोंतक पहुँचाया जाता है।

पूर्व बंगालके अनुभव

अवर्णनीय दृश्य

डिब्रूगढ़ छोड़नेके बाद रेलगाड़ी ऐसे कितने ही प्रदेशोंसे होकर गुजरी, जिनकी शोभा अभीतक आँखोंके आगे बनी है। लमडिंग जंक्शनको असमकी हद कह सकते

हैं। इसके बाद रेल धीरे-धीरे ऊपरको चढ़ती है और एकके बाद दूसरे पहाड़पर लगातार चढ़ती ही जाती है। पूनाके रास्तेमें पड़नेवाले घाट, कह सकते हैं इनके आगे कोई चीज नहीं। हवा एकदम बदल जाती है। बीमार आदमी भी तरोताजा हो जाता है। जहाँ देखिए वहीं हरीभरी पहाड़ियाँ। इस हिस्सेमें बादलोंका तो अन्त ही नहीं है। कई बार तो बादल टेकड़ियोंके नीचे ही रह जाते हैं। कभी-कभी भापके गोले ऊपर जाकर बादलोंमें मिलते हुए साफ तौरपर नजर आते हैं। पहाड़ोंमें से निकलनेवाली बड़ी-बड़ी नदियाँ तो मानो रेलके साथ शर्त बदकर दौड़ती हुई नजर आती हैं। ऐसा दृश्य मैंने तो दुनियामें और कहीं नहीं देखा। आफ्रिका, इंग्लैंड वगैरहके भिन्न-भिन्न दृश्य मैंने काफी देखे हैं; परन्तु इसके मुकाबलेमें टिकने लायक कोई भी दृश्य मुझे नहीं दिखा।

हमें सिलचर जाना था। सिलचरमें पानी खूब बरसता है। दो सौ इंचमें तो कोई शक ही नहीं है। इससे वहाँ बेहद नमी है। जहाँ देखिए वहीं तालाब भरे हुए हैं। सिलचर पहाड़की तलहटीमें बसा है। इससे वहाँ हम गर्मीसे परेशान हो रहे थे। परन्तु लोगोंके दिलमें इतना प्रेम उमड़ रहा था कि बरसते पानीमें भी खुले मैदानमें हजारों आदमी जमा हो गये थे। अभिनन्दनपत्र तो हर जगह खादीके ही वस्त्रपर दिया जाता है। आडम्बर-भरे अभिनन्दनपत्रोंका तो जमाना ही अब चला गया। मुझे अन्देशा था कि इस तरफके लोग अंग्रेजी भाषाकी पुकार मचायेंगे। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। लोग हिन्दुस्तानी भाषाके बहुत आदी हो गये हैं — इतने कि बंगालमें तो अब अंग्रेजी बोलनेवालेको ही शरमाना पड़ता है। सिलचरमें हम बाबू कामिनीकुमार चन्दाके यहाँ ठहरे थे। असहयोग आन्दोलनके पहले आप शाही परिषद्के मेम्बर थे; और वकालत करते थे। अब आपने दोनों काम छोड़ दिये हैं और असहयोगका काम कर रहे हैं। उनकी धर्मपत्नी, उनकी लड़कियाँ, सब चरखा कातती हैं। यहाँके चरखोंकी बनावट काम करनेकी दृष्टिसे सुविधाजनक नहीं है। चरखे बहुत छोटे और कमजोर; पटिया बहुत ही छोटी। उसपर सूत भी कम निकलता है। तो भी राष्ट्रीय पाठशाला इत्यादि कई जगहोंपर चरखेने अपना आसन तो बिछा ही लिया है।

एक दिन सिलचर रहकर हम लोग सिलहट गये। यहाँ मुसलमानोंकी आबादी कोई ५५ प्रतिशत है। इस तरफके मुसलमानोंमें दूसरी जगहकी बनिस्बत जागृति कम है। इससे, मुसलमानोंकी इतनी ज्यादा तादाद होते हुए भी, खिलाफतके स्मर्नाके चन्देमें सिर्फ २१६ रुपये जमा हुए। सिलहटमें एक मुसलमान वकील हैं — मौलवी मुहम्मद अब्दुल्ला। सारे कामका भार उन्हींपर है। उनके प्रयत्नसे वहाँ एक बुनाईकी पाठशाला स्थापित हुई है। उसीके सिलसिलेमें बढ़ईगिरीका काम भी होता है। वहाँ चरखे और करघे बनाये जाते हैं। ये सब काम असहयोग आन्दोलनके बाद ही हुए हैं। सिलहटमें सभा ईदगाहमें की गई थी। मौलाना मुहम्मद अली कहते थे कि ऐसी खूबसूरत ईदगाह तो हमने कहीं नहीं देखी। ईदगाह जिस टेकड़ीपर है वह सिलहटकी सुन्दरसे-सुन्दर टेकड़ी है। उसपर कोई पाँच हजार आदमी बैठ सकते हैं। चारों ओर हरियाली बिछी हुई है। नीचे खुला मैदान और उसमें तालाब है। पूरी पहाड़ीपर, नीचे-ऊपर सब दूर लोग खचाखच भरे थे। सिलहटकी आबादी २० हजार होगी। पर उस

सभामें तो २० हजारसे भी ज्यादा लोग रहे होंगे क्योंकि वहाँ तमाम जिलेके लोग उमड़ पड़े थे।

चाटगाँग

सिलहटसे हम चटगाँव पहुँचे। इसका बंगला उच्चारण ऊपर लिखे अनुसार है। यह बहुत बड़ा और सुहावना बन्दरगाह है। यह चार गाँवोंसे मिलकर बना है, इसीसे वह चटगाँव कहलाता है। बहुतसे अरबी लोग वहाँ रहते हैं और एक बड़े पीर भी वहाँ हो गये हैं, इससे वह इस्लामाबाद भी कहा जाता है। कितने ही बौद्ध भी वहाँ आकर बस गये थे, इससे बौद्धोंने भी उसका एक अलग नाम रखा था। चटगाँव के पास ही विशाल नदी बहती है और उससे कुछ ही दूरी पर बंगालकी खाड़ी है। यहाँ अनेक पहाड़ियाँ हैं। इससे यहाँका प्राकृतिक सौन्दर्य देखते ही बनता है। यहाँ जो बड़ी-बड़ी पहाड़ियाँ हैं उनपर अदालतों और रेलवेके दफ्तर हैं। यहाँके नामी वकील श्रीयुत एन० गुप्तने बड़ा काम किया है। अपनी भारी वकालत छोड़ दी है। अब आप स्वयंसेवकोंके कप्तान हैं। बंगालके सैंकड़ों स्वयंसेवक खादीके कुरते और स्वराज्यकी टोपी पहनते हैं। बम्बईकी तरफके स्वयंसेवक धोतीको काममें असुविधाजनक मानते हैं। यह बात यहाँके स्वयंसेवकोंमें नहीं पाई गई। पूर्व बंगालके लाखों मुसलमान भी धोतियाँ ही पहनते हैं। हिन्दू लोग ज्यादातर नंगे सिर रहते हैं। हाँ, मुसलमान भाई अलबत्ता टोपी लगाते हैं। दोनोंमें इतना ही भेद दिखाई देता है। परन्तु खादीका प्रचार होनेके बादसे तो कितने ही बंगाली हिन्दू-स्वयंसेवक भी टोपी लगाने लगे हैं।

अलीभाई गिरफ्तार हों तो?

सिलहट पहुँचनेके बाद मैंने अलीभाइयोंकी गिरफ्तारीके बारेमें तार पढ़ा। तभीसे मैंने अपने भाषणोंमें उसके भी विषयमें कुछ कहना शुरू किया। मुझे पूर्ण विश्वास है हैं, कि ये दोनों भाई बिलकुल निर्दोष हैं। बल्कि जबतक वे शान्तिमय असहयोगमें शामिल हैं तबतक वे कभी तन, मन और वचनसे न अशान्ति चाहेंगे, और न करेंगे; वरन् वे दूसरोंको वैसा करनेसे रोकेंगे। इस प्रतिज्ञापर वे अटल हैं। और वे बहादुर तो हैं ही। डरके मारे वे अशान्तिका प्रचार न करते हों या स्वयं शान्ति भंग न करते हों, सो बात नहीं है। बल्कि वे तो बुद्धिपूर्वक अपने गुस्से और जोशको रोके हुए हैं। ऐसे बेगुनाह लोगोंके जेल भेजे जानेपर लोगोंके दिलको चोट पहुँच सकती है। पर ऐसे समय लोग अगर सीधी-सच्ची राह पकड़ लें तो नैया पार हो जाये, और अगर बदहवास होकर उलटे रास्ते जाने लगें तो बरबादी ही समझिए। अतएव अगर अलीभाई जेल भेजे गये तो उस दशामें लोगोंके लिए यही एक मार्ग है कि वे शान्तिका पूर्ण अवलम्बन करें और स्वदेशीके पालनमें अबतक जो शिथिलता उन्होंने दिखलाई है उसे दूर करके तीव्रता दिखायें तथा अपने पास जो-कुछ विदेशी कपड़ा रख छोड़ा हो उसे 'स्वाहा' कर दें। जिन लोगोंने अबतक चरखा कातनेमें आलस्य किया हो वे आलस्य छोड़ दें और अपना कुछ समय सूत कातनेमें दें। जो लोग अबतक सरकारी मदरसोंमें अपने लड़कोंको भेजते रहे हैं वे, इस पापसे छुटकारा

पा लें। जिन लोगोंकी हिम्मत आजतक वकालत छोड़नेकी नहीं हुई, वे वकालतको ठोकर मार दें। जब सभी लोग ऐसा करेंगे तभी और सिर्फ तभी, खिलाफतका काम बनेगा और स्वराज्य मिलेगा, एवं हम अपने ही हाथोंसे तुरन्त जेलके दरवाजे खोलकर अपने बेगुनाह भाइयोंको और उन लोगोंको जो सरकारके कोपके शिकार होकर जेलमें बन्द हैं, बाहर ले आ सकेंगे। यह बात मैंने श्रोताओंको खूब अच्छी तरह समझाई।

स्वयंसेवक

चटगाँवमें मैंने स्वयंसेवकोंके कामको बढ़ता हुआ पाया। उनमें नियमोंका पालन करनेकी शक्ति अधिक देखी। यहाँ बड़ा भारी जुलूस निकाला गया था। तो भी मोटरके पीछे भीड़ नहीं हुई। हजारों लोग शान्तिके साथ कतार-बन्द खड़े थे और मोटर बिना बाधाके चलती रही। जयघोष इत्यादिकी बन्दी कर दी गई थी। इससे वह दृश्य मुझे बड़ा भव्य लगा।

हड़ताली रेल-मजदूर

हड़ताली रेल-मजदूरोंके विशाल समुदायसे मेरी भेंट यहीं हुई। उनके साथ मैंने काफी समय बिताया। उनके समक्ष किया हुआ भाषण[1] 'नवजीवन' में प्रकाशित होगा इसलिए यहाँ उसके बारेमें कुछ नहीं लिखता।

बारीसाल

चटगाँवसे रवाना होकर हम बारीसाल गये। बारीसाल जाते हुए रास्तेमें चाँदपुर पड़ता है। चाँदपुरमें उस स्थानको देखा जहाँ गुरखाओंने बेचारे बेकस मजदूरोंपर ज्यादती की थी। देखकर हृदय रो उठा। अपनी गुलामीकी याद आई। ये तो गरीब मजदूर थे। उनके लिए जो हड़तालें हुईं उनसे हिन्दुस्तान कुछ चौंका। परन्तु अगर बड़े आदमियोंको बन्दूकके कुंदे मार-मारकर आधी रातको घरसे बाहर निकाला होता तो आज सारे हिन्दुस्तानमें हाहाकार मच जाता। स्वराज्यके तो मानी यह हैं कि राजा और रंक सबके साथ एक-सा इन्साफ हो। क्या हमारे स्वराज्यमें ऐसा होगा? न हो तो वह स्वराज्य हरगिज नहीं हो सकता।

बारीसाल, प्रख्यात बुजुर्ग, बाबू अश्विनीकुमार दत्तका शहर है। इस प्रान्तमें धानकी फसल बहुत अधिक होती है। श्रीयुत अश्विनीकुमार दत्तने चालीस वर्ष पहले ५० हजार रुपया लगाकर एक बड़ी पाठशाला स्थापित की थी। वह आज राष्ट्रीय पाठशाला है। उसके मुख्य अध्यापक हैं श्रीयुत जगदीश बाबू। आप बाल ब्रह्मचारी हैं। इस समय उनकी अवस्था ५० वर्षसे ज्यादा है। सब लोगोंने मुझसे कहा कि वे बहुत ही सच्चरित्र और निरभिमानी विद्वान् पुरुष हैं।

बारीसालमें, कह सकते हैं कि, स्वदेशीका काम ठीक चल रहा है। पूर्वोक्त पाठशालाके विद्यार्थियोंका काता हुआ सूत मुझे दिखाया गया था। वह बहुत ही महीन था। एक करघा-विभाग भी है। उसमें कोई ८० करघे चलते हैं। उनके पास इस

१. देखिए "भाषण: चटगाँवमें, रेल कर्मचारियोंके समक्ष", ३१-८-१९२१।

समय १५ हजार रुपयेसे ऊपर करघोंपर तैयार हुआ माल है। इस करघा-गृहमें जितनी सफाई मैंने देखी उतनी सूरतमें श्रीयुत जोशीके कारखानेके सिवा और कहीं नहीं देखी। सूतका एक धागा या तिनकेका एक टुकड़ातक मैंने जमीनपर पड़ा हुआ नहीं देखा। काम भी साफ-सुथरा था। इसी वर्षमें उस बुनाईशालाका जन्म हुआ है।

बारीसालमें चटगाँवकी भी अपेक्षा स्वयंसेवकोंमें अधिक नियमबद्धता पाई गई। सभा बड़ी भारी थी तो भी व्यवस्था भरपूर थी। हम लोगोंके जानेका रास्ता स्वयंसेवकोंने खुला रख छोड़ा था। पाँव न छूनेका अनुरोध तो लोगोंसे पहले ही से कर दिया गया था। इससे हमें बहुत सुविधा हुई।

बारीसाल एक ऐसा शहर है जहाँ बंग-भंगके आन्दोलनोंके दिनोंमें हिन्दू और मुसलमान दोनों, आपसी कलहके रहते हुए भी, मिलजुल कर काम करते थे। सब लोग इसका श्रेय बाबू अश्विनीकुमार दत्तको देते थे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-९-१९२१

३९. पतित बहनें

मुझे बारीसालमें अनेक उल्लेखनीय अनुभव हुए। उन सबका वर्णन करने योग्य समय तो नहीं है; फिर भी एक प्रसंगका उल्लेख न करना असम्भव है। वह है बारीसालकी पतित बहनोंका। इस दृश्यको मैं कभी नहीं भुला सकता। बारीसालकी कितनी ही पतित बहनोंके नाम कांग्रेसके सदस्योंकी तरह दर्ज हैं। उन्होंने तिलक स्वराज्य कोषमें भी चन्दा दिया है। उनकी संख्या ३५० के करीब होगी। उन्होंने मुझे पत्र लिखा था कि हम आपसे मिलना चाहती हैं। वे कांग्रेसमें कुछ अधिक कार्य करना चाहती थीं। उनका कहना था कि वे क्यों न चुनावके लिए खड़ी हों और चुनकर आ जानेपर कांग्रेसमें कोई पद क्यों न सँभालें? ज्यों ही मैं रातको सभासे आया, मैंने कोई सौ बहनोंको एक कोनेमें खड़े देखा। मुझे ध्यान आ गया और मैं बड़े आदरके साथ उन्हें छतपर ले गया। एक दुभाषियेको साथ रखकर शेष पुरुषोंको विदा कर दिया। मैंने उनसे कहा कि तुम दिल खोलकर अपनी बात मुझसे कहो। उनमें चार पाँच दस वर्षकी लड़कियाँ भी थीं। कुछ प्रौढ़ और बाकीकी बीससे तीस वर्षके अन्दर होंगी। उनके साथ मेरी जो बातचीत हुई, मैं उसका सार संवादके रूपमें यहाँ दे रहा हूँ:

सवाल: बहनो, तुम यहाँ आई यह बहुत अच्छा हुआ। मैं तो तुम्हें अपनी बहन और बेटियोंके समान समझता हूँ। मैं तुम्हारे दुःखमें हाथ बँटाना चाहता हूँ; लेकिन यदि तुम मुझसे कुछ छिपाकर रखोगी तो मैं तुम्हें सहायता देनेमें असमर्थ हो जाऊँगा।

जवाब: आप जो कुछ पूछेंगे हम उसका उत्तर बिलकुल सही-सही देंगी।

सवाल: तुममें से कुछकी उम्र ज्यादह मालूम होती है। क्या वे भी अबतक तुम्हारे इस पेशेमें अटकी हुई हैं?

जo: नहीं, जिनकी उम्र ज्यादह हो गई है, वे भीख माँगकर अपना पेट भरती हैं।

सo: ऐसा करना शोभा देता है?

जo: यह पेट सब-कुछ कराता है।

सo: ये लड़कियाँ तो छोटी-छोटी हैं। क्या इनका भी यही हाल है?

जo: हम तो यह आशा करके आपके पास आई हैं कि आप कोई रास्ता बतायेंगे। हममें से कोई भी इस पेशेको नहीं करना चाहती।

सo: अच्छा, जो जवान हैं उनका क्या विचार है? इस पेशेकी भोग-सामग्री पर उनका मन ललचाता तो नहीं?

जo: जी हाँ, कुछ ऐसी अवश्य हैं।

सo: तुम लोगोंके बाल-बच्चे भी होते होंगे?

जo: जी, किसी-किसीको होते हैं।

सo: यहाँ तुम्हारी कुल संख्या कितनी होगी?

जo: तीन सौ पचास।

सo: इसमें बाल-बच्चे कितने हैं?

जo: कोई दस।

सo: लड़के या लड़कियाँ?

जo: कोई छः लड़की और बाकी लड़के।

सo: लड़कोंका क्या करती हो?

जo: एक लड़का बड़ा है। उसकी शादी हममें से ही एकके साथ कर दी गई है।

सo: तुम अपनी लड़कियाँ मुझे दोगी?

जo: अगर आप परवरिश करें तो हम दे देंगी।

सo: कितनी बहनें इस पेशेको छोड़ना चाहती हैं?

जo: हम सभी।

सo: जो काम मैं बताऊँ उसे करोगी?

जo: हम जानती हैं, आप क्या काम बतायेंगे। हममें से कुछने तो सूत कातना शुरू भी कर दिया है।

सo: यह सुनकर तो मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। पर जिन बहनोंने कातना शुरू किया है उन्होंने अपना पेशा छोड़ दिया है या नहीं?

जo: पेशा तो हमारे लिए आवश्यक बना हुआ है। केवल सूत कातकर हम अपना पेट कैसे पाल सकती हैं?

सo: आजकल तुम कितना कमा लेती हो? तुम जवाब देनेमें शरमाती हो। तुम्हारी शर्मका मतलब मैं समझ सकता हूँ। मैं तुम्हारे साथ बात तो कर रहा

हूँ, पर मेरे दिलमें आग लग रही है। जो बात हो वह इस वक्त तो तुम मुझसे कह ही दो।

ज० : बहुत-सी साठ रुपया महीना पैदा कर लेती हैं। २ रु० रोज पड़ते हैं।

स० : यह तो मैं जानता हूँ कि इतनी आमदनी सूत कातकर तुम नहीं कर सकतीं। परन्तु तुम जो अनेक प्रकारके मनमोहक श्रृंगार विलास करती हो, इन्हें तो अब छोड़ ही देना होगा। मैं अकेले तुम्हींसे यह बात कहता हूँ, सो नहीं। मेरी धर्मपत्नीने भी श्रृंगारोंका त्याग कर दिया है। मेरे यहाँ कम उम्रकी लड़कियाँ हैं। उनके माँ-बाप उन्हें बढ़िया कपड़े-गहने दे सकते हैं। तो भी वे खादीकी धोतियाँ पहनती हैं और गहना तो किसी तरहका भी नहीं पहनतीं। इस कारण तुमसे बनाव-श्रृंगार छोड़ देनेका इसरार करते हुए मुझे जरा भी दुःख नहीं होता।

ज० : हम अपना जीवन सादा बनानेके लिए कोशिश करेंगी, कोई तुरन्त, कोई धीरे-धीरे। हममें से इस बहनने तो अपना सब कुछ रामकृष्ण मठको अर्पण कर दिया है और खुद अब भिक्षा माँगकर रहती है।

स० : इस बहनकी मैं वन्दना करता हूँ। अच्छा किया जो उसने सर्वस्व त्याग दिया। परन्तु मैं देखता हूँ कि (उसकी ओर रुख करके) तुम्हारे हाथ पैर अच्छे हैं। अगर तुम सूत कातती हुई सादगीसे रहो तो और भी पुण्य हो। मैं तो यह चाहता हूँ कि हिन्दुस्तानका ऐसा एक भी भाई या बहन, जिसके हाथ-पैर दुरुस्त हों, भीख न माँगे — भीख माँगना एक शर्मकी बात समझे। ऐसा कहनेका समय अब आ गया है। चरखा कामधेनु है। यह हमारे हाथ लग गई है। तुम बहनोंके महज सूत कातने-भरसे मुझे सन्तोष नहीं हो सकता। तुम्हें बुनना और धुनना भी सीखना चाहिए। तब तुम अपनी आजीविका पूरी तरह प्राप्त कर सकोगी।

ज० : आप हमें रास्ता बताइये। हम जरूर उसके मुताबिक चलेंगी।

स० : तुम कितनी बहनें कल ही से अपना पेशा छोड़ देनेको तैयार हो?

इसके जवाबमें ११ बहनें उसी वक्त खड़ी हो गईं। मैंने उनसे कहा कि खूब विचार कर लो। उन्होंने कहा कि हम अपने निश्चयपर कायम रहेंगी। विचार तो पहले ही से हमने कर रखा था। अब उसके अनुसार काम किस तरह करें; इसी उलझनमें थीं। इसलिए मैंने कहा :

"अब तुम शादीका तो खयाल ही छोड़ दो। पर अगर तुम सचमुच शुद्ध हो जाओ तो भूतकालमें तुमने जो कुछ किया है संसार उसे भूल जायेगा। तुम गृहस्थाश्रमसे अलग होकर संन्यासिनी हो सकती हो और भारतवर्षकी सेवा कर सकती हो। अगर तुममें से बहुत सी बहनें रोज बारह घंटेतक, ईश्वरका भजन करती हुई काता-बुना करें तो प्रायः सारे बारीसालको अकेली तुम ही कपड़ा दे सकती हो। तुम्हारी श्रेणीकी हिन्दुस्तानकी सारी बहनें अगर यह गन्दा काम छोड़कर कातनेका पुण्य कार्य करने लगें तो सहज ही भारतवर्षका उद्धार हो जाये। इसलिए मैं उम्मीद करता हूँ कि तुम ग्यारह बहनें अपने निश्चयपर दृढ़ रहोगी। मैं तो मुसाफिर हूँ। पर

मैं यहाँके अगुओंसे जोर देकर सिफारिश कर जाऊँगा और मुझे यकीन है कि यहाँकी कांग्रेस कमेटी तुमको पूरी-पूरी मदद देगी। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे।"

पाठको, आप चाहे भाई हों, चाहे बहन, मैं नहीं कह सकता कि इसे पढ़कर आपके मनपर और हृदयपर क्या असर होगा। मैंने आपके सामने पूरा वर्णन नहीं दिया है। यह तो अपनी शक्तिके अनुसार उसकी छाया-भर अंकित की है। चीजकी असलियत तो प्रत्यक्ष देखनेसे ही मालूम होती है। मैं तो स्त्रियोंके प्रति किये गये पुरुषोंके अपराधकी नाप-तौल करता हुआ मारे शर्मके मरा जा रहा था। ये बहनें जानबूझकर इस पापमें नहीं पड़ीं। पुरुषोंने उन्हें इसमें गिराया है। अपने विषय-भोगके लिए उसने स्त्री-जातिके ऊपर घोर अत्याचार किया है। जिनको इस बातपर दर्द होता हो उन्हें चाहिए कि वे प्रायश्चित्तके रूपमें इन पतित बहनोंको हाथ बढ़ाकर सहारा दें। जब जब इन बहनोंका चित्र मेरी आँखोंके सामने आता है तब-तब मुझे खयाल होता है कि अगर ये मेरी ही बहनें या लड़कियाँ होती तो — ? और 'होती तो' क्यों, हैं ही। उनको उठाना मेरा काम है; प्रत्येक पुरुषका काम है। इसीसे मुझे चरखेका स्वर बड़ा प्यारा लगता है। यह स्त्रियोंकी सुरक्षा करनेवाला किला है। हिन्दुस्तानमें रहनेवाली ऐसी बहनोंको सहारा देनेवाली दूसरी कोई चीज मुझे नहीं दिखाई देती। परन्तु जबतक हरएक शहरके रहनेवाले साधु पुरुष यह काम उठा न लें तबतक यह हो नहीं सकता। बारीसालमें इन बहनोंतक पहुँचनेवाले साधुचरित शरत्कुमार घोष और उनके साथके एक असहयोगी वकील भूपति बाबू हैं। मैंने तो सिर्फ उनके तैयार किये हुए क्षेत्रसे लाभ उठा लिया।

बहनो, अब यह सब मालूम हो जानेके बाद तो तुमको भी इसपर विचार करना है। पतित बहनोंके हृदय-मन्दिरमें तो तुम्हीं प्रवेश कर सकती हो। जबतक ऐसी पतित बहनोंके उद्धारके लिए स्वयं तुम कमर न कसोगी तबतक मुझ जैसे लोगोंके प्रयत्न भी निष्फल होंगे।

स्वराज्यका अर्थ है — पतितोंका उद्धार।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११–९–१९२१

४०. टिप्पणियाँ

बालकोंका आशीर्वाद

मुझे बहुतसी बहनें और नवयुवक तो पत्र लिखा करते हैं; परन्तु बालकोंके पत्र शायद ही कभी आते हैं। एक पत्र अनायास आ गया है, उसे यहाँ देता हूँ—

> **आपकी आज्ञाके अनुसार मैं बहुत-कुछ करना चाहता हूँ। मैंने खादी पहनना शुरू कर दिया है। मैं और . . . .[1] पहले ही से असहयोगको मानते हैं। . . . . .[2] मानता नहीं था, पर उसे अब इसमें पूरा विश्वास हो गया है। यदि हिन्दुस्तानके सारे बालकोंको आप असहयोगमें शामिल कर लें तो जरूर विजय प्राप्त करेंगे।**

मैं जहाँ कहीं जाता हूँ, इस धर्म युद्धमें बहनोंके आशीर्वाद माँगता हूँ। क्योंकि मेरा विश्वास है कि उनका हृदय कोमल और पवित्र होता है। उनके दिलमें दाँव-पेंच और भेद-भाव नहीं रहता। वे तो इस संग्रामको पूरी तरह धर्म-युद्ध मानती हैं।

परन्तु बालकोंका हृदय तो बहनोंके हृदयसे भी अधिक निर्दोष होता है। बालकोंका आशीर्वाद किस तरह प्राप्त किया जाये? बिना अपने माँ-बापकी आज्ञाके भला वे एक कदम भी रख सकते हैं? इसलिए मैंने बालकोंके साथ सिवा विनोदके और कुछ नहीं किया। पर जब यह पूर्वोक्त पत्र मिला तब तो मुझे बड़ा हर्ष हुआ। मैं यह जानता हूँ कि उसकी भाषा किसी बालककी लिखी हुई नहीं है। यह पत्र बहुत करके उनके मास्टर साहबकी प्रेरणाका फल होगा। परन्तु मेरी माँग और मेरी इच्छा यही रही है कि माँ-बाप अपने बालकोंको सामान्य धर्मकी शिक्षा दें, पापके साथ असहयोग करना और शान्तिके शस्त्रका प्रयोग करना सिखायें, एवं इस धर्म-कार्यमें उनका आशीर्वाद प्राप्त करें।

इस संग्राममें क्या स्त्रियाँ, क्या बच्चे, क्या लूले-लँगड़े, सब शामिल हो सकते हैं, और ऐसा ही होना भी चाहिए। जितनी ही अधिक संख्या उनकी होगी उतनी ही जल्दी विजय प्राप्त होगी। इनमें न कोई ऊँचा है, न कोई नीचा; न कोई छोटा, न कोई बड़ा। बड़ा तो वही है जिसका हृदय बड़ा है; और जिसका हृदय छोटा है वही छोटा और अपाहिज है। इसलिए बालकोंका आशीर्वाद मुझे बड़ा मधुर मालूम होता है। वाइसरायकी मेहरबानीसे चाहे स्वराज्य न मिले, परन्तु बालकोंके निर्मल हृदयसे निकले आशीर्वचनोंसे अवश्य मिल सकता है।

दिवाली किस तरह मनायें

एक सज्जन कहते हैं कि इस बारकी दिवाली किस तरह मनाई जाये, इसके विषयमें यदि आप पिछले सालकी तरह कुछ न लिखेंगे तो बहुतसे लोग गफलतमें रह जायेंगे और बेकाम बहुत-सा खर्च कर डालेंगे। उन्होंने मुझे यह अच्छी याद दिला

१ तथा २. साधन सूत्रमें नाम नहीं दिये गए हैं।

दी। दिवालीको अभी दो महीने हैं। इस बीच तो हम स्वराज्य प्राप्त करके सच्ची दिवाली मना सकते हैं। अतएव हम ऐसा करें कि इस मासमें विलायती कपड़ेका पूरा बहिष्कार कर डालें, और ऐसी स्थिति प्राप्त कर लें जिसमें अपना आवश्यक कपड़ा चरखेके द्वारा तैयार हो सके और फिर अक्तूबरमें स्वराज्य प्राप्त करके हम सच्ची दिवाली मना सकते हैं। दिवाली मनानेकी असली तैयारी तो यह है कि हम दिवालीके पहले ही स्वराज्य प्राप्त कर लें। इतने दिनोंमें हम स्वराज्य क्यों नहीं प्राप्त कर सकेंगे? इसमें अगर कोई कठिनाई है तो वह महज हमारी कमजोरीकी ही है।

लेकिन यदि दिवालीके पहले स्वराज्य न मिल सके तो फिर हमें क्या करना चाहिए? बस, मातम मनाना चाहिए। न बढ़िया खाने बनाये जायें, न दावतें दी जायें, न नाच-गान किया जाये। बस, संयमके साथ रहकर ईश्वर-प्रार्थना की जाये। भरतने जब चौदह वर्षतक तपस्या की थी तब कहीं दिवाली मनानेका समय आया था। अब क्या हम इससे उल्टा चलें? कु-समयमें गाना किस कामका? बिना भूखके खाना किस कामका? स्वराज्यके बिना उत्सव किस बातका? दिवालीके दिन सादेसे-सादा भोजन करना चाहिए, प्रातःकाल उठकर भगवान्‌का भजन करना चाहिए और तमाम दिन चरखा कातना चाहिए। उस रोज खादीके सिवा दूसरा कोई कपड़ा बदनपर न डाला जाये। और कोई वस्त्रदान करना चाहे तो वह भी खादीका ही किया जाये। पटाखे तो हम छोड़ ही कैसे सकते हैं?

इस तरह दिवाली मनानेकी दो विधियाँ हैं — एक स्वराज्य प्राप्त करके दिवाली मनाई जाये, और दूसरी, स्वराज्य प्राप्त करनेकी तैयारी की जाये। अब इन दोमें से किस रीतिसे दिवाली मनायें, यह बात तो हमारी शक्तिके ऊपर अवलम्बित है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-९-१९२१

४१. भाषण : मिदनापुरमें[१]

१३ सितम्बर, १९२१

श्री गांधीने कहा :

मिदनापुरमें मेरा जिस तरहका स्वागत किया गया है उसे देखकर मैं यह नहीं मान सकता कि बंगालका शिक्षित वर्ग मुझसे विलग हो गया है या यह कि उसने स्वराज्य प्राप्तिके लिए मेरे आन्दोलनको पसन्द नहीं किया है।

इसके बाद उन्होंने मिदनापुरके निवासियोंको स्वदेशी अपनाने, अपने प्रचारकार्यमें अहिंसात्मक प्रकृति कायम रखने, और हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए प्रयत्न करनेको कहा। यदि ये तीनों बातें लोगोंके मन, वचन और कर्ममें सर्वोपरि रहें तो मेरा

१. एक स्थानीय कालेजके खेलके मैदानमें।

विश्वास है कि -- आगामी अक्तूबरतक यदि नहीं तो -- चालू वर्षके अन्ततक तो स्वराज्य प्राप्त हो ही जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १५-९-१९२१

४२. तार : डाक्टर टी० एस० एस० राजनको

[१४ सितम्बर, १९२१ के पूर्व]

आप एक छोटे दौरेकी[1] व्यवस्था करें लेकिन प्रतिदिन तीन घंटे मौन रहूँगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ११-१०-१९२१

४३. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

मद्रास जाते हुए
१४ सितम्बर, [१९२१]

मेरे प्यारे चार्ली,

महादेवने मुझे शान्तिनिकेतनका सजीव विवरण दिया है। उससे मुझे दुःख हुआ है। वहाँ पारस्परिक मतभेद और कटुता है। उसने यह भी कहा है कि तुम भी उस आन्तरिक झगड़ेसे घबरा उठे हो। मैं जानता हूँ कि तुम अपनी शान्ति हासिल कर लोगे। इस संघर्षमें तुम मेरा साथ दो चाहे न दो, तुम मेरे लिए वैसे ही बने रहोगे जैसे कि पोलक हैं। मुझे यह भी ज्ञात है कि तुम अपनी अन्तरात्माके निर्देशके अनुसार ही चलोगे। मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे कारण दुःखी न हो।

महादेवने मुझे बताया है कि तुमने मेरा बनारसीदासको बुला लेना नापसन्द किया है। किन्तु मैं ऐसा कहाँ कर रहा हूँ। उसने मुझे लिखा था और मुझसे जबानी भी कहा था कि जहाँतक तुम्हारा सवाल है तुमने उससे कह रखा है कि वह आजाद है; जहाँ रहना चाहे, रहे। उसे जो काम करना है उसकी दृष्टिसे मैंने उसे सलाह दी है कि बम्बईमें रहना बेहतर रहेगा। और उसने फैसला कर लिया है। किन्तु वह शान्तिनिकेतनमें रहनेके लिए स्वतन्त्र है और मैं अब भी, जबतक वह प्रवासियोंके हितके लिए काम करता रहेगा, उसके लिए धन जुटानेकी कोशिश करूँगा।

तुम्हारी पूर्वी आफ्रिकाकी प्रस्तावित यात्राके बारेमें नटराजनका[2] पत्र संलग्न करता हूँ।

१. मद्रास प्रान्तका दौरा।

२. बम्बईके **इंडियन सोशल रिफॉर्मर**के सम्पादक।

मैं मद्रासमें आठ दिन ठहरनेकी उम्मीद कर रहा हूँ।

सस्नेह

तुम्हारा,
मोहन

[पुनश्च] मार्फत कांग्रेस कार्यालय

मैंने संलग्न पत्र अभी देखा है। मैंने 'स्टेट्समैन'[1] में इसका मूल विवरण पढ़ा है। मुझे लगा कि कविका कोई सम्बन्धी इस प्रकारकी असत्य बात नहीं लिख सकता। भेंटके[2] समय कोई सम्बन्धी उपस्थित नहीं था और मैंने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया। परन्तु जाहिर है कि इसके पीछे किसी सम्बन्धीका हाथ जरूर है, नहीं तो बंगाली लोग इसे महत्व कदापि न देते। क्या कवि इसे नहीं पढ़ेंगे और यदि यह असत्य है तो क्या वे इसका खण्डन नहीं करेंगे? तुम भी कर सकते हो। परन्तु कृपया कविसे परामर्श कर लो और जो कर सको, करो।

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ९८७) की फोटो नकलसे।

४४. सन्देश: बम्बईके नागरिकोंको[3]

[१४ सितम्बर, १९२१ के पश्चात्][4]

मौलाना मुहम्मद अलीको वाल्टेयरमें धारा १०७ और १०८ के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया गया और उनसे एक वर्षतक अच्छे आचरणके लिए मुचलका देनेको कहा गया। मुकदमेके स्थान और तारीखका अभी पता नहीं है।

गिरफ्तारीके बाद बेगम साहिबा और श्री हयातको उनसे मिलनेकी इजाजत दी गई।

मैं और वे स्टेशनके बाहर एक सभामें भाषण देनेके लिए जा रहे थे। वे गिरफ्तार कर लिये गये। मैं सभाकी ओर बढ़ता चला गया और मैंने भाषण दिया।

रंज मनानेका कोई कारण नहीं है, बल्कि मौका मुबारकबादका है। कोई हड़ताल नहीं होनी चाहिए। पूरी शान्ति और स्थिरता रखनी चाहिए। यदि हम कुछ मोपलाओं के द्वारा किये गये पागलपनके बावजूद अहिंसात्मक रहे, हिन्दू-मुस्लिम एकता बनाये रख सके और स्वदेशी-कार्यक्रम पूरा कर पाये तो मैं इस गिरफ्तारीको स्वराज्य पानेकी

१. १०-९-१९२१ के **स्टेट्समैन**में।

२. ६ सितम्बर, १९२१ को कलकत्तेमें, जिसमें एन्ड्रयूज भी मौजूद थे।

३. गांधीजी द्वारा बम्बईको भेजा गया यह विवरण वाल्टेयरसे **अमृतबाजार पत्रिका**को भी भेजा गया था, किन्तु वहाँ नहीं पहुँचा।

४. पत्रमें मुहम्मद अलीकी जिस गिरफ्तारीका उल्लेख है वह १४ सितम्बरको हुई थी।

और खिलाफत सम्बन्धी अन्याय और पंजाबके साथ हुए अन्यायके निवारणकी पूर्व-पीठिका मानता हूँ।

मैं आशा करता हूँ कि प्रत्येक भारतीय, स्त्री हो या पुरुष, विदेशी वस्त्रोंका पूर्ण बहिष्कार करेगा और फुरसतके समयमें कताई या बुनाई करेगा।

मौलानाकी तरह कोशिश करके अपने धार्मिक और राष्ट्रीय अधिकारोंकी रक्षा करनेके संकल्पपर डटे रहिए।

हमें कारावास यात्राके योग्य बनना चाहिए। मैं मौलानाकी निर्दोषिताको जानता हूँ और मुझे पूरा विश्वास है कि बेकसूर लोगोंके कैद किये जानेसे राष्ट्र वांछित लक्ष्यपर पहुँच सकेगा।

मौलाना पूर्ण रूपसे शान्त थे और उसी तरह बेगम साहिबा भी शान्त हैं। वे यात्रामें मेरे साथ रहेंगी और मौलाना आजाद सोबानी भी साथ रहेंगे।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १८-९-१९२१

४५. टिप्पणियाँ

हड़तालका प्रभाव

श्री कोंडा वेंकटप्पैया अपने एक पत्रमें, जो मुझे अभी-अभी मिला है, हड़तालका समर्थन करते हैं। इस पत्रमें उन्होंने अन्य उपयोगी जानकारी भी दी है। पाठकोंके लाभार्थ मैं उसे यहाँ उद्धृत करता हूँ।[1]

> **हड़तालको आपने गलत कदम बताया है। लेकिन मुझे यह कहनेकी अनुमति दीजिए कि हड़तालके इन चन्द दिनोंमें गण्टूरमें जो जन-जागृति हुई है वह वर्षोंके परिश्रमपूर्वक किये गये प्रचारकार्यसे भी नहीं हो सकती थी। इसके सिवा इस स्वल्पकालमें लोगोंमें संयम और आत्म-नियन्त्रणके गुणोंका भी बहुत अच्छा विकास हुआ है। . . . हम लोगोंकी रिहाईका कारण यह नहीं है कि हमारे खिलाफ जो साक्ष्य था उससे भिन्न कोई ऐसे नये तथ्य प्रकाशमें आये हैं जिनसे साक्ष्यका खण्डन हो जाता है। कारण यह है कि जनमत उसके [डिप्टी मजिस्ट्रेटके] खिलाफ हो गया था। व्यापारियोंने अपनी दुकानें बन्द कर दी थीं; वकीलोंने अदालतोंमें जाना छोड़ दिया था और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि लोग रोज बड़ी-बड़ी सभाएँ कर रहे थे और उनमें इस सारी कार्रवाईके खिलाफ जोरदार आवाज उठा रहे थे। सरकारी दफ्तरोंमें क्लर्क लोग अपनी जगहोंसे**

१. केवल सम्बन्धित भाग ही उद्धृत किया गया है।

इस्तीफा देनेकी बात सोचने लगे थे। शहरके प्रायः प्रत्येक व्यक्तिको यह लग रहा था कि कार्रवाई अन्यायपूर्ण है। हमारी रिहाईके असली कारण ये थे। ऐसी हालतमें हड़तालके महत्त्व और उसकी उपयोगिताके बारेमें जितना कहा जाये कम है। जिस शक्तिने लोगोंमें ऐसी अद्भुत एकता पैदा कर दी वह आई कहाँसे? मेरी नम्र रायमें यह शक्ति अधिकांशमें उस हड़तालसे ही प्रकट हुई जो व्यापारियोंने बहुत खुशीसे की और जिसे सामान्य जनताने खूब ही सराहा। गरीब और गरजमन्द लोगोंके लिए उनकी जरूरतकी वस्तुएँ मुहैय्या करनेके लिए उपयुक्त प्रबन्ध कर दिया गया था। उनके लिए कुछ दुकानें खुली रखी गई थीं। कारखानों, दुकानों और रेलवेके माल-गोदामोंके मजदूरोंकी एक बड़ी सभामें लोगोंने उनमें से जिन्हें जरूरत हो उन्हें राहत पहुँचानेके लिए मदद देनेकी इच्छा जाहिर की थी किन्तु उन्होंने मदद लेनेसे इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि अपने ध्येयके लिए हम खुशीसे कष्ट सहेंगे, मदद नहीं लेंगे।

मुझे उम्मीद है कि ऊपर मैंने जो तथ्य पेश किये हैं उनसे यदि और कुछ नहीं तो हमारी गलतीकी गुरुता अवश्य कुछ कम हो जाती है . . .

कार्य-समितिकी अनुमति लिए बिना हड़ताल करनेके खिलाफ मेरा जो विरोध है वह तो इसके बाद भी कायम ही है। गण्टूरमें हुई हड़तालका फल अच्छा निकला है, यह बात गण्टूर और उसके कार्यकर्त्ताओंके लिए प्रशंसाकी है। लेकिन श्री वेंकटप्पैयाने उसका जो वर्णन किया है उसीसे यह प्रकट हो जाता है कि हड़तालमें खतरा है और उसके सफल संचालनके लिए बहुत कौशल और चतुराई चाहिए। गण्टूरमें जो-कुछ हुआ उसका मेरा विश्लेषण यह है कि हड़तालके पहले जो गिरफ्तारियाँ हुईं उनका गण्टूर-निवासियोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा और वे सक्रिय हो उठे। हड़तालसे सरकार आतंकित हो गई और उसने घबराकर नेताओंको रिहा कर दिया — यह कोई ठीक बात नहीं हुई। मैं तो ऐसा मानना चाहूँगा कि उनकी रिहाई वकीलोंके त्याग और सरकारी दफ्तरोंके क्लर्कोंके इस्तीफा देनेकी तैयारीके फलस्वरूप हुई। हाँ, वकीलोंने जो त्याग किया वह यदि हड़तालका परिणाम था, तो हड़ताल निश्चय ही शुभ थी। हमें जरूरत इस चीजकी है कि लोग असहयोगके ठोस कार्यक्रममें अधिकाधिक योग दें; अगर हड़तालोंके द्वारा यह प्रयोजन सिद्ध होता हो तो मैं हमेशा हड़तालोंकी सिफारिश करूँगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५–९–१९२१

४६. कपड़ोंकी होलीका विरोध

सम्पादक

'यंग इंडिया'

महोदय,

आपके इस विचारसे कि १ अगस्तको इकट्ठे किये गये सभी विदेशी कपड़ोंको या तो जला दिया जाये या स्मर्ना भेज दिया जाये, और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने अपनी पिछली बैठकमें आपके इस विचारको जो समर्थन दिया उससे मैं हैरान रह गया। इसके साथ जो सवाल जुड़े हुए हैं, वे इतने महत्वपूर्ण हैं कि मैं यह पत्र लिखे बिना नहीं रह सकता। पहली अगस्त आई और चली गई; और जो-कुछ नष्ट हो चुका उसे अब लौटाया नहीं जा सकता। लेकिन अपने अपेक्षाकृत शान्त क्षणोंमें हम अपने कार्योंपर नयी दृष्टिसे विचार कर सकते हैं, और इस तरह हम उन चीजोंकी पुनरावृत्ति रोक सकते हैं, जो इस प्रकार सोचनेपर हमें गलत लगें।

असहयोग आन्दोलनसे यदि उसकी अनावश्यक बातोंको निकाल दिया जाये और इससे सम्बन्धित मत-मतान्तरोंकी अस्थायी उलझनका खयाल न किया जाये तो यह आन्दोलन मुझे बराबर भारतके नवोदयके प्रतीक-जैसा लगा है; इसमें मुझे इस देशकी आत्माके स्वरकी प्रबल प्रतिध्वनि सुनाई पड़ी है — उस स्वरकी जिसे वर्षोंतक आदर्श-हीन जीवन बितानेके कारण, शक्ति-श्रीसे हीन हो जानेके कारण तथा स्वार्थपरता और अज्ञानके वशीभूत होकर भुला दिया गया था। इस आन्दोलनकी कल्पना अहिंसाकी जिस भावनासे की गई थी उसे मैं जीवनकी समस्त व्याधियोंका उपचार मानता हूँ, बशर्ते कि मनुष्य उस ऊँचाईतक उठ सके। लेकिन लोकमान्य तिलककी स्मृतिमें सभी विदेशी कपड़ोंकी होली जलानेके कामको मैं उन उच्च आदर्शोंके उपहासके अलावा और कुछ नहीं मान सकता जो मेरी नम्र सम्मतिमें असहयोग आन्दोलनकी प्रेरक शक्ति थे।

कहा जाता है कि सभी विदेशी कपड़ेको जला देना चाहिए; क्योंकि (१) विदेशी कपड़ा परतन्त्रताका प्रतीक है और गरीब-अमीर दोनोंके लिए गुलामीका बिल्ला है, तथा (२) यह पापका परिधान है जिसे ईस्ट इंडिया कम्पनीने हमपर दुष्टतापूर्वक थोप दिया और जो हमारी असहायावस्था और अज्ञानके कारण चलता रहा। दोनों ही बातोंमें हम इसके विनाशके द्वारा ही इससे छुटकारा पा सकते हैं; और हममें से गरीबसे-गरीब लोगोंके भी तन ढँकनेके लिए इस कपड़ेका उपयोग करना उतना ही पापपूर्ण होगा जितना कि भूखेको सड़ा-गला

और विषैला भोजन देना। लेकिन बड़ी विचित्र विसंगति है कि साथ ही हमसे यह कहा जाता है कि यह कपड़ा स्मर्नाके लोगोंके लिए भेजा जा सकता है।

उपर्युक्त दलीलें जिन मान्यताओंके आधारपर पेश की गई हैं, उनपर मैं विचार नहीं करना चाहता। मैं स्वदेशीकी आवश्यकता महसूस करता हूँ, खादीके नैतिक तथा अंशतः आर्थिक महत्वमें भी मेरा विश्वास है और इसी तरह चरखे-को फिरसे अपनाने तथा भारतके इस प्रमुख उद्योगके पुनरुद्धारमें भी विश्वास करता हूँ। लेकिन, मेरे विचारसे यह बात आसानीसे सिद्ध की जा सकती है कि जबतक विदेशी कपड़ेके मुकाबले कुल मिलाकर चौगुने मूल्यका दूसरा माल भारतमें बाहरसे आता रहेगा तबतक अपनी अन्य जरूरतें पूरी करनेके लिए हम उसी परिमाणमें परमुखापेक्षी रहेंगे, और इसलिए उस विदेशी मालको भी जला देना चाहिए। और यह बात तो और भी आसानीसे समझाई जा सकती है कि विदेशी लेखकों द्वारा विदेशी भाषाओंमें लिखी पुस्तकें, मशीनें, औषधियाँ तथा आधुनिक विज्ञान और मानवी कौशल तथा मेधाके बलपर — अर्थात् उन गुणोंके बलपर जिनमें वे आज हमसे बहुत आगे निकल गये हैं — तैयार की गई चीजें, विदेशी कपड़ेके मुकाबले, हमारी परतन्त्रताका कहीं अधिक गहरा निशान हैं और हमारी शारीरिक और मानसिक गुलामीके कहीं अधिक विरूप बिल्ले हैं, अतः हमें उन्हें नष्ट करके उनसे भी छुटकारा पा लेना चाहिए। और फिर, जैसा कि कुछ लोगोंका विचार है, हम विदेशियोंको नष्ट करके उनसे भी क्यों न छुटकारा पा लें? आखिर वे ही तो हमारी इन सारी व्याधियोंकी जड़ हैं!

फिर, अगर ईस्ट इंडिया कम्पनीके समयके भारतीय और उनके कारण उनकी आजकी सन्तान इसलिए पापकी भागी हैं कि वे उस कम्पनीकी दुष्टताके आगे झुक गये, जिसने हमारे बुनकरोंको निकम्मा बनाया और हमारे इस उद्योगको बर्बाद कर दिया; और उस पापका प्रायश्चित्त तो सिर्फ उनके अपराधके मूल कारणकी होली जलाकर ही हो सकता है तो दूसरे कपड़ेको छोड़कर अंग्रेजी कपड़ेको ही क्यों न जलाया जाये? फिर, अगर किसी गरीब और भूखे भारतीयको सड़ा-गला और विषाक्त भोजन देना ठीक नहीं है तो क्या किसी असहाय तुर्कको वही भोजन देना ठीक है? अपने उतारे हुए विदेशी कपड़ोंको स्मर्नाके लोगोंके लिए भेजना मुझे अपने देशभाइयोंको वह कपड़ा देनेसे भी अधिक पापपूर्ण लगता है; क्योंकि किसी भी राष्ट्रका किसी दूसरे राष्ट्रको अपना उच्छिष्ट और फटा-पुराना देना स्वयं उस देनेवाले राष्ट्रके लिए लज्जाजनक है। इसके सिवा विदेशियोंने, मित्र-शक्तियोंने, इस्लामके प्रति जो अन्याय किया है वह ईस्ट इंडिया कम्पनीने हमें जो हानि पहुँचाई है उसके मुकाबले अधिक ताजा है और बहुतसे लोगोंके विचारसे अधिक बड़ा भी है। तब क्या हम इस बातको किसी भी तरह

नैतिक या उचित मान सकते हैं कि उन्हीं विदेशियों द्वारा तैयार किये गये और पापका परिधान मानकर अपने बदनपर से उतारे गये कपड़ोंको हम स्मर्नाके लोगोंको भेजें? ऐसा दान तो दाता और ग्रहीता दोनोंके लिए लज्जाजनक माना जायेगा।

महोदय, अन्तमें मैं यह भी कहूँगा कि सड़े-गले भोजन तथा विदेशी कपड़ेकी तुलना करना समीचीन नहीं है, और जबतक स्वयं हमारे हजारों देश-भाइयोंके तनपर सचमुच कोई वस्त्र नहीं है और उनके तनको ढकनेके लिए पर्याप्त खादी तैयार नहीं की जाती, तबतक ऐसे बहुतसे लोग होंगे जो एक गज भी विदेशी कपड़ा जलाना, या उसे ऐसी हालतमें, जब कि हमारे घरमें ही उसकी अधिक तीव्र आवश्यकता है, बाहर भेजना पाप मानेंगे।

मैं यह स्वीकार करता हूँ कि इस तरह कपड़ेको आगमें होमनेके दृश्यका लोगोंके मनपर बड़ा जबरदस्त असर होता है; यह भी मानता हूँ कि इससे जनताका मन आकर्षित होता है, और अस्थायी रूपसे ही सही, किन्तु तत्काल उसमें उत्साहकी लहर दौड़ जाती है। लेकिन मैं यह नहीं मानना चाहता कि आपने यह कार्यक्रम हमारे इतने सारे गरीब, नंगे तथा अकाल-पीड़ित देशभाइयोंकी आकुल आवश्यकताका खयाल न करके केवल इन्हीं इरादोंसे प्रेरित होकर अपनाया है।

भवदीय,
एन० वी० थडानी[1]

हैदराबाद, सिन्ध
३ अगस्त, १९२१

मैं श्री थडानीका यह तर्कपूर्ण पत्र यहाँ प्रसन्नतापूर्वक प्रकाशित करता हूँ। मैं पहले ही स्वीकार कर चुका हूँ कि विदेशी कपड़ोंको स्मर्ना भेजनेके पीछे जो दलील दी जाती है, वह कमजोर है। लेकिन इसके पीछे भावना मुसलमानोंके मतका आदर करनेकी रही है। फिर भी, इतना तो है ही कि विदेशी कपड़ेका उपयोग भारतके लिए विषके समान है किन्तु स्मर्नाके लिए नहीं, क्योंकि वस्त्र उद्योग जिस तरह भारतीय अर्थ-व्यवस्था की रीढ़ रहा है उस तरह वह स्मर्नाकी अर्थ-व्यवस्थाकी रीढ़ नहीं रहा। विदेशी कपड़ा जलानेका मतलब है महीन, सुन्दर विदेशी कपड़ोंके अपने मोहको जलाना। अगर हम शुरूमें इंग्लैंडके बजाय जापानके लालच-पाशमें फँस गये होते तो इसका असर भी भारतके लिए उतना ही बुरा होता। विदेशी कपड़ोंकी होली जलानेमें हमारा उद्देश्य विदेशियोंको नहीं अपनेको ही दण्ड देनेका है। हम अंग्रेजी कपड़ोंका नहीं, बल्कि सभी विदेशी कपड़ोंका बहिष्कार कर रहे हैं। सभी विदेशी कपड़ोंका बहिष्कार एक पवित्र कर्त्तव्य है, इसलिए उसके बिना ब्रिटिश कपड़ोंके बहिष्कारका कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। विदेशी कपड़ोंकी होलीके विचारके पीछे घृणाकी नहीं, बल्कि अपने अतीतके

१. दिल्लीके हिन्दू कालेज तथा हैदराबाद (सिन्ध) के नेशनल कालेजके प्रिंसिपल; शिक्षाशास्त्री तथा **मिस्टरी ऑफ द महाभारत**के लेखक।

पापोंके लिए प्रायश्चित्तकी भावना रही है। पत्र लिखनेवाले सज्जन एक क्षणको भी सोचकर देखें तो उनके सामने स्पष्ट हो जायगा कि विदेशी कपड़े जला देनेसे हममें अधिक तत्परता आयेगी और इस तरह हम और ज्यादा कपड़ा तैयार करनेकी ओर प्रवृत्त होंगे, जैसा कि हुआ भी है। रोग इतना गहरा पैठ गया था कि शल्य-चिकित्साके अतिरिक्त उसका कोई उपचार नहीं बचा था। अध-नंगे या नंगे भारतीयोंको दान या दयाकी जरूरत नहीं है। उन्हें जरूरत है ऐसे धंधेकी जो वे अपनी झोपड़ियोंमें आसानीसे कर सकें। क्या गरीबोंमें आत्म-सम्मान और देशभक्तिकी कोई भावना नहीं है? क्या स्वदेशीका सन्देश केवल सम्पन्न लोगोंके लिए ही है?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-९-१९२१

४७. विचारकी उलझन

सम्पादक

'यंग इंडिया'

प्रिय महोदय,

धरना देनेकी उपयोगितापर मैंने आपकी दलीलें पढ़ीं। बंगालके असहयोगी विद्यार्थी जब कानूनके परीक्षार्थियोंको परीक्षामें बैठनेसे रोकनेके उद्देश्यसे कलकत्ता विश्वविद्यालय, कालेज तथा सिनेट भवनके फाटकोंपर लेट गये थे, उस समय उनके मनमें यही दलीलें काम कर रही थीं। उन्होंने हाथ जोड़कर अपने परीक्षार्थी भाइयोंसे सोनेके घड़ेमें रखे इस विषका पान न करनेका अनुरोध किया था। धरना देनेके इस नये तरीकेसे कितनी सफलता मिली, यह आपको मालूम ही है। परीक्षा-भवन बिलकुल वीरान हो गये थे और बादमें फिरसे परीक्षा लेनी पड़ी थी। लेकिन तब आपने ही धरना देनेसे असहमति प्रकट की थी और फलतः सारा प्रयत्न छोड़ देना पड़ा था। इतने शानदार तरीकेसे जो सफलता प्राप्त हुई थी, सब मिट्टीमें मिल गई, और आज बंगाल इस बातके लिए पछताता है कि उसके नौजवानोंके भालपर विफलताकी कुख्यातिका टीका लगा हुआ है। जब धरना देनेवाले फाटकके सामने लेट गये थे, तब उनके पीछे इस दलीलका बल था कि "किसी बीमार आदमीके न चाहनेपर भी हमें उसका इलाज करना ही है।" आधुनिक शिक्षाके बारेमें आपकी सलाहको सचमुच समझकर तथा अपने कालेज छोड़नेका साहस दिखाकर उन्होंने अपने-आपको कृतार्थ माना। लेकिन तब भाइयोंकी हैसियतसे अपने भाइयोंको परीक्षामें बैठनेसे मना करना भी उन्हें अपना अनिवार्य कर्त्तव्य जान पड़ा। कोई आदमी गलत काम कर रहा हो तो जमीनपर लेटकर उसका रास्ता रोकना, उसे समझाने-बुझानेका पूर्वके देशोंमें प्रचलित एक मान्य नैतिक तरीका है, इसमें तो कोई सन्देह

नहीं। उन्होंने जो कुछ किया, वह सच्ची विनयके सिवा और क्या था? अगर सचमुच मेरी भावना ऐसी हो कि शराबखोरी एक भयंकर बुराई है और हर व्यक्तिको इसके पंजेसे बचाना है तो अगर मैं शराबखानेके सामने लेट जाऊँ और पीनेकी इच्छा लेकर वहाँ आनेवालोंसे कहूँ कि आप मेरे शरीरको कुचल कर ही शराब पीने जा सकते हैं तो क्या इसका मतलब बलप्रयोग होगा? यह तो उसके हृदयको जगानेकी कोशिश ही है। और नैतिक रूपसे समझाने-बुझानेका मतलब मैं इस तरह हृदयकी भावनाको जगाना ही समझता हूँ। सिनेट भवनके सामने लेटकर इन धरना देनेवालोंने परीक्षार्थियोंके हृदयकी भावनाको जगानेकी कोशिश की थी और निश्चय ही वह उन्हें समझाने-बुझानेका एक तरीका था। चूँकि बंगालके ये धरना देनेवाले किसी प्रकारके शरीरबलका उपयोग नहीं कर रहे थे, बल्कि परीक्षार्थियोंके हृदयकी भावनाको जगानेकी ही कोशिश कर रहे थे, इसलिए अगर आप यह बतानेकी कृपा करें कि आपने उनके तरीकेसे असहमति क्यों प्रकट की थी तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

बनारस, **भवदीय,**
१२ जुलाई, १९२१ **एस० एन० राय**

उपर्युक्त पत्र लिखनेवाले सज्जनने बिना किसी कारणके यह मान लिया है कि उन्होंने जिस ढंगसे धरना देनेकी बात लिखी है, शराबकी दुकानोंपर उस ढंगसे धरना देनेका समर्थन मैं करूँगा ही। अगर धरना देनेवाले रास्ता रोकनेका यह अशोभन कार्य आग्रहपूर्वक करते ही रहते तो देशमें इसकी इतनी प्रतिकूल प्रतिक्रिया होती कि असहयोग आन्दोलन पूरी तरह बदनाम हो जाता। इसके अतिरिक्त शिक्षाकी तुलना शराबखोरीसे करना दूरकी कोड़ी भिड़ाना है। शिक्षाके सम्बन्धमें बात दो विचारोंके संघर्षकी है, और असहयोग इस पीढ़ीके लिए एक नया विचार है। लेकिन मद्यपानके सम्बन्धमें संघर्ष संयम और एक ऐसी बुराईके बीच है जिसे सभी बुराई मानते हैं। पहले उदाहरणमें जिस नौजवानको कालेजमें जानेसे रोका जाता है, वह सरकारी कालेजमें जानेको एक अच्छा कार्य मानता है, लेकिन शराबखोर शराबखोरीको एक बुरी लत ही मानता है। पढ़े-लिखे नौजवान अखबार पढ़ते हैं और उन्हें पक्ष-विपक्षकी सारी दलीलें ज्ञात रहती हैं। लेकिन शराबखानेमें जानेवाले लोग कुछ नहीं पढ़ते और वे चूँकि सभा आदिमें भी नहीं जाते, इसलिए उन्हें वैसी कोई बात सुननेको भी नहीं मिलती। इसलिए कालेजों और स्कूलोंपर धरना देना न केवल अनावश्यक था बल्कि जिस तरीकेसे धरना दिया गया वह एक तरहकी हिंसा थी, जिसका किसी भी हालतमें कोई औचित्य नहीं ठहराया जा सकता। और असहयोगियोंके लिए तो वैसा करना अपनी प्रतिज्ञा भंग करना था। इसलिए अगर मेरी तीव्र आलोचनाके कारण धरना उठा दिया गया तो मुझे इस बातके लिए खुशी है

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १५-९-१९२१

४८. हमारी पतित बहनें

जो स्त्रियाँ पापकी कमाईपर गुजर करती हैं उनसे मिलनेका पहला अवसर मुझे आन्ध्र प्रान्तमें कोकोनाडामें आया था। वहाँ सिर्फ छः बहनोंसे कुछ ही देर मुलाकात हुई थी। दूसरा मौका बारीसालमें[१] आया। वे सौसे ज्यादा थीं और पहलेसे समय तय करके मिलने आई थीं। उन्होंने पहले ही चिट्ठी भेजकर मुलाकात माँग ली थी और यह भी लिख दिया था कि हम कांग्रेसकी सदस्य बन गई हैं और हमने तिलक स्वराज्य कोषमें चन्दा दिया है, लेकिन हम यह नहीं समझ पाईं कि आपने हमें कांग्रेस कमेटियोंमें पद न लेनेकी सलाह क्यों दी। अन्तमें उन्होंने लिखा था कि हम अपनी आगेकी भलाईके बारेमें आपकी सलाह लेना चाहती हैं। जो सज्जन यह चिट्ठी लाये थे उन्हें उसे मुझे देते हुए बहुत संकोच हो रहा था। उन्हें डर था कि कहीं मैं उसे पाकर नाराज न होऊँ। मैंने उनका भय दूर करते हुए उन्हें यह आश्वासन दिया कि यदि मुझसे हो सके तो इन वहिनोंकी सेवा करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

इन बहनोंके साथ मैंने जो दो घंटे बिताये वे मुझे हमेशा याद रहेंगे। उन्होंने मुझे बताया कि २०,००० स्त्री, पुरुष और बच्चोंकी आबादीमें उनकी संख्या ३५० से ऊपर है। वे बारीसालके पुरुषोंके पापकी निशानी हैं और जितना जल्दी बारीसाल इस पापको धो डाले उतनी ही उसकी नेकनामी है। मुझे भय है कि जो हाल बारीसालका है वही हर शहरका है। इसलिए बारीसालका उल्लेख तो मैंने सिर्फ उदाहरणके तौर पर किया है। इन बहनोंकी सेवाका विचार करनेका श्रेय बारीसालके चन्द नौजवानों-को है। मैं आशा करता हूँ कि इस बुराईको मिटा देनेका श्रेय भी बारीसाल ही लूटेगा।

पुरुषके हाथों जो दुष्कर्म हुए हैं उनमें कोई इतना जघन्य और पाशविक नहीं है जितना नारी-जातिका यह दुरुपयोग। स्त्रियोंको मैं अबला नहीं, मनुष्य-जातिका बेह-तर अर्द्धांश मानता हूँ। पुरुषों और स्त्रियोंमें, मैं स्त्रियोंको ज्यादा सुसंस्कृत मानता हूँ क्योंकि वे आज भी सारे सद्गुणोंकी आगार हैं। उनमें त्याग है, मूक बलिदानकी शक्ति है, नम्रता, आस्था, ज्ञान आदि सब-कुछ है। पुरुष अहंकारपूर्वक स्त्रीसे ज्यादा ज्ञान रखने-का दावा करता है किन्तु स्त्रीकी सहज-बोधकी शक्ति उसके इस ज्ञानसे अकसर ज्यादा सही साबित हुई है। हम जो सीताका नाम रामके पहले या राधाका कृष्णके पहले लेते हैं सो अकारण नहीं है। हमें भ्रममें पड़कर यह नहीं मान बैठना चाहिए कि चूँकि यह पापका व्यापार सभ्य यूरोपमें फैला हुआ है और कहीं-कहीं सरकारी इन्तजाममें भी होता है, इसलिए हमारे विकासमें भी इसके लिए गुंजाइश है। इस पापको हमें हिन्दु-स्तानकी पुरानी नजीरें देकर भी स्थायी नहीं बनाना चाहिए। जब हम पुण्य और पापमें भेद करना छोड़ देते हैं और जिस प्राचीन कालकी हमें पूरी जानकारी नहीं है

१. देखिए "पतित बहनें", ११-९-१९२१।

उसकी अन्धी नकल करने लगते हैं, उसी घड़ी हमारा विकास बन्द हो जाता है। पुराने जमानेमें जो कुछ ऊँचीसे-ऊँची और अच्छीसे-अच्छी चीज थी हमें उसके वारिस होनेका गर्व है। हमें पिछली भूलोंकी संख्या बढ़ाकर उस विरासतका अपमान नहीं करना चाहिए। क्या स्वाभिमानी भारतमें हर स्त्रीके सतीत्वकी हर पुरुषको उतनी ही चिन्ता न होनी चाहिए जितनी उसे अपनी सगी बहनकी इज्जतकी है? समाजका अर्थ ही यह है कि हम हिन्दुस्तानके हर निवासीको अपने भाई-बहनकी तरह समझें।

और इसलिए पुरुष होनेके नाते इन सौ बहनोंके आगे मेरा सिर शर्मके मारे झुक गया। इनमें से कुछ अधेड़ थीं, ज्यादातर २० और ३० वर्षोंके बीचकी थीं। और दो या तीन बारह सालसे कम उम्रकी लड़कियाँ थीं। उन्होंने मुझे बताया कि उन सबकी मिलाकर छः लड़कियाँ और चार लड़के थे, जिनमें से सबसे बड़ेकी शादी उनके ही वर्गकी किसी एक लड़कीसे हुई थी। अगर और कोई उपाय न बन पड़ा तो उनकी लड़कियोंको उन्हींकी-सी जिन्दगी बितानेकी तालीम दी जायेगी। यह देखकर कि ये स्त्रियाँ ऐसा समझती हैं कि उनका तो उद्धार हो ही नहीं सकता कलेजेमें घाव-सा लगा। परन्तु वे थीं समझदार और हयावाली। उन्होंने बातचीत मर्यादाके साथ की और जवाब सीधे और साफ दिये। और उस वक्त तो उनका निश्चय भी ऐसा ही पक्का था जैसा कि किसी सत्याग्रहीका होता है। उनमें से ग्यारहने तो यह भी कहा कि यदि उन्हें आवश्यक मदद मिले तो वे दूसरे ही दिनसे मौजूदा जीवन छोड़कर कताई-बुनाईका धन्धा करने लगेंगी। औरोंने कहा कि हमें सोचनेका कुछ समय चाहिए, क्योंकि हम आपको धोखा नहीं देना चाहतीं।

यह काम बारीसालके नागरिकोंके करनेका है। यह काम हिन्दुस्तानके सभी सच्चे सेवकोंका है, भले वे स्त्रियाँ हों या पुरुष। अगर २०,००० की आबादीमें ऐसी ३५० अभागी बहनें हैं, तो भारत-भरमें कदाचित् ५२,५०,००० होंगी। लेकिन मैं यह मानकर अपने मनको समझा लेता हूँ कि हिन्दुस्तानकी जो चार-पंचमांश आबादी गाँवोंमें रहती है और सिर्फ खेतीका धंधा करती है, वह इस पापसे अछूती होगी। इसलिए सारे देशमें अपनी इज्जत बेचकर गुजर करनेवाली औरतोंकी कमसे-कम संख्या १०,५०,००० होंगी। इन अभागी बहनोंका इस पतनसे उद्धार करनेके लिए दो शर्तें पूरी होनी जरूरी हैं। एक तो हम पुरुषोंको अपने विकारोंपर काबू करना सीखना चाहिए, और दूसरे इन औरतोंको कोई ऐसा धन्धा ढूंढ देना चाहिए जिससे वे इज्जतके साथ रोजी कमा सकें। अगर असहयोग-आन्दोलनसे हमारी शुद्धि नहीं होती और हममें बुरे विकारोंको रोकनेकी शक्ति नहीं पैदा होती, तो इस आन्दोलनका कोई अर्थ नहीं। और कातने-बुननेके सिवा कोई ऐसा धन्धा नहीं है जिसे सब लोग अपना लें और फिर भी भीड़ न हो। इनमें बहुत-सी बहनोंको तो ब्याह करनेका विचार करनेकी जरूरत नहीं। उन्होंने मंजूर भी किया कि जरूरत नहीं है। इसलिए उन्हें भारतकी सच्ची संन्यासिनियाँ बन जाना चाहिए। सेवाके सिवा जीवनकी और कोई चिन्ता न होनेके कारण वे जी-भरकर कात और बुन सकती हैं। दस लाख पचास हजार स्त्रियाँ आठ घंटे रोज लगनके साथ बुनाई करें, तो इसका मतलब यह हुआ कि इस कंगाल मुल्कको रोज उतने ही रुपयोंकी कमाई होगी। इन बहनोंने

मुझे बताया कि वे दो रुपये रोज तक कमा लेती हैं। लेकिन उन्होंने माना कि पुरुषकी लम्पटताको सन्तुष्ट करनेके खातिर उन्हें ऐसी कई चीजोंकी जरूरत होती है जिन्हें वे कताई-बुनाईका धन्धा और फिरसे स्वाभाविक जीवन अपना लेनेपर छोड़ सकती हैं। मेरी मुलाकात खतम होनेसे पहले ही वे मेरे कहे बिना यह जान गईं कि अगर वे अपना पापका धन्धा न छोड़ें तो वे कांग्रेस कमेटियोंकी ओहदेदार क्यों नहीं बन सकतीं। स्वराज्यकी यज्ञशालामें कोई भी ऐसा आदमी अधिकारी बनकर नहीं बैठ सकता जो अपने हाथ और दिलको साफ करके न आया हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५–९–१९२१

४९. सिन्धमें दमन-चक्र

श्री घनश्यामदास जेठानन्द शिवदासानीने[1] निम्नलिखित टिप्पणी[2] जूनके अन्तमें तैयार कर ली थी लेकिन अपनी यात्राओंमें दूसरे कई कागजोंकी तरह मैं उसपर कोई ध्यान नहीं दे सका और वह मेरे पास यों ही पड़ी रही। पाठक मटियारीके गोली-काण्डसे तथा जूनके बाद स्वामी कृष्णानन्द[3] तथा अन्य व्यक्तियोंपर चलाये गये मुकदमोंसे तथा उन्हें दी गई सजाओंसे तो परिचित ही हैं।

[अंग्रेजी]

यंग इंडिया, १५–९–१९२१

५०. अपील : हिन्दी-प्रेमी मित्रोंसे

मद्रास
१५ सितम्बर, १९२१

प्यारे हिन्दी-प्रेमी भाइयो,

तीन वर्ष हो गये, मद्रास प्रान्तमें हिन्दी-प्रचार हो रहा है। खास इस कामके लिए बम्बईमें रुपये वसूल किये गये थे। लेकिन आज काम इतना बढ़ा है कि उससे और मद्रास प्रान्तसे जो रुपये मिलने लगे हैं, उससे यह काम पूरा नहीं हो सकता। मुझे विश्वास है कि मद्रासमें काम सन्तोषजनक हो रहा है।

१. सिन्ध कांग्रेस असेम्बली पार्टीके उप-नेता; लोक सेवक मण्डल, बम्बईके मन्त्री।

२. यह टिप्पणी **यंग इंडियाके** १५–९–१९२१ और २२–९–१९२१ के अंकमें प्रकाशित हुई थी; उसे यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है।

३. देखिए "न्यायका स्वाँग", २५–८–१९२१ तथा परिशिष्ट १ भी।

अगर आपको भी सन्तोष हुआ हो और इस महान कार्यकी ओर सहानुभूति हो तो मेरा साग्रह अनुरोध है कि आप निःसंकोच भावसे भरसक आर्थिक सहायता दें।

आपका,
मोहनदास करमचंद गांधी

मूल प्रति (एस० एन० ८१५६) की फोटो-नकलसे।

५१. भेंट: 'डेली एक्सप्रेस' के प्रतिनिधिको

मद्रास
१५ सितम्बर, १९२१

असहयोग आन्दोलनके नेता श्री गांधी मद्रास आये हुए हैं। इस अवसरका लाभ उठाकर गुरुवारकी सुबह 'डेली एक्सप्रेस' के एक प्रतिनिधिने श्री गांधीसे मुलाकात की। उसने उन बहुतसे सवालोंपर उनसे बातचीत की जिन्होंने आज जन-मानसको आन्दोलित कर रखा है और जिनसे श्री गांधी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे सम्बद्ध हैं।

यह पूछनेपर कि तिलक स्मारक स्वराज्य कोषके लिए एक करोड़का जो लक्ष्य है, उसमें से कितनी रकम जमा हुई और कहाँ रखी गई है, श्री गांधीने बताया कि बहुत बड़ी रकम जमा हो गई है और वह प्रान्तीय समितियोंके जिम्मे है। जहाँतक मैं समझता हूँ प्रान्तीय समितियोंने इन रुपयोंको विभिन्न बैंकोंमें जमा किया है। सबसे ज्यादा रुपया बम्बईमें जमा है।

[संवाददाता]: **यह धन किस कामके लिए खर्च किया जायेगा?**

[गांधीजी :] इस धनका उपयोग मुख्यतः स्वदेशीके लिए किया जा रहा है। तात्पर्य यह है कि उसका उपयोग राष्ट्रीय शिक्षण-संस्थाओंमें सूत कातने तथा कपड़ा बुननेके कार्यको बढ़ावा देने, अकालमें सहायता पहुँचाने, नशाखोरी रोकने और अछूत जातिका उद्धार करनेके लिए किया जा रहा है। आप ऐसा मान सकते हैं कि कोषका साधारणतः ५० प्रतिशत धन सूत कातने तथा कपड़ा बुननेके कार्यमें खर्च किया जायेगा।

आपको मालूम है कि मलाबारमें और अन्य स्थानोंपर हिंसात्मक घटनाएँ हुई हैं। ऐसी हालतमें लोग अहिंसापर दृढ़ रहें, इसके लिए आप क्या कदम उठायेंगे?

इसका तो मैं केवल यही उत्तर दे सकता हूँ कि इस कार्यको मैं व्याख्यानों, निजी तौरपर होनेवाली बातचीतों, चिट्ठी-पत्री, तथा कताईके प्रचारके द्वारा करूँगा। मैं कताईको हिंसाका सबसे कारगर उपचार मानता हूँ। यदि मैं समस्त भारतको सूत कातनेके कार्यमें लगा सकूँ तो इस आन्दोलनमें हिंसा पूर्णतः समाप्त हो जायेगी।

क्या आप समझते हैं कि अहिंसाके पालनमें कुछ अपवाद भी होंगे, जैसा कि मोपलोंके मामलेमें हुआ?

हाँ, अपवाद अवश्य होंगे, लेकिन मेरा यह निश्चित मत है कि यदि इस प्रकार असहयोग आन्दोलन द्वारा अहिंसाका निरन्तर प्रचार न किया गया होता तो भारतमें और भी भयंकर और व्यापक हिंसात्मक कार्रवाइयाँ होतीं। मेरे इस उत्तरसे जो शंकाएँ उठ सकती हैं, मैं उनको भी पूरी तरह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ, ताकि मेरी स्थिति बिल्कुल साफ हो जाये।

अब धरना देनेका प्रश्न ही लीजिए। मैं समझता हूँ, एक काफी शक्तिशाली लोकमत इसके खिलाफ है। यदि अनुभवसे आपको लगे कि दो प्रतिपक्षी शक्तियोंके आमने-सामने होनेपर किसी-न-किसी रूपमें उपद्रव अवश्य होगा, तब भी क्या आप चाहेंगे कि धरना देना जारी रहे?

जबतक धरना देनेवाले स्वयं कोई हिंसा नहीं करते तबतक तो यह जारी रहेगा। शराब बेचनेवाले या शराब पीनेवाले लोग जो हिंसा कर सकते हैं, उसका विचार मैं नहीं करूँगा। ऐसा ही एक तीसरा पक्ष है सरकार। बिहार प्रान्तमें कहीं-कहीं तो लोगोंको मजिस्ट्रेटने अपने पाससे कुछ पैसे दे दिये और कहा कि 'जाओ शराब पियो, क्योंकि यह तो तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है।" इसलिए इस प्रकारकी हिंसाकी मैं तबतक कोई परवाह नहीं करूँगा जबतक अहिंसाकी प्रतिज्ञासे बँधा पक्ष अपने सिद्धान्तोंसे विचलित नहीं होता। हाँ, यदि वह पक्ष अपने सिद्धान्तोंसे च्युत हो जायेगा तो जरूर ही धरना देनेका कार्य बन्द कर दिया जायेगा।

फिर विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कारका सवाल है। इस सम्बन्धमें मुझको यह मालूम हुआ है कि बम्बईमें जो भारतीय माल आता है, उसका दाम बढ़ गया है। यदि विदेशी मालका बहिष्कार इसी तरह जारी रहा तो खुद मुझे ऐसा लगता है कि भारतमें बने मालका मूल्य और बढ़ जायेगा। यदि मूल्य बढ़ा, तो क्या इसका आपके आन्दोलनपर प्रभाव पड़ेगा?

इसका मेरे आन्दोलनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, क्योंकि यहाँ सवाल, दरअसल मिलोंका नहीं है। मैं बार-बार जनताको यही समझानेका प्रयत्न करता रहा हूँ कि स्वदेशीका वास्तविक अर्थ है अपना सामान घरमें बनाना। इसलिए मैं यह चाहता हूँ कि जनता मिलके बने हुए मालकी परवाह न करे।

हिन्दुस्तानी मिलोंकी भी नहीं?

हाँ, उनकी भी। वैसे तो अभी मैं हिन्दुस्तानी मिलोंका बहिष्कार नहीं कर रहा हूँ क्योंकि इसकी आवश्यकता नहीं है। लेकिन यदि जनता हिन्दुस्तानी मिलोंके ही भरोसे बैठ जायेगी तो मैं इनका भी बहिष्कार करूँगा, क्योंकि इनसे अन्तिम प्रश्न हल नहीं होता। मुझे मालूम है कि स्वदेशीका सन्देश अभी लोगोंने नहीं समझा है। निश्चय ही अभी सभी कार्यकर्त्ताओंने इसको पूरी तरह ग्रहण नहीं किया है, आलोचकोंकी तो बात ही क्या।

आपका अभिप्राय क्या भारतीय मिलोंके बने हुए वस्त्रोंके उपयोगका भी कतई समर्थन न करनेका है? यहाँ एक हिन्दुस्तानी मिलमें आजकल हड़ताल चल रही है, जिसमें पाँच-छः हजार कर्मचारी काम छोड़कर निकल आये हैं। क्या आपके ही कार्य-क्रमके अनुसार यह सम्भव नहीं है कि उन सबसे फिर मिलमें वापस जानेका आग्रह न करके उनमें से अमुक संख्याको करघे दिये जायें?

यह तो मैं कर रहा हूँ। असम-बंगाल रेलवेमें हड़ताल[1] करनेवालोंके लिए मैंने इसी प्रकारका बन्दोबस्त किया है। उन लोगोंने असमके चाय-बागानके अन्यायपीड़ित कुलियोंके प्रति सहानुभूति प्रकट करनेके लिए हड़ताल की थी। सरकारने उनपर जो अन्याय किया था उसका कोई परिशोधन न करके उनके साथ दुर्व्यवहार जारी रखा है। यदि मैं उन सब हड़तालियोंको असम-बंगाल रेलवे तथा स्टीमर कम्पनियोंके हड़तालियोंकी तरह कामपर लौटनेसे रोक सका तो रोकूँगा और कांग्रेस कमेटीको यह सलाह दूँगा कि प्रत्येक हड़तालीको एक चरखा, कुछ हड़तालियोंके बीचमें एक करघा, तथा उनको सब प्रकारकी सुविधा देनेके लिए उनकी एक बस्तीका बन्दोबस्त कर दिया जाये। जब मैंने सुना कि कुछ मिलोंमें औरतोंने हड़ताल की है, तब उनको भी मैंने यही सन्देशा भेजा। हम महिला मजदूरोंकी संख्या घटानेका प्रयत्न कर रहे हैं।

कर्मचारियोंको जैसी हालतमें काम करना पड़ता है, आपका विरोध सिर्फ उससे है, या आप पश्चिमी यन्त्रोंके प्रवेशका विरोध करते हैं? यदि सभी हिन्दुस्तानी मिलोंकी अवस्था एक हदतक सुधर जाये और कर्मचारियोंके रहनेके लिए अच्छे मकान बनाये जायें और उनको सन्तोषजनक मजदूरी भी दी जाये तब भी क्या आप मिलमें बने हुए वस्त्रोंके उपयोगका विरोध करेंगे?

हाँ, मैं विरोध करता रहूँगा, क्योंकि मैं पश्चिमी यन्त्रोंके प्रति वैर-भावसे विरोध नहीं करता। इस विषयमें पश्चिम और पूर्वका तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। पश्चिम और पूर्वका प्रश्न मेरे मनमें बराबर बना रहता है, लेकिन यन्त्रोंके सम्बन्धमें आपने जैसा सवाल पूछा है, उसका खयाल करते हुए मैं यह कहूँगा कि जिस तरह मैं यह नहीं चाहता कि खाना बनानेका काम सिर्फ कुछ होटलोंमें ही हो, उसी तरह मैं यह भी नहीं चाहता कि कपड़े बनानेका काम चन्द लोगोंके हाथमें रहे। हिन्दुस्तानके करोड़ों आदमी पहले कमसे-कम आठ घंटे किसी अच्छे तथा लाभदायक कार्यमें लगाते थे। लेकिन अंग्रेजी शासनका आज यह दुष्परिणाम हुआ है कि दो करोड़से ज्यादा मनुष्य सालमें छः महीने मजबूरन बेकार रहकर बिताते हैं, हालाँकि मैं जानता हूँ कि यह स्थिति आये, ऐसा कोई इरादा अंग्रेजोंका नहीं था।

यदि भविष्यमें उपद्रव नहीं रोके जा सके तो क्या आप, जिस तरह पिछले साल आपने सविनय अवज्ञा आन्दोलनको[2] स्थगित कर दिया था, उसी तरह असहयोग आन्दोलनको भी स्थगित कर दीजिएगा?

१. देखिए "भाषण: चटगाँवमें, रेलवे कर्मचारियोंके समक्ष", ३१–८–१९२१।

२. देखिए खण्ड १५ पृष्ठ संख्या २५१–५२ और ४८३–६।

मुझे खेद है कि इस बार मैं वैसा नहीं कर सकता। उस समय सविनय अवज्ञा आन्दोलन एक विशेष कानूनके विरुद्ध चलाया गया था। असहयोग आन्दोलन तो एक पूरी शासन-पद्धतिके विरुद्ध है, अतएव इसको स्थगित करना मेरे लिए सम्भव नहीं है। आन्दोलन स्थगित कर दूंगा, ऐसा कह सकना भी मेरे लिए सम्भव नहीं है, क्योंकि यह एक विशाल आन्दोलन है और इसमें बड़े-बड़े खतरे मोल लेने हैं ताकि जो सबसे बड़ा खतरा है, अर्थात् इस शासन-प्रणालीका जारी रहना, उसे खत्म किया जा सके।

यदि भारतको ब्रिटिश सरकार अधिराजत्वका दर्जा देनेको तैयार हो तो ऐसी किसी प्रस्तावित व्यवस्था की, आपके खयालसे, क्या विशेषताएँ होनी चाहिए?

ब्रिटिश सरकार अधिराजत्वका दर्जा देनेको तैयार हो, तो मैं ऐसी किसी व्यवस्थाके मार्गकी दो बाधाएँ हटानेपर अवश्य आग्रह करूँगा, अर्थात् खिलाफत और पंजाबके सवाल।

जिस तरह इंग्लैंड तथा फ्रांसने साइलेशियाके बारेमें मंजूर किया, उसी तरह यदि खिलाफतका पूरा प्रश्न भी पंच-फैसलेके लिए राष्ट्रसंघको सौंप दिया जाये तो क्या आप उसके फैसलेको स्वीकार करेंगे?

मैं ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि यह तो समस्यासे सीधी तरह निबटना नहीं होगा। मुझको मालूम है कि इस बातका फैसला श्री लॉयड जॉर्जपर[1] निर्भर है। श्री लॉयड जॉर्ज इस मामलेमें उसी हदतक जा सकते हैं जिस हदतक राष्ट्र उन्हें जाने देगा। मैं यह नहीं मानता कि श्री लॉयड जॉर्ज जानबूझकर यह शरारत कर रहे हैं। वे ब्रिटिश साम्राज्यके प्रतिक्रियावादी तत्वोंके जालमें फँस गये हैं।

लेकिन यदि इस विवादको राष्ट्रसंघको सौंप दिया गया तब तो उसपर उनका कोई वश नहीं रह जायेगा?

हाँ, लेकिन राष्ट्रसंघकी कार्यवाहीको तो वे तब भी प्रभावित कर सकेंगे। इसका मैं एक उदाहरण देता हूँ। यदि प्रधान मन्त्री मेसोपोटामियासे सब फौज हटाना चाहें तथा उससे कोई सम्बन्ध न रखना चाहें तो उन्हें इससे कौन रोक सकता है? मेसोपोटामिया और फिलिस्तीनका शासनादेश (मैंडेट) तो ब्रिटिश राष्ट्रके पास है। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि जब वे निष्कपट हैं तो मेसोपोटामियामें बने रहनेके लिए उनका इतना आग्रह क्यों है?

क्या आप यह बात स्वीकार कर लेंगे कि राष्ट्रसंघके मैंडेट द्वारा विवादग्रस्त क्षेत्रोंको टर्कीके अधिकारमें कर दिया जाये?

इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन ऐसा करनेसे कई प्रकारकी कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी। मेरा कहना यह है कि वह सम्पूर्ण प्रायद्वीप पूर्णरूपसे सिर्फ मुसलमानोंके नियंत्रणमें रहे और उसपर किसी अन्य बड़ी शक्तिका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपसे कोई नियंत्रण न रहे और न टर्कीके ऊपर ही कोई दवाब रहे। यदि अरब-निवासी टर्कीसे कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहते हैं तो वे स्वयं इसका निपटारा लड़कर कर लें।

१. ब्रिटिश राजनयिक; १९१६-२२ में इंग्लैंडके प्रधान मन्त्री।

यदि अंग्रेज बसराको अपने कब्जेमें रखें और मेसोपोटामियाके बाकी हिस्सेको छोड़ दें तो क्या आप सन्तुष्ट हो जायेंगे?

यह नहीं हो सकता। बिना किसी राजनैतिक हस्तक्षेपके व्यापार जारी रहने दिया जाये।

प्रश्नका ऐसा हल न निकलनेकी हालतमें क्या आप मौलाना मुहम्मद अलीकी इस बातसे सहमत हैं कि अहमदाबादमें होनेवाली आगामी कांग्रेसको भारतके लिए एक स्वतन्त्र लोकतन्त्रका लक्ष्य घोषित करना चाहिए?

नहीं, क्योंकि सिर्फ स्वतन्त्रताकी घोषणासे मुझे सन्तोष नहीं होगा। एक स्वतन्त्र लोकतन्त्रकी घोषणासे मुझे सन्तोष नहीं होगा। स्वतन्त्र होनेके लिए ब्रिटिश सरकारसे लड़नेकी हममें शक्ति होनी चाहिए, लेकिन अस्त्र-शस्त्रकी लड़ाई नहीं, अहिंसाकी लड़ाई। इसके लिए अभी हम लोग पर्याप्त रूपसे संगठित नहीं हैं। लॉर्ड सैलिस्बरी जब कुछ प्रश्नोंसे चिढ़ जाते थे तब कहते थे: "इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अभीतक किसी-न-किसी तरह हम लोग सफलता प्राप्त करते आये हैं, इसलिए माननीय सदस्यको चिन्ता नहीं करनी चाहिए।" इसी तरहसे हम लोगोंने भी कार्य किया है। अहिंसात्मक असहयोग जारी रखनेका पूरा श्रेय मैं स्वयं नहीं लेता। ईश्वरने हमारी सहायता की है।

यदि भारतको उपनिवेशोंके ढंगका स्वराज्य मिल जाये तो पंजाबको लेकर उठे प्रश्नका तो स्वतः निपटारा हो जायेगा न?

हाँ, हो जायेगा।

तब समस्याके निपटारेके लिए क्या आपकी यह राय है कि भारत सरकारको पूर्णरूपसे भारतीय व्यवस्थापिकाके प्रति उत्तरदायी बना दिया जाये?

भारतीय व्यवस्थापिकाके प्रति — हाँ, बेशक।

क्या आप सेनाका भी पूरा नियन्त्रण तुरन्त लेना चाहते हैं, अथवा इस विषयमें आपका रुख उससे भिन्न होगा?

मेरा विश्वास है कि हम लोग सेनाका पूर्ण नियन्त्रण लेनेको बिलकुल तैयार हैं। इसके माने यह होंगे कि हम लोग तीन-चौथाई सेनाको बरखास्त कर देंगे। मैं तो इतनी ही सेना रखना पसन्द करूँगा — जितनी भारतमें शान्ति-रक्षाके लिए आवश्यक होगी।

यदि सेना इस हदतक घटा दी जायेगी तो क्या आपको सीमावर्ती क्षेत्रोंसे आक्रमण होनेका भय नहीं होगा?

नहीं।

मुझे सैनिक सूत्रोंसे मालूम हुआ है कि सीमान्त क्षेत्रोंमें इस समय पाँच लाखसे अधिक सशस्त्र लोग मौजूद हैं।

आपकी बात ठीक है। ये कबीले अबतक हिन्दुस्तानपर हमला करते रहे हैं।

अबतक क्यों? आप ऐसा क्यों मान लेते हैं कि भारतमें स्वराज्य होनेपर वे हमला करनेसे बाज आयेंगे?

पहली बात तो यह कि समस्त संसारमें अब विचारका परिवर्तन हो गया है। दूसरे, अफगानिस्तानमें अभी जो तैयारियाँ हो रही हैं वे सब वास्तवमें खिलाफतके समर्थनमें हो रही हैं। जब खिलाफतके मामलेका फैसला हो जायेगा, तब अफगान लोगोंकी भारतपर निगाह नहीं रह जायेगी। जो लड़ाकू कबीले लूट-मार करके ही जीवन-यापन करते हैं, उन्हें अभी लाखों रुपया बतौर सहायताके दिया जाता है। मैं भी उन्हें कुछ आर्थिक सहायता देना चाहूँगा। जब चरखा भारतमें सुदृढ़ स्थान पा जायेगा, मैं उसका प्रचार अफगान-कबीलेमें भी करूँगा और इस तरह उसे भारतपर हमला करनेसे रोकूँगा। मेरा विश्वास है कि ये कबायली लोग भी अपने ढंगसे ईश्वर-भीरु लोग हैं।

मोपलोंके उपद्रवका उल्लेख करते हुए श्री गांधीने आगे कहा:

इस उपद्रवका बुनियादी कारण अभीतक पूरी तरहसे मैं नहीं समझ सका हूँ। बस, इतना ही जानता हूँ कि इनके सामने उत्तेजनाका कारण — बहुत बड़ा कारण — खड़ा किया गया था। मेरा खयाल है, वह कारण था मसजिदको घेर लेना। हिन्दुओंके इतने ज्यादा घरोंको क्यों लूटा गया, यह मैं नहीं जान पाया हूँ। जब मैं कलकत्तेमें था तो मुझे पक्की खबर लगी थी कि जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तनकी कुल तीन वारदातें हुई हैं। लेकिन अब मुझे मालूम हुआ है कि इस किस्मके कुछ और मामले कांग्रेस कमेटीको मालूम हुए हैं। यह बड़े दुःखकी बात है। मोपलोंके उपद्रवसे हम बहुत पिछड़ गये हैं, लेकिन मैं नहीं समझता कि इसका हिन्दू-मुसलमानोंकी एकतापर कोई गम्भीर असर पड़ सकता है।

इससे यह साफ मालूम पड़ता है कि अहिंसावादी असहयोगियोंने कितना बड़ा काम अपने कन्धेपर उठाया है। ऊपरसे देखनेवालेको ऐसा लग सकता है कि आजकल हिंसा या शक्तिका बिना कुछ प्रयोग किये इस तरहके उपद्रवकारी तत्त्वोंको नियन्त्रणमें नहीं रखा जा सकता। इसको मैं नहीं मानता और यही कारण है कि स्वदेशी कार्यक्रमको मैंने एक अनिवार्य शर्तके रूपमें प्रधान स्थान दिया है। यदि स्वदेशीका प्रचार हो गया तो मेरे खयालसे, उतने ही से इतनी शान्ति और प्रेम उत्पन्न हो जायेगा जिससे हिन्दुस्तानकी काया पलट जायेगी।

जहाँतक मोपलोंका प्रश्न है उन्होंने तो कपड़ा बनानेके बदले हथियार बनाये हैं?

लेकिन इससे तो ब्रिटिश शासकोंका ही दोष प्रकट होता है कि उन्होंने इन झगड़ालू जातियोंको वशमें करके उन्हें शान्तिप्रिय बनानेके बजाय अपने क्षुद्र उद्देश्योंकी सिद्धिके लिए इनका उपयोग किया है। अंग्रेजी शासनके खिलाफ भविष्यके इतिहासकारको यह दुखमय बात लिखनी होगी। अब मैं नेपालियोंके भी सम्पर्कमें आ रहा हूँ। वे बड़े शानदार लोग हैं। एक नेपाली बालिकासे मेरी भेंट हुई जो परसों ही मुझसे विदा हुई है। वह नेपालियोंमें अहिंसाके ज्ञानका प्रसार कर रही है, क्योंकि अभीतक उन्हें शान्तिप्रिय बनानेका कुछ भी प्रयत्न नहीं किया गया है।

यदि यह बात सच है कि ब्रिटिश सरकार मोपलोंको अहिंसक बनाकर नहीं रख सकी है तो क्या यह बात भी सच नहीं है कि आपका असहयोग आन्दोलन भी उन्हें शान्तिप्रिय बनानेमें विफल हुआ है?

मैं यह नहीं कह सकता कि सरकार मेरे आन्दोलनके कारण विफल हुई है। अभी साल-भर भी नहीं हुआ है, जब बड़ी विपरीत परिस्थितियोंमें मेरा आन्दोलन आरम्भ हुआ था। एक तरफ तो हमपर सरकार हँसती थी, दूसरी तरफ हमारे भाई हँसते थे। उन्हें 'असहयोगी' शब्दको समझा पाना मेरे लिए बहुत कठिन हो गया था। किसी सुधारकको इतनी कठिनाइयोंका सामना नहीं करना पड़ा है, जितनी मेरे सामने हैं। मैं जानता हूँ कि इन कठिनाइयोंको मैंने स्वयं आमन्त्रित किया है, मगर मेरे लिए और कोई रास्ता नहीं था। अतएव, जब मैं कहता हूँ कि अहिंसा तो महज एक नीति है, तब वे नहीं समझते कि यह कैसी नीति है। हिन्दू-मुसलमानोंकी एकता-की समस्याके समाधानका प्रयत्न करते समय अहिंसा ही हम लोगोंका अन्तिम सिद्धान्त होना चाहिए। यदि इसको मैं कर सका तो हम लोग अति शीघ्र अपनी मुराद हासिल कर लेंगे। यदि कोई असहयोगी मोपलोंके जिलोंमें जाता है तो सरकार हस्तक्षेप करती है। उन्हें रोक दिया जाता है। हम लोगोंका तो कहना ही यह है कि उपद्रव उन्हीं जगहोंमें हुआ है जहाँ असहयोगियोंकी पैठ सबसे कम हो पाई थी।

क्या आप यह नहीं मानते कि मोपले धार्मिक नेताओंके कहनेमें हैं, राजनीतिक नेताओंके नहीं?

यह बात सच है। इसीलिए तो मैं धर्म और राजनीतिको मिला रहा हूँ। मैंने इन धार्मिक पण्डितोंको यह समझानेका प्रयत्न किया है, और बहुत सफल प्रयत्न किया है कि उनके लिए देशके राजनीतिक जीवनसे प्रभावित हुए बिना रहना असम्भव है। यदि वे उस प्रभावको ग्रहण नहीं करते तो अधिकांश जनतापर वे अपना सारा नियं-त्रण खो बैठेंगे। एक इतना बड़ा उपद्रव जारी रहा है। यदि यह सरकार ईमानदारीसे काम करती होती तो मैं अलीभाइयोंमें से एकको ले जाता और तुरन्त इसको शान्त करा देता। अगर हम लोग शान्ति स्थापित नहीं करा सकते तो जीवित भी नहीं बचते। हम लोग मारे जाते। यह सरकारके लिए भी अच्छा होगा और हमारे लिए भी। लेकिन हमारी मृत्युके बाद हमारी खाकमें से अहिंसाकी भावनाका जन्म हुआ होता।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १६–९–१९२१

५२. भेंट : 'मद्रास मेल' के प्रतिनिधिको[1]

[१५ सितम्बर, १९२१]

[प्रतिनिधि :] **"विदेशी वस्त्रके बहिष्कार आन्दोलनको यद्यपि उसमें मौजूदा विदेशी वस्त्रके स्टॉकका विनाश निहित है, क्या आप असहयोगका एक रचनात्मक कार्य मानते हैं?"**

[गांधीजी :] मैं स्वदेशीको असहयोग आन्दोलनका एक रचनात्मक कार्य इसलिए मानता हूँ कि उसको अपनानेके फलस्वरूप हमारा देश अपनी जरूरत-भरका सारा कपड़ा हाथसे कात और बुनकर तैयार करने लगेगा।

श्री गांधी, क्या आप देशकी वर्तमान परिस्थितियोंको देखते हुए लोगोंकी जरूरत-भरका पूरा कपड़ा तैयार होना सम्भव मानते हैं?

निश्चय ही; जिस तरह हमारे लिए प्रतिदिनकी जरूरतका भोजन पका लिया जाना सम्भव है उसी तरह यह भी सम्भव है, बशर्ते कि कपड़ेका उत्पादन इसी तरह हमारे हाथमें हो जैसा सिर्फ दो या तीन सौ साल पहले था।

क्या अन्य कारणोंके अलावा, मशीनके प्रचलनसे परिस्थितियाँ काफी हदतक बदल नहीं चुकी हैं?

वास्तवमें मशीनोंसे कोई ऐसा परिवर्तन नहीं हुआ है जो सुधारा नहीं जा सकता। मानसिक स्थितिको ही ठीक करना है। वे हाथ या वे सब घंटे जिन्हें राष्ट्र कपड़ा बनाने और सूत कातनेमें लगाता था, अब किसी अन्य अथवा बेहतर काममें लग रहे हैं सो बात नहीं है। वे घंटे और वे हाथ अब भी फालतू ही पड़े हैं।

क्या आपका खयाल है कि देशकी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए घरों और झोंपड़ियोंमें हाथ-कताई और हाथ-बुनाई करके हम उतना ही माल और उसी कुशलताके साथ तैयार कर सकते हैं जितना कारखानों द्वारा तेजीके साथ तैयार हो जाया करता है?

निश्चय ही!

दूसरे शब्दोंमें शायद आपका विचार यह है कि यह सवाल केवल इतना ही है कि चन्द कारखानोंमें जो माल प्रचुर मात्रामें थोड़े ही समयमें बन जाता है वही माल ग्रामीण क्षेत्रोंमें हाथकी कताई और हाथकी बुनाई द्वारा तैयार करवाया जाये।

निश्चय ही ऐसा है।

क्या आप समझते हैं कि हमारी सभी आधुनिक जरूरतें पूरी तरह और कुशलताके साथ मशीनरीके प्रयोगके बिना पूरी की जा सकती हैं?

जहाँतक कपड़ेका सवाल है, आधुनिक जरूरतें अवश्य पूरी की जा सकती हैं, परन्तु संक्रमण कालमें राष्ट्रको तबतक सीमित मात्रामें सुलभ होनेवाले मालसे काम

१. यह भेंट सान थोममें रामजी कल्याणजीके निवास स्थानपर हुई थी।

चलाना होगा जबतक कि भारतका वह नामी और सुन्दर कपड़ा फिर नहीं बनने लगता।

किन्तु श्री गांधी, इस उद्देश्यको पूरा करनेके लिए देशमें इस समय जो विदेशी कपड़े पहले ही से इस्तेमाल हो रहे हैं, उन्हें नष्ट करनेकी जरूरत क्यों है?

इसका कारण यह है कि राष्ट्रने अपने गृह-उद्योगोंको नष्ट करके विदेशी कपड़ा अपनानेका जो पाप किया है उसकी उसे प्रतीति करनी है और हृदय-परिवर्तनकी अभिव्यक्तिके लिए यह एक आवश्यक प्रायश्चित्त है।

प्रायश्चित्तका मतलब श्री गांधी, यह है कि लोगोंमें अपनी रोजमर्राकी आदतों या आदर्शोंको त्यागनेकी भावनाका उदय हो गया है?

निश्चय ही!

क्या आप सोचते हैं कि इस देशके लोगोंने स्वयं ही गृह-उद्योगोंका विनाश कर दिया? क्या आप ऐसा नहीं मानते कि हाथके काम और मशीनरीके बीच किसी भी तरहकी स्पर्धामें गृह-उद्योगोंको नष्ट होना ही पड़ता है?

उस समय जब कि स्पर्धाका कोई प्रश्न नहीं था, लोगोंने जानबूझकर अपने राष्ट्रीय उद्योगोंकी बलि दे दी; हालाँकि यह सही है कि ऐसा उन्होंने क्रूरतापूर्ण दबावके कारण किया।

श्री गांधी! मैं आपकी बात ठीक तरह समझ नहीं पाया हूँ।

यह बात इतिहाससे अनुमोदित है कि जब हमने अपने गृह-उद्योग त्यागे उस समय हाथ-करघों और मशीनरीमें कोई स्पर्धा नहीं थी।

परन्तु मेरा खयाल तो ऐसा था कि लोगोंने स्वेच्छासे अपने उद्योग नहीं छोड़े थे, बल्कि उन्होंने देशमें आयातकी गई मशीन-निर्मित वस्तुओंसे मुकाबला करनेमें अपने आपको असमर्थ पाया था?

मेरे कहनेका मतलब यह है कि ईस्ट इंडिया कम्पनीको जो राजनैतिक सुविधा प्राप्त हो गई थी, उसकी बदौलत वह मशीनकी बनी चीजें इस देशके लोगोंपर थोप सकती थी।

परन्तु क्या ये मशीनकी बनी चीजें घरेलू-उत्पादनकी चीजोंसे सस्ती नहीं पड़ती थीं?

कदापि नहीं। देशके लोगोंको कपड़ा तैयार करनेका अपना धन्धा छोड़नेके लिए बार-बार आतंकित और विवश किया गया। मसलन, जब बुनकरोंको जबरन बहुत ज्यादा कपड़ा बनानेके लिए विवश किया गया तब तंग आकर उन्होंने अपने हाथोंके अँगूठे स्वयं काट डाले।

यह सब अत्याचार क्या इतने बड़े पैमानेपर जारी रहा होगा कि तमाम गृह-उद्योगोंका विनाश ही कर डाले?

निश्चय ही जबतक लोग उन घरेलू उत्पादनोंको अपने धर्मका एक अंग ही न मान लेते, तबतक इस प्रक्रियाके एक अमुक समयतक जारी रहनेका वैसा असर पड़ना ही था।

आपकी रायमें क्या आज राजनैतिक परिस्थितियाँ उन गृह-उद्योगोंके पुनरुत्थानके लिए अनुकूल हैं, जिन्हें आपके विचारके अनुसार ईस्ट इंडिया कम्पनीने नष्ट कर दिया था?

मैं परिस्थितियोंको बहुत अनुकूल मानता हूँ, क्योंकि लोग महसूस कर रहे हैं कि यदि अब हाथ-कताई और हाथ-बुनाईका पुनरुत्थान नहीं किया गया तो उनके लिए दिनों-दिन अधपेट भूखों मरनेके सिवाय और कोई चारा नहीं है।

तो इसी दिशामें जनताको प्रयत्नपूर्वक चलाना क्या आपके कार्यक्रमका अंग है?

हाँ! यह काम बहुत बड़े पैमानेपर किया जा रहा है।

भले ही लोग देशप्रेम और बचतके खयालसे हाथ-कताईपर ध्यान देने लगें तो भी यदि साथ ही फैक्टरी व्यवस्था और मशीनकी बनी चीजोंका भारतमें आना जारी रहा, तो क्या आप विशेष रूपसे आन्दोलनके सफल होनेकी आशा करते हैं?

इसका उत्तर स्वयं आपका प्रश्न ही दे रहा है। यदि लोग देशभक्ति और बचतकी भावनासे यह काम करने लगते हैं, तो यह हो सकता है।

परन्तु हमारे लोगोंका और उनकी वर्तमान दशाका आपने जो अध्ययन किया है, क्या उससे आपको यह आशा बँधती है कि देशभक्तिकी भावना इतनी बलवती सिद्ध होगी कि राज्यकी मददके बिना ही बड़े पैमानेपर घरेलू उत्पादनको जबर्दस्त प्रोत्साहन दिया जा सके?

हाँ, अवश्य। इसीलिए मैं कहता हूँ कि यदि लोग हाथ कताई और हाथ बुनाई-को बड़े पैमानेपर अपना लें तो उससे स्वतः ही हम स्वराज्यकी ओर अग्रसर होंगे।

परन्तु आन्तरिक उपद्रव, जैसे कि मलाबारमें हुए, अहिंसात्मक असहयोगकी गतिमें बहुत ही बड़ी बाधा है, यह तो आप मानेंगे ही?

मेरा उत्तर 'हाँ' है।

क्या आप यह भी नहीं मानते कि मलाबारके इस दंगेका आपके आन्दोलनसे बहुत-कुछ सम्बन्ध था?

जो जानकारी मैंने प्राप्त की है, और जिसपर मुझे सन्देह करनेका कोई कारण नहीं है, वह इसी तथ्यको प्रमाणित करती है कि हिंसा उन स्थानोंपर भड़की जो हमारे असहयोगियोंकी कार्रवाइयोंसे लगभग अछूते ही बचे थे। और मेरी जानकारीमें तो यह भी है कि असहयोगियोंको जानबूझकर इन उपद्रवग्रस्त क्षेत्रोंमें जानेसे रोका गया था।

यद्यपि आपके दलके बाहरके प्रतिष्ठित नेताओंने असहयोग आन्दोलनको बड़े पैमानेपर चलानेके दुष्परिणामोंकी ओर ध्यान आकर्षित करते हुए आपके आन्दोलनका विरोध किया था तथापि क्या आपकी अब भी यही धारणा है कि असहयोग भारत-जैसे देशको स्वराज्य दिलानेका, एकमात्र न सही, तो भी मुख्य साधन अवश्य है?

हाँ, यही एकमात्र उपाय है; भारत किसी अन्य उपाय द्वारा सौ सालोंमें भी स्वराज्य नहीं पा सकता।

देशमें लाखों करोड़ों लोग ऐसे हैं जो प्रत्यक्ष रूपसे आपके प्रभावमें नहीं हैं, लेकिन जो अखबारों और सभाओंके जरिये असहयोगके बारेमें पढ़ते और सुनते हैं। इन लोगोंको यही माननेको कहा जाता है कि देशमें जो भी बुराइयाँ हैं वे सब वर्तमान सरकारके कारण हैं। इन बुराइयोंको किस प्रकार दूर किया जाये, यह बताये बिना उनका जिक्र करते रहना, सत्तारूढ़ लोगोंके प्रति लोगोंमें दुर्भाव उत्पन्न करना है। क्या आप ऐसा नहीं सोचते कि असहयोग आन्दोलनका सुविचारित उद्देश्य भी यही है?

यह प्रश्न ऐसा मानकर चलता है कि कोई भी व्यक्ति वास्तवमें अहिंसाके विषयमें लोगोंको नहीं समझाता।

आप इसे अपनी प्रशंसा-मात्र न समझें तो मैं समझता हूँ कि आप मेरी इस बातसे सहमत होंगे कि जहाँ कहीं किसी प्रकारका कोई ऐसा झगड़ा उत्पन्न होता है जो असहयोगके सिद्धान्तके प्रसारके कारण उत्पन्न हुआ माना जाता हो वहाँ शान्ति स्थापित करनेके लिए गांधीकी आवश्यकता होती है।

मैं यह सोचकर अपनी तारीफ नहीं करूँगा कि हर जगह शान्त वातावरण बनानेके लिए मेरी निजकी उपस्थिति जरूरी हुई, क्योंकि मैं जानता हूँ कि ऐसे बहुत-से लोग हैं जो उस प्रकारका वातावरण बना सकें और उसे कायम भी रख सकें। मेरा पक्का विश्वास है कि यदि सरकारने श्री याकूब हसनको मलाबार जानेकी अनुमति दे दी होती, तो वहाँ बादमें जो-कुछ हुआ वह रोका जा सकता था और मुझे पूरा विश्वास है कि यदि सरकार मुहम्मद अलीको वाल्टेयरमें न पकड़ती बल्कि उन्हें मलाबार भेजती, तो वे पूर्ण शान्ति स्थापित कर सकते और बहुत-सी जानें बच जातीं तथा बहुतेरे हिन्दू परिवार धर्मान्ध मोपलाओंके उन्मादसे बच गये होते।

परन्तु आपके खयालसे श्री मुहम्मद अलीकी गिरफ्तारीका आपके आन्दोलनपर क्या असर पड़ेगा? क्या आपके मुसलमान अनुयायियोंको यह हिंसाके लिए प्रेरित करेगा?

मैं आशा करता हूँ कि नहीं करेगा; और मेरा विश्वास है कि यदि भारत अहिंसात्मक रहता है, और साथ ही दृढ़ भी तो मैं जानता हूँ कि स्वराज्य करीब है। यह देखते हुए कि सरकार जनताकी राय नहीं लेना चाहती, सरकारके पास केवल एक रास्ता रह जाता है और वह यह कि वह उन लोगोंको समाप्त कर दे जो जनताकी रायका, भले कुछ समयके लिए ही, प्रतिनिधित्व करते हैं।

आप जो कह रहे हैं, सरकार क्या वही कर रही है?

इस बारेमें मेरे मनमें कोई सन्देह नहीं है।

परन्तु जबतक आपके आदर्शके अन्तर्गत ये बड़ी-बड़ी शर्तें बनी हैं, तबतक आप लोगोंको ऐसी आशंका करनेसे नहीं रोक सकते कि आपकी तमाम नेकनीयतीके बावजूद हिंसाके अवसर आ सकते हैं क्योंकि उनके अन्दर आप-जैसी दार्शनिक वृत्ति या आत्मसंयमका दृढ़संकल्प नहीं है?

हाँ, खतरा तो हमेशा है, और कोई भी सुधारक अबतक बड़े खतरोंके बिना सुधार कार्य पूरा नहीं कर पाया है।

जब इतने बड़े खतरे मौजूद हैं, तो क्या आपकी समझसे सरकार द्वारा ऐसे तरीके अपनाना उचित नहीं है, जो उसकी बुद्धिसे जरूरी हैं?

यह देखते हुए कि सरकार जनताकी न्यायपूर्ण आकांक्षाओंका विरोध कर रही है, सरकारके कार्योंको किसी तरह उचित नहीं कहा जा सकता।

परन्तु क्या यह मामला ऐसा नहीं है जिसपर खुद भारतीयोंमें बड़ा मतभेद है?

मेरा उत्तर यह है कि खिलाफत और पंजाबके बारेमें लोगोंकी माँगोंके सम्बन्धमें कोई मतभेद नहीं है। इसका उल्लेख मैं इसलिए करता हूँ कि यदि सरकारका कुछ भी इरादा खिलाफतकी माँगे पूरी करनेका होता तो वह मौलाना मुहम्मद अलीको कैद हरगिज न करती।

मलाबारके उपद्रवोंके बावजूद, क्या आप हिन्दू-मुस्लिम एकताके प्रति निराश नहीं होते?

मेरे निराश न होनेका सीधा-सा कारण यह है कि कोई भी समझदार मुसल-मान, चन्द मोपला लोगोंने जो भी किया है उसे ठीक नहीं मानता है। जब आपका मानवके बहुत बड़े-बड़े समूहोंसे वास्ता पड़ता हो तब ऐसी उम्मीद करना बहुत ज्यादा होगा कि एक भी व्यक्ति कोई गलती नहीं करेगा।

इसी बातको लेकर आपके असहयोगका विरोध किया जाता है।

हाँ, लेकिन क्या सरकारने अपने शब्द-भण्डारसे 'खतरा'—यह शब्द मिटा दिया है?

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १६–९–१९२१

५३. भाषण: मद्रासमें

१५ सितम्बर, १९२१

"स्वदेशी" पर महात्मा गांधीका भाषण सुननेके लिए कल सायंकाल साढ़े पाँच बजे प्रेसिडेंसी कालेजके सामने समुद्रतटपर विशाल सभा हुई। . . .

श्री एस० कस्तूरीरंगा आयंगारके[1] प्रस्तावपर श्री याकूब हसनको सभापति बनाया गया।

महात्मा गांधी बोलनेको उठे तो लोगोंने तीव्र हर्षध्वनिसे उनका स्वागत किया। महात्माजी घंटे-भरसे अधिक समयतक बोले और बहुत स्पष्ट तथा खनकती हुई आवाज-में। लोगोंने उनका भाषण बड़े ध्यानसे सुना। भाषण अंग्रेजीमें दिया गया, किन्तु शुरूमें

१. मद्रासके कांग्रेसी नेता; सविनय अवज्ञा जाँच समितिके सदस्य; हिन्दूके सम्पादक।

ए० रामास्वामी आयंगार[1] और फिर श्री एस० सत्यमूर्ति[2] एक-एक वाक्यका अनुवाद करके बोलते गये। महात्माजीने कहा :

सभापति महोदय और मित्रो,

सदाकी भाँति मैं आपसे क्षमा माँगना चाहूँगा कि शारीरिक दुर्बलताके कारण मैं खड़ा होकर नहीं बोल सकता। पीछेके सभी श्रोताओंसे मैं कहना चाहता हूँ कि यदि वे मेरी बातें सुनना चाहते हैं तो पूरी शान्ति बनाये रखें। और मैं समस्त श्रोताओंसे अनुरोध करूँगा कि वे न तो ताली बजायें और न "शर्म-शर्म" चिल्लायें। सितम्बरमें राष्ट्रीय कांग्रेसने नागपुरमें देशके सामने जो कार्यक्रम प्रस्तुत किया, यदि आप उसे सचमुच पूरा करना चाहते हैं, तो विश्वास करें कि करतलध्वनि करके या "छि: छि:" कहकर आप उसे पूरा नहीं कर सकते। अब हमें प्रदर्शनसे बचकर पहलेसे कहीं अधिक गम्भीरतासे अपने काममें जुट जाना चाहिए। अपने कार्यक्रमको पूरा करने तथा स्वराज्यकी स्थापना करनेके लिए हमारे पास अब केवल कुछ महीनेका ही समय है। खिलाफत और पंजाबके अन्यायोंका परिशोधन करानेके लिए समयकी मानवीय दृष्टिसे, हमारे पास बहुत ही कम समय है। लेकिन खुशीकी बात यह है कि प्रतिदिन अपने चारों ओर मुझे इस बातके संकेत मिलते हैं कि ईश्वर हमारे साथ है। मैं जानता हूँ और नि:सन्देह आप भी जानते हैं कि हम भले ही मानवीय दृष्टिके अनुसार सबसे कमजोर दिखते हों, फिर भी ईश्वर चाहे तो हमें सफल बना सकता है।

मैं ऐसा मानता हूँ कि वाल्टेयरमें मौलाना मुहम्मद अलीकी गिरफ्तारी भी हमारे लिए वरदान बनकर आई है। ईश्वर ही जानता है कि जो भी सच्चे और वैध तरीके किसी असहयोगीके लिए उपयुक्त हैं, उन सभी तरीकोंसे मौलाना मुहम्मद अलीने, उनके भाईने और मैंने इस बातकी हरचन्द कोशिश की कि वे जेल न जायें। इस सीधे और सँकरे पथपर चलनेके लिए एक बहादुर आदमी जो-कुछ कर सकता है, मुहम्मद अलीने वह सब किया। और यह तो वाइसराय महोदय ही बता सकते हैं कि उस समय जब कि वे शान्ति और सद्भावना यात्रापर निकले हुए थे, ऐसी कौन-सी नई स्थिति उत्पन्न हो गई थी जिससे उनकी गिरफ्तारीका औचित्य सिद्ध होता है। अलीबन्धुओंके हस्ताक्षरसे जारी किये गये उस प्रसिद्ध और बहुचर्चित वक्तव्य[3]-के बादसे मौलाना मुहम्मद अली लगभग बराबर मेरे साथ ही रहे हैं। मैं अपने श्रोताओंको, और इन श्रोताओंके जरिये समस्त भारतको यह विश्वास दिलाता हूँ कि मौलाना मुहम्मद अलीने खुदाके नामपर भारतसे जो यह वादा किया था कि वे हिंसा नहीं भड़कायेंगे, उस वादेसे वे तिल-भर भी नहीं हटे हैं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि निजी बातचीतमें या खुले तौरपर, वक्तन-फवक्तन मौलाना मुहम्मद अलीने इस बातपर जोर दिया कि भारतके लोगोंके लिए अहिंसाका पूरी तौरपर

१. पहले मद्रासके तमिल दैनिक **स्वदेशमित्रन्** और बादमें **हिन्दू**के सम्पादक; १९२६-२७ में कांग्रेसके महा-सचिव; विधान सभाके सदस्य।

२. १८८७–१९४३; मद्रासके एक प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता और वक्ता।

३. देखिए खण्ड २०, पृष्ठ ९२।

पालन करना जरूरी है। उनसे जो लोग मिले उन्हें और जिन बहुत सारी सभाओंमें वे बोले, वहाँ लोगोंको उन्होंने यही समझाया है कि स्वराज्य हो, या खिलाफत अथवा पंजाब विषयक अन्यायका परिशोध — हमारी सफलताकी एकमात्र और अनिवार्य शर्त यही है कि भारतके लोग पूरी तरह अहिंसाकी भावना बनाये रहें। लेकिन अलीबन्धु कायर नहीं हैं। अगर किसीकी ऐसी कल्पना या ऐसा विचार रहा हो कि उनके "वक्तव्य" का अर्थ उनके रवैये या उनकी भाषामें कोई परिवर्तन है, तो यह उसका भ्रम ही था। इन दोनोंसे ज्यादा बहादुर और सच्चे लोग मेरे देखनेमें कभी नहीं आये। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि ये दोनों भाई बाहर-भीतर हर तरफसे शालीन और ईमानदार हैं। लेकिन मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि वे कठोर भाषाका प्रयोग कर सकते हैं, और इसका प्रयोग करना और खरी बात कहना उन्हें बहुत प्रिय है। (श्रोताओंमें दबी हँसीकी आवाज) वे दोनों खुद बहादुर और शक्तिवान हैं और अपने श्रोताओंमें भी अपनी थोड़ी-बहुत बहादुरी और शक्ति पैदा करनेकी उन्होंने सफल कोशिश की है। लेकिन अपने अनुयायियोंमें अपनी जैसी शक्ति और बहादुरीकी भावना उत्पन्न करनेके साथ-साथ ही उन्होंने अपने अनोखे ढंगसे अपनी शक्ति-भर खुदको अनुशासित भी किया है। मेरा दृढ़मत है कि इन दोनों भाइयोंने समस्त भारतमें अहिंसाका वातावरण बनाये रखनेके लिए जितना प्रयास किया है उतना मुसलमानोंमें अन्य किसीने भी नहीं किया है; और इसीलिए अगर मैं सरकारपर यह आरोप लगाऊँ कि मौलाना मुहम्मद अलीको गिरफ्तार करके उसने खिलाफतको ही गिरफ्तार किया है या करनेकी कोशिश की है तो उसे इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

वैसे तो सरकार खुद ही शक्तिशाली है, फिर भी अगर वह चाहती तो अलीबन्धुओं-को और मुझे उपद्रवग्रस्त क्षेत्रमें जानेका न्यौता दे सकती थी, कि हम उस उपद्रवग्रस्त क्षेत्रमें शान्ति-सुव्यवस्था स्थापित करें। मुझे विश्वास है कि इस तरह बहुत-से निर्दोष लोगोंकी जान बच गई होती। मुझे विश्वास है कि बहुतसे हिन्दू परिवारोंको बरबादीसे बचाया जा सकता था। मुझे माफ किया जाये, लेकिन मैं सरकारपर फिर आरोप लगाता हूँ कि वह लोगोंको हिंसाके लिए भड़काना चाहती थी। जिस प्रकारकी शासन-पद्धतिके अन्तर्गत हमपर शासन किया जा रहा है उसमें शक्तिशाली, बहादुर और सच्चे आदमियोंके लिए कोई जगह नहीं है। सरकारके पास ऐसे आदमियोंके लिए अगर कहीं कोई जगह है तो वह जेल ही है।

मलाबारमें जिन लोगोंको इतना अधिक दुःख भोगना पड़ा है, मेरा हृदय उनके लिए रोता है। मैं जानता हूँ कि एक जमानेसे हमारे मोपला भाई अनुशासनविहीन जीवनके आदी रहे हैं, और इसलिए उनपर पागलपन सवार हो गया है। मैं जानता हूँ कि उन्होंने खिलाफत और अपने देशके प्रति एक भयंकर अपराध किया है। समस्त भारतके ऊपर आज इस बातकी जिम्मेदारी है कि वह गम्भीरसे-गम्भीर उत्तेजनाके बावजूद अहिंसा बरते। हिन्दू परिवारोंकी जो तबाही हुई है उससे मैं साफ देखता हूँ कि अहिंसात्मक असहयोगका कल्याणकारी सन्देश उस क्षेत्रमें मोपला परिवारोंतक नहीं पहुँच सका था। और मेरे पास ऐसे प्रमाण हैं, जिनपर सन्देह करनेका कोई कारण नहीं है, कि जिन भागोंमें हमारे मोपला देशभाइयोंने पागलपन दिखाया, वहाँ असहयोग-

की भावना नहीं पहुँच पाई थी। मैं जानता हूँ कि असहयोगियोंको जानबूझकर उन भागोंमें अधिकारियोंने नहीं जाने दिया। किन्तु मैं आशा करता हूँ कि मेरे हिन्दू देश-भाई अपना मानसिक सन्तुलन नहीं खोयेंगे। यद्यपि मैं यह माननेको तैयार नहीं हूँ, लेकिन अगर यह मान भी लिया जाये कि सरकारी सूत्रोंसे जबरिया धर्म-परिवर्तनकी जो कहानियाँ हमारे कानोंतक पहुँची हैं वे सब सही हैं, तो भी इस श्रोता-समुदायमें जो हिन्दू मौजूद हैं, मैं उनसे यह विश्वास करनेका अनुरोध करूँगा कि इस बातसे ही हिन्दू-मुस्लिम एकताके सिद्धान्तके प्रति हमारी आस्था भंग नहीं हो जानी चाहिए। हमें यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि सभी हिन्दू और सभी मुसलमान एकाएक इस सिद्धान्तके कट्टर अनुयायी हो जायेंगे। मेरे जाननेमें एक भी ऐसा समझदार मुसलमान नहीं है जो छिपे तौरपर या खुले आम जबरिया धर्म-परिवर्तनकी इन घटनाओंको ठीक बताता हो; और हमें अपने इन भाइयोंके भविष्यके प्रति भी कोई चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है।

शास्त्रोंका जो अध्ययन मैंने किया है, उससे मेरी पक्की धारणा बनी है कि जिस व्यक्तिको बल-प्रयोग द्वारा कोई काम करनेके लिए विवश किया गया हो, उसे प्रायश्चित्त करनेकी जरूरत नहीं है। हमारे मित्र श्री याकूब हसनने तमिल जनताको बताया है कि ये लोग जिनका जबरन धर्म परिवर्तन किया गया है, इस्लाम-धर्ममें प्रविष्ट नहीं किये जा सकते। एक सच्चे हिन्दूके नाते, एक ऐसे हिन्दूके नाते जो कोई बात कहते समय अपनी जिम्मेदारी पूरी तरह जानता है, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि उनमें से एक भी हिन्दू ऐसा नहीं है, जिसने हिन्दू-समाजमें रहनेका अधिकार खो दिया हो। मुझे पता है कि विपत्ति-ग्रस्त हिन्दू घरोंको सहायता पहुँचानेवाले कांग्रेस और खिलाफतके कार्यकर्त्ताओंके रास्तेमें सरकार हर प्रकारकी बाधा खड़ी कर रही है, और इसके साथ ही मुझे बताया गया है कि सरकार स्वयं इन लोगोंके लिए जो भूख-पीड़ित हैं, कुछ नहीं कर रही है। सरकार हमें अनुमति दे या न दे, मुझे इसमें सन्देह नहीं कि हमारा स्पष्ट कर्त्तव्य है कि जितना पैसा हम इकट्ठा कर सकें उतना पैसा इन कष्ट-पीड़ितोंके लिए इकट्ठा करें, और ऐसी व्यवस्था करें कि उन्हें जिन चीजों-की जरूरत है, वे उन्हें मिलें। कांग्रेस कमेटीने इन कष्ट-पीड़ितोंकी मददके लिए अमुक धनराशि इस निमित्त देना निश्चित किया है और मैं जानता हूँ कि खिलाफत समिति भी एक अमुक राशि देनेकी कोशिश कर रही है। किन्तु मैं मद्रास अहातेके मुसलमान देशभाइयोंसे कहूँगा कि यदि वे अपने हिन्दू-भाइयोंकी सहायताके लिए प्रत्येक घरसे पाई-पाई भी इकट्ठा करें तो यह एक बहुत ही उदारताका काम होगा।

मैं जानता हूँ कि आज यह अहाता भारत-भरमें शायद सबसे ज्यादा संकट-ग्रस्त अहाता है। हम अभीतक पूरी तरह नहीं जानते कि इस क्षेत्रमें जनताकी प्रबल और उठती हुई भावनाओंको दबानेके लिए सरकार क्या कदम उठा रही है। आज सुबह मुझे दी गई इस सूचनापर अविश्वास करनेका मेरे पास कोई कारण नहीं है कि मलाबारमें ठहरे बहुए बहुत-से नौजवानोंको इस कारण अपमानित किया गया कि वे खद्दरकी टोपी और सदरी पहने थे। मुझे मालूम हुआ है कि भारतमें शान्ति-रक्षाके इन ठेकेदारोंने खद्दरकी शुद्ध सदरियोंको फाड़-फूड़ डाला और उन्हें जलाकर राख

कर दिया। मुझे यह भी मालूम हुआ है कि मलाबारके सरकारी अधिकारी पंजाबके अधिकारियोंसे आगे भले न बढ़ पाये हों, लेकिन अपमानित करनेके नये-नये तरीके उन्होंने जरूर ईजाद किये हैं। आन्ध्र प्रदेशमें नये सुधारके अनुसार बने मन्त्रिमण्डलके सदस्य भी जनतापर लाल-पीले हो रहे हैं।

उन्होंने जनताकी अनिच्छाके बावजूद उसके ऊपर एक नगरपालिका थोप दी है। आन्ध्र देशके एक दूसरे भागमें व्यापक विरोधके बावजूद उन्होंने जबरन चराई-कर वसूलनेकी कोशिश की है। और मेरी जानकारीके अनुसार इन मन्त्रियोंके एक फतवेके अधीन निर्दोष गायोंको उनके बछड़ोंसे अलग करके कांजीहाउसोंमें डाल दिया गया है, जहाँ उन्हें खाने-पीनेके लिए घास और पानी भी नहीं मिलता। तो इन दमनकारी कार्यवाहियोंके मुकाबले जिनमें सिर्फ अंग्रेज प्रशासकोंका ही नहीं, बल्कि तथा-कथित उत्तरदायी मन्त्रियोंका भी हाथ है, क्या हम हिंसासे उत्तर दें? हम निश्चित तौरपर जानते हैं कि उसका परिणाम क्या होगा। हम जानते हैं कि जिस देशकी जनताने हिंसा न करनेकी शपथ ली हो, उस देशकी जनता द्वारा हिंसा करनका परिणाम निश्चित विनाश है। यदि आप मौलाना मुहम्मद अलीको जेलसे रिहा कराना चाहते हैं, यदि आप उन निर्दोष गायोंको मुक्त कराना चाहते हैं, यदि आप चाहते हैं कि मलाबारमें हमारे देशभाइयोंको जिस तरह कानून, व्यवस्था और शान्तिके नामपर अपमान मिल रहा है, उससे हम बचें, यदि आप चाहते हैं कि चिरला-पेरलामें हमारे साहसी देशभाइयोंपर जो दबाव डाला जा रहा है, उसका प्रतिरोध करें, तो आपके सामने एक ही रास्ता है, और वह यह कि आप अहिंसाका पूरा-पूरा पालन करें। राष्ट्रीय स्वाभिमानका तकाजा है कि मौलाना मुहम्मद अलीको और इस सरकार द्वारा नाजायज तौरपर बन्द किये अन्य सभी लोगोंको भी रिहा करानके लिए एकमात्र तरीका स्वराज्यकी स्थापना है, और स्वराज्यमें इस देशकी संसदका सर्वप्रथम कार्य यह हो कि वह समुचित आदर और सम्मानके साथ इन निर्दोष कैदियोंकी रिहाईके लिए कानून पास करे। हमें इस सरकारसे किसी रियायतकी माँग नहीं करनी है, और न उसकी हमें अपेक्षा ही करनी चाहिए। हमें चाहिए कि हम इस सरकारको चुनौती दे दें कि वह हदसे-हद जो करना चाहती है करे, और हालाँकि सरकारको अन्तमें दृढ़-संकल्प लोगोंकी इच्छाके सामने झुकना ही होगा, लेकिन हमें समझ रखना चाहिए कि इससे पहले कि वह झुके, वह हमारी चुनौतीको स्वीकार करेगी, और उसका वैसा ही जवाब देगी जिसकी अपेक्षा एक निरंकुश और शक्तिमदमें चूर सरकारसे की जाती है।

लेकिन मैं चाहता हूँ कि आप अपने मनको टटोल कर देखें। इसी वर्ष स्वराज्य-प्राप्तिके लिए हमें क्या करना है? अपने देशभाइयोंके सामने रखनेको मेरे पास अहिंसा, हिन्दू-मुस्लिम एकता और स्वदेशीके सुपरीक्षित कार्यक्रमके सिवा दूसरा कोई कार्यक्रम नहीं है। हमारी अहिंसा और हिन्दू-मुस्लिम एकताके प्रति हमारी लगनकी अभिव्यक्ति स्वदेशीके जरिये होनी चाहिए। इसीलिए इस सभामें इतने कम लोगोंको स्वदेशी वस्त्र पहने देखकर मुझे दुःख होता है। और जब मैं एक ओर बेगम मुहम्मद अली साहिबाको देखता हूँ और दूसरी ओर अपने सामने बैठी बहनोंको देखता हूँ

तो मेरा दिल टूट जाता है। बेगम साहिबाका लालन-पालन भी उतने ही कोमल ढंगसे हुआ है जितने कोमल ढंगसे मेरी इन बहनोंका। लेकिन इसके बावजूद वे भारी खद्दर धारण करनेमें लज्जा नहीं, बल्कि गर्वका अनुभव करती हैं। और मेरी प्यारी बहनो, यदि आपने मेरी बातें ध्यानसे सुनी हैं तो मुझे आशा है कि आप कलसे अपना मन बदल लेंगी। और विदेशी रेशमी वस्त्र और विदेशी साज-सज्जाको फेंककर शुद्ध तथा पवित्र खद्दर ही धारण करने लगेंगी। और जहाँतक पुरुषोंकी बात है, मौलाना मुहम्मद अली और मौलाना शौकत अली, दोनों भाई, भले ही पसीनेसे लथपथ हो जायें, किन्तु दिन-रात खद्दरके ही कपड़े पहने रहते हैं। मौलाना शौकत अलीके लिए तो और भी परेशानी है, क्योंकि वे डील-डौलमें अपने भाईसे ज्यादा मोटे और भारी-भरकम हैं। इसलिए फिर जब मैं एक ओर इन दोनों भाइयोंके बारेमें सोचता हूँ और दूसरी ओर इस विशाल श्रोता-समुदायपर नजर डालता हूँ तो मेरा दिल उसी तरह टूट जाता है। यहाँ आप लोग जैसी भावनाका प्रदर्शन कर रहे हैं, उस भावनासे तो स्वराज्य नहीं मिल सकता। देश आपसे अपेक्षा करता है कि आप अपने विदेशी और सुन्दर बारीक वस्त्र छोड़ दें, विदेशी कपड़ेसे बनी अपनी टोपियाँ और विदेशी सूतसे बनी बारीक धोतियाँ भी छोड़ दें। देश प्रत्येक मर्द, औरत और बच्चेसे, यह अपेक्षा रखता है कि उसे जितना समय मिले, उसमें वह सूत काते। जबतक चरखेका शान्ति-पूर्ण और पवित्र सन्देश भारतके प्रत्येक घरमें नहीं पहुँच जाता तबतक अहिंसात्मक तरीकोंसे स्वराज्य नहीं प्राप्त किया जा सकता।

इस जगह सभाको दस मिनटके लिए स्थगित कर दिया गया ताकि मुसलमान श्रोतागण शामकी नमाज पढ़ सकें। इस बीच सभामें पूरी शान्ति बरती गई। नमाजके बाद महात्माजीने अपना भाषण जारी करते हुए कहा :

मेरे लिए चरखा प्राचीन समृद्धिकी पुनर्स्थापना और आत्म-विश्वासका प्रतीक है। चरखा इस बातकी सबसे खरी कसौटी है कि हमने अहिंसाकी भावनाको कहाँतक आत्मसात् किया है। चरखा एक ऐसी चीज है जो हिन्दू और मुसलमानोंको ही नहीं, बल्कि भारतमें रहनेवाले अन्य धर्मावलम्बियोंको भी एक सूत्रमें बाँध देगा। चरखा भारतीय नारीके सतीत्वका प्रतीक है। मैं इस बातकी साक्षी देता हूँ कि चरखेके अभावमें हमारी हजारों गरीब बहनें लज्जा और पतनका जीवन अपनानेको विवश हैं। चरखा विधवा नारीका सखा है। और यह चरखा ही है जिससे भारतके लाखों ग्रामवासियोंके अपर्याप्त साधनोंकी पूर्ति होती थी। चरखा न जाने कितने लोगोंकी आत्मशुद्धिमें सहायक हुआ है। और हमारे घरोंमें चरखेका व्यापक रूपसे अपनाया जाना मेरी दृष्टिमें इस बातका निश्चित द्योतक होगा कि हमने अब दिमागको ही सब-कुछ मान लेना बन्द कर दिया है। इसलिए मेरे लिए चरखा इस बातका द्योतक है कि जो लोग चरखा चलाते हैं वे शारीरिक श्रमकी सर्वोच्चताको स्वीकार करते हैं। हमने अछूत मानकर अभीतक जिनका तिरस्कार करनेका पाप किया है, चरखा उनके लिए सान्त्वनाका स्रोत है। चरखा ही वह चीज है जिसे भारतमें कहीं भी पतनके गर्तमें पड़ी बहनें रोजी कमानेके एक सम्मान-जनक साधनके रूपमें अपना सकती हैं। और

जब चरखा हमारे देशके घर-घरमें अपनी पक्की जगह बना लेगा तभी भारतके लिए व्यापक पैमानेपर सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करना सम्भव होगा। जब हमारा खून क्रोधसे उबल रहा हो, और जब हम उत्तेजित हों उस समय देशमें कानूनकी अवज्ञाका कोई आन्दोलन सविनय तो हो ही नहीं सकता। अगर हम इसी वर्ष मुक्ति पानेके उद्देश्यसे सारे भारतमें अहिंसाकी भावना भरना चाहते हैं तो चरखेके अलावा हमारी शुद्धिका और कोई उपाय नहीं है। आपको अपना तन ढँकनेके लिए बम्बई और अहमदाबादकी मिलोंपर निर्भर नहीं रहना चाहिए, बल्कि आपमें इतनी क्षमता, इतना आत्मसम्मान होना चाहिए कि आप अपने पवित्र हाथोंसे तैयार किये गये वस्त्रसे ही अपना तन ढँकनेपर आग्रह रखें। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि इस श्रोतासमूहमें से कोई भी मेरी बातोंकी आड़ लेकर अपनी कमजोरी नहीं छिपायेगा, और न इनका प्रयोग श्रोताओंको मैं जिस तरह विदेशी वस्त्र पहने देख रहा हूँ, उसी तरह विदेशी वस्त्र पहनना जारी रखनेके लिए करेगा। इसके विपरीत, अगर मेरी ही तरह आप भी ऐसा महसूस करते हों कि हमने पिछले दिसम्बर महीनेमें जो संकल्प किया उसे पूरा करनेको हम एक पवित्र कर्त्तव्य-बन्धनसे बँधे हुए हैं तो आप ध्यान रखेंगे कि जबतक आप अपना पसीना बहाकर अपने लिए कपड़ा तैयार नहीं करते तबतक आप चैन नहीं लेंगे, भले ही तबतक आपको मद्रासकी सड़कोंपर लँगोटी पहनकर ही क्यों न चलना पड़े। अलीबन्धु आपसे हड़तालकी अपेक्षा नहीं करते। वे यह भी नहीं चाहते कि आप सार्वजनिक सभाओंका आयोजन करके प्रदर्शन करें। वे आपसे जो चाहते हैं वह इतना ही कि आप एक निश्चित ढंगसे अपनी वीरता और उत्साह, निर्भीकता और सत्य-परायणता तथा अहिंसाका परिचय दें। वे चाहते हैं कि उनकी बात सुननेके लिए श्रोतासमूहमें शामिल होनेवाले स्कूली लड़कोंमें अगर उनके प्रति तनिक भी भाव और सम्मान हो तो वे उनका अनुरोध स्वीकार करें और उस सरकारकी स्कूलोंमें जाना बन्द कर दें जिसे उखाड़ फेंकनेके लिए वे कृतसंकल्प हैं। वे चाहते हैं कि जो कमजोर दिल खिताबयाफ्ता लोग, कौंसिलोंके सदस्य लोग और वकील असहयोगमें विश्वास तो रखते हैं लेकिन उनके पास जो-कुछ है उसे छोड़नेका साहस नहीं रखते, वे अब उनके आवाहनका उत्तर दें और बहादुरीके साथ उत्तर दें।

लेकिन ये खास वर्ग अपने कर्त्तव्यका अनुभव करें या नहीं, या अपने कर्त्तव्यका अनुभव करके वे अवसरकी माँगके अनुकूल आचरण करें या नहीं, लेकिन यहाँ एकत्र हुए हम लोगोंके लिए स्वदेशीका सन्देश अस्वीकार कर देनेका कोई कारण नहीं है। हम स्वराज्य कुछ खास वर्गोंके लिए नहीं, बल्कि आम जनताके लिए चाहते हैं, जिसमें अस्पृश्य तथा देशके दीनसे-दीन स्त्री-पुरुष भी शामिल हैं। ईश्वरकी कृपा है कि हमारी सेना ऐसी है जिसमें स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े, कोढ़ी-रुग्ण सभीको विशेष सुविधा प्राप्त स्थितिवाले लोगोंके साथ-साथ उनके जैसा ही सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त है। कारण, क्या हमारा यह दावा नहीं है, क्या हमने हजारों मंचोंपर से यह नहीं कहा है कि वर्तमान सरकार शैतानकी सरकार है? और क्या हम यह दावा नहीं करते कि हम एक असुर-राज्यके स्थानपर राम-राज्य स्थापित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं? और ईश्वरके राज्यमें क्या हममें से छोटेसे-छोटेको बड़ेसे-बड़ेकी बराबरीका दर्जा प्राप्त नहीं है?

इस लहराते सागरके तटपर ईश्वरके नामपर मैंने कई बार कहा है कि तमिल और तेलुगु लोगोंकी धार्मिक प्रवृत्तिमें मेरा निश्चित विश्वास है क्योंकि दक्षिण आफ्रिकामें उनके साथ खाने-पीने, सोने-बैठने और कष्ट सहनेका जो सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ उसमें मैंने ऐसा ही देखा। मैं आशा करता हूँ और ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि भावी इतिहासकारोंको ऐसा न लिखना पड़े कि द्रविड़ देशके लोग बातें तो ईश्वरके राज्यकी करते थे, लेकिन चल रहे थे शैतान-राज्यवाले तौर-तरीकोंपर। हम ऐसा न करें जिससे हमारे विरोधियोंका यह आरोप सही सिद्ध हो जाये कि अहिंसा और सत्यकी दुहाई देते हुए हम कई बार हिंसा और असत्यका आचरण करते हैं। जैसा कि तिलक महाराजने कहा है, स्वराज्य हमारा पुनीत और जन्मसिद्ध अधिकार है, खिलाफत हमारे मुसलमान देश भाइयोंके लिए एक पवित्र थाती है; और पंजाबके साथ किये गये अन्यायका परिशोध करना हमारा पावन कर्त्तव्य है। अब हम ऐसा न करें कि जिस सिद्धान्तको हमने पिछले वर्ष दो-तीन बार अपने धर्मकी तरह स्वीकार किया उसके साथ दगा करके हम अपने जन्मसिद्ध अधिकार, अपने धर्म और कर्त्तव्यसे विमुख हो जायें। हमने अपने सामने एक मानदण्ड रखा है और हमें उसपर दृढ़ रहकर अपने-आपको उसके योग्य सिद्ध करना है। अपने स्वीकृत सिद्धान्तके साथ दगा करके हम भावी पीढ़ियोंकी भर्त्सनाके भागी न बनें।

अगले कुछ महीनोंमें हमें अवश्य ही बहुत उथल-पुथल, कष्ट, कारावास और ऐसी ही बहुत-सी अन्य बातोंका भी सामना करना पड़ेगा। सारी दुनियामें प्रभातके पहले अन्धेरा बहुत घना होता है, और मैं चाहता हूँ, आप अपनी आस्थाकी आँखोंसे प्रकाशकी उन किरणोंको देखें जो हमारे देशपर छाये इस घने अन्धकारको चीर कर आ रही हैं। और मैं इस महान् प्रान्तके नारी-पुरुष, सभीसे कहता हूँ कि आप सब अपने दायित्वका निर्वाह ऐसी ईमानदारीके साथ करें कि भावी पीढ़ियाँ कह सकें कि मद्रास प्रान्त अपना कर्त्तव्य पूरा करनेमें किसी भी प्रान्तसे पीछे नहीं था। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह हम सबको शक्ति और साहस दे, एक निश्चित संकल्प दे, जिससे हम अपने लक्ष्यतक पहुँच सकें।

बेगम साहिबा आपसे दो शब्द कहनेवाली हैं। कृपया उनकी बातोंको पूरे आदर और ध्यानसे सुनियेगा। उनके बाद मौलाना आजाद सोबानी बोलेंगे। वे एक बहुत बड़े मुल्ला हैं। जब केन्द्रीय खिलाफत समितिने, गत सितम्बर माससे बहुत पहले, असहयोग करनेका फैसला अन्तिम रूपसे किया था, तब खिलाफत समितिने खिलाफतके सिद्धान्तका प्रतिपादन करनेके लिए उन्हींको चुना था। इसलिए मुझे भरोसा है कि जितने धैर्यके साथ आपने मेरी बात सुनी है, उतने ही धैर्यके साथ उनकी बात भी सुनेंगे। अन्तमें आपसे मैं अनुरोध करूँगा कि आप सब किसी प्रकारकी नारेबाजी या प्रदर्शन आदि न करें — सिर्फ इसी सभामें नहीं, बल्कि सभी सभाओंमें। अहिंसाके नियमका तकाजा है कि हमें निरर्थक प्रदर्शनों, चीख-पुकार और हाथ-पैर आदि पटककर अपना खून नहीं गर्म करना चाहिए। मैं अपने विस्तृत अनुभवके आधारपर यह कह रहा हूँ कि जब सभी लोग बातचीत कर रहे हों और शोर-गुल मचा रहे हों — भले ही वे ऐसा स्नेह-वश ही क्यों न कर रहे हों — तब सदा शान्ति बनाये रखना असम्भव हो

जाता है। मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि यह जानते हुए भी कि हमारे विरोधी क्या-कुछ कर रहे हैं, हमारे वे देशभाई जो हमारे खिलाफ खड़े हैं वे क्या कर रहे हैं, आप लोग उनके साथ भी सम्मान और सहिष्णुताका बरताव करें। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि विनम्रता और प्रेमसे हमारे बहुत-से ऐसे शत्रु हमारे मित्र बन जायेंगे, जो आजतक हमारे खिलाफ लड़ते रहे हैं। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे, हमारे सामने अपने विरोधियोंके लेखों, भाषणों और कार्योंसे उत्तेजित हो उठनेके बहुत-से मौके आयेंगे। वैसी हालतमें मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि उनकी इस बुराईके उत्तरमें — अगर हम उसे बुराई मानते हों तो — आप भी वैसी ही बुराईका आचरण न करें। वे तो मेरी और आपकी तरह अहिंसाके किसी सिद्धान्तसे बँधे हुए नहीं हैं, और इसलिए उनके किसी कामपर हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए, क्रोध नहीं करना चाहिए। हमें अपने आचार-व्यवहारकी ही चिन्ता करनी चाहिए। फिर तो हम भविष्यके बारेमें भी पूरी तरह आश्वस्त हो सकते हैं। आपने जिस ध्यानसे मेरी बातें सुनी हैं, उसके लिए आपको हृदयसे धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १६–९–१९२१

५४. भाषण : स्त्रियोंकी सभा, मद्रासमें

१६ सितम्बर, १९२१

गत शुक्रवारको तीसरे पहर पौने पाँच बजे सौन्दर्य महलमें सार्वजनिक मित्र-मण्डलके तत्वावधानमें बुलाई गई एक सार्वजनिक सभामें, जो केवल स्त्रियोंके लिए थी, महात्मा गांधीने भाषण दिया। . . .

. . . महात्माजी गुजरातीमें बोले। उन्होंने स्वदेशी वस्त्र धारण करनेकी वांछनीयता और जरूरत बताते हुए इस बातपर दुःख प्रकट किया कि सभी उपस्थित स्त्रियाँ विदेशी कपड़े पहने हुए हैं। उन्होंने कहा, यदि आप लोगोंको जापान या इंग्लैंडमें पकाई गई रोटियाँ दी जायें तो वे चाहे कितनी ही स्वादिष्ट क्यों न हों, आप कदापि नहीं खायेंगी। इसी तरह आपको विदेशी कपड़े और तड़क-भड़कवाली चीजें कतई इस्तेमाल न करना अपना धर्म मान लेना चाहिए, क्योंकि ये हमारे राष्ट्रीय पतनके साधन-स्वरूप हैं। आप लोग अपने विदेशी कपड़े जला डालिए और अपने हाथके कते सूतसे हाथ-करघोंपर बुने स्वदेशी कपड़े ही पहननेका दृढ़ संकल्प कीजिए। इतना कह चुकनेके बाद गांधीजीने चरखेकी उपयोगिता समझाई और कहा कि यह विधवाओंके जीवनका सहारा है, किसी भी असहाय नारीका साथी है और अब तो प्रत्येक आत्म-सम्मानिनी भारतीय महिलाको चाहिए कि वह चरखेको अपना प्रिय मित्र समझे। चरखा एक ऐसा यन्त्र है जिसे चलानेके लिए ज्यादा ताकत या विशेष हुनरकी जरूरत नहीं होती। एक गरीब कमजोर बालक भी इसे चला सकता है।

श्रीमती मुहम्मद अलीका परिचय कराते हुए गांधीजीने कहा कि स्त्रियोंको बेगम साहिबाके उदाहरणका अनुकरण करना चाहिए। इनके पतिको हाल ही में सरकारने गिरफ्तार कर लिया है परन्तु इन्होंने जरा भी भय या बेचैनी नहीं दिखाई। बेगम साहिबा खद्दर पहने हुए हैं। परन्तु खद्दरका जितना बोझ इनके शरीरपर है उतना आप लोगोंमें से किसीको नहीं धारण करना होगा। स्त्रियोंको सुन्दर चीजें बहुत अच्छी लगती हैं परन्तु उन्हें हमेशा यह याद रखना चाहिए कि सुन्दरता बाहरकी चीज नहीं हुआ करती। कोई स्त्री यदि नेक और कर्त्तव्यपरायण है तो वह सुन्दर है अन्यथा असुन्दर है। यदि आपमें जरा भी आत्म-सम्मानकी भावना है और यदि आप अपने बच्चोंका और राष्ट्रका सम्मान बनाये रखना चाहती हैं, तो आपको तड़क-भड़कके प्रति अपनी रुचि अवश्य त्यागनी होगी, और सादा और संयत जीवन बिताना होगा। सीता-जीको जब अशोक वाटिकामें बन्दीके रूपमें रखा गया था तब रावणने उनके सामने हर तरहकी सुन्दर वस्तुएँ प्रस्तुत की थीं। परन्तु उन्होंने तिरस्कारपूर्वक किसी भी चीजको स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया था और फल खाकर तथा वल्कल-वसन पहनकर रहना अधिक पसन्द किया। तो जबतक भारत गुलामीकी जंजीरोंमें जकड़ा हुआ है और जबतक धर्मराज्यकी स्थापना नहीं होती, तबतक भारतके प्रत्येक स्त्री-पुरुषको ऐसे विदेशी वस्त्रोंको घृणापूर्ण नजरसे देखना चाहिए मानो वे वास्तवमें एक अस्पृश्य वस्तु हैं।

अपने भाषणका अन्त करते हुए उन्होंने उत्तर भारतीय महिलाओंसे कहा कि वे अपनी मद्रासी बहनोंके साथ स्वच्छन्दतापूर्वक हेलमेल पैदा करें और अपने बच्चोंका पालन-पोषण ठीक तरहसे करें। वे अपने बच्चोंमें वीरता और साहसके भाव भरें।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १९–९–१९२१

५५. भाषण : कपड़ा व्यापारियोंकी सभा, मद्रासमें

१६ सितम्बर, १९२१

कल शामको मद्रासके कपड़ा व्यापारी संघकी एक महत्वपूर्ण आम सभा, संघके भवनमें, महात्मा गांधीके साथ विदेशी कपड़ेके बहिष्कारके सम्बन्धमें बातचीत करनेके लिए हुई। सभामें संघके सदस्य काफी बड़ी संख्यामें उपस्थित थे। मौलाना आजाद सोबानी, सर्वश्री याकूब हसन, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी और टी० एस० एस० राजन् भी सभामें उपस्थित थे। भाषण अंग्रेजीमें हुए और श्री राजगोपालाचारीने तमिलमें उनका अनुवाद कर सुनाया।

संघकी ओरसे श्री रामजी कल्याणजीने महात्माजीका स्वागत किया। गांधीजीने जवाबमें कहा :–

सज्जनो,

आज आप लोगोंसे यहाँ मिलकर मुझे बहुत खुशी हुई है। सौभाग्यसे कपड़ा-व्यापारियोंसे मेरे बहुत ही मधुर सम्बन्ध रहे हैं। जैसा कि आप जानते हैं, बम्बई और कलकत्तामें उनके साथ मेरी कई बैठकें हुई हैं और भारतके विभिन्न भागोंमें दौरा करते समय मैंने सब जगह व्यापारी-समाजसे मिलनका विशेष ध्यान रखा है। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इन सब स्थानोंमें इस महान् स्वदेशी आन्दोलनके प्रति उनमें पूर्ण सहानुभूति थी, जो कि उचित ही है। आपको यह जानकर भी खुशी होगी कि कलकत्ताको छोड़कर अन्य शहरोंके व्यापारी बहुत बड़ी संख्यामें अब भविष्यमें विदेशी-वस्त्रका आयात बन्द करनेको राजी हो गये हैं। मुझे मालूम है कि कलकत्ताके व्यापारियोंको कुछ कठिनाइयाँ अनुभव हुई हैं। उन्होंने यह सुझाव रखा है कि वे सिर्फ ३१ दिसम्बरतक ही विदेशी कपड़ेका आयात बन्द रखेंगे और आपसमें अपने मौजूदा मालके साथ विदेशी सूतको बेचने या उसकी अदला-बदली करनेकी स्वतन्त्रता उन्हें होगी। मैं इस सुझावको स्वीकार नहीं कर सकता था क्योंकि मुझे लगा कि यह तो चालबाजीके सिवाय और कुछ नहीं है और उनकी बात मानकर मैं इन छिपे सौदोंमें उन व्यापारियोंका एक अनिच्छुक सहायक बनता। इस तरहके आन्दोलनमें, जिसके शुद्ध और धार्मिक होनेका हम दम भरते हैं, वास्तवमें गोपनीयता या लुक-छिपकर काम करनेके लिए कोई स्थान नहीं होता। इससे तो कहीं बेहतर यह होता है कि जो लोग विदेशी कपड़ेका आयात बन्द नहीं कर सकते, बजाय इसके कि जाहिरा कुछ कहें और गुप्त रूपसे उसके सर्वथा विपरीत आचरण करें, वे निःसंकोच होकर साफ-साफ ऐसा कह दें और अपना व्यापार जारी रखें। परन्तु कलकत्ताके व्यापारी मेरी सहानुभूतिके पात्र हैं क्योंकि वे भारत-भरमें सबसे ज्यादा विदेशी वस्त्र आयात करनेवाले लोग हैं। परन्तु आपको यह सुनकर खुशी होगी कि वे भी अब पहलेसे अधिक देशभक्तिपूर्ण रवैया अख्तियार कर रहे हैं। श्री जमनालालजीने, जो कलकत्तामें उन बड़े-बड़े व्यापारियोंके साथ बातचीत करनेके लिए खास तौरपर रुके हुए थे, आज मुझे इस आशयका तार भेजा है कि उनमें से कइयोंने अब इस मामलेमें, राष्ट्रीय हितचिन्तन और विवेकशीलताका परिचय दिया है। इस प्रकार आप देखेंगे कि सारा भारत वास्तवमें स्वदेशी आन्दोलनका पक्ष लेता जा रहा है। और इसलिए इस आन्दोलनमें आपकी सहानुभतिका आश्वासन पाकर मुझे प्रसन्नता हुई; और आपने अपने वक्तव्यमें जो वचन दिया है कि अब आगेसे आप विदेशी कपड़ेका आयात नहीं करेंगे, यदि आप केवल इसीका पालन करें तो हम जिस उद्देश्यको पूरा करना चाहते हैं, वह बहुत हदतक पूरा हुआ ही समझिए। मैं जानता हूँ कि सारे भारतमें हमारे पास लगभग ४० करोड़के मूल्यका कपड़ा बिकनेके लिए उपलब्ध है। इतनी बडी आबादीवाले भारतमें ४० करोड़ रुपयेकी कीमतका विदेशी कपड़ा खप जानेमें मैं कोई कठिनाई नहीं देखता, परन्तु इस मतसे मैं कदापि सहमत नहीं हो सकता कि जो माल आपके पास अभी पड़ा हुआ है वह साराका-सारा भारतके बाहर नहीं जा सकता। जैसा कि आप जानते हैं, बहुत-सा विदेशी कपड़ा पुनः निर्यात किये जानेके लिए ही मँगाया जाता है। मुझे मालूम

है कि कपड़ेकी कुछ ऐसी किस्में होती हैं जो भारतसे बाहर थोड़े बहुत मुनाफेपर भी नहीं बेची जा सकतीं। परन्तु फिर भी निःसन्देह मालका बहुत बड़ा भाग ऐसा है जो जिस तरह भारतमें बेचा जा सकता है उसी तरह भारतके बाहर भी। मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि आप लोग सोचकर कोई ऐसा रास्ता निकालिए कि जिससे कमसे-कम थोड़ा-बहुत विलायती माल बाहर भेज दें। उदाहरणके तौरपर आपके पास जो भी विदेशी सूत है वह सबका-सब भारतसे बाहर भेज देनेमें मैं कोई कठिनाई नहीं देखता। परन्तु यदि मेरी तरह आप हमारी स्थितिपर उदारताके साथ और राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे विचार करें तो मैं अभी एक और सुझाव देना चाहूँगा। परन्तु मैं जानता हूँ कि मेरे सुझावको अमलमें लानेसे पहले आपको भी मेरी ही तरह उसमें गहरा विश्वास रखना होगा। यदि भारत-भरके सारे व्यापारी देशके प्रति सच्चे हों, और स्वराज्य प्राप्तिके लिए अपनी पूरी शक्ति और शानदार योग्यतासे काम लें . . . और यदि वह योग्यता और शक्ति अविलम्ब ही संगठित काममें लगाई जा सके; यदि आपका भी मेरी तरह यह विश्वास हो कि स्वराज्य इसी सालके अन्दर प्राप्त किया जा सकता है, और यदि आप-जैसे समझदार लोग उसे प्राप्त करनेकी दिशामें काम करनेका इरादा रखते हों, तो आप अपना माल जमा भी रख सकते हैं ताकि स्वतन्त्र देशकी केन्द्रीय सरकार अपनी प्रथम संसदके द्वारा उसे ठिकाने लगाये; यदि आप कोई ऐसा निर्णय करें तो आपको श्रेय मिलेगा और देशका भी बड़ा हित होगा। परन्तु मैं जानता हूँ कि मेरी यह सलाह आदर्श है और इसलिए अननुकरणीय कहकर टाली जा सकती है। लेकिन साथ ही याद रखिये अन्य देशोंने कहीं ज्यादा और बड़े काम कर दिखाये हैं। मैं जानता हूँ कि जब अंग्रेजोंसे युद्ध चल रहा था, तब दक्षिण आफ्रिकामें क्या हुआ था। दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए डच लोग बहादुर और ईश्वरसे डरनेवाले लोग थे। उनको अपने देशके भाग्यमें अडिग आस्था थी, अतः उन्होंने अपने देशकी आजादीको कायम रखनेके लिए किसी भी कीमतको ज्यादा नहीं माना। परन्तु जैसा कि मैंने कहा है, यदि आप धीरज नहीं रख सकते और यदि आपको ऐसा विश्वास नहीं है कि हम इसी सालके अन्दर स्वराज्य ले सकते हैं, तो आप विदेशी कपड़ेका आयात सीधे या छिपे तौरपर करना बन्द कर दें, और आपसके सौदे भी न करें। इससे मौजूदा जरूरतें सर्वथा पूरी हो जायेंगी। मैं आपके सामने कुछ गणित-सम्बन्धी समस्याएँ रखना चाहता हूँ। आज आयात करनेवाले लोग वास्तवमें कमीशन एजेंटों या दलालोंके सिवा कुछ नहीं हैं। आपको शायद १०० रु० के कपड़े पर ५रु० मिलते हैं। परन्तु ९५ रुपये तो पूरी तरह आपके मुख्य मालिकोंकी जेबोंमें पहुच जाते हैं। अब आप कल्पना कीजिए कि भारतमें हमें जिस कपड़ेकी जरूरत है, आप ही उसके निर्माता हैं। उस दशामें सौके-सौ रुपये भारतमें ही रहेंगे और आप देखेंगे कि फिर भी हमें उस सब कपड़ेकी जरूरत पड़ेगी, जिसका अबतक हम बाहरसे आयात करते रहे हैं। प्रतिवर्ष ६० करोड़ रुपयोंका व्यापार कौन करेगा? यह बतानेकी जरूरत नहीं कि आप लोग ही करेंगे। आप सामर्थ्यवान् हैं। आप आँकड़ोंका मूल्य जानते हैं। आप अपने देशकी जरूरतसे भी परिचित हैं। तो जब मैं आपको यह सुझाव देता हूँ कि आपको

पूरे स्वदेशी आन्दोलनकी जिम्मेदारी ले लेनी चाहिए तो क्या कोई असम्भव प्रस्ताव आपके समक्ष रखता हूँ ? अपने देशको आप अपने एजेंटों या गुमाश्तोंसे भर दें, इसके लिए क्या आपमें कोई बहुत विशेष बहादुरीकी जरूरत है ? आप तो सिर्फ चरखे और हाथ-करघे बाँट देंगे और भारतके हजारों लोगोंसे सूत इकट्ठा करेंगे तथा बेचेंगे और उस सूतसे भारतके लिए कपड़ा बुनवायेंगे। देश-भरमें सर्वत्र हाथकी कताई-बुनाईको सुसंगठित करना वास्तवमें आपका विशेष अधिकार और कर्त्तव्य है। इसलिए मैं आपसे कहूँगा कि देशके भविष्यके बारेमें, और विदेशी-वस्त्रोंका पूर्ण बहिष्कार होनेपर भारतमें आयातके भविष्यके विषयमें निराशा महसूस न करें। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि स्वराज्यमें भारतका भविष्य उज्ज्वलतम होगा। इस बारेमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं कि शीघ्र ही भारतमें बहुत-से लोग इस बातपर हँसेंगे कि वे इतनी सरल-सी बातकी खूबी भी नहीं समझ पाये और बहुत पहले ही उनकी समझमें क्यों नहीं आया कि यह काम उन्हें कर लेना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि जिस तरह बम्बई, कलकत्ता और अन्य जगहोंमें आपके साथी व्यापारियोंने मुझसे प्रश्न किये उसी तरह आप भी अपनी शंकाओंका समाधान मुझसे माँगें। खुलकर बातचीत करनेसे कठिनाई जितनी ज्यादा सुलझती है उतनी किसी और तरहसे नहीं। आप सबके आज यहाँ इकट्ठे होने तथा इस सभामें हमें भाषण देनेको आमन्त्रित करनेके लिए मैं आभारी हूँ।

इसके बाद एक सामान्य परिसंवाद शुरू हो गया . . . प्रत्येक व्यापारीको उसके प्रश्नका उत्तर देते हुए महात्मा गांधी इस रायसे सहमत हुए कि ग्राहकोंको पहल करनी चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि मेरे कथनमें इस बातका जरा-भी संकेत नहीं है कि आप अपने किये हुए अनुबन्ध तोड़ दें। मातृभूमिके हितमें स्वदेशी कार्य-क्रमको सफल बनानेके लिए सारे भारतसे सहयोग करना आपका कर्त्तव्य है। मैं चाहता हूँ कि व्यापारी लोग भविष्यमें और विदेशी कपड़ा न मँगायें। उन्होंने कहा कि यदि आप जनताकी रुचि बदल सकें, जिसकी मुझे आशा है कि आप अवश्य कर सकेंगे, तो लोग निश्चय ही आपके पास आयेंगे। कपड़ा व्यापारियोंको ठोस प्रचार कार्य कर-नेकी जो सुविधा प्राप्त है वह अन्य किसीको प्राप्त नहीं है। गांधीजीने व्यापारियोंमें प्रचलित उधार-खातेकी प्रथाकी निन्दा करते हुए कहा कि यह प्रथा आपके उद्योग और औद्योगिक नैतिकताके लिए घातक है, और इसलिए उधार-खातेकी प्रथाको, विलायती कपड़ेके आयातको बन्द करनेकी दिशामें कोई ऐसी बाधा न मानना चाहिए, जो पार नहीं की जा सकती। स्वराज्य मिलना तो निश्चित है और उसके साथ नये आर्थिक नियम अमलमें आयेंगे ही। बहिष्कार धीरे-धीरे होना चाहिए, इस सुझावके सम्बन्धमें महात्माजीने कहा कि इसकी पर्याप्त पूर्व-सूचना काफी पहले — एक साल पूर्व — दी जा चुकी थी और कोई ईमानदार व्यापारी उधार-प्रथा छोड़नेके बाद आर्थिक कठिनाइयोंके उपस्थित होनेका कोई कारण नहीं पायेगा। महात्माजीने इसका दृष्टान्त दक्षिण आफ्रिकामें श्री काछलियाके मामलेका उल्लेख करके दिया जो पहले बड़े पैमानेपर उधार-खातेपर व्यापार चलाते थे और जब उनके यूरोपीय ग्राहकोंने राज-

नैतिक कारणोंसे उनके ऊपर अपना हिसाब साफ कर देनेके लिए बहुत दबाव डाला तो उन्होंने निडरतापूर्वक अपनी सब सम्पत्ति बेच डाली और अपने महाजनोंकी पाई-पाई चुका दी। इसके बाद उन्होंने उधार-प्रथाका सहारा न लेते हुए व्यापार शुरू किया और इतने समृद्ध हो गये कि उन्हीं यूरोपीय व्यापारियोंको अपना माल उन्हें फिर उधार देनेका प्रलोभन हुआ। यह एक ऐसा दृष्टान्त है जिसका आप अनुकरण करें तो अच्छा होगा। इससे अधिक साहसी व्यापारी आपको नहीं मिलेगा। निःसन्देह व्यक्तिगत कठिनाइयाँ रहेंगी ऐसा मैं अवश्य मानता हूँ, परन्तु स्वराज्यका अर्थ ही बलिदान करना है और एक व्यापारीसे भी अपने धन्धेमें निःस्वार्थ दृष्टिकोणकी आशा की जाती है। अब चूँकि दीपावली आ रही है, आपको तड़क-भड़क वाले कपड़ों-की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। तब आपको मालूम होगा कि लोगोंकी आस्था बदल चुकी है। दीपावलीका अर्थ अब अधिक आत्म-निषेध और त्याग होगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १७–९–१९२१

५६. भाषण : मद्रासके मजदूरोंकी सभामें

१६ सितम्बर, १९२१

महात्मा गांधीने शामको पौने सात बजे मजदूरोंकी (जो हड़तालपर हैं) एक बड़ी सभामें भाषण[1] दिया। उन्होंने कहा :

मित्रो !

मैं यहाँ ठीक साढ़े छः बजे नहीं आ सका। मैं अपने व्यापारी मित्रोंसे बात करता रह गया और उन्होंने जितना मेरा अन्दाज था उससे अधिक समयतक मुझे व्यस्त रखा। पिछली बार जब मुझे आप लोगोंसे मिलनेका सौभाग्य मिला था, उस समय जो दृश्य मेरे देखनेमें आया था, वह मुझे अच्छी तरह याद है। मैं स्वयं एक मजदूर ही हूँ, इस नाते मेरा दिल हमेशा मद्रासके मजदूरोंके कष्ट और दुःखमें उनके साथ रहा है। मैं अब बिना किसी औपचारिकताके आज जिस विषयपर मुझे बोलना है उसपर अपना कथन शुरू कर देना चाहता हूँ।

मैं जानता हूँ कि लगभग दस हजार मजदूरोंने हड़ताल की है। मुझे यह देखकर दुःख हो रहा है कि आप परेशानियोंसे घिरे हुए हैं। मुझे इससे भी दुःख होता है कि आप दो दलोंमें बँटे हुए हैं। मुझे इस बातसे और भी ज्यादा दुःख हो रहा है कि दो दल दो दृष्टिकोणोंका प्रतिनिधित्व नहीं करते वरन् दो विभिन्न जातियोंका प्रतिनिधित्व करते हैं। मुझे मालूम हुआ है कि आदि द्रविड़ लोग, अर्थात् हमारे पंचम कहलानेवाले मित्र लोग, एक ओर हैं और अन्य लोग अर्थात् आप, दूसरी ओर हैं। मुझे यह भी मालूम हुआ है कि इन पंचम भाइयोंने कामपर जाना शुरू कर दिया है, जब कि

१. गांधीजीके भाषणका तमिल अनुवाद **स्वदेशमित्रन्**के श्री एम० एस० सुब्रह्मण्यम् अय्यरने किया।

आप लोगोंने, जो बहुत बड़ी संख्यामें हैं, वैसा नहीं किया है। और मुझे यह भी बताया गया है कि आपमेंसे कुछ लोगोंने उन भाइयोंपर जो कामपर वापस लौट आये हैं, जोर-दबाव डाला है। मुझे यह भी ज्ञात हुआ है कि इन दोनों दलोंमें बराबर टंटे-बखेड़े बने ही रहते हैं। इसलिए मैं यहाँ बहुसंख्यकोंको अल्पसंख्यकोंपर थोड़ा-सा भी दबाव न डालनेकी चेतावनी देने आया हूँ। मैं मजदूरोंको २५ वर्षोंसे, बल्कि करीब-करीब ३० वर्षोंसे — जानता आया हूँ। मैंने बड़ी-बड़ी हड़तालें कराई हैं जिनका असर एक वक्त में ५०,००० से भी ज्यादा लोगोंके ऊपर पड़ा है। अतः मैं जानता हूँ कि मजदूरोंका नैतिक ह्रास और किसी बातसे इतना नहीं होता जितना एक भी मजदूरके प्रति बलप्रयोग करनेसे। हममें से सबसे छोटेको भी, सबसे-कम संख्यावालोंको भी अपनी स्वतन्त्र इच्छाके अनुसार चलनेका हक जरूर होना चाहिए, भले ही आपको ऐसा लगे कि उसने गलती की है। इसलिए मैं आपसे आग्रहपूर्वक कहूँगा कि अपने उन ३,००० भाइयोंको कतई मत छेड़िए। मैं आपसे आग्रह करूँगा कि उनको नीच न समझें। मैं यह भी आग्रह करूँगा कि आप उनके प्रति सहृदयता बरतें। निश्चय ही आप उनको कभी गालियाँ या बद दुआ न देंगे। मैं आपसे कहूँगा कि उन्हें नौकरीसे अलग हो जानेको राजी करनेके लिए भी आप उनके पास न जायें। मेरी बातका विश्वास कीजिए कि जब वे देखेंगे कि आप उनपर कोई दबाव नहीं डालते, आप उनके प्रति जरा भी दुर्भाव नहीं रखते तो वे अपनी खुदकी मर्जीसे आपके समीप आ जायेंगे। आपको यह खयाल भी अपने मनमें नहीं लाना चाहिए कि वे नीची जातिके हैं और आप ऊँची जातिवाले हैं।

मैं उन सभी लोगोंको जो हिन्दू हैं, चेतावनी देता हूँ कि हिन्दू-धर्ममें ऊँची जाति और नीची जाति है, ऐसा सोचनेसे बाज आयें। हिन्दू-धर्ममें निःसन्देह जाति-प्रथा है किन्तु जाति हमें कर्त्तव्य भावना प्रदान करनेके लिए बनाई गई है, विशेष सुविधाओं और अधिकारोंके लिए नहीं बनाई गई। प्रत्येक जातिका प्रादुर्भाव मानव-जातिकी सेवाके लिए हुआ है। ब्राह्मण अपने ज्ञानसे सेवा करता है, क्षत्रिय रक्षा कर सकनेकी अपनी शक्तिसे, वैश्य अपने वाणिज्यसे, और शूद्र अपने हाथ-परसे। मेरी यह बात सच मानिए कि ईश्वरकी निगाहमें ये सब बराबर हैं और जो सबसे अच्छी तरह मानवताकी सेवा करता है वही सबसे ज्यादा महान् है। पंचम जाति-जैसी कोई चीज हिन्दू-धर्ममें है ही नहीं। छुआछूतकी भावना ईश्वर और मानवता दोनोंके प्रति अपराध है। यह हिन्दू धर्मका कलंक है। मेरे साथी मजदूरो, मैं आपसे आग्रह करता हूँ कि अपने दिलसे यह भावना निकाल दें कि पंचम भाई अछूत या किसी औरसे नीचे हैं। यदि हम उनके साथ घृणाका व्यवहार न करते, यदि हम उनके साथ बुरा बर्ताव न करते — जैसा कि हमारा कहना है कि जलियाँवाला बागमें हमारे साथ बुरा बर्ताव किया गया — तो स्वराज्य प्राप्त करनेमें कोई कठिनाई न होती। विश्वास कीजिए, जबतक हिन्दू लोग महाप्रयास करके अस्पृश्यताके अभिशापसे मुक्त नहीं हो जाते तबतक यह दुःखी देश कभी भी सुखी नहीं हो सकेगा। इसलिए हर दृष्टिसे समूचे प्रश्नपर विचार करते हुए मैं आपको दृढ़तापूर्वक यह सलाह देता हूँ कि पंचम भाइयोंके किसी भी काममें आप दस्तन्दाजी न करें।

मेरी रायमें आपका रास्ता बिलकुल साफ और सीधा है। अगर मालिक लोग आपको फिरसे नौकरीपर लेना चाहते हैं तो आपको यह माँग करनेका हक और विशेष अधिकार है कि उनसे कहें कि या तो आप सबको लें या किसीको भी न लिया जाये। आप जिससे सलाह लेना पसन्द करें उससे लेनेका आपको हक है और मालिक लोग आपको आदेशके रूपमें यह नहीं कह सकते कि आप बाहरवालोंसे सलाह न लें। अपने संघके अध्यक्ष पदके लिए या सभापति पदके लिए आप जिसे चाहें — चाहे वह व्यक्ति आपके संघका सदस्य हो अथवा बाहरवाला हो — उसे चुननेका मौलिक अधिकार रखते हैं, इस बातको आप दृढ़तापूर्वक कहें और उसपर आग्रह करें। देशके मामलोंकी परिस्थितिका लिहाज रखते हुए आप कामपर वापस जानेकी शर्तें निश्चित करनेका अधिकार रखते हैं। आपको ऐसी मजदूरी या तनख्वाह माँगनेका अधिकार है जो आपको जीवन-यापन करने, अपने बच्चोंको शिक्षा देने और अच्छे लोगोंकी तरह रहने योग्य बनानेमें सहायक हो। आप उसी स्वच्छ पानी और स्वच्छ वायुके हकदार हैं जिसका उपयोग आपके मालिक करते हैं। आपको हक है कि आप इस बातका आग्रह करें कि आपको अवकाश और मनोरंजन पानेका अधिकार है। परन्तु आपको साथ-ही-साथ अपने कर्त्तव्य भी निभाने हैं। आपको अपने मालिकोंका काम अच्छे ढंगसे और ईमानदारीके साथ करना चाहिए। आपको अपने मालिकोंकी सम्पत्तिकी देखभाल इस तरह करनी है जैसे कि वह सम्पत्ति आपकी अपनी ही हो। आपको एक भी कर्मचारीको अपने कामपर न जानेके लिए फुसलाना न चाहिए। आप बिना इजाजत गैरहाजिर न हुआ करें। इन सीधे और सरल अधिकारों और कर्त्तव्योंको एक बार समझ लेनेपर अधिकारोंपर सदा दृढ़ रहना, और कर्त्तव्योंका पालन करते रहना चाहिए।

इसलिए जो दूसरा प्रश्न उठता है वह यह है कि यदि मालिक लोग आपको आपकी शर्तोंपर नौकरीपर वापस नहीं लेते तो आपको क्या करना चाहिए। अपने मालिकोंके सामने अपनी बात विनयपूर्वक रख चुकनेके पश्चात् उसके बारेमें आगे कुछ न सोचें। परन्तु आपको अपनी आजीविकाके लिए कुछ काम शुरू कर देना चाहिए। इसलिए मैंने अहमदाबादमें मिल-कर्मचारियों और असम-बंगाल रेलवे तथा रिवर स्टीम नेवीगेशन कम्पनीके कर्मचारियोंको यह सुझाव दिया है कि हमेशा उनके पास एक अतिरिक्त पेशा होना चाहिए, जिससे वे अपना काम चला सकें; और रुई धुनना, चरखेपर सूत कातना, करघोंपर बुनाई करना ही एक ऐसा काम है, जिसमें हमारे देशवासी हजारोंकी संख्यामें लग सकते हैं और जो काम उपयोगी भी हैं। ये तीनों काम जितने आसान हैं उतने ही सबके करने योग्य भी हैं। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ और आपसे कहता हूँ कि एक अनुभवी कातने-बुननेवालेका आश्वासन मान लें। यदि आप इस काममें मेहनतके साथ कमसे-कम आठ घंटे रोज लगायेंगे, तो आपमें से हर व्यक्ति लगभग एक रुपया रोज कमायेगा। कातनेवालेके रूपमें तो आप शायद प्रतिदिन तीन आने ही कमा सकेंगे। परन्तु एक पक्के बुनकर बनकर आप एक रुपया रोज पा सकेंगे। आपकी पत्नियाँ, बहनें, माताएँ, आपके सात-आठ सालके छोटे बच्चे इस तरहके काम द्वारा जीविका कमानेमें आपके सहायक हो सकते हैं। आप जितने ज्यादा लोग

ऐसे कामोंमें लगेंगे, उतना ही ज्यादा आप कमायेंगे। इसलिए जिन लोगोंका परिवार बड़ा है उनका प्रश्न स्वतः सुलझ जाता है और जब आप अपनी स्थितिकी मानमर्यादा समझ जायेंगे और जब आप यह भी समझ लेंगे कि आपके पास निर्वाह कर लेनेके लिए एक अतिरिक्त व्यवसाय है तो आप अपने मालिकोंके प्रति अथवा उनके प्रति जो मालिकोंके अधीन काम करना पसन्द करते हैं, किसी प्रकार हिंसात्मक व्यवहार न करेंगे। यदि आप मेरी सलाहपर अमल करें तो आप देखेंगे कि आप न केवल आत्मनिर्भर बन जाते हैं बल्कि आपके और मालिकोंके बीच सम्बन्ध बहुत स्वस्थ ढंगके हो जायेंगे। जब देशमें प्रत्येक मजदूर, स्त्री हो या पुरुष, स्वराज्यके और आत्मशुद्धिके बारेमें सोचेगा, तो मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि मेरी राय मानकर आप स्वराज्य-का दिन नजदीक लायेंगे। यदि आप मुसलमान हैं तो आप देखेंगे कि आप लोग बा-इज्जत अपनी रोजी कमा रहे हैं और इतना ही नहीं बल्कि आप अत्यन्त ईमानदारीसे इस्लामके प्रति अपना कर्त्तव्य भी निभा रहे हैं।

मैं जानता हूँ कि आरम्भिक चरणोंमें यदि आप मेरी सलाह मान भी लें तो आपको शुरू करनेके लिए थोड़ी पूँजीकी जरूरत होगी; परन्तु मुझे जरा भी सन्देह नहीं कि आपमें से प्रत्येक ईमानदार काम करनेवालेको एक हाथ करघा, एक चरखा, या एक धुनकी प्राप्त करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। आप इसे मानें या न मानें, कृपया याद रखिए कि आपके द्वारा की गई कोई भी हिंसा, अथवा किसी प्रकारका उपद्रव आपके अपने ही सिरोंपर दुगुनी ताकतसे लौटेगा। आपके प्रति जनताकी सारी सहानुभूति समाप्त हो जायेगी, और हर आदमी आपके प्रतिकूल होगा। इसलिए आप मिलोंके करीब न जानें, और अपने पंचम भाइयोंसे न भिड़नेका निश्चय करें, बल्कि आप चुपचाप अपने आपको कामके लिए संगठित करनेमें जुट जायें। मजदूरोंके लिए भीख माँगनेका कोई कारण नहीं।

अपना कथन समाप्त करनेके पूर्व एक बात और कहना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप सब लोग, आपकी पत्नियाँ व बच्चे इस महान राष्ट्रीय आन्दोलनमें, जो देशमें इस कोनेसे उस कोनेतक सर्वत्र फैल रहा है, अपना-अपना कर्त्तव्य निभायेंगे। हमारा देश हमसे जिस बातकी अपेक्षाएँ करता है, वे हममें से हर एकके करने योग्य हैं। मैं चाहूँगा कि आप ईश्वरकी साक्षीमें शपथ लें कि अपने देशकी स्वतन्त्रताके लिए या हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच झगड़े निपटानेके लिए हिंसाका सहारा नहीं लेंगे और ईश्वरको साक्षी करके यह संकल्प करें कि कुछ मोपला देशवासियों द्वारा प्रदर्शित पागलपनके बावजूद हम हिन्दू और मुसलमान हमेशाके लिए एकताकी डोरमें बँधे रहेंगे। आप एक पवित्र शपथ लें कि आगेसे हम कभी विदेशी वस्त्र न तो पहनेंगे और न किसी भी घरेलू कामके लिए इस्तेमाल करेंगे। और हम वही कपड़ा पहनेंगे जो हाथके कते सूतसे हथकरघेपर बुना गया हो। यदि हमारा यह दावा है कि हम धर्म-युद्धमें संलग्न हैं तो हम मदिरापान अथवा व्यभिचार करके अपने शरीरको अपवित्र नहीं कर सकते। हम जुआ नहीं खेलेंगे, हम चोरी नहीं करेंगे और न हम किसीको धोखा देंगे। मैं निर्भीकतापूर्वक कहता हूँ कि यदि मद्रासकी मिलोंके आप १० हजार मजदूर गम्भीरताके साथ यह प्रतिज्ञा करेंगे और उसीके अनुसार चलेंगे, तो आप

अध्यायकी समाप्तिपर देखेंगे कि स्वराज्यकी प्राप्तिमें और खिलाफत तथा पंजाब-की समस्याओंके हल करानेमें आपका योगदान कम नहीं रहा है। ईश्वर आप लोगों-को वैसी बुद्धि और साहस दे जिसकी प्रत्येक भारतवासीसे अपेक्षा की जाती है। यदि आप कल समुद्र तटकी सभामें मौजूदा रहे होंगे तो आपने मुझसे सुना होगा कि मौलाना मुहम्मद अली वाल्टेयरमें गिरफ्तार हो गये हैं। वे आपके तथा मेरे लिए गिरफ्तार किये गये हैं और जेलमें बन्द कर दिये जायेंगे। हम-आप जानते हैं कि वे एक ईमानदार मुसलमान और बहादुर भारतीय हैं। हम और आप जानते हैं कि वे अपने धर्मको और देशको प्यार करनेवाले व्यक्ति हैं। उन्होंने और उनके भाईने पहले ही अपने देश और धर्मकी खातिर कष्ट झेले हैं, और इन भाइयोंके प्रति हमारा स्नेह और आदर हमसे हिंसाकी या क्रोधकी अपेक्षा नहीं करता, वरन् यह चाहता है कि हम कार्यक्रमको सफल बनानेका दृढ़ निश्चय करें। वे कोई हड़ताल नहीं चाहते और न कोई हिंसापूर्ण व्यवहार ही चाहते हैं। वे चाहते हैं कि हम एकतामें बँधे रहें और, चाहे हर एकको लँगोटी-भरके लिए कपड़ेसे ही सन्तोष क्यों न करना पड़े, विदेशी वस्त्रका बहिष्कार करें। वे हमसे आशा करते हैं कि हम निर्भयतापूर्वक ईश्वरोन्मुख होकर इसी सालके भीतर स्वराज्य स्थापित करें और स्वराज्यकी संसद्के प्रथम प्रस्तावके अधीन उन्हें जेलसे रिहा करायें।

आपने जिस अनुकरणीय धैर्यके साथ मेरी बात सुनी है उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मौलाना आजाद सोबानी, जैसा कि आपमें से कुछ लोग जानते हैं, एक महान् धर्मविद् मुसलमान हैं, अब आपसे कुछ शब्द कहेंगे जिसपर आप आदर सहित ध्यान देंगे, ऐसा मुझे विश्वास है। . . .

सभाकी समाप्तिपर विभिन्न प्रकारके कपड़ोंकी होली जलाई गई।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १७–९–१९२१

५७. भाषण : कडालोरमें[1]

१७ सितम्बर, १९२१

अध्यक्ष महोदय तथा मित्रो,

आज मुझे भेंट किये गये अभिनन्दन-पत्रों तथा तिलक स्वराज्य कोषके लिए दी गई थैलीके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। स्मर्ना-सहायता कोषके लिए मुसलमान मित्रोंने जो थैली भेंट की है, उसके लिए भी मैं आपका आभारी हूँ। मैं जानता हूँ कि मौलाना मुहम्मद अली यह थैली लेनेके लिए यहाँ मौजूद होते तो आपको ज्यादा खुशी होती। परन्तु यदि हमारे बीच मुहम्मद अली नहीं हैं, तो उनकी जगह धर्मविद्

१. गिडलाम मैदानमें एस० श्रीनिवास आयंगारकी अध्यक्षतामें हुई सभामें गांधीजीके अंग्रेजीमें दिये गये भाषणका एम० के० आचार्यने तमिलमें अनुवाद किया।

मौलाना आजाद[1] हैं। और यदि मुसलमान भाई खिलाफत और 'कुरान' के बारेमें सब कुछ जान लेनेके इच्छुक हैं तो आजाद साहबके रूपमें एक विश्वसनीय पथ-प्रदर्शक और मित्र उनके बीच आया हुआ है।

निश्चय ही, यदि हमें इसी सालके अन्दर स्वराज्य प्राप्त करना है, और खिलाफत तथा पंजाबके प्रति किये गये अन्यायोंका निराकरण करवाना है तो हमें जरा भी गड़बड़ी और उलझन उत्पन्न किये बिना, अहिंसात्मक असहयोगका अनुसरण करना चाहिए। जो प्रेम व्यवस्थाहीनतामें व्यक्त होता है, वह अन्धा प्रेम है। और भारतको आज सबसे ज्यादा जरूरत जिस चीजकी है वह है विवेकपूर्ण प्रेमकी। और विवेकपूर्ण प्रेम शोर-गुलवाले प्रदर्शनों द्वारा नहीं, वरन् वास्तविक और ठोस कार्योंके रूपमें प्रकट होता है। प्रत्येक भारतीयका आत्म-सम्मान इस बातकी अपेक्षा करता है कि जबतक मौलाना मुहम्मद अली और शौकतअली हमारे खुदके प्रयत्नों द्वारा जेलसे रिहा नहीं कर दिये जाते, हमें एक मिनट भी चैनसे नहीं बैठना चाहिए। यदि उनकी रिहाई हमारे स्वराज्य पा लेनेके फलस्वरूप हो, तो वह सही ढंगकी रिहाई होगी। और स्वराज्यका अर्थ यदि और कुछ नहीं तो निस्सन्देह अनुशासन तो है ही। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि यहाँके नेता लोग नागरिकोंको सार्वजनिक सभाएँ अनुशासित ढंगसे चलानेका व्यावहारिक पदार्थपाठ देंगे ताकि आदेशोंका पालन पूर्णरूपसे हो सके। हम जान चुके हैं कि कांग्रेसने, एकके बाद एक, दो अधिवेशनोंमें हमें स्वराज्य पानेका रास्ता दिखा दिया है। और वह रास्ता अहिंसाका है। हम तबतक सफल नहीं हो सकते जबतक हम पूरी तरह जान-बूझकर अहिंसाका आचरण नहीं करते। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि कडालोर जिलेके लोगोंको प्रचार और व्यवहार द्वारा प्राथमिक पाठकी शिक्षा मिलेगी। आज हम उत्तेजनाकी हालतमें हैं, इसमें सन्देह नहीं। एक ओर तो सरकारका दमन हमारे मनमें सन्ताप उत्पन्न करता है, दूसरी ओर भविष्यमें कुछ अच्छा होनेकी आशा हमारा सन्तुलन नष्ट कर देती है। यह ठीक वैसी ही स्थिति है जो हिंसाके पूर्व हुआ करती है; और असहयोगियोंके द्वारा की गई हिंसा निश्चय ही स्वराज्यके रास्तेमें रुकावट डालती है।

मेरी नम्र रायमें हमारे पास, सन्तुलन और व्यवस्था उत्पन्न करनेवाली सबसे बड़ी ताकत चरखा है। जरा सोचिए, यदि आप इतनी देरतक मेरा इन्तजार करनेके बजाय ईश्वरके नामपर और राष्ट्रके निमित्त अपना यह सारा समय चरखा चलानेमें लगाते, तो क्या ही बढ़िया चीज हाथ लगती? अब उचित यही है कि भाषण सुनने और नेताओंके दर्शन करनेकी व्यर्थकी उत्सुकता त्याग दें। और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि मुझे ऐसा आश्वासन न दिया गया होता कि यहाँ आनेसे स्वदेशीकी पूर्ण स्थापना हो सकेगी, तो मैं इस लम्बी यात्राका खयालकर यहाँ आनेसे इनकार कर देता। मैं देखता हूँ कि यहाँ उपस्थित स्त्रियों और पुरुषोंमें अधिकतर लोग एक न एक विदेशी वस्त्र पहने ही हुए हैं। परन्तु मैं आशा करूँगा कि आप अपने शरीरपर से तथा अपने सन्दूकोंमें से विदेशी वस्त्र फेंक देनेका दृढ़ निश्चय करेंगे और आप इस बातका

१. मौलाना आजाद सोबानी।

प्रबन्ध करेंगे कि हर घरमें चरखा चलने लगे और अपना कपड़ा मैन्चेस्टर और जापानसे या बम्बई तथा अहमदाबादसे प्राप्त करनेके बजाय आप उसे स्वयं तैयार कर लिया करेंगे।

सफलता पानेकी तीसरी शर्त हिन्दू-मुस्लिम एकता है। परन्तु जो-कुछ मैंने देखा है उससे मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि यदि घरोंमें चरखा चलने लगा तो वह हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच एकता पैदा करेगा। हम अपने आन्दोलनको आत्मशुद्धिका आन्दोलन कहते हैं। और इसलिए डा० राजनसे[1] यह जानकर मुझे खुशी हुई कि इस प्रान्तमें नशाबन्दी आन्दोलनकी पर्याप्त प्रगति हुई है। मैं आशा करता हूँ कि आप अपने बीचसे मद्यपानका अभिशाप पूरी तरह दूर कर देंगे।

मुझे अपने देशके हिन्दू स्त्री-पुरुषोंसे एक बात और कहनी है। शायद छुआछूतका अभिशाप भारतके अन्य किसी भागमें इतना नहीं जितना कि इस प्रान्तमें है। धार्मिक श्रद्धा और देव-पूजाके इस प्रदेशमें कलंक — छाया आपके दामनको नापाक कर रही है। इसी पवित्र भूभागमें अछूतोंके साथ उससे भी ज्यादा बुरा बर्ताव किया जाता है, जिस बर्तावकी शिकायत हमें अपने शासकोंसे है। यदि भारतकी जनसंख्याके छठे भागको हम हमेशाके लिए मताधिकारसे वंचित कर देते हैं, तो स्वराज्य एक अर्थहीन शब्द है। मैं एक सनातनी हिन्दू होनेका दावा करता हूँ, और इस हैसियतसे बोलते हुए कहता हूँ कि हमारे शास्त्रोंमें अस्पृश्यताके लिए किंचित् भी प्रमाण नहीं है। और यह सोचकर मुझे दुःख होता है कि एक ऐसे देशमें जहाँ शंकर और रामानुजने जन्म लिया और शिक्षा दी, वहाँ यह हो रहा है। मैं अपनी वह घोषणा फिरसे दोहराता हूँ जो मैं कई मंचोंसे व्यक्त कर चुका हूँ कि हम जबतक इस प्रकारका कलंक नहीं मिटा देते, तबतक भारतको स्वराज्य नहीं मिल सकता। कर्मका फल अवश्य मिलता है इस बातमें मेरा पूरा विश्वास है, और इसीलिए कहता हूँ कि अपने छठे भागको अन्त्यज बनाये रखनेका उचित प्रतिफल भगवानने संसारमें हमें अन्त्यज बनाकर दिया है। संसारके सभी महान धर्म — हिन्दू, इस्लाम, ईसाई — आज एक क्रान्तिमय और अस्थिर अवस्थामें हैं। मेरा विश्वास कीजिए, यदि हम अस्पृश्यताके दोषसे छुटकारा नहीं पा सकते तो हिन्दूधर्मका स्थान इस सूचीमें सबसे नीचे होगा। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आप लोग और विशेष रूपसे नेतागण तथा बहनें मेरा निवेदन सुनेंगी और अस्पृश्यताके सम्बन्धमें पास किये गये कांग्रेस-प्रस्तावपर पूरी तरहसे ध्यान देंगी। आपने मेरी बातें जिस धैर्यके साथ सुनी हैं उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि आप हमारे मित्र मौलाना आजाद [सोबानी] के विचार आदरसे सुनेंगे ; वे हिन्दुस्तानीमें बोलेंगे। . . .

कुछ समय पश्चात् अग्नि प्रज्वलित की गई और लगभग एक हजार रुपये मूल्यके विदेशी कपड़े 'महात्माकी जय', 'वन्दे मातरम्' और 'अल्लाहो अकबर' के

१. डा० टी० एस० एस० राजन्, जो उस सभामें उपस्थित थे।

नारोंके साथ जला दिये गये। इसके उपरान्त गांधीजी पोर्टोनोव होते हुए कुम्भकोणम् जानेके लिए वहाँसे विदा हुए।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १९-९-१९२१

५८. गश्ती चिट्ठी

[१७ सितम्बर, १९२१ के पश्चात][1]

प्रिय मित्र,

मौलाना शौकत अली, मुहम्मद अली तथा अन्य लोगोंकी गिरफ्तारीको देखते हुए हममें से कुछ लोगोंका मिल बैठकर स्थितिपर विचार करना जरूरी हो गया है। कार्य समितिकी बैठक अहमदाबादमें ६ अक्तूबरको होने जा रही है। किन्तु अच्छा हो, यदि हम लोग ४ अक्तूबरको बम्बईमें लेबर्नम रोडपर दिनमें ठीक १ बजे बैठक करें। क्या कृपया आप मुझे बम्बईके पतेसे सूचित करेंगे कि आप शरीक होंगे अथवा नहीं? मैं २ अक्तूबरको बम्बई पहुँच रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

[पुनश्च]

आपके प्रान्तमें मैंने केवल आपको और . . . को आमन्त्रित किया है। आप कृपया किसी अन्य मित्रको जिसकी उपस्थितिसे कुछ मदद मिल सके, लेते आइयेगा।

मद्रास	याकूब हुसैन
संयुक्त प्रान्त	ख्वाजा
बम्बई	श्रीमती नायडू
यू० पी०	मौलाना अब्दुल बारी
बिहार	अबुलकलाम आजाद
पंजाब	स्टोक्स
बंगाल	दास
मध्य प्रदेश	जमनालालजी
पंजाब	लालाजी
दिल्ली	हकीमजी
दिल्ली	डा० अन्सारी
सिन्ध	जयरामदास
मद्रास	राजगोपालाचारी

१. पत्रमें उल्लिखित शौकत अलीकी गिरफ्तारी १७ सितम्बरको बम्बईमें हुई थी। देखिए "भाषण: त्रिचनापल्लीमें", १९-९-१९२१।

मद्रास	कस्तूरी
यू० पी०	जवाहरलाल
आन्ध्र	वेंकटापय्या
महाराष्ट्र	केलकर
कर्नाटक	गंगाधरराव
गुजरात	वल्लभभाई
गुजरात	विट्ठलभाई
बिहार	राजेन्द्र
यू० पी	हसरत
आन्ध्र	टी० प्रकाशम्

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७६२८) की फोटो-नकलसे।

५९. कलकत्ताके कड़वे अनुभव

पूर्व बंगालकी यात्राका कुछ हाल मैं पहले ही लिख चुका हूँ। वहाँ यद्यपि हजारों आदमियोंकी भीड़ होती थी तो भी उससे मैं परेशान नहीं होता था। लेकिन कलकत्तेमें तो मैं बिलकुल थक गया हूँ। एक तो आधी-आधी राततक सोनेको नहीं मिलता और दूसरे यह जयघोष — जो होता ही रहता है! ये बातें अब मुझे नागवार मालूम होती हैं। दिन-भर 'जयघोष' को सुनते-सुनते मैं थक जाता हूँ। कान उसे गवारा नहीं कर सकते। फिर, इसमें कुछ मतलब भी नजर नहीं आता। इससे मुझे यह दुस्सह मालूम होता है। इस तरहकी आवाजोंसे लोगोंको कोई फायदा नहीं पहुँचता, यह बात मैं अच्छी तरह जानता हूँ। जब लोगोंको ज्ञान नहीं था, जब वे बोलते हुए भी डरते थे, तब तो जरूर इस जय-जयकारसे उनके दिलोंमें जोश उमड़ता होगा। इस बातका अनुभव मुझे चम्पारनमें मिला था। वहाँ सैकड़ों आदमी सिर्फ इसीलिए मुझे घेरकर बैठ जाते थे कि उन्हें स्फूर्ति मिले। इस कारण, यद्यपि उनका प्रेम मुझे हैरान तो कर देता था, लेकिन फिर भी मैं उसे सह लेता था। यहाँ भी प्रेम तो वैसा ही है। पर इस जय-जयकारसे तो अन्ध मोह प्रकट होता है। इसमें न लोगोंका फायदा है और न मेरा।

यह तो मैंने अपने स्वार्थकी दृष्टिसे जयघोषपर विचार किया। लेकिन चरणस्पर्श भी उतना ही दुःखदायी है। कितनी ही बार मुझे चोट लग जाती है, और कभी-कभी तो मैं गिरते-गिरते बचता हूँ। सभाओंमें जाते हुए मेरा कलेजा काँपता है।

लेकिन जयघोषमें तो मुझे खतरा भी नजर आता है। क्योंकि जब लोग प्रेमोन्मत्त होकर बराबर चिल्लाते रहते हैं तब वे अपने कानसे किसी दूसरी बातको सुन नहीं सकते, और न आँखोंसे कुछ देख ही सकते हैं। अब मान लीजिए कि ऐसे मौकेपर किसीने दंगा-फसाद खड़ा कर दिया और दो तीन लाठियाँ भी चल पड़ीं। मैं खड़ा हुआ यह

सब देख रहा हूँ और हाथोंसे तथा मुँहसे मारपीट रोकनेके लिए प्रयत्न भी कर रहा हूँ। लेकिन नक्कारेमें तूतीकी आवाज सुनता कौन है! मान लो कि इसी बीच मारपीट बढ़ गई, लोग दल बाँधकर लड़ने लगे और खूनकी नदी बह चली। ये सब बातें बिना किसी इरादेके हो सकती हैं। अमृतसरमें[1] मेरा खयाल है ऐसा ही हुआ था। मैं यह नहीं मानता कि किसीने पहलेसे ही उस बेकसूर बैंक मैनेजरका खून करनेका इरादा किया होगा। लेकिन उस समय लोगोंका खून उबल रहा था सो किसी शैतानने इस परिस्थितिका लाभ उठा लिया।

इसीलिए मैं समझता हूँ कि हमारे इस शान्तिमय युद्धमें जयघोषोंके लिए कोई स्थान नहीं है; और अगर है भी तो वह मुनासिब ढंगसे और जरूरतके वक्तपर, और बहुत ही कम संख्यामें।

मालूम होता है कि कलकत्तेमें स्वयं-सेवकोंको सभाके नियम पालनेकी तालीम नहीं दी गई क्योंकि मैंने देखा कि अगर लोगोंको शुरूसे ही हिदायतें मिल जायें तो वे उसके अनुसार चल सकते हैं। गला फाड़-फाड़ कर चिल्लानेसे ही प्रेम दिखाई दे सकता हो, सो बात नहीं है, बल्कि चुप रहना भी शुद्ध प्रेमका — अदबका चिह्न है। यह बात अगर लोगोंको समझाई जाये तो जरूर ही वे इसका मर्म समझ सकते हैं। मैंने दो-एक सभाओंमें ऐसा करके भी देखा है। भीड़को पार करते हुए मेरे पैर कुचल गये और जयघोषसे मैं हैरान भी हुआ। एक जगह तो मुझे अपने स्थानतक पहुँचनेमें २० मिनट लग गये। इन दोनों जगहोंमें अपने भाषणका चौथाई हिस्सा तो मैंने केवल सभामें चुप रहने — शान्ति बनाये रखने — और नेताओंके लिए रास्ता देनेका उपदेश करनेमें ही लगाया। लेकिन दोनों ही जगह इसका नतीजा यह निकला कि लौटते वक्त हमें रास्ता मिल गया। शोर भी न मचा और जबतक हम वहाँसे चले न गये तबतक लोग अपनी जगहसे उठेतक नहीं। इस तरह जहाँ भीड़को पार करनेमें मुझे बीस मिनट लगे थे, वहाँ लौटनेमें सिर्फ एक ही मिनट लगा।

इन बातोंसे मैं देखता हूँ कि अगर लोगोंको शुरूसे ही ठीक तौरपर समझा दिया जाये तो जरूर ही वे उसे मानेंगे और उसपर अमल करेंगे। मुझे यह विश्वास है कि आम तौरपर लोग शान्तिके सबकको समझते हैं और उसको अमलमें लानेका इरादा भी रखते हैं।

अब मैं अपने ऊपरवाले उदाहरणकी उलटी स्थितिका अनुमान करता हूँ। मान लीजिए कि सभामें सब लोग चुपचाप बैठे हैं, सबका ध्यान मुख्य नेताकी तरफ है। ऐसी शान्त सभामें अगर कुछ लोगोंमें कहीं लड़ाई-झगड़ा खड़ा हो जाये, और फिर भी अगर सब लोग चुपचाप ही बैठे रहें तो नतीजा यह होगा कि मुख्य नेताकी आवाज सबके कानोंतक पहुँचेगी। इतना ही नहीं, वह उन लड़नेवालोंके पास जाकर उन्हें शान्त कर सकेगा। ऐसा न हो पाये तो भी कमसे-कम अनजानमें झगड़ा नहीं फैलेगा और शान्ति-भंगका दोष भी हमारे सिर न आने पायेगा। फौजमें ऐसा ही होता है। सब सिपाही अपनी-अपनी जगहको सँभाले रहते हैं। बिना हुक्मके वे अपनी

१. अप्रैल १९१९ में।

जगहसे जरा भी आगे पीछे नहीं हट सकते। दूसरे किसी काममें पड़ ही नहीं सकते। हम भी तो स्वराज्यकी एक शान्तिमय सेना ही हैं। हमें भी अपने-अपने स्थानोंपर रहकर अपने-अपने कर्त्तव्योंका पालन करना चाहिए। दूसरे लोग क्या कर रहे हैं, इसका विचार करना हमारा काम नहीं। हम यह जानते हैं कि उस बातका प्रबन्ध उस क्षेत्रके कार्यकर्त्ता कर लेंगे। शान्तिकी सेनामें तो अशान्तिकी सेनासे भी अधिक संयमकी और अधिक व्यवस्थाकी जरूरत है, अथवा होनी चाहिए।

कलकत्तेमें जिस तरहके प्रेमका कड़वा अनुभव हुआ उसी तरह अनबनका भी हुआ। मुझे मालूम होता है कि जितना पक्ष-द्वेष कलकत्तामें है उतना दूसरी जगह शायद ही हो। जो अंग्रेजी अखबार असहयोगका विरोध करते हैं उनमें मुझे सिवा जहरके और कुछ भी नहीं दिखाई देता। असहयोगियोंके लेखोंकी बे-मतलब और वाहियात नुक्ताचीनी और उनके विषयमें फैलाई बिल्कुल झूठी अफवाहोंका तो पार ही नहीं। उसमें भी कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके लेखों और व्याख्यानोंका तो इतना कुछ जहरीला उपयोग किया जाता है कि मेरी समझमें नहीं आता कि लोग ऐसा करनेकी हिम्मत कैसे करते होंगे। कितनी ही बार ऐसी बातोंको देखकर रावण-राज्यकी तस्वीर मेरी आँखोंमें खिच जाती है। जहाँ साधनकी पसन्दगी मनमाने ढंगपर की जाती हो वहाँ छल-कपटका उपयोग कौन अचम्भेकी बात है? सीताजीका हरण राक्षसके वेषमें नहीं हो सकता था। वह तो साधुके वेषमें ही हो सका। और जहाँ साधुताका इस तरह दुरुपयोग हो, वहाँ नाश होते जरा भी देर नहीं लगती। मैं यहाँ अंग्रेजी अखबारोंमें सत्यके नामपर झूठको फैलते हुए अपनी आँखोंसे देख रहा हूँ। असहयोगी इससे इस तरहके झूठसे बचनेका सार ग्रहण करें इसीलिए मैंने इस जहरीली हवाका यह सारा हाल लिखा है। हमारा शस्त्रतो सत्य और शान्ति है, यह बात हमें हरगिज नहीं भूलनी चाहिए।

यहाँके राष्ट्रीय महाविद्यालयमें चरखोंकी नुमाइश की गई थी। वहाँ मैंने कोई १५ किस्मके नये चरखे देखे। इसमें नई-नई तरकीबोंका तो पार ही नहीं। बहुतसे नवयुवक अपनी शक्तियोंका सुन्दर प्रयोग कर रहे हैं। कितने ही चरखे बड़े सुन्दर थे; कितने ही छोटे-छोटे भी थे। एक तो इतना छोटा था कि एक छोटी-सी पेटीमें ले जाया जा सकता था। और एक ऐसा था कि वह सन्दूकमें ले जाया जा सकता था। एक अन्यमें बाजा बजनेकी भी तरकीब लगाई गई थी। परन्तु मुझे एक भी चरखा ऐसा न दिखाई दिया जो अधिक सूत कातनेमें पुराने चरखेका मुकाबला कर सकता हो। हाँ, इन सब आविष्कारोंको देखकर मैंने यह नतीजा जरूर निकाला कि आजकल चरखा खूब लोकप्रिय हो गया है और अनेक कारीगरोंकी बुद्धिको उसने अपने सुधारके काममें लगा रखा है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८–९–१९२१

६०. गुजरातको क्या करना चाहिए?

हम इस बातपर विचार कर चुके हैं[1] कि स्थूल दृष्टिसे हम कांग्रेसके आगामी अधिवेशनको कैसे सफल बना सकते हैं। अब हम इस सम्बन्धमें सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करते हैं।

कोई प्रान्त कांग्रेसको अपना अधिवेशन उसके क्षेत्रमें करनेका निमंत्रण दे, इसका अर्थ यह है कि उस प्रान्तको निमन्त्रण देनेका अधिकार है और उसमें उस अधिकारके अनुरूप योग्यता है। ऐसा अधिकार तो हर प्रान्तको होता है, किन्तु योग्यता हो भी सकती है, और नहीं भी हो सकती।

कांग्रेसके अधिवेशनको निमन्त्रण देनेसे हमारा दायित्व बढ़ गया है, इस तरह हमने उसके प्रस्तावोंपर अधिकसे-अधिक अमल करनेकी प्रतिज्ञा की है और उस अमलमें अपनी समस्त शक्ति लगा देनेका निश्चय प्रकट किया है।

कांग्रेसके प्रस्तावके अनुसार हमें इस वर्षमें खिलाफतके सवालका फैसला कराना है। और इसी वर्ष पंजाबके मामलेमें न्याय भी कराना है। इस कार्यको हम कैसे कर सकते हैं इसके साधन हमें कांग्रेसने बताये हैं। इनको हम कैसे अमलमें लायें यह कांग्रेसकी महासमितिने इस प्रकार बताया है:

१. शान्तिकी रक्षा करके।

२. हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यको मजबूत करके।

३. विदेशी कपड़ेका सर्वथा बहिष्कार करके और हर गाँव और शहरमें अपनी जरूरतकी खादी तैयार करनेके लिए चरखा और करघा दाखिल करके।

श्री विट्ठलभाई पटेल सूरत जिलेमें दौरा करके कांग्रेसकी कार्यसमितिकी बैठकमें भाग लेनेके लिए कलकत्ता गये थे। वहाँ उन्होंने कहा कि गुजरात और उसमें भी सूरत जिला खास तौरसे स्वराज्य लेनेके लिए तैयार हो गये हैं — स्त्री और पुरुष दोनों।

मैंने पूछा, "क्या कुछ स्त्री और पुरुष जेल जाने और शेष शान्तिकी रक्षा करनेके लिए भी तैयार हो गये हैं?"

श्री विट्ठलभाईने उत्तर दिया, "सूरत जिलेमें तो हजारों स्त्रियाँ और हजारों पुरुष जेल जायेंगे और इसके बावजूद शेष लोग वहाँ शान्ति कायम रखेंगे।"

इस उत्तरको सुनकर मुझे जितना आनन्द हुआ उतना ही आश्चर्य भी हुआ। मैं ऐसा उत्तर सुननेके लिए तैयार न था। गौरवशाली गुजरातकी हजारों स्त्रियाँ जेलमें जानेके लिए तैयार हैं, यह बात मानने योग्य नहीं लगती। किन्तु ईश्वर जो चाहे कर सकता है। वह तो ऐसी बातें करता ही रहता है जो मानने योग्य नहीं मालूम होतीं। उसकी पृथ्वीकी धुरी कभी घिसती ही नहीं। उसका सूर्य कभी उदित होना नहीं

१. देखिए "अधिवेशनकी तैयारी", ४-९-१९२१।

भूलता। ये सब बातें हमारी आँखोंके सामने न हो रही होतीं तो क्या हम विश्वास करते?

किन्तु गुजरात अथवा सूरत सचमुच तैयार हों तो उन्हें इसकी निशानी पहलेसे बतानी होगी। सूर्योदय होनेके लक्षण दो घंटे पहलेसे दिखाई देने लगते हैं। उसी प्रकार हमें दासताके अन्धकारके विलय और स्वराज्यके सूर्योदयके बीचकी संधि-वेलाका दर्शन होना चाहिए। रुपया इकट्ठा हो गया यह इसकी एक निशानी थी। किन्तु उसकी सच्ची निशानी तो स्वदेशीका व्यवहार ही है। क्या गुजरातने विदेशी कपड़ा सब जला दिया या त्याग दिया? क्या उसने विदेशी कपड़ा मँगाना बन्द कर दिया? क्या गुजरातके गाँव अपने हाथकी बनाई खादी पहनने लग गये हैं? क्या गुजरातके बुनकर केवल हाथका कता सूत ही बुनते हैं? क्या गुजरातके कपड़ा-एजेंटोंने कपड़ेके लिए बम्बई आना-जाना बन्द कर दिया है? क्या गुजरातके मेघवालोंने अपना छोड़ा हुआ बुनाईका धन्धा फिर अपना लिया है? क्या गुजरातकी सब बहनें अपना धर्म समझकर सूत कात रही हैं? और क्या गुजरातकी विदेशी कपड़ेकी दूकानें बन्द होने जा रही हैं? इन प्रश्नोंके उत्तरपर ही गुजरातकी योग्यता या अयोग्यता निर्भर करती है।

हम जबतक खादी नहीं पहनने लगते, जबतक हमारे भाइयों और बहनोंमें विदेशी कपड़ा पहननेका चाव मौजूद है तबतक यदि यह कहा जाये कि वे जेल जानेके लिए तैयार हो गये हैं तो उसपर विश्वास कौन करेगा? मुझे आशा है कि कोई यह न कहेगा, "मुझमें जेल जानेका साहस है; किन्तु मेरी हिम्मत खादी पहननेकी नहीं होती, मुझे चरखा चलानेमें लज्जा आती है और कपड़ा बुननेमें झुंझलाहट लगती है।" यदि हममें शान्ति कायम रखनेकी शक्ति आ गई हो, तो हममें से सभा-समारोहोंमें शोरगुल करनेकी शक्ति भी चली जानी चाहिए। हजारों लोग चुपचाप चल सकें, ऐसा होना चाहिए। जबतक हम इतना न सीख जायें तबतक हम हिंसाके लिए भड़काये जानेपर भी हिंसा नहीं करेंगे, यह कैसे माना जा सकता है?

श्री विट्ठलभाईने मुझे ऊपरकी खबर देते हुए यह भी कहा था, "यदि आप मानते हों कि अस्पृश्यताका मैल जाना भी जरूरी है, तब तो स्वराज्य इस वर्ष नहीं मिलेगा, क्योंकि आपकी एक भी शाला भंगी या ढेढ़ बालकको भर्ती करनेके लिए तैयार नहीं है।"

मैं तो अवश्य ही यह मानता हूँ कि यदि हम भंगी या ढेढ़के प्रति मनमें मैल रखेंगे तो हमें ईश्वर कभी स्वराज्य न दिलायेगा और अंग्रेजोंके मनसे हमारे प्रति तिरस्कारका भाव कभी न जायेगा। आत्मशुद्धि हमारे स्वराज्यकी नींव है। स्वराज्य लेना स्वर्गमें जानेके समान है। युधिष्ठिरने अपने कुत्तेको साथ लिये बिना स्वर्गमें जानेसे इनकार कर दिया था। क्या हम अपने भंगी भाइयोंको पीछे छोड़कर और भागकर स्वराज्यके मन्दिरमें घुसनेकी आशा करते हैं? यदि हम अपने भंगी भाइयोंको अपनेसे भिन्न मानते होंगे तो हमें कटु अनुभव ही होगा। हम जैसे ही द्वारपर पहुँचेंगे वैसे ही देखेंगे कि वह तो बन्द है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-९-१९२१

६१. टिप्पणियाँ

जूते कहाँ उतारेंगे?

लोगोंको ऐसी उम्मीद या आशंका है कि अहमदाबादमें कांग्रेसके अधिवेशनके समय एक भी कुर्सी नहीं दिखेगी। इसलिए एक मित्रने पूछा, "किन्तु इतने सारे लोग अपने जूते कहाँ उतारेंगे?" मैंने उत्तर दिया, "सब अपने-अपने जूते उतारकर बगलमें दबाकर ले जा सकेंगे और इसके लिए हम जूते रखनेकी खादीकी थैलियाँ बेचेंगे।" सब अपनी-अपनी थैलियाँ साथमें लायें तो भी कोई आपत्ति नहीं। यदि जूते इन थैलियोंमें रख लिये जायें तो तनिक भी कठिनाई न होगी। दूसरा तरीका यूरोपका है और वह यह है कि सब अपने-अपने जूते एक जूता संभालनेवालेको दे दें और उससे नम्बर ले लें। लोग उस नम्बरको देकर उससे कभी भी अपने-अपने जूते वापस ले सकते हैं। इनमें अच्छा तरीका तो थैलीका ही है, इस सम्बन्धमें मेरे मनमें कोई शंका नहीं। हर छोटी-छोटी बातके बारेमें पहलेसे व्यवस्था करनेमें ही हमारी कुशलताकी परीक्षा है।

भोजनकी व्यवस्था

भोजनके सम्बन्धमें विचार करनेपर मुझे ऐसा लगा है कि हम भाषा क्षेत्रोंके अनुसार भोजनालय रखेंगे और प्रान्तोंके मन्त्रियोंको कहेंगे कि वे अपने-अपने भोजनालयोंके लिए रसोइये स्वयं लावें। हमारी जिम्मेदारी सामान जुटाने, पानी पहुँचाने और पकाने-खानेके बर्तन देनेकी होगी। मैंने यहाँ जिन लोगोंसे बातचीत की है उन्हें यह विचार पसन्द आया है। ऐसी व्यवस्था करनेसे भोजनके सम्बन्धमें शिकायतका कारण नहीं रह जाता। प्रायः एक प्रान्तके लोगोंको दूसरे प्रान्तका भोजन ठीक नहीं पचता। मांसाहारी लोगोंके लिए संभवतः खिलाफत समितिके शिविरमें व्यवस्था की जायेगी। जो लोग यूरोपीय ढंगसे रहते-खाते हैं उनकी व्यवस्था हम शिविरमें नहीं करेंगे; इसके बजाय हम होटलोंके मालिकोंसे बातचीत कर लेंगे और उनके भाव और नाम आदि ऐसे लोगोंके प्रान्तोंको लिख भेजेंगे। वे उनसे अपना सीधा बन्दोबस्त कर लेंगे। यदि हम इस तरहकी व्यवस्था करेंगे तो बहुत-सी खटपटसे बच जायेंगे और सब लोगोंको पूरा आराम भी मिलेगा। ऐसा करनेके लिए हमें आजसे ही प्रान्तोंसे पत्र-व्यवहार आरम्भ करके बन्दोबस्त कर लेना चाहिए। हमें हर प्रान्तको वही सलाह देनी चाहिए जो हमें उसके लिए ठीक लगे और उसके सम्बन्धमें उसकी राय जानकर पीछे व्यवस्था पक्की कर देनी चाहिए।

कितने लोगोंका इन्तजाम?

प्रेक्षक और प्रतिनिधि मिलकर १० हजार लोग होंगे, ऐसा हम मानते हैं। किन्तु हमें यह समझकर चलना चाहिए कि इसे एक किस्मका मेला या तमाशा मानकर जो लोग उसे मात्र कुतूहलकी दृष्टिसे देखने आयेंगे उन्हें मिलाकर अहमदाबादमें उस

समय कमसे-कम एक लाख लोगोंकी आबादी बढ़ जायेगी। हम इन सब लोगोंके रहने-खानेकी व्यवस्था करनेके लिए बँधे हुए हैं। लोग चाहे जहाँ रहें, चाहे जहाँ ठहर जायें इसकी अपेक्षा उनके लिए पहलेसे आवश्यक व्यवस्था करना बहुत जरूरी है।

प्रदर्शनी

कांग्रेस अधिवेशनके साथ प्रदर्शनी तो अवश्य की जायेगी। मुझे लगता है कि हमें इस प्रदर्शनीमें केवल भारतकी प्राचीन कलाके नमूने और खादी और रुईकी समस्त क्रियाओंसे सम्बन्धित वस्तुएँ रखनी चाहिए। हमें मिलोंके कपड़ोंको प्रदर्शनीमें रखनेकी बिलकुल जरूरत नहीं है। बम्बईकी प्रदर्शनीमें मुझे यह त्रुटि दिखाई दी थी। हाथके सूतके ताने-बानेसे हम जिस-जिस किस्मका कपड़ा बना सकते हैं, प्रदर्शनीमें उसीको रखना उचित है। अहमदाबाद आज भी प्राचीन कलात्मक वस्तुओंका संग्रह स्थान है। हम लकड़ी और हाथी-दांतकी खुदाईकी वस्तुएँ और प्राचीन चित्र भले ही रखें, किन्तु कपड़ेकी हदतक हमें दृढ़तापूर्वक खादी और खादीके निर्माणसे सम्बन्धित उपकरणोंके अतिरिक्त अन्य एक भी वस्तु प्रदर्शनीमें नहीं रखनी है। मैं ये सब बातें समितिके सामने विचारार्थ रखता हूँ। मुझे आशा है कि ये विचार मेरे हैं इसलिए इनको मान ही लेना चाहिए इस आग्रहके साथ इनपर चर्चा नहीं की जायेगी; बल्कि मैं चाहता हूँ कि समिति अन्य बहुतसे विचारोंके साथ-साथ मेरे विचारोंपर भी निष्पक्ष रूपसे चर्चा करे।

स्वयंसेवक

स्वयंसेवकोंकी शिष्टता, नम्रता और चतुराईपर बहुत-कुछ निर्भर रहेगा। मैंने बंगालमें देखा था कि वहाँ स्वयंसेवक केवल धोती ही पहनते हैं। पूर्वी बंगालमें मैंने मुसलमान और हिन्दू दोनोंको ही धोती पहने देखा है। मुसलमान टोपी लगाते हैं और हिन्दू नंगे सिर रहते हैं। मैंने यह बात तो कहीं नहीं सुनी कि पायजामेके बिना स्वयंसेवकोंको अपना काम करनेमें अड़चन आती है। मैंने इस सम्बन्धमें बहुत अनुभवके बाद यह देखा है कि अहिंसाका पालन करनेवाले स्वयंसेवकोंका वेश कमसे-कम सशस्त्र सैनिकों या पुलिसके सिपाहियोंके समान तो नहीं होना चाहिए। असहयोगके स्वयंसेवकोंमें अहिंसाका आभास मिलना चाहिए। सैनिकवेशसे अहिंसा नहीं झलकती और वह अहिंसाकी भावनाके विरुद्ध दिखता है। कुछ स्वयंसेवकोंने तलवार या अन्य शस्त्र पास रखना सीख लिया है; यह छोड़ देना चाहिए। हावड़ाकी एक सभामें एक स्वयंसेवकके पास किर्च थी। मौलाना मुहम्मद अलीने उससे किर्च ले ली थी। यदि हमें किसीको मारना नहीं बल्कि स्वयं मरना सीखना है तो हमें तलवार किसलिए चाहिए? वह किस चीजकी निशानी है?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८–९–१९२१

६२. भाषण : कुम्भकोणम्‌में

१८ सितम्बर, १९२१

मित्रो,

मैं आपको इन सारे अभिनन्दन-पत्रों और उनमें व्यक्त की गई भावनाओंके लिए धन्यवाद देता हूँ। मुझे दुःख है और मैं जानता हूँ कि मौलाना मुहम्मद अली और उनकी बेगमकी अनुपस्थितिके कारण आप भी दुखी होंगे। खुश-किस्मतीसे मेरे साथ कानपुरके मौलाना आजाद सोबानी हैं। मैं समझता हूँ कि इस शोरगुलमें आप उनका व्याख्यान सुन सकनेका अवसर शायद ही पायेंगे। यदि हम इसी साल स्वराज्य पाना चाहते हैं और खिलाफत तथा पंजाबके अन्यायोंका निराकरण कराना चाहते हैं तो उसके लिए तीन अनिवार्य शर्तें हैं।

वे हैं, एक तो हिन्दुओं और मुसलमानोंमें पूरी एकता। चन्द मोपलाओंके पागल-पनसे भरे हुए कामोंके बावजूद दोनों ही जातियाँ अपने मधुर सम्बन्ध बनाये रहें। दूसरी शर्त अहिंसा और तीसरी शर्त स्वदेशी है। यह दुर्भाग्यकी बात है कि इस प्रान्तमें स्वदेशीकी प्रगति सबसे कम हुई है। आप सब लोगोंको विदेशी वस्त्रका बहिष्कार अवश्य करना चाहिए और कताई-बुनाई शुरू कर देनी चाहिए। एक चौथी शर्त भी है जो हिन्दुओंको अवश्य पूरी करनी चाहिए और वह है, अस्पृश्यताका कलंक मिटाना। जबतक हम यह कलंक नहीं मिटाते, तबतक स्वराज्य पाना सर्वथा असम्भव है।

मैं जानता हूँ कि अस्पृश्यताके सम्बन्धमें मद्रास भारतके सभी भागोंसे अधिक बुरा है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि कुम्भकोणम्‌के लोग इस मामलेमें अपने यहाँ आवश्यक सुधार करनेकी सावधानी बरतेंगे। हम हिन्दू समाजके पाँचवें भागको समाजसे बाहर रखें और स्वराज्य पानेका दावा भी करें — यह ठीक नहीं है। मैंने आपसे जिन शर्तोंका उल्लेख किया है, उन्हें पूरा करना आसान है और मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको और मुझे उन शर्तोंको भली प्रकार पूरा कर सकनेका विवेक और साहस दे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १९-९-१९२१

६३. पत्र : सिडनी बर्नको[1]

[१८ सितम्बर, १९२१ के पश्चात्]

महोदय,

आपका १८ तारीखका लिखा हुआ पत्र मिला। चेट्टिनाड जाते हुए रास्तेमें पुडुकोट्टाई राज्यसे गुजरनेका मेरा इरादा था। परन्तु आपके पत्रको[2] ध्यानमें रखते हुए मैं अब दूसरे रास्तेसे होकर जाऊँगा।

आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७६१८) की फोटो-नकलसे।

६४. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

त्रिचनापल्ली

मौनवार, १९, सितम्बर, १९२१

शान्तिका पाठ सीखे बिना हिन्दू-मुसलमान कभी एक नहीं हो सकते।

अहमदाबादमें स्वतंत्रताकी घोषणा करनेकी बातपर मैंने ध्यान ही नहीं दिया है। वैसा करने योग्य हमारे पास बल ही नहीं है। और जहाँ बल ही न हो वहाँ बात करनेसे क्या लाभ? यदि हममें बल हो तो मैं स्वतन्त्रताकी घोषणा करनेके लिए अवश्य सहमत हो जाऊँ।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

१. सर सिडनी बर्न, आई० सी० एस०, पुडुकोट्टाई स्टेटके शासनाधिकारी; बादमें मद्रास उच्च न्यायालयके जज।

२. पत्र इस प्रकार था: "...आपको इस राज्यसे गुजरनेकी अनुमति नहीं दी जायेगी। यदि आप ऐसा करनेका प्रयत्न करेंगे तो पुलिस आपको सीमापर रोक देगी।"

६५. भाषण : त्रिचनापल्लीमें[1]

१९ सितम्बर, १९२१

मित्रो,

इस ऐतिहासिक नगरमें आप लोगोंसे परिचय ताजा करते हुए मुझे बहुत खुशी हो रही है। मैं नगरपालिकाको उसके अभिनन्दन-पत्रके लिए धन्यवाद देता हूँ और कांग्रेस कमेटीका भी उसके अभिनन्दन-पत्रके लिए आभार मानता हूँ। मैं जानता हूँ कि आप सबको इस बातका क्षोभ है कि मौलाना मुहम्मद अली आज रात हमारे बीच नहीं हैं; और न बेगम साहिबा ही हैं। परन्तु आप मेरी दाहिनी ओर मौलाना आजाद सोबानीको बैठे देख रहे हैं। वे एक विद्वान् मुसलमान धर्माचार्य हैं। वे आज दिनभर त्रिचनापल्लीके मुसलमानोंसे मिलते-जुलते रहे हैं। मुझे जरा भी सन्देह नहीं कि त्रिचनापल्लीके मुसलमान समझते हैं कि इस्लाम और अपने देशके प्रति उनका कर्त्तव्य वास्तवमें क्या है। आप सबको शायद मालूम नहीं कि गत १७ तारीखको मौलाना शौकत अली भी बम्बईमें गिरफ्तार किये गये और पंजाबमें डा० किचलूको[2] भी वैसा ही गौरव प्राप्त हुआ है। मैं नहीं जानता कि सरकारने डा० किचलूको किन कारणोंसे प्रेरित होकर गिरफ्तार किया है, परन्तु बम्बई सरकारने अलीभाइयोंको गिरफ्तार करनेका कारण जनताको बतानेकी शिष्टता बरती है। बम्बई सरकार द्वारा बताये गये कारणोंमें पहला तो यह है कि अलीभाइयोंने सेनाकी वफादारीको डिगानेकी कोशिश की। सरकारी विज्ञप्ति यह भी सूचित करती है कि आगे चलकर उन्होंने यह काम किस रूपमें किया है। अलीभाई कराचीकी एक सभामें उस प्रस्तावको पास करानेवालोंमें से थे जिस प्रस्तावमें मुसलमानोंसे निवेदन किया गया था कि हर मुसलमानको चाहिए कि वह सेनामें नौकरी न करे और यह कहा गया था कि प्रत्येक मुसलमान सिपाहीसे कहा जाये कि इस्लामके अनुसार ब्रिटिश सेनामें काम करना हराम है। मुझे खेद है कि कराचीकी उस ऐतिहासिक सभामें मैं उपस्थित नहीं था और यदि मैं वहाँ होता और यदि सभा मुझे अनुमति देती तो मैं भी उस प्रस्तावका समर्थन करनेवालोंमें से एक होता। (हर्षध्वनि) मौजूदा समयमें मुसलमानोंके लिए ब्रिटिश सेनामें काम करना गुनाह है या नहीं, यह तो केवल मुसलमान ही बता सकता है किन्तु एक हिन्दू और एक भारतीय होनेके नाते मैं जानता हूँ कि मेरा और प्रत्येक हिन्दू या प्रत्येक भारतीयका ऐसे मौकेपर क्या कर्त्तव्य होना चाहिए। मैं जानता हूँ कि किसी भी भारतीयका ब्रिटिश-सेनामें या इस सरकारके किसी भी असैनिक-विभागमें काम करना पाप है और इस तरहकी सार्वजनिक घोषणा, भले ही वह सिपाहियोंकी मौजूदगीमें की गई हो, यदि ब्रिटिश-सेनाके सिपाहियोंकी वफादारीके साथ हस्तक्षेपका अपराध बन जाती है तो

१. गांधीजीके अंग्रेजी भाषणका डा० टी० एस० एस० राजनने तामिलमें वाक्यशः अनुवाद किया।
२. पंजाबके एक कांग्रेसी कार्यकर्ता।

मैं इस सभाको और इस सभा द्वारा भारत सरकारको बता दूँ कि मैंने अनेक बार ब्रिटिश-सेनामें काम करनेवाले सिपाहियोंकी वफादारीमें खलल पहुँचाया है और यह कोई नया अपराध भी नहीं है। यह अपराध पिछले साल सितम्बरमें मैंने जानबूझकर किया था, और यही अपराध कलकत्तामें[१] भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने सितम्बरमें किया था और नागपुरमें[२] इसे जानबूझकर दोहराया गया था। यदि कांग्रेस या मैं सिपाहियोंके पास या सरकारी विभागोंके कर्मचारियोंके पास निजी तौरपर नहीं गये, तो इसका कारण इच्छाकी कमी नहीं वरन् सामर्थ्यकी कमी थी। हमारे अभागे देशमें जहाँ गरीबी दिनोंदिन बढ़ती जा रही है, जिसमें हमारे देशके लाखों पुरुष-स्त्री भुखमरीमें संघर्ष करते हैं, हम अभीतक सिपाहियोंसे व्यक्तिगत रूपसे मिल नहीं सके हैं और उनसे कह नहीं पाये हैं कि अपने देशके लिए अपनी नौकरी छोड़ दें और अपना कर्त्तव्य करें। मैं सरकारको जो चेतावनी देना चाहता हूँ वह यह है कि जैसे देशने चरखेका और स्वराज्यका सिद्धान्त ग्रहण कर लिया और आत्मसात् कर लिया वैसे ही यदि सिपाही तथा अन्य लोग चरखा और हाथ करघा चलानेको तैयार हो जाते हैं, तो मैं वायदा करता हूँ कि यदि मुझमें तब भी शक्ति बाकी रही और वह व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य, जो इस सरकारने मुझे अनुग्रहपूर्वक प्रदान किया है, बना रहा तो मैं प्रत्येक सिपाहीके पास और सरकारके असैनिक विभागोंमें काम करनेवाले हर व्यक्तिके पास इसलिए जाऊँगा कि वह अपनी नौकरी छोड़ दे और चरखेको अपनाये; परन्तु अभी इस समय भी मैं हर-एक सिपाहीका और सरकारी नौकरीमें लगे हर व्यक्तिका जो अपनेको भारतीय कहता है, आवाहन करता हूँ कि यदि उसने स्वदेशीका सन्देश समझ लिया है तो उसका परम कर्त्तव्य है कि वह इस सरकारकी नौकरी छोड़ दे, जिसने कि इस देशको दुर्बल बना दिया है, जिसने इस्लामपर बन्धन लगा दिये हैं और जो जलियाँवाला बागकी दुर्घटना-के लिए स्वयं जिम्मेदार है। मैं कहता हूँ कि इस सरकारकी सेवा करना किसीके भी लिए पाप है और यदि उन्हें स्वदेशीमें आशा है, तो इस सरकारकी नौकरी छोड़कर वे अच्छा ही करेंगे।

बम्बई सरकारने दूसरा कारण यह बताया है कि अलीभाइयोंने हिंसा भड़काने-वाले भाषण दिये हैं। मैं इन भाइयोंको जानता हूँ। उन्होंने जितने भाषण दिये हैं लगभग उन सबसे मैं परिचित हूँ और मैं इस मंचसे उस [सरकारी] आरोपका पूरी तरह खण्डन करता हूँ। इन भाइयोंने हमेशा, जहाँतक मुझे मालूम है, अकेलेमें और सार्वजनिक रूपसे लोगोंको किसी भी प्रकारकी हिंसात्मक प्रवृत्ति अपनानेसे रोका है। परन्तु मैं आपको वह कारण बताऊँगा कि सरकारने दोनों भाइयोंको क्यों कैद किया है। वे बहादुर हैं, वे सच्चे हैं और वे अपने धर्म तथा अपने देशके प्रेमी हैं और भारतीयोंके दिलोंमें उनका इतना प्रभाव पैदा हो चुका है कि जितना अपने जीवनकालमें किसी भी भारतीयका नहीं हो पाया है। उनका नाम एक ऐसा नाम है जो मुसल-मानोंके हृदयोंमें सम्मोहनभाव जगाता है और उन्होंने लाखों हिन्दुओं और मुसलमानोंके

१. देखिये खण्ड १८।

२. देखिए खण्ड १९, परिशिष्ट १।

दिलोंमें घर बना लिया है। हिन्दू-मुस्लिम एकताके जितने बड़े हामी ये हैं उतना बड़ा अन्य कोई मुसलमान नहीं है। इस सरकारमें बहादुर लोगोंके लिए, निडर लोगों और ऐसे लोगोंके लिए जो सच्चे हैं, अपने देश और धर्मके प्रेमी हैं, और जिनका जन-समूह पर असर है, कोई स्थान नहीं है। परन्तु जहाँ मैं इस सरकारकी भावनाका विश्लेषण करना अपना फर्ज समझता हूँ और जहाँ मैं आपका ध्यान इस सरकारके कुकृत्यों-की ओर दिलाना जरूरी समझता हूँ, वहाँ मैं आपको उत्तेजित न होनेकी और हिंसा-पर उतारू न होनेकी चेतावनी भी जरूर दूँगा। देशके सामने उत्तेजित होनेके इतने उग्र कारण प्रस्तुत किये गये, फिर भी देशने जो ऐसी शान्ति बरकरार रखी जिसे मैं दैवी शान्ति कहता हूँ, उसके लिए मैं देशभरके भाइयोंको बधाई देता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि भारतमें जो शान्ति आज छाई हुई है वह ब्रिटिश-तलवारके भयके कारण नहीं, वरन् अपनी बढ़ती हुई शक्तिके भानसे और सितम्बरमें ली गई व दिसम्बरमें दोहराई गई अपनी ही शपथके ज्ञानके फलस्वरूप है। मौजूदा भड़कानेवाली बातोंके बावजूद और आगे भी जो भड़कानेवाली बातें हों उन सबके बावजूद यदि हम अपने वचनोंका पालन करें और अन्ततक यह शान्ति बनाये रखें, तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यही सरकार खिलाफतके प्रति किये गये अन्याय, पंजाबके प्रति अपने अत्याचार और अलीभाइयोंके साथ किये गये अन्यायके लिए भारतसे क्षमा माँगेगी। हमें समझ लेना चाहिए कि इस सरकारका ध्येय क्या है। इस सरकारने इतने लम्बे अरसेतक आतंककी प्रणालीका अन्तिम भरोसा करके अपनेको कायम रखा है। पिछले १२ महीनोंसे हम बराबर सरकारको चुनौती देते आये हैं कि जितना अत्याचार उससे सम्भव हो वह करे। यदि हम जानबूझकर आगमें कूदें तो आगने हमें जलाया, इसकी शिकायत हरगिज न करें। हम पहलेके तजुर्बेसे जान चुके हैं कि कुछ खास परिस्थितियोंमें सरकार किस हदतक जा सकती है। हमने सरकारके रोषको भड़का दिया है और अब हमें कायरोंकी तरह उससे भागना नहीं चाहिए और यदि आज हम जिस कठिन स्थितिमें गुजर रहे हैं, उसे झेल लेते हैं तो मैं वायदा करता हूँ कि तीन महीनेके भीतर ही आप भारतमें स्वराज्यकी स्थापना कर लेंगे और आप अपने देशको एक स्वतन्त्र देश कहने लगेंगे। अहिंसा कमजोरका ही नहीं, बलवानोंका भी अस्त्र है, जैसे कि अलीभाइयोंका था। जब सरकारकी समझमें यह आजायेगा कि भड़कानेवाली बड़ीसे-बड़ी स्थितिमें भी हम अपना सन्तुलन नहीं खो बैठेंगे बल्कि यह दिखायेंगे कि हमने भविष्यमें समझदारीसे काम करनेका निश्चय कर लिया है तो आप देखेंगे कि हमें हमारे उचित स्थानसे हटानेमें सरकार सर्वथा असमर्थ हो जायेगी। यदि हिन्दुओं और मुसलमानोंने अलीभाइयोंकी काम करनेकी भावनाको समझ लिया है और यदि उन्होंने असहयोगके सन्देशकी भावना हृदयंगम कर ली है और यदि वे अपने धर्म और अपने देशके प्रमी हैं, तो मैं हिन्दुओं और मुसलमानों — दोनोंसे कहता हूँ कि आप झुँझलायें नहीं वरन् शान्त रहें और धर्म तथा देशके सम्मानकी रक्षा करनेके अपने निश्चयमें दृढ़ रहें।

भारतके प्रत्येक स्त्री-पुरुषको केवल एक ही काम करना है और वह यह कि हम उन सभी विदेशी वस्त्रों तथा विदेशी भड़कीली वस्तुओंका, जो अबतक हमारी दासताके

चिह्न रहे हैं, बहिष्कार करें। इतना ही काफी नहीं कि आप अपने घरोंसे और अपने संदूकसे कुछ चिथड़े निकाल फेंके, बल्कि त्रिचनापल्लीकी स्त्रियोंको तो यह चाहिए कि वे अपनी बढ़ियासे-बढ़िया साड़ियाँ जो विलायती सूतसे बनी हैं और जो उन्होंने अबतक अपने पास बड़े चावसे संजोकर रखी हैं, त्याग दें। इससे मुझे पता चल जायेगा कि अपने धर्मके प्रति आपको कितना प्रेम है, अपने देशके प्रति तथा अलीभाइयोंके प्रति आपके हृदयमें कितना स्नेह है। त्रिचनापल्लीके लोग, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, इसी मापदण्डसे अपनेको परखने दें और कल सुबहतक वे इस कसौटीपर खरे उतरें। और आपमें मौलाना शौकत अली-जैसी अथक परिश्रमशीलता और संगठन करनेकी विलक्षण क्षमता तथा मुहम्मद अली-जैसी भाषण देनेकी शक्ति चाहे न हो, परन्तु प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान अपने धर्म और देशके लिए संसारके प्रत्येक सुखको त्याग देनेके उनके गुणका अनुकरण सुगमतापूर्वक कर सकता है। उनकी तरह आप भी अपने पासका सारा विदेशी वस्त्र त्याग सकते हैं। आप भी उतना मोटा खद्दर पहन सकते हैं जितना कि ये दोनों कद्दावर भाई पिछले छः महीनोंसे पहनते आये हैं। उनके प्रति आपके स्नेहकी सच्ची कसौटी वही होगी। सच्ची अहिंसा और हिन्दू-मुस्लिम एकताको आप मान्यता देते हैं इसका भी स्पष्ट प्रमाण मिल जायेगा, क्योंकि ज्यों ही हम यह दिखा देते हैं कि हमारा और उनका एक ही उद्देश्य है त्यों ही हम एकताके सूत्रमें बँध जाते हैं।

कुम्भकोणम्के विद्यार्थियों और मद्रासके विद्यार्थियोंने भी मुझसे पूछा है कि देशके इतिहासके इस नाजुक मौकेपर उनका क्या कर्त्तव्य है। उनका अत्यन्त स्पष्ट कर्त्तव्य सितम्बरमें और फिर दिसम्बरमें उनके सामने रख दिया गया था। और वह यह था कि विद्यार्थीगण प्रत्येक ऐसे स्कूलको, जो या तो सरकारके प्रबन्धमें या उसकी मददसे चलता हो छोड़ दें। मैं त्रिचनापल्लीके उन विद्यार्थियोंको बधाई देता हूँ जिनमें विश्वास-का बल था, और जो सरकारी स्कूलोंको छोड़नेकी जरूरत समझ पाये थे। इन महीनोंमें शानदार काम कर डालनेके उपलक्ष्यमें मैं उन्हें बधाई देता हूँ। मैं उन विद्यार्थियोंके प्रति भी अपनी सहानुभूति व्यक्त करता हूँ जो किसी-न-किसी कारणवश अपने पुराने स्कूल छोड़कर बाहर नहीं आ सके। परन्तु यदि वे चाहें तो अपने देशकी सेवा आज भी कर सकते हैं। वे भारतके लिए एक या दो घंटे, अपनी स्थितिके अनुसार, धर्मकी भावनासे कताई करनेको अलग रख सकते हैं। अन्य सब लोगोंकी तरह वे भी खद्दर पहनना शुरू कर सकते हैं। स्वदेशीकी वेदीपर हम सहयोगियों और असहयोगियोंको, जो सरकारकी नौकरीमें हैं और जो सरकारकी नौकरी नहीं कर रहे हैं उनको — बल्कि उन सबको भी जो अपनेको भारतीय कहनेका दम भरते हैं, आमन्त्रित कर सकते ह। जिस तरह भारतमें पैदा होनेवाला और भारतमें पकाया गया अन्न ही खाना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है, उसी तरह हम वे ही कपड़े पहनें जो भारतमें काते गये सूतसे भारतमें ही बुने गये हों; और जिस तरह हम स्वभावतः अनुभव करते हैं कि अर्थ-शास्त्रका सच्चा नियम यही चाहता है कि हमें अपना खाना अपने घरोंमें पकाना चाहिए उसी तरह अर्थशास्त्रका नियम स्वभावतः हमसे इस बातकी भी अपेक्षा करता है कि हम अपना कपड़ा अपने घरोंमें कात और बुनकर तैयार करें।

विद्यार्थियोंकी तरह बंगाल, मद्रास और कुम्भकोणम्‌में भी वकीलोंने मुझसे अपना कर्त्तव्य पूछा है। यदि उन्होंने वकालत नहीं छोड़ी है तो उनकी ओर तिरस्कारपूर्वक अँगुली उठाना हमारा काम नहीं है। परन्तु मैं उनसे स्वदेशीका सिद्धान्त अपनाने और हर सम्भव तरीकेसे स्वदेशी आन्दोलनकी मदद करनेका अनुरोध करूँगा। कमसे-कम उनसे इतनी आशा तो की ही जा सकती है कि वे अदालतोंमें खद्दरकी पोशाकमें जानेका साहस दिखायेंगे। यदि उन्हें स्वराज्यमें विश्वास है तो मैं उनसे और उनके परिवारवालोंसे यह आशा अवश्य करता हूँ कि प्रतिदिन धार्मिक भावनासे सूत कातनेके लिए एक या दो घंटेका समय अलग निकालें। यदि आज विभिन्न गुणोंवाले लोग सार्वजनिक मंचोंपर आये हैं तो मैं आशा करता हूँ कि वकील लोग धैर्यसे काम लेंगे और श्रमका महत्व तथा जनताकी सेवाका गौरव समझेंगे। साहस, लगन और विशेष रूपसे निर्भीकता तथा खुशीके साथ त्याग करनेकी भावना — ये ऐसे गुण हैं जिनकी भारतमें नेतृत्वके लिए बहुत जरूरत है। मेरे मनमें इसके बारेमें जरा भी सन्देह नहीं कि एक अपढ़ पंचम भाई, जो इन गुणोंका पूर्ण परिचय दे, इस तरहके आन्दोलनका नेतृत्व करनेके लिए मेरे जैसे कमजोर व्यक्तिकी अपेक्षा अधिक योग्य है। क्योंकि जिस वस्तुको प्राप्त करनेके लिए हम लालायित हो रहे हैं वह कोई पेचीदा चीज नहीं बल्कि एक बिलकुल सादी-सी वस्तु है। वह वस्तु है स्वराज्य — जो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। मेरे मनमें जरा भी सन्देह नहीं कि कोई भी सीधी-सादी और ईश्वरको माननेवाली स्त्री, यदि उसमें ये गुण, जिनका मैंने उल्लेख किया है, मौजूद हैं तो वह इस तरहका आन्दोलन चला सकती है। मैं त्रिचनापल्लीकी औरतोंको अपना फर्ज अदा करने और त्यागकी वेदीपर अपना पूरा योग देनेके लिए आमन्त्रित करता हूँ। यह देखते हुए कि हमारा युद्ध अहिंसात्मक है, मैं इस श्रोतासमुदायमें से प्रत्येक व्यक्तिको आगाह करता हूँ कि वह अपने मनमें असहिष्णुताकी भावनाको हावी न होने दे। जिन विद्यार्थियोंने स्कूल या कालेज छोड़ दिये हैं, या जिन वकीलोंने वकालत छोड़ रखी है, वे बड़प्पनकी भावना न अपनायें, और जिन विद्यार्थियों अथवा वकीलोंने कांग्रेसके प्रस्तावपर अमल नहीं किया है, उन्हें नफरतकी निगाहसे न देखें। स्वराज्यके मंचपर सबसे दुर्बल और सबसे सशक्त भारतीय, दोनोंके लिए जगह है। अहिंसाकी सेनामें बच्चे और अपंग व्यक्ति भी, यदि उनका दिल सच्चा है, तो शरीक किये जा सकते हैं।

मोपला विद्रोहके सम्बन्धमें दो शब्द कहकर मैं अपना कथन समाप्त करूँगा। मैं जानता हूँ कि मलाबारमें जो-कुछ हुआ है, उसके कारण हममें से वे सभी जो वहाँकी स्थिति समझ सके हैं, चिन्तामें घुले जा रहे हैं। हमारे मोपला भाई पागलपन कर बैठे यह सोचकर मेरा हृदय अत्यन्त क्षुब्ध है। उन्होंने अधिकारियोंको मार दिया है यह सुनकर हमें दुःख होता है। यह जानकर कि उन्होंने हिन्दू घरोंको लूटा है और कई सौ पुरुष और स्त्रियोंको निराश्रय कर दिया और वे दाने-दानेको मोहताज कर दिये गये हैं, दुःख होता है। मुझे यह सोचकर क्षोभ होता है कि उन्होंने हिन्दुओंको जबर्दस्ती मुसलमान बना लिया है। इन सभी कामोंसे उन्होंने देशकी भारी हानि की है। परन्तु फिर भी हमें दृष्टि-संतुलन रखना चाहिए। उनके ये काम भारतके तमाम मुसलमानोंके काम नहीं हैं, और ईश्वरको धन्यवाद है कि ये काम सभी मोपलाओंके भी नहीं हैं।

प्रत्येक प्रतिष्ठित मुसलमानने जिसे मैं जानता हूँ, मोपलाओंके हरएक कामकी निन्दा की है। इसलिए हिन्दू-मुस्लिम एकताके प्रति हमारी निष्ठा दृढ़ और अडिग बनी रहनी चाहिए। इस आदर्शके प्रति हमारी निष्ठाको शायद किसी भी तरहका धक्का नहीं लगना चाहिए। हमें एक क्षणके लिए भी यह नहीं सोचना चाहिए कि यदि ब्रिटिश तलवार न होती तो मलाबारमें कभी शान्तिकी पुन:स्थापना नहीं हो सकती थी। सारे संसारमें जहाँ भी स्त्री-पुरुष बसते हैं, वे कभी-कभी आपसमें लड़ बैठते ही हैं। कभी-कभी वे रक्तपात भी करते हैं, और आपेसे बाहर होकर पागलपन कर डालते हैं। परन्तु अपने झगड़े निबटानेमें उन्हें कभी कोई कठिनाई नहीं हुई। जब पहला मोपला खूंरेजीपर उतारू हुआ था उस समय सरकार और उसकी पुलिस कहाँ थी? ऐसी सरकारसे क्या लाभ जो केवल झगड़े हो जानेके बाद दण्ड देना तो जानती है लेकिन झगड़ेकी प्रारम्भिक अवस्थाओंमें जीवन-रक्षा करना नहीं जानती। ऐसी सरकारसे क्या लाभ है जिसकी पुलिससे कभी जरा भी जोखिम उठानेकी आशा नहीं की जाती और जो एक जानके बदले हजारों जानें लेती है। ऐसी सरकारसे क्या लाभ जो बरसों-से मोपलाओंका स्वभाव जानते हुए भी उन्हें शान्तिके मार्गपर नहीं ला सकी। और ऐसी सरकारसे क्या लाभ जिसने बेचारे हिन्दुओंको नि:शस्त्र रखकर आत्मरक्षा कर सकनेमें बिलकुल लाचार बना दिया है। मैं जानता हूँ कि मोपला लोगोंके नजदीक अहिंसा अन्तिम आदर्श नहीं है, जैसा कि मेरा है। मोपला उपद्रवका अलीभाइयोंकी गिरफ्तारीसे सम्बन्ध जोड़कर बम्बई सरकारने हमारी आँखोंमें धूल झोंकी है। भारतमें असहयोगके आरम्भसे पूर्व भी ऐसे उपद्रव सब जगह होते थे और उपद्रवकी आरम्भिक हालतमें सरकार जान-मालकी रक्षा करनेमें असमर्थ होती रही है, जैसा कि तीन साल पहले शाहाबादमें जान-मालकी रक्षामें वह बुरी तरह असफल रही।[1] इसकी संरक्षण-शक्ति उस वक्त कहाँ चली गई थी जब, यदि मेरा खयाल ठीक है, लगभग एक हफ्ते तक या कमसे-कम ३–४ दिनोंतक मुसलमानोंके प्रति भयंकर क्रोधसे भरे हुए हिन्दुओं द्वारा गाँवके-गाँव लूटे जा रहे थे? इसलिए मैं आशा करता हूँ कि यह विशाल सभा मोपला उपद्रवसे यही एकमात्र सम्भव सबक ग्रहण करेगी कि अपने निश्चित कार्यक्रमसे हमें तिलभर भी नहीं डिगना है, प्रत्युत अपने प्रयासको दुगना करते हुए आगे बढ़ना है और इसी सालके अन्दर उसे पूरा भी करना है ताकि हम स्वराज्यकी स्थापना कर सकें।

मुझे पता चला है कि एक थियेटर मैनेजरके मामलेमें उठ खड़े हुए एक किस्मके दंगेके सिलसिलेमें लगभग ४० आदमी गिरफ्तार किये गये हैं। मैं यह जरूर स्वीकार करूँगा कि इस प्रकारकी गिरफ्तारी ठीक थी। हर कांग्रेस-जनको, हर कांग्रेस-नेताको अपने गाँव और जिलेमें शान्ति कायम करनेके लिए अपने आपको जिम्मेदार मानना चाहिए; और चाहे हम अमुक दंगेमें मौजूद रहे हों या न रहे हों, लेकिन सरकारको कहीं भी हुए ऐसे किसी भी दंगेके लिए हमें ही जिम्मेदार मानने दीजिए क्योंकि

१. यहाँ संकेत शाहाबादमें सितम्बर–अक्तूबर, १९१७ में हुए उपद्रवोंकी ओर है। देखिए खण्ड १३ और १४।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतमें जीवन एवं जागृति पैदा करनेकी जिम्मेदारी हमारी ही है। लोगोंको अपनी खुद ही की शक्ति पहचानने योग्य बनानेके लिए भी हमें अपनेको ही जिम्मेदार मानना चाहिए और इसलिए निस्सन्देह हर व्यक्तिका कर्त्तव्य हो जाता है कि वह इस बातका ध्यान रखे कि लोग अनुशासन कायम रखें। हम अपनी कानूनी जिम्मेदारी भले ही न मानें परन्तु कहीं भी किसी प्रकारकी हिंसाके विस्फोटके लिए अपनी नैतिक जिम्मेदारी माननेसे मुँह न मोड़ें। हम कोई शोर भरे प्रदर्शन न करें, नारे न लगायें, असहयोग आन्दोलनमें शरीक न होनेवाले किसी भी व्यक्तिपर दबाव या जोर न डालें। शान्तिप्रिय लोगोंको यही शोभा देता है। हम जब सभाओंमें शरीक होते हैं तब हम कोई शोरगुलवाला प्रदर्शन न करें। शान्तिसे चरखा चलाते रहें और यदि सम्भव हो तो विदेशी वस्त्रका इसी महीनेके अन्दर बहिष्कार पूरा करें। हमारे पास जितना भी फालतू समय हो, उसका उपयोग सूत कातने और कपड़ा बुननेमें करना चाहिए। मैं स्वराज्य पानेका कोई दूसरा रास्ता नहीं जानता और न अलीभाइयों तथा उन सबको जो बेगुनाह होते हुए भी जेलमें पड़े हुए हैं, रिहा करानेका कोई दूसरा उपाय जानता हूँ।

आप लोगोंने जिस अनुकरणीय धैर्यके साथ मेरी बात सुनी है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि आप मौलाना आजाद सोबानीकी बात भी उतने ही धैर्यसे सुनेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २२-९-१९२१

६६. सन्देश: करूरकी कांग्रेस कमेटीको

त्रिचनापल्ली
२० सितम्बर, १९२१

मुझे खेद है कि पूर्व-निश्चित कार्यक्रमके कारण मेरा करूर आ सकना सम्भव नहीं है। मैं जानता हूँ कि आप लोगोंने नशाबंदीके लिए कितनी अच्छी तरह काम किया है। परन्तु यह जानकर मुझे दुःख हुआ है कि एक थियेटरके प्रबन्धकपर तिलक स्वराज्य कोष या शायद एक मन्दिरके लिए चंदा देनेके सम्बन्धमें दबाव डाला गया। यदि हमें इसी सालके भीतर स्वराज्य प्राप्त करना है तो हमें अपने बीच मौजूद उच्छृंखल तत्त्वोंको काबूमें रखने योग्य बनना चाहिए और किसी भी कारणसे हिंसा नहीं होने देनी चाहिए। मैंने सुना है कि चालीससे अधिक ऐसे नागरिक गिरफ्तार किये गये हैं, जिनका थियेटरको घेरनेकी वारदातमें जरा भी हाथ नहीं था। फिर भी, जो लोग गिरफ्तार हुए हैं मैं उन्हें बधाई देता हूँ। मेरे विचारसे यह गिरफ्तारी हमारा अभिनन्दन है। इससे जाहिर होता है कि सरकार हमसे इस बातकी आशा करती है कि असहयोगसे कोई भी ताल्लुक न रखनेवाले लोगोंसे भी हम शान्तिका पालन

कराय। मैं आशा करता हूँ कि सच्चे असहयोगियोंके नाते वे जेल जायेंगे। मैं यह आशा भी करता हूँ कि सरकार चाहे जो भी करे, लोग हर हालतमें अहिंसाका पालन निष्ठाके साथ करते रहेंगे, और अंतमें मैं इस बातकी भी आशा करता हूँ कि जो लोग गिरफ्तार किये गये हैं, उनकी पत्नियाँ और उनके सम्बन्धी दृढ़ रहेंगे और उन्हें किसी भी तरहका बचाव पेश किये बगैर जेल जाने देंगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २६–९–१९२१

६७. भाषण : मानपत्रके उत्तरमें[1]

२० सितम्बर, १९२१

महात्माजीने अपने संक्षिप्त भाषणमें मानपत्रका उत्तर देते हुए कहा कि मुझे जो चाँदीकी तश्तरी भेंट की गई है, उसकी बिक्रीसे मिलनेवाला पैसा तिलक स्वराज्य कोष-में जमा किया जायेगा, क्योंकि मेरे पास तो ऐसे उपहार रखनेके लिए कोई जगह ही नहीं है। श्रीरंगम् नगरपालिकाका ध्यान, बल्कि अपने अस्तित्वका औचित्य सिद्ध करनेकी सामर्थ्य रखनेवाली हर नगरपालिकाका ध्यान, मैं तीन बातोंकी ओर दिलाना चाहता हूँ। एक तो यह है कि अगर आप राष्ट्रीय पुनरुत्थानके इस महान आन्दोलनमें भाग लेना चाहते हैं तो आपको ध्यान रखना चाहिए कि श्रीरंगम्का कोई भी नाग-रिक बिना खद्दरके न रहे और किसी भी नागरिकके घरमें कोई विदेशी कपड़ा नहीं रहे। दूसरे, आपको अपने बीचसे मद्यपानके अभिशापको बिलकुल मिटा देना चाहिए। तीसरे, अस्पृश्यताका कलंक भी न रहने पाये। इस कलंकमय प्रथाको हिन्दू धर्ममें कहीं भी स्वीकृति नहीं दी गई है। यह भारतकी जीवन-शक्तिको ही अपना आहार बनाती जा रही है। मेरा निश्चित मत है कि जिस समय आप इस अभिशापसे छुट-कारा पा लेंगे, आप स्वराज्यके अधिकारी बन जायेंगे। जब बाईस करोड़ हिन्दू इस राक्षसी अन्धविश्वासके शिकार हैं तो हिन्दुओंसे अलग रहकर मुसलमानोंके लिए प्रगति करना असम्भव है। इसलिए मैं आप, श्रीरंगम्के लोगोंसे अनुरोध करता हूँ कि आप अस्पृश्यताके विचारको दूर भगाइए। आपके नगरमें जो बहुतसे भव्य मन्दिर हैं, वे आपको बराबर अपने कर्त्तव्यका स्मरण दिलाते रहेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २२–९–१९२१

१. यह मानपत्र श्रीरंगम्की नगरपालिकाने भेंट किया था।

६८. भाषण: श्रीरंगम्‌की सार्वजनिक सभामें

२० सितम्बर, १९२१

मित्रो,

इस सुन्दर मानपत्रके लिए मैं आपको हृदयसे धन्यवाद देता हूँ। मैंने इसे सुन्दर इसलिए कहा कि यह पत्रोंपर छपा हुआ है। लेकिन मैं आपको यह बता दूँ कि एक कारणसे इसकी सुन्दरतामें कमी आ गई है। वह यह है कि आपन मानपत्र अपनी मातृभाषा या राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीके बजाय एक ऐसी भाषामें लिखा या छापा है जिसका हमारे राष्ट्रीय सम्पर्ककी भाषाके रूपमें कोई महत्व नहीं है। अंग्रेजी कूटनीति और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारकी भाषा है। मैं जानता हूँ कि अगर मैं आपसे अंग्रेजीका प्रयोग एक महानतम विश्व-भाषाके रूपमें ही करनेका अनुरोध करूँ तो आप मुझे गलत न समझेंगे। मैं समझता हूँ, अंग्रेजी साहित्यमें ऐसा बहुत-कुछ है, जिसका अध्ययन करके हम लाभ उठा सकते हैं। लेकिन, जैसे गलत स्थानमें रखी गई चीजोंको कचरा कहते हैं, वैसे ही जहाँ अंग्रेजीके लिए कोई स्थान नहीं हो सकता, जैसा कि यहाँ हुआ, वहाँ उसका प्रयोग गर्हित है। जब-जब मुझे अपने देशभाइयोंको अपने विचारोंसे अवगत करानेके लिए अंग्रेजीका प्रयोग करना पड़ता है, जब-जब मुझे हमारी आपसी बातचीतमें अंग्रेजी सुननेको मिलती है, तब-तब इस उत्तरोत्तर बढ़ते हुए अपमानका दंश मुझे और अधिक चुभने लगता है। इसलिए, जैसा कि आप जानते हैं, आपके प्रान्तमें हिन्दीके प्रचारके लिए मारवाड़ी भाइयोंसे मैंने ५०,००० रुपया चन्दा इकट्ठा किया है। अतः मुझे पूरी आशा है कि अंग्रेजी भाषामें महारत हासिल करनेकी बेकार कोशिशके बजाय हम ईमानदारीके साथ अपनी-अपनी मातृभाषा और राष्ट्रभाषामें कुशलता हासिल करनेकी कोशिश करेंगे। आजके इस अनास्थाके युगमें संस्कृतकी मधुर ध्वनि सुननेका सौभाग्य तो शायद ही कभी मिल पाता है। मैं उस घास-पातकी कुटियामें रहनेवाले अन्धे कविका अपना अनुभव बताता हूँ। उसने जो श्लोक सुनाये, वे यद्यपि दुर्भाग्यसे मेरी ही प्रशंसामें लिखे गये थे, फिर भी, मैं सच बताता हूँ, उन श्लोकोंको उसके मुँहसे इतने सुन्दर ढंगसे उच्चरित होते सुनकर मुझे बहुत आनन्द हुआ। अगर हमें अपने देशसे सचमुच प्रेम है तो उसमें जो-कुछ अच्छा है, जो-कुछ उदात्त है, उसके प्रति हमें अपने भीतर रुचि जगानी चाहिए। इसलिए जब मैं अपने देशकी स्त्रियोंको रंग-बिरंगे विदेशी वस्त्रोंसे सजकर बाहर आते देखता हूँ, तो मुझे बड़ा दुःख होता है। आपका स्वच्छ शरीर जिसके ऊपरी हिस्सेपर आपने कोई कपड़ा नहीं डाल रखा है, और आपके भालपर रचा हुआ तिलक देखकर मुझे बहुत अच्छा लगता है। लेकिन जब मैं आपको भी बड़े प्रेमसे विदेशी कपड़े धारण किये देखता हूँ तो अपने देशके बारेमें मेरा मन निराशासे भर उठता है। आप लोग, जो इस छोटेसे खुशहाल द्वीपमें सुख और समृद्धिका जीवन बिताते जान पड़ते हैं, यह नहीं महसूस

करते कि यहाँ विदेशी कपड़ेके दाखिल होनेसे भारतका कितना अहित हुआ है। इसने लाखों-करोड़ों भारतीय परिवारोंको बरबाद कर दिया है, भुखमरीकी अवस्थामें पहुँचा दिया है। सेनापर भारतका इतना धन बहाया जा रहा है, जिन लोगोंने भारतको अपना घर नहीं बनाया उनकी पेंशनके रूपमें जो धन बहकर विदेश चला जा रहा है, भारतकी तथाकथित सेवा करनेवाले अंग्रेजोंके लिए जो पैसा इंग्लैंड भेजा जाता है,[1] यह सब तो बुरा है ही; लेकिन यहाँके लोगोंको वस्त्र-उद्योगसे वंचित करके उनपर थोपी गई बेकारीने इस राष्ट्रको जितना खोखला बना दिया है, उतना और किसी चीजने नहीं बनाया है। भारतकी आयके इस दूसरे बड़े साधनके समाप्त हो जानेका नतीजा यह हुआ है कि हजारों स्त्रियोंको लज्जाजनक और पतित जीवन बितानेको मजबूर होना पड़ा है। इसने हमें इस योग्य नहीं रखा है कि हम अकाल और बीमारियोंके प्रकोपको रोक सकें। और इस तरह हम आज एक ऐसी भयंकर परिस्थितिमें पड़ गये हैं, जिसका उदाहरण दुनियामें और कहीं नहीं मिल सकता। वह परिस्थिति यह है कि प्रायः भुखमरीकी स्थिति झेलनेवाले यहाँके करोड़ों लोग, जो दुनियाकी किसी भी जातिके मुकाबले कम सुसंस्कृत नहीं हैं, लगभग स्थायी तौरपर सिर्फ एक लाख अंग्रेजोंके दास बनकर रह गये हैं। आप जो सहानुभूति दर्शाते हैं, वह अगर आपके हृदयसे निकली सहानुभूति है और यदि यहाँ अलीभाइयोंकी अनुपस्थिति आपको भी उतनी ही अखर रही है जितनी मुझे, तो आप विदेशी कपड़ेसे बुनी पोशाकोंको छोड़नेमें तनिक भी आगापीछा नहीं करें, और आपके बीच जो विद्वान्‌से-विद्वान् लोग हैं, वे भी एक धर्मकार्य मानकर चरखेको अपना लेनेमें कोई संकोच नहीं करें। फिर यदि आपके हिन्दूधर्मके बाहरी आचार-व्यवहार आपकी आन्तरिक पवित्रताके ही प्रतीक हैं तो आप अस्पृश्यताके अभिशापसे मुक्ति पा लेंगे। एक सनातनी हिन्दूके नाते मैं दावेके साथ कहता हूँ कि हिन्दू-धर्ममें ऐसा कुछ नहीं है जिसके आधारपर अस्पृश्यताको सही माना जा सकता हो। मुझे तो आश्चर्य होता है कि शंकर और रामानुजके इस देशमें इस चीजने कैसे इतना विषैला रूप धारण कर लिया। अगर आप ऐसा सोचते हों कि उन्होंने पंचम भाइयोंकी छायातक को अपवित्र माना होगा, तो मैं कहता हूँ, सच मानिए, आपने उनकी शिक्षाका अर्थ गलत समझा है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आप लोग अस्पृश्यताके भूतको अपने बीचसे मार भगायेंगे और पंचम भाइयोंको अपने सगे भाइयोंकी तरह गले लगायेंगे। हमारा आन्दोलन आत्मशुद्धिका आन्दोलन है, यह तो इसी बातसे स्पष्ट है कि मद्यपानकी बुराई हमारे बीचसे समाप्त होती जा रही है। इस अभियानमें आप जो योग देते रहे हैं, उसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। आशा है, आप सभी दिशाओंमें और अधिक प्रयत्न करेंगे और स्वदेशी, मद्य-निषेध तथा अस्पृश्यताके क्षेत्रोंमें उचित योगदान करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २२-९-१९२१

१. अंग्रेजोंकी तथाकथित सेवाओंके लिए इंग्लैंडमें दिया जानेवाला धन।

६९. 'इंडियन डेली टेलिग्राफ' के सम्पादकके प्रश्नोंके उत्तर

[२१ सितम्बर, १९२१][1]

"इंडियन डेली टेलिग्राफ" के सम्पादक श्री जे० एम० मैकेंजी द्वारा पूछे गये कुछ और प्रश्नोंके उत्तर श्री गांधीने दिये हैं।

[प्रश्न :] **१ : भारत अपनी एक ही माँग स्वीकार करानेके खयालसे साम्राज्यीय सम्मेलनमें शामिल हुआ था, लेकिन दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यने उसे भी अस्वीकार कर दिया। क्या आप इसके लिए गणराज्यको प्रतारणाका पात्र समझते हैं? क्या यह नहीं हो सकता कि जिस देशमें आपने अपने प्रारम्भिक दिनोंमें सफलता पाई थी, उस देशमें एक बार फिर जायें ताकि सारा भारत आश्वस्त होकर बैठ सके?**

[उत्तर :] भारतमें आज जो सवाल मौजूद है, वह दक्षिण आफ्रिकी सवालका ही वृहत्तर रूप है। अगर मैं यहाँ सफल हो जाता हूँ तो वहाँका सवाल तो अपने-आप हल हो जायेगा।

२ : स्वयं आप भी अबतक आत्म-शासनकी अवस्था प्राप्त नहीं कर पाये हैं, इसलिए ऐसे घोर पतनकारी वातावरणमें इधरसे उधर ठोकरें खानेवाले हम शेष लोगोंकी दयनीय स्थितिका तो आप सहज ही अनुमान लगा सकते हैं?

स्वयं मुझमें भी बहुत-सी कमियाँ हैं, इसलिए मैं आदमीकी कमियोंको बेशक महसूस करता हूँ, और अहिंसामें मेरे विश्वासका कारण भी यही है।

३ : यदि आप अपने प्यारे देशके लोगोंको गरीबी और फकीरीकी तकलीफदेह जिन्दगीके अलावा और सब-कुछ छोड़ देनेको मजबूर कर दें तो क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि उनका भी वही हाल होगा जो रूसकी जनताका हुआ?

रूसकी जनताका हाल क्या हुआ, मैं नहीं जानता। लेकिन भारतको मैं अच्छी तरह जानता हूँ। आजतक हम लोग मजबूरन गरीबीमें जीते रहे, लेकिन अब गरीबी और फकीरीकी जिन्दगीको हम धीरे-धीरे अपनी खुशीसे अपनाते जा रहे हैं।. . . अपने सिद्धान्तपर मैं स्वयं आचरण कर रहा हूँ, इसलिए मेरा अनुमान गलत नहीं हो सकता।

४ : निराशाके गर्तमें तो वह भी गिरा जो 'दुराग्रही' था और वह भी जो समझाने-बुझानेसे बात मान लेनेवाला था। इसलिए क्या आप सोचते हैं कि "रुकनेको तैयार रहनेवाले" के तरीकोंके समर्थनमें अथवा "दोनों ओर रुख किये रहनेवाले" के भी तरीकोंके पक्षमें कुछ कहा जा सकता है? या कि आप सारा बोझ लेकर ही "दिव्य नगरके द्वार" तक पहुँचनेको कृतसंकल्प हैं?

१. यह प्रश्नोत्तर एसोसिएटेड प्रेस द्वारा इसी दिन लखनऊसे जारी किया गया था।

आपने मुझे दो बुराइयोंके ही बीच चुनाव करनेको कहा है। मैं दुराग्रही और समझाने-बुझानेसे मान जानेवालेको, रुकनेको तैयार रहनेवाले और दोनों ओर रुख किये रहनेवालेकी अपेक्षा अधिक पसन्द करता हूँ, लेकिन मैं समझता हूँ, स्वयं मैं इनमें से किसी वर्गका नहीं हूँ। हाँ, मैं यह स्वीकार करता हूँ कि आपने जिन एकाकी चरित्रोंका उल्लेख किया है, वैसे बहुत-से लोग मेरे साथ हैं। आप अन्तमें देखेंगे कि मैं "लाइट वेट चैम्पियन" हूँ। अपना सारा बोझ मैंने यात्राके प्रारम्भमें ही उतारकर रख दिया था।

५: अब तो आपने चन्देसे काफी पैसा इकट्ठा कर लिया है। इसलिए जिस सम्राज्ञीके भारत-प्रेमने आपके जीवनके उषःकालमें निश्चय ही आपको बहुत ही रुचिर भावनाओंसे अनुप्राणित किया होगा, उसके प्रति सम्मान प्रकट करनेके खयालसे अगर आप रानी विक्टोरियाके स्मारकके लिए कुछ पैसा दे दें तो क्या आपको नहीं लगता कि आपके देशवासी यह बात बहुत पसन्द करेंगे?

मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपके मनमें जिस स्मारककी बात है, स्वर्गीया महारानीके लिए मैं उससे कहीं अच्छा स्मारक तैयार करनेमें लगा हुआ हूँ।

६: वर्तमान परिस्थितियोंको देखते हुए, आप दक्षिण आफ्रिकी समस्याका क्या समाधान सोचते हैं?

मेरा समाधान तो यह है कि भारत जो चाहता है, वह उसे दे दिया जाये। बुनियादी दोषको दूर कीजिए, छोटे-छोटे दोष तो अपने-आप दूर हो जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २२–९–१९२१

७०. भाषण : मानपत्रके उत्तरमें[1]

२१ सितम्बर, १९२१

डिंडीगल नगरपालिकाके अध्यक्ष महोदय तथा सदस्यगण,

आपने जो मानपत्र भेंट किया है और उसमें जो उद्‌गार व्यक्त किये गये हैं, उनके लिए मैं आपको हृदयसे धन्यवाद देता हूँ। मैं तो सिर्फ यही आशा कर सकता हूँ कि यह मानपत्र आपकी इस इच्छाकी अभिव्यक्ति है कि आज समस्त भारतमें त्याग-बलिदानकी जो भावना फैलती जा रही है, उसमें आप पूरा योग देना चाहते हैं। जैसा कि मैंने अन्य स्थानोंमें कहा है, आपसे भी तीन बातोंकी ओर ध्यान देनेको कहूँगा। इन्हें आप बहुत लाभदायक ढंगसे, भारतके राजनीतिक दर्जेको कोई नुकसान पहुँचाये बिना, कर सकते हैं। ये तीन बातें हैं — मद्यनिषेध, स्वदेशी और अस्पृश्यता-निवारण। डिंडीगलके नागरिकोंके और पंचम भाइयोंके प्रतिनिधि होनेके नाते आप उनके भी . . . स्वास्थ्य और हितोंके संरक्षक हैं। . . . इसलिए आपको अस्पृश्यताके अभिशापसे छुटकारा

१. यह मानपत्र डिंडीगलकी नगरपालिकाने दिया था।

पाना चाहिए। यह स्वराज्य पानेके उपायोंमें से एक है। इसी तरह आप विदेशी कपड़ेके बहिष्कार और स्वदेशी कपड़ेके उत्पादनके लिए भी ऐसे ढंगसे संगठित प्रयास कर सकते हैं, जैसे सन्तोषजनक ढंगसे कोई सत्ता यह काम कर सकती है, क्योंकि डिंडीगलके नागरिक आपके नियन्त्रणमें हैं। यही बात मद्यनिषेध अभियानपर भी लागू होती है। मैं आशा तो यही करता हूँ कि लोगोंके सामने अपने आचरणका उदाहरण रखकर, अपनी परिषद्में प्रस्ताव पास करके तथा पूरे यन्त्रको नये सिरेसे क्रियाशील बनाकर आप. . .ये तीनों लक्ष्य प्राप्त कर लेंगे। मानपत्रके लिए एक बार फिर मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २६–९–१९२१

७१. भाषण : डिंडीगलकी सार्वजनिक सभामें[1]

२१ सितम्बर, १९२१

डिंडीगलके नागरिकोंने स्वर्ना तथा तिलक स्वराज्य-कोषके लिए महात्माजीको एक थैली भेंट की। उसके बाद गांधीजीने निम्नलिखित भाषण दिया। डा० टी० एस० एस० राजन्ने उसका तमिल अनुवाद सुनाया :

जब त्रिचनापल्लीमें आपके प्रतिनिधियोंको मौलाना साहब और मुझसे इस नगरमें आनेका आग्रह करते देखा तो सोचा कि यहाँ अवश्य ही असहयोगके कुछ असाधारण परिणाम देखनेको मिलेंगे। मैंने आशा की थी कि आप सब हाथका कता-बुना खद्दर पहने होंगे। मुझे उम्मीद थी कि डिंडीगलके प्रत्येक घरमें एक चरखा जरूर होगा। परन्तु यहाँ तो मैं केवल शोर-शराबा और कोरा उत्साह ही देख रहा हूँ। . . . यदि हम स्वराज्य या अलीभाइयों और उनके साथियोंकी रिहाई चाहते हैं, तो हमें अपने उत्साहको सही अभिव्यक्ति देनी चाहिए। डिंडीगलमें केवल तीन सौ चरखे हैं। आपके नगरकी जन-संख्या तीस हजार है, जिनमें से दस हजार मुसलमान और बीस हजार हिन्दू हैं। एक परिवारमें औसतन पाँच व्यक्ति गिनें तो यहाँ ६,००० परिवार होने चाहिए और उनमें कमसे-कम छः हजार चरखे रोजाना चलने चाहिए। स्वदेशीके बिना स्वराज्य सम्भव नहीं। स्वदेशीका अर्थ केवल अपने देशकी जरूरतका सामान तैयार कर लेना नहीं, बल्कि खिलाफत और पंजाबके प्रति किये गये अन्यायोंका अहिंसात्मक ढंगसे निराकरण कराना भी है। मुझे मालूम हुआ है कि आप लोग छोटे-छोटे गुटोंमें बँटे हुए हैं। यदि हर व्यक्ति अपने-अपने कामसे ही सरोकार रखेगा तो निश्चय ही स्वराज्य नहीं मिल सकता। इसी तरह यदि हिन्दू अपनी उच्चताकी झूठी धारणापर आग्रह करते रहेंगे या पंचम लोगोंको अपनेसे पृथक समझते रहेंगे तो स्वराज्य मिलना असम्भव है।

१. सभा चट्टानके निकटवाले मैदानमें हुई थी।

इस अहातेमें अपनी यात्राके दौरान जो चीज देखकर मेरा मन सबसे अधिक व्यथित हुआ वह है अस्पृश्यता। मैं अपने धर्मके प्रति अपने दायित्वको समझनेवाला एक सनातनी हिन्दू होनेका दावा करता हूँ। और उसी नाते मैं यह कहनेकी हिम्मत करता हूँ कि हिन्दू शास्त्रोंमें कहीं भी ऐसी कोई बात नहीं है जिससे अस्पृश्यताको उचित माना जा सके। इसलिए जबतक हम (हिन्दू) लोग मनुष्यके साथ कुत्तोंसे भी बुरा व्यवहार करनेसे बाज नहीं आते तबतक हमें स्वराज्य पानेका कोई हक नहीं है। मैंने आपको स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए तथा पंजाब और खिलाफत-सम्बन्धी अन्यायोंको दूर करानेके लिए सभी जरूरी शर्तें बता दी हैं। यदि मुसलमानोंको खिलाफत प्राणोंकी भाँति प्यारा है, यदि मुसलमान और उनके हिन्दू भाई अलीबन्धुओंके प्रति प्रेम रखते हैं और यदि हिन्दू और मुसलमान स्वराज्य चाहते हैं तो सबको नियमित रूपसे सूत कातना और कपड़ा बुनना शुरू करना चाहिए। हिन्दुओं और मुसलमानोंको एक-दूसरेके साथ सगे भाइयों-जैसा व्यवहार करना चाहिए। दोनों अपने-अपने धर्मपर दृढ़तासे डटे रहें, किन्तु साथ ही एक-दूसरेके लिए त्याग-बलिदान करनेको भी तैयार रहें। हम सबको उत्तेजनाके गम्भीरसे-गम्भीर कारणोंके बावजूद अहिंसा धर्मपर दृढ़ रहना चाहिए। हिन्दुओंको अस्पृश्यता समाप्त करके अपने पंचम भाइयोंको गले लगा लेना चाहिए। मैं यह नहीं चाहता कि आप उनके साथ रोटी-बेटीका सम्बन्ध करें। परन्तु आपके हिन्दू-धर्मका तकाजा है कि आप मानव-मात्रको समान अधिकार प्रदान करें। मैं चाहता हूँ कि आप पंचमोंको भी वही अधिकार दें जिसे कोई अन्य मनुष्य आपसे माँगनेका हक रखता है और जो आप शेष समाजसे खुद अपने लिए माँगते हैं। इस बातमें मुझे रंचमात्र भी सन्देह नहीं है कि यदि ये शर्तें पूरी कर दी जायें तो हमें इसी साल स्वराज्य मिल जायेगा। ईश्वर हमारे प्रयासोंके फलीभूत होनेमें हमारी सहायता करे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २६–९–१९२१

७२. भाषण : मदुरामें[1]

२१ सितम्बर, १९२१

मित्रो,

आपने इस समय जो अभिनन्दन-पत्र भेंट किये हैं, उनके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। लेकिन दस हजार अभिनन्दन-पत्र भेंट करके भी हम स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकते। इतना शोरगुल सुनकर मुझे बहुत कष्ट होता है। मैं आपके समक्ष ऐसा व्याख्यान नहीं देना चाहता, जिसे सुनते-सुनते आप लोग ऊब जायें। अपने अभिनन्दन-पत्रोंमें आपने कहा है कि यह एक धर्म-युद्ध है। इस प्रकारके प्रदर्शन और इस तरहका शोर-गुल स्वराज्यके मार्गमें बाधक है। मदुरामें यह सब गड़बड़ देखकर मैं बहुत दुःखी हूँ।

१. अब इसे मदुरई कहा जाता है।

क्या मैं यही सब देखने यहाँ आया था? मुझे आशा है कि आपके नेता आपको बतायेंगे कि स्वराज्य हासिल करनेके लिए आपका कर्त्तव्य क्या है। यदि आप भारतमें धर्म-राज्य चाहते हैं तो आपको चरखा जरूर चलाना चाहिए, क्योंकि यह शान्ति और हिन्दू-मुस्लिम एकताका प्रतीक है। आपको अस्पृश्यता समाप्त कर देनी चाहिए, क्योंकि धर्म उसकी अनुमति नहीं देता। आपको कोशिश करनी चाहिए कि नशाखोरी बिलकुल बन्द हो जाये। मुझे आशा है कि आपके नेता लोग आपको इन सब बातोंके बारेमें आपके कर्त्तव्यका भान करायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २६–९–१९२१

७३. टिप्पणियाँ

बंगाल

बंगाल एक बड़ा प्रान्त है, इसलिए पाठकोंको यह देखकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि इन टिप्पणियोंमें मुख्य रूपसे बंगालके ही कार्योंपर विचार किया गया है। व्यक्तिगत बातचीतमें तो मैंने बेहिचक ऐसा कहा है कि स्वदेशीकी दृष्टिसे बंगाल सभी प्रान्तोंसे पिछड़ा हुआ है। वहाँके गाँवों या नगरोंके जन-साधारणपर तो स्वदेशीकी छाप-का कोई आभास नहीं मिलेगा। खादी बंगालमें सबसे कम देखनेको मिलती है। लेकिन वहाँ स्वदेशीके पुनरुज्जीवनके लक्षण अवश्य दिखाई दे रहे हैं। अन्य स्थानोंकी तरह यहाँके जीवनमें चरखेकी जड़ गहरी नहीं जम पाई है। लेकिन सर्वत्र इसका एक आम चलन तो होता ही जा रहा है। मैंने सिलचर और सिलहटमें इसे छोटे रूपमें देखा, लगभग खिलौने-जैसा ही था। सूत कताईके लिए वैसे यह ठीक है, लेकिन इससे सूत बहुत कम तैयार होता है। चटगाँवमें अधिक चरखे देखनेको मिले और जरा बेहतर किस्मके भी। वहाँ वालोंने एक हल्का-सा सफरी चरखा भी तैयार कर लिया है, जिसे लड़के-लड़कियाँ ज्यादा पसन्द करते हैं। यह बहुत साफ-सीधा, सुन्दर और सस्ता है। लेकिन सिलचर-किस्मके चरखोंकी तरह ही इसपर भी उतना सूत नहीं कत पाता जितना कि पुराने किस्मके चरखोंपर कतता है। दूसरी ओर बारीसालमें हमने देखा कि वहाँ एक बहुत कौशलपूर्ण ढंगका चरखा ईजाद किया गया है, जिसके चक्केको पैडलसे चलाया जाता है। वे हमें यह नहीं बता सके कि इसपर एक खास समयमें कितनी कताई हो सकती है; लेकिन अगर पुराने किस्मके चरखे जितनी ही होती हो, तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। इन आविष्कारोंसे पता चलता है कि चरखेकी लोकप्रियता बढ़ रही है और अब चरखा चलाना लोग जारी रखेंगे। इसके अतिरिक्त, बारीसालमें बहुत ही बारीक और एक-सा सूत देखकर बड़ी खुशी हुई। यह सूत वहाँके राष्ट्रीय स्कूलके लड़कोंने काता था। जितनी मात्रामें सूत दिखाया गया, वह भी बुरा नहीं था। बारी-सालकी कताईशाला सुन्दर और साफ थी और उसमें जगह भी काफी थी। करघे

श्रीरामपुर किस्मके उड़न-फिरकीवाले थे। संगठनकर्त्ताओंके अधीन कोई ८० करघे हैं। बगलके कमरेमें करीब १५,००० रुपयेके मालका स्टॉक था। वे अभीतक यह नहीं समझ पाये हैं कि ताना-बाना दोनोंमें हाथसे कते सूतका ही प्रयोग करना नितान्त आवश्यक है। मैं सभी कांग्रेस संगठनोंसे यह समझ लेनेका अनुरोध करता हूँ कि ताना-बाना दोनोंके लिए हाथ-कते सूतका ही प्रयोग करना सबसे जरूरी बात है। मिलमें तैयार सूत और हाथकते सूत, दोनोंकी मिलावटसे बना कपड़ा तो बाजारोंमें पहलेसे ही मिलने लगा है। और कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओंको ऐसी चीजोंपर अपना समय बरबाद करनेकी न जरूरत है और न उन्हें ऐसी चीजोंपर समय बरबाद ही करना चाहिए, जिनकी व्यवस्था एक साधारण व्यापारी भी कर सकता है।

लेकिन कहनेकी जरूरत नहीं कि मैंने जो ये थोड़ेसे करघे और चरखे देखे, उनसे पूरे बंगालकी कपड़ेकी जरूरत पूरी नहीं हो सकती। और अगर बंगालको अपनी कपड़े-की जरूरत पूरी करनेके लिए बम्बई और अहमदाबादपर ही निर्भर रहना पड़ा तो वह स्वराज्य आन्दोलनमें मदद नहीं कर सकता। जैसे उस आदमीको, जिसे जबरदस्ती भूखा रखा जाये, ईश्वरके बारेमें सोचनेको प्रेरित नहीं किया जा सकता, वैसे ही अध-भूखे रहनेको मजबूर लाखों-करोड़ों बंगाली स्वराज्यके बारेमें सोच नहीं सकते, उसकी खूबियोंको समझ नहीं सकते। स्वराज्यकी पहली अनिवार्य शर्त यह है कि हर प्रान्त खाद्य और वस्त्रके मामलोंमें आत्म-निर्भर हो जाये।

लेकिन एक बार पूरी तरह जग जानेपर बंगाल किसीसे पीछे नहीं रहेगा। उसकी कल्पनाशक्ति बहुत अच्छी है। उसके गाँव अब भी अपनी सादगी कायम रखे हुए हैं। बंगालकी धरतीके बेटे बड़े होशियार और उद्यमी हैं, बेटियाँ बहुत शीलवती, भोली और प्यारी हैं। स्त्री-पुरुष दोनोंमें गहरी धार्मिक प्रवृत्ति है। उनकी आस्थामें मनुष्यको ऊपर उठानेका बल है। चरखेकी स्मृति उनके मनमें जीवित है। बंगालको सिर्फ इस बातको महसूस करना है कि वह न केवल अपने लिए, न केवल भारतके लिए बल्कि बाहरी दुनियाके लिए भी सुन्दर और महीनसे-महीन कपड़े तैयार करता था, और यद्यपि इस क्षेत्रमें उसने अतीतमें बड़ा शानदार काम किया है, किन्तु अब वह उससे भी अच्छा काम करके दिखायेगा। बंगाल अब यह महसूस करने लगा है कि यद्यपि वहाँकी लाखों स्त्रियोंने कताईकी कलाको भुला दिया है लेकिन दूसरा कोई धन्धा नहीं अपनाया है, और उसकी तथा सारे भारतकी गरीबीका मूल कारण किसान वर्गकी वह बेकारी है, जिसे उसे मजबूर होकर स्वीकार करना पड़ता है। मुझे पूरा विश्वास है कि बंगाल अब चरखेके सन्देशको समग्रतः हृदयंगम करनेवाला है, और फिर तो वह भारतमें धूम मचा देगा।

जैसा कि एक मित्रने कहा, बंगालको अभी बहुत-सी बातें भुलानी भी हैं। अन्य कई प्रान्तोंकी तरह बंगालके सामने भी स्थिति ऐसी नहीं है कि वह तत्काल नये सिरेसे काम करना शुरू कर दे, उसे भी बहुत-सी मौजूदा बातोंको मिटाना है। उदा-हरणके लिए, उसे यह समझना होगा कि ढाकामें विदेशी सूतसे जो कपड़ा बुना जाता है, वह स्वदेशी नहीं है।

हड़तालोंके बारेमें

असम-बंगाल रेलवे तथा जहाजोंके कर्मचारियोंकी हड़तालें सामान्य हड़तालोंसे भिन्न थीं। जैसा कि मुझे लगा है, मजदूर संघसे बाहरके लोगोंके प्रति सहानुभूतिमें हड़तालें करनेका यह पहला प्रयत्न था। इस तरह ये हड़तालें दूसरोंके प्रति सहानुभूतिसे प्रेरित होकर की गईं मानवतावादी और राजनीतिक हड़तालें थीं। मुझे पूरी रेलवे लाइनपर हड़तालियोंसे मिलनेका मौका मिला, लेकिन गौहाटी, चटगाँव और बारीसालमें खास तौरसे। उनसे मेरी खुलकर बातचीत हुई और उस बातचीतके बाद मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि उन लोगोंको, इस हड़तालकी क्या कीमत चुकानी होगी, इसका पूरा अहसास नहीं था। किसी बाहरी आदमीके लिए ऐसा कह देना कि अगर इस मामलेका संचालन मेरे हाथोंमें होता तो मैं ऐसा करता, वैसा करता, एक खतरनाक और अनुदारतापूर्ण बात है। लेकिन अगर मैं अपनी राय दूँ तो यही कहूँगा कि मेरी समझसे मजदूर परमार्थवश की जानेवाली इस हड़तालके लिए तैयार नहीं थे। मेरे विचारसे भारतके मजदूरों और शिल्पियोंमें वैसी राष्ट्रीय जागृति नहीं आई है, जो दूसरोंके प्रति सहानुभूतिमें की गई हड़तालकी सफलताके लिए जरूरी है। दोष हमारा ही है। हम राष्ट्र-सेवाके कार्यमें लगे लोगोंने अभी कुछ समय पहलेतक इन वर्गोंकी आवश्यकताओं और आकांक्षाओंका अध्ययन करनेकी चिन्ता नहीं की और न उन्हें राजनीतिक परिस्थितियोंकी सही जानकारी देनेकी ही फिक्र की। अबतक हम यही मानते रहे ह कि जो लोग हाई स्कूलों और कालेजोंकी शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं, वे ही राष्ट्रका काम करनेके लायक हैं। इसलिए यह अपेक्षा करना ठीक नहीं है कि मजदूर और शिल्पी लोग एकाएक दूसरोंके हितोंका खयाल करके उनके लिए त्याग और बलिदान करने लगें। हमें राजनीतिक अथवा अन्य उद्देश्योंके लिए उनसे नाजायज फायदा नहीं उठाना चाहिए। अभी हम उनकी जो सबसे अच्छी सेवा कर सकते हैं, उनसे जो सबसे अच्छी सेवा ले सकते हैं वह यह कि उन्हें अपनी सहायता आप करनेकी शिक्षा दें, उन्हें अपने कर्त्तव्यों और अधिकारोंका बोध करायें, और उन्हें इस लायक बनायें कि वे अपनी उचित शिकायतें स्वयं ही दूर करा सकें। राजनीतिक, राष्ट्रीय या मानवतावादी कार्यों और सेवाओंके लिए वे तभी तैयार होंगे — उससे पहले नहीं।

इसलिए अगर सही स्थिति आनेसे पूर्व सहानुभूति-प्रेरित हड़तालें कराई जाती हैं तो उनसे हमारे उद्देश्यका अहित ही होगा। अपने अहिंसात्मक कार्यक्रममें इस विचारको हमें कोई स्थान नहीं देना है कि हम सरकारको परेशानीमें डालकर कुछ लाभ उठायें। अगर हमारा व्यवहार शुद्ध है और सरकारका अशुद्ध तो सरकार यदि स्वयं शुद्ध नहीं बनती तो हमारी शुद्धता ही उसकी परेशानीका कारण होगी। इस तरह शुद्धीकरणके आन्दोलनसे दोनों पक्षोंको लाभ है। लेकिन जो आन्दोलन सिर्फ ध्वंसात्मक है, उसमें ध्वंसकारीका शुद्धीकरण नहीं हो पाता और वह गिरकर उन्हीं लोगोंके धरातलपर आ जाता है जिन्हें वह ध्वंस करनेका प्रयत्न करता है।

इसलिए हमारी सहानुभूति-प्रेरित हड़तालोंको भी आत्मशुद्धिकी हड़तालें होना चाहिए, अर्थात् उन्हें भी असहयोगके ढंगका होना चाहिए। और इसलिए जब हम

किसी अन्यायके निराकरणके लिए हड़तालकी घोषणा करते हैं तो दरअसल हम उस अन्यायमें हिस्सा लेना बन्द कर देते हैं, और इस प्रकार अन्यायीको अपने ही बल-बूतेके भरोसे छोड़ देते हैं। दूसरे शब्दोंमें हम उसे ऐसी स्थितिमें डाल देते हैं जिससे वह अन्याय जारी रखनेकी गलती देख सके। ऐसी हड़ताल तभी सफल हो सकती है जब इसके पीछे दुबारा उस कामपर न जानेका संकल्प हो।

इसलिए बहुत बड़ी-बड़ी सफल हड़तालोंके संचालककी हैसियतसे, मैं हड़तालके नेताओंके मार्गदर्शनके लिए उन सिद्धान्तोंको एक बार फिर नीचे दे रहा हूँ, जो इस पत्रके पृष्ठोंमें पहले भी छप चुके हैं।

१. सच्ची शिकायतके बिना कोई हड़ताल नहीं होनी चाहिए।

२. अगर हड़ताल करनेवाले लोग अपनी बचतके पैसेसे या धुनाई, कताई तथा बुनाई-जैसा कोई और काम करके कुछ कालके लिए अपनी जीविकाकी व्यवस्था स्वयं करनेमें समर्थ न हों तो हड़ताल नहीं होनी चाहिए। सार्वजनिक चन्दे या अन्य प्रकारके दानके भरोसे हड़ताल कभी नहीं करनी चाहिए।

३. हड़तालियोंको अपनी न्यूनतम माँगें निश्चित कर लेनी चाहिए जिनमें किसी परिवर्तनकी गुंजाइश न हो, और हड़ताल प्रारम्भ करनेसे पूर्व उसकी घोषणा कर देनी चाहिए।

अगर शिकायत सच्ची हो और हड़तालियोंमें अनिश्चित कालतक कामसे अलग रहनेकी सामर्थ्य हो तब भी, अगर उनके बदले काम करनेको दूसरे मजदूर कर्मचारी मिल जायें तो हड़ताल विफल हो सकती है। इसलिए कोई भी समझदार आदमी उस हालतमें हड़ताल नहीं करेगा जब उसे लगता हो कि उसकी जगह काम करनेवाला आदमी आसानीसे मिल जायेगा। लेकिन कोई परोपकारी और देशभक्त व्यक्ति अगर अपने पड़ोसीके दुःखसे दुःखी होगा और उसमें उसका हमदर्द बनना चाहेगा तो वह उस हालतमें भी हड़ताल करेगा जब वह देख रहा हो कि जितने मजदूरोंकी माँग है उससे ज्यादा मजदूर उपलब्ध हैं। कहनेकी जरूरत नहीं कि मैंने जैसी विनयपूर्ण हड़तालका वर्णन किया है, वैसी हड़तालमें धौंस-धमकी, आगजनी या अन्य प्रकारकी हिंसात्मक कार्रवाइयोंके लिए कोई स्थान नहीं है। इसलिए अगर यह सच हो कि अभी हालमें चटगाँवमें रेलगाड़ीको पटरीसे उतारनेका जो वाकया हुआ है वह किसी हड़तालीकी शरारत थी तो मुझे बहुत दुःख होगा। इस मामलेको, जो कसौटी मैंने सुझाई है, उस कसौटीपर परखनेपर स्पष्ट हो जाता है कि जो लोग हड़तालियोंके मित्र हैं उन्हें हड़तालियोंको कभी भी यह सलाह नहीं देनी चाहिए थी कि वे अपनी जीविका चलानेके लिए कांग्रेस-कोषसे या अन्य सार्वजनिक कोषोंसे पैसा लेनेके लिए अर्जी दें या उनसे पैसे लें। हड़तालियोंने जिस हदतक बाहरसे पैसेकी सहायता पाई या स्वीकार की, उसी हदतक उनकी सहानुभूतिका मूल्य कम हो गया। सहानुभूति-प्रेरित हड़तालकी खूबी इस बातमें समाई हुई है कि सहानुभूति प्रदर्शित करनेवाला व्यक्ति कितनी असुविधा झेलता है, कितनी क्षति उठाता है।

जहाँतक यह सवाल है कि जो हड़ताली धमकियों और प्रलोभनोंके बावजूद मर्दानगीसे अपनी टेकपर डटे रहे हैं — और ऐसे हड़ताली ५० प्रतिशतसे अधिक हैं —

उनके लिए क्या किया जाये, या वे स्वयं क्या करें, तो इस सवालपर बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीको अपने विचार मैं पहले ही बता चुका हूँ। अपनी उसी रायपर मैं अब भी कायम रहना चाहूँगा। अगर इन हड़तालियोंने चाँदपुरके अन्याय-पीड़ित कुलियोंके प्रति सहानुभूतिसे ही प्रेरित होकर हड़ताल की और अपने भाइयोंको डराया-धमकाया नहीं, तो उन्हें ऐसा करनेका पूरा नैतिक अधिकार था, और उन्होंने ऐसी देशभक्ति और साथियोंके प्रति ऐसी हमदर्दीका परिचय दिया जिसकी उनसे आशा भी नहीं की जाती थी। मैं आशा करता हूँ कि वे अब तबतक फिर कामपर नहीं जायेंगे जबतक कि सरकार पूरी तरहसे और साफ तौरपर क्षमा-याचना नहीं करती, और सम्बन्धित पक्षोंको अपने-अपने घर वापस जानेके लिए कुलियोंको जो पैसा देना पड़ा है, वह पैसा उन्हें नहीं दे देती।

शरारत-भरी तवज्जह

बारीसालमें एक जिला प्रचार समिति है। अगर सिर्फ तवज्जह देनके लिए ही किसीकी बड़ाई की जा सकती हो तो यह संस्था बड़ाई करने लायक है। लेकिन अनुभवसे तो यह सिद्ध होता है कि तवज्जहके पीछे जब शरारत हो तो वह बड़ाई नहीं, हिकारतके लायक बन जाती है। मुझे लगता है कि बारीसालकी जिला प्रचार समितिका काम इसी दर्जेका है। यह समिति असहयोगकी कट्टर विरोधी है। जब हम लोग बारीसाल पहुँचे, मुझे एक रजिस्टर्ड पत्र दिया गया। उसमें कुछ सवाल पूछे गये थे जिनका जवाब मुझे सार्वजनिक सभामें देनेको कहा गया था। उसमें मैं और मौलाना मुहम्मद अली बोलनेवाले थे। सवाल छपे हुए थे। मुझे व्यक्तिगत रूपसे हाथों-हाथ भी वे सवाल दिये गये। मैंने उनमें से एक-एकका पूरा जवाब दिया। लेकिन दूसरे दिन आश्चर्य हुआ जब मुझे उन प्रश्नोंके अपने उत्तरोंकी एक रिपोर्ट ठीक करनेके लिए दी गई। यह रिपोर्ट क्या थी, मेरे उत्तरोंका उपहास-मात्र थी। उसके बाद एक सन्देशवाहक आया। उसने मुझे कुछ और कागज-पत्र दिये जिन्हें पढ़कर मुझे उनमें लिखी बातोंका स्पष्टीकरण करना था। लेकिन आजतक मैं यह नहीं जानता कि वे पत्र किसने लिखे थे। सभी बिना हस्ताक्षरके थे। मैंने तो कभी किसी भी सार्वजनिक संस्थाको ऐसी गैर-जिम्मेदाराना हरकत करते नहीं देखा है। मुझे बताया गया कि यह सब काम सरकारी अधिकारियों द्वारा किया गया। इस तरह इसपर जनताका पैसा बरबाद किया गया। मेरी तरफ जो इतनी ज्यादा तवज्जह दी गई, उसमें मुझे न कहीं ऐसा लगा कि लोग अपना ज्ञान बढ़ानेको उत्सुक हैं और न यही दिखाई दिया कि वे मुझे अपनी भूलकी प्रतीति कराना चाहते हैं। अगर समितिने मुझे और मेरे साथियोंको बहस-मुबाहसेके लिए बुलाया होता तो एक बात होती। उससे भी अच्छा यह होता कि एक सार्वजनिक संस्थाके नाते वह हमारी उपस्थितिका उपयोग सम्बन्धित पक्षोंको एक जगह मिलानेके लिए करती। इस सारी तवज्जहमें मुझे एक ही चीज दिखाई दी: स्थानीय असहयोगियोंके कामको लोगोंकी नजरमें नीचा दिखानेकी एक नापाक ख्वाहिश। उनकी इन हरकतोंको, मैंने अपने बंगालके दौरेमें जो-कुछ देखा, उसीको ध्यानमें रखकर परखा है। मुझे तो लगता है कि जानबूझकर और द्वेष-भावसे प्रेरित होकर असहयोग

और असहयोगियोंको गलत रूपमें पेश किया गया है। देखता हूँ, मेरे विचारोंको भी गलत रूपमें पेश किया गया है। मेरे भाषणोंसे वाक्योंको उनके सन्दर्भसे अलग करके ले लिया जाता है और तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया जाता है। इसका सबसे ताजा उदाहरण कवि-गुरुके साथ मेरी बातचीत है। अखबारोंमें उस बातचीतकी सर्वथा काल्पनिक और अनधिकृत रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। बातचीतमें कुछ भी गोपनीय नहीं था, लेकिन उसे गोपनीय मान लिया गया है। यह हमें एक-दूसरेसे अलग कर देनेके प्रयत्न-जैसा लगता है। लेकिन कवि-गुरु इतने महान् हैं कि इन बातोंका उनपर कोई असर नहीं हो सकता। असहयोगियोंको उन बातोंका विश्वास कदापि नहीं करना चाहिए, जो कवि-गुरुपर झूठ-मूठ आरोपित की गई हैं। हमारे बीच मतभेद हैं। लेकिन उनके कारण कवि-गुरुके प्रति मेरे सम्मान-भावमें कोई फर्क नहीं पड़ता। कवि-गुरुको भी भारतसे उतना ही प्रेम है जितने प्रेमका दावा मैं करता हूँ, और वह प्रेम ही हमारे पारस्परिक सम्बन्धके लिए हर दृष्टिसे पर्याप्त है। इसलिए उस बातचीतको लेकर जो बवाल मचाया जा रहा है, उससे मैं संकल्पपूर्वक अलग रहूँगा।

लेकिन अब फिर उन सवालोंकी बात लें। मुझे लग रहा था कि ये सवाल शरारतसे पूछे गये हैं, फिर भी जैसा कि मैं बता चुका हूँ, सार्वजनिक सभामें मैंने उनके जवाब दिये। यहाँ मैं अपन जवाब विस्तारपूर्वक नहीं देना चाहता। लेकिन पाठक इन सवालोंको देखकर खुद ही इस बेशकीमती प्रचारका रंग-ढंग समझ जायेंगे।

[प्रश्न:] **१. आपने राजनीतिक हड़तालोंकी निन्दा की है। यहाँ आपके अनुगामियोंने जहाजी मजदूरोंकी हड़तालका समर्थन किया है और हड़तालियोंको खिलाने-पिलानेपर कांग्रेस कोषके हजारों रुपये खर्च किये हैं। क्या यह ठीक किया है?**

[उत्तर:] हड़तालोंके सम्बन्धमें मेरे विचार देखिए।

२. आपके आदेशसे सैकड़ों लड़कोंने स्कूल-कालेज छोड़ दिये हैं, और अब वे शान्तिप्रिय और विधि-पालक जनताका अपमान करने, उसे डराने-धमकानेमें अपना समय बिताते हैं। इन लड़कोंका भविष्य क्या होगा? वे अपनी जीविका कैसे कमायेंगे?

अगर लड़के वैसे लोगोंको अपमानित करते फिरते हैं, डराते-धमकाते रहते हैं तो यह गलत है। लेकिन मैं नहीं मानता कि उनमें से ज्यादा लोग ऐसा कह रहे हैं। लड़कोंका भविष्य उज्ज्वल है, क्योंकि अब वे स्वतन्त्र हैं। वे अपनी जीविका अपना पसीना बहाकर कमायेंगे। वे अब भी किताबी शिक्षा पा सकते हैं और पा रहे हैं।

३. आपने हड़तालोंकी भर्त्सना की है। यहाँ आपके अनुगामियोंने कई हड़तालें की हैं और वे दुकानदारोंको भड़का रहे हैं कि सरकारी अधिकारियों तथा सरकारके प्रति वफादार लोगोंके हाथ वे कोई सौदा न बेचें। क्या आप इसे बुरा मानते हैं?

मैंने हर तरहकी हड़तालको कभी भी बुरा करार नहीं दिया है। जब हड़ताल हो, तो हड़तालियोंकी सेवाका लाभ किसीको नहीं मिलना चाहिए। लेकिन कुछ खास वर्गों या लोगोंको ही इस सेवाका लाभ न देना गलत होगा। यह सही है कि हड़ताल बहुत कम और खास मौकोंपर ही करनी चाहिए।

४. हालकी हड़तालके दौरान असहयोगियोंने नगरपालिकाके मेहतरोंको दो दिनों तक काम नहीं करने दिया, जलकी आपूर्ति बन्द करवा दी और लोगोंके स्वास्थ्यके लिए बहुत खतरा पैदा कर दिया। क्या यह ठीक काम था?

मुझे लगता है कि इस सवालमें जो जानकारी दी गई है, वह कमसे कम अंशतः सच है। हम अपने विरोधियोंको जीवनके लिए आवश्यक सामाजिक सेवाओंके लाभसे वंचित करना नहीं चाहते। जैसे सूरज बिना कोई भेद-भाव किये सबको प्रकाश बाँटता है, वैसे ही ऐसी सेवाओंका लाभ सबको मिलना चाहिए।

५. बाबू शरत्‌कुमार घोषको जब इस कारण गिरफ्तार किया गया कि वे सरकारके प्रति वफादार लोगोंका अपमान करनेके लिए भीड़को उकसा रहे थे तो उन्होंने कहा कि शहरको पानी मत पहुँचाओ, उसके लिए रोशनीका इन्तजाम मत करो और उसे मेहतरोंकी सेवाका लाभ भी मत दो, उसे श्मशान बनाकर रख दो। उनका ऐसा कहना ठीक था या गलत?

समितिके सौजन्यसे मैंने बाबू शरत्‌कुमार घोषका वह भाषण अब पढ़ लिया है। उसमें ऐसे अंश भी हैं, जिनका वह अर्थ लगाया जा सकता है जो इस सवालमें लगानेकी कोशिश की गई है। लेकिन मुझे शरत् बाबूके उच्च चरित्र और आध्यात्मिक प्रवृत्तिका जो सुन्दर और शानदार विवरण मिला है, उसको देखते हुए मैं यह माननेको तैयार नहीं हूँ कि शरत् बाबूमें हिंसाका भाव है। मुझे पूरा विश्वास है कि अगर उनसे कोई चूक हुई है तो वे सबसे आगे बढ़कर अपनी गलती स्वीकार करेंगे।

६. यह सब आपके नामपर किया गया और उन लोगोंके द्वारा किया गया जो "गांधी महाराजकी जय" का नारा लगाते थे। क्या आप यह सब पसन्द करते हैं? अगर नहीं, तो आप अपने अनुगामियोंको भविष्यमें ऐसा करनेसे किस तरह रोकनेकी सोचते हैं?

मुझे आशा है कि "मेरे अनुगामी" अहिंसाकी भावनाको हृदयंगम कर रहे हैं। लेकिन अगर कभी ऐसा हो कि वे अहिंसाकी आड़में हिंसापर उतर आयें तो मैं आशा करता हूँ कि उनकी हिंसाका पहला शिकार मैं ही होऊँगा। लेकिन अगर दैव-दुर्योगसे या अपनी ही कायरताके कारण मैं जीवित रह जाऊँ तो मेरे लिए सिर्फ हिमालयके हिमाच्छादित प्रान्तरोंमें ही स्थान होगा।

७, ८ व ९. क्या देशमें इतना स्वदेशी कपड़ा है जिससे सारे देशवासियोंका तन ढका जा सके? क्या विदेशी कपड़ेके बहिष्कारसे कीमत नहीं बढ़ेगी? क्या कीमत पहलेसे ही बहुत ऊँची नहीं है? क्या बहिष्कारके कारण गरीब लोग बहुत मुसीबतमें नहीं पड़ जायेंगे, और फिर क्या वे, जैसा कि पहले हुआ है, लूटपाटपर नहीं उतर आयेंगे? क्या खुलनाके बाशिन्दोंको पहलेसे ही कपड़ेकी कमी नहीं है? क्या इस बहिष्कारसे उन्हें कोई मदद मिलेगी? जो कपड़ा उन गरीबोंको अपना दुःख दूर करनेके लिए दिया जा सकता था, उस कपड़ेकी होली जलाना क्या ठीक है?

क्या युद्ध-कालमें विदेशी कपड़ेकी कमी हो जानेके कारण कपड़ेकी कीमत चढ़ जानेसे बम्बईके मिल-मालिकोंने भारी मुनाफा नहीं कमाया? अब अगर विदेशी कपड़ेका

बहिष्कार किया जाता है तो क्या वे और ज्यादा मुनाफाखोरी नहीं करेंगे? क्या गरीबोंसे पैसा लेकर अमीरोंकी थैलीमें डालना कोई ठीक काम है?

सभी बड़े राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारपर निर्भर करते हैं। अगर आयात बन्द कर दिये जाते हैं तो निर्यात भी बन्द हो जायेंगे और भारतीय व्यापारी बरबाद हो जायेंगे। क्या आप ऐसा चाहेंगे? आप भारतको मजबूत राष्ट्र बनाना चाहते हैं या कमजोर?

ये सवाल या तो सर्वथा अज्ञानवश पूछे गये हैं या विद्वेषसे प्रेरित होकर। स्वदेशी-पर पूछे गये इन सभी सवालोंके जवाब इस अखबारमें विस्तारसे दिये जा चुके हैं। अगर जिला प्रचार समिति ऐसे सवाल उठानेके बदले सिर्फ चरखों और करघोंकी संख्या बढ़ानेमें ध्यान लगाये तो जरूरतके लायक काफी कपड़ा, बल्कि जरूरतसे ज्यादा भी तैयार होने लगेगा, क्योंकि तब अकाल अतीतकी एक चीज बनकर रह जायेगा। क्या खुलनामें पैसेका अकाल नहीं है? अगर लोगोंके पास पैसे होते तो उन्हें चावल मिल सकता था। वे चरखा और करघा चलानेकी दृष्टिसे शरीरसे काफी सक्षम हैं। उनमें से हर एक चरखा चलाकर अपने भोजनके लिए पर्याप्त कमाई कर सकता है। हाँ, यह ठीक है कि बम्बईके मिल मालिकोंने पहले काफी मुनाफा कमाया। लेकिन वर्तमान स्वदेशी आन्दोलनका तो तकाजा यह है कि हर प्रान्त खुद ही अपनी जरूरतके लायक पर्याप्त कपड़ा तैयार करे, पर्याप्त सूत काते। विदेशी कपड़ेके बहिष्कारका मतलब पूरे विदेशी व्यापारका ही बहिष्कार नहीं है। भारतको अपने विकासके लिए जिन चीजोंकी जरूरत है, उनका आयात वह अवश्य करेगा, और जिन चीजोंकी उसे जरूरत नहीं है, उनका निर्यात भी करेगा। भारत आज जितना कमजोर और असहाय है उससे अधिककी गुंजाइश नहीं है। ईश्वरकी कृपासे स्वदेशी उस कमजोरीको अब दूर कर रही है।

१०. तिलक स्वराज्य कोषके लिए एक करोड़ रुपयेमें से कितना सचमुच जमा किया जा चुका है? कितनेके लिए सिर्फ वचन ही दिये गये हैं? स्कूलों, कालेजों, अस्पतालों, धर्मार्थ कार्यों आदि के लिए ऐसी कितनी रकम देनेका वचन दिया जा चुका है, जिसका उपयोग वास्तवमें स्वराज्य-सम्बन्धी सामान्य कार्योंके लिए उपलब्ध नहीं होगा? और बम्बईके मिल-मालिकोंने विदेशी कपड़ेके बहिष्कारसे लाभ उठानेकी आशासे कितना दिया है?

तिलक स्वराज्य कोषका हिसाब-किताब उचित समयपर प्रकाशित किया जायेगा। सवाल तैयार करनेवालोंको यह जानकर खुशी होगी कि बम्बईके मिल-मालिकोंने बहुत ज्यादा नहीं दिया है। सिर्फ मौलाना हाजी यूसुफ सोबानीने एक मोटी रकम दी है, क्योंकि वे एक पक्के असहयोगी हैं और उन्होंने अपना एक बेटा इसी कामके लिए दे दिया है। अधिकांश मिल-मालिकोंने कुछ नहीं दिया।

एक बात मैं और कहना चाहूँगा। बारीसालमें मुझे मालूम हुआ कि जब सुरेन्द्र बाबू[1] वहाँ गये तो उनके खिलाफ हल्ला-गुल्ला मचाया गया। यह सुनकर मुझे बहुत दुःख

१. १८४८–१९२५; कांग्रेसके संस्थापकोंमें से एक और १८९५ और १९०२ में उसके अध्यक्ष।

हुआ। असहयोगियोंके लिए किसीको — अपने कट्टरसे-कट्टर शत्रुको भी — दुत्कारनेकी छूट नहीं है। दुत्कारना भी आखिरकार एक प्रकारकी हिंसा ही है। लेकिन सुरेन्द्र नाथ बनर्जीको दुत्कारनेका मतलब है अपने-आपको भूल बैठना। आज उनसे हमारा मतभेद है। लेकिन हमें उनकी अतीतकी सेवाओंको नहीं भुलाना चाहिए। एक समय वे बंगालके आदर्श थे। तब उन्होंने हमारी भावनाओंको स्वर दिया था। क्या अब हमें उन्हें दुत्कारना चाहिए? यह तो मानना ही पड़ेगा कि हमसे मतभेद रखनेवाला हर नेता देशका दुश्मन नहीं है। हम चाहें तो उसकी सभाओंमें न जायें, और जायें भी तो मर्जी होनेपर हम उसका विरोध कर सकते हैं। लेकिन हमें अपना विरोध और असहमति शिष्टताके साथ, बल्कि आदरपूर्वक प्रकट करनी चाहिए — विशेषकर तब, जब कि हम जिसका विरोध कर रहे हों वह कोई जाना-माना, पुराना-प्रतिष्ठित नेता हो।

ईसाई असहयोगी

एक ईसाई विद्यार्थी लिखता है:

> **वैसे तो हम ईसाई विद्यार्थी हैं, किन्तु आप हमारे राष्ट्रीय नेता हैं और हम महसूस करते हैं कि आपसे हमें यह सीखना चाहिए कि भारतका आदर्श और सिद्धान्त क्या है और उसकी आध्यात्मिक विरासत क्या है। इसलिए क्या आप ईसाई-धर्मके संगठन, पूजा-विधि और पोप-पादरी व्यवस्थाके सम्बन्धमें रचनात्मक सुझाव देते हुए पाश्चात्य ईसाइयतकी आलोचना करनेकी कृपा करेंगे?**

इस विद्यार्थीको यह नहीं मालूम था कि वह मुझसे जिस विषयपर जिज्ञासा कर रहा है, वह विषय मेरे क्षेत्रसे बाहर पड़ता है। फिर भी यह मेरे लिए बहुत खुशीकी बात है कि भारतीय-ईसाई राष्ट्रीय आन्दोलनमें अधिकाधिक दिलचस्पी ले रहे हैं। मुझे मालूम है कि बम्बईमें सैकड़ों ईसाइयोंने तिलक स्मारक स्वराज्य कोषमें अपनी शक्ति-भर दान दिया है। मुझे मालूम है कि बहुत-से शिक्षित ईसाई लोग अपनी शानदार प्रतिभाका उपयोग राष्ट्रीय कार्योंमें कर रहे हैं। इसलिए जिस व्यक्तिने मुझसे जिज्ञासा की है, उसकी जिज्ञासाको मैं शान्त करना चाहता हूँ — लेकिन उस तरहसे नहीं जैसा वह चाहता है, बल्कि उस ढंगसे जिस ढंगसे मैं कर सकता हूँ।

निकट भविष्यमें भारतका उद्देश्य सभी धर्मोंके प्रति पूर्ण सहिष्णुताका व्यवहार है, उसकी आध्यात्मिक विरासत, सादा जीवन और उच्च विचार है। मेरे विचारसे पाश्चात्य ईसाइयतका जो व्यावहारिक रूप है, वह ईसाकी ईसाइयतको झुठला रहा है। मैं इस बातकी कल्पना नहीं कर सकता कि ईसा मसीह अगर हाड़-मांसका शरीर धारण किये आज हमारे बीच मौजूद होते तो वे आधुनिक ईसाई संगठनों, सार्वजनिक पूजन या आधुनिक पोप-पादरी व्यवस्थाको पसन्द करते। अगर भारतीय ईसाई सिर्फ 'सरमन ऑन द माउंट' के उन सन्देशोंमें अनुरक्त रहें, जो ईसाने सिर्फ अपने शान्त-चित्त शिष्योंको ही नहीं, बल्कि समस्त संतप्त संसारको दिये थे, तो वे कभी गलत रास्तेपर नहीं जायेंगे। और वे देखेंगे कि कोई भी धर्म झूठा नहीं है; वे देखेंगे कि वे अगर अपने-अपने ज्ञानके प्रकाशमें ईश्वरका भय रखते हुए आचरण करते हैं तो उन्हें धर्म-

संगठनों, पूजाकी विधियों और पोप-पादरी व्यवस्थाकी चिन्ता करनेकी कोई जरूरत नहीं है। फैरिसियोंके पास यह सब तो था ही, किन्तु ईसा मसीहको उनमें से कुछ नहीं चाहिए था, क्योंकि फैरिसी लोग अपने धर्म-पदका प्रयोग पाखण्ड और उससे भी बुरी चीजपर परदा डालनेके लिए कर रहे थे। अच्छाईकी शक्तियोंके साथ सहयोग और बुराईकी शक्तियोंके साथ असहयोग, अच्छे और पवित्र जीवनके लिए इन्हीं दो चीजोंकी आवश्यकता है — फिर चाहे आप उस जीवनको हिन्दू जीवन-पद्धति कहिए अथवा मुसलमान जीवन-पद्धति या कि ईसाई जीवन-पद्धति।

क्या करें?

एक अग्रलेखमें[1] मैंने मौलाना मुहम्मद अलीकी गिरफ्तारीके बारेमें काफी विस्तारसे लिखा है। उसमें मैंने केवल उन्हीं बातोंका उल्लेख किया है जो इस सालके भीतर स्वराज्य पानेके लिए सर्वथा अनिवार्य हैं। लेकिन बहुत-सी दूसरी बातें भी हैं जिन्हें करके हम और जल्दी स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं।

उदाहरणके लिए खिताबयाफ्ता लोग अपने खिताब छोड़ सकते हैं, वकील वकालत बन्द कर सकते हैं, और बड़े तथा समझदार विद्यार्थी स्कूल-कालेज छोड़कर चरखा चलाना शुरू कर सकते हैं, तथा कौंसिलोंके सदस्य अपनी सदस्यता छोड़ सकते हैं।

यह धर्म और अधर्मकी लड़ाई है। इसलिए हमसे शराब, जुआ और असंयमसे दूर रहनेकी अपेक्षा की जाती है। अस्पृश्यता शैतानका काम है। हमें उसका त्याग करना चाहिए। फिर तो हमें अक्तूबर महीना समाप्त होनेसे भी पहले स्वराज्य मिल जायेगा। मुहम्मद अलीकी गिरफ्तारीको मैं ईश्वरका वरदान मानता हूँ। हमें इसका अधिकसे-अधिक लाभ उठाना चाहिए।

क्या नहीं करें?

और जैसे यह सब काम हममें से प्रत्येक कर सकता है और प्रत्येकको करना चाहिए, वैसे ही कुछ ऐसे काम हैं जो हमें कदापि नहीं करने चाहिए। हमें हड़ताल नहीं करनी चाहिए, सार्वजनिक भवनोंमें आग नहीं लगानी चाहिए, किसीको मारना नहीं चाहिए, किसीको अपशब्द नहीं कहना चाहिए, हमें आपसमें झगड़ना नहीं चाहिए, अपनेसे भिन्न दृष्टिकोण रखनेवालोंके प्रति असहिष्णुतासे काम नहीं लेना चाहिए। धर्ममें जबर्दस्तीके लिए कोई जगह नहीं है और जबरन् धर्म-परिवर्तन जिस प्रकार इस्लामके लिए ठीक नहीं है उतना ही असहयोगके मामलेमें भी ठीक नहीं है। हमें किसी बातसे, किसी व्यक्तिसे डरना नहीं चाहिए — डरना चाहिए सिर्फ अपनी कमजोरीसे।

मेरा साक्ष्य

मित्रगण मुझसे पूछ रहे हैं कि वाइसराय महोदयने जो मौलाना मुहम्मद अलीकी गिरफ्तारीका मौन समर्थन किया है, उसे क्या मैं विश्वासघात नहीं मानता। मैं लॉर्ड रीडिंगपर विश्वासघातका आरोप नहीं लगा सकता, क्योंकि मुकदमा उठा लेनेका उनका

१. देखिए "आखिरी काम", २२-९-१९२१।

आश्वासन स्वेच्छापूर्वक दिया गया था। अलबत्ता स्पष्ट करके यह दिखाना उनका काम है कि मौलाना मुहम्मद अलीके शिमलाके भाषणके बाद ऐसी कौन-सी नई परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई हैं जिनके कारण उनकी गिरफ्तारी उचित ठहरती है। निश्चय ही वे मौलाना साहबसे यह अपेक्षा नहीं रखते थे कि वे अब अपने ओठ सी रखेंगे या अपने भाषणोंका स्वर मुलायम कर लेंगे। उनकी क्षमा-याचना बहादुर और निर्भीक आदमियोंके योग्य ही थी। आवेगके क्षणमें अगर उनके मुँहसे कोई ऐसी बात निकल गई जिसका मतलब लोगोंको हिंसाके लिए भड़काना लगाया जा सकता था तो उन्होंने उसपर खेद प्रकट कर दिया। मैं जानता हूँ कि अलीबन्धु बहादुर हैं, ईमानदार हैं और धर्मभीरु हैं। उस प्रसिद्ध वक्तव्यके बादसे मौलाना मुहम्मद अली मेरे साथ ही दौरा करते रहे हैं। उन्होंने बहुत-से भाषण दिये हैं। ये सभी भाषण उन्होंने बहुत ओजपूर्ण ढंगसे दिये, फिर भी इनमें उन्होंने अहिंसाके सन्देशका खयाल बराबर रखा है। वे व्यक्तिगत तौरपर अहिंसाके लिए और भी ठोस काम करते रहे हैं। अलीबन्धु लोगोंको बलवानोंकी अहिंसाका सन्देश देते रहे हैं; और उन्होंने दूसरोंसे जैसा करनेको कहा है, वैसा स्वयं करके भी दिखाया है। मद्रास सरकार जानती थी कि हम शान्ति-यात्रापर निकले थे। वह जानती थी कि मौलाना मुहम्मद अली निश्चय ही हिन्दू-मुस्लिम एकताका सन्देश देंगे। उनका सन्देश मोपलोंतक अवश्य पहुँचता, और इससे मोपलोंकी धर्मांधतापर एक अंकुश लग सकता था। अगर उन्हें उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रमें जाने दिया जाता तो वे एक बूंद खून बहाये बिना शान्ति स्थापित कर देते। लेकिन कठिनाई यह थी कि उससे सरकारकी प्रतिष्ठाकी अपूरणीय क्षति होती और अहिंसाकी विजय सिद्ध हो जाती।

प्रमाण

अगर मेरे निष्कर्षके समर्थनमें प्रमाणकी आवश्यकता हो तो वह मद्रास पहुँचनेपर मुझे मुख्य सचिवका जो पत्र मिला उससे पूरी हो जाती है। यह है उस पत्रका पाठ :

> **अगर आप मलाबार जिलेमें जानेका विचार करें तो उस हालतमें मुझे आपको यह सूचित कर देनेका निर्देश दिया गया है कि सैनिक अधिकारियोंके विचारसे मार्शल लॉके अधीन आनेवाले क्षेत्रकी स्थिति ऐसी है कि आपका वहाँ जाना या ठहरना वांछनीय नहीं है। मुझे आपको यह बता देनेको भी कहा गया है कि सैनिक अधिकारियोंने इस आशयके निर्देश जारी कर दिये हैं कि अगर आप मार्शल लॉवाले इलाकेमें आयें तो आपको वापस लौटा दिया जाये।**

अभीतक सरकार यह मानती आई है कि मेरे इरादे नेक हैं। मेरे इरादोंमें उसने कभी कोई शक जाहिर नहीं किया है। हर किसीने इस बातकी साक्षी दी है कि मैं जहाँ कहीं गया हूँ, मेरी उपस्थितिका शान्तिके हकमें अच्छा प्रभाव हुआ है। यह प्रतिबन्धक आदेश — क्योंकि आदेश तो यह है ही — मुझे ऐसा माननेको मजबूर कर देता है कि सरकार शान्ति नहीं चाहती, उसकी ओरसे बातोंको जो तिलका ताड़ बनाकर पेश किया जाता है उसका भण्डाफोड़ होने देना वह नहीं चाहती, और जो बात सबसे बुरी है वह यह कि पंजाबके जिस दुष्काण्डकी पुनरावृत्ति अभागे मलाबारमें की जा रही है उसे वह रोकना नहीं चाहती।

खादी पहननेका अपराध

मेरे कहनेका मतलब क्या है, उसका मैं केवल एक उदाहरण देना चाहता हूँ। इज्जतदार नौजवानोंकी खादी सदरियाँ और टोपियाँ उनके बदनसे उतरवा ली गईं और उनके सामने ही उनमें आग लगा दी गई। एक आदमीकी टोपीमें थूक दिया गया और तब फिर उसे वह पहननेको मजबूर किया गया। क्या इसमें [अधिकारियों-के] हृदय-परिवर्तन या परिवर्तित तरीकोंकी कोई झलक मिलती है? ऐसी बर्बरता की और भी कहानियाँ मुझे मालूम हैं। लेकिन उनकी पुष्टि नहीं हुई है, इसलिए उन्हें दुहरा नहीं रहा हूँ। जिन लोगोंके बारेमें जानते थे कि उन्होंने लूटपाट रोकनेकी कोशिश की उन्हें भी सिर्फ इसलिए गिरफ्तार कर लिया गया कि वे कांग्रेसी थे। कालीकटके श्री केशव मेनन-जैसे प्रतिष्ठित व्यक्तिको कालीकटसे बाहर जानेसे रोक दिया गया। मेरी यात्राकी खबर प्रकाशित होनेके बाद उनपर हुक्म जारी किया गया। अगर श्री मेनन उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रसे बाहर आते तो उससे सार्वजनिक सुरक्षाका अहित किस तरह होता? मुझे जो विवरण मिले हैं, उन सबसे यही पता चलता है कि श्री टामस, जो मलाबारकी विपदाके जनक हैं, सर माइकेल ओ'डायरके[1] ही चरणचिह्नोंपर चल रहे हैं। अलबत्ता उनमें ओ'डायरवाली स्पष्टवादिताका अभाव है। सो शायद इसलिए कि उन्हें अपना मुँह बन्द ही रखनेको कहा गया है। मैं उनके साथ शायद अन्याय कर रहा हूँ। मद्रासके गवर्नरने लार्ड चेम्सफोर्डवाली स्थिति अपनायी है। उन्होंने सब-कुछ अपने लेफ्टिनेंटके भरोसे छोड़ दिया है।

धरना और प्रेम

एक व्यक्तिने अखबारमें लिखते हुए नाराजगीके साथ खुला सवाल किया है: "मैं अपने प्रेमके सिद्धान्तके साथ धरनेदारीका मेल कैसे बैठा सकता हूँ। क्या धरना देना एक प्रकारकी हिंसा या अनुचित दवाव नहीं है?" बेशक धरना देना हिंसा और अनुचित दबाव माना जा सकता है। मुझे दु:खके साथ कहना पड़ता है कि कई मामलोंमें वास्तविकता यही रही है। लेकिन, मैं जानता हूँ कि एक प्रेम-प्रेरित कार्य-की तरह भी धरना दिया गया है। बहुत-सी बहनें और नवयुवक विशुद्ध प्रेमभावसे प्रेरित होकर धरना देते रहे हैं। मुझपर किसीने मारवाड़ियोंसे घृणा करनेका आरोप नहीं लगाया है। कोई भी व्यक्ति सेठ जमनालालजीपर अपने जाति-भाइयों और साथी व्यापारियोंसे घृणा करनेका आरोप नहीं लगा सकता। फिर भी तथ्य यही है कि मैं और वे, हम दोनों, मारवाड़ियोंकी विदेशी कपड़ेकी दुकानोंपर धरनेदारीका समर्थन करते रहे हैं। जब बेटी बापको बुरा काम करनेसे रोकती है तो वह विशुद्ध प्रेमसे ही प्रेरित होकर वैसा करती है। वास्तविकता यह है कि कुछ ऐसे काम हैं जो सामान्य रूपसे सभी वर्गोंके लोग करते हैं। और जब वे काम अपने-आपमें आपत्तिजनक नहीं हों तो उनकी अच्छाई या बुराईकी कसौटी यही होती है कि वे काम किस इरादेसे किये जाते हैं। मेरी अपनी स्थितिमें तनिक उलझन आ जाती है, क्योंकि मुझे ऐसे

१. पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नर, जो जलियाँवाला बागके दुष्काण्डके लिए जिम्मेदार थे।

लोगोंको सहयोग देनेके लिए आमन्त्रित करना पड़ता है और उनके सहयोगपर निर्भर करना पड़ता है, जिनमें सभी प्रेमकी भावनासे ही प्रेरित नहीं होते।

स्वराज्यके अन्तर्गत

एक दूसरे लेखक महोदयने मोपलोंके उपद्रवकी ओर इशारा करते हुए यह दिखानेकी कोशिश की है कि असहयोगियोंकी कल्पनाका स्वराज्य तो मोपला-राज ही होगा। मैं उस उपद्रवपर एक बेहतर निष्कर्ष निकालता हूँ। मोपला उपद्रवसे हमें बहुत स्पष्ट रूपसे समझ जाना चाहिए कि वर्तमान सरकार तत्त्वतः क्या है। तीन बातें तो बिलकुल स्पष्ट हैं:

१. समस्त आधुनिक विध्वंसक हथियारोंसे लैस रहनेपर भी, यह सरकार जान-मालको सुरक्षा नहीं दे पाई हैं। घटना हो चुकनेके बाद उसने फिर व्यवस्था कायम कर दी, यह इसका कोई उत्तर नहीं है।

२. सरकार इतने समयसे राज करती आई है, फिर भी मोपलोंको शान्तिप्रिय नागरिक नहीं बना सकी। इसकी यह विफलता अपराधकी कोटिकी है।

३. एक ओर जहाँ वह मोपलोंके शौर्यको सही मार्ग देकर उसका उपयोग शान्ति और धर्मके कार्योंमें करनेमें असमर्थ रही है, वहाँ दूसरी ओर उसने हिन्दुओंको अपने इन उच्छृंखल भाइयोंसे अपनी रक्षा करनेके लिए प्रशिक्षित करनेकी कोई फिक्र नहीं की।

असहयोगियोंने अभी स्वराज्य हासिल नहीं किया है। उनपर भले ही यह आरोप लगाया जा सकता हो कि वे बुराईकी तमाम ताकतोंपर काबू नहीं पा सके हैं, किन्तु मलाबारकी वारदातोंका गुनाह तो ईमानदारीसे कोई भी उनके मत्थे नहीं मढ़ सकता। मान लीजिए, वहाँ असहयोगियोंने ही उपद्रव भड़काया, लेकिन सरकारका तो यह कर्त्तव्य था कि वह उपद्रवको भड़कनेसे रोकनेका पूर्वोपाय करती और अव्यवस्था फैलने न देती; पूर्वोपायका सबसे साफ तरीका था उन अन्यायोंका निराकरण कर देना जिन्हें असहयोगियोंने इतनी सफलताके साथ अपने आन्दोलनका आधार बना रखा है।

लेकिन यह बताना बहुत आसान है कि असहयोगियोंकी छत्रछायामें स्वराज्य कैसा होगा। अव्वल तो ऐसा कोई काम ही नहीं किया जाता जिससे लोगोंमें इतना गम्भीर असन्तोष फैले। दूसरे, स्वराज्यके अन्तर्गत मोपलोंको अच्छी बातें सिखाई जातीं, और तीसरे यह कि यदि तब भी ऐसा उपद्रव खड़ा हो जाता तो सुलह-समझौता कराने-वाले लोग अपनी जान खतरेमें डालकर भी शान्ति स्थापित करनेके लिए वहाँ जाते। आज जैसे दो असमान पक्षोंका संघर्ष चल रहा है, वैसा संघर्ष स्वराज्यके अधीन असम्भव होता।

"पूर्वधारित विद्वेष"

सरकारके लिए अपने आलोचकोंपर पूर्वविद्वेषसे प्रेरित रहनेका आरोप लगाना एक आम बात है। लेकिन मद्रासमें मुझे सरकारके पूर्वविद्वेषसे प्रेरित रहनेका एक साफ उदाहरण मिला है। पिछले मई महीनेमें 'देशभक्तन्' नामक एक तमिल पत्रमें प्रकाशित एक लेखके कारण मुद्रक, मालिक, प्रकाशक और तीन सम्पादक, सभीको गिरफ्तार कर

लिया गया है। साधारण पाठकोंकी नजरमें तो इस लेखमें सिर्फ अहिंसाका पालन करनेका ही अनुरोध किया गया है। अलीबन्धुओंके वक्तव्यपर वाइसराय महोदयने जो घोषणा की थी, उससे सभी लोग ऐसा मानने लगे थे कि सरकार-विरोधी लेखोंमें जबतक हिंसा भड़कानेवाली कोई बात नहीं कही गई हो तबतक उनके कारण मुकदमे नहीं चलाये जायेंगे। लेकिन मुकदमा चलाया गया, यह उतनी बड़ी बात नहीं है। हम कह सकते हैं कि यह सरकारकी नीतिमें एक परिवर्तनका द्योतक है। आखिरकार वाइसरायकी घोषणा उन्हें कुछ अनन्त कालतक तो बाँधकर रखनेवाली चीज नहीं थी। पर जो चीज विद्वेषपूर्ण है वह है उक्त पत्रके निर्दोष मुद्रक, प्रकाशक, मालिक और तीनों निर्दोष सम्पादकोंपर मुकदमा चलाना। सरकार लेखके असली लेखकका पता लगाकर उसे सजा दे सकती थी। अगर सरकारको असली लेखकका पता नहीं था तो वह घोषित सम्पादकसे उसका नाम बतानेको कह सकती थी। लेकिन वह तो राजद्रोहके आरोपमें मुकदमा चलानेकी आड़में एक प्रभावशाली देशी अखबारका प्रकाशन बन्द कराना चाहती थी। अगर ये सभी छः अभियुक्त अपना बचाव करते तो वे शायद रिहा कर दिये जाते। लेकिन सरकारको उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। उसका उद्देश्य तो जैसे हो 'देशभक्तन्'को कुचल देना था। इस उद्देश्यमें वह सफल हो गई है और अब वह खुश है। इसे मैं पूर्वधारित विद्वेष कहता हूँ। प्रेस-कानून भले ही समाप्त हो गया हो, उसके पीछे जो भावना थी वह तो बनी हुई ही है।

कांग्रेस अधिवेशन कोई तमाशा नहीं

स्वागत समितिने दर्शकोंके टिकटोंकी संख्या तीन हजारतक सीमित करके जो बुद्धिमानीका काम किया है, उसके खिलाफ कुछ शिकायतें देखनेको मिली हैं। अगर हम कांग्रेस अधिवेशनको एक सालाना तमाशा नहीं, बल्कि हर साल राष्ट्रके लिए अगले बारह महीनोंका कार्यक्रम तय करनेवाली एक काम-काजी समिति मानकर चलना चाहते हैं तो मेरे विचारसे तीन हजार दर्शक भी बहुत ज्यादा हैं। प्रतिनिधियोंकी संख्या कम करनेका मतलब ही यह है कि दर्शकोंकी संख्या भी कम करनी पड़ेगी। जब कोई सभा इतनी बड़ी हो जाती है कि उसपर काबू रखना कठिन हो जाय तो उसमें शान्तिपूर्ण ढंगसे विचार-विमर्श करना और इसी तरह ठीक ढंगसे लोगोंके मत लेना असम्भव हो जाता है। इसलिए मैं तो यही मानता हूँ कि स्वागत समितिने दर्शक-टिकटोंकी संख्या सीमित करके ठीक ही काम किया।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि इस वार्षिक आयोजनका प्रदर्शनात्मक स्वरूप खत्म कर दिया जाये। इसलिए स्वागत-समिति लोक रुचिके अनुकूल विषयोंपर व्याख्यानोंका आयोजन कर रही है। वक्ताओंमें सिर्फ प्रमुख कांग्रेसी ही नहीं, अन्य प्रसिद्ध लोग भी हैं। स्वदेशीकी एक प्रदर्शनीका भी आयोजन किया जा रहा है, जिससे काफी-कुछ सीखा जा सकता है। दर्शकोंके लिए संकीर्तन भी होंगे। मेरा खयाल है, समिति एक लाख दर्शकोंके लिए इन्तजाम कर रही है। इस अवसरपर अहमदाबाद आनेवाले लोगोंको हर तरहकी सुविधा दी जायेगी, और कार्यक्रमके काम-काजसे सम्बन्धित हिस्सेमें कोई व्यवधान डाले बिना उन्हें काफी कुछ सिखाने और उनका मनो-

रंजन करनेकी व्यवस्था की जायेगी, इस तरह स्वागत समितिने अपने सामने जो आदर्श रखा है वह है काम-काजको मनोरंजनसे अलग करके भी दोनोंपर अधिक जोर देना।

सिन्धमें दमन

नीचे सिन्धसे प्राप्त एक तार दिया जा रहा है, जो अपने-आपमें बिलकुल स्पष्ट है।

> **सिन्धमें दमन बढ़ता जा रहा है। जनता दृढ़। २४ अगस्तको दादूके महाराज द्वारकाको एक सालकी सजा दी गई। ९ तारीखको कराचीके मौलवी फतह अलीको एक सालकी सजा दी गई। ३ सितम्बरको शेख अब्दुल मजीदको २ सालकी और 'हिन्दू' के सम्पादक महाराज विष्णु शर्माको तीन सालकी सजा दी गई। इनके अलावा कराची और सक्खरमें बहुतसे घरने-दारोंको जेल भेज दिया गया है।**

इसके अतिरिक्त मुझको अखबारोंकी कुछ कतरनें भी मिली हैं, जिनमें उस प्रान्तमें चल रहे भयंकर दमनचक्रका वर्णन किया गया है। मैं तो यही आशा कर सकता हूँ कि दमन बढ़नेके साथ-साथ इसी वर्ष स्वराज्य पानेका लोगोंका संकल्प भी बढ़ता जायेगा। अपने कार्यक्रमको पूरा करनेके लिए हमें समझदारी और कठिन श्रमकी जितनी जरूरत है, उतनी बलिदानकी नहीं।

अलंघ्य दीवार

अगर अस्पृश्यता कायम रही तो वह हमारी प्रगतिके मार्गमें बराबर एक अलंघ्य दीवार बन कर खड़ी रहेगी। अतः हमें इस दीवारको अधिकसे-अधिक प्रयत्न करके गिराना है। हममें से बहुत-से लोगोंके मनमें ऐसा विचार आता दिखता है कि हम अस्पृश्यताको कायम रखकर भी स्वराज्य हासिल कर सकते हैं। उनको इस विचारमें निहित अन्तर्विरोध भी नहीं दिखाई देता। स्वराज्यपर जितना "स्पृश्यों"का हक है उतना ही "अस्पृश्यों"का भी है। नारायणवरम्से एक व्यक्ति लिखता है:

> **हमारे इलाकेमें पंचमोंके साथ हिन्दू लोग — और खासकर ब्राह्मण — बहुत बुरा बरताव करते हैं। गाँवोंमें उन्हें उन गलियोंसे नहीं चलने दिया जाता, जिनमें ब्राह्मणोंकी आबादी है। ब्राह्मणोंसे बातचीत करते समय उन्हें उनसे एक खासी दूरीपर खड़े रहना पड़ता है।**

आप तनिक ब्राह्मणोंकी जगह साहबोंको और पंचमोंकी जगह भारतीयोंको रख-कर देखिए कि आपको कैसा महसूस होता है। और मुझे तो इसमें कोई शक नहीं है कि कुछ साहब कुछ ब्राह्मणोंसे लाख दर्जे अच्छे हैं। जबतक हम अपने किसी भाईको उसके जन्मके कारण वर्ण-बहिष्कृत मानकर उसके साथ व्यवहार करते हैं तबतक ईश्वर हमें स्वराज्य नहीं प्राप्त करने देगा। उनका कहना है कि कोई मनुष्य जो-कुछ है वह अपने कर्म-फलके कारण ही है। लेकिन मेरा कर्म तो यह नहीं है कि मैं पतितोंपर पत्थर फेंकूँ। धर्मका उद्देश्य मनुष्यको उसके कार्यके भारके नीचे दबाये रखना नहीं, बल्कि उसका उद्देश्य मनुष्यका उत्थान करना है। किसी नीच कुलोत्पन्न

मनुष्यको कर्मके सिद्धान्तकी आड़ लेकर नारकीय स्थितिमें डाल देना कर्मके उक्त गरिमामय सिद्धान्तका भयंकर दुरुपयोग है। रामने केवटका सम्मान-सत्कार पाकर खुदको सौभाग्यशाली माना था। हिन्दू-धर्म उच्चात्मा और महान् व्यक्तियों द्वारा अपने अभागे भाइयोंको दुःखसे त्राण देनेके उदाहरणोंसे भरा पड़ा है। क्या आजसे हिन्दू अपने महान् पुरखोंका अनुकरण करके हिन्दू-धर्मपरसे अस्पृश्यताके कलंकका वह टीका सदाके लिए मिटा नहीं देंगे, जो इस धर्मको इस तरह विरूपित कर रहा है?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२–९–१९२१

७४. नकली माल

सम्पादक

यंग इंडिया,

महोदय,

हम 'यंग इंडिया' के १८ अगस्तके अंकमें "नकली माल"[१] शीर्षकसे छपी टिप्पणीकी ओर आपका ध्यान आकर्षित करते हैं, और निवेदन करते हैं कि उसमें जो अस्पष्टता है उसे स्पष्ट करनेकी कृपा कीजिए।

आपने अपने पत्रके उपर्युक्त अंकमें मद्राससे आये जिस पत्रको उद्धृत किया है, उसमें यद्यपि केवल बॉम्बे स्वदेशी स्टोर्स द्वारा मद्रासमें बेची जानेवाली १० से १५ आना गजवाली खादीका उल्लेख है, फिर भी उसमें बाम्बे स्वदेशी स्टोर्सका उल्लेख होनेके कारण, हमारे बहुतसे ग्राहक उसके बारेमें पूछताछ कर रहे हैं और उसका जवाब माँग रहे हैं, क्योंकि हमारा स्टोर आम तौरपर "स्वदेशी स्टोर्स' या "बॉम्बे स्वदेशी स्टोर्स" के नामसे प्रसिद्ध है।

हमारे सामने यह बिलकुल स्पष्ट है कि उक्त पत्रका हमसे कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि मद्रासमें हमारी न तो कोई शाखा है, न कोई एजेन्सी ही; और न हम लोग ऐसा सामान अपने स्टोरमें रखते हैं। परन्तु हमारे ग्राहकों तथा आम जनताके दिमागसे सन्देह या गलतफहमी दूर करनेके लिए हम इस आशा और विश्वाससे आपको लिख रहे हैं कि आप इसपर तत्काल ध्यान देंगे और अपने अगले अंकमें इस मुद्देको स्पष्ट कर देनेकी कृपा करेंगे।

आपका,

प्रबन्धक

बॉम्बे स्वदेशी कोऑपरेटिव स्टोर्स कं०, लिमिटेड

१. देखिए खण्ड २०, पृष्ठ ५४०।

उपर्युक्त पत्र मैं सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूँ। मेरी टिप्पणी निश्चय ही मद्राससे मिली एक शिकायतपर आधारित थी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-९-१९२१

७५. आखिरी काम

मौलाना मुहम्मद अलीकी गिरफ्तारीकी चर्चा बहुत हुई है। उनकी गिरफ्तारी जब हम मद्रास जा रहे थे, वाल्टेयरमें हुई। यह लेख मैं रेलगाड़ीमें, कुछ तार लिखनेके तुरन्त बाद लिख रहा हूँ। गाड़ी वाल्टेयरमें पच्चीस मिनटसे कुछ अधिक समय तक रुकी। मौलाना मुहम्मद अली और मैं एक सभामें भाषण देने स्टेशनसे बाहर जा रहे थे। अभी हम फाटकसे कुछ ही कदम आगे बढ़े थे कि मौलाना मुहम्मद अलीने मुझे पुकारकर वह नोटिस पढ़कर सुनाया, जो उन्हें दिया गया था। मैं उनसे कुछ कदमकी दूरीपर उनके सामने खड़ा था। गिरफ्तार करनेवालोंके दलमें दो गोरे और आधे दर्जन पुलिसके भारतीय जवान थे। उस दलके मुख्य अधिकारीने मौलाना साहबको पूरा नोटिस पढ़ने भी नहीं दिया और झपटकर उनका हाथ पकड़ लिया और उन्हें वहाँसे ले चला। उन्होंने मुस्कराते हुए अलविदा कहा। उसका मतलब मैं समझ गया। मुझे झंडा उठाये रखना था। ईश्वर मुझे अपने-आपको उस साथीके सन्देशके योग्य सिद्ध करनेमें सहायता दें, जिसके साथ काम करना सचमुच गौरवकी बात थी।

मैं सभा-स्थल तक गया। वहाँ मैंने लोगोंसे शान्त रहकर कांग्रेसका कार्यक्रम पूरा करनेको कहा। फिर मैं वापस लौटा और वहाँ गया, जहाँ मौलाना साहबको हिरासतमें रखा गया था। मैंने गिरफ्तार करनेवाले दलके मुख्य अधिकारीसे पूछा कि क्या मैं मौलाना साहबसे मिल सकता हूँ। उसने बताया कि उसे तो आदेश है कि उनकी पत्नी और सेक्रेटरीके अलावा और किसीको नहीं मिलने दे। मैंने बेगम मुहम्मद अली और सेक्रेटरी श्री हयातको हिरासतके कमरेसे बाहर आते देखा।

वाल्टेयर आन्ध्रका एक सौन्दर्य-स्थल है। यह एक सेनेटोरियम ही है। मौलाना साहब इतने सुन्दर स्थानमें गिरफ्तार हुए, इससे मुझे उनसे ईर्ष्या हुई। वे वाल्टेयरमें कुछ दिन रुककर आराम करने और शिष्टमण्डलका विवरण पूरा कर डालनेकी बात सोच रहे थे। लेकिन बंगालमें उन्हें अप्रत्याशित रूपसे बहुत ज्यादा दिन रुक जाना पड़ा था और उधर मोपलोंका उत्पात शुरू हो गया था, इसलिए उनकी यह योजना असम्भव ही हो गई थी,

लेकिन ईश्वरकी कुछ और ही मर्जी थी। वह मौलाना साहबको मजबूरीका आराम देना चाहता था। और मैं जानता हूँ कि वे नजरबन्दीमें खुश हैं।

नीचे गिरफ्तारीके वारंटकी नकल दी जा रही है:

श्री एफ० ई० कनिंघम
पुलिस उप-महा-निरीक्षक,
सी० आई० डी० और रेलवे विभाग,
मद्रास

चूँकि मुहम्मद अलीसे यह कैफियत माँगी जानी है कि दण्ड प्रक्रिया संहिताके खण्ड १०७ व १०९ के अन्तर्गत उनसे एक सालतक शान्ति बनाये रखने या अपना व्यवहार ठीक रखनेके लिए मुचलका क्यों नहीं लिया जाये, इसलिए आपको निर्देश दिया जाता है कि आप उक्त मुहम्मद अलीको गिरफ्तार करके मेरे सामने पेश कीजिए। इसमें चूक नहीं होनी चाहिए।

जे० आर० हगिन्स
जिला मजिस्ट्रेट

विशाखापट्टम
१४ सितम्बर, १९२१

मौलाना मुहम्मद अली न केवल स्वयं सदा शान्तिपूर्ण आचरण करते रहे हैं, बल्कि दूसरोंके बीच भी शान्ति बनाये रखनेका प्रयत्न, और सफल प्रयत्न करते रहे हैं। अच्छे व्यवहारके तो वे प्रतीक ही हैं। फिर क्या यह बात बिलकुल हास्यास्पद नहीं है कि ऐसे व्यक्तिसे एक मदान्ध सरकार "शान्ति बनाये रखने और अपना व्यवहार ठीक रखनेके लिए मुचलका" देनेको कहे? जो सरकार स्वयं बुरी है, उसके राज्यमें अच्छे पुरुषों और स्त्रियोंके लिए जेलोंके अलावा और कहीं स्थान नहीं है।

यह निश्चित है कि जैसा छोटेभाईके साथ हुआ वैसा ही बड़े भाईके साथ भी होगा। वे अपनेको स्यामी जुड़वाँ कहते हैं। दोनों एक दूसरेके अभिन्न अंग हैं। और अगर एकका व्यवहार ठीक नहीं रहा है तो दूसरेका भी नहीं रहा होगा। मुझे आशा है कि इस लेखके छपते-छपते भारतको मौलाना शौकत अलीकी गिरफ्तारीका समाचार मालूम हो चुका होगा।

मौलाना मुहम्मद अलीको गिरफ्तार करके सरकारने खिलाफतको गिरफ्तार किया है। कारण, ये दोनों भाई खिलाफतके सबसे अच्छे प्रतिनिधि हैं। जबतक खिलाफत लगभग एक कैदीकी हालतमें पड़ा हुआ है और मुसलमानोंके तीर्थस्थान वस्तुतः गैर-मुसलमानोंके नियंत्रणमें हैं, तबतक वे चैन नहीं ले सकते। दोनों भाइयों या दोनोंमें से किसीकी भी गिरफ्तारीका मतलब है खिलाफतकी माँगको मंजूर करनेसे साफ इनकार कर देना।

लेकिन सरकार देखेगी कि वह दोनों भाइयोंकी आत्माको बन्दी नहीं बना पाई है, और उनकी गिरफ्तारीके कारण खिलाफत आन्दोलन और भी तेजीसे चलेगा। दोनों भाइयोंकी आत्मा सभी सच्चे हिन्दुओं और मुसलमानोंमें समाहित रहेगी और वे खिलाफतकी मशालको निष्कम्प और प्रदीप्त रखेंगे।

लेकिन, अलीबन्धु आज खिलाफतके अलावा कुछ और भी उद्देश्य लेकर चल रहे हैं। वे स्वराज्य चाहते हैं और उन्हें जितनी चिन्ता खिलाफत सम्बन्धी अन्यायका निराकरण करानेकी है, उतनी ही चिन्ता पंजाबके साथ किये गये अन्यायके परिशोधनकी भी है। वे अपनी शान और ईमानके इतने पक्के हैं कि खिलाफत सम्बन्धी अन्यायके निराकरणके बदले भी अपने-आपको बेच नहीं सकते। उनके लिए तो तीनों सवाल अभिन्न हैं, जिन्हें कभी अलग नहीं किया जा सकता। और कुछ अन्यथा होना सम्भव भी नहीं है, क्योंकि एक माँग स्वीकार करने या एक चीज पा लेनेका मतलब है शेष माँगोंका भी स्वीकार किया जाना और शेष चीजें भी पा लेना।

मेरे विचारसे यह गिरफ्तारी एक शुभ लक्षण है। जबतक सरकार साधारण कार्यकर्त्ताओंको गिरफ्तार कर रही थी, तबतक तो वह इस समस्याके साथ खिलवाड़ कर रही थी। जो सरकार लोक-इच्छाके आगे झुकना नहीं चाहती, ऐसी हर सरकार लोकनेताओंको गिरफ्तार करके जन-भावनाको कुचलनेकी कोशिश करती है। भारत-सरकारने अपनी प्रतिष्ठाका नियम यही बना लिया है कि वह नेताओंको गिरफ्तार करती है, उन्हें सजा देती है और जब लोक-इच्छाके आगे झुकनेमें कोई शोभा नहीं रह जाती तब झुक जाती है।

इसलिए इस गिरफ्तारीको स्वराज्य स्थापनाकी पूर्व पीठिका माना जा सकता है। केवल स्वराज्य संसद् ही जेलके दरवाजे खोल सकती है, वही अलीबन्धुओं और उनके साथी कैदियोंको उपयुक्त सम्मानके साथ जेलसे छुटकारा दिला सकती है; क्योंकि यह लड़ाई अब बिना अन्तिम फैसला हुए रुकनेवाली नहीं है।

अलीबन्धुओं और उनके साथी कैदियोंको हम जो सबसे अच्छी श्रद्धांजलि दे सकते हैं वह यह कि हम समस्त शंका, भय तथा आलस्यको त्याग दें। हम इस बातमें शंका करते रहे हैं कि हम अहिंसा और स्वदेशीके बलपर अपने लक्ष्यतक पहुँच सकते हैं। हमें इस बातमें सन्देह रहा है कि हम इसी साल अपना कार्यक्रम पूरा कर सकते है। हमारे मनमें भय यह रहा है कि हम शायद आवश्यक बलिदान नहीं कर पायेंगे; और हम अपने कार्यक्रमपर बहुत सुस्तीसे अमल करते रहे हैं। तो अब आइए, हम अलीबन्धुओंके साहस और विश्वासका, निर्भीकता और सत्यपरायणताका तथा जागरूक रहकर निरन्तर कर्म-रत रहनेके गुणका अनुकरण करें। फिर तो हमें स्वराज्य मिलकर ही रहेगा। मजिस्ट्रेटने आदेशके अन्तमें लिखा था, "इसमें चूक नहीं होनी चाहिए।" ठीक है, सम्बन्धित अधिकारीसे "चूक नहीं हुई।" बहुतसे अंग्रेज अधिकारियोंने न चूकनेके प्रयत्नमें अपने प्राण गँवा दिये, और इसके लिए वे प्रशंसाके पात्र हैं। कांग्रेस और खिलाफत भी आपको आदेश, दायित्व, सलाह या इसे जो भी कहिए, देता है कि "इसमें चूक नहीं होनी चाहिए।" अब हमारे पास जितना समय रह गया है, उसमें क्या हम इस ढंगसे काम करेंगे जिससे कांग्रेसको बता सकें कि "हमसे चूक नहीं हुई"। आदेश स्पष्ट हैं:

१. लाख उत्तेजनाके बावजूद अहिंसापर अटल रहिए।

२. कैसी भी कठिन परिस्थिति हो, हिन्दू-मुस्लिम एकताको कायम रखिए।

३. विदेशी वस्त्रोंके प्रयोगका बहिष्कार कीजिए, भले ही आपको सिर्फ लँगोटी पहनकर ही गुजारा क्यों न करना पड़े। जो भी समय बचे, उसमें चरखा चलाइए।

जब हम ये शर्तें पूरी कर देंगे तभी हम सविनय अवज्ञाके लिए तैयार माने जायेंगे, जो जबरदस्तसे-जबरदस्त सरकारको भी जनताकी इच्छाके आगे झुकनेको मजबूर कर देगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२–९–१९२१

७६. आवश्यकता है — विशेषज्ञोंकी

हाथ-कताईकी बड़ी आलोचना की गई है, फिर भी मैं अपने इस विश्वासपर दृढ़ हूँ कि यह सुन्दर कला जबतक भारतके घर-घरमें प्रवेश नहीं कर जाती तबतक स्वराज्य प्राप्त नहीं हो सकता। इस मान्यताके पीछे जो दलील है, वह अत्यन्त साफ-सीधी है। जबतक भारतका घर-घर आत्म-निर्भर नहीं हो जाता, भारत जीवित नहीं रह सकता। और भारतके सभी घर तबतक आत्मनिर्भर नहीं हो सकते जबतक उनके पास कोई पूरक धन्धा नहीं होता। इसलिए अगर हमारा सारा कपड़ा मिलोंमें ही तैयार होने लगे तो उससे कोई काम नहीं बनेगा। अगर हाथ-कताईका प्रचलन घर-घरमें हो जाता है तो प्रत्येक परिवार वस्त्र-उत्पादनसे होनेवाली करोड़ों रुपयेकी आयमें हिस्सेदार होगा, और इसके वितरणके लिए किसी उलझनभरी व्यवस्थाकी भी जरूरत नहीं होगी। भारतमें अपनी जरूरतका सारा कपड़ा तैयार करनेकी सामर्थ्य तो है ही। यह मानी हुई बात है कि जब कताईका काम घर-घरमें होने लगेगा तो लाखों बुनकर और धुनिये अपने पुराने पेशेको फिरसे अपना लेंगे।

यह है हाथ-कताईका आर्थिक पहलू।

यह हमारी स्त्रियोंको, जिन्हें मजबूर होकर अपनी पवित्रता भंग करनी पड़ती है, उससे बचायेगी। इससे आजीविकाके लिए भीख माँगना बन्द हो जायेगा, और वह बन्द हो जाना चाहिए। यह हमारी मजबूरीकी बेकारी दूर करेगी। यह हमारे मनमें स्थिरता लायेगी। और मैं तो सचमुच यहाँतक मानता हूँ कि जब करोड़ों लोग इसे एक धर्म-कार्य मानकर अपनायेंगे तो यह हमें ईश्वरोन्मुख करेगी।

यह है हाथ-कताईका नैतिक पहलू।

और जब इसका प्रचार सर्वत्र हो जायेगा और विदेशी कपड़ेका व्यापार एक गई-गुजरी बात बन जायेगा तो यह इस बातका द्योतक होगा कि भारतमें अपने उद्देश्यके प्रति उत्कटता है, उसमें धीरता और गम्भीरता है, और वह अपने संघर्षके अहिंसात्मक और धार्मिक स्वरूपमें विश्वास करता है।

इस समय बाहरके लोगोंको यह विश्वास नहीं हो रहा है कि हममें विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करनेकी क्षमता है और हम हाथ-कताई और हाथ-बुनाईसे इतना कपड़ा तैयार कर सकते हैं जिससे हमारी जरूरतें पूरी हो जायें। लेकिन जब यह एक निश्चित तथ्यका रूप ले लेगा तब भारतकी राय भी एक ऐसी ताकत बन जायेगी जिसे

दबाया नहीं जा सकेगा। लेकिन केवल तभी, यदि जरूरत हुई तो इस हठीली सरकारको अपनी इच्छाके आगे झुकानेके लिए भारत सविनय अवज्ञा भी कर सकता है।

यह है इसका राजनीतिक पहलू।

इसलिए मुझे यह देखकर बड़ा दुःख हुआ कि सारे बंगालमें ऐसा एक भी आदमी नहीं है जो कताईका विशेषज्ञ हो और अपना सारा समय और ध्यान हाथ-कताईके सन्देशके प्रचारमें ही लगा रहा हो — लोगोंको इसकी शिक्षा दे रहा हो, उन्हें इसके लिए संगठित कर रहा हो और सलाह दे रहा हो। मैंने देखा कि आम जनता तो वहाँ यह काम हाथमें लेनेको तैयार है, किन्तु उसे यह नहीं मालूम है कि वह इसे करे किस तरह। और जो बात बंगालको लागू होती है, वही शायद अधिकांश प्रान्तोंको भी लागू होती है। हर प्रान्तमें एक खास स्तरका चरखा होना चाहिए, और विशेषज्ञोंका एक संगठन होना चाहिए, जिससे लोग सलाह और मार्गदर्शन ले सकें। अगर विशेषज्ञोंके ज्ञानका लाभ सुलभ हो तो बहुत-से लोगोंमें ऐसी सुन्दर, शानदार प्रतिभा है, जिसका बहुत अच्छा उपयोग किया जा सकता था। कलकत्तेके राष्ट्रीय कालेजके हॉलमें पन्द्रह नये-नये किस्मके चरखोंका प्रदर्शन किया गया। अब उनकी उपयोगिता अनुपयोगिताका निर्णय कौन करे? मैंने सब जगह अलग-अलग किस्मके चरखोंका प्रयोग होते देखा। लेकिन ऐसा नहीं देखनेमें आया कि इन चरखोंकी क्षमता जाँचनेकी कोई कोशिश की गई हो। आज बंगालमें हजारों लोग कताई कर रहे हैं, लेकिन उनके कामको मापनेवाला कोई नहीं है। इसलिए सभी कांग्रेस कमेटियोंको मेरी सलाह है कि प्रत्येक कांग्रेस कमेटी कमसे-कम ऐसे छः पुरुषों और छः स्त्रियोंको, जिन्हें अपने उद्देश्यमें आस्था हो, इसी दिशामें काम करनेके लिए अलग चुन ले। उन्हें व्यक्तिगत मार्गदर्शनके लिए सत्याग्रह आश्रमका मुँह जोहनेकी जरूरत नहीं है। जो-कुछ बताया जा सकता है, वह इस पत्रमें हर हफ्ते प्रकाशित विशेष लेखों द्वारा बता दिया जाता है। जो लोग इस विषयके विशेषज्ञ बनना चाहते हों, उनसे मेरा अनुरोध है कि वे उन्हें ध्यानसे पढ़ें। लेकिन कोई ऐसा न माने कि केवल उन लेखोंको पढ़कर ही विशेषज्ञ बना जा सकता है। पूर्णता तो अभ्यास करके ही हासिल की जा सकती है। करोड़ों लोग इस कारण कताई करेंगे कि दूसरे कामकाज करनेके बाद भी उनकी कमाईमें जो कमी रह जाती है, उसे पूरा कर सकें; कुछ लोग एक धर्म-कार्य मानकर भी कताई करेंगे, लेकिन कुछको कताईको वैज्ञानिक रूप देनेके लिए भी यह काम करना चाहिए। ऐसे लोगोंको हर दिन कमसे-कम आठ घंटे अवश्य कताई करनी चाहिए। और जैसे-जैसे वे अधिक कताई करते जायें, उन्हें पहलेके काते सूतको बादमें काते सूतसे मिलाकर यह भी देखते जाना चाहिए कि वे पहलेकी तुलनामें अब कैसा सूत कातते हैं। उन्हें धुनाई और बुनाई भी सीखनी चाहिए। उन्हें अलग-अलग किस्मकी रुईकी पहचान होनी चाहिए और अलग-अलग किस्मके चरखोंका भी ज्ञान होना चाहिए। उन्हें चरखोंकी साधारण मरम्मत करना भी आना चाहिए।

जबतक हम अपने-आपको सलीके और समझदारीसे सहकारी ढंगपर संगठित नहीं करते तबतक हमें स्वराज्य नहीं मिल सकता। स्वदेशीका मतलब है राष्ट्रीय जीवनके दूसरे बड़े क्षेत्रमें असहयोग।

हम बहिष्कार इसलिए कर रहे हैं कि अब हम हाथ-कताई और हाथ-बुनाईके जरिये अपनी जरूरतका कपड़ा तैयार करनेकी स्थितिमें हैं। लेकिन जबतक इस संक्रान्ति कालमें हममें से प्रत्येक व्यक्ति कताई नहीं करने लगता, और जबतक हर प्रान्त अपनी जरूरतका कपड़ा तैयार करनेके लिए आवश्यक व्यवस्था स्वयं नहीं करने लगता तबतक हम बहिष्कारको चालू नहीं रख सकेंगे। और यह सब तभी हो सकता है जब हर प्रान्तमें एक खास संख्यामें इस विषयके विशेषज्ञ हों।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-९-१९२१

७७. सन्देश : लँगोटीके सम्बन्धमें[1]

मदुरा
२२ सितम्बर, १९२१

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने विदेशी कपड़ेके बहिष्कारका जो कार्यक्रम निर्धारित किया था, उसे पूरा करनेके लिए अब हमारे पास कुछ ही दिन शेष हैं। अगर कांग्रेसका प्रत्येक कार्यकर्त्ता, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, पूरा ध्यान बहिष्कारकी ओर ही लगाये तो अब भी बहुत देर नहीं हुई है। अगर हर कोई इस बातका अनुभव करे कि स्वदेशीके बिना — अर्थात् विदेशी कपड़ेका बहिष्कार और जरूरतके सभी कपड़ेका उत्पादन हाथ-कताई और हाथ-बुनाईसे किये बिना — स्वराज्य नहीं मिल सकता, और स्वराज्य मिले बिना खिलाफत तथा पंजाबके साथ किये गये अन्यायोंका परिशोधन नहीं हो सकता, तो विदेशी कपड़ेका यह वांछित बहिष्कार करनेमें तथा जरूरतका सारा कपड़ा स्वयं तैयार करनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

मैं जानता हूँ कि बहुत-से लोगोंके लिए विदेशी कपड़ा छोड़कर एकाएक स्वदेशी अपना लेना कठिन होगा। करोड़ों लोग इतने गरीब हैं कि वे छोड़े हुए विदेशी कपड़ेकी जगह उपयोगके लिए काफी खद्दर खरीद ही नहीं सकते। उन्हें मैं वही सलाह देता हूँ जो मैंने उस दिन मद्रासके समुद्र-तटपर उपस्थित लोगोंको दी थी।[1] वे एक लंगोटीसे — सिर्फ घुटनोंतक की धोतीसे — ही सन्तोष करें। हमारे यहाँकी जलवायु ऐसी है कि गर्मियोंके दिनोंमें शरीर-रक्षाकी दृष्टिसे कुछ ज्यादा कपड़े जरूरी नहीं होते। पहनावेके बारेमें कोई मिथ्या शिष्टाचार बरतना आवश्यक नहीं है। भारतने संस्कृतिकी कसौटीके रूपमें पुरुषों द्वारा अपना सारा तन ढँकनेपर कभी भी आग्रह नहीं रखा है।

यह सलाह मैं अपनी जिम्मेवारी अच्छी तरह समझते हुए दे रहा हूँ। इसलिए एक उदाहरण सामने रखनेके लिए मैं खुद ही, कमसे-कम ३१ अक्तूबरतक के लिए, टोपी और सदरी त्यागकर सिर्फ एक लँगोटी और शरीर-रक्षाके लिए जरूरी होनेपर चद्दर-से ही काम चलाने जा रहा हूँ। अपने पहनावेमें यह परिवर्तन मैं इसलिए कर रहा

१. देखिए "भाषण : मद्रासमें", १५-९-१९२१।

हूँ कि दूसरोंको कोई ऐसा काम करनेकी सलाह देनेसे बराबर बचता रहूँ जो मैं स्वयं न कर सकूँ। इसका एक कारण यह भी है कि मैं आगे बढ़कर उन लोगोंके लिए रास्ता आसान बना देना चाहता हूँ जिन्हें विदेशी कपड़ेसे बनी पोशाक छोड़नेके बाद अपने पहनावेमें परिवर्तन करना मुश्किल लग रहा है। इस त्यागको मैं एक शोक-चिह्नके रूपमें भी अपने लिए जरूरी मानता हूँ। देशके जिस हिस्सेमें मैं रहता हूँ उस हिस्सेमें नंगे सिर और नंगे बदन रहना शोकका चिह्न माना जाता है। और हम शोककी स्थितिमें हैं, यह बात तो इस तथ्यको देखते हुए मेरे सामने अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही है कि वर्षका अन्त निकट है और हमें अभीतक स्वराज्य नहीं मिल पाया है। लेकिन, मैं यह स्पष्ट बता देना चाहता हूँ कि जबतक मेरे साथी कार्यकर्त्ताओंको अपने कामके खयालसे जरूरी न लगे तबतक मेरी ऐसी कोई ख्वाहिश नहीं है कि वे भी टोपी और सदरी पहनना छोड़ दें।

मेरा निश्चित मत है कि अगर पर्याप्त कार्यकर्त्ता हों तो प्रत्येक प्रान्त और प्रत्येक जिला एक ही महीनेमें अपनी जरूरतके लायक काफी कपड़ा तैयार कर सकता है। और मेरी सलाह है कि इस उद्देश्यको ध्यानमें रखते हुए एक महीनेके लिए स्वदेशीके अलावा और सभी गतिविधियाँ स्थगित रखी जायें। शराबखोरोंपर इस बातके लिए भरोसा कर सकते हैं कि वे स्वयं इस शुद्धीकरणकी नई भावनाको पहचानेंगे। मैं तो धरनेदारोंको भी शराबकी दुकानोंसे हटा लेना चाहता हूँ। हर असहयोगीको मैं सलाह दूँगा कि कारावासको वह अपने जीवनकी एक साधारण बात माने और उसकी कोई परवाह न करे। यदि अक्तूबर मास-भर सभी सभा-सोसाइटी तथा उत्तेजनात्मक भाग-दौड़के कार्योंसे अलग रहकर हम सिर्फ स्वदेशी कपड़ेके उत्पादन और लोगोंसे विदेशी कपड़े माँगकर इकट्ठा करनेका काम करेंगे, तभी हम ऐसा शान्त और उद्वेगविहीन वातावरण तैयार कर सकेंगे जिसमें जरूरत पड़नेपर सविनय अवज्ञा प्रारम्भ कर सकें। लेकिन मेरा यह निश्चित विश्वास है कि यदि हम पूर्ण स्वदेशीके लिए आवश्यक चरित्र-बल, संगठन-क्षमता तथा आदर्श आत्म-संयमकी शक्तिका परिचय देंगे तो और कुछ किये बिना हमें स्वराज्य मिल जायेगा।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २३–९–१९२१

७८. भाषण : तिरुप्पत्तूरमें

२२ सितम्बर, १९२१

तिरुप्पत्तूरके नागरिकोंने महात्माजीको तमिलमें एक अभिनन्दन-पत्र तथा एक थैली भेंट की। महात्मा गांधीने उत्तरमें कहा कि भारतमें बाईस करोड़ लोगोंके पास सालमें छः महीने कोई काम नहीं रहता, और यदि हर घरमें एक चरखा हो, जिसे घरका प्रत्येक सदस्य फुर्सतके समय कुछ घंटे चलाया करे, तो निःसन्देह हम सारे भारतको पर्याप्त स्वदेशी वस्त्र प्रदान कर सकते हैं। बत्तीस करोड़ लोगोंके वस्त्रके लिए जितनी कपासकी जरूरत है, देशमें उससे ज्यादा ही पैदा होती है। जबतक सभी भारतीयोंके लिए हाथका कता-बुना कपड़ा नहीं मिलता, तबतक हमें एक लँगोटी पहनकर भी बाहर निकलनेको तैयार रहना चाहिए। हमें हाथका बना कपड़ा पहननेमें गर्व अनुभव करना चाहिए, भले ही वह कितना ही खुरदरा हो। इसके बाद महात्माजीने अपना पहनावा बदलनेका कारण स्पष्ट करते हुए कहा कि जबतक अमीर-गरीब सभीको जरूरतके लायक पूरा स्वदेशी कपड़ा नहीं मिलने लगता, मैं तबतक कपड़ेका एक छोटासा टुकड़ा ही पहना करूँगा। फिर महात्माजीने कहा कि अभिनन्दन-पत्रमें जो यह बताया गया है कि तिरुप्पत्तूरके नागरिकोंने शराब पीना लगभग बिलकुल छोड़ दिया है उससे मुझे बहुत ज्यादा खुशी हुई है। मुझे आशा है कि न केवल तिरुप्पत्तूरमें, वरन् इसके आसपासकी जगहोंमें भी शराब पीना बिलकुल बन्द हो जायेगा। इसके बाद उन्होंने श्रोताओंसे पंचम लोगोंके साथ बराबरीका व्यवहार करनेका अनुरोध किया।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २६–९–१९२१

७९. भाषण : कनाडुकातनमें

२२ सितम्बर, १९२१

मित्रो,

आप लोगोंने मुझे जो अभिनन्दन-पत्र और थैलियाँ अभी भेंट की हैं, उनके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। परन्तु केवल थैलियाँ और अभिनन्दन-पत्र भेंट करनेसे हमें स्वराज्य नहीं मिल सकता। यदि आप स्वराज्य चाहते हैं, यदि आप पंजाब तथा खिलाफतके साथ किये गये अन्यायोंका निराकरण कराना चाहते हैं, अगर आप अली-बन्धुओंकी रिहाई चाहते हैं तो आपको स्वदेशी-व्रत धारण करना चाहिए और सभी विदेशी वस्त्र त्याग देने चाहिए। यह काम पुरुषों और स्त्रियों, दोनोंको करना चाहिए। आपको हर घरमें कातना और बुनना शुरू करवाना चाहिए। आपको अपने धनपर

गर्व नहीं करना चाहिए, और जो लोग बहुत गरीब हैं, उन्हें एक लँगोटीमें खुश रहना चाहिए। सरकार हमारे सामने उत्तेजनाका चाहे जो कारण प्रस्तुत करे, हम सबको बहुत धैर्यसे काम लेना चाहिए और अहिंसा धर्मपर दृढ़ रहना चाहिए। हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच पूरी एकता रहनी चाहिए। हिन्दुओंको छुआछूतकी भावना छोड़ देनी चाहिए। हिन्दू शास्त्रोंमें ऐसा कुछ नहीं है जिसके आधारपर छुआछूतको ठीक माना जा सकता हो। मैं यह बात एक ऐसे सनातनी हिन्दूके नाते कह रहा हूँ जो चालीस वर्षोंसे अधिक समयसे एक सच्चे हिन्दूकी तरह रहता आ रहा है। हमें शराब नहीं पीनी चाहिए, जुआ नहीं खेलना चाहिए। हमें अपनी पाशविक वृत्तियोंपर अंकुश रखना चाहिए। यदि हम ऐसा करेंगे तो बेशक हमें स्वराज्य भी मिलेगा, पंजाब तथा खिलाफत-सम्बन्धी अन्यायोंका निराकरण भी हो जायेगा और हम अली-बन्धुओंको रिहा भी करा लेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २६–९–१९२१

८०. भाषण: कोट्टायुरमें

२२ सितम्बर, १९२१

मित्रो,

मैं अभिनन्दन-पत्र तथा थैली भेंट करनेके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। जब आप अपने विदेशी वस्त्रोंको त्याग देंगे तब मैं आपको और अधिक धन्यवाद दूँगा। यदि आपको जरूरतके लायक काफी खद्दर न मिले तो सिर्फ एक लँगोटी पहन कर ही रहिए।

बहनो, दक्षिण आफ्रिकाको जेलमें मेरे साथ आप-जैसी अनेक बहनें थीं। मैं नहीं चाहता कि आप अभी जेल जायें। परन्तु मैं यह जरूर चाहता हूँ कि आप सूत कातें और विदेशी कपड़ा पूर्ण रूपसे त्याग दें। आप चाहे जिस रंगमें खद्दरको रंग सकती हैं। जबतक हम स्वदेशीको नहीं अपनाते, जबतक शराब पीना नहीं छोड़ते, जबतक देशमें पूर्ण शान्ति नहीं स्थापित होती, जबतक हम अपनी पाशविक वासनाओंपर काबू रखनेमें समर्थ नहीं होते और जबतक हिन्दुओं और मुसलमानोंमें पूरी एकता नहीं होती तबतक स्वराज्य नहीं मिल सकता।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २६–९–१९२१

८१. भाषण : देवकोट्टामें

२२ सितम्बर, १९२१

मित्रो,

मुझे जो अभिनन्दन-पत्र और थैलियाँ अभी भेंट की गई हैं, उनके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। चूँकि मैं कोई कीमती उपहार स्वीकार नहीं करता, इसलिए आपकी चाँदी और सोनेकी तश्तरियाँ तिलक स्वराज्य-कोषको दे दी जायेंगी। इस सबमें निहित आपके स्नेह की मैं कद्र करता हूँ, किन्तु साथ ही मैं आपसे यह अवश्य कहूँगा कि इनसे बहुत कम सन्तोष मिल पाता है। इस हाथसे कते बढ़िया सूतको देखकर और यह जानकर कि आपके यहाँ चालीस चरखे रोज चलते हैं मुझे कुछ सन्तोष अवश्य मिलता है। लेकिन इतनी बड़ी जगहके लिए चालीस चरखे समुद्रमें बूँदके समान हैं। जिस तरह यहाँ हर घरमें एक घोड़ा है, उसी तरह हर घरमें एक चरखा भी जरूरी होना चाहिए। और मैं हर स्त्री-पुरुषसे आशा करता हूँ कि अपने विगत पापोंके प्रायश्चित्त-स्वरूप वह प्रतिदिन फुर्सतके वक्त थोड़ी देर सूत कातेगा। जबतक मैं आपको विदेशी सूतसे बनी धोतियाँ पहनते देखूँगा, मैं सन्तुष्ट नहीं हो सकता। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आप मेरी तरह मोटेसे-मोटा कपड़ा पहना करेंगे, तो भी आप अपना लेनदेनका व्यापार न केवल भारतमें वरन् रंगूनमें और अन्य स्थानोंमें भी अच्छी तरह चला सकेंगे। परन्तु यदि आप बढ़िया पोशाक पहनते हैं और यदि आप हमारी बहनोंके हाथसे कते-बुने वस्त्र पहननेसे इनकार करते हैं तो भारतको स्वराज्य नहीं मिल सकता। यदि आपका मन्तव्य स्वदेशी कार्यक्रमको पूरा करनेका है तब तो माना जायेगा कि आपके अभिनन्दन-पत्र और थैलियाँ अच्छी चीजें हैं। लेकिन अगर ये अभिनन्दन-पत्र और थैलियाँ इस बातकी सूचक न हों कि स्वराज्य प्राप्त करने, पंजाब तथा खिलाफतके साथ किये गये अन्यायोंका निराकरण कराने और अली-बन्धुओंको रिहा करनेके प्रयत्नमें सहयोग करनेका आपने पूर्ण और अन्तिम संकल्प कर लिया है तो ये बिलकुल बेकार हैं। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि कलसे आप अपने सभी विदेशी कपड़ोंको छोड़ देंगे और केवल हाथके कते-बुने कपड़े ही इस्तेमाल करेंगे। मैं यह उम्मीद भी करता हूँ कि आपके गाँवमें नशाखोरी नहीं है। यदि हो तो मुझे आशा है कि आप उस अभिशापको दूर भगायेंगे। हिन्दू धर्ममें अस्पृश्यता-जैसी कोई चीज नहीं है और अपने पंचम भाइयोंके साथ अपने सगे भाइयोंकी तरह बर्ताव करना हमारा धर्म है। आन्ध्रकी तरह यहाँ भी मैं देखता हूँ कि मर्द लोग हीरेकी अँगूठियाँ और बालियाँ पहननेके शौकीन हैं। मेरी आकांक्षा है कि मैं आपको अपनी प्राचीन सादगी पुनः अपनानेके लिए राजी कर सकूँ और वे सब आभूषण तिलक स्वराज्य-कोष या ऐसे ही किसी अन्य कोषमें भिजवा दूँ। मैं एक बार फिर आपको इन अभिनन्दन-पत्रों और थैलियोंके लिए धन्यवाद

देता हूँ और इस आशाके साथ अपनी बात समाप्त करता हूँ कि आप सब स्वदेशीके कार्यक्रमका अनुसरण करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २६-९-१९२१

८२. पत्र : महादेव देसाईको

२३ सितम्बर, १९२१

भाईश्री महादेव,

मद्रास आनेके बाद मुझे तुम्हारा एक भी पत्र नहीं मिला है। स्वदेशीके सम्बन्धमें तो मद्रासमें कुछ भी नहीं किया गया, ऐसा कहा जा सकता है। देखना है कि अब क्या होता है? मैंने पोशाकमें भारी फेर-बदल किया है; तुमने देखा ही होगा। मुझसे रहा नहीं गया।

मद्रासमें राजगोपालाचारीने खूब मेहनत की है तथापि मद्रास मुझे बंगालसे भी अधिक पिछड़ा हुआ जान पड़ा। भ्रमणसे और जयघोषके नारोंसे अब मैं ऊब गया हूँ। उम्मीद है, तुम्हारी तबीयत अच्छी होगी। चार तारीखको बम्बई आ सको तो आना।

सरकारकी ओरसे कालीकट न जानेका आदेश पत्र[1] प्राप्त होनेके बाद मेरे लिए सविनय-भंग करना अत्यन्त आसान हो गया है।

यह पत्र मैं तुम्हें तिन्नेवेली जाते हुए लिख रहा हूँ। राजगोपालाचारीकी तबीयत बहुत खराब रहती है। उन्हें हल्का ज्वर, खाँसी और दमा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ११४१५) की फोटो-नकलसे।

१. पत्रके पाठके लिए देखिए "टिप्पणियाँ", २२-९-१९२१ का उप-शीर्षक "प्रमाण"।

८३. भेंट : 'देशाभिमानी' के सम्पादकको

तिन्नेवेली

२३ सितम्बर, १९२१

क्विलनसे प्रकाशित 'देशाभिमानी' के सम्पादक श्री टी० के० माधवनने तिन्नेवेलीमें महात्मा गांधीसे मुलाकात की। श्री माधवन त्रावणकोरकी एजहवा[1] या तय्या[2] जातिके नेता भी हैं। गांधीजीसे उनकी बातचीतका विवरण नीचे दिया जा रहा है:

टी० के० माधवन: महात्माजी, आपने मुझे दर्शनका सौभाग्य दिया, इसके लिए बड़ा आभारी हूँ। आपके चरखा-आन्दोलनसे मेरी जातिको बड़ा लाभ हुआ है — आर्थिक लाभ तो हुआ ही है, लेकिन उससे भी बहुत ज्यादा नैतिक लाभ हुआ है। बुनाई और ताड़ी खींचना, ये दोनों मेरी जातिके पुश्तैनी धन्धे हैं। मलाबारमें सबसे ज्यादा मजदूर हमारी ही जातिके हैं। जब आपने स्वदेशी आन्दोलन तथा विदेशी कपड़ोंके बहिष्कारका कार्यक्रम शुरू किया, उससे पहले दूसरी जातियोंके लोग हमारा मजाक उड़ाते थे। . . . आपने भारतमें बने कपड़ेके प्रति जो उत्साह जगाया है, एक हदतक उसके कारण भी, बुनाईके कामके प्रति लोगोंके मनमें जो हिकारत थी, वह दूर हुई है। हम लोग बुनाईके कामको उत्तेजन देनेकी कोशिश कर रहे हैं। . . .

महात्माजी: यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि आप लोग इस कामको प्रोत्साहन दे रहे हैं।

हमारे कार्यक्रमका एक मुख्य अंग है पूर्ण मद्य-निषेध। हमारे गुरु परम पुनीत ब्रह्म श्री नारायण गुरु स्वामीने गत वर्ष अगस्त माहमें अपने जन्मदिवसके अवसरपर एक सन्देश जारी करके हमें शराबसे कोई भी वास्ता न रखनेकी सलाह दी। . . . हम लोग अपनी शक्ति-भर कोशिश कर रहे हैं कि ताड़ी निकालनेका काम हमारी जातिके लोग छोड़ दें . . .। हम अपने लोगोंको यह सलाह भी दे रहे हैं कि आबकारी अधिकारियों द्वारा शराबकी दुकानकी अगली नीलामीके अवसरपर कोई भी आदमी बोली न लगाये। . . . ताड़ी निकालना बन्द करनेसे सम्बन्धित आन्दोलनको लेकर त्रावणकोर-सरकार भी कुछ कम परेशान नहीं जान पड़ती। . . .

यह जानकर बहुत खुशी हुई कि आपके गुरु, लोगोंको मद्य-निषेधकी सलाह दे रहे हैं। आशा है आप पूरी शक्तिसे उनके सन्देशको कार्यान्वित करेंगे।

हम लोग आपके आभारी हैं कि आपने अस्पृश्यता-निवारणको अपने कार्यक्रममें सबसे प्रमुख स्थान दिया है। आप ठीक ही कहते हैं कि जबतक भारतकी आबादीके

१ और २. अछूत मानी जानेवाली जातियाँ।

सातवें हिस्सेको अस्पृश्य माना जाता रहेगा . . . तबतक भारतको पूर्ण स्वराज्य नहीं मिल सकता।

हाँ, मेरा कहना यही है कि जबतक भारतसे अस्पृश्यताको दूर नहीं किया जाता, उसे पूर्ण स्वराज्य नहीं मिल सकता। यही कारण है कि अपने कार्यक्रममें मैंने इसे सबसे आगे रखा है।

त्रावणकोरके हम एजहवा लोग अस्पृश्यताके कलंकको दूर करनेके लिए एक काम कर रहे हैं। हम कोशिश कर रहे हैं कि सार्वजनिक मन्दिरोंके द्वार सभी वर्गोंके हिन्दुओंके लिए खोल दिये जायें। . . . इसे हम हिन्दूधर्ममें सुधारका एक काम मानते हैं। . . . अस्पृश्यता-निवारण एक अमूर्त विचार है। सभी वर्गोंके हिन्दुओंका मन्दिरोंमें प्रवेश उस विचारका मूर्त रूप है।

हाँ, जब आप मन्दिरोंमें प्रवेश करनेके अधिकारकी माँग करते हैं, तब अस्पृश्यता-निवारणका अमूर्त विचार मूर्त रूप ले लेता है। फिर भी, नीति-निपुणताकी दृष्टिसे मैं तो आपको सलाह दूँगा कि मन्दिरोंमें प्रवेशकी बात अभी छोड़िए और सार्वजनिक कुओंसे शुरुआत कीजिए। इसके बाद आप सार्वजनिक स्कूलोंको ले सकते हैं।

लगता है, आप शायद भ्रमवश यहाँके समाजमें हमारी स्थिति वैसी ही मान रहे हैं जैसी कि ब्रिटिश भारतमें पंचमोंकी है। आधे दर्जन स्कूलोंके अलावा, इस राज्यके शेष सभी सार्वजनिक स्कूलोंके द्वार हमारे लिए खुले हुए हैं। इन आधे दर्जन स्कूलोंमें त्रिवेन्द्रमका वह स्कूल भी है जो महाविभव महाराजाके महलकी बिल्कुल बगलमें स्थित है। . . .

अगर बात ऐसी है, तब तो आप लोग मन्दिरोंमें प्रवेशपर आग्रह करनेकी स्थितिमें अवश्य ही हैं।

त्रावणकोर-सरकारने पिछले साल सरकारी और गैर-सरकारी व्यक्तियोंकी एक समिति नियुक्त की थी। उसने हाल ही में अपनी रिपोर्ट पेश की है, जिसमें कहा गया है कि त्रावणकोरके बहुतसे मन्दिर सरकारी खर्चसे चलाये जाते हैं और उन्हें इसी तरह चलाते रहना सरकारका कर्त्तव्य है . . .।

हाँ, यहाँ भी एक नागरिक अधिकारका प्रश्न है।

श्रीमूलम् जन-सभा (पॉपुलर एसेम्बली) के पिछले अधिवेशनमें मैं भी एक सदस्यकी हैसियतसे शामिल हुआ था। . . . त्रावणकोर उच्च न्यायालयने मेरी जातिके कुछ लोगोंको एक मन्दिरमें जाकर प्रार्थना करनेके कारण इस आधारपर सजा दे दी कि त्रावणकोर दण्ड संहिताके खण्ड २९४के अन्तर्गत उन लोगोंका मन्दिरमें जाना, मन्दिरको "अपवित्र करना" था। . . . जन-सभामें हमने उसके प्रति विरोध व्यक्त किया है और सरकारसे प्रार्थना की है कि जापानकी प्रबुद्ध और देशभक्त सरकारकी तरह वह भी एक फरमान जारी करके अस्पृश्यताको समाप्त करे। नायर समाजम्ने भी अस्पृश्यताके खिलाफ प्रस्ताव पास किया है। . . . इस

प्रकार ऐसी परिस्थितियोंमें हमारा मन्दिरोंमें प्रवेश पानेका आन्दोलन चल रहा है। अब इस सम्बन्धमें आपकी क्या सलाह है?

मैं तो आपको सविनय अवज्ञा करनेकी सलाह दूँगा। आपको मन्दिरोंमें प्रवेश करना चाहिए, और यदि कानून इसके खिलाफ हो तो खुशी-खुशी गिरफ्तार हो जाना चाहिए। धर्मके आधारपर आपको मन्दिरोंमें प्रवेश करनेसे रोकना गलत है। आपको निष्ठाके साथ अहिंसा धर्मपर डटे रहना चाहिए। सामूहिक रूपसे मन्दिरोंमें प्रवेश नहीं करना चाहिए। अकेले-अकेले जाकर यह काम कीजिए। और आपको बहुत कठोर आत्म-संयमसे भी काम लेना होगा।

इस मामलेमें कांग्रेसका रवैया क्या है? . . . शंकर मेननके[1] अध्यक्षीय भाषणका सार तो यह था कि वे यह कहनेकी स्थितिमें नहीं थे कि कांग्रेसके अधिकारियोंसे सलाह लिये बिना कांग्रेस कमेटी इस सवालको हाथमें ले सकती है या नहीं। . . .

अगर श्री शंकर मेननने ऐसा कहा कि कांग्रेस कमेटी मन्दिरोंमें प्रवेशका प्रश्न अपने हाथमें नहीं ले सकती तो उन्होंने गलत कहा।

एक श्रोताने पास ही बैठे एक सज्जनकी ओर इशारा करके कहा, "यह आदमी भी नाडार है।"

टी० के० माधवन: मलाबारके समाजमें हमारी स्थिति भी हर तरहसे वैसी ही है जैसी कि तमिल समाजमें नाडारोंकी है।

श्रोता: हमारे जिलेमें भी कांग्रेस कमेटीके सामने यही कठिनाई है। यहाँके अधिकांश लोगोंको नाडारोंके मन्दिरोंमें प्रवेश करनेपर आपत्ति है।

आपको इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि इसके बारेमें अधिकांश लोग क्या सोचते हैं। क्या आप सिर्फ इसी कारणसे अपने सिद्धान्त छोड़ देंगे कि अधिकांश लोग आपके विरुद्ध हैं?

टी० के० माधवन: क्या आप इस विषयपर त्रावणकोरकी कांग्रेस कमेटीको लिखनेकी कृपा करेंगे?

हाँ, हाँ, बड़ी खुशीसे; किसको लिखना होगा?

मेरा खयाल है, अच्छा हो, आप श्री सी० शंकर मेनन, बी० ए०, बी० एल० को लिखें।

हाँ, लिखूँगा।

क्या आप जाति-प्रथाके पक्षमें हैं?

हाँ, हूँ।

क्या आप रोटी-बेटीके सम्बन्धके पक्षमें हैं?

इन दोनों ही मामलोंमें जाति-प्रथाका समर्थन मैं स्वास्थ्य-सम्बन्धी कारणों और आध्यात्मिक कारणोंसे करता हूँ। खाना उतना ही गंदा काम है, जितना शौच आदि करना। फर्क सिर्फ इतना है कि शौच करनेसे शरीरको आराम मिलता है। जिस कढ़ीके

१. विद्वान् वकील, क्विलन कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष।

साथ आपको भात खाना हो, उसमें भातको मिला दीजिए। क्या कुछ मिनट बाद आप उसे कोई स्वच्छ चीज मानेंगे? क्या आप उसे छूना भी पसन्द करेंगे? स्वास्थ्यकी दृष्टिसे उसे छूना ठीक नहीं है। मैं किसी दूसरेके साथ नहीं खा सकता, अपने बेटेके साथ भी नहीं खा सकता। अगर कोई कहे कि वह घृणावश अमुक व्यक्तिके साथ नहीं खायेगा तो मैं उसका विरोध करूँगा। आपको इस घृणा-भावसे छुटकारा पाना है।

अन्तर-जातीय विवाहके बारेमें आपका क्या खयाल है?

इसका विरोध मैं आध्यात्मिक कारणोंसे करता हूँ। मान लीजिए, आपको अपनी पत्नीका चुनाव करोड़ों औरतोंमें से करना हो। उस हालतमें अपनी इस वासनाका प्रयोग आप उतनी ही अधिक स्त्रियोंपर करेंगे। किन्तु, यदि आपके चुनावका दायरा सीमित हो, तो उसी हदतक आपकी वासनाका प्रयोग भी सीमित हो जाता है। इस तरह अपने लिए पत्नी चुननेका क्षेत्र सीमित करके आप आध्यात्मिक दृष्टिसे लाभान्वित होते हैं। अतः, इस चुनावको अपनी जातितक ही सीमित रखना अच्छा है।

मान लीजिए कि एक जातिका पुरुष किसी दूसरी जातिकी स्त्रीसे प्रेम करने लग जाता है और वह स्त्री भी उससे प्रेम करती है। उस हालतमें क्या आप उनके विवाहके मार्गमें रुकावट बनेंगे?

मैं रुकावट नहीं बनूँगा, लेकिन नहीं बनूँगा तो सिर्फ अहिंसा-धर्मका खयाल करके ही नहीं बनूँगा। मान लीजिए मेरा बेटा मेरी बेटीसे शादी करना चाहता है। उस हालतमें मैं उनके मार्गमें रुकावट तो नहीं बनूँगा, लेकिन एक काम जरूर करूँगा — उन्हें अपने घरमें स्थान नहीं दूँगा।

चूँकि मुलाकातका समय पूरा हो रहा था, अतः श्री माधवनने महात्माजीसे मन्दिरोंमें प्रवेशके प्रश्नपर अपने विचारका अधिकृत विवरण देनेका अनुरोध किया। महात्माजीने तत्काल एक पूरे कागजपर अपने विचार लिखकर श्री माधवनको दे दिये। उसे पढ़नेके बाद श्री माधवनने कहा: "इसमें इस बातकी तो कोई चर्चा की ही नहीं गई है कि इस आन्दोलनमें कांग्रेसको क्या करना चाहिए।" इसपर पहले लिखे विवरणमें महात्माजीने इतना और जोड़ दिया:

यह पूछनेपर कि एजहवा तथा अन्य लोगोंके अधिकारोंके मामलेमें स्थानीय कांग्रेस कमेटीको मदद करनी चाहिए या नहीं, गांधीजीने जोर देकर कहा कि इसमें मदद करना उसका कर्त्तव्य है।

इसे पढ़ लेनेपर श्री माधवनने पूछा: "क्या इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कांग्रेस कमेटीको मन्दिरोंमें प्रवेशके सवालको अपने व्यावहारिक कार्यक्रमका एक अंग मानना चाहिए?"

हाँ, उसमें यह बात बिल्कुल साफ कर दी गई है। उसमें "चाहिए" शब्दका प्रयोग हुआ है।

श्री माधवनने अभिवादन करके विदा ली।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ३०-९-१९२१

८४. भाषण : तिन्नेवेलीमें

२३ सितम्बर, १९२१

. . . महात्मा गांधी सिर्फ घुटनोंतक की एक लँगोटी पहने सभामें आये। . . . उन्होंने बहुत प्रभावोत्पादक भाषण दिया, जिसे श्री टी० आर० महादेव अय्यर तथा डा० राजन्ने तत्काल अनुवाद करके सुनाया। . . .

मित्रो,

आपने जो मानपत्र और तिलक स्वराज्य कोषके लिए थैली भेंट की, उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। किन्तु उससे भी ज्यादा आभारी इसलिए हूँ कि आपने अपने उत्साहका कोई शोरगुल-भरा प्रदर्शन नहीं किया। ये प्रदर्शन यद्यपि आपके स्नेहके प्रतीक हैं और उनके पीछे कोई शरारतका मंशा नहीं होता, फिर भी मुझे कहना पड़ेगा कि इनसे मैं परेशान हो उठता हूँ। कुछ तो इस कारणसे कि ऐसे ही प्रदर्शन बार-बार देखनेको मिलते हैं और कुछ इस कारणसे कि मेरे स्वास्थ्यकी हालत नाजुक है, मुझमें इन शोरगुल-भरे प्रदर्शनोंको बर्दाश्त करनेका धीरज और क्षमता बिलकुल नहीं रह गई है। इनसे अगर मुझे खिलाफत तथा पंजाबके साथ किये गये अन्यायोंका निराकरण करानेमें जरा भी मदद मिल सकती है तो मैं इस सबकी परवाह नहीं करता। लेकिन, मैं जानता हूँ कि अगले तीन महीनोंमें हमें जैसा जबरदस्त काम करना है उसके लिए यह शोरगुल अनावश्यक ही नहीं, बल्कि जिस उद्देश्यकी मुझे और आप सबको ऐसी लगन लगी हुई है उसके लिए यह अहितकर भी है। अगर हमें इसी वर्ष स्वराज्य प्राप्त करना है, खिलाफत तथा पंजाबके साथ किये गये अन्यायोंका निराकरण कराना है, और अली-बन्धुओंको जेलसे छुड़ाना है तो हमें अपना सब काम प्रभावकारी ढंगसे चुपचाप और संकल्पपूर्वक करना चाहिए। इसलिए मैं आपको तथा इस महान् सभाके आयोजकोंको भी इस बातके लिए हृदयसे बधाई देता हूँ कि यहाँ किसी तरहका शोर-गुल नहीं हो रहा है। अगर सारे भारतमें सभाओंका आयोजन इस सभाकी तरह ही शान्तिपूर्ण और सुचारु ढंगसे होने लगे तो मुझे हमारा भविष्य सभी दृष्टियोंसे आशामय ही दिखाई देता है। हमने इस सभामें सोच-समझकर स्वेच्छा और समझदारीसे जो शान्ति बना रखी है, वह हमारे अहिंसा-धर्मके सर्वथा अनुरूप ही है। अली-बन्धुओंकी गिरफ्तारीके बाद भी भारत शान्त और निरुद्विग्न रहा है — यह बहुत ही हर्ष, सन्तोष और आशाकी बात है। अगर उनकी गिरफ्तारीपर भारतके किसी हिस्सेमें किसी खास कामपर लगे लोगोंने हड़ताल की होती, अथवा उस हिस्सेमें या समस्त भारतमें व्यापक हड़ताल ही क्यों न हुई होती, तो अली-बन्धु जिस आदर और स्नेहके पात्र हैं, उसे देखते हुए उस हड़तालका कोई मूल्य नहीं होता। यह हमारा सौभाग्य है कि हमें अलीबन्धु-जैसे बहादुर, साहसी, आस्थावान्, शक्तिवान्, धर्मनिष्ठ तथा देश-प्रेमी नेता प्राप्त हैं। किन्तु हम अपने आपको इस सौभाग्यके उपयुक्त पात्र तो तभी साबित कर सकते

हैं, जब हम उनका अनुकरण करें। अभी कुछ समय पहले तक अलीबन्धु एक मर्यादाके भीतर आराम और विलासकी जिन्दगी बिताते थे, किन्तु अब वे खद्दर पहन रहे हैं, डील-डौलमें मोटे होनेके कारण उन्हें खद्दर भी मोटे किस्मका पहनना पड़ता है। हमें उन्हींकी तरह इस बातका अहसास होना चाहिए कि स्वराज्य तथा खिलाफत और पंजाबके साथ किये गये अन्यायोंका निराकरण इस बातमें निहित है कि हम अपने घरोंमें चरखेको अपनायें, विदेशी वस्त्रोंका पूरा बहिष्कार करें, और वही पहन कर सन्तोष करें जो हम अपने घरोंमें तैयार कर सकें। इसलिए मुझे बड़ा दुःख हुआ, जब सत्याग्रहके दिनोंके मेरे एक मित्र और सहयोगी विदेशी कपड़े पहने हुए मुझे एक मोटा-सा पुष्पहार भेंट करने आये। मैंने उनसे पूछा कि आपने खद्दर क्यों नहीं पहन रखा है, क्यों आपने अपने पूरे शरीरपर विदेशी वस्त्र ही धारण कर रखा है? उन्होंने जो जवाब दिया, वह भी दुःखद था। उन्होंने कहा कि पर्याप्त खद्दर उपलब्ध ही नहीं है। और आप देख रहे हैं कि ऐसी ही आपत्ति करनेवालोंको उत्तर देनेके लिए मैं अब सिर्फ एक लँगोटी पहनता हूँ और मौलाना आजाद सोबानी भी उतना ही कपड़ा पहनते हैं जितना उनके धर्मकी दृष्टिसे जरूरी है। तो अब क्या आप मुझसे यह कहेंगे कि आपके जिलेमें इतना खद्दर भी नहीं मिलता जिससे आप लोग एक-एक लँगोटी भी धारण कर सकें? आपका जिला तो भारतमें सबसे अधिक कपास पैदा करनेवाले जिलोंमें से है। इसलिए अगर इस जिलेके लोग कहते हैं कि उनके पास एक लँगोटी लपेटने लायक भी खद्दर नहीं है तो यह वैसा ही होगा जैसे बहुत बढ़िया और काफी गेहूँ पैदा करनेवाले लोग कहें कि उन्हें खानेको पर्याप्त भोजन नहीं मिलता। अभी डेढ़ सौ वर्ष पहले तक भारतकी लगभग हर औरत सुन्दर सूत कातना जानती थी और लाखों भारतीय उस सूतसे कपड़ा बुनना जानते थे। और मैं चूँकि भोजन बनाना और बुनाई करना, ये दोनों काम जानता हूँ, अतः मैं कह सकता हूँ कि बुनाई भोजन बनानेसे आसान काम है। यदि आप सदियोंकी इस यातनापूर्ण गुलामीसे छुटकारा पाना चाहते हैं, यदि आप खिलाफतके साथ किये गये अन्यायका निराकरण करानेमें मुसलमान भाइयोंको मदद देना चाहते हैं, यदि यहाँके मुसलमानोंके हृदयमें खिलाफतके लिए कोई स्थान और प्रेम है — और मुझे सन्देह नहीं कि ऐसा है — तो ऐसी अपेक्षा करना क्या बहुत ज्यादा सोचना होगा कि आप अपनी आवश्यकताओंको घटाकर कमसे-कम कर दें और सादेसे-सादा खद्दर पहनें? हमने जिस बातकी ठानी है वह कोई खिलवाड़ नहीं, बल्कि एक गम्भीर बात है। नागपुर कांग्रेसमें भारतके सभी हिस्सोंसे आये १४,००० प्रतिनिधियोंने जब इसी वर्ष स्वराज्य प्राप्त करनेके संकल्पकी घोषणा की और एक ठोस कार्यक्रम बनाया, जिसके एक प्रमुख अंगके रूपमें स्वदेशीको स्थान दिया, तो वे देशके साथ कोई मजाक नहीं कर रहे थे। अपने बुढ़ापेके दिनोंमें हकीम अजमल खाँने[1] खद्दर अपनाया। डा० अन्सारी[2],

१. १८६५–१९२७; प्रसिद्ध हकीम और राजनीतिज्ञ, जिन्होंने खिलाफत आन्दोलनमें प्रमुख भाग लिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष, १९२१।

२. मुख्तार अहमद अन्सारी (१८८०–१९३५); राष्ट्रवादी मुस्लिम नेता, इंडियन मुस्लिम लीगके अध्यक्ष, १९२०; भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष, १९२७।

पद और स्थान वह उन्हें दे दे जिन्हें इनकी इच्छा है। वह स्वयं तो इसी एक तथ्यमें विश्वास रखकर सर्वथा आश्वस्त रहता है कि अपने ज्ञानसे मानवताकी जो सेवा वह कर रहा है वही उसे जीवनमें सम्मानास्पद स्थानका पात्र बना देती है। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यदि हमें स्वराज्य पाना है — चाहे इस साल हो या सौ साल बाद — तो वह हम तभी पा सकते हैं जब हिन्दुओंमें परस्पर एकता हो और वे अपनी सारी गन्दगी, भूल, अन्धविश्वास और पाप धो डालें। इस्लाममें जो-कुछ उत्तम है उसकी दृष्टिसे यदि मैं अपने मुसलमान भाइयोंसे स्पर्धा नहीं कर सका तो मैं अपने आपको उनका अयोग्य सहभागी मानूँगा। इस प्रकार आप देखते हैं कि सभी समस्याएँ अन्ततः दो ही बातोंमें समाहित हैं: पहली तो यह कि हिन्दुओं और मुसलमानों — दोनोंको स्वदेशी कार्यक्रमको कार्यान्वित करना चाहिए और विदेशी वस्त्रोंका पूरा बहिष्कार करना चाहिए, और दूसरी यह कि हिन्दुओंको अस्पृश्यताके अभिशाप और उससे सम्बन्धित सभी दोषोंसे छुटकारा पाना चाहिए। अली-बन्धुओं और उनके सहयोगियोंकी तो यही इच्छा है कि अब अगर वे जेलसे छूटें तो स्वराज्य-संसदके प्रथम कानूनके आदेशसे ही छूटें। अब मैं यही कामना करता हूँ कि ईश्वर आपकी और मेरी सहायता करे ताकि हम इसी वर्ष स्वराज्यकी शर्त पूरी कर सकें, खिलाफत और पंजाबके प्रति किये गये अन्यायोंका निराकरण कर सकें और आज जेलमें पड़े अली-बन्धुओंको मुक्त देख सकें। मुझे आशा और विश्वास है कि आप मौलाना सोबानीकी बात भी उतने ही ध्यानसे सुनेंगे जितने ध्यानसे आपने मेरी बात सुनी।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २७–९–१९२१

८५. भारतके मुसलमानोंसे

मदुरा
२४ सितम्बर, १९२१

प्यारे देशभाइयो,

वैसे तो मौलाना शौकत अली और मौलाना मुहम्मद अलीकी गिरफ्तारीसे हर भारतीयका हृदय दुःखी है, किन्तु मैं जानता हूँ कि आप लोगोंपर क्या गुजर रही होगी। दोनों बहादुर भाई पक्के देशप्रेमी हैं, किन्तु वे पहले मुसलमान हैं और बादमें और कुछ। और हर धार्मिक वृत्तिके आदमीके साथ बात ऐसी ही होनी चाहिए। दोनों भाइयोंका जीवन पिछले कई वर्षोंसे उन सभी चीजोंका प्रतीक रहा है जो इस्लामके सबसे अच्छे और उदात्त गुण माने जाते हैं। भारतमें इस्लामकी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिए जितना इन दोनों भाइयोंने किया उतना अन्य किन्हीं दो मुसलमानोंने नहीं किया है। उन्होंने खिलाफतके पक्षको इतना आगे बढ़ाया है जितना किन्हीं दो भारतीय मुसलमानोंने नहीं बढ़ाया है, कारण, वे सत्यपर डटे रहे हैं, और जब वे छिन्दवाड़ामें नजरबन्द थे तब भी उन्होंने जैसा महसूस किया वैसा स्पष्ट कहनेका साहस दिखाया। उनकी

लम्बी नजरबन्दीसे उनका उत्साह किसी तरह कम नहीं हुआ, उनमें कोई कमजोरी नहीं आई। जो बहादुरी उनमें नजरबन्द होते समय थी, वही बहादुरी उससे छुटकारा पाते समय भी थी।

नजरबन्दीसे छूटनेके बादसे वे बराबर सच्चे राष्ट्रवादी बने रहे हैं, और आप सबको इस बातपर गर्वका अनुभव होता रहा है।

अपनी सादगी, विनय और असीम स्फूर्तिसे उन्होंने भारतीय जन-मानसको जिस तरह झकझोर दिया है, वैसा और कोई मुसलमान नहीं कर पाया।

इन सभी गुणोंके कारण वे आपके बहुत प्रिय हो गये हैं। आप उन्हें अपना आदर्श पुरुष मानते हैं। इसलिए आपको इस बातसे दुःख है कि वे आपसे जुदा हो गये हैं। आपके अलावा और भी बहुतसे लोग हैं, जिन्हें उनकी सुखद और प्रेरणाप्रद उपस्थिति-का अभाव खलता है। मेरे तो वे अभिन्न अंग ही हो गये हैं। मुझे लगता है, जैसे मेरी दोनों भुजाएँ मुझसे अलग हो गई हैं। मुसलमानोंसे सम्बन्धित सभी विषयोंमें शौकत अली मेरे पथप्रदर्शक और सहायक थे। उन्होंने कभी भी मुझे गलत सलाह नहीं दी। उनकी निर्णय-बुद्धि बहुत ठोस थी और अधिकांश मामलोंमें उससे चूक नहीं होती थी। जबतक दोनों भाई हमारे बीच थे, मुझे हिन्दू-मुस्लिम एकता बिलकुल सुरक्षित लगती थी। इस एकताका मूल्य जितना वे पहचानते थे, उतना हममें से बहुत कम लोग पहचानते होंगे।

लेकिन यद्यपि हम सभीको उनकी कमी खलती है, फिर भी हमें अपने ऊपर दुःख या निराशाको हावी नहीं होने देना चाहिए। हममें से हरएकको बिलकुल अकेला रहकर भी डटे रहना सीखना चाहिए। केवल ईश्वर ही हमारा ऐसा पथ-प्रदर्शक है जिससे कभी चूक नहीं हो सकती, जो सदा हमारे साथ है।

निराश होनेका मतलब सिर्फ यही नहीं है कि हम अली-बन्धुओंको पहचान नहीं पाये, बल्कि, अगर धृष्टता न समझें तो कहूँ, यह भी है कि हम अपने धर्मको भी नहीं पहचानते।

कारण, क्या सभी धर्म हमें यह नहीं बताते कि हमारे प्रियजन जब शारीरिक रूपसे हमें छोड़कर चले जाते हैं, तब भी उनकी आत्मा हमारे साथ रहती है? इस मामले-में तो बात सिर्फ इतनी ही नहीं है कि अली-बन्धुओंकी आत्मा हमारे साथ है, बल्कि यह भी है कि वे हमारे बीच उपस्थित रहकर हमें साहस, आशा और स्फूर्तिसे अनुप्राणित करते हुए देशकी जितनी सेवा करते, उससे कहीं अधिक सेवा वे जेलका कष्ट सहकर कर रहे हैं। अहिंसा और असहयोगका मर्म हमारे यह अनुभव करनेमें निहित है कि हम अपने लक्ष्यतक कष्ट-सहन द्वारा ही पहुँच सकते हैं। खिताबों, कौंसिलों और अदालतों तथा स्कूलोंका परित्याग करना कष्ट-सहन (और दरअसल बहुत मामूली कष्ट-सहन) नहीं तो और क्या है? यह प्रारम्भिक त्याग उस बड़े कष्ट-सहनकी शृंखला-की पहली कड़ी है जिसमें हमें जेल-जीवनकी यातनाएँ सहनी पड़ेंगी और जरूरत हुई तो फाँसीके तख्तेपर चढ़कर अन्तिम बलिदान भी करना होगा। हम जितना अधिक कष्ट सहन करेंगे और हममें से जितने अधिक लोग कष्ट सहन करेंगे, हम अपने लक्ष्यके उतने ही निकट पहुँचेंगे।

हमें जो चीज विजय दिलायेगी वह बड़ी-बड़ी सभाओं और प्रदर्शनोंका आयोजन नहीं, बल्कि शान्ति और धीरजके साथ कष्ट सहन करना है। हम जितनी जल्दी और जितने स्पष्ट रूपसे इस तथ्यको पहचानेंगे, हमारी विजय उतनी ही अधिक निश्चित हो जायेगी और हम उतनी ही जल्दी विजयी होंगे।

मैंने आपके पक्षको अपना पक्ष मान लिया है, क्यों कि उसे मैं न्यायसम्मत मानता हूँ। आपके श्रेष्ठ और अग्रणी लोगोंसे मैंने जाना है कि खिलाफत एक आदर्श है। आप किसी अन्यायको या किसी कुशासनको कायम रखनेके लिए नहीं लड़ रहे हैं। आप तुर्कोंका समर्थन इसलिए कर रहे हैं कि वे यूरोपके सभ्य-शिष्ट बाशिन्दे हैं और यूरोपीयों तथा विशेषकर अंग्रेजोंके मनमें उनके प्रति पूर्वग्रह समाया हुआ है — जिस पूर्वग्रहका कारण यह नहीं है कि तुर्क लोग मनुष्यके रूपमें दूसरोंसे बुरे हैं, बल्कि यह है कि वे मुसलमान हैं और कमजोर लोगोंका तथा उनके देशका शोषण करनेकी आधुनिक भावना उन्हें गँवारा नहीं है। तुर्कोंके पक्षमें लड़नेका मतलब यह है कि आप अपने धर्मकी प्रतिष्ठा और पवित्रताको बढ़ानेके लिए लड़ रहे हैं।

इसलिए स्वाभाविक है कि आपने अपने लक्ष्यतक पहुँचनेके लिए भी पवित्र तरीके ही अपनाये हैं। इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि हिन्दू और मुसलमान दोनोंने अपनी नैतिक शक्ति बहुत हदतक खो दी है। हम दोनों अपने-अपने धर्मके अयोग्य प्रतिनिधि-मात्र रह गये हैं। बजाय इसके कि हममें से प्रत्येक ईश्वरकी सच्ची सन्तान बने, हम दूसरोंसे हमारे धर्मकी रक्षा करने, बल्कि हमारे लिए मर मिटने तक की अपेक्षा रखते हैं। लेकिन अब हमने एक ऐसा तरीका चुना है जो हमें, हममें से प्रत्येकको, ईश्वरकी ओर उन्मुख होनेको बाध्य करता है। असहयोगकी मान्यता है कि हमारा विरोधी जिसके साथ हम असहयोग कर रहे हैं, ऐसे तरीकोंका सहारा ले रहा है जो उतने ही आपत्तिजनक हैं जितना आपत्तिजनक वह उद्देश्य है जिसे वह पूरा करना चाहता है। इसलिए हम ईश्वरकी कृपाके भागी तभी होंगे जब अपने संघर्षके लिए अपने विरोधियोंसे भिन्न तरीके चुनेंगे। हमने अपने लिए यह बहुत बड़ा दावा किया है, और अगर हमारे तरीके सरकार द्वारा अपनाये गये तरीकोंसे सचमुच सर्वथा भिन्न होंगे तो हम उतने ही कम समयमें सफलता प्राप्त कर सकेंगे जितना कम समय हमने इसके लिए निर्धारित किया है।

अतः हमारे आन्दोलनकी आधारशिला पूर्ण अहिंसा है, जब कि सरकारका अन्तिम आश्रय हिंसा है और जिस प्रकार बिना प्रतिरोधके कोई ऊर्जा उत्पन्न नहीं होती, उसी प्रकार जब हम सरकारकी हिंसाका प्रतिरोध नहीं करेंगे तो यह गतिशून्य हो जायेगी। लेकिन हमारी अहिंसा सच्ची अहिंसा तभी मानी जायेगी जब हम मन, वचन और कर्म, हर तरहसे अहिंसक बरताव करें। अगर आपने अहिंसाको एक कार्य-साधक नीतिके रूपमें अपनाया हो, तो उससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता। जबतक आप अहिंसाकी प्रतिज्ञासे बँध हुए हैं, तबतक अगर आप किसीके प्रति मनमें भी हिंसाका भाव लाते हैं तो वह उस प्रतिज्ञाका उल्लंघन होगा। इसके वितरीत, अपने अहिंसाके कार्यक्रममें हमारी अन्ध-आस्था होनी चाहिए, और अहिंसाका यह कार्यक्रम इस बातका आग्रह करके चलता है कि मन, वचन और कर्ममें परस्पर कहीं कोई असंगति नहीं होनी

चाहिए। आज यद्यपि क्रोधका सबसे बड़ा कारण मौजूद है, फिर भी मैं हर मुसलमानसे यह महसूस करनेको कहूँगा कि हम अहिंसासे ही पूरी विजय पा सकते हैं, और इस सालके भीतर भी पा सकते हैं।

ऐसी बात भी नहीं कि अहिंसाका कार्यक्रम कोई कल्पना-लोककी चीज है। जरा सोचिए तो कि सात करोड़ मुसलमानों (अगर हिन्दुओंकी बात रहने दें तो भी) के एकमत होकर कोई संकल्प करनेका मतलब क्या होता है। अगर सभी खिताब-याफ्ता लोगोंने अपने खिताब छोड़ दिये होते, सभी वकीलोंने अपनी वकालत छोड़ दी होती, सभी विद्यार्थियोंने स्कूल छोड़ दिये होते और सभीने कौंसिलोंका बहिष्कार किया होता, तो क्या हमें पहले ही सफलता नहीं मिल गई होती? लेकिन हमें यह मानना होगा कि हममें से बहुतसे लोगोंके लिए मोह और लोभ छोड़ सकना सम्भव नहीं हो सका है। यहाँके सात करोड़ लोग मुसलमान कहे जाते हैं और बाईस करोड़ लोग हिन्दू कहे जाते हैं, किन्तु उनमें से बहुत कम लोग सच्चे मुसलमान या सच्चे हिन्दू हैं। इसलिए अगर हमें हमारा उद्देश्य प्राप्त नहीं हुआ है तो उसका कारण हमारे ही भीतर है। और अगर हमारा संघर्ष, जैसा कि हम दावा करते हैं धार्मिक संघर्ष है, तो हम अपने अलावा और किसीके प्रति उतावलापन नहीं बरत सकते — आपसमें एक-दूसरेके प्रति भी नहीं।

मुझे पूरा विश्वास है कि अली-बन्धु भी अहिंसाको भड़कानेके मामलेमें उतने ही निर्दोष हैं, जितना निर्दोष मैं अपनेको मानता हूँ। इस तरह उनका बलिदान सर्वथा निष्कलंक है। उन्होंने इस्लाम और अपने देशके लिए, उनसे जो-कुछ हो सकता था, सब किया है। अब अगर खिलाफत और पंजाबके प्रति किये गये अन्यायोंका परि-शोधन नहीं होता और इस सालके भीतर स्वराज्य स्थापित नहीं होता तो उसमें दोष आपका और मेरा होगा।

हमें हर हालतमें अहिंसापर दृढ़ रहना चाहिए, लेकिन निष्क्रिय नहीं रहना चाहिए। सिपाहियोंके कर्त्तव्यके सम्बन्धमें जो कुछ कहनेपर अली-बन्धुओंको जेल मिली, वही बात दुहराते हुए हमें खुशी-खुशी जेल जाना चाहिए। हममें से अच्छेसे-अच्छे लोग भी हमसे अलग कर लिये जायें तब भी ऐसा माननेकी जरूरत नहीं कि अब संघर्ष नहीं चलेगा। और अगर नहीं चल सकता, तो हम न स्वराज्यके योग्य हैं और न खिलाफत तथा पंजाबके साथ हुए अन्यायोंका निराकरण कराने लायक हैं। हमें हजारों मंचोंसे यह कहना चाहिए कि चाहे सिपाहीकी हैसियतसे या किसी भी रूपमें मौजूदा सरकारकी सेवा करना हर मुसलमान और हिन्दूके लिए पाप है।

और सबसे बढ़कर तो हमें विदेशी कपड़ेके — चाहे वह इंग्लैंडका हो या जापा-नका, अमेरिकाका हो या फ्रांसका अथवा किसी देशका — पूर्ण बहिष्कारपर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, और अगर अभीतक नहीं किया हो तो अबसे अपने घरोंमें चरखे और करघेको दाखिल करना शुरू कर देना चाहिए और इस तरह अपनी जरूरतका सारा कपड़ा खुद बनाना चाहिए। हमारा यह काम हमारे देशकी स्वतन्त्रता और खिलाफतकी रक्षाके साधनके रूपमें अहिंसामें हमारे विश्वासकी कसौटी होगा। यह हिन्दू-मुस्लिम एकताकी भी कसौटी होगा और हमारे अपने कार्यक्रममें हमारी

आस्थाकी सर्वांगीण कसौटी होगा। मैं अपने इस विश्वासको एक बार फिर दुहराता हूँ कि विदेशी कपड़ोंके पूर्ण बहिष्कारके एक महीनेके भीतर हम अपना सारा उद्देश्य पूरा कर सकते हैं। कारण, तब हम ऐसी स्थितिमें होंगे जब हमें हिंसाकी शक्तियोंपर नियंत्रण रखना, और जरूरत पड़नेपर, सविनय अवज्ञा करनेकी अपनी योग्यतामें पूरा विश्वास होगा।

अतएव सरकारने आपको जो गहरे घाव लगाये हैं उन्हें ठीक करनेका एकमात्र मरहम मुझे यही दिखाई देता है कि आप विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करके और अपने लिए अपने घरोंमें ही कपड़ेका उत्पादन करके अहिंसाको कार्यरूपमें परिणत करें।

आपका मित्र और साथी,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-९-१९२१

८६. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

तिन्नेवेली

२४ सितम्बर, १९२१

सुज्ञ भाईश्री,

आपका पत्र[1] भटकता-भटकता मुझे यहाँ आ कर मिला है। आपने मुझे लिखा, इससे मुझे खुशी ही हुई है। आपको लिखनेका अधिकार है। यद्यपि मैं यह तो नहीं कह सकता कि मैं आपको अच्छी तरह समझ गया हूँ तथापि मैं अनेक वर्षोंसे आपको शुभचिन्तकके रूपमें जानता आया हूँ।

आप सबसे अधिक जोर राजकुमारके आगमनकी बातपर देते हैं। मुझे लगता है कि आपकी तत्सम्बन्धी दलील ही सबसे ज्यादा कमजोर है। वे इस शासनको महत्त्व प्रदान करनेके लिए आ रहे हैं। इस समय आना अप्रासंगिक है। उन्हें मैं इस शासन-तन्त्रसे बाहर नहीं मानता हूँ। व्यक्तिके रूपमें कोई उनका विरोध नहीं करेगा, लेकिन भविष्यमें इस शासनके राजाके रूपमें उन्हें कोई जगह नहीं दी जा सकती। आपने हमारे शास्त्रोंमें वर्णित राजभक्तिके जो उदाहरण प्रस्तुत किये वे यहाँ लागू नहीं होते हैं। कहाँ राम और कहाँ रावण?

लेकिन आप अन्य विषयोंपर जो-कुछ लिखते हैं उसका मुझपर जरूर असर होता है। माता-पिताके प्रति बालकोंके भक्तिभावको मैं तनिक भी कम नहीं करना चाहता। तथापि मैं निस्सन्देह यह मानता हूँ, कि आप जिन दुःखद परिणामोंकी चर्चा करते हैं वैसे दुःखद परिणाम घटित हुए हैं। लेकिन यह अविवेक क्षणिक है। इसके अतिरिक्त पिताके प्रति पुत्रमें जिस तरह भक्तिभाव होना चाहिए वैसे ही पुत्रके प्रति पितामें भी

१. १२-९-१९२१ के इस निजी और गोपनीय पत्रमें श्री पट्टणीने असहयोग-आन्दोलनके दुर्गुणोंकी ओर गांधीजीका ध्यान आकर्षित किया था।

प्रेमभाव होना चाहिए, लेकिन मैं इसका भी अभाव देखता हूँ। दुःख तो यह है कि दोनोंमें धर्मका अभाव है। इतना कहने और स्वीकार करनेके बाद मैं अपनी मान्यता भी बताये देता हूँ। स्कूल आदिके सम्बन्धमें हमने जो कदम उठाया है उससे जनताको समग्रतः लाभ हुआ है।

भाई शुक्लके[1] त्यागपत्रके सम्बन्धमें मुझे कोई जानकारी नहीं है। मणिलालके[2] कड़े स्वभावको मैं अच्छी तरह जानता हूँ। इन बातोंके सम्बन्धमें प्रत्येक स्थानपर जो कदम उठाये जाने चाहिए सो मैं उठा रहा हूँ। यह भीषण युद्ध है, लेकिन अन्ततः लोगोंकी भावना धार्मिक हो जायेगी, यह सोचकर मैं इसमें पड़ा हुआ हूँ। अनेक लोगोंके जीवनमें जब मैं सुन्दर परिवर्तन देखता हूँ तब मुझे बहुत आनन्द होता है। अनेक लोग सिर्फ दम्भका पोषण करनेके लिए ही इसमें दाखिल हुए हैं, यह देखकर मुझे दुःख होता है। लेकिन मैं कौन हूँ ? मैं सिर्फ तटस्थ भावसे इस युद्धको चला रहा हूँ, इसीलिए निश्चिन्त हूँ। और इसी कारण मुझे विश्वास है कि ईश्वर मुझे पापोंसे उबार लेगा।

आपने जो श्लोक[3] उद्धृत किया है वह आपने मुझे सुनाया था, ऐसा मुझे याद पड़ता है। उसे समझकर ही मैं यह गाड़ी खींच रहा हूँ। गाड़ी टूटी हुई होगी अथवा उसमें बैठनेवाला गाफिल होगा तो इसके लिए ईश्वर मुझे दोष देगा ?

किसी दिन हम मिलेंगे तब विस्तारसे बातचीत करेंगे।

मैं दो तारीखको बम्बई पहुँचनेकी उम्मीद रखता हूँ।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ३१७६) की फोटो-नकल तथा जी० एन० ५८६३ से।

८७. अली-भाइयोंकी जीत

अली-भाई गिरफ्तार कर लिये गये, इसे मैं उनकी जीत मानता हूँ। और उनकी जीत हमारी जीत है, क्योंकि मैं यह मानता हूँ कि अब स्वराज्यके सूर्यकी किरणें फूट चुकी हैं। जब बच्चा जन्म लेता है तब माँको घोर कष्ट होता है। पौ फटनेसे पहले अन्धेरा बढ़ जाता है। इस प्रसंगमें हम 'फटना' शब्दका प्रयोग करते हैं, उससे यही अर्थ सूचित होता है।

मैं अली-भाइयोंकी कैदके सम्बन्धमें भी ऐसा ही मानता हूँ। दूसरे बहुतसे लोग भी गिरफ्तार किये गये हैं। अभी और भी अधिक लोग गिरफ्तार किये जायेंगे। महत्त्व तो उनकी गिरफ्तारीका भी है फिर भी अली-भाइयोंकी गिरफ्तारीका जो महत्त्व है वह दूसरे लोगोंकी गिरफ्तारीका नहीं है।

१. बैरिस्टर डी० बी० शुक्लने अपने सहयोगियोंके साथ तीव्र मतभेद होनेके कारण काठियावाड़ परिषद्से त्यागपत्र दे दिया था। यह मतभेद ध्रांगध्रामें, जहाँ परिषद् हुई थी, प्रकाशमें आ गया था।

२. मणिलाल कोठारी, गुजरातके एक राजनैतिक कार्यकर्ता।

३. "तानकृत्स्नविदो मन्दान् कृत्स्नविन्न विचालयेत्।" भगवद्गीता, ३-२९

अली-भाइयोंने स्वराज्यकी प्राप्तिके निमित्त यथाशक्ति प्रयत्न किया है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि उनका बलिदान पवित्र है। उन्होंने अपनी अहिंसाकी प्रतिज्ञाका पूरा पालन किया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके भाषणमें तीखापन या कड़वापन नहीं होता था, किन्तु उन्होंने अपनी हिंसाकी भावनापर अंकुश रखा। हिंसाकी भावनापर अंकुश रखनेका अर्थ सच्ची बात छिपाकर लोगोंको शान्त रखना नहीं है; यह सरकार असह्य है ऐसा ज्ञान होनेपर भी अहिंसक बने रहना, यह हिंसापर अंकुश रखनेका सच्चा अर्थ है।

अली-भाइयोंने अपना रोष प्रकट किया है। उन्होंने लोगोंके सामने सरकारके काले कारनामोंका नग्न चित्र खींचा सही किन्तु, इसके बावजूद लोगोंको अपनी दलीलोंसे और अपने कार्यसे अहिंसक रहनेकी ही शिक्षा दी।

उन्होंने अहिंसाको समयोपयोगी मानकर अपनाया है। वे मेरे जैसे लोगोंकी तरह यह नहीं मानते कि अहिंसा सार्वकालिक धर्म है और हमें हर समय और हर प्रसंगपर अहिंसक रहना चाहिए। इसके विपरीत वे मानते हैं कि इस समय और इस प्रसंगपर अहिंसा ही उनका परम धर्म है। उन्होंने दूसरे लोगोंको भी यह बात स्वीकार करनेके लिए प्रेरित किया है। यदि वे चाहते तो खुद किसीका खून कर सकते थे या करा सकते थे, फिर चाहे इसमें उन्हें भी क्यों न मरना पड़ता। उन्होंने मृत्युका भय तो छोड़ ही दिया है, किन्तु व्यवहारकुशल और धर्मपरायण होनेके कारण उन्होंने देखा कि गुस्सेमें आकर किसीको मार देना अपराध है और इस्लाममें इसकी मनाही है। उन्होंने समझ लिया कि इस्लाममें ऐसे प्रसंगोंका उल्लेख है जिनमें हिंसा की जा सकती है किन्तु वर्तमान अवसर उन प्रसंगोंमें नहीं आता और यह बात उन्होंने दूसरे लोगोंको भी अच्छी तरह समझाई।

इसीलिए मैं कहता हूँ कि उन्होंने अपनी अहिंसाकी प्रतिज्ञाका पूर्ण पालन किया है और इसके बावजूद वे वीर हैं और निर्भय हैं। उनकी धर्मसेवा और लोकसेवापर कोई भी शंका नहीं कर सकता। जहाँ निर्भयता, वीरता और सेवाका संगम होता है वहाँ बलिदानकी चरम सीमा होती है। बलिदानका परिणाम मनोवांछित फल देनेवाला होता है। इस कारण मैं यह मानता हूँ कि अब हमारी जीतका, स्वराज्य पानेका, और खिलाफत एवं पंजाबके मामलोंमें न्याय प्राप्त करनेका समय आ गया है।

किन्तु इस जीतकी शर्तें हैं। एक व्यक्तिके किये हुए यज्ञका फल दूसरे व्यक्तिको तभी मिलता है जब दूसरा व्यक्ति भी उस यज्ञको स्वीकार करता है। अली-भाइयोंके यज्ञको जब हम अपना यज्ञ बना लेंगे तभी हमारी जीत होगी। अपना बनानेका अर्थ है, जैसा उन्होंने किया वैसा हम भी करें। हम उनके साहस, उनके अभय और उनके सेवाभावका अनुकरण करें। यदि मुसलमानोंके मनमें ऐसा दुर्बल विचार आये कि वे तो जेल गये, अब खिलाफत आन्दोलनको कौन चलायेगा, तो इससे यही समझा जायेगा कि वे अली-भाइयोंको नहीं समझ सके। हिन्दू अथवा मुसलमान कायरोंकी तरह ऐसा सवाल नहीं उठायेंगे कि वे तो जेल चले गये अब स्वराज्यकी गाड़ीको कौन खींचे। अब हमें नेताओंकी, मार्गदर्शकोंकी जरूरत कम ही रह गई है। यदि हम यह कहें कि बिलकुल नहीं रही है तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। हमने मार्ग तो जान लिया है

और देख लिया है। हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों के लिए तीन शर्तोंका पालन करना अनिवार्य है। शान्तिका पालन, हिन्दुओं और मुसलमानोंकी एकता और स्वदेशीके कार्यक्रमका अमल। सभी धर्मोंके लोगोंको समान रूपसे इस कर्त्तव्यका पालन करना है। हिन्दुओंको एक काम और करना है—उन्हें अस्पृश्यताके मैलको धोना है।

मोपलोंने शान्ति-भंग करके व्यर्थ ही आत्मनाश किया है। उन्होंने यही सिद्ध किया है कि यदि हम शान्ति नहीं रखेंगे तो हिन्दुओं और मुसलमानोंकी एकताकी रक्षा नहीं की जा सकेगी। इसलिए सरकार हमें चाहे खिझाये तो भी हमें रोष नहीं करना चाहिए और अपनी स्थिरचित्तता नहीं छोड़नी चाहिए।

जिस तरह शान्तिकी रक्षा करना हमारा धर्म है उसी तरह हिन्दुओं और मुसलमानोंकी एकताको कायम रखना भी हमारा धर्म है। कुछ मोपले पागल बन गये इससे सब मुसलमान तो खराब नहीं माने जा सकते। तीन वर्ष पहले शाहाबादमें हिन्दू पागल हो गये थे, उससे सभी हिन्दू तो खराब नहीं माने जायेंगे। किन्हीं दो पक्षोंमें एकता होनेका अर्थ ही यह है कि दोनों पक्षोंमें झगड़ा हो जाये तो भी वे एक-दूसरेके शत्रु न बनें और झगड़ेका निपटारा शान्तिपूर्वक कर लें। हम कह सकते हैं कि परिवारमें सामान्यतः एकता होती है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि परिवारके लोग आपसमें कभी लड़ते ही नहीं। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हम एकता कायम रखनेका प्रयत्न करते-करते कभी-कभी लड़ भी पड़ेंगे। किन्तु आपसमें लड़नेपर भी हमारे नेता ऐसे होंगे कि वे हमें सदा अंकुशमें रखेंगे। यदि मुसलमान या मोपला नेता मोपलोंके पागलपनकी सराहना करते और इसकी निन्दा न करते तो हिन्दुओं और मुसलमानोंकी एकता जोखिममें पड़ जाती, यह सच है। किन्तु मुझे नहीं लगता कि ऐसा एक भी मुसलमान है जिसने मोपलोंके पागलपनको अच्छा बताया हो। कमसे-कम मैं तो ऐसे एक भी व्यक्तिको नहीं जानता। ऐसा हो या न हो किन्तु यह बात तो एक बालक भी समझ सकता है कि यदि हिन्दू और मुसलमान लड़ेंगे तो हमें किसी तीसरेकी जरूरत पड़ेगी ही। इसलिए हिन्दुओं और मुसलमानोंकी एकता स्वराज्यकी दूसरी जरूरी शर्त है।

इतनी ही जरूरी शर्त स्वदेशीका व्यवहार और चरखेका प्रचार है। चरखा हिन्दू-मुसलमान ऐक्यकी, हमारी अहिंसाकी, हमारे नियमपालनकी, हमारी परिश्रमशीलताकी, योजना-शक्तिकी, हमारी व्यापारिक शक्तिकी, हमारी परोपकार-वृत्तिकी, निर्धनोंके प्रति हमारे प्रेमकी और अपने स्त्रीवर्गकी रक्षा करनेकी हमारी इच्छाकी निशानी है। अकेले हिन्दू चरखा चलाते हैं तो हिन्दुओंको लाभ होगा किन्तु उससे स्वराज्य नहीं मिलेगा। जिस समय हमें क्रोध आ रहा हो, हमारा रक्त उबल रहा हो उस समय हमें चरखा चलाना अच्छा नहीं लगता। चरखा अहिंसाका प्रतीक है और अपनी आजीविका कमानेके सम्बन्धमें हमारे मनमें जो भय बैठ गया है उसको दूर करनेका साधन है। इसलिए जबतक घर-घरमें चरखा नहीं चलता तबतक यह सिद्ध नहीं होता कि हम अहिंसक हैं और हममें एकता है।

चरखेके अन्तर्गत करघा और पींजन आदि वस्तुएँ भी आ जाती हैं। जब चरखा चलेगा तब भारतमें फिर चमक आयेगी। यदि चरखा नहीं चलेगा तो विदेशी कपड़ेका

बहिष्कार नहीं होगा और यदि हो जायेगा तो वह टिकेगा नहीं। हम मिल-मालिकोंसे सहायता माँगते हैं और हमें विदेशी कपड़ेके व्यापारियोंके सहयोग की जरूरत भी है, किन्तु अन्तमें तो हमारी सफलताका आधार हम स्वयं ही हैं। "आप सच्चे तो जग सच्चा।" सच्चे मनुष्यको तो कोई ठग ही नहीं सकता, इसलिए हममें से हरएकको विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करना चाहिए और कपासकी किसी भी प्रक्रियामें जुट जाना चाहिए।

अली-भाइयोंकी रिहाईकी अनिवार्य शर्तें अब हमें मालूम हो गई हैं। ये शर्तें तीन होनेपर भी अन्तमें एक स्वदेशीमें ही आ जाती हैं, क्योंकि इसमें पहली दो शर्तें छुपी हुई हैं। स्वदेशीको पूरी तरह अपनानेमें ही स्वराज्य निहित है। और स्वराज्य मिलने-पर स्वराज्य सभाके पहले अधिवेशनका पहला काम अली-भाइयों और दूसरे असहयोगी कैदियोंको रिहा करना ही होगा।

ऐसी सीधी-सादी बातोंमें हमें मार्गदर्शककी जरूरत नहीं होती। हमें स्वराज्य तभी मिलेगा जब हम अपने मार्गदर्शक स्वयं बन जायेंगे।

ये शर्तें हिन्दू और मुसलमान — दोनोंके लिए हैं।

यदि हिन्दू अपने हिन्दुत्वको नहीं समझेंगे तो भारतको कभी स्वराज्य नहीं मिलेगा। अस्पृश्यता दूर न होनेपर भी खिलाफतके सवालका फैसला हो सकता है, यह मैं देख सकता हूँ; किन्तु अस्पृश्यता दूर न होगी तो स्वराज्य नहीं मिलेगा। यदि २२ करोड़ हिन्दू अपने समाजके पाँचवें हिस्सेको दबाते रहते हैं तो वह स्वराज्य नहीं होगा; बल्कि रावण-राज्य होगा। यह धर्म नहीं बल्कि अधर्म होगा। मैं यह लेख मद्रास प्रान्तके कुम्भकोणम्[1] नामक स्थानसे लिख रहा हूँ। कुम्भकोणम् अपने मन्दिरोंके लिए प्रसिद्ध है। यहाँ विद्वान् द्रविड़ लोग बसते हैं; किन्तु कुम्भकोणम्के ब्राह्मण भंगीकी छाया पड़नेसे भ्रष्ट हो जाते हैं। जिस भंगीकी छाया पड़ती है उसे मार भी खानी पड़ती है और गालियाँ तो उसपर बरसती ही हैं। अस्पृश्यताकी डायरशाही जैसी मद्रासमें चलती है वैसी कहीं अन्यत्र नहीं चलती। अस्पृश्य लोग ब्राह्मणोंकी गलीमें तो जा ही कैसे सकते हैं? अस्पृश्योंको जानबूझकर अज्ञानमें रखा जाता है। कोई पशु बीमार पड़ता है तो उसकी सार-सँभाल भी कोई-न-कोई करता है; किन्तु अस्पृश्योंका रक्षक तो भगवान ही है। हमको स्वराज्य नहीं मिलता इसका कारण निर्दोष अस्पृ-श्योंकी हाय भी है। मद्रास अहातेमें तो यह प्रश्न दिन-प्रतिदिन उग्र होता जा रहा है। मद्रासके अन्त्यज मजदूरों और दूसरे लोगोंके बीच बड़ा वैमनस्य है और वे एक-दूसरेसे मारपीट भी कर लेते हैं। हमें अस्पृश्योंसे प्रेम करना चाहिए। उनको हमें सगे भाईकी तरह मानना चाहिए और उनसे छू जानेपर अपने आपको भ्रष्ट न समझना चाहिए। इससे हमें स्वराज्य मिलेगा इतना ही नहीं, इसीसे हिन्दू धर्मका उद्धार भी होगा। गो-रक्षक हिन्दू अन्त्यजोंका त्याग नहीं कर सकते। अन्त्यज चाहे मैला हो, चाहे वह मुरदार माँस खाता हो, चाहे शराब पीता हो और चाहे उसमें पृथ्वीभरके सब दोष हों, फिर भी वह हमारा भाई है; ऐसा मानकर ही हमें उससे बरताव

१. गांधीजी १८ सितम्बर, १९२१ के दिन कुम्भकोणम्में थे।

करना चाहिए। जब हम ऐसा करेंगे तभी हम स्वराज्य-मन्त्रका उच्चारण करने योग्य बनेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-९-१९२१

८८. मार्शल लॉ

मुझपर नोटिस

मैं जिस दिन मद्रास पहुँचा उसी दिन मुझे मद्रास सरकारकी ओरसे एक नोटिस मिला। नोटिसमें कहा गया है:[1]

इस पत्रका जवाब मैंने अभीतक नहीं भेजा है। क्या भेजता? मैं तो यह एक ही जवाब भेज सकता हूँ — "आपका खत मिला। मैं वहाँ गये बिना नहीं रह सकता। आपसे जो हो सके सो कीजिए।"

लेकिन ऐसा जवाब मैं कैसे भेजूं? मैंने खुद ही तो सविनय कानून-भंगकी तजवीजको मुल्तवी किया और दूसरोंसे भी कराया है। लोग सविनय कानून-भंग और सामान्य कानून-भंगके भेदको आज भी समझते नहीं हैं; ऐसी परिस्थितिमें मैं एकाएक कानूनका सविनय-भंग भी कैसे कर सकता हूँ? इस खयालसे मैंने अभी उसका जवाब दिया ही नहीं है। सच पूछिए तो मुझे तो यह स्वराज्य प्राप्त करनेका मौका घर बैठे मिल गया था लेकिन मैं उसे इस आशासे छोड़ रहा हूँ कि मीयादके जो दिन अभी बाकी हैं उसमें लोग सविनय कानून-भंगके मर्मको समझ जायेंगे और हम निडर होकर कानूनका सविनय भंग कर सकेंगे तथा इस तरह सार्वजनिक स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे।

यह लेख मैं त्रिचनापल्लीसे[2] लिख रहा हूँ। यहाँ मुझे एक और भी हुक्म मिला है। वह पुद्दूकोटा नामकी देशी रियासतकी तरफसे आया है। उसपर उस राज्यके किसी अंग्रेज हाकिमके हस्ताक्षर हैं। मुझे उस राज्यकी हदमें से गुजरते हुए चेटीनादको जाना था। महज उसकी हदमें से मेरे गुजरने-भरसे कहीं वहाँकी प्रजापर मेरा असर न हो जाये, इस डरसे वहाँके हाकिम मुझे लिखते हैं: 'राजा साहबने सुना है कि आप उनकी हदमें से होकर जानेवाले हैं। अगर आप ऐसा करेंगे तो सरहदपर तैनात सिपाही आपको वापस लौटा देंगे।' इसका जवाब तो मैंने दे दिया है: 'आपका खत मिला। हाँ, मुझे आपकी हदमें होते हुए जाना तो था, पर आपका यह पत्र मिलनेसे अब मैं दूसरे रास्ते होकर चेटीनाद जाऊँगा।'

पर इन सबको मैं शुभ चिह्न समझता हूँ। अगर इन अवसरोंका उपयोग करना हमें आ जाये तो हम निश्चय ही इसी वर्षमें स्वराज्य प्राप्त कर लें। इसका उपाय

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २२-९-१९२१ का उप-शीर्षक "प्रमाण"।

२. गांधीजी १९ सितम्बर, १९२१ को त्रिचनापल्लीमें थे।

भी कितना आसान है। बस, हम अपने काममें लगे रहें और जेलका स्वागत करें। जेल जानेकी योग्यता अभी हम लोगोंमें नहीं है, चरखेके महत्वको हमने जाना नहीं है! हमारे कितने कार्यकर्ता अपना धर्म समझकर श्रद्धाके साथ चरखा कात रहे हैं? कितनोंने अपने तमाम विदेशी कपड़ोंका त्याग कर दिया है? और यह बात तो कोई अन्धा भी देख सकता है कि सरकार कपड़ेके बहिष्कारको गवारा कर ही नहीं सकती। वह ऐसी अनेक युक्तियाँ काममें ला रही है जिससे हम ऐसे बहिष्कारसे बाज आ जायें।

लड़कोंका स्कूल-कालेज छोड़ना, वकीलोंका वकालत छोड़ना, शराबखोरोंका शराब पीना छोड़ना, यह सब सरकारको खलता तो है, पर फिर भी वह इनको गवारा करती है। लेकिन स्वदेशीको तो वह किसी तरह गवारा नहीं कर सकती। इस विदेशी कपड़े ही के लिए तो यह सरकार यहाँ तशरीफ लाई है और इसीके लिए वह हिन्दुस्तानपर हुकूमत भी करती है! और उसका हमपर बड़ेसे-बड़ा टैक्स बस यही विदेशी कपड़ा ही तो है। जहाँ यह टैक्स देना हमने बन्द किया कि तुरन्त यह सरकार 'हाकिम' के बजाय 'सेवक' बन जायेगी।

सितम्बरका अन्त पास आ रहा है। पता नहीं गुजरातमें बहिष्कार कहाँतक पहुँचा है! कितने चरखे चलने लगे हैं? मैं तो अक्तूबरके पहले गुजरातके दर्शन न कर सकूँगा। लेकिन मुझे उम्मीद है कि जब मैं गुजरातमें पहुँचूँगा तब प्रत्येक भाई और बहनके शरीरपर और उनके घरोंमें खादी-ही-खादी देखूँगा और हर एक घरमें चरखा चलता हुआ नजर आयेगा।

हिन्दुस्तानके शरीरपर अभी खिलाफतका घाव तो ज्योंका-त्यों बना ही हुआ है; पंजाबका घाव अभी बह ही रहा है और अब यह मलाबारका एक ताजा घाव और हो गया। मुझे यकीन है कि अगर गुजरात चाहे तो इन घावोंको सुखा सकता है। यह कहूँ तो अत्युक्ति न होगी कि इसी बातको अपनी आँखों देखनेके लिए मैंने, जेलमें जानेका यह शुभ अवसर हाथसे जाने दिया है। मैं जो इस समय खामोश रह गया हूँ, उसका एक कारण यह भी है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५–९–१९२१

८९. हिन्दू-मुस्लिम एकता

एक परम मित्र लिखते हैं:[1]

इस पत्रके लेखक हिन्दू हैं और हिन्दू-मुस्लिम एकताके पक्षपाती हैं. फिर भी उनके दिलमें शंका पैदा हो गई है। जब इस एकताको दृढ़ताके साथ माननेवाले एक सज्जनके दिलमें यह शक हो गया है, तब जिन लोगोंके दिलमें हमेशा शक बना ही रहता है, उनका तो पूछना ही क्या? इसलिए मैं यह मुनासिब समझता हूँ कि ऐसी शंकाओंका समाधान प्रकट रूपसे किया जाये। अगर हम दिनपर-दिन निडर होते जाते हों तो ऐसी परिस्थिति हो जानी चाहिए जिसमें हम तमाम शंकाओंका विचार जाहिरा तौरपर कर सकें। पूर्वोक्त शंकाको देखकर ऐसा साफ मालूम होता है कि लेखक अहिंसाका अर्थ नहीं समझ पाये हैं। न तो उन्होंने इस्लामका अर्थ समझा है और न हिन्दू-मुस्लिम एकताका ही।

जो अहिंसाको अपना धर्म मानते हैं वे जानते हैं कि उसके सामने वैरभाव —बलात्कार—तो ठहर ही नहीं सकता। अगर मलाबारके हिन्दू अहिंसाका पालन करनेवाले होते तो क्या मजाल थी कि कोई मोपला उनपर जबरदस्ती कर सकता? यहाँ कोई यह कह सकता है कि सभी लोग अहिंसाके पाबन्द नहीं हो सकते। उनका कहना है तो ठीक; पर मैं कहता हूँ कि अगर कुछ थोड़े हिन्दू भी सचमुच अहिंसा-का पालन करें तो उतने ही से दूसरोंकी रक्षा हो सकती है; अहिंसाका ऐसा प्रभाव है। इसपर अगर कोई यह कहे कि हिन्दू लोग अहिंसावादी नहीं हैं, तो फिर पूर्वोक्त सवाल रह नहीं जाता। क्योंकि जो अहिंसावादी नहीं हैं वे तो लड़कर अपनी रक्षा कर सकते हैं—फिर चाहे वे अकेले हों, चाहे अनेक हों। शस्त्र-बलके द्वारा जिन-जिन अर्थोंकी सिद्धि हो सकती है वे सब अहिंसाबलसे भी साध्य हो सकते हैं। जो शस्त्र-बलका उपयोग करते हैं वे भी तो शूर तभी कहाते हैं जब बलवान्से संग्राम करते हैं। पर अहिंसावादी तो शस्त्रास्त्रके बिना ही जूझता है, इसलिए उसके बलकी तो सीमा ही नहीं है। जो धर्मका रक्षण नहीं कर सकता उसे धर्मका अधिकार ही नहीं हो सकता। जो लोग जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये हैं उन्होंने बलात्कारको क्यों सहन किया? उन्होंने प्राण-त्याग क्यों नहीं कर डाला? वे लड़ते हुए जीतकर क्यों नहीं आये या मर क्यों नहीं गये? अगर अंग्रेजोंने उनको बचाया और उससे वे जीवित रहे तो उन्होंने अंग्रेजोंका धर्म कबूल कर लिया। अगर मेरे बचानेसे जिन्दा रहते तो वे मेरा धर्म कबूल करते। उनका तो कोई धर्म ही नहीं था। धर्म तो एक व्यक्तिगत संग्रह है। मनुष्य स्वयं ही उसकी रक्षा और स्वयं ही उसका नाश कर सकता है। जिसकी रक्षा केवल समुदायमें हो सकती है वह धर्म नहीं; वह तो मत है।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है; उसमें पत्र-लेखकने यह शंका प्रकट की थी कि खिलाफतके मामलेमें फतह मिलनेपर कहीं ऐसा न हो कि धर्मान्ध मुसलमान हिन्दुओंको बलात् मुसलमान बनानेका प्रयत्न करने लगें।

इस्लाम यह आज्ञा नहीं देता कि किसीको जबरदस्ती मुसलमान बनाया जाये। यही नहीं बल्कि वह तो बलात्कारका निषेध भी करता है। और यह कहना तो फिजूल है कि इस्लाममें जबरदस्तीसे काम लिया गया है। किसी धर्मके सभी अनुयायी उसका पूरा-पूरा अनुसरण नहीं करते। क्या गो-रक्षाके लिए मुसलमानोंका वध करनेकी आज्ञा हिन्दूधर्ममें है? नहीं। फिर भी हिन्दू उन्मत्त होकर मुसलमानोंके साथ झगड़ते हैं। क्या इस बातको हम नहीं जानते? अगर इस्लामधर्ममें जबरदस्ती करनेका विधान हो तब तो वह धर्म नहीं, बल्कि अधर्म माना जायेगा। मुझे तो यकीन है कि ऐसे बलात्कारकी आज्ञा इस्लाममें हरगिज नहीं है। अगर होती तो तमाम मुसलमान खुलम-खुल्ला यह बात कबूल करते। जबरदस्तीके बलपर आजतक कोई मजहब दुनियाके परदेपर नहीं टिका। मुसलमानोंके शासन-कालका जो इतिहास हम लोगोंको पढ़ाया जाता है उसमें, मेरा मत है कि, बहुत-सी बातें बढ़ाकर कही गई हैं। हाँ, खिलाफतकी फतहसे मुसलमानोंका जोर जरूर ही बढ़ेगा, उनका पराक्रम भी बढ़ेगा; परन्तु इससे यदि हम यह मानें कि मुसलमान लोग उसका उपयोग खुद हिन्दुओंके ही खिलाफ करेंगे तो इसका अर्थ तो यह है कि मुसलमानोंमें शराफत-जैसी कोई चीज ही नहीं है, वे उपकारका बदला अपकारसे देते हैं, अर्थात् उनके यहाँ धर्म ही नहीं है। मुझे तो अबतक जो-कुछ अनुभव हुआ है वह बिल्कुल इसके उलटा है। अनेक मुसलमानोंकी सचाई और शराफतका अनुभव मुझे है।

परन्तु हिन्दू और मुसलमानोंकी एकताका यह अर्थ हरगिज नहीं है कि किसी मुसलमान या किसी हिन्दूसे कभी कोई गलती होगी ही नहीं। गलती हो जानेपर भी जब हम अटल बने रहें तभी यह माना जायेगा कि हमने एकता-धर्मका पालन किया है।

पर अभी इस सवालपर जरा और विचार करें। इस सरकारने हमारी चुटिया तो बेशक जबरदस्ती नहीं काटी है, परन्तु इसने हमारी आत्मा ही को कहाँ रहने दिया है? सरकारके बलात्कारके मुकाबलेमें तो मुझे मोपलाओंका बलात्कार ना-कुछ मालूम होता है। सरकारके हाकिमोंने तो एक क्षणभरमें लोगोंसे खादी छीन ली और हिन्दू और मुसलमान दोनोंको धर्म-हीन कर डाला। हिन्दू-मुसलमानोंका पौरुष किसने हरण किया है? आज तो सरकारके शस्त्र-बलके सामने मुँह उठानेकी भी शक्ति हममें नहीं रह गई। मुगलोंके जमानेमें हमारी ऐसी हीन स्थिति नहीं हुई थी। मोपलाओंके शस्त्रबलका सामना शस्त्रोंके ही द्वारा करनेकी तजवीज तो मैं इसी घड़ी कर सकता हूँ; परन्तु मैं अपनेको शस्त्र-शास्त्रका थोड़ा-बहुत ज्ञाता मानते हुए भी सरकारके शस्त्र-बलके सामने शस्त्र-प्रयोग करनेकी विद्याका आविष्कार न तो खुद ही कर सकता हूँ और न अली-भाई ही अबतक कर सके हैं।

इसके सिवा, हिन्दू और मुसलमानोंकी एकताका टिकना दोनों द्वारा शान्ति-मार्गको स्वीकार करनेपर ही अवलम्बित है। और हर एक कौमके अगुआ लोगोंको यह कबूल करना होगा कि हमारे आपसके झगडोंका फैसला महज शान्तिके रास्ते अर्थात् पंचोंकी मारफत ही होना चाहिए।

अब अन्तमें, जो हिन्दू जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये हैं वे मुसलमान नहीं माने जा सकते और न वे भ्रष्ट ही समझे जा सकते हैं। वे हिन्दू ही माने जाने

चाहिए; उन्हें इसका पूरा-पूरा अधिकार है। उन्हें किसी भी तरहके प्रायश्चित्तकी जरूरत नहीं।

मुझे इतना और भी कह देना उचित है कि जिन-जिन मुसलमानोंने मोपलाओंके अत्याचारोंकी बातें सुनी हैं उन्हें बड़ा ही अफसोस हुआ है और अगर आज हम लोग वहाँ जाने दिये जाते तो मोपला लोग खुद-ब-खुद आकर माफीकी याचना करते। मुझे पूरी उम्मीद है कि जब स्वराज्य मिल जायेगा तब वे लोग जरूर ही माफी माँगेंगे। वे तो सिर्फ एक बात जानते हैं — लड़ना। वे हमारे नादान भाई हैं। उन्हें सुधारनेका प्रयत्न सरकारने तो किया ही नहीं, पर हम लोगोंने भी नहीं किया। क्या इसमें मलाबारके हिन्दुओंका कुछ दोष नहीं है?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-९-१९२१

९०. टिप्पणियाँ

मोपला उपद्रव

इसमें सन्देह नहीं कि मोपला उपद्रवसे हमें काफी हानि पहुँची है। मद्रास प्रान्तमें, हिन्दुओं और मुसलमानोंमें एकताके विषयमें लोगोंका विश्वास हिल गया है। अधिकांशको ऐसा लगने लगा है कि जनता अन्ततक शान्तिका पालन नहीं कर सकती। दूसरे डर गये हैं। इसका यह मतलब नहीं कि वे अब सभाओं आदिमें नहीं आते। किन्तु उनके मनमें यह भय अवश्य प्रवेश कर गया है कि अब क्या होगा? उपद्रवके दरम्यान सैकड़ों मोपले मारे गये और अभी मारे जा रहे हैं। नतीजा यह हुआ कि इस समय मलाबारमें स्वदेशी आन्दोलन बन्द हो गया है। सरकार तो यही चाहती थी। मार्शल लॉकी घोषणासे सरकारको स्वदेशीका नाश करनेका बहुत अच्छा मौका मिल गया। कहा जाता है कि मार्शल लॉ शुरू होनेपर खादीधारियोंके खादीके कपड़े फाड़े और जलाये गये हैं। खादीकी टोपियाँ और चरखे आदि भी जलाये गये हैं। फल यह हुआ कि कालीकटके बाजारमें जो खादीकी टोपियाँ और चरखे आदि दिखते थे वे एक दिनमें ही अदृश्य हो गये। यदि मोपलाओंने यह पागलपन न किया होता तो उसका इतना अनिष्ट परिणाम न होता। यदि उन्होंने रक्तपात न किया होता और फिर भी किसी सरकारी अधिकारीने खादीके कपड़े जलानेकी बदतमीजी की होती तो आज या तो वह अपने पदसे हटा दिया गया होता या खादीका प्रचार ऐसी घटनाओंसे और बढ़ गया होता। किन्तु मोपलाओंके पागलपनसे तो उलटा ही परिणाम निकला है। उन्हें तो स्वदेशीके महत्वका कोई ज्ञान ही नहीं था। दूसरे जो थे वे भीरु थे। वे खादी पहन सकते थे किन्तु उसके लिए मरनेकी शक्ति उनमें नहीं आई है। इसलिए डरके कारण उन्होंने खादी और चरखेका त्याग कर दिया। हमें इससे एक बड़ा सबक सीखना है। हम जो खादी पहनते हैं और खादीकी टोपी धारण करते हैं सो धर्मकी प्रेरणासे करते हैं। तब होना यह चाहिए कि कोई हमें धमकाकर या

डराकर हमसे खादी न छुड़ा सके। इसके लिए यानी स्वदेशीके लिए हमें मृत्युका आलिंगन करनेकी तैयारी रखनी चाहिए और खादी-प्रचारके अपने कार्यमें अधिक उत्साही बनना चाहिए।

धन्य है यह धर्मपत्नी

मौलाना मुहम्मद अलीकी बेगम साहिबाके धीरजको देखकर मैं तो दंग रह जाता हूँ। वाल्टेयरमें जब उनके पति, मौलाना साहब, गिरफ्तार हुए तब वे उनसे मिलने गई थीं। और जब मिलकर लौटीं तब मैंने उनसे पूछा कि आपको घबराहट तो नहीं होती। उन्होंने कहा "नहीं, मुझे जरा भी घबराहट नहीं। पकड़े जानेवाले तो थे ही। यह तो उनका धर्म था।" मैंने उनकी आवाजमें भी घबराहट नहीं पाई। उसके बाद भी वे हमारे ही साथ घूम रही हैं और अपनी हिम्मतका परिचय दे रही हैं। स्त्रियोंकी सभाओंमें और पुरुषोंकी सभाओंमें भी वे बुर्का ओढ़कर आती हैं और थोड़ेमें परन्तु ऐसा भाषण करती हैं कि वह ठेठ दिलकी तहतक पैठ जाता है। वे सबको शान्त रहने, चरखा कातने और खादी पहननेकी सिफारिश करती हैं और मुसलमानोंसे स्मर्नाके लिए चन्दा भी माँगती हैं। कुछ ही महीने पहलेतक उनके बनाव-शृंगारकी इन्तहा नहीं थी। महीन कपड़ेके बिना काम नहीं चलता था। पर आज वे मोटी खादीका हरा रँगा हुआ झगा पहनती हैं। हिन्दू स्त्रियोंकी बनिस्बत मुसलमान-स्त्रियोंको अधिक कपड़े पहनने पड़ते हैं। उसमें भी बेगम साहिबाका बदन कुछ हलका नहीं है। तो भी वे अपने धर्मके लिए और देशके लिए इस तरह तपस्या कर रही हैं। इसका फल यह हो रहा है कि उनका दर्शन करनेके लिए अब जगह-जगहपर मुसलमान बहनें भी आया करती हैं।

मद्रास प्रान्तकी मुसलमान बहनोंकी पोशाक मुझे बहुत ही सादा नजर आती है। जहाँ हिन्दू-बहनोंकी पोशाकमें तो रंग-बिरंगेपनका पार ही नहीं है, वहाँ मुसलमान-बहनों-की पोशाकमें मुझे मोटा सफेद कपड़ा ही नजर आता है। यह दृश्य मुझे बहुत पवित्र मालूम होता है। हिन्दू-बहनोंकी रंग-बिरंगी साड़ियाँ इस समय तो मुझे बड़ी अटपटी मालूम होती हैं।

स्वदेशीका अभाव

मद्रासमें स्वदेशीका प्रचार बंगालसे भी कम हुआ दीखता है और स्त्रियोंमें तो, हम ऐसा भी कह सकते हैं कि वह है ही नहीं। लेकिन मुझे आश्वासन दिया गया है कि अब वह वेगसे बढ़ेगा। गरीबोंमें कातनेका शौक अपने-आप बढ़ रहा है। मद्रासके व्यापारियोंने मुझसे कहा है कि उनकी दुकानोंमें विलायती कपड़ेकी माँग बहुत कम है और स्वदेशीकी खपत खूब बढ़ी है। हो सकता है, यह बात सच हो। और यदि यह सच हो तो इससे यह सिद्ध होता है कि प्रचारका यह कार्य कांग्रेसके कार्यकर्त्ताओंकी मार्फत कम हुआ है; जागृति अपने-आप ही हुई है।

मद्रासके नेता

स्वदेशीके प्रचारके इस अभावका दोष नेताओंको अवश्य ही दिया जा सकता है। लेकिन मद्रासमें सेवक कम नहीं हैं। श्री राजगोपालाचारीकी योग्यताकी सीमा नहीं

है। इसी तरह डा० राजनकी भक्तिकी सीमा नहीं है। किन्तु इन सेवकोंको एक नया वातावरण पैदा करना था और इसमें उन्हें बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। फिर भी वे टिके रहे हैं और अपना काम करते रहे हैं। यह बात जितनी सन्तोषजनक है, उतनी ही आश्चर्यजनक भी है। मद्रासके लोगोंकी धार्मिकताके प्रति मुझे आदर है। वहाँकी जनता दूसरे प्रान्तोंकी जनताकी ही तरह भोली है; उसके अध्यवसायका तो पार ही नहीं है। इसलिए यद्यपि मद्रास आज पीछे है लेकिन ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वह अगली पंक्तिमें पहुँचेगा ही नहीं। मद्रासमें बुनकर बहुत हैं और उनका कौशल उत्तम कोटिका है। मैं उनके प्रमुख व्यक्तियोंसे कुम्भकोणम्में मिला था। उन्होंने मुझे वचन दिया है कि वे हाथसे काते हुए सूतका ही उपयोग करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५–९–१९२१

९१. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

गाड़ीमें
२५ सितम्बर, [१९२१]

प्रिय चार्ली,

तुम्हारा पत्र मिला। बेशक विदेशी कपड़ोंकी होली जलाना आन्दोलनके लिए बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। इन कपड़ोंकी होली जलाना नापसन्द करते हुए भी जो चाहे, इस आन्दोलनमें शरीक हो सकता है। महादेवकी बातसे मुझे ऐसा लगा कि शायद तुम सारे आन्दोलनकी सचाईपर ही सन्देह करने लगे हो। इसीलिए मैंने तुमको लिखा कि यदि सन्देह करते हो तो भी तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम ज्योंका-त्यों बना रहेगा, उसपर कोई आँच आनेकी नहीं।[1] परन्तु यह देखकर कि तुम आन्दोलनमें अब भी उतना ही विश्वास रखते हो जितना पहले, स्वभावतः मुझे सान्त्वना मिलती है। जिन मित्रोंका सहयोग मैं बनाये रख सकता हूँ; उन सभीका बनाये रखना चाहता हूँ। साथ ही मैं आन्दोलनकी सच्चाईमें इतना ज्यादा विश्वास करता हूँ कि मौका आनेपर अकेले खड़ा रहकर भी उसको बनाये रखनेमें मैं सन्तोष मानूँगा। हिंसा और उससे सम्बन्धित सभी गौण बुराइयोंकी पूजासे बचनेका अन्य कोई उपाय नहीं है।

आशा है, इस समुद्र-यात्रासे तुम्हें लाभ होगा।

श्रीमती पेटिट और श्री पेटिटको[2] मेरी याद जरूर दिलाना।

सस्नेह

तुम्हारा,
मोहन

१. देखिए "पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको", १४–९–१९२१।
२. सर दिनशा पेटिट (१८७३–१९३३); बम्बई विधान परिषद्के सदस्य।

[पुनश्च :]

मैंने आज तुम्हें एक तार[1] भेजा है।

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ९५५) की फोटो-नकलसे।

९२. पत्र : महादेव देसाईको

कोयम्बटूर जाते हुए
रविवार [२५ सितम्बर, १९२१]

भाईश्री महादेव,

मुझे तुम्हारा वह पत्र जो तुमने उर्मिला देवीको लिखे हुए पत्रके साथ भेजा है मिला। इससे पहलेका पत्र नहीं मिला।

यह सत्य है कि बंगालसे मुझे निराशा हुई, मद्राससे उससे भी अधिक। मैं इस बातको अच्छी तरह जनता हूँ कि हमारा असली कार्य कांग्रेसके कार्यकर्त्ताओंके दिलोंमें चरखेके प्रति विश्वास जमाना ही है। यह विश्वास मुझे बंगालमें नजर नहीं आया। यहाँ भी वह दिखाई नहीं देता इसीसे मैं घबरा गया हूँ। सामान्य जनताको उसमें विश्वास है, लेकिन उन्हें मददकी जरूरत है, कौशलकी जरूरत है। अगर सब कोई कुछ-न-कुछ करनेके लिए कहें और करनेवाला कोई भी न हो, तो क्या स्थिति होगी? वही हाल हमारा है। सरूप और रणजीतको तो क्या कह सकते हैं? लेकिन जवाहरलाल समझेगा, ऐसा मैं मानता हूँ। मैं आश्रममें बैठकर सिर्फ यही काम करने लगूँ, यह बात होनेमें देर नहीं लगेगी।

हिन्दुस्तानकी अधोगतिसे मुझे इतना परिताप होता है कि अगर हिन्दुस्तान इस वर्षके अन्ततक सचेत नहीं हो जाता तो यह परिताप कदाचित् मुझे जिन्दा ही जला डालेगा — मेरे इतना सब कहने और लिखनेका आशय यही है। मैंने अपनी श्रद्धाको तो छोड़ा नहीं है। मैं तो जब बुद्धिका प्रयोग करके हिसाब करने बैठता हूँ तब मैं व्याकुल हो जाता हूँ। इतनेमें ही मेरे अन्तरसे आवाज आती है कि "करनेवाला तो ईश्वर है।" 'कछुआ और कछुवीका संवाद'[2] और 'मामेरू'[3] आदि को याद करता हूँ और शान्त हो जाता हूँ। मैं दो तारीखको बम्बई पहुँचूँगा। तुम चार तारीखको आना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ११४१९) की फोटो-नकलसे।

१. यह उपलब्ध नहीं है।

२. भोजा भगत (१७८५–१८५०) का सुप्रसिद्ध गुजराती भजन।

३. कवि प्रेमानन्द (१६९२–१७९०) रचित गुजराती भक्तिकाव्य जिसमें भक्त नरसिंह मेहताकी पुत्रीके सीमन्तकी रस्म स्वयं भगवान द्वारा अदा किये जानेका मार्मिक वर्णन है।

९३. पत्र : मणिबहन पटेलको

रेलमें
२५ सितम्बर, १९२१

चि० मणि,

तुम्हारे दो पत्र मेरे पास रखे हैं। तुम्हारा काम ठीक चल रहा है। अब तो थोड़े दिनमें वहीं मिलेंगे, इसलिए उसके बारेमें कुछ नहीं लिखता।

कुमुदबहनका हाल पढ़कर मुझे दुःख होता है। उनसे मैं जरूर मिलना चाहता हूँ। ६ तारीखको मैं अहमदाबाद आ ही जाऊँगा। वहाँ कितने समय रहना होगा, यह तो नहीं जानता। परन्तु मैं वहाँ रहूँ उस बीचमें कुमुदबहन आश्रममें आयें तो मैं उनके साथ बातचीत कर सकूँगा। मैं उनकी सेवा करना और उन्हें शान्ति देना चाहता हूँ। तुम उन्हें यह पत्र ही भेज दो तो काम चल सकता है।

२ तारीखको मैं बम्बई पहुँचनेकी आशा रखता हूँ। ४ तारीखतक तो वहाँ रहना ही है।

काका विट्ठलभाईका रास्ता अलग ही है। हमें उनकी चिन्ता नहीं करनी है। उन्हें जो ठीक लगे भले ही वे वही करें और कहें।

मोहनदासके आशीर्वाद

श्री मणिबहन
द्वारा श्री वल्लभभाई, बैरिस्टर
भद्र, अहमदाबाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने

९४. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदीको

ट्रेनमें
२५ सितम्बर, १९२१

भाईश्री ५,

मैं आपका पोस्टकार्ड अबी पड़ रहा हुं. आपको रुपये न भेज सका, अब तो मुंबईमें दे दूंगा. मैं मुंबईमें २ अक्टोबरको पहुंचुंगा. चार तारीखतक रहुंगा, इतनेमें आप आ जायें ऐसा चाहता हुं.

मोहनदास गांधी

बनारसीदास चतुर्वेदी एसक्यू[1]
शान्तिनिकेतन
बोलपुर
ई० आई० रेलवे

जी० एन० २५७८ की फोटो-नकलसे।

९५. भाषण : अभिनन्दनके उत्तरमें[2]

२७ सितम्बर, १९२१

मैं आपको आपके इस सुन्दर अभिनन्दन-पत्र और जिस सुन्दर मंजूषामें वह रखा गया है, उसके लिए हृदयसे धन्यवाद देता हूँ। जैसा कि आप जानते हैं, मेरे पास चाँदीके पात्र या मंजूषा रखनेके लिए कोई स्थान नहीं है। इसलिए इस चाँदीका उपयोग सार्वजनिक कार्योंमें किया जायेगा। अपने अभिनन्दन-पत्रमें आपने प्रगतिका जो लेखा प्रस्तुत किया है, उसके लिए मैं सेलम नगरपालिकाको बधाई देता हूँ — इसलिए और भी कि आपके स्कूलोंमें पंचम बच्चोंको बेरोक-टोक दाखिल किया जाता है, और आपकी कौंसिलमें पंचम जातिका एक सदस्य भी है। जिस स्थानने कांग्रेसको उसका अध्यक्ष[3] और एक मुख्य सचिव दिया हो, उस स्थानसे इससे कमकी आशा भी नहीं की जा सकती। आपने कहा है कि असहयोगके लिए आप नगरपालिका सम्बन्धी नियमकी सीमाके अन्दर रहते हुए सभी कार्य करनेको तैयार हैं। आपने यहाँ उन तीन खास बातोंका उल्लेख

१. जुलाई १९२० में चीफ्स कालेज, इन्दौरसे त्यागपत्र देकर शान्तिनिकेतनमें सी० एफ० एन्ड्रयूजके साथी हो गये; बादमें उनकी आत्मकथाके सह-लेखक।

२. यह अभिनन्दन सेलम नगरपालिका द्वारा किया गया था।

३. सी० विजयराघवाचार्य।

किया है जिनपर असहयोगियोंका ध्यान केन्द्रित है और यदि आप उनमें दो बातें और जोड़ दें तो मेरा खयाल है कि आप असहयोगका कार्यक्रम लगभग पूरा कर लेते हैं। मुझे जरा भी सन्देह नहीं है कि आप अहिंसा-धर्मका पालन करें और पूरे सेलम जिलेमें या अपने शहरमें अहिंसाका प्रचार करें इसमें आपका नियम किसी तरह बाधक नहीं है। उसी तरह मुझे विश्वास है कि आपकी नियमावली हिन्दू-मुस्लिम एकताको बढ़ावा देनेसे भी आपको नहीं रोकती। फिर, मेरी कही हुई अन्तिम दो बातों तथा मद्यनिषेधको उत्तेजन देनेका सबसे अच्छा तरीका यह है कि हम अपना ध्यान स्वदेशीपर केन्द्रित करें, और हालाँकि सेलममें मैं स्वदेशीकी प्रगति मद्रास अहातेके अन्य स्थानोंसे कहीं ज्यादा देखता हूँ, फिर भी आपने स्वदेशीके लिए जितना कुछ किया है, उससे मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ। मैं नहीं जानता कि इस नगरपालिकाके सदस्य अपने घरोंमें निष्ठापूर्वक स्वदेशीका पालन कर रहे हैं या नहीं। मैं नहीं जानता कि वे स्वयं सूत कातनेमें सिद्धहस्तता प्राप्त करके प्रचारके लिए उपयुक्त व्यक्ति बन पाये हैं या नहीं। मुझे सन्देह है कि सेलम नगरपालिकाके अधीन चलनेवाले स्कूलोंमें आपने कताईको अनिवार्य नहीं किया है। नगरपालिकाके सभी कर्मचारियोंके लिए खद्दरकी पोशाक निर्धारित करनेकी दृष्टिसे मैं आपको लाहौर नगरपालिकाका अनुकरण करनेको कहूँगा; और आप जानते हैं कि आपके शहरमें चरखे और खद्दरके प्रचलनका क्या मतलब है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इससे शहरकी पूरी आमदनीमें २५ प्रतिशत बढ़ोतरी हो जायेगी। मैं जानता हूँ कि आपका नगर बुनाईका एक बड़ा केन्द्र है और यदि नगरपालिका अपना कर्त्तव्य निभाये तो वह आसानीसे बुनकरोंको जापानी या कोई अन्य विदेशी सूत इस्तेमाल न करनेको राजी कर सकती है। इस तरह आपके सामने स्वदेशीका एक बड़ा कार्यक्रम पड़ा हुआ है और मद्रास सरकार द्वारा बनाया जानेवाला कोई भी अधिनियम आपको वह कार्यक्रम पूरा करनेसे रोक नहीं सकता। थाना नगरपालिकाके दृष्टान्तका अनुकरण करते हुए शराबकी दुकानोंपर आप स्वयं धरना दे सकते हैं। यदि आपके पास काफी कोष है तो आप थाना जिला बोर्डकी तरह कांग्रेस कमेटी और खिलाफत समितिको शराबकी दुकानोंपर धरना देनेके लिए थोड़ी रकम दे सकते हैं। आखिरकार हमारा आन्दोलन आत्मशुद्धि तथा आत्म-सम्मानकी खोज और रक्षाका आन्दोलन है। और भी तरीके हैं, जिनके जरिये हम ये दोनों कार्य कर सकते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि सेलम नगरपालिका आत्मशुद्धिके कार्यमें तथा आत्म-सम्मानकी रक्षाके प्रयत्नमें किसीसे पीछे नहीं रहेगी। मैं आपको एक बार फिर आपके अभिनन्दन-पत्रके लिए धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २९-९-१९२१

९६. भाषण : सेलमकी सार्वजनिक सभामें[1]

२७ सितम्बर, १९२१

महात्माजीने . . . कहा कि मुकदमा जितना अधिक अनुचित होगा, अलीबन्धु जितने ज्यादा बेगुनाह होंगे, कष्ट सहकर अपना लक्ष्य प्राप्त करनेके हमारे प्रयत्न उतने ही अधिक सफल होंगे। उन्होंने कहा उनपर चलाये गये मुकदमेका जवाब तत्काल पूरी तरह विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करके तथा घर-घर चरखा चलाना शुरू करके देना है। इसके बाद उन्होंने अस्पृश्यता-निवारणपर बहुत ज्यादा जोर दिया। उन्होंने कहा कि वर्णाश्रम-धर्मको जैसा मैं समझता हूँ उसके अनुसार उसमें किसी मानवके स्पर्शसे दूषित हो जानेकी मान्यताके लिए कोई आधार नहीं है। वर्णाश्रम-धर्म सेवाकी एक योजना है, न कि विशेष अधिकारोंकी। बुरे विचार, बुरे शब्द और बुरे कामसे ही कोई स्त्री या पुरुष दूषित होता है, किसी मनुष्यके स्पर्शसे नहीं।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ३०–९–१९२१

९७. भाषण : अभिनन्दनके उत्तरमें[2]

२८ सितम्बर, १९२१

महात्माजीने. . .उनसे कहा कि आप लोगोंको अपनी नगरपालिकामें स्वदेशीके सन्देशका प्रचार करना चाहिए, अपने सभी स्कूलोंमें चरखा चलवाना प्रारम्भ कर देना चाहिए, नशाबन्दीका काम आगे बढ़ाना चाहिए, अस्पृश्यताके अभिशापसे मुक्त होनेका यत्न करना चाहिए, और अकालका सामना करनेका उपाय करना चाहिए। आप ये सब रुचिकर काम नगरपालिकाके नियमोंका उल्लंघन किये बिना कर सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ५–१०–१९२१

१. यह सभा नगरपालिका-छात्रावासके अहातेमें हुई थी। सभामें पहले तीन अभिनन्दन-पत्र पढ़े गये और इसके बाद श्री विजयराघवाचार्यको अध्यक्ष चुना गया। तदुपरान्त गांधीजीने भाषण दिया।

२. यह अभिनन्दन तिरुपति-नगरपालिकाने किया था।

९८. टिप्पणियाँ

पीड़ित मद्रास

मद्रास कई व्याधियोंसे पीड़ित है। इसके सामने ब्राह्मण-अब्राह्मणकी समस्या है, पंचमोंकी समस्या है, मजदूरोंका सवाल है, और इसे ऐसे कठोर दमनका सामना करना पड़ रहा है जैसे दमनका सामना ऐसे हर प्रान्तको करना पड़ता है, जहाँका गवर्नर सज्जन-सुशील तो हो, किन्तु साथ ही बहुत कमजोर और पूरी तरहसे अपने सलाहकारोंपर निर्भर रहनेवाला हो। चिरला-पेरला दमनकी[1] बात मैं पहले ही बता चुका हूँ। अब सरकार किसानोंसे चरागाह-कर वसूल करनेकी कोशिश कर रही है, किन्तु किसान यह कर न तो देना चाहते हैं और न उनकी ऐसी हालत ही है कि वे दे सकें। मालूम हुआ है, वसूलीकी पागलपन-भरी जिदमें सरकारने करीब २०० पशुओंको कांजी हाउसमें बन्द कर दिया, जिनमें से कुछको अपने बछड़ोंसे भी अलग कर दिया गया। पशुओंको एक ऐसे कांजी हाउसमें ले जाया गया जहाँ न पर्याप्त चारा था, न पानी। यह बात आन्ध्र प्रदेशकी है। यह टिप्पणियाँ मैं त्रिचनापल्लीमें लिख रहा हूँ। इसके पास ही करूर नामक एक स्थान है, जिसकी आबादी २०,००० के आसपास है। यहाँके लोगोंने मद्य-निषेधकी दिशामें बहुत अच्छा काम किया है। अब करीब चालीस व्यक्तियोंको गिरफ्तार कर लिया गया है। ये सबके-सब स्थानीय कांग्रेस कमेटीके सदस्य हैं। इनपर आरोप यह लगाया गया है कि वहाँके कुछ हुल्लड़बाजों द्वारा थियेटरके मैनेजरके चन्दा देनेसे इनकार करनेपर थियेटरको घेर लेनेकी घटनामें इनका भी हाथ था। चन्दा किसी धर्मार्थ कार्य या तिलक स्वराज्य कोषके लिए — मुझे पता नहीं कि किसलिए — माँगा जा रहा था। हुल्लड़बाजोंने यह काम कुछ पहले ही किया था। भीड़को तितर-बितर कर दिया गया था। लेकिन अब इन लोगोंको गिरफ्तार किया जा रहा है। सर्वत्र दमनकी चर्चा है। और अली-बन्धुओंकी गिरफ्तारीके बाद शायद यह चीज और भी बढ़ेगी। लेकिन लोग शान्त रहे हैं। हिम्मतके साथ अहिंसापर डटे रहे हैं। मलाबारका संकट तो असाधारण ही है, लेकिन उससे सरकारके पापका प्याला भर चुका है।

सरकार इतनी घबरा गई है कि कोई नहीं कह सकता, अभी अगले ही पल वह क्या कर बैठेगी। यहाँसे कुछ दूर एक पुडुकोट्टाई राज है। मुझे कुछ गाँवोंका दौरा करना था। मैं इस राजसे ही होकर गुजरनेवाला था। लेकिन, राजको इतना भी गवारा नहीं था। मुझको राजकी ओरसे निम्नलिखित पत्र मिला:

> **हमारे सामने ऐसा माननेका कारण है कि आप इसी महीनेकी २० तारीखको तिरुचिरापल्लीसे चेट्टिनाड जाना चाहते हैं; हमें यह भी बताया गया है कि आप इस राजसे होकर सड़कसे जाना चाहते हैं।**

१. देखिए "चिरला-पेरला", २५-८-१९२१।

यह मानते हुए कि यह जानकारी सही है, मैं आपको यह सूचित करनेके लिए लिख रहा हूँ कि आपको इस राजसे होकर नहीं जाने दिया जायेगा। अगर आप ऐसा करनेकी कोशिश करेंगे तो पुलिस आपको सीमापर रोक देगी।

उत्तरमें मैंने सिर्फ इतना लिखा :[1]

ये देशी-राज्य जो कुछ करते हैं, सबको मैं सरकारका ही अप्रत्यक्ष काम मानता हूँ। लेकिन मैं इन देशी-राज्योंको प्रत्यक्ष रूपसे ब्रिटिश शासनमें रहनेवाली प्रजासे भी अधिक असहाय मानता हूँ, इसलिए मैं बराबर यह जरूरी मानता आया हूँ कि इनके खिलाफ असहयोगी लोग संघर्ष न छेड़ें। इससे बेकारकी उलझन पैदा होगी। लेकिन किसीको किसी स्थानसे होकर गुजरने भी न दिया जाये, यह तो साफ पागलपन है। और अगर मैं उस राज्यमें जाता भी तो वहाँकी प्रजाको मद्य-निषेध, स्वदेशी और अस्पृश्यतापर कुछ सीख-सलाह देनेके अलावा और क्या करता?

"पंचम लोग"

लेकिन अभी तो मुझे इन विभिन्न समस्याओंपर लिखनेका लोभ संवरण ही करना चाहिए। मद्रासमें दिये गये अपने भाषणोंमें सबसे ज्यादा विचार मैंने पंचमों, अर्थात् अस्पृश्योंकी समस्यापर ही किया है, इसलिए मैं इन टिप्पणियोंमें उसपर संक्षेपमें लिखना चाहता हूँ। "अस्पृश्यों" के साथ जितना निष्ठुरतापूर्ण व्यवहार इस प्रान्तमें किया जाता है, उतना और कहीं नहीं किया जाता। उनकी छाया-मात्रसे ब्राह्मण अपवित्र हो जाते हैं। जिन गलियोंमें ब्राह्मण रहते हैं, उन गलियोंसे वे गुजर भी नहीं सकते। ब्राह्मणेतर जातियोंके लोगोंका सलूक भी पंचमोंके साथ इससे कोई अच्छा नहीं होता। इन दो जातियोंके बीच पंचम कहलानेवाले लोग पिस रहे हैं। फिर भी मद्रास भव्य मन्दिरों और धार्मिक निष्ठावाला प्रदेश है। लम्बा तिलक, लम्बे बाल, खुला बदन — इस रूपमें यहाँके लोग ऋषि-जैसे लगते हैं। लेकिन लगता है, उनका सारा धर्म इन्हीं बाहरी विधि-विधानोंमें सिमट कर रह गया है। जिस धरतीने देशको शंकर और रामानुज-जैसी विभूतियाँ दीं, उसी धरतीपर सबसे अधिक कर्मठ और उपयोगी नागरिकोंके प्रति ऐसा डायरवादी जुल्म किया जाये, यह बात कुछ समझमें नहीं आती। और यद्यपि भारतके इस हिस्सेमें हमारे ही परिजनोंके साथ ऐसा शैतानी बरताव किया जाता हो, फिर भी इन दाक्षिणात्य लोगोंमें मेरा विश्वास बना हुआ है। मैंने उनकी सभी बड़ी-बड़ी सभाओंमें उनसे स्पष्ट कहा है कि जबतक हम अपने बीचसे इस अभिशापको खतम नहीं करते तबतक स्वराज्य नहीं प्राप्त हो सकता। मैंने उनसे कहा है कि आज जो लगभग सारी दुनिया हमारे साथ सामाजिक कोढ़ियोंके जैसा व्यवहार करती है, उसका कारण यही है कि हमने भी अपनी जातिके पाँचवें हिस्सेके साथ वैसा ही व्यवहार किया है। असहयोग हृदय-परिवर्तनका आग्रह करके चलता है, और इस परिवर्तनकी अपेक्षा वह सिर्फ अंग्रेजोंके हृदयमें ही नहीं, बल्कि उसी हदतक हमारे हृदयमें भी रखता है। सच तो यह है कि मैं अपेक्षा करता हूँ कि पहले हमारा हृदय बदले और तदनन्तर एक

१. यहाँ नहीं दिया गया; देखिए "पत्र: सिडनी बर्नको", १८-९-१९२१ के पश्चात्।

स्वाभाविक क्रमसे अंग्रेजोंका। जो राष्ट्र किसी युगों पुराने अभिशापसे एक महीनेमें छुटकारा पा सकता है, जो राष्ट्र मद्यपानको उतनी ही आसानीसे छोड़ सकता है जितनी आसानीसे हम अपने कपड़े उतार देते हैं, जो राष्ट्र अपने पुराने उद्योगको दुबारा फिर अपना सकता है और एकाएक अपने अवकाशके समयका उपयोग इस तरह करना शुरू कर सकता जिससे सिर्फ एक ही सालमें वह साठ करोड़ रुपयेका कपड़ा तैयार कर ले, उस राष्ट्रके बारेमें यही माना जायेगा कि उसका कायाकल्प हो गया है। इसके कायाकल्पका असर दुनियापर भी होगा ही। इससे तो किसी नास्तिकको भी ईश्वर-की सत्ता और कृपाकी प्रतीति हो जानी चाहिए, और इसीलिए मैं कहता हूँ कि अगर इस तरहसे भारतका कायाकल्प हो सके तो दुनियाकी कोई भी ताकत इसे स्वराज्य स्थापित करनेके अधिकारसे वंचित नहीं रख सकती। भारतके आकाशमें जो विपत्तिके बादल घुमड़-घुमड़कर जमा हो रहे हैं, उन सबके बावजूद मैं यह भविष्यवाणी करता हूँ कि जिस क्षण भारत "अस्पृश्यों" के प्रति अपने व्यवहारके लिए पश्चात्ताप करने लगेगा, जिस क्षण वह विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार कर देगा उसी क्षण वे ही अंग्रेज अधिकारी, जिनका हृदय आज इतना कठोर हो गया लगता है, एक स्वतन्त्र और बहादुर राष्ट्रके रूपमें इसका स्वागत करेंगे। और चूँकि मैं मानता हूँ कि अगर हिन्दू लोग चाहें तो वे तथाकथित पंचमोंको इस अधोगतिसे मुक्त करके उन्हें वे सारे अधि-कार दे सकते हैं, जिनका वे अपने लिए दावा करते हैं, और चूँकि भारत चाहे तो अपनी जरूरतका सारा कपड़ा उसी तरह स्वयं तैयार कर सकता है जिस तरह यहाँके लोग अपनी जरूरतका सारा खाना स्वयं ही तैयार कर लेते हैं, इसीलिए मैं यह भी मानता हूँ कि इसी वर्ष स्वराज्य प्राप्त किया जा सकता है। विस्तृत पैमानेपर तैयार की गई किसी योजनाको यान्त्रिक तौरपर लागू करनेसे यह कायाकल्प सम्भव नहीं होगा। लेकिन अगर हमपर ईश्वरकी कृपा हो तो यह सम्भव हो सकता है। और इस बातसे कौन इनकार कर सकता है कि ईश्वर हममें से प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें एक अद्भुत परिवर्तन कर रहा है? जो भी हो, हर जगह कांग्रेसके हर कार्यकर्त्ताका कर्त्तव्य है कि वह अस्पृश्य भाइयोंसे मैत्री सम्बन्ध स्थापित करे और सभी अ–हिन्दू हिन्दुओंको समझायें कि 'वेदों' और 'उपनिषदों'के हिन्दुत्वमें, 'भगवद्गीता' तथा शंकर और रामानुजके हिन्दुत्वमें ऐसी कोई चीज नहीं है जिसके आधारपर किसी भी मानव-प्राणको, चाहे वह कितना भी गिरा हुआ हो, अस्पृश्य माना जाये। हर कांग्रेसी यथासम्भव अधिकसे-अधिक विनम्रतासे रूढ़िवादियोंको यह समझाये कि यह कलंक अहिंसा-धर्मके बिलकुल विपरीत है।

मोची बनाम वकील

बाबू मोतीलाल घोष इतने कमजोर हो गये हैं कि चलना-फिरना भी उनके लिए कठिन है। फिर भी, उनके मस्तिष्कमें नौजवानोंके मस्तिष्क-जैसी ताजगी है। एक दिन उन्होंने मुझे और मौलाना मुहम्मद अलीको बुलवाया। उनका मुख्य उद्देश्य हमें इस बातपर राजी करना था कि हम वकीलोंको कांग्रेसमें शामिल होनेको आम-न्त्रित करें और इस प्रकार व्यवहारतः उन्हें एक बार फिर जनमतके निर्विवाद नेतृत्व-

की अपनी पुरानी स्थितिमें प्रतिष्ठित कर दें। हम दोनोंने उनसे कहा कि हम चाहते हैं कि वकील लोग कांग्रेसके लिए काम करें, लेकिन जो लोग वकालत नहीं छोड़ना चाहते वे न तो नेता बन सकते हैं और न उन्हें बनना चाहिए। मोतीबाबूने कहा कि आपने वकीलों और मोचियोंकी चर्चा एक साथ कर दी, उससे कुछ वकीलोंके मनको चोट पहुँची है। यह सुनकर मुझे दुःख हुआ। 'यंग इंडिया'में लिखी वह टिप्पणी[1] मुझे याद है, और निश्चय ही उसे लिखनेमें किसीको चोट पहुँचानेका इरादा नहीं था। वकीलोंके बारेमें मैंने बहुत-सी कड़ी बातें कही हैं, लेकिन ऐसा तो कभी नहीं माना कि वे जात-पातके संकुचित विचारसे ग्रस्त हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि वकीलोंने मेरी बातोंके पीछे जो भावना है उसे समझा है। वैसे तो मैं यही समझता हूँ कि अपने लेखोंमें मैं कहीं किसीको चुभनेवाली बात नहीं कहता। लेकिन, इस मामलेके बारेमें मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि जिस अनुच्छेदकी ओर मोतीबाबूका इशारा था, उसमें किसीको चोट पहुँचानेका मेरा कोई मंशा नहीं था। मैं तो खुद ही एक वकील रहा हूँ, और मैं अपने-आपको इतना कैसे भूल जा सकता था कि इस तरह मनमाने ढंगसे उसी पेशेके लोगोंको चोट पहुँचाता? और फीरोजशाह मेहता[2], रानडे[3], तैयबजी[4], तेलंग[5], मनमोहन घोष, कृष्णस्वामी अय्यर-जैसे वकीलोंने देशकी जो शानदार और अपूर्व सेवा की, उसे भी मैं कैसे भूल सकता हूँ? इन दिवंगत सज्जनोंके अलावा, हमारे बीच वर्तमान वकील लोग आज जो सेवा कर रहे हैं, उनकी बात तो रहने दीजिए। जब किसीमें कुछ बोलनेकी हिम्मत नहीं थी, तब वे जनताकी भावनाको स्वर दे रहे थे और देशकी स्वतन्त्रताके संरक्षकका काम कर रहे थे। और आज अगर उनमें से अधिकांशको जनता अपने नेताके रूपमें स्वीकार नहीं कर रही है तो उसका कारण यह है कि आजतक उन्होंने नेतृत्वके जो गुण दिखाये, अब उनसे भिन्न गुणोंकी अपेक्षा की जाती है। आज हमारे नेताओंसे जिन गुणोंकी अपेक्षा की जाती है, वे हैं साहस, सहनशक्ति, निर्भीकता और, सबसे बढ़कर, आत्म-त्याग। अगर दलित वर्गका ही कोई व्यक्ति इन गुणोंका पूरा परिचय देता है तो निश्चय ही वह राष्ट्रका नेतृत्व कर सकेगा। लेकिन ओजस्वीसे-ओजस्वी वक्तामें भी अगर ये गुण न हों तो वह नेतृत्व नहीं कर सकता।

इस बातसे मुझे बड़ा सन्तोष हुआ है कि जो वकील वकालत नहीं छोड़ पाये हैं, उन्होंने मेरी उक्त मान्यताको स्वीकार करके विनम्र सहायकोंकी तरह काम

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २५-८-१९२१ का उप-शीर्षक "वकालतमें लगे हुए वकील"।

२. १८४५-१९१५; भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके संस्थापकोंमें से एक; १८९० में कांग्रेसके अध्यक्ष।

३. महादेव गोविन्द रानडे (१८४२-१९०१); अर्थशास्त्री, इतिहासकार और समाज-सुधारक, १८९३ में बम्बई उच्च न्यायालयके न्यायाधीश; कांग्रेसके संस्थापकोंमें से एक।

४. गुजरातके एक राष्ट्रवादी मुसलमान, एक समयमें बड़ौदा उच्च न्यायालयके न्यायाधीश; पंजाबके उपद्रवोंकी जाँचके लिए कांग्रेसकी पंजाब उप-समिति द्वारा नियुक्त समितिके एक सदस्य।

५. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके संस्थापकोंमें से एक।

करनेमें ही खुशी मानी है। अगर किसी सेनापतिके साथ उसके छावनी-सेवक —— अनुगामी —— न हों तो उसका पूरा काम ही चौपट हो जायेगा।

इसपर मोतीबाबूने कहा, "लेकिन, हमारे आन्दोलनमें बहुत असहिष्णुता आ गई है। जिन वकीलोंने वकालत नहीं छोड़ी है उन्हें असहयोगी लोग अपमानित करते हैं।" मुझे लगता है कि आरोप एक हदतक सही है। असहिष्णुता स्वयं ही एक प्रकारकी हिंसा है और सच्ची लोकतान्त्रिक भावनाके विकासके मार्गमें बाधा है। थोड़ा-सा त्याग करके या खादी पहनना शुरू करके कोई असहयोगी अहंकारपूर्वक अपने-आपको दूसरोंसे श्रेष्ठ मानने लगे, तो यह इस आन्दोलनके लिए सबसे खतरनाक चीज है। असहयोगी अगर विनम्र नहीं है तो वह कुछ नहीं है। जब किसी व्यक्तिमें आत्म-सन्तोषकी भावना आ जाये तो इसका मतलब है, उसमें विकासकी क्षमता नहीं बच पाई है और वह स्वतन्त्रताके लायक नहीं रह गया है। जो धार्मिक भावसे विनम्रता-पूर्वक थोड़ा त्याग करता है, उसे तत्काल अपने त्यागकी विपन्नता और न्यूनताका एहसास हो जाता है। एक बार जब हम त्यागके मार्गपर कदम बढ़ा देते हैं, तो हमें इस बातका पता चल जाता है कि हममें कितना स्वार्थ है; और फिर हममें बराबर अधिकाधिक देनेकी इच्छा होनी चाहिए और तबतक सन्तोष नहीं मानना चाहिए जब-तक कि हमने अपना सर्वस्व न दे दिया हो।

इस बातका एहसास करते हुए कि हमने इतना कम त्याग करनेकी कोशिश की और जितना त्याग कर पाये वह उससे भी कम है, हमें विनम्र और सहिष्णु बने रहना चाहिए। दूसरोंसे अपनेको अलग रखकर और आसानीसे आत्म-तुष्ट हो जानेकी हमारी प्रवृत्तिके कारण ही बहुतसे ढुलमुल मनके लोग हमसे दूर रहे हैं। हम लोगोंको नम्रतापूर्वक समझायें-बुझायें, उनके मस्तिष्क और हृदयके धरातलोंपर उनसे निरन्तर अनुरोध करते रहें, और इसी तरह उनसे अपना मत स्वीकार करा लें, यही हमारा उद्देश्य होना चाहिए। इसलिए जिन लोगोंके विचार हमारे विचारोंसे भिन्न हैं, उनके साथ हमें बराबर शिष्टता और धैर्यसे पेश आना चाहिए, हमें अपने विरोधियोंको देशके दुश्मन माननेका खयाल अपने मनसे संकल्पपूर्वक अलग रखना चाहिए।

वकील तथा दूसरे ऐसे लोग जो असहयोगमें विश्वास रखते हों, लेकिन किसी कारणसे उन मामलोंमें असहयोग नहीं कर पा रहे हों, जो उनपर लागू होते हैं, वे स्वदेशीके मामलेमें सहायक सेनानियोंके रूपमें चुपचाप काम कर सकते हैं। इसके लिए अधिकसे-अधिक संख्यामें लगनेवाले कार्यकर्त्ताओंकी जरूरत है। कोई कारण नहीं कि वकालत करता हुआ कोई वकील अदालतोंमें भी खादी पहनकर उसका प्रचलन क्यों नहीं बढ़ाये। कोई कारण नहीं कि वह स्वयं और उसके परिवारके लोग अवकाशके समय कताईका काम न करें। वकालत करनेवाले वकील स्वराज्य प्राप्तिकी दिशामें और भी बहुतसे काम कर सकते हैं, जिनमें से यहाँ सिर्फ एकका ही उल्लेख किया गया है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि कोई भी वकालत करनेवाला वकील, और वकील ही क्यों, कोई सहयोगी विद्यार्थी भी, इस आन्दोलनमें वह जिस तरह भी सहायता दे सकता है, उस तरह सहायता देनेसे बाज नहीं आयेगा। सभी नेता नहीं हो सकते, लेकिन सेवक और अनुगामी सभी हो सकते हैं। और मुझे आशा है कि असहयोगी

लोग बराबर ऐसा आचरण करेंगे जिससे ऐसे देशभाई सेवा करनेको तत्पर हों और सेवा करें भी।

एक उचित सवाल

एक मित्रने हिन्दू-मुस्लिम एकतापर मोपला उपद्रवके प्रभावके बारेमें पत्र लिखा है। उसका भाव मैं नीचे दे रहा हूँ:

> मैं हिन्दू-मुस्लिम एकताका पक्का हामी हूँ। लेकिन इस मोपला उपद्रवके कारण मेरे मनमें शंकाएँ उत्पन्न हो गई हैं। खिलाफतकी प्रतिष्ठाके लिए हम जो प्रयत्न कर रहे हैं, उसकी सफलताका मतलब है इस्लामका शक्ति-शाली होना। इस्लामके शक्तिशाली होनेका मतलब है दूसरे धर्मोके लोगोंसे इस्लाम स्वीकार करानेका प्रयत्न करना। क्या हमारे सामने अक्सर इस्लाम स्वीकार करने या मृत्युका वरण करनेका विकल्प नहीं रखा गया है? क्या मोपला-जैसे लोग अहिंसाकी खूबी सीख सकते हैं? और यदि वे अपने धर्मके लिए अहिंसाकी खूबी समझ भी लें तो क्या वे अपने धर्मके प्रचारके लिए हिंसाका प्रयोग नहीं करेंगे? हिन्दू-मुस्लिम एकताकी जरूरतमें मेरा विश्वास अब भी बना हुआ है। लेकिन मैंने जो सवाल उठाये हैं, उन्हें क्या आप उचित नहीं मानते?

सवाल सचमुच उचित हैं — भले ही कारण सिर्फ इतना हो कि वे उक्त पत्र-लेखक-जैसे एक समझदार व्यक्तिके मनमें उठे हैं। लेकिन, मेरे विचारसे इस पूरे सवाल-के बारेमें एक गलतफहमी हुई जान पड़ती है। अगर इस्लामका आधार शरीरबल होता तो हमारा खिलाफतका पक्ष-पोषण करना गलत होता। 'कुरान' में कहीं भी ऐसा कुछ-नहीं कहा गया है जिसके आधारपर लोगोंसे इस्लाम कबूल करानेके लिए शक्तिका प्रयोग करना उचित माना जा सके। 'कुरान पाक' में स्पष्ट कहा गया है कि "मजहबमें जबरदस्तीके लिए कोई गुंजाइश नहीं है।" पैगम्बर साहबका सारा जीवन मजहबके मामलेमें जोर-जबरदस्तीकी अस्वीकृतिकी एक कहानी है। जहाँतक मैं जानता हूँ, किसी भी मुसलमानने जबरदस्तीकी ताईद नहीं की है। अगर इस्लामको अपने प्रसारके लिए बल-प्रयोगपर निर्भर करना पड़ा तो वह विश्व-धर्म नहीं रह जायेगा।

दूसरे, ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे देखें तो इस्लामके अनुयायियोंके खिलाफ कोई ऐसा आरोप सिद्ध नहीं हो सकता कि उन्होंने एक समग्र समुदायके रूपमें इस्लामको कबूल करनेके लिए लोगोंके साथ जोर-जबरदस्ती की है। जब कभी बलपूर्वक लोगोंसे यह धर्म कबूल करानेकी कोशिश की भी गई है तब-तब जिम्मेदार मुसलमानोंने ऐसी कार्रवाईका प्रतिवाद किया है।

तीसरे, हिन्दू-मुस्लिम एकताकी कल्पनामें पहलेसे ही कुछ ऐसा नहीं मान लिया गया है कि इनमें से कोई भी पक्ष कभी कोई गलती नहीं करेगा। इसके विपरीत, इस एकताके विचारके पीछे कल्पना यह है कि हिन्दू-मुस्लिम एकताके प्रति हमारी निष्ठा मोपलों द्वारा लोगोंसे जोर-जबरदस्ती इस्लाम कबूल करानेके प्रयत्न-जैसे आघा-तोंको झेल लेगी, और ऐसे हर मामलेमें हम सम्बन्धित धर्मावलम्बियोंके समग्र समुदाय-को दोषी नहीं मानेंगे, बल्कि जो सचमुच दोषी हैं उनके द्वारा किये गये अन्यायका

प्रतिकार करेंगे, और यह प्रतिकार हम प्रतिशोधकी कार्रवाई करके नहीं, बल्कि पंच-प्रणालीसे करेंगे।

चौथी बात यह है कि भारतको स्वतन्त्र करनेके लिए अहिंसाको स्वीकार करनेमें हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए भी अहिंसाको स्वीकार करनेकी बात समाई हुई है। मोपलोंने निःसन्देह नियम तोड़ा है। लेकिन उसका कारण यह था कि उन्हें नई परिस्थितियोंको जानने-समझनेका कभी मौका नहीं दिया गया। उन्होंने खिलाफतके बारेमें अस्पष्ट रूपसे कुछ सुना तो था, किन्तु अहिंसाके बारेमें वे कुछ नहीं जानते थे।

पाँचवीं बात यह है कि हमें स्वराज्यके अन्तर्गत भारतपर कोई अनिष्ट आ जानेकी आशंका करनेकी जरूरत नहीं है; क्योंकि यह किसी हदतक निश्चित ही है कि अगर कांग्रेस तथा खिलाफतका काम करनेवाले कार्यकर्ताओंको मोपलोंके बीच जाने दिया जाता तो उन्होंने इस अनिष्टको तभी दबा दिया होता जब वह अंकुरकी अवस्थामें था। और जैसा हुआ उसके आधारपर प्रमाणपूर्वक कहा जा सकता है कि खिलाफतके कार्यकर्त्ता जहाँ-जहाँ जा पाये, वहाँ उन्होंने लोगोंको बहुत हदतक शान्त रखा। मेरे लिए तो मोपला उपद्रव हिन्दू-मुस्लिम एकताका एक प्रमाण है, क्योंकि उस उपद्रवके बीच भी हम शान्त रहे। एक परिवारके सदस्यकी तरह हम आपसमें कभी-कभी झगड़ा-तकरार करेंगे ही, लेकिन बराबर हमारे बीच ऐसे नेता रहेंगे जो हमारे मतभेदोंका समाधान करके हमें नियन्त्रित रखेंगे।

छठी बात यह है कि भविष्यमें ऐसे उत्पातोंकी सम्भावना देखते हुए भी हिन्दू-मुस्लिम एकताका और कोई विकल्प क्या है? क्या अनन्तकालतक गुलाम बनकर रहना? अगर हम एक-दूसरेको अपना सहज शत्रु मानते हैं तो क्या हममें से किसीके सामने सदाके लिए विदेशियोंकी गुलामी करनेके अलावा और कोई चारा है? क्या मौजूदा विदेशी हुकूमत जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन करनेको मजबूर किये जाने या उससे भी किसी बुरी बातकी सम्भावनासे भी बदतर नहीं है? अगर हिन्दू-धर्म बलप्रयोगको झेल नहीं सकता तो फिर वह किस कामका है? इस मित्रने जैसा सवाल पूछा है, क्या मुसलमान भी वैसे ही सवाल नहीं पूछ सकते? क्या ऐसी कोई सम्भावना नहीं है कि, जैसा तीन साल पहले शाहाबाद जिलेमें हुआ, वैसे ही हिन्दू लोग फिर लूटपाट और हत्याएँ करें? इसलिए क्या हर हालतमें स्पष्टतः हिन्दू-मुस्लिम एकता ही इसका उपाय नहीं है? हिन्दुओं और मुसलमानोंमें से कोई भी एक पक्ष जब अपना आपा खो दे तो दूसरे पक्षके सामने दो रास्ते हैं: या तो वह प्रतिकारस्वरूप हाथ उठाये बिना बहादुरीसे मर मिटे, जिससे शरारत तुरन्त बन्द हो जायेगी, अथवा वह प्रतिकारस्वरूप हाथ उठाये और इस तरह बहादुरीके साथ जिये या मरे। व्यक्तियोंके लिए ये दोनों रास्ते तबतक खुले रहेंगे जबतक इस दुनियाका अस्तित्व है। ये सारे सवाल इसलिए उठते हैं कि हम असहाय हो गये हैं। हम अपने धर्मके लिए अपना हाथ उठाये बिना मर मिटनेकी दिव्य कला भूल गये हैं, और उसी तरह जानको खतरेमें डाल कर आत्म-रक्षाके लिए बल-प्रयोग करनेकी भी कला भूल गये हैं। और हिन्दू-मुस्लिम एकता यदि दो समुदायोंके बहादुर स्त्री-पुरुषोंके बीचकी साझेदारी नहीं है तो वह

एकता किसी कामकी नहीं। हमें बराबर एक-दूसरेमें विश्वास रखना चाहिए, लेकिन अन्ततः तो हमें स्वयं अपना और ईश्वरका ही भरोसा रखना चाहिए।

उचित भावना

एक बहनको मैंने स्वदेशीका काम और अधिक लगनसे करनेको लिखा था। उत्तरमें उन्होंने लिखा है:

> **मैंने इन महीनोंमें जितना थोड़ा काम किया है, उसका सवाल आते ही मेरी आँखोंमें आँसू आ जाते हैं। क्या ही अच्छा होता, अगर मैं आपको अपना हृदय चीरकर दिखा सकती कि उसमें क्या है। अपने पहले पत्रमें आपने मुझसे यह काम धार्मिक भावनासे अपनानेको कहा था, और मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मैंने अपना धर्म मानकर ही उसे अपनाया है। अपने मनमें मैं धर्म और देशभक्तिको कभी अलग-अलग नहीं मान पाई हूँ। मेरे लिए दोनों एक ही हैं। हम दावा तो बहुत-कुछ होनेका करते हैं, किन्तु आत्मविश्लेषण करने-पर पाते हैं कि हम कुछ नहीं हैं. . . हमने अपनी अनुभूतिकी सारी शक्ति खो दी है। हम दासताकी व्यथाका पर्याप्त अनुभव नहीं करते, अन्यथा लोग इतने उदासीन कैसे रह पाते, जब कि समय इतनी तेजीसे भागा जा रहा है?**

यह सम्भव नहीं है कि पाठकोंके लाभके लिए यह सुन्दर पत्र पूराका-पूरा प्रकाशित कर दूँ। जितना अंश उद्धृत करनेकी हिम्मत कर सकता था, उतना कर दिया है। उद्देश्य पाठकोंको — स्त्री-पुरुष दोनों वर्गोंके पाठकोंको — इस बहनके धार्मिक उत्साह-का अनुकरण करनेको प्रेरित करना है। पाठकोंको यहाँ बता दूँ कि यह बहन अपने एक सुन्दर और निःस्वार्थ तरीकेसे देश-सेवा कर रही है।

एक बहादुर स्त्री

देशके कल्याणके लिए स्त्रियोंके कामके बारेमें जानकर मुझे जो खुशी होती है, उससे पाठकोंको अवगत कराते हुए मैं बेगम मुहम्मद अलीके कार्योंके बारेमें अपने आह्लादकारी अनुभव बतानेका लोभ संवरण नहीं कर सकता। पिछली बार जब हम लोग बम्बईमें थे, तभी उन्होंने अपने पतिके काममें सार्वजनिक रूपसे हाथ बँटाना शुरू किया। उन्होंने प्रारम्भ किया स्मर्ना-कोषके लिए चन्दा माँगनेसे। उसके बाद हमारी बिहार, आसाम तथा पूर्वी और पश्चिमी बंगालकी कठिन और अनवरत यात्रामें वे हमारे साथ रहीं। उन्होंने महिलाओंकी सभाओंमें बोलना प्रारम्भ कर दिया। और मैंने देखा कि उनमें वक्तृत्वकी प्रतिभा अपने पतिसे कुछ कम नहीं है। उनके भाषण छोटे होते थे, किन्तु इस कारण उनके असरमें कोई कमी नहीं आती थी; और मेरे लिए तो यह कहना कठिन है कि वे अपने पतिको थोड़ेसे-थोड़े शब्दोंमें अधिकसे-अधिक कहनेकी कला सिखा नहीं सकती थीं। पाठकोंको यह मालूम होना चाहिए कि बेगम साहिबाकी सिरसे पाँवतक की सारी पोशाक मोटी खादीकी थी; और पोशाकके मामलेमें मुसलमान बहनें हिन्दू बहनों की तुलनामें जरा कम ही खुशकिस्मत हैं, क्योंकि उन्हें

बहुतसे ऐसे कपड़े भी पहनने पड़ते हैं जो हिन्दू बहनोंको नहीं पहनने पड़ते। फिर भी वे बुरका पहनती ही रहीं। अगर कोई मुल्ला कोई ऐसी नजीर ढूँढ़ निकाले जिसके बलपर सार्वजनिक काम करनेवाली महिलाओंको बुरका — और खासकर जब वह बुरका भी खादीका हो — त्यागनेकी छूट मिल जाये, तो यह एक दयाका काम होगा। खैर, जो भी हो, असमकी दम घोटनेवाली गरमीमें भी वे सब-कुछ बहादुरीसे सहती रहीं।

लेकिन उनकी सबसे कठिन परीक्षा और सबसे बड़ी विजयकी घड़ी तब आई जब वाल्टेयरमें उनके पतिको उनसे अलग कर दिया गया। मैंने उन्हें उस कमरेसे बाहर आते देखा था जिसमें उनके पतिको नजरबन्द करके रखा गया था। वे प्लेट-फार्मपर दृढ़ कदमोंसे चल रही थीं। और जब मैंने उनसे पूछा कि आपको क्या इस बातसे खुशी नहीं है कि आखिरकार आपके पति गिरफ्तार हो गये, तो उन्होंने तनिक भी विचलित हुए बिना जवाब दिया कि मैं बेशक खुश हूँ, क्योंकि वे खुदाके लिए और अपने वतनके लिए जेल जा रहे हैं। पाठकोंको मालूम ही है कि उन्होंने किन साहस भरे शब्दोंके साथ अपने पतिको [जेलकी] उस गौरवपूर्ण यात्रापर विदा किया। हम लोग मद्रास-यात्रापर आगे बढ़े। वहाँ समुद्रके किनारे एक भारी सार्वजनिक सभा हुई। श्रोता लोग उनसे बिलकुल अनभिज्ञ थे। वे सभामें गईं और जरा भी लड़खड़ाये बिना ऊँची आवाजमें बहुत सुन्दर हिन्दुस्तानीमें बोलीं। और जब एकके बाद एक वाक्य उनके मुँहसे निकल रहे थे, मुझे अनायास कहना पड़ा कि वे एक बहादुर पतिकी बहादुर पत्नी हैं। वे हमारे साथ यात्रापर आईं, इस बातसे मुझे गर्वका अनुभव हुआ। नीचे मैं उनके भाषणका स्वतन्त्र अनुवाद दे रहा हूँ:

> मेरे हिन्दू और मुसलमान भाइयो तथा बहनो, मुझे आपको यह बताते हुए बड़ी खुशी हो रही है कि अपने पतिकी गिरफ्तारीपर मैं जरा भी दुःखी नहीं हूँ। मैंने उनसे जेलमें खुश रहनेको कहा है और वादा किया है कि मैं उनके कामको आगे बढ़ानेके लिए अपनी लियाकत-भर पूरी कोशिश करूँगी। मुझे उम्मीद है कि हमारे हिन्दू और मुसलमान भाई, सभी लगातार काम करते रहेंगे और इस तरह स्वराज्य हासिल करेंगे। अगर आप मौलाना साहबको जल्द ही रिहा देखना चाहते हैं तो आप सबको खादी पहननी चाहिए, सभी बहनोंको अपने धर्म और वतनकी खातिर रोज चरखा चलाना चाहिए। मौलाना साहबकी जगह इस्लाम और हिन्दुस्तानकी सेवा करनेके लिए बहुत सारे लोगोंको आगे आना चाहिए। मैं मुसलमान भाइयोंसे यह मिन्नत भी करूँगी कि 'अंकारा सहायता कोष' के लिए वे अपनी सामर्थ्य-भर पूरा चन्दा दें।

शाबाश नागपुर!

नागपुर नगरपालिकाने पूर्ण मद्य-निषेधके सवालपर जनमत संग्रह कराकर जनता-की जो सेवा की है उसके लिए वह बधाईकी पात्र है। मतसंग्रहका परिणाम बहुत महत्वपूर्ण है। दो हजार तीन सौ तैंतालीस मतदाताओंने मत दिया। इनमें से दो हजार तीन सौ बत्तीस मतदाताओंने पूर्ण मद्य-निषेधके पक्षमें मत दिया। छः व्यक्तियोंने

अगर-मगरके साथ मद्य-निषेधके पक्षमें मत दिया था और केवल पाँच मद्य-निषेधके खिलाफ गये। पाठकोंको यह जानकर दुःख होगा कि मद्य-निषेधके खिलाफ मत देने-वाले पाँच लोगोंमें से दो स्नातक थे। लेकिन यह जो एक तथ्य सामने आया है, उसे कोई दूसरे दृष्टिकोणसे देखते हुए कह सकता है कि ये दोनों स्नातक अपने विश्वासके प्रति इतने ईमानदार थे कि उन्होंने साहसपूर्वक लोकापवादका खतरा उठाकर भी अपनी अन्तरात्माके निर्देशके अनुसार मत दिया। ऐसे जनमत संग्रहके शैक्षणिक महत्वमें कोई सन्देह नहीं हो सकता। बड़ा अच्छा होता, अगर कांग्रेस कमेटीके मन्त्रीने, जिसके कहने-पर मत-संग्रह किया गया, मतदाता सूचीमें मत देने योग्य सभी लोगोंके नाम दर्ज कराये होते। आशा तो यही है कि दूसरी नगरपालिकाएँ भी नागपुरके दृष्टान्तका अनुकरण करेंगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९–९–१९२१

९९. राजभक्तिसे भ्रष्ट करनेका आरोप[1]

कुछ समय पूर्व बम्बईके गवर्नर महोदयने लोगोंको चेतावनी दी थी कि कोई इसे मजाक न समझे, मैं जो कह रहा हूँ, करके छोड़ूँगा। उन्होंने कहा था कि जैसे भाषण दिये जा रहे हैं, वैसे भाषणोंको अब मैं बरदाश्त करनेवाला नहीं हूँ। अली-बन्धुओं और दूसरोंके सम्बन्धमें लिखी अपनी टिप्पणीमें उन्होंने अपना आशय स्पष्ट कर दिया है। अली-बन्धुओंपर यह आरोप लगाया जानेवाला है कि उन्होंने सिपाहियोंको राज-भक्तिसे भ्रष्ट करनेका प्रयत्न किया और राजद्रोहात्मक बातें कहीं। मुझे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मैंने कभी नहीं सोचा था कि बम्बईके गवर्नर ऐसे दयनीय अज्ञानका परिचय देंगे। स्पष्ट है कि गत बारह महीनोंमें भारतमें क्या-कुछ हुआ है, उसकी ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। जाहिर है, कि वे नहीं जानते कि पिछले साल, सित-म्बर महीनेसे ही कांग्रेसने सिपाहियोंको राजभक्तिसे विमुख करनेका काम शुरू कर दिया था, केन्द्रीय खिलाफत समितिने उससे पहले यह काम शुरू कर दिया था और उससे भी पहले स्वयं मैं ऐसा करने लगा था। कारण, जिस व्यक्तिने यह बात सुझाई कि भारतको हर सिपाहीसे, बल्कि सरकारकी सेवामें किसी भी हैसियतसे लगे हर व्यक्तिसे खुलेआम ऐसा कहनेका अधिकार है कि वह सरकारके अन्यायोंमें भागीदार है, वह व्यक्ति मैं ही हूँ। उसके लिए प्रशंसा या निन्दा जो मिले, मुझको ही मिलनी चाहिए। कराची कान्फ्रेंसने तो इस्लामके सन्दर्भमें कांग्रेसकी घोषणाको सिर्फ दुहराया-भर है। इस्लामकी ओरसे तो जो-कुछ कहना होगा, मुल्ला लोग ही कह सकते हैं, लेकिन हिन्दुत्व और राष्ट्रीयताकी ओरसे मैं निस्संकोच कहूँगा कि चाहे सैनिकके रूपमें हो या गैर-सैनिक अधिकारीके रूपमें, किसी भी हैसियतसे किसी भी व्यक्तिके लिए उस

१. यह उन लेखोंमें से एक था जिनके लिए गांधीजीको छः सालकी सजा दी गई।

सरकारकी चाकरी करना पाप है, जिसने भारतके मुसलमानोंके साथ धोखेबाजी की है और जो पंजाबमें अमानवीय व्यवहार करनेकी अपराधी है। मैंने यह बात कई मंचोंसे कितने ही सिपाहियोंकी उपस्थितिमें कही है। अगर मैंने सिपाहियोंसे अलग-अलग यह अनुरोध नहीं किया है कि वे नौकरी छोड़ दें, तो उसका कारण यह नहीं है कि मैंने वैसा अनुरोध करना नहीं चाहा; उसका कारण सिर्फ इतना ही है कि हममें उनके भरण-पोषणकी सामर्थ्य नहीं है। मैंने बिलकुल निस्संकोच भावसे सिपाहियोंसे कहा है कि अगर आप नौकरी छोड़ देनेके बाद कांग्रेस या खिलाफतवालोंसे सहायता लिये बिना गुजारा कर सकते हों तो आपको तुरन्त नौकरी छोड़ देनी चाहिए। और मैं विश्वास दिलाता हूँ कि जिस समय भारतके हर घरमें चरखेको स्थायी रूपसे स्थान मिल जायेगा और जब प्रत्येक भारतीय महसूस करने लगेगा कि हर व्यक्ति जब चाहे बुनाईसे सम्मानजनक ढंगसे अपनी आजीविका कमा सकता है, उसी समय मैं, गोलीसे उड़ा दिये जानेका खतरा उठाकर भी, भारतीय सिपाहियोंसे अलग-अलग और व्यक्तिगत रूपसे कहूँगा कि वे नौकरी छोड़कर बुनकर बन जायें। इसमें मैं तनिक भी आगा-पीछा नहीं करूँगा। कारण स्पष्ट है। क्या सिपाहियोंका उपयोग भारतको गुलामीमें रखनेके लिए नहीं किया गया है? चाँदपुरमें उस भयंकर रात्रिमें क्या उनका उपयोग निरीह स्त्रियों, पुरुषों और बच्चोंको स्टेशनसे निकाल बाहर करनेके लिए नहीं किया गया है? क्या उनका उपयोग मैसोपोटामियाके स्वाभिमानी अरबोंको गुलाम बनानेके लिए नहीं किया गया है? और क्या उनका उपयोग मिस्रवालोंको कुचलनेके लिए नहीं किया गया है? जिस भारतीयमें मानवताका तनिक भी लेश होगा, जिस मुसलमानमें अपने धर्मका तनिक भी अभिमान होगा, उसकी भावना अली-बन्धुओंसे भिन्न कैसे हो सकती है? इन सिपाहियोंका उपयोग कमजोर और असहाय लोगोंकी स्वतन्त्रता या उनके सम्मानकी रक्षा करनेवाले सैनिकोंके रूपमें तो कम, किरायेके कातिलोंकी तरह ज्यादा किया गया है। गवर्नर महोदयने हमसे यह कहकर कि अगर ब्रिटिश सिपाही न होते तो मलाबारमें क्या-कुछ हो गया होता, हमारी बुरीसे-बुरी भावनाको उभारा है। मैं गवर्नर महोदयको बता देना चाहूँगा कि अगर बरतानियाकी संगीनोंकी सहायता न मिली होती तो मलाबारके हिन्दू उस मुसीबतको ज्यादा अच्छी तरह झेल लेते, अगर ब्रिटिश हुकूमत आड़े न आई होती तो हिन्दुओं और मुसलमानोंने मिल-जुलकर मोपलोंको शान्त कर लिया होता, अगर खिलाफतका सवाल न होता तो मोपलोंने शायद कोई फसाद ही नहीं किया होता, हिन्दू लोग अपने अहिंसा-धर्मपर भरोसा करते हुए एक-एक मुसलमानको मित्र बना लेते, या नहीं तो हिन्दुओंके शौर्यकी परीक्षा ही हो गई होती। बम्बईके गवर्नर महोदयने हिन्दू-मुस्लिम विभेदको बढ़ावा देकर अपना और अपने पक्षका (दोमें से जिसका भी हो) अहित किया है, और ऐसी टिप्पणी लिखकर, जिसका अर्थ यह लगाया जाता है कि हिन्दू लोग बिलकुल असहाय प्राणी हैं, जिनमें अपने घर-बार या धर्मकी रक्षा करनेकी सामर्थ्य नहीं है या उनके लिए उनमें मर मिटनेका साहस नहीं है, हिन्दुओंका अपमान किया है। लेकिन अगर गवर्नर महोदयका कहना ही ठीक हो तो हिन्दू लोग जितनी जल्दी इस दुनियासे मिट

जायें, मानवताके लिए उतना ही अच्छा होगा। लेकिन मैं गवर्नर महोदयको यह याद दिला देना चाहता हूँ कि आज ब्रिटिश शासनको भारतीय लोग पौरुषहीन लगते हैं, जो अपने आपको डाकू-लुटेरोंसे नहीं बचा सकते, चाहे वे लुटेरे मोपला मुसलमान हों या आराके हिन्दू, तो यह कहकर उन्होंने ब्रिटिश शासनकी सबसे बड़ी निन्दा की है।

गवर्नर महोदयने अली-बन्धुओंको राजद्रोही कहा है। यह बात राजभक्तिमें खलल डालनेकी बातसे जरा कम आपत्तिजनक है। कारण, उन्हें मालूम होना चाहिए कि राजद्रोह कांग्रेसका धर्म हो गया है। हर असहयोगी कानून द्वारा स्थापित इस सरकारके विरुद्ध अराजभक्तिका प्रचार करनेके लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। असहयोग यद्यपि एक धार्मिक और विशुद्ध रूपसे नैतिक आन्दोलन है, फिर भी इसका सोचा-समझा हुआ उद्देश्य सरकारको उखाड़ फेंकना है, और इसलिए भारतीय दण्ड-संहिताके अनुसार यह कानूनी तौरपर एक राजद्रोहात्मक आन्दोलन है। लेकिन यह कोई नई बात नहीं है। लॉर्ड चेम्सफोर्ड इसे जानते थे। लॉर्ड रीडिंग भी जानते थे। अतः यह समझमें आने लायक बात नहीं है कि बम्बईके गवर्नर महोदय इसे नहीं जानते हों। लेकिन सभीने यह स्वीकार किया था कि जबतक यह आन्दोलन अहिंसात्मक रास्तेसे चलता है, इसमें कोई दखल नहीं दिया जायेगा।

लेकिन अब यह कहा जा सकता है कि सरकारको जब लगे कि एक प्रणालीके रूपमें उसके अस्तित्वपर ही इस आन्दोलनसे खतरा आ पड़ा है, तब उसे अपनी नीति बदलनेका अधिकार है, उसके अधिकारसे मैं इनकार नहीं करता। मुझे आपत्ति गवर्नर महोदयकी टिप्पणीपर है, क्योंकि उसकी शब्दावली ऐसी है जिससे नासमझ जनता यह समझ सकती है कि सिपाहियोंकी राजभक्तिमें खलल डालकर और राजद्रोह करके अली-बन्धुओंने ऐसे नये अपराध किये हैं जो गवर्नर महोदयके ध्यानमें पहले-पहल लाये गये हैं।

जो भी हो, कांग्रेस और खिलाफतके कार्यकर्त्ताओंका कर्त्तव्य स्पष्ट है। हम सरकारसे कोई रियायत नहीं माँगते, न हमें इसकी आशा है। हमने यह वचन भी तो नहीं माँगा था कि जबतक हम अहिंसापर डटे रहेंगे, हमें जेल नहीं भेजा जायेगा। सो अब अगर हमें राजद्रोहके कारण जेल भेजा जाये तो हमें शिकायत भी नहीं करनी चाहिए। इसलिए हमारे आत्मसम्मान और हमारी प्रतिज्ञाका तकाजा है कि हम शान्त, निरुद्विग्न और अहिंसक बने रहें। हमें जिस रास्तेपर चलना है, वह निर्धारित कर दिया गया है। हम सैकड़ों हजारों मंचोंपर खड़े होकर सिपाहियोंके बारेमें अली-बन्धुओंकी बातें दुहरायेंगे, और जबतक सरकार हमें गिरफ्तार नहीं कर लेती, हम खुलेआम और संगठित ढंगसे अराजभक्तिका प्रचार करते रहेंगे। और हम यह कार्य क्रुद्ध होकर प्रतिशोधकी भावनासे नहीं, बल्कि अपना धर्म मानकर करते हैं। जैसे अलीबन्धु खादी पहनते हैं वैसे ही हमें भी खादी पहननी चाहिए और स्वदेशीका सन्देश लोगोंके बीच फैलाना चाहिए, मुसलमानोंको स्मर्ना-सहायता कोष और अंकारा-कोषके लिए चन्दा जमा करना चाहिए। हमें अली-बन्धुओंकी ही तरह स्वराज्य प्राप्त करने तथा खिलाफत और पंजाबके साथ किये गये अन्यायोंके परिशोधनके लिए स्वदेशी तथा अहिंसाका प्रचार करना चाहिए।

संकट अब हमारे सिरपर लगभग आ पहुँचा है। जो रोगी संकटको झेल लेता है, उसका कल्याण होता है। अगर हम एक ओर खतरेके सामने चट्टानकी तरह अडिग डटे रहते हैं और दूसरी ओर अधिकसे-अधिक आत्मसंयमसे काम लेते हैं तो निश्चित है कि हम इसी वर्ष अपने लक्ष्यको पा लेंगे।

[अंग्रेजी]

यंग इंडिया, २९-९-१९२१

१००. भाषण : बेल्लारीमें

१ अक्तूबर, १९२१

मानपत्र पढ़े जा चुकनेके बाद, महात्माजीने हिन्दीमें उनका उत्तर दिया। उन्होंने खिलाफत समिति द्वारा कोई मानपत्र न दिये जानेपर खेद प्रकट किया। उन्होंने कहा, मैं नहीं जानता कि यहाँ कोई खिलाफत-समिति है भी या नहीं। यदि यहाँ कोई खिलाफत समिति है तो उसका मानपत्र न देना खेदजनक है। उन्होंने कहा: मुझे बेल्लारीसे अनेक पत्र मिले हैं जिनमें कहा गया है कि वहाँ वकीलों, नगरपालिकाके सदस्यों, हिन्दुओं और मुसलमानोंमें मतभेद है। जबतक एकता और शान्ति नहीं होती, तबतक कांग्रेसका काम आगे नहीं बढ़ सकता। इसलिए मेरा आपसे अनुरोध है कि आप सब अपने-अपने मतभेद मिटा दें और एक हो जायें। आन्ध्र और कर्नाटकके प्रश्नपर जो मतभेद हैं, उनके सम्बन्धमें उन्होंने कहा कि यह प्रश्न स्वराज्य मिलनेपर हाथमें लिया जा सकता है। उन्होंने लोगोंसे चरखा चलाने और खादी तैयार करनेकी अपील की। उन्होंने बेल्लारी जिलेमें वकालत बन्द करनेके सम्बन्धमें लोगोंकी बहुत कम, लगभग नहींके बराबर प्रतिक्रिया होनेपर खेद प्रकट किया। उन्होंने अन्तमें कहा: आधी रात हो जानेपर भी इतने लोग यहाँ आये हैं और मेरे स्वागतमें सम्मिलित हुए हैं, इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ३-१०-१९२१

१०१. मेरी लँगोटी

मैंने अपने जीवनमें जो भी परिवर्तन किये हैं, सभी किसी-न-किसी महान प्रसंगको लेकर ही किये हैं। और ये परिवर्तन मैंने इतना सोच-विचार कर किये हैं कि बादमें मुझे शायद ही पछताना पड़ा हो। फिर, ऐसे परिवर्तन मैंने तभी किये हैं जब उन्हें किये बिना मैं रह ही नहीं सकता था। ऐसा ही एक परिवर्तन मदुरामें मैंने अपनी पोशाकके बारेमें किया।

इसका विचार मेरे मनमें पहले बारीसालमें आया। खुलनाके अकाल-पीड़ितोंकी ओरसे जब ताना मारते हुए मुझसे कहा गया कि उधर वहाँके लोग अन्न-वस्त्रके अभावमें मर रहे हैं और इधर आप कपड़ोंकी होली जला रहे हैं, तो मुझे लगा कि एक लँगोटीसे ही मुझे सन्तोष करना चाहिए और अपना कुरता तथा धोती [खुलनाके लोगोंके लिए] डा० रायको भेज देने चाहिए। किन्तु मैंने उस भावावेशपर नियन्त्रण कर लिया। कारण, उसमें अहंकारका भाव था। मैं जानता था कि उस तानेमें कोई सचाई नहीं है। खुलनाके लोगोंको मदद दी जा रही थी और एक ही जमींदारमें उनके दुःखके निवारणकी पूरी सामर्थ्य थी। इसलिए मेरा कुछ करना जरूरी नहीं था।

दूसरा प्रसंग तब आया जब मेरे साथी मुहम्मद अली मेरे ही सामने गिरफ्तार कर लिये गये। उनकी गिरफ्तारीके बाद तुरन्त मैं सभामें गया। उसी समय कुरता और टोपी उतार देनेका इरादा किया। लेकिन फिर ऐसा सोचकर कि इसमें दिखावटी-पनका दोष आ जायेगा, मैंने इस बार भी अपने भावावेशपर नियन्त्रण कर लिया।

तीसरा प्रसंग मद्रास-यात्राके दौरान आया। लोग मुझसे कहने लगे कि हमारे पास तो पर्याप्त खादी ही नहीं है। और खादी मिलती है तो खरीदनेको पैसा नहीं है। "मजदूर लोग अगर अपने विदेशी कपड़ेकी होली जला दें तो फिर वे खादी लायें कहाँसे?" यह बात मेरे हृदयमें घर कर गई। इस दलीलमें मुझे सत्यका आभास मिला। "गरीब लोग क्या करें?"—इस विचारसे मैं आकुल हो उठा। अपना दुःख मैंने मौलाना आजाद सोबानी, श्री राजगोपालाचारी, डा० राजन आदिको सुनाया और बताया कि अब मुझे सिर्फ एक लंगोटी पहनकर ही रहना चाहिए। मौलाना साहबने मेरा दुःख समझा। उन्हें मेरा विचार बहुत पसन्द आया। दूसरे साथी चिन्तित हो उठे। उन्हें लगा कि इतने बड़े परिवर्तनसे तो लोगोंमें घबराहट छा जायेगी। कुछ लोग इसे समझ नहीं पायेंगे, कुछ लोग मुझे पागल मानने लगेंगे, और मेरा अनुकरण करना सभीको असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य लगेगा।

मैं चार दिनोंतक इन विचारोंका मंथन करता रहा और दलीलोंपर गौर करता रहा। अपने भाषणोंमें लोगोंसे कहने लगा कि अगर आपको खादी न मिले तो आप सिर्फ लंगोटी पहनकर ही रहिए, किन्तु विदेशी कपड़ेको तो उतार ही फेंकिए। लेकिन ऐसा कहते हुए मुझे बड़ा संकोच होता था। जबतक मैं धोती-कुरता वगैरह पहन रहा था तबतक मेरी इस बातमें कोई जोर नहीं आ सकता था।

फिर, मद्रासमें मैंने स्वदेशीका जो अभाव देखा उससे भी मुझे अकुलाहट हुई। लोगोंमें प्रेम बहुत देखा, लेकिन वह प्रेम मुझे छूँछा लगा।

मैं फिर परेशान हो उठा, फिर साथियोंसे चर्चा की। उनके पास कोई नई दलील तो थी नहीं। इस बीच सितम्बरका अन्त निकट दिखने लगा। इस महीनेके अन्ततक बहिष्कारका कार्यक्रम तो पूरा होना ही चाहिए — यह कैसे हो? या मैं इसके लिए क्या करूँ?

ऐसा सोचते हुए हम २२ तारीखको मदुरा पहुँचे। मैंने निश्चय कर लिया और इस कठिनाईका यह हल निकाला कि कमसे-कम अक्तूबरके अन्ततक तो मैं सिर्फ लंगोटी पहनकर ही रहूँगा। दूसरे दिन, प्रातःकाल मदुरामें बुनकरोंकी सभा थी। उसमें मैं मात्र एक लंगोटी ही पहन कर उपस्थित हुआ। आज यह तीसरी रात है।

मौलाना साहबको तो यह बात इतनी पसन्द आई है कि उन्होंने भी अपनी पोशाकमें, शरीअतके मुताबिक जितना सम्भव था, उतना परिवर्तन कर लिया है। पाजामेकी जगह एक छोटी लुंगी धारण की है और कुहनीतक के आस्तीनका कुरता पहना है। नमाज पढ़ते समय सिरपर कुछ होना जरूरी है, इसलिए वे सिर्फ उसी समय टोपी पहनते हैं।

दूसरे सभी साथी शान्त हैं। मद्रासके आम लोग इस परिवर्तनको आश्चर्यसे देख रहे हैं।

लेकिन अगर सारा भारत मुझे पागल कहे तो उससे क्या? अथवा हमारे साथी मेरा अनुकरण न करें तो भी इस बातसे क्या फर्क पड़ता है? यह काम मैंने साथियोंके अनुकरण करनेके लिए तो किया नहीं है। इसका उद्देश्य सिर्फ जनसाधारणको धीरजका रास्ता दिखाना है, और अपना रास्ता साफ करना है। अगर मैं खुद लँगोटी पहनकर न रहूँ तो दूसरोंसे ऐसा करनेको कैसे कह सकता हूँ? भारतमें लाखों लोग नंगे घूमते हैं। फिर यहाँ मुझे क्या करना चाहिए? जो भी हो, सवा महीने लँगोटी मात्र पहनकर रहनेका अनुभव क्यों न प्राप्त करूँ? मैंने अपने वश-भर कुछ उठा नहीं रखा, इतना सन्तोष तो प्राप्त करूँ?

ऐसा सोचकर मैंने यह कदम उठाया है। मेरे ऊपरसे तो बोझा उतर गया है। यहाँकी आबोहवामें वर्षके आठ महीने कुरता वगैरह पहननेकी तो जरूरत ही नहीं लगती। उसमें भी मद्रासके बारेमें तो हम कह सकते हैं कि यहाँ बारहों महीनोंमें कभी सर्दीका मौसम आता ही नहीं। और मद्रासमें प्रतिष्ठित लोग भी धोतीके अलावा और कपड़ा बहुत कम पहनते हैं।

भारतके करोड़ों किसानोंकी पोशाक तो लँगोटी ही है। वे इससे कुछ अधिक नहीं पहनते, ऐसा मैंने सब जगह देखा है।

यह सब मैं सिर्फ इसी इच्छासे लिख रहा हूँ कि पाठक मेरे मनका ताप समझें। मैं ऐसा नहीं चाहता कि मेरे साथी अथवा पाठकगण सिर्फ लँगोटी ही पहन कर रहें। लेकिन यह अवश्य चाहता हूँ कि वे सब विदेशी कपड़ेके बहिष्कारका पूरा अर्थ

समझें और बहिष्कार तथा खादीके उत्पादनके लिए उनसे जितना बन पड़े करें। वे समझें कि स्वदेशी ही सर्वस्व है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २–१०–१९२१

१०२. बहनोंसे

[२ अक्तूबर, १९२१]

प्यारी बहनो,

मैं यह विचार कर रहा हूँ कि आज अपने जन्म-दिवसपर मैं आपको क्या सन्देश भेजूँ। मेरे जन्मदिवससे आप बहनोंका क्या सम्बन्ध हो सकता है? मुझे भारतकी स्त्रियाँ क्यों जानती हैं? इस प्रश्नपर विचार करता हूँ तब मुझे लगता है कि वे मुझे, उनके प्रति मेरे प्रेमके कारण जानती हैं। वे यह बात जानती हैं कि मुझे स्त्रियोंकी शील-रक्षा प्यारी लगती है और मैंने उन्हें उसका सबसे आसान और अच्छा उपाय बताया है। यह उपाय स्वदेशी है। स्वदेशी धर्मका पालन करनेमें जितनी सहायता स्त्रियाँ कर सकती हैं उतनी पुरुष नहीं कर सकते। जिस समय भारतकी पुत्रियाँ सूत कातकर अपना और दूसरोंका शरीर ढका करती थीं उस समय भारत चाहे निर्धन रहा हो, किन्तु वह आजकी तरह बिलकुल कंगाल न था। उस समय भारतीय स्त्रियाँ अपने सतीत्वकी रक्षा जैसे कर सकती थीं वैसे आज नहीं कर सकतीं, यह मैं देख सकता हूँ। इसलिए इसी बातको मैं बहनोंके सामने आज फिर रखता हूँ।

आप सब बहनें नित्य कमसे-कम एक घंटा सूत अवश्य कातें। सब बहनें सादगीसे रहना अपना धर्म समझें और उसीको अपना शृंगार मानें एवं कन्याएँ जो सूत कातें उसीसे बनाये गये कपड़ोंको पवित्र मानें और उसीसे अपने अंग ढकें।

मैं इसीमें भारतके लिए स्वराज्य देखता हूँ और चाहता हूँ कि इसी तरह बहनें भी देखें।

यदि हम किसी मनुष्यके प्रति अपना सम्मान और प्रेम प्रकट करना चाहते हैं तो उसका सर्वोत्तम उपाय यह है कि हम नित्य उसका अनुकरण करें।

मैं भारतसे जो-कुछ माँग रहा हूँ उसका उद्देश्य केवल एक ही है, और वह यह है कि भारतमें सत्ययुग आ जाये।

हमें भारतमें जो काम करने हैं उनमें स्त्रियोंकी शिक्षाका काम पहला है। यदि हम स्त्रियोंको शिक्षा दें तो वे अपने शील–सम्मानकी रक्षा कर सकती हैं। इस तरहकी शिक्षा देनेके लिए बड़ी विद्वत्ता की नहीं, केवल चरित्रकी जरूरत है।

आज आपने मेरे प्रति जो प्रेम प्रकट किया है उसके आधारपर मैं अब आपसे यह प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे ऊपर ऐसा प्रेम भी प्रकट करें जिससे यहाँ आप फिर सत्ययुग ला सकें। भारत अवश्य ही अपनी रक्षा स्वयं कर सकता है। यदि हम

अपने देशमें बनाये गये कपड़ेका ही व्यवहार करेंगे तो यह निश्चय है कि हम कुछ ही दिनोंमें अपने देशकी सुरक्षाकी व्यवस्था कर लेंगे। इसीलिए मैं चरखेके प्रचारका उद्योग कर रहा हूँ। चरखा चलानेसे स्त्रियोंके शीलकी रक्षा होती है। इसके अतिरिक्त और कोई ऐसा धन्धा नहीं है जिसे करोड़ों बहनें घर बैठे-बैठे कर सकें और उसमें अपने अवकाशके समयका उपयोग कर सकें। सूत कातनेमें कोई अधिक ज्ञान की भी जरूरत नहीं है। भारतके लोगोंको स्वावलम्बी बनना सीखना चाहिए। जब भारतमें वीर स्त्री-पुरुष पैदा होंगे तभी हम स्वावलम्बी हो सकेंगे। हमें सत्याग्रहकी वीरता दिखानी है। इसमें शस्त्रकी वीरताकी अपेक्षा अधिक वीरताकी आवश्यकता होती है। यदि हममें यह वीरता आ जाये तो हम स्वतन्त्र हो ही जायें। इससे आप बाहर जानेवाले करोड़ों रुपयोंको भारतमें ही बचा सकती हैं और अपनी बहनोंकी रक्षा भी कर सकती हैं।

मैंने आपसे जो प्रार्थना की है यदि वह आपको उचित लगती हो तो आप अपने देशके लिए निम्न कार्य करनेके लिए तैयार हो जायें :

१. आप गरीब लोगोंमें घूमें और जहाँ अन्न-वस्त्रका कष्ट देखें वहाँ उनमें चरखा दाखिल करें, उनकी भुखमरीको दूर करें और उन्हें स्वावलम्बी बनायें।

२. जहाँ-जहाँ गन्दगी हो, रोगग्रस्त स्त्री-बच्चे हों, जहाँ लोग हीन दशामें दिखाई दें वहाँ आप लोगोंको ऐसे साधन दें जिनसे वे संयममें रहकर स्वच्छ, स्वस्थ और शुद्ध जीवन बिता सकें और इस तरह आप उन्हें उनकी मौजूदा स्थितिका ठीक भान करायें।

३. जहाँ-जहाँ ज्ञान-प्रचारकी आवश्यकता हो या लोगोंमें ज्ञान प्राप्तिकी अभिलाषा हो वहाँ आप उनको ज्ञान देनेके जरूरी साधन जुटायें और स्वयं भी उनमें ज्ञान-प्रचारका प्रयत्न करें।

इन कार्योंको करनेके लिए पहले आत्मशुद्धि, आत्मविकास, सबके प्रति भगिनी-भाव और विनयशीलताकी आवश्यकता है।

यदि भगिनी समाज[1] इन कार्योंको करनेका निश्चय कर ले तो उसके सम्मुख कार्यका बहुत ही सुन्दर और फलदायी क्षेत्र पड़ा हुआ है। यह कार्यक्षेत्र इतना विस्तीर्ण है कि यदि उसमें ठोस कार्य किया जाये तो इससे अधिक बड़ी प्रवृत्ति उसके सम्मुख कोई दूसरी नहीं हो सकती और इससे आप "होमरूल" शब्दका उच्चारण किये बिना ही उसकी भारी सेवा कर सकती हैं। जब छापेखाने नहीं थे, भाषण देनेकी सुविधा भी कम थी, जब हम आजकी तरह २४ घंटेमें हजार मीलके बजाय २४ मीलकी यात्रा भी मुश्किलसे कर सकते थे तब अपने विचारोंके प्रचारका एक ही मुख्य साधन माना जाता था — यह साधन था अपना आचरण। कहा जाता है कि उसका असर बहुत अधिक होता था। आज तो हम वायुके वेगसे चलते हैं, व्याख्यान देते हैं, लेख लिखते हैं तिसपर भी हम जो-कुछ सोचते हैं उसपर लोगोंको अमल करानेमें असमर्थ रहते हैं। हर दिशासे लगभग निराशाका स्वर सुनाई देता है। मुझे तो लगता है कि पहलेकी

१. बम्बईकी एक समाजसेवी संस्था।

तरह आज भी अपने कार्यके द्वारा लोगोंपर हम जितना प्रभाव डाल सकते हैं उतना भाषणों और लेखोंसे नहीं डाल सकते। यह समाज मुख्यतः मौन रहकर कार्य करे ऐसी आपसे मेरी नम्र प्रार्थना है।

हम इतनी सारी पुस्तकें पढ़ते हैं किन्तु जो-कुछ पढ़ते हैं उसमें से कोई बात आचरणमें नहीं लाते तो सारा पढ़ना व्यर्थ है। इसलिए ढेरकी-ढेर पुस्तकें पढ़नेकी बजाय आप थोड़ा पढ़ें और उसको अपने आचरणमें लानेका प्रयत्न करें।

संसारमें शास्त्र अनेक हैं। मैं उन सबके नाम गिनाना नहीं चाहता किन्तु यह माननेमें कोई हानि नहीं है कि आप किसी शास्त्रके जितने अंशको अपने आचरणमें उतारती हैं, आपने उस शास्त्रका उतना ही रहस्य प्राप्त किया है।

हम बहुत-सी प्रतिज्ञाएँ करते हैं, किन्तु उनका पालन करनेका ध्यान नहीं रखते, यह उचित नहीं है। हम जो भी प्रतिज्ञा करें हमें उसका पालन सचाईसे करना चाहिए। चाहे हमें अपने प्राणोंका त्याग करना पड़े किन्तु हमें अपनी प्रतिज्ञाका भंग नहीं करना चाहिए।

आप अपने जीवनको आदर्शमय बनायें। रोममें तो आदर्श बदल गये हैं। परन्तु अभी भारतने अपने आदर्श नहीं भुलाये हैं। हम हिन्दू हों चाहे मुसलमान, सभी अपने पूर्वजोंके उत्तराधिकारी हैं। और हम अपने इस उत्तराधिकारकी रक्षा तभी कर सकेंगे जब हम जीवनके आदर्शोंको सतत अपने लक्ष्यमें रखें। हमारे पूर्वजोंमें सात्विक प्रवृत्ति प्रधान होती थी, किन्तु आज तो वह नष्ट हो गई जान पड़ती है। जिधर देखते हैं उधर ही लोगोंके जीवनमें दम्भ दिखाई देता है। सभी लोग व्यवहारमें पग-पगपर असत्य बोलने लगे हैं। हमें अपना यह दोष दूर करना चाहिए और अपना जीवन सत्यमय बनाना चाहिए।

आपका विनीत भाई,
मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ६–१०–१९२१

१०३. धर्म या अधर्म?

कभी-कभी तो ऐसे लोग भी टेढ़-मेढ़े सवाल पूछ बैठते हैं और अपने कड़ुवे अनुभव पेश करते हैं जो इस युद्धमें हमारी सफलता चाहते हैं और जो असहयोगके भी कायल हैं। ऐसे सवाल मुझे चौंका देते हैं; पर साथ ही सावधान भी कर देते हैं। अपने एक मित्रके ऐसे एक पत्रका सार नीचे देता हूँ। उन्होंने यह पत्र बड़े प्रेमके साथ लिखा है। ये देशके हितचिन्तक हैं और वीर हैं। धर्म उन्हें प्रिय है। साथ ही, उन्हें मनुष्यके स्वभावका विस्तृत अनुभव है। उनके पत्रका आशय जितना मुझे याद रह गया है, अपनी भाषामें देता हूँ —

"आपकी नीयतके विषयमें तो किसीको जरा भी शक नहीं। आपके साधन भी निर्दोष हैं। परन्तु विद्यार्थियोंसे जो आपने स्कूल-कालेज छुड़वाये हैं, यह काम क्या आपको ठीक एवं सराहनीय मालूम होता है? क्या इसका नतीजा बुरा नहीं होगा? मैं तो आज ही देख रहा हूँ कि इसका बुरा असर हुआ है। आजादीका सबक सिखानेसे उनका जी घर-बारकी तरफसे उचट गया है और माँ-बापके प्रति लड़कोंका आदरभाव कम हो गया दिखाई देता है। स्वराज्य तो मिले लेकिन मर्यादा-धर्मका लोप हो जाये तो ऐसा स्वराज्य किस कामका? भला बच्चोंको चरखा कातना कहीं शोभा देता है? हाँ, बड़े हो जानेपर वे जो जी चाहें सो करते रहें। यदि लड़के माँ-बापके साथ गुस्ताखीसे पेश आते हैं तो वे धर्म-भ्रष्ट हुए बिना तो रह ही नहीं सकते।

"असहयोगियोंके प्रति आपका अच्छा खयाल होना तो स्वाभाविक ही है। पर कहीं इसमें आपको भ्रम तो नहीं हो रहा है? क्या आपको यह विश्वास है कि सब लोग आपके ही जैसे हैं? मुझे तो यह दिखाई देता है कि इनमें बहुतेरे लोग ढोंगी हैं, मतलबी और घमण्डी हैं। अगर भले-भले आदमियोंको खोकर आप उच्छृंखल लोगोंको अपने साथ लिये हुए हों तो क्या आप यह पसन्द करेंगे? काश, मैं आपको अपनी आँखें दे सकता और यह दिखा सकता कि दुनियाकी तमाम सफेद चीजें दूध नहीं होतीं।

"आपकी विजय कामनासे प्रेरित होकर ही मैंने यह शंका की है और आपका समय लिया है।"

लेखकने अपने पत्रमें जितनी सरलता और सभ्यतासे काम लिया है उसे मैं यहाँ पूरी तरह प्रकट नहीं कर सका हूँ। उन्होंने महज प्रेमवश होकर ही यह पत्र लिखा है। और ऐसे पत्र मुझे हमेशा इस पसोपेशमें डाल देते हैं कि कहीं सचमुच मर्यादाका लोप तो नहीं हो रहा है?

मुमकिन है, कुछ लड़के गुस्ताख हो गये हों। जब 'गीता'के नामपर बम फेंके गये हैं तब मेरे वचनोंका अनर्थ हो, तो इसमें अचम्भेकी क्या बात है? पर मुझे तो यकीन है कि स्कूल-कालेजोंके बहिष्कारके इस आन्दोलनका फल, समष्टि रूपसे अच्छा ही हुआ है। विचार तो अच्छा ही था। मुझे इस बातका पूरा निश्चय है कि इस

राक्षसी राज्यके स्कूलोंमें पढ़ना पाप है। सोलह सालसे कमके लड़कोंके लिए तो यह बात थी ही नहीं, और मेरी धारणा है कि सोलह सालसे ऊपरकी उम्रके युवकमें निर्णयशक्ति जागृत हो जाती है।

एक और भी खयाल मेरे दिमागमें चक्कर मारा करता है। क्या आजकल माँ-बाप यह समझते हैं कि उनका धर्म क्या है? भला जहाँ माँ-बाप खुद ही पतित हों वहाँ लड़कोंका धर्म क्या होगा? जहाँ खुद माँ-बाप ही व्यभिचारी हों और दुर्व्यसनी हों तो भला उनके जवान लड़के-लड़कियोंको क्या करना चाहिए? गुलामोंके लड़के किस रास्तेपर चलें?

ऐसे विषयोंमें मर्यादा-शास्त्रका एकांगी अर्थ करनेसे सिवा विषम परिणामके और क्या हाथ आ सकता है? घूसखोर माँ-बापकी औलादको घूसके पैसेपर अपना निर्वाह करना चाहिए या उसका त्याग? मान लीजिए कि हिन्दू माँ-बाप अपना धर्म छोड़ दें तो क्या उनके लड़कोंको भी अपना धर्म छोड़ देना चाहिए?

इस जमानेमें हमें जिस प्रकार राजभक्तिकी एक सीमा बाँधनी पड़ती है उसी प्रकार पितृभक्तिकी भी हद बाँध देनेपर ही काम चल सकता है।

जहाँ राजा व्यभिचारी हो, जहाँ राजा प्रजाको पीड़ित करता हो, जहाँ वह प्रजाके धन-सम्पत्तिपर तरह-तरहके भोगविलास करता हो, रक्षकके गुणको छोड़कर भक्षक हो जाता हो, वहाँ राजभक्ति अगर पाप न मानी जाये तो फिर पुण्य ही पाप हो जायेगा। राजभक्ति तो रामभक्तिको ही कह सकते हैं, रावण-भक्तिको कदापि नहीं। हाँ, दशरथ वन जानेकी आज्ञा दें और राम खुशीसे जायें, यह तो सुसंगत है, परन्तु हिरण्यकशिपु अपनी गद्दी दे और प्रह्लाद उसपर बैठ जाये तो धर्मका लोप ही होगा।

बापके कुएँमें तैरना तो चाहिए, पर डूब मरना तो न चाहिए।

इस संग्राममें युवकोंको स्वच्छन्दताका पाठ नहीं पढ़ाया गया है। जिन युवकोंको मर्यादाका ज्ञान है, जो दुःखोंको सहन कर सकते हैं सिर्फ उन्हींको यह कहा गया था कि इस ज्ञानके मिलते हुए भी तुम सरकारी स्कूल-कालेज छोड़ दो। ऐसे लड़के भी बहुत हैं जो अपने माँ-बापको खुश रखनेके लिए ही सरकारी मदरसोंमें पड़े हुए हैं। अपने माँ-बापकी इच्छाको अमान्य करके निकलनेवालोंकी संख्या तो कम ही है और उनमें भी ऐसे लड़कोंकी संख्या तो और भी कम है जो बादमें स्वेच्छाचारी हो गये हैं।

अपनी अन्तरात्माके नामपर स्वच्छन्दताकी उपासना करनेवाले वीरोंकी इस दुनियामें कोई कमी नहीं है। वे तो धर्मको बट्टा लगायेंगे ही। परन्तु इससे क्या हमें अन्तरात्माका नाम लेते हुए डरना चाहिए? मुझे इस बातमें जरा भी सन्देह नहीं है कि बालकोंको चरखा सौंपकर मैंने जनताकी बड़ी भारी सेवा की है। इसे तो मैं एक नित्य कर्त्तव्य मानता हूँ। हमने तो बालकोंको केवल बौद्धिक शिक्षण देकर उनके साथ अत्याचार किया है। शरीरके लालन-पालनमें ही हमारा बहुत-सा समय जाता है। तब उसके पोषणके साधनोंकी तालीम भी हमें देनी ही चाहिए। इस तालीमकी अवहेलना करके हमने बड़ा पाप किया है। देश अब उसी हालतमें सुखी होगा जब हम फिरसे वैसी शिक्षा देने लगेंगे। औद्योगिक शिक्षा देना हमारा कर्त्तव्य है। और चरखेके द्वारा यह शिक्षा देनेसे हमारे कई काम बन जायेंगे।

इन मित्र महाशयकी दूसरी शंकासे चित्त चिन्तित हो जाता है। यह सच है कि इस धार्मिक युद्धमें अगर पाखण्ड अपनी जड़ जमा ले तो धर्म कलंकित होगा और जनताकी भी हानि होगी। अगर ऐसा हुआ तो फिर लोग या तो धर्मके नामसे कोसों दूर भागेंगे या धर्मान्धताको ही धर्म मानकर बैठ रहेंगे।

मैं यह जरूर मानता हूँ कि इस आन्दोलनमें बहुतेरा पाखण्ड घुस गया होगा। मैं यह भी जानता हूँ कि कुछ पाखण्डी लोग असहयोगके नामपर अपना स्वार्थ साधनेके लिए निकल पड़े हैं, पर फिर भी मेरा यह विश्वास है कि इस आन्दोलनमें पाखण्डने प्रधान पद ग्रहण नहीं किया है। अगर पाखण्ड प्रधान पद ले ले तो हमारी स्थिति आजसे भी अधिक खराब हो जायेगी क्योंकि उससे हमारी भीरुताको पोषण मिलेगा। जहाँ डर है वहीं दम्भके लिए गुंजाइश है। पापकी जोखिम उठानेसे डरनेवाला पापी पुण्यवानका वेश बनाकर रहता है और दूना पाप कमाता है। अपनी नास्तिकता-को छिपानेके लिए, अपना पेट पालनेके लिए लम्बा तिलक लगाता है और उतना चन्दन नष्ट करता है; इतना ही नहीं, पापमें और भी वृद्धि करता है। ऐसे लोग इस आन्दोलनमें प्रवेश न कर सकें इसके लिए एक मनुष्य जितने प्रयत्न कर सकता है, उतने मैं समझता हूँ, किये गये हैं; और इसीलिए मैंने अपनी आखिरी स्वतन्त्रता कायम रख छोड़ी है। जब मैं देखूँगा कि अरे, अब तो चारों और ढोंग-ही-ढोंग है: तभी मैं इस आन्दोलनसे जी छोड़कर भाग निकलूँगा, क्योंकि पाखण्डी मनुष्य असहयोगी नहीं होता और मैं तो असहयोगियोंका दास हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २–१०–१९२१

१०४. टिप्पणियाँ

मद्रासी

मुझे अपनी मद्रासकी यात्रासे कुछ निराशा-सी हुई है। मुझे मद्रासियोंसे बहुत प्रेम है। मुझे दक्षिण आफ्रिकामें उनका जो मीठा अनुभव हुआ उसको मैं भुला नहीं सकता। उनमें मुझे कष्ट सहनका सामर्थ्य बहुत दिखाई दिया। किन्तु स्वदेशीके प्रचारमें मद्रास पिछड़ गया है। मुझे मद्रासकी स्त्रियोंमें स्वदेशीका प्रचार बहुत कम दिखाई दिया। फिर भी यदि मद्रासके लोग जाग जायें तो बहुत-कुछ कर सकते हैं। मद्रासकी स्त्रियाँ बहुत क्रियाशील हैं; इस बातमें गुजरातकी स्त्रियाँ उनकी बराबरी नहीं कर सकती। मद्रासकी स्त्रियोंमें समझदारी बहुत है। उनमें जो कला है वह भारतकी अन्य स्त्रियोंमें नहीं है। वहाँकी स्त्रियोंमें एक निकम्मी वस्तुको भी उपयोगी बना लेनेकी क्षमता है।

मद्रासमें कार्यकर्त्ता नहीं हैं, ऐसा भी नहीं है। वहाँ श्री राजगोपालाचार्य-जैसे बुद्धिमान, प्रामाणिक और चतुर कार्यकर्त्ता मौजूद हैं; उनके जैसे कार्यकर्त्ता हम लोगोंमें

बहुत कम हैं। उन्होंने हमारी इस लड़ाईका रहस्य भली-भाँति समझ लिया है और संकटके समयमें भी वे अपनी दृढ़ता और धीरज कायम रख सकते हैं।

फिर भी मुझे मद्रासमें निराशा कैसे हुई? मुझे इसके दो कारण दिखाई देते हैं। इसका एक कारण तो यह है कि मद्रासमें अंग्रेजी भाषाका प्रभाव इतना अधिक है कि अंग्रेजीके जानकार मद्रासी तमिलकी बहुत कम परवाह करते हैं। बंगालियोंको भी अंग्रेजीसे बहुत मोह है; किन्तु बंगालियोंने अपनी भाषाका त्याग नहीं किया है। उन्होंने बंगला भाषाका खूब विकास किया है और इस समय बंगला भाषामें जितना साहित्य है उतना भारतकी किसी अन्य भाषामें शायद ही है। उतना साहित्य किसी भाषामें है तो शायद उर्दूमें है। मद्रासियोंने तो तमिल भाषाको लगभग छोड़ ही दिया है। इसका नतीजा यह हुआ है कि तमिल भाषाकी उन्नति बहुत कम हुई है, इतना ही नहीं, बल्कि अंग्रेजीके जानकार मद्रासियों और केवल तमिल जाननेवाले मद्रासियोंके बीच बड़ा अन्तर पड़ गया है। श्री राजगोपालाचार्य और उनके साथी इस अन्तरको मिटानेके लिए बहुत प्रयत्न कर रहे हैं; किन्तु उन्हें इस पुलके बनानेमें देर तो लगेगी ही।

मुझे निराशाका दूसरा बड़ा कारण यह दिखाई देता है कि मद्रासियोंमें धर्मके लिए भक्तिभाव होनेपर भी धर्मान्धता इतनी अधिक आ गई है कि वहाँ धर्मका बाह्य रूप मात्र रह गया है और धर्मका लोप हो गया है। मद्रासमें अन्त्यजोंपर जितना अत्याचार किया जाता है उतना अन्यत्र शायद ही कहीं किया जाता हो। वहाँ ब्राह्मणों और अब्राह्मणोंमें जितना भेदभाव है, उतना दूसरी जगह शायद ही कहीं हो। फिर भी विभूति, चन्दन और कुंकुमका जितना उपयोग मद्रासमें किया जाता है उतना किसी दूसरी जगह शायद ही किया जाता होगा। मद्रासमें जितने देवमन्दिर हैं उतने शायद ही कहीं हों। मन्दिरोंपर धन व्यय करना मद्रास ही जानता है। इससे वहाँ एक ओर जहाँ विद्वानोंमें नास्तिकता आ गई है और जिसके फलस्वरूप वे निराशावादी हो गये हैं वहाँ दूसरी ओर आस्तिकोंमें केवल अन्धकार फैला हुआ है।

किन्तु जहाँ ऐसी स्थितियाँ होती हैं वहाँ अन्धकार दूर होते ही प्रकाश होनेमें भी देर नहीं लगती। ज्यों ही सामान्य वर्गके लोगोंको अपने अज्ञानकी प्रतीति होगी, वह एक क्षणमें अपने-आप नष्ट हो जायेगा।

इसीलिए मुझे निराशामें भी आशाकी किरणें छिटकती दिखाई देती हैं, क्योंकि मुझे कांग्रेसके कार्यकर्त्ताओंने बताया है कि वहाँ लोग उनके प्रयत्न न करनेपर भी चरखा चलाने लगे हैं। जहाँ उन्होंने कोई प्रयत्न नहीं किया है वहाँ भी खादी तैयार होने लगी है और हजारों लोग खादीकी टोपियाँ भी पहनने लगे हैं। कांग्रेसके कार्यकर्त्ता स्वयं तो प्रायः खादी ही पहनते हैं। यदि मुझसे कोई यह पूछे कि मैं अपने मद्रासके दौरेके अनुभवसे क्या निष्कर्ष निकालता हूँ तो मुझे कहना चाहिए कि मैंने मद्रासके अनुभवके बाद भी इस वर्षमें स्वराज्य पानेकी आशा नहीं छोड़ी है।

जो धर्मकी दृष्टिसे लड़ता है वह आशा छोड़ता ही नहीं। जिसका कार्य शुद्ध है और जिसके साधन भी शुद्ध हैं उसे मानना चाहिए कि सफलता अवश्य मिलेगी। निर्धारित समयपर न मिले तो वह इतना ही कहेगा; मेरे अनुमानमें कहीं भूल थी, किन्तु इस मार्गसे सफलता तो मिलेगी ही।

मद्रासमें गुजराती

मुझे जहाँ-जहाँ गुजराती दिखाई देते हैं वहाँ-वहाँ मैं यह देख रहा हूँ कि वे इस समय गुजरातकी कीर्ति बढ़ा रहे हैं। वे जहाँ रहते हैं वहाँ लोगोंमें अधिकसे-अधिक घुलते-मिलते हैं। उन्हें जितना धन देना चाहिए उतना धन देते हैं और यथाशक्ति असहयोगका प्रचार करते हैं। मैं दूसरे लोगोंसे पूछता हूँ तो वे भी उनके सम्बन्धमें अच्छी ही राय जाहिर करते हैं। गुजराती स्थानीय झगड़ोंसे अलग रहते हैं। इस प्रकार वे सेवाधर्मको ही प्रधानता देते हैं। मेरे ऊपर गुजरातियोंकी छाप ऐसी ही पड़ी है। दक्षिण आफ्रिका और पूर्व आफ्रिकासे भी गुजराती धन भेज रहे हैं और वहाँके आन्दोलनोंमें भी भाग ले रहे हैं। इन गुजरातियोंमें मैं गुजराती-भाषी भारतीयों और मुसलमानोंको भी गिन लेता हूँ, क्योंकि मैं देखता हूँ कि गुजराती भाषी मेमन भी इस दिशामें कुछ-न-कुछ प्रयत्न करते रहते हैं। मैं जहाँ-कहीं इक्के-दुक्के पारसियोंको भी देखता हूँ वहाँ मुझे उनके प्रेमका परिचय मिलता है। मुझे भारतके सुदूर उत्तर-पूर्वमें स्थित असममें भी यही देखनेको मिला है। वहाँ एक ही पारसी थे; किन्तु उन्होंने भी असहयोगमें अपनी सहानुभूति प्रकट करनेमें कोई कमी नहीं रखी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २–१०–१९२१

१०५. एक ज्ञापनका मसविदा

४ अक्तूबर, १९२१

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले हम लोगोंका खयाल है कि बम्बई सरकारने तारीख . . . को अली-बन्धुओं और दूसरे लोगोंके बारेमें जो विज्ञप्ति निकाली है उसमें ऐसे सिद्धान्त दिये हैं जो मतप्रकाशनकी समस्त स्वतन्त्रताके विरुद्ध हैं; और हम यह कहना चाहते हैं कि नागरिकोंके लिए सरकारकी सेवा करना; चाहे वह सैनिक विभागमें हो या असैनिक विभागमें, उचित है या नहीं, इस सम्बन्धमें बिना किसी प्रतिबन्धके अपना मत व्यक्त करना प्रत्येक व्यक्तिका सहज अधिकार है।

हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले लोग अपनी यह सम्मति प्रकट करते हैं कि जिस सरकारकी व्यवस्थाके अन्तर्गत भारतका आर्थिक, नैतिक और राजनैतिक पतन हुआ है और जिस सरकारने सैनिकों और पुलिसके सिपाहियोंका उपयोग राष्ट्रीय आकांक्षाओं-को कुचलनेके लिए किया है, उदाहरणार्थ रौलट कानूनके विरुद्ध आन्दोलनके समय, और जिसने सैनिकोंका उपयोग उन अरबों, मिस्रियों और तुर्कोंके विरुद्ध उनकी स्वतन्त्र-ताको कुचलनेके लिए किया है जिन्होंने भारतकी कोई हानि नहीं की है। सरकारी तंत्रमें असैनिक अधिकारी और खास तौरसे सैनिकके रूपमें सेवा करना, मुसलमान धार्मिक नेताओं द्वारा घोषित इस्लाम धर्मके विरुद्ध ही नहीं, बल्कि भारतीयोंके राष्ट्रीय स्वाभिमानके भी विरुद्ध है।

हमारा यह भी मत है कि प्रत्येक भारतीय सैनिक और असैनिक कर्मचारीका कर्त्तव्य है कि वह अपनी नौकरीसे त्यागपत्र दे दे और अपनी जीविकाका कोई दूसरा सम्मानजनक साधन ढूंढ़ ले।

और इस लक्ष्यको ध्यानमें रखकर हम सरकारी कर्मचारियोंको यह सुझाव देते हैं कि वे सूत कातना और कपड़ा बुनना सीख लें। इससे राष्ट्रीय हित-साधनके साथ-साथ वे ईमानदारीसे और सम्मानजनक रूपसे अपनी जीविका कमा सकेंगे।

हम समस्त देशसे अनुरोध करते हैं कि वह विदेशी कपड़ेके बहिष्कारका काम पूरा करे और सूत कातने और कपड़ा बुननेका काम हाथमें ले एवं इन साधनोंसे खद्दरके उत्पादन-कार्यको प्रोत्साहन दे।

विदेशी कपड़ेका पूर्ण बहिष्कार करने और हाथसे सूत कातने और कपड़ा बुनने-से हर आदमी सरकारी नौकरी किये बिना अपनी जीविका कमा सकेगा और तब कांग्रेस, सैनिक और असैनिक कर्मचारियोंको नौकरी छोड़नेके लिए कह सकेगी और यहाँतक कि सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन भी आरम्भ कर सकेगी?[1]

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७६३३) की फोटो-नकलसे।

१०६. एक ज्ञापन

[बम्बई
सायं ६.५०, ४ अक्तूबर, १९२१][2]

बम्बई सरकारकी १५ सितम्बर, १९२१ की विज्ञप्तिमें बताये कारणोंसे अलीबन्धुओं तथा अन्य लोगोंपर चलनेवाले मुकदमेको ध्यानमें रखते हुए हम, नीचे हस्ताक्षर करने-वाले लोग, अपनी-अपनी निजी हैसियतसे बोलते हुए कहना चाहते हैं कि हर व्यक्तिका यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह नागरिकों द्वारा सरकारके सैनिक अथवा असैनिक किसी भी विभागके लिए, अपनी सेवाएँ अर्पित करने या उसकी सेवामें रहनेके औचित्य-अनौचित्यके बारेमें बिना किसी संयम-संकोचके अपना विचार प्रकट करे।

हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले लोगोंके विचारसे यह बात किसी भी भारतीयकी राष्ट्रीय प्रतिष्ठाके खिलाफ है कि वह एक ऐसी शासन-प्रणालीके अधीन असैनिक और खासकर सैनिक सेवा करे जिस प्रणालीने भारतको आर्थिक, नैतिक तथा राजनीतिक दृष्टियोंसे पतनके गर्तमें गिरा दिया है, जिसने सैनिकों तथा पुलिसका उपयोग राष्ट्रीय आकांक्षाओंका दमन करनेके लिए किया हो, जैसा कि रौलट अधिनियमके खिलाफ होनेवाले आन्दोलनके समय किया, और जिसने [भारतीय] सैनिकोंका उपयोग अरबों, मिस्रियों, तुर्कों और जिन दूसरे राष्ट्रोंने भारतका कुछ भी नहीं बिगाड़ा उन सबकी स्वतन्त्रताका अपहरण करनेके लिए किया है।

१. बादके दो अनुच्छेद साधन-सूत्रमें काट दिये गये हैं।
२. ज्ञापनके मसविदेकी फोटो-नकलके आधारपर।

हमारा विचार यह भी है कि हर भारतीय सैनिक और असैनिक कर्मचारीका कर्त्तव्य है कि वह सरकारसे सारे सम्बन्ध तोड़ ले और अपनी जीविकाका कोई और साधन ढूँढ़े।

मो० क० गांधी

अबुल कलाम आजाद (कलकत्ता)
अजमल खाँ (दिल्ली)
लाजपतराय (लाहौर)
मोतीलाल नेहरू (इलाहाबाद)
सरोजिनी नायडू (बम्बई)
अब्बास तैयबजी
एन० सी० केलकर
विट्ठलभाई झवेरभाई पटेल
वल्लभभाई झवेरभाई पटेल (अहमदाबाद)
मुकुन्दराव रामराव जयकर (बम्बई)
डी० वी० गोखले (पूना)
एस० जी० बैंकर
जवाहरलाल नेहरू (इलाहाबाद)
गंगाधर बी० देशपांडे (बेलगाँव)
लक्ष्मीदास तेरसी
उमर सोबानी
जमनालाल बजाज
एम० एस० अणे (अमरावती)
एस० ई० स्टोक्स (कोटगढ़, शिमला)
मुख्त्यार अहमद अन्सारी (दिल्ली)
खलीकुज्जमाँ (दिल्ली)
के० एम० अब्दुल गफूर (दिल्ली)
अब्दुल बारी (लखनऊ)
कृष्णजी नीलकण्ठ (बेलगाँव)
च० राजगोपालाचारी (मद्रास)
कोंडा वेंकटप्पैया (गण्टूर)
जी० हरिसर्वोत्तम राव (गण्टूर)
अनसूया साराभाई
जितेन्द्रलाल बनर्जी
मुशीर हुसेन किदवई (दिल्ली)
श्यामसुन्दर चक्रवर्ती (कलकत्ता)
राजेन्द्रप्रसाद (पटना)
आजाद सोबानी (लखनऊ)
हजरत मोहानी (कानपुर)
महादेवभाई हरिभाई देसाई
बरजोरजी बहरामजी भरूचा
याकूब हसन
बी० एस० मुंजे (नागपुर)
जयरामदास दौलतराम
एस० आर० चोलकर (नागपुर)
वी० वी० दास्ताने (भुसावल)
अहमद हाजी सिद्दिक खत्री (बम्बई)
गुडुर रामचन्द्रराव (आन्ध्र)
डी० एस० विजयराव (लाहौर)
बी० एल० सुब्रामैया (आन्ध्र)
मियाँ मुहम्मद हाजी जान मुहम्मद छोटानी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ६–१०–१९२१

१०७. पत्र: 'बॉम्बे क्रॉनिकल' को

[५ अक्तूबर, १९२१ के पूर्व]

सेवामें
सम्पादक,
'बॉम्बे क्रॉनिकल'

महोदय,

मद्रासमें मुझे बराबर ऐसी अफवाहोंकी सूचना मिली कि मैं शीघ्र ही गिरफ्तार किया जानेवाला हूँ। ये अफवाहें विश्वस्त सूत्रोंपर आधारित मानी जाती थीं। और बम्बई आनेपर यही बात और जोर देकर मुझे बताई गई है। अगर इस अफवाहमें सचाई हो तो सरकार बधाईकी पात्र है। सो इसलिए कि इससे प्रकट होता है कि अली-बन्धुओं और उनके साथी कैदियोंकी गिरफ्तारी करके उसने जिस नीतिका परिचय दिया उस नीतिपर वह कायम है, क्योंकि अब वह तथाकथित या वास्तविक हिंसाके विरुद्ध या हिंसा-भड़कानेकी कोशिशोंके विरुद्ध नहीं, बल्कि असहयोगके उस सिद्धान्तके ही विरुद्ध लड़ाई छेड़ रही है जिसे कांग्रेस और खिलाफत समितिने अपनाया है। यह सिद्धान्त है मौजूदा सरकारके प्रति असन्तोष फैलाना, और सभी वर्गोंको, जिसमें सैनिक और असैनिक सभी शामिल हैं, सरकारके साथ असहयोग करनेके लिए प्रोत्साहित करना। इस प्रचारकी सफलताका अर्थ स्पष्टत: शासनकी मौजूदा प्रणालीका खात्मा होगा, इसलिए जो लोग पक्के असहयोगी हैं, उनके लिए यह मुनासिब नहीं है कि सरकार आन्दोलनको कुचलनेके लिए जो भी कदम उठाये, उसकी आलोचना करें। और यदि इस प्रणालीके अमलदार असहयोगियोंकी इच्छाके अनुसार इसमें परिवर्तन करनेका इरादा करते हों तो बात दूसरी है, वरना मेरी समझमें सबसे तर्क-संगत बात यही होगी कि वे इस आन्दोलनके प्रणेताको गिरफ्तार कर लें। सारे देशने अली-बन्धुओं और अन्य लोगोंकी गिरफ्तारीके बाद भी अपने शानदार और शान्त रवैयेसे दिखा दिया है कि उसने अहिंसाकी आवश्यकताका अनुभव कर लिया है। मैं अपनी या अन्य किसी भी कार्यकर्त्ताकी गिरफ्तारीके बाद भी ऐसा ही शान्त वातावरण बने रहनेकी आशा रखता हूँ। यदि लोग सच्चे साहसका परिचय देना चाहते हैं, यदि वे यह दिखाना चाहते हैं कि अहिंसाका रहस्य उन्होंने समझ लिया है और अपने देश या धर्मके लिए जेल जानेको वे एक स्पृहणीय सम्मानकी बात मानते हैं, तो उन्हें न केवल पूरी तरह शान्तिका पालन करना होगा बल्कि हड़ताल या इसी तरहके दूसरे प्रदर्शनोंसे भी बचना होगा। मेरी या किसी भी अन्य कार्यकर्त्ताकी गिरफ्तारीपर हड़ताल करना अनुशासनका भंग होगा, और इसलिए वह गिरफ्तार व्यक्तिके प्रति सम्मान या स्नेहका परिचायक नहीं होगा। अपने मनका आदर व्यक्त करनेका एक-मात्र तरीका यही है कि कांग्रेसके स्वदेशी-कार्यक्रमको और अधिक उत्साहके साथ कार्यान्वित किया जाये

और इस प्रकार स्वराज्यकी जल्दीसे-जल्दी स्थापना की जाये। अगर मैं गिरफ्तार कर लिया जाऊँ तो मैं भारतके प्रत्येक ऐसे पुरुष और स्त्रीसे, जो स्वदेशीके सिद्धान्तमें विश्वास रखता है लेकिन जिसने आलस्यवश या किसी कमजोरीके कारण अभीतक विदेशी वस्त्रोंका त्याग नहीं किया है और हाथसे कताई और बुनाई करना शुरू नहीं किया है, यह आशा करूँगा कि वह सभी विदेशी वस्त्रोंका त्याग कर दे और चरखे तथा हाथ-करघेको अपनाये। मैं प्रत्येक हिन्दूसे उम्मीद करूँगा कि वह खिलाफतके लिए अपने प्रयत्नोंमें किसी भी हालतमें ढील नहीं डालेगा या तथाकथित स्वराज्यकी खातिर खिलाफतका पक्ष नहीं छोड़ देगा, क्योंकि मेरी रायमें, मुसलमानोंकी सन्तुष्टि हुए बिना स्वराज्यकी कल्पना ही नहीं की जा सकती।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ५–१०–१९२१

१०८. सन्देश : रायलसीमाके[1] कार्यकर्त्ताओंको

५ अक्तूबर, १९२१

श्री हरिसर्वोत्तम रावने ५ अक्तूबरको बम्बईसे तार दिया है :

महात्मा गांधीने मुझे मद्रास संविलित जिलोंके कार्यकर्त्ताओंको निम्न तार भेजनेकी अनुमति दी है :

स्वदेशी और बहिष्कारपर ध्यान केन्द्रित करें, सभाओंमें पूर्ण शान्ति रखें, सब प्रकारके प्रदर्शनोंसे बचें, सुविचारित शान्तिपूर्ण कार्रवाईके लिए आवश्यक अनुशासनके सबसे पहले नियम यही हैं। स्वयंसेवकोंको लाठियाँ नीचे रखना और कर्त्तव्यका पालन करना सिखायें। मैं सबसे अनुरोध करता हूँ कि वे इसी १४ तारीखको ताडपत्रीमें मिलें।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ६–१०–१९२१

१. हैदराबादकी रियासत द्वारा ब्रिटिश सरकारको सौंपे गये "उत्तरी सरकार" कहलानेवाले चार जिले जिनको ब्रिटिश सरकारने मद्रास प्रेसीडेंसीमें मिला लिया था।

१०९. टिप्पणियाँ

अकालकी दवा

मद्रासमें रायलसीमाके सफरमें मुझे ऐसे कई सबूत मिले जिनसे यह बात साबित होती है कि चरखा चलाना अकालको न आने देनेका तथा उससे लोगोंकी रक्षा करनेका सबसे अच्छा जरिया है। इन जिलोंके कुछ हिस्सेमें इन दिनों जोरोंका अकाल है। एक कार्यकर्त्ताने मुझे बताया कि एक स्त्रीने तो अपना और अपने बाल-बच्चोंका गुजर न कर सकनेके कारण, अपने लड़कों-बच्चोंको डुबो दिया और खुद भी डूबकर मर गई। और यह मुमकिन नहीं कि सैकड़ों और हजारों लोगोंकी गुजर केवल दान और चन्देपर चलाई जाये। फिर, जो लोग दानकी रोटीपर पेट पालते हैं वे अपने आत्मसम्मानसे हाथ धो बैठते हैं। यह बात नहीं है कि जहाँ-जहाँ अकाल है, वहाँ अनाज मिलता ही न हो। पर बात यह है कि लोगोंके पास न तो काम है और न पैसा। हाँ, सरकारकी तरफसे अकाल-पीड़ितोंकी सहायताके लिए पत्थर तोड़ने और ढोनेका काम दिया गया है। एक मित्रने बताया है कि सरकारने सड़कें तुड़वाने और उन्हें फिर बनवानेका कार्य शुरू किया तब जाकर कहीं उन अकाल-पीड़ित पुरुषों और स्त्रियोंके लिए काम निकला। सड़कें तोड़ी जायें या न तोड़ी जायें पर यह तो निश्चित है कि सरकारके पास लोगोंको अकालसे राहत पानेकी दृष्टिसे देनेको एक ही काम है और वह है — सड़कोंकी मरम्मत। मुझे यह भी मालूम हुआ कि दरअसल मजदूरी जो एक औरतके पल्ले पड़ती है, चार-पाँच पैसे हैं और मर्दको दस पैसेसे ज्यादा नहीं मिलते। इसके विपरीत मैंने देखा कि पंचम औरतोंको कांग्रेस-कमेटी तीन आना रोज मजदूरी देती है, जिस-पर वे आठ घंटा रोज चरखेपर सूत कातती हैं और पंचम औरतोंके लिए जो किया जा रहा है वही अन्य हजारों अकाल-पीड़ित औरतों और मर्दोंके लिए भी किया जा सकता है। इन जिलोंमें मर्दको भी तीन आना रोज मजदूरी मिलना मानो एक बड़ी भारी नियामत है। परन्तु चरखेमें इतनी सम्भावनाएँ मौजूद हैं जितनी और किसी धन्धेमें नहीं हैं क्योंकि चरखा चलानेमें उसके पहलेकी दो क्रियाएँ, ओटना और धुनना तथा बादकी क्रिया बुनना भी शामिल है। रायलसीमाके इन जिलोंमें बुनाई सिखानेमें भी अधिक कठिनाई नहीं पेश आ सकती। और अगर कपड़ा तैयार करनेकी तमाम प्रक्रियाएँ इसी तरह संगठित की जा सकें तो हजारों लोगोंको घर बैठे मुस्तकिल तौरपर कामधन्धा मिल सकता है। हरएक कार्यकर्त्ताने खुले दिलसे यह बात की है कि हाँ, हम लोग तथा अकाल-पीड़ित लोग, दोनों इस बातको समझने लगे हैं कि चरखेसे कितने लाभ हैं, और लोगोंके दिलोंमें आशाका संचार होने लगा है तथा कार्यकर्त्ताओंने हर जगह चरखा चलाने और कपड़ा बुननेके कामका संगठन शुरू कर दिया है। मुझे ऐसे लोग भी मिले जिन्होंने कहा कि हम तो आपकी इस बातपर हँसते थे कि चरखा अकाल न पड़ने देनेका सर्वोत्तम साधन है, पर व्यवहारमें उसके अनुभवके बाद अब हम उसकी सचाई समझ गये हैं।

मैं जानता हूँ कि अभी तो इस परिवर्तनका श्री-गणेश ही हुआ है। पर जब यह सम्पूर्ण हो जायेगा तब किसी भी मर्द या औरतको, जिसके हाथ काम करने लायक हैं, न तो किसीके दरवाजेपर भीख माँगनेकी और न भूखों मरनेकी जरूरत होगी। आज तो हम देखते हैं कि अकालके दिनोंमें हजारों लोग, जो काम करनेके लायक हैं, काम न मिलनेके कारण दानकी रोटीपर जीते हैं या आधा पेट खाकर ही रह जाते हैं। यह दृश्य कितना नीचा गिरानेवाला है।

बस, एक ही काम

इसलिए मैं कांग्रेसके और खिलाफतके हरएक कार्यकर्त्तासे कहता हूँ कि आप अपने-अपने जिलोंमें बस, चरखा चलाने और करघोंपर कपड़ा बुनवानेका ही प्रबन्ध कीजिए; दूसरे तमाम कामोंको छोड़ दीजिए। जबतक हमारे यहाँ एक भी काम करने लायक मर्द या औरत बिना कामके और बिना खाने-दानेके है तबतक अगर हम पेट-भर खाते रहें और आरामसे बैठे रहें तो हमारे लिए यह बड़े शर्मकी बात होगी। मैं धनवान लोगोंसे अनुरोध करूँगा कि वे बिना सोचे-विचारे कभी दान न दें और मुफ्तमें खाना न खिलायें। अगर हम भारतवर्षको भिक्षा देनेवाला और भिक्षा पानेवाला, इन दो भागोंमें बाँट देंगे तो अगली पीढ़ी हमें कोसेगी। अगर हम चाहते हों कि हमारे राष्ट्रमें जरा भी आत्मसम्मान रहे तो हमें अवश्य ही इस बार-बारकी तंगीके लिए कुछ-न-कुछ व्यवस्था करनी ही होगी। अतएव जो लोग दीन-दुखियोंकी सहायता करना चाहते हैं, वे उनके हाथोंमें चरखा दें और उससे सम्बन्ध रखनेवाली विविध क्रियाएँ सीखनेकी सुविधाएँ जुटाएँ।

मत-प्रकाशन

जब किसी भी आन्दोलनमें पूरे आग्रहके साथ हिंसाका त्याग किया जाता है तब वह एक अत्यन्त शुद्ध प्रचार-आन्दोलन हो जाता है। ऐसे आन्दोलनको कुचलनेका कुछ भी प्रयत्न करना लोकमतको कुचलनेका प्रयत्न करना है। और वर्तमान दमनने ऐसा ही रूप धारण कर लिया है। जो बातें मैं अपने अन्तरतमसे स्वीकार करता हूँ, उन्हें प्रकट क्यों न करूँ? मैं यह साफ-साफ कहता हूँ कि —

(१) किसी भी हैसियतसे, खास करके सिपाहीकी हैसियतसे, इस सरकारकी नौकरी करना पाप है।

(२) शराब और दूसरी नशीली चीजोंका पीना पाप है।

(३) विदेशी कपड़ा पहनना पाप है।

(४) अनाज और रुईका सट्टा करना और जुआ खेलना पाप है।

सरकार भी असहयोग आन्दोलनके खिलाफ प्रचार कर रही है, इसलिए हो सकता है कि उसे अपनी मुलकी और फौजी नौकरियोंके लिए रंगरूट प्राप्त होते रहें, तरह-तरहकी तरकीबें लड़ाकर वह लोगोंको शराब पीने और विदेशी कपड़ा पहननेके लिए तथा अनाज और रुईका सट्टा करनेके लिए फुसला ले, और इस तरह तबतक अपनी हुकूमत कायम रहे जबतक कि लोग जान-बूझकर या अज्ञान-वश उसके साथ सहयोग कर रहे हैं। लेकिन जिस दिन लोगोंके दिलमें इसके विपरीत विश्वास हो

जायेगा उसी दिन उसकी सारी इमारत ढह जायेगी। और जिस प्रकार मैं शराबखोरों और सटोरिये लोगोंमें अपने मतका प्रचार करता हूँ, जिससे कि वे इन बुरी बातोंसे दूर रहा करें, ठीक उसी तरह मैं सिपाहियोंसे भी उनके मुँहपर यह कहनेके हकका दावा करता हूँ कि मेरे मतके अनुसार उनका क्या कर्त्तव्य है। देशके अन्दर जो-कुछ हो रहा है, उसकी जानकारीसे फौजके लोग क्यों महरूम रखे जाने चाहिए? क्या सरकारको इस बातका डर है कि अगर सिपाही सच बात जान जायेंगे तो उसकी नौकरी छोड़ देंगे? जो सरकार "सरकार" कहलाने लायक है उसे तो सैनिकोंको पूरी तरह शिक्षा और ज्ञान देकर भी उनकी राजभक्तिको कायम रखनेके योग्य होना चाहिए। लेकिन यहाँ भारतमें तो सब-कुछ शस्त्रके सहारे टिका हुआ है — शान्ति शस्त्रके सहारे कायम रखी जाती है, राजभक्ति शस्त्रके सहारे प्राप्त की जाती है और लोगोंके मतोंपर भी शस्त्रका ही अंकुश है। निःशस्त्र अगर कोई है तो बस, प्रजा ही है। अतएव हमारा कर्त्तव्य स्पष्ट है। हमें दावेके साथ जैसा चाहे वैसा मत रखना और व्यक्त करना चाहिए फिर चाहे इसके लिए हमें सूलीपर भी क्यों न चढ़ जाना पड़े। ध्यान सिर्फ इस बातका रखना है कि ऐसा करते हुए हम प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे भी हिंसा न करें। यही अहिंसात्मक असहयोगका संग्राम है। हमें यह लड़ाई अन्ततक लड़नी होगी। मैं यहाँ सब लोगोंको आगाह किये देता हूँ कि "फौजकी राजभक्तिको डिगानेकी बिनापर" मुकदमा चलाना इस बातका पूर्व-संकेत है कि "विदेशी कपड़ोंके प्रति लोगोंकी भक्तिको डिगानेकी बिनापर" भी मुकदमे चलाये जायेंगे। कालीकटमें जो नौजवानोंकी खादीकी टोपियाँ और कुरते जलाये गये, वह किस बातका सूचक था? विशाखापट्टमके मेडिकल स्कूलके विद्यार्थियोंके खिलाफ जो युद्ध शुरू किया गया है, वह खादीके खिलाफ किया जा रहा क्रूरतापूर्ण युद्ध नहीं तो और क्या है?

एकमात्र कसौटी

लेकिन अगर हमें स्वराज्य प्राप्त करना है तो बस यह ठीक उसी किस्मकी परीक्षा है, जिसमें हमें अवश्य ही पास होना होगा। अगर यह बात सच है कि इस सरकारका अस्तित्व अपने विशेष प्रकारके हितोंकी रक्षाके ही लिए है, और ये हित अधिकांश प्रजाके हितोंके विरुद्ध हैं, तो वह हर कीमतपर अपनी मौजूदा स्थिति कायम रखनेकी कोशिश करेगी और उसके लिए हमें इसपर हरगिज क्रोध न दिखाना चाहिए। स्वतन्त्र लोकमतकी बढ़तीके दमनके लिए उसका कोशिश करना कोई नई बात नहीं है। हम लोग तो पहलेसे ही सरकारकी इन विशेषताओंको पहचानते हैं, और आज जो हम उसकी वर्तमान प्रणालीको नष्ट कर देना चाहते हैं इसका कारण यही है कि हमें इन विशेषताओंका ज्ञान है। इस सरकारके अस्तित्वका उद्देश्य है — हिन्दुस्तानसे तथा उसके कच्चे मालसे धीरे-धीरे, परन्तु निश्चित रूपसे, नाजायज फायदा उठाना एवं हिन्दुस्तानको इतना कमजोर कर देना जिससे वह सदाके लिए यहाँसे धन लूटकर ले जानेवाले विदेशी लोगोंका एक साधन-मात्र बन जाये। दूसरे शब्दोंमें वे हमें अपने ही घरोंमें सदाके लिए कैद रखना चाहते हैं। और यह स्थिति प्राप्त करनेके लिए जो तरीका अख्तियार किया

गया है, वह है इनाम और सजाका तरीका — खितावों और मोटी-मोटी तनख्वाहोंके रूपमें इनाम उन लोगोंके लिए जो इस प्रणालीको सहायता देते हैं, और सजा, बल्कि अत्याचारतक उन लोगोंके लिए जो इसे सुधारना या मिटाना चाहते हैं। ऐसी अवस्थामें सरकार उन तमाम विचारोंकी अभिव्यक्तिको और उन तमाम आन्दोलनोंको बन्द करनेका प्रयत्न प्राण-पणसे किये बिना नहीं रहेगी जो उसके विशेष हितोंको आघात पहुँचा सकते हैं। हम इस भ्रममें न रहें कि सरकार उदारता धारण करके आखिरी दमतक चुप रही और जब हद हो गई तभी उसने अपना हाथ उठाया। हमको मानना होगा कि यह सरकार एक इतनी ताकतवर और साधन-सम्पन्न संस्था है, जितनी ताकतवर और साधन-सम्पन्न संस्था दुनियाने आजतक कभी न देखी होगी। यह मौका ताकती रहती है; यह अपने विपक्षियोंको खेल खेलनेका मौका देती है, परन्तु ज्यों ही उनमें संजीदगीका भाव पाया कि यह तुरन्त ही वार करती है। जो डाकू अपनी लूटकी चीजोंके मालिकको अपनी चीजें वापस लेनेकी बचकाना कोशिशें करनेका मौका तो देता है, परन्तु ज्यों ही मालिक संजीदगीसे पेश आता है और सफल होता दिखता है त्यों ही उसका सिर धड़से अलग कर देनेके लिए तैयार हो जाता है, उसे उदार कौन कहेगा? जो डाकू इस प्रकार युक्तिपूर्ण ढंगसे बरतता है उसे हम चालाक समझते हैं और जब वह अपने बिलकुल निरपराध और अत्याचारका शिकार होनेका ढोंग करता है, तब हम उसे पाखण्डी कहते हैं। अब हमारी दक्षता इसी बातमें है कि हम इस सरकारके हाथकी कठपुतली न बन जायें। वह चाहे हमें सख्त या सादी सजाएँ कितनी ही दे, हमें न तो अपने होश-हवास खो बैठना चाहिए और न मारकाट या खून-खराबीपर ही तुल जाना चाहिए। हमें फाँसीपर लटका दिया जाये तो भी न डगमगाना चाहिए। मैं अली-भाइयोंको अपने सगे भाइयोंकी तरह चाहता हूँ। पर अगर सरकारी न्यायाधीश उन्हें फाँसीकी सजा दे दे तो भी मैं सरकारके पास उनके लिए वकालत करने हरगिज न जाऊँगा। उनकी इस तरहकी मृत्युको मैं बड़ी शान-बानकी मृत्यु कहूँगा और इस बातका रश्क करूँगा कि उन्हें ऐसी खुशकिस्मती नसीब हुई। अगर उन्हें आजीवन कालेपानीकी सजा मिली तो मैं यह सोचूँगा कि मैं जितनी जल्दी हो सके, स्वराज्य स्थापित करके ही उन्हें वहाँसे छुड़वाकर घर लाऊँ।

हमारे पास इसकी बस एक ही दवा है (और वह बहुत ही कारगर दवा है) कि हम सरकारको वह जितना अत्याचार करना चाहे कर लेने दें, और यह विश्वास रखकर कि उसकी बुरीसे-बुरी करतूतोंका फल देशके लिए अच्छेसे-अच्छा ही होगा, उसके दमनसे चित्तको जरा भी डाँवाडोल न होने दें तथा अपने निश्चित कार्यक्रमको पूरा करनेमें जी-जानसे लग जायें — इस अटल विश्वाससे कि इससे निश्चय ही हमारा अभीष्ट सिद्ध होगा। यह कार्यक्रम क्या है? यही कि घर-घरमें और गाँव-गाँवमें चरखों और करघोंका प्रचार कर दिया जाये।

एक उपयुक्त कहानी

मौलाना आजाद सोबानी स्वदेशीके लिए अद्भुत कार्य करते रहे हैं। उन्होंने मुझे मिस्रियोंकी धीरता और बहादुरीकी एक रोमांचकारी कहानी सुनाई। उन्होंने बताया

कि एक बार कुछ सिपाहियोंने मिस्रियोंकी एक मसजिदको घेरकर उसके भीतर चल रहे राष्ट्रीय प्रचारको रोकना चाहा। मसजिदमें उपस्थित नमाजी लोगोंके सामने एक नौजवान भाषण दे रहा था। भाषण देनेसे वह बाज नहीं आया और सिपाहियोंने उसे गोली मार दी। लोग बिलकुल अविचलित रहे। दूसरे नौजवानने बोलना शुरू किया, और जब वह बोल रहा था तभी उसे भी गोली मार दी गई। इसी तरह सात नौजवान गोलियोंके शिकार हुए, किन्तु उन्होंने प्रस्तुत विषयपर वार्ता समाप्त करके ही छोड़ी। और इस अवधिमें जब बलिदानोंकी यह गौरवमयी घटना घटित हो रही थी, उपस्थित लोग बिलकुल अविचलित रहे। मिस्रवाले अहिंसामें विश्वास नहीं रखते। लेकिन वे बड़े अच्छे सिपाही हैं। वे नहीं चाहते थे कि वे बदलेकी कार्रवाई करें और उसके फलस्वरूप मसजिदकी ईंटसे-ईंट बजा दी जाये और उपस्थित सभी लोगोंको व्यर्थ में मौतके घाट उतार दिया जाये। वे यह दिखाना चाहते थे कि वे डरनेवाले नहीं हैं और कोई भी आदेश उनके साहसको नहीं तोड़ सकता। और इसलिए वार्ता इस तरह पूरी की गई, मानों कुछ हुआ ही न हो। उन नमाजियोंने मृत्यु और जीवनको एक ही माना। इस आख्यानसे क्या सबक मिलता है, वह स्पष्ट है। हम जिन्होंने कि अहिंसाकी शपथ ली है उन सात नौजवानों तथा वहाँ उपस्थित नमाजियोंकी बहादुरी और धीरता सीखनेकी कोशिश कर रहे हैं। हममें अपने उद्देश्यकी प्राप्तिके प्रयत्नमें किसीको मारनेका खयालतक मनमें लाये बिना स्वयं मौतको गले लगानेका साहस होना चाहिए। फिर तो यह निश्चित ही है कि हम तीन महीनेके भीतर विजय प्राप्त करके ही रहेंगे।

साजिश संगीन होती जा रही है

साजिश संगीन होती जा रही है, क्योंकि सरकार हमारे खिलाफ अपनी सारी ताकतें सुसज्जित करती जा रही है। मुझे अभी-अभी बतलाया गया है कि असमके एक अभिजात कुलमें उत्पन्न बैरिस्टर श्री फूकनसे सरकारने शान्ति बनाये रखनेके लिए मुचलका देनेको कहा है। अपनी यात्राके दौरान मुझे उनसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे एक बहादुर सिपाही हैं और खिलाड़ी-वृत्तिके हैं। लेकिन वे पक्के अहिंसा-वादी हो गये हैं। उनका खयाल है कि भारतके हृदयमें अगर कोई चीज आशाका संचार कर सकती है तो वह अहिंसा ही है, और इसीके बलपर एक वर्षके अन्दर स्वराज्य हासिल किया जा सकता है। लेकिन श्री फूकन एक बहादुर कार्यकर्त्ता हैं। वे और उनके साथी कार्यकर्त्ता स्वदेशीको फिरसे पूरी तरह प्रतिष्ठित कर देना चाहते हैं, और असम सरकारको उनका यह खयाल पसन्द नहीं है। आन्ध्र देशके एक शक्तिशाली जमींदार, गम्पालागूडमके कुमारराजाके साथ भी सरकारने ऐसा ही व्यवहार किया है, क्योंकि उन्होंने मद्य-निषेधके लिए काम करनेका साहस दिखाया। अपनी यात्राके दौरान मैं जो अखबार पढ़ पाया, उनमें मुझे केवल ये दो उदाहरण मिले हैं। लेकिन मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि ऐसे बहुतसे कार्यकर्त्ताओंके मुँह बन्द किये जा रहे हैं और बहुतसे अन्य कार्यकर्त्ताओंके मुँह बन्द किये जायेंगे। यह सब शुभ समाचार है, बशर्ते कि हम लोग जो अभी जेलके बाहर हैं, जेल भेज दिये गये अपने अपेक्षाकृत अधिक सौभाग्यशाली भाइयोंके कामको लगनसे करते रहें। मैं उन्हें सौभा-

ग्यशाली इसलिए कहता हूँ कि मजलूम लोगोंके लिए जेलोंमें रहना सौभाग्यकी ही बात है। जहाँ आतंकका शासन हो, वहाँ सच्चे और ईमानदार लोगोंके लिए जेल एक सम्मानका स्थान है। जो लोग अत्याचारियोंके मार्गमें या उद्देश्यमें बाधा डालते हैं, उनसे अत्याचारी यही कीमत वसूल करते हैं। इन सजाओंसे हमें अपना प्रयत्न निरन्तर जारी रखनेकी प्रेरणा लेनी चाहिए। जब हमें साफ तौरपर रास्ता दिखा दिया गया हो तो नेताओंकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। आज हम जानते हैं कि हमें क्या करना है, कैसे करना है; और यह हमारा सौभाग्य है तो हमें अपने नेताओंके जेल भेजे जानेपर हताश नहीं होना चाहिए, बल्कि प्रसन्न होना चाहिए और मिस्रके जिन नमा-जियोंकी कहानी मैंने सुनाई, उन्हींके समान साहसके साथ अपना काम जारी रखकर अपने-आपको स्वराज्यके योग्य सिद्ध करना चाहिए।

अब लाठियोंका उपयोग न करें

अपने मद्रास तथा रायलसीमाके दौरेके क्रममें और अन्यत्र भी हमने देखा कि अन्य स्थानोंकी तरह ही वहाँ भी शक्ति व्यर्थ नष्ट हो रही है। हर जगह बड़ी-बड़ी भीड़ें सिर्फ एक झलक पानेके लिए घंटों खड़ी रहती थीं। चीख-पुकार तो इतनी थी कि सहना मुश्किल था। मैंने यह भी देखा कि जहाँ-कहीं पहलेसे इन्तजाम कर लिया गया था, जैसे कि त्रिचनापल्ली, चेट्टिनाड, तिन्नेवेली, तथा अन्य स्थानोंमें — वहाँ बहुत उपयुक्त और वांछनीय व्यवस्था थी, और हम लोग बिना किसी कठिनाईके बहुत सारा काम कर पाये। लेकिन रायलसीमामें हमने स्वयंसेवकोंको सात-सात फुट ऊँची बाँसकी लाठियाँ लिये देखा। उद्देश्य यह था कि मेहमानोंको भीड़से बचानेके लिए उनके सहारे घेरा बना लिया जाये। लेकिन मैंने देखा कि इन लाठियोंसे सुविधाके बदले बाधा ही पहुँचती थी, इनके कारण लोग आसानीसे आ-जा नहीं सकते थे और वैसी भीड़में उनसे चोट लगनेका खतरा भी था। कई बार तो स्वयं मेरी ही आँखोंको चोट लगते-लगते बची। और स्वयंसेवकों द्वारा संरक्षण अनुभव करनेके बजाय मुझे तो यही डर लगा रहा कि इन लाठियोंसे किसी भी क्षण मुझे चोट पहुँच सकती है। मैंने स्वयंसेवकोंको बताया कि इस दृष्टिसे इन लाठियोंकी अपेक्षा मजबूत रस्सी कहीं अधिक उपयोगी होगी। मौलाना आजाद सोबानीको मेरी बात जँच गई, और चूँकि अहिंसाकी प्रतिज्ञाके अनुसार किसीको चोट पहुँचानेके लिए लाठियोंका उपयोग नहीं लिया जा सकता था, इसलिए मौलाना सोबानीने ताड़पत्रीमें स्वयंसेवकोंको लाठियाँ छोड़ देनेको राजी कर लिया। मैं सभी स्वयंसेवक दलोंको ऐसे ही परिवर्तनकी सलाह दूँगा। चूँकि हमारा आन्दोलन जाने-माने तौरपर शान्तिपूर्ण है, इसलिए अगर हम लाठियाँ बिलकुल छोड़ दें तो यह और भी अच्छा रहेगा। चूँकि हम शान्ति-सेनाके सिपाही हैं, इसलिए पोशाकमें तथा अन्य मामलोंमें भी हम जहाँतक हो सके, साधा-रण सिपाहियोंकी कमसे-कम नकल करें।

प्रशिक्षणकी कमी

कई स्थानोंपर स्वयंसेवकोंमें प्रशिक्षणकी कमी देखकर बड़ा दुःख हुआ। उपर्युक्त कुछ स्थानोंको छोड़कर उन्होंने बराबर बाधा ही पहुँचाई हालाँकि उनका मंशा पूरी

तरहसे सहायता पहुँचानेका ही था। वे यदि गाड़ियोंपर चढ़ते नहीं थे तो उन्हें घेर अवश्य लिया करते थे। उनका सबसे आगे चलनेका भी दुराग्रह रहता था, जिससे आने-जानेमें बड़ी बाधा पड़ती थी। वे कदम मिलाकर चलना नहीं जानते थे। अगल-बगल दो-दोका जोड़ा बनाकर वे नहीं चलते थे। उनतक कोई हिदायत पहुँचा पाना बहुत कठिन था। अब यह बहुत जरूरी हो गया है कि उनका अच्छी तरह संगठन किया जाये और उन्हें कुछ नियमोंका पालन करनेका निर्देश दिया जाये।

कुर्सियाँ ठीक नहीं लगतीं

अब आम तौरपर सार्वजनिक सभाओंमें कुर्सियाँ शायद ही देखनेमें आती हों। सभाएँ बिलकुल खुले मैदानमें होती हैं। बीचमें एक छोटेसे मंचकी व्यवस्था अवश्य कर दी जाती है, जिसपर कभी चँदोवा होता है और कभी नहीं भी। चूँकि मैं खड़ा होकर नहीं बोल सकता, इसलिए आम तौरपर मेरे लिए एक कुर्सीका इन्तजाम कर दिया जाता है, और तब स्वभावतः मेरे अन्य साथियोंके लिए भी वैसा ही इन्तजाम कर दिया जाता है। ये कुर्सियाँ वहाँके परिवेशमें ठीक नहीं लगतीं और उसकी खूबसूरती कम कर देती हैं। मैं तो कहूँगा कि मेरे बैठकर बोलनेके लिए एक सीधी-सादी पुराने ढँगकी वर्गाकार मेज ही की व्यवस्था कर दी जाये। बेशक हम अपने सादे और स्वाभाविक परिवेशके अनुकूल अपनी पुरानी कलाको पुनरुज्जीवित कर सकते हैं। अपनी यात्राके दौरान मुझे यह देखकर बड़ी खुशी हुई कि छादन और सजावटके लिए सर्वत्र खादीका ही उपयोग किया गया था।

विनाशका नैतिक औचित्य

बड़ोदादा (द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर, शान्तिनिकेतन) ने मेरा 'विनाशका नैतिक औचित्य'[1] शीर्षक लेख पढ़कर निम्नलिखित प्रतिक्रिया भेजी है। मेरे लिए यह बड़े हर्षकी बात है कि एक इतने समादृत और विद्वान् व्यक्तिने मेरी उस नैतिक स्थितिसे सहमति प्रकट की है जो मैंने ऐसे लोगोंके भी विरुद्ध जाकर अपनाई है जिनके मतको मैं मूल्य-वान और सम्मानके योग्य मानता हूँ। पाठकोंको यह देखकर खुशी होगी कि बड़ोदादाके रूपमें हमारे बीच एक ऐसा ऋषि विद्यमान है जो अपने शान्त एकान्तमें भी हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनके प्रति किसी पच्चीस वर्षके नौजवानकी तरह रुचि रखता है और बराबर उसीके विषयमें सोचता रहता है तथा उसकी सफलताकी कामना करता है। यह है वह पत्र :

> **एक सौदागर था, जो एकाएक दिवालिया हो गया और गरीबीके चंगुलमें बुरी तरह फँस गया। उसकी पत्नीने उस समय खाट पकड़ रखी थी; वह गठि-यासे पीड़ित थी। एक अत्तार था। वह पेटेंट दवाएँ बेचा करता था और अपने ग्राहकोंसे बराबर नकद अदायगी चाहता था। एक डाक्टर मित्र उस महिलाको देखने आया, और उसी समय उसकी लड़की ससुरालसे अपनी बीमार माँको देखने आई। वह एक दस रुपयेका नोट भी लायी थी जिससे वह पेटेंट दवा खरीदी जा**

१. देखिए "विनाशका नैतिक औचित्य", १–९–१९२१।

सके और उसकी माँकी तकलीफ जल्दी दूर हो जाये। उसने नोट डाक्टरको दे दिया, और डाक्टरसे पासकी अत्तारकी दुकानसे दवा मँगवा कर दे देनेको कहकर खुद चली गई। डाक्टरने कहा कि इसमें सन्देह नहीं कि दवासे उसे तत्काल राहत मिलेगी, लेकिन साथ ही उसके स्वास्थ्यपर उसका इतना बुरा असर होगा कि वह सदाके लिए अपंग बनी रहेगी। डाक्टरने आगे कहा कि मैं एक विद्युत्-चिकित्सकको जानता हूँ जो पास ही रहता है और गठियाको विद्युच्चिकित्सासे ठीक कर सकता है। उसकी रोजकी फीस १० रुपये है। एक महीनेमें वह रोगको जड़मूलसे उखाड़ देगा और महिलाके सामान्य स्वास्थ्यको भी कोई नुकसान नहीं पहुँचेगा।

लेकिन रोगीका आग्रह था कि उसे तत्काल आराम चाहिए, और इसलिए उसने डाक्टरसे बार-बार वह नोट देनेको कहा ताकि वह तुरन्त दवा मँगवा सके। लेकिन डाक्टरने भी बार-बार यही कहा कि उसकी अन्तरात्मा यह स्वीकार नहीं करती कि वह उस उद्देश्यसे वह नोट उसे दे दे और वह ऐसा करना पाप समझता है। लेकिन महिला गिड़गिड़ाने लगी और नोट देनेके लिए मिन्नतें करने लगी। इसपर डाक्टरने अपनी जेबसे दियासलाई निकाली और उस नोटको जलाकर राख कर दिया। उसने महिलासे कहा कि तुम्हें डरनेकी जरूरत नहीं है, क्योंकि मैं तुरन्त अपने खर्चपर उस विद्युच्चिकित्सकको लाने जा रहा हूँ, और यह पैसा तुम्हारे पति अपनी आर्थिक स्थिति सुधरते ही मुझे वापस दे देंगे। इस तरह जब क्षण-भरमें उसकी तात्कालिक राहत पानेकी आशा चली गई तो उसने डाक्टरसे कहा, "जैसा चाहें, करें।" इसपर डाक्टर विद्युच्चिकित्सकको ले आया, जिसने उसे विश्वास दिलाया कि अगर वह इलाज करने दे तो महीने-भरके अन्दर उसे स्थायी तौरपर ठीक कर दिया जायेगा। डाक्टरने सबके प्रति अपना वादा पूरा किया।

तब उस नोटका जलाना पुण्य था अथवा पाप?

उपर्युक्त दृष्टान्त बिलकुल वैसा ही है जैसा श्री गांधी द्वारा विदेशी कपड़ोंका जलाया जाना। श्री गांधी गरीबोंको वह तात्कालिक राहत देनेको तैयार नहीं हैं, जो उनके बीच विदेशी कपड़े बाँटकर उन्हें दी जा सकती है। वे सदाके लिए दीन-हीन न बन जायें, इसलिए उन्होंने स्वयं उनके हाथों तैयार किये गये कपड़े देनेकी व्यवस्था करके उन्हें सदाके लिए सुखी बनानेका वादा किया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-१०-१९२१

११०. हिन्दू धर्म

अपनी मद्रास-यात्राके दौरान अस्पृश्यताकी समस्यापर बोलते हुए मैंने जितने जोरदार ढंगसे अपनेको सनातनी हिन्दू बताया है, उतने जोरदार ढंगसे ऐसा कोई दावा पहले कभी नहीं किया था। फिर भी हिन्दू धर्मके नामपर ऐसे बहुतसे काम किये जाते हैं, जो मुझे मंजूर नहीं हैं। अगर मैं सचमुच वैसा नहीं हूँ तो मुझे सनातनी हिन्दू अथवा अन्य किसी ढंगका हिन्दू कहलानेकी कोई ख्वाहिश नहीं है और निश्चय ही मेरी ऐसी कोई ख्वाहिश तो हरगिज नहीं है कि एक महान् धर्मकी आड़ लेकर मैं कोई सुधार या बुराई दाखिल करूँ।

इसलिए यह आवश्यक है कि सनातन धर्मका जो अर्थ मैं लगाता हूँ उसे एक बार अन्तिम रूपसे स्पष्ट कर दूँ। सनातन शब्दका प्रयोग मैं उसके स्वाभाविक और प्रचलित अर्थमें ही कर रहा हूँ।

मैं अपनेको सनातनी हिन्दू इसलिए कहता हूँ कि :

१. मैं वेदों, उपनिषदों, पुराणों और हिन्दू धर्मग्रंथोंके नामसे प्रचलित सारे साहित्यमें विश्वास रखता हूँ, और इसलिए अवतारों और पुनर्जन्ममें भी।

२. मैं वर्णाश्रम धर्मके उस रूपमें विश्वास रखता हूँ, जो मेरे विचारसे विशुद्ध वैदिक है, लेकिन उसके आजकलके लोक-प्रचलित और स्थूल रूपमें मेरा विश्वास नहीं है।

३. मैं गो-रक्षामें उसके लोक-प्रचलित रूपसे कहीं अधिक व्यापक रूपमें विश्वास करता हूँ।

४. मैं मूर्तिपूजामें अविश्वास नहीं करता।

पाठक इस बातकी ओर ध्यान देंगे कि वेदोंके सन्दर्भमें मैंने जानबूझकर अपौरुषेय या ईश्वरीय विशेषणका प्रयोग नहीं किया है। कारण, मैं ऐसा नहीं मानता कि सिर्फ वेद ही अपौरुषेय हैं — ईश्वरीय हैं। 'बाइबिल' 'कुरान' तथा 'जेन्द अवेस्ता' के पीछे भी मैं उतनी ही ईश्वर-प्रेरणा मानता हूँ। इसके अलावा, हिन्दू धर्मग्रन्थोंमें मेरा विश्वास मुझे यह नहीं कहता कि मैं उनके एक-एक शब्द, एक-एक पंक्तिको ईश्वर प्रेरित मानूँ। न मैं ऐसा ही कोई दावा करता हूँ कि मैंने इन अद्भुत ग्रन्थोंका मूलरूपमें स्वयं अध्ययन किया है लेकिन इतना दावा तो अवश्य करता हूँ कि तत्त्वतः वे जो-कुछ सिखाते हैं उसके सत्यको मैं जानता हूँ और उसका अनुभव करता हूँ। उनकी चाहे जितनी पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या की जाये, अगर वह मेरे विवेक और नैतिक बुद्धिको नहीं रुचती तो मैं ऐसी किसी भी व्याख्याका बन्धन स्वीकार करनेको तैयार नहीं हूँ। वर्तमान शंकराचार्यों और शास्त्रियोंके हिन्दू धर्मग्रन्थोंकी सही व्याख्या देनेके किसी भी दावेको (अगर ऐसा दावा किया जाता है तो) मैं जोरदार शब्दोंमें अस्वीकार करता हूँ। इसके विपरीत, मैं ऐसा मानता हूँ कि इन ग्रन्थोंका हमारा वर्तमान ज्ञान बहुत ही अव्यवस्थित हालतमें है। हिन्दुओंके इस सूत्रमें मेरा पूर्ण विश्वास है कि जिसने अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्यको

सिद्ध नहीं कर लिया, जिसने धन-सम्पत्तिकी प्राप्तिकी आकांक्षा या उसे रखनेकी लालसाका त्याग नहीं कर दिया, उसे वास्तवमें शास्त्रोंके रहस्यका ज्ञान नहीं होता। मैं गुरुमें विश्वास करता हूँ, किन्तु इस युगमें तो लाखों-करोड़ों लोगोंको बिना गुरुके ही रहना होगा, क्योंकि पूर्ण पवित्रता और पूर्ण ज्ञानका संयोग किसी भी एक व्यक्तिमें मिल पाना आजकल बहुत कठिन हो गया है। किन्तु, इसीसे किसीको ऐसा न मान बैठना चाहिए कि वह तो अपने धर्मके सत्यको कभी जान ही नहीं सकता। कारण, अन्य धर्मोंकी तरह ही हिन्दू धर्मके भी बुनियादी सिद्धान्त सनातन हैं, और उन्हें आसानीसे समझा जा सकता है। हर हिन्दू ईश्वर और उसकी अद्वितीयतामें विश्वास करता है, पुनर्जन्म और मोक्षको मानता है। लेकिन जिस चीजने हिन्दू धर्मको अन्य धर्मोंसे अलग करके दिखाया वह वर्णाश्रम भी नहीं, गो-रक्षा थी।

मेरे विचारसे, वर्णाश्रम मानव प्रकृतिकी एक सहज विशेषता है, और हिन्दू धर्मने सिर्फ इतना ही किया है कि उसे शास्त्रका रूप दे दिया है। वर्णाश्रमका सम्बन्ध निश्चय ही जन्मसे है। कोई व्यक्ति अपनी इच्छासे अपना वर्ण बदल नहीं सकता। अपने वर्णके बन्धनोंको न मानना आनुवंशिकताके नियमको अमान्य करना है। लेकिन यह जो हिन्दू समाजको असंख्य जातियोंमें विभक्त कर दिया गया है, उसे इस सिद्धान्तके साथ बिना किसी कारणके मनमानी करना माना जायेगा। चार विभाग पर्याप्त हैं।

मैं नहीं मानता कि दूसरी जातिवालोंके साथ खाने-पीने या विवाह-सम्बन्ध करनेसे किसीका जन्मतः प्राप्त दर्जा छिन ही जाता है। चार वर्ण लोगोंके व्यवसायोंको निर्धारित करते हैं, वे सामाजिक समागमको प्रतिबन्धित या नियमित नहीं करते। वे लोगोंके कर्त्तव्य निर्धारित करते हैं, किसीको कोई विशेष अधिकार प्रदान नहीं करते। मैं मानता हूँ कि किसीका अपने-आपको ऊँचा मानने और किसी दूसरेको नीचा माननेकी धृष्टता करना हिन्दुत्वकी सहज प्रकृतिके विरुद्ध है। सभीका जन्म ईश्वरकी सृष्टिकी सेवा करनेके लिए हुआ है — ब्राह्मणको यह सेवा अपने ज्ञानसे करनी है, क्षत्रियको अपनी संरक्षणकी शक्तिसे, वैश्यको अपनी व्यापारिक क्षमतासे और शूद्रको शारीरिक श्रमसे। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि — उदाहरणके तौरपर — कोई ब्राह्मण शारीरिक श्रमसे या अपनी अथवा दूसरोंकी रक्षाके कर्त्तव्यसे मुक्त हो गया। जन्मसे ब्राह्मण मुख्यतः ज्ञानी और विद्यावान् पुरुष है और अपनी वंश-परम्परा तथा प्रशिक्षणकी दृष्टिसे वह दूसरोंको ज्ञानका प्रकाश देनेके लिए सबसे उपयुक्त है। इसी तरह किसी शूद्रको, वह जो और जितना ज्ञान प्राप्त करना चाहे, उससे रोकनेवाली कोई चीज नहीं है। इतना अवश्य है कि वह शारीरिक श्रमके द्वारा ही सबसे अच्छी सेवा करेगा, और उसे अन्य वर्णोंके लोगोंके सेवोपयोगी विशिष्ट गुणोंके प्रति ईर्ष्याका भाव रखनेकी कोई जरूरत नहीं है। लेकिन अगर कोई ब्राह्मण अपने ज्ञानके बलपर अपनेको दूसरोंसे श्रेष्ठ मानता है तो यह उसके पतनका कारण बनता है, और ऐसा मानना चाहिए कि जो ऐसी श्रेष्ठताका दावा करता है, उसे सचमुच कोई ज्ञान नहीं है। और यही बात अपने विशिष्ट गुणोंके बलपर अपनेको श्रेष्ठ माननेवाले अन्य वर्णोंके लोगोंके साथ भी लागू होती है। वर्णाश्रमका मतलब है, आत्मसंयम, शक्तिका रक्षण और उसका सुव्यवस्थित उपयोग।

इस तरह, विभिन्न वर्णोंके लोगोंके आपसमें खान-पान और शादी-विवाहका सम्बन्ध रखनेसे यद्यपि वर्णाश्रम धर्ममें कोई बाधा नहीं पहुँचती, तथापि हिन्दू धर्म ऐसे सम्बन्धोंका तीव्र विरोध करता है। हिन्दू धर्म आत्मसंयममें पराकाष्ठातक पहुँच गया है। इस धर्मका मूल भाव निस्सन्देह आत्माकी मुक्तिके लिए ऐहिक सुखका त्याग है। अपने पुत्रके भी साथ भोजन करना किसी हिन्दूके कर्त्तव्यका कोई अंग नहीं है। और पत्नीका चुनाव एक खास वर्गतक सीमित रखकर वह ऐसा आत्मसंयम बरतता है जो शायद ही कहीं देखनेको मिले। हिन्दू धर्म मोक्ष-प्राप्तिके लिए विवाहित जीवनको आवश्यक नहीं मानता। जन्मकी तरह विवाह भी मनुष्यके पतनकी निशानी है। मोक्ष जन्मसे, और इसलिए मृत्युसे भी छुटकारा है। विभिन्न वर्णोंके पारस्परिक खान-पान और शादी-विवाहके सम्बन्धों-पर रोक लगाना तीव्र आत्मिक विकासके लिए आवश्यक है। लेकिन इस पाबन्दीका पालन वर्णकी कसौटी नहीं है। अगर कोई ब्राह्मण ज्ञानके बलपर सृष्टिकी सेवाके अपने कर्त्तव्यसे विमुख नहीं हो गया हो तो किसी शूद्र भाईके साथ भोजन करके भी वह ब्राह्मण ही रहेगा। ऊपर मैंने जो-कुछ कहा है, उससे निष्कर्ष यही निकलता है कि भोजन और विवाह विषयक संयम जातीय श्रेष्ठताकी किसी भावनापर आधारित नहीं है। अगर कोई हिन्दू अपनेको श्रेष्ठ मानकर किसी अन्य व्यक्तिके साथ भोजन करनेसे इनकार करता है तो इसका मतलब है, वह अपने धर्मको गलत रूपमें पेश कर रहा है।

मगर दुर्भाग्यसे आज तो हिन्दू धर्म खान-पान सम्बन्धी विधि-निषेधोंका ही धर्म बनकर रह गया जाना पड़ता है। एक बार एक मुसलमान भाईके घर मैंने एक टोस्ट खा लिया। यह देखकर वहाँ उपस्थित एक धर्मनिष्ठ हिन्दू भाई हैरान रह गये। मुझे जब उन्होंने एक मुसलमान भाई द्वारा दिये प्यालेमें दूध डालते देखा तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ, लेकिन मुसलमानके हाथका टोस्ट खाते देखकर तो उनकी व्यथाका अन्त न रहा। अगर हिन्दू धर्म क्या और किसके साथ खाना चाहिए, इसीसे सम्बन्धित नियमोंके विस्तृत जालमें फँस गया तो वह अपना मूलतत्त्व खो बैठेगा। मादक पेयों और द्रव्योंके सेवनसे तथा तरह-तरहके खाद्यों, विशेषकर मांस आदिसे परहेज रखना आत्माके विकासमें बड़ा सहायक है, लेकिन यह अपने आपमें कोई सिद्धि नहीं है। मांसाहार करनेवाले और सबके साथ खानेपीनेवाले किन्तु ईश्वरसे डरकर चलनेवाले बहुतसे लोग उस व्यक्तिकी अपेक्षा मुक्तिके अधिक निकट हैं जो मांसाहार तथा अन्य बहुत-सी बातोंसे तो धार्मिक निष्ठाके साथ परहेज रखता है किन्तु अपने हर काममें, आचरणमें ईश्वरकी अवहेलना करता है।

लेकिन हिन्दू धर्मका मूलतत्त्व गोरक्षा है। मेरे लिए गोरक्षाका विचार मानवताके विकास क्रममें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम है। यह मनुष्यको अपनी जातीय परिधिसे बाहर ले जाता है। गायमें मैं समस्त मानवेतर प्राणियोंका दर्शन करता हूँ। मनुष्यसे यह अपेक्षा की जाती है कि गायके माध्यमसे वह समस्त प्राणी-जगत्के साथ तादात्म्यका अनुभव करे। और गायको ही पूजाके लिए क्यों चुना गया, यह मैं स्पष्ट देख सकता हूँ। भारतमें गाय मनुष्यकी सबसे अच्छी साथी थी। वह समृद्धिका स्रोत थी। वह दूध ही नहीं देती थी, उसीके बलपर खेतीका काम भी चलता था। गाय करुणाका

काव्य है। इस निरीह प्राणीमें करुणाके दर्शन होते हैं। वह करोड़ों भारतीयोंकी माँ है। गोरक्षाका मतलब है, ईश्वरकी सृष्टिके समस्त मूक प्राणियोंकी रक्षा। प्राचीन ऋषियोंने, वे जो भी रहे हों, मनुष्यके दया-भावको मानव जातिकी परिधिसे निकाल कर सृष्टिभरमें फैलानेका काम गायसे ही शुरू किया। मानवेतर प्राणियोंके प्रति करुणा रखनेकी आवश्यकता इस कारण और भी बढ़ जाती है कि वे मूक हैं। गोरक्षा विश्वको हिन्दू धर्मकी देन है। और जबतक गोरक्षा करनेवाले हिन्दू दुनियामें मौजूद हैं तबतक हिन्दूधर्म भी जीवित रहेगा।

और गोरक्षाका तरीका है उसकी रक्षाके लिए अपने प्राणोंकी आहुति देना। गायकी रक्षाके लिए मनुष्यकी हत्या करना हिन्दूधर्म और अहिंसाधर्मसे विमुख होना है। हिन्दुओंके लिए तपस्या द्वारा, आत्म-शुद्धि द्वारा और आत्माहुति द्वारा गोरक्षाका विधान है। लेकिन आजकलकी गोरक्षाका रूप बिगड़ गया है। उसके नामपर हम बराबर मुसलमानोंके साथ झगड़ा-फसाद करते रहते हैं, जब कि गोरक्षाका मतलब है मुसलमानोंको अपने प्यारसे जीतना। एक मुसलमान भाईने कुछ दिन पहले मुझे एक पुस्तक भेजी थी, जिसमें गौओं और उनकी सन्तानोंके प्रति बरती जानेवाली क्रूरताका विस्तृत वर्णन था। उसमें बताया गया है कि किस तरह हम उससे एक-एक बूंद दूध चूस लेते हैं, किस तरह हम उसे भूखों रखकर सुखा देते हैं, उसके बछड़ेके साथ हम कैसा बुरा बरताव करते हैं, किस तरह हम उन्हें उनके हिस्सेके दूधसे वंचित कर देते हैं, बैलोंके प्रति कितनी क्रूरता दिखाते हैं, किस तरह उन्हें बधिया कर देते हैं, मारते हैं और किस तरह उनपर शक्तिसे अधिक बोझा लाद देते हैं। अगर उन्हें वाणी होती तो हम उनके प्रति जो अपराध करते हैं उसकी वे ऐसी साक्षी देते कि दुनिया दाँतों तले अँगुली दबाने लगती। अपने मवेशियोंके प्रति हम जो दुर्व्यवहार करते हैं, उनमें से एक-एक इस बात-का सूचक है कि हमारा न ईश्वरमें विश्वास है और न हम हिन्दू हैं। मैं नहीं समझता कि मवेशियोंकी हालत किसी भी देशमें उतनी बुरी है जितनी इस अभागे देशमें है। इसके लिए हमें अंग्रेजोंको दोष नहीं देना चाहिए। हम इसका दोष गरीबीके मत्थे भी नहीं मढ़ सकते। हमारे मवेशियोंकी इस दयनीय स्थितिका एकमात्र कारण यही है कि हम उनकी उपेक्षा — अपराधपूर्ण उपेक्षा करते हैं। हमारे पिंजरापोल हमारे दयाभावके प्रमाण हैं सही, किन्तु साथ ही इस बातके सबूत भी हैं कि उस दयाभावको कार्य रूप देनेमें हम कितने ढीले हैं। ये पिंजरापोल आदर्श दुग्ध-शालाएँ और देशके लिए लाभदायक संस्थाएँ बननेके बजाय बूढ़े और बीमार पशुओंके लिए शरणस्थल बनकर रह गये हैं।

सच्चे हिन्दूकी पहचान तिलक नहीं है, मंत्रोंका सही उच्चारण नहीं है, तीर्था-टन नहीं है और न जाति-पाँतके नियमों और बन्धनोंका सूक्ष्म पालन ही । उसकी पहचान तो उसकी गो-रक्षाकी क्षमता है। गो-रक्षाके धर्मको स्वीकार करते हुए भी हमने गौओं और उनकी सन्तानोंको दासत्वकी स्थितिमें पहुँचा दिया है, और परिणामतः हम स्वयं भी दास बन गये हैं।

अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि मैं अपनेको सनातनी हिन्दू क्यों समझता हूँ। गायकी चिन्ता मुझे किसीसे कम नहीं है। मैंने खिलाफतके मामलेको अपना इस-

लिए बना लिया है कि मैं देखता हूँ उसकी रक्षाके द्वारा मैं पूर्ण गो-रक्षा कर सकता हूँ। मैं अपने मुसलमान भाइयोंसे यह नहीं कहता कि मेरी सेवाओंका खयाल करके वे गोरक्षा करें। लेकिन मैं सर्वशक्तिमान् ईश्वरसे रोज ही यह प्रार्थना करता हूँ कि मैं जिस पक्षको सर्वथा न्याय-सम्मत समझता हूँ उसके लिए मैं जो-कुछ कर रहा हूँ वह उस सर्वशक्तिमानको इतना अच्छा लगे कि वह मुसलमानोंका हृदय परिवर्तित कर दे, और अपने हिन्दू भाइयोंके प्रति उनमें इतनी दया भर दे कि जिस पशुको हिन्दू अपने प्राणोंकी तरह प्यारा मानते हैं, उसकी रक्षाकी ओर वे स्वयं ही प्रवृत्त हो जायें।

जैसे अपनी पत्नीके बारेमें अपनी भावनाका वर्णन करना मेरे लिए कठिन है वैसे ही हिन्दूधर्मके बारेमें भी। उसका मुझपर जितना असर होता है, उतना संसारकी और किसी स्त्रीका नहीं हो सकता। ऐसा नहीं कि उसमें दोष हैं ही नहीं। मैं तो कहूँगा, मुझे उसमें जितने दोष दिखाई देते हैं, दरअसल उससे भी अधिक दोष उसमें होंगे। लेकिन मुझे उसके साथ एक अटूट बन्धनका अनुभव होता है। मेरी यही भावना हिन्दू धर्मके बारेमें भी है, भले ही उसमें जो दोष हों, उसकी जो सीमाएँ हों। हिन्दू धर्मकी दो ही पुस्तकें हैं, जिन्हें जाननेका दावा मैं कर सकता हूँ। वे हैं—'गीता' और तुलसीकृत 'रामायण'। इन दोनोंका संगीत मेरे मनको जितना आह्लादित करता है उतनी और कोई चीज नहीं करती। एक बार जब मुझे लगा कि मेरी अन्तिम घड़ी आ पहुँची है, तब मुझे 'गीता' से ही सांत्वना प्राप्त हुई थी। आजकल हिन्दुओंके बड़े-बड़े मन्दिरोंमें जो बुराई चल रही है उसे मैं जानता हूँ। उनमें ऐसे दोष हैं, जिनका वर्णन भी नहीं किया जा सकता, फिर भी मुझे उनसे प्रेम है। उनमें मैं एक विशेष आकर्षणका अनुभव करता हूँ—ऐसा आकर्षण जैसे आकर्षणका अनुभव मैं और किसी चीजके प्रति नहीं करता। मैं आदिसे अन्ततक एक सुधारक हूँ। लेकिन ऐसा नहीं है कि मैं उत्साहातिरेकमें हिन्दूधर्मकी असली चीजोंको भी छोड़ दूँ। मैंने कहा है, मैं मूर्ति-पूजामें अविश्वास नहीं करता। किसी मूर्तिको देखकर मेरे मनमें श्रद्धाका कोई भाव नहीं जगता। लेकिन, मैं समझता हूँ, मूर्ति-पूजा मानव स्वभावका अंग है। प्रतीकोंके प्रति हमारा सहज आकर्षण होता है। अन्यथा अन्य स्थानोंकी अपेक्षा गिरजाघरमें कोई अधिक गम्भीर क्यों हो उठता? मूर्तियाँ पूजामें सहायक होती हैं। कोई भी हिन्दू मूर्तिको भगवान् नहीं समझता। मैं मूर्तिपूजाको पाप नहीं मानता।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट हो गया होगा कि हिन्दू धर्म कोई वर्जनशील धर्म नहीं है। उसमें दुनियाके सभी नबियों और पैगम्बरोंकी पूजाके लिए स्थान है। वह साधारण अर्थोंमें प्रचारका ध्येय रखनेवाला धर्म नहीं है। बेशक, इसके अंचलमें कई जातियाँ समा गई हैं, लेकिन यह विकासकी स्वाभाविक प्रक्रियाकी तरह और अदृश्य रूपसे हुआ है। हिन्दूधर्म सभी लोगोंको अपने-अपने धर्मके अनुसार ईश्वरकी उपासना करनेको कहता है, और इसलिए इसका किसी धर्मसे कोई झगड़ा नहीं है।

हिन्दूधर्मके विषयमें मेरी यह धारणा है और इसलिए मैं अस्पृश्यताको माननेके लिए अपने मनको कभी भी तैयार नहीं कर पाया हूँ। मैं बराबर इसे हिन्दूधर्मका एक भारी दोष मानता आया हूँ। यह सच है कि यह दोष हमारे यहाँ परम्परासे चला आ

रहा है, लेकिन यही बात दूसरे बहुतसे बुरे रिवाजोंके साथ भी लागू होती है। यह सोचकर ही मुझे शर्म आती है कि लड़कियोंको लगभग वेश्यावृत्तिके लिए अर्पित कर देना[1] हिन्दूधर्मका एक अंग था। फिर भी, भारतके कई हिस्सोंमें यह आजतक प्रचलित है। मैं कालीके आगे बकरेकी बलि देना अधर्म मानता हूँ और इसे हिन्दू धर्मका अंग नहीं समझता। हिन्दूधर्म अनेक युगोंका विकास फल है। हिन्दुस्तानके लोगोंके धर्मको हिन्दू धर्मकी संज्ञा ही विदेशियोंने दी। इसमें सन्देह नहीं कि किसी समय धर्मके नाम-पर पशु-बलि दी जाती थी। लेकिन यह कोई धर्म नहीं है, और हिन्दू धर्म तो नहीं ही है। और इसी तरह मुझे यह भी लगता है कि जब गोरक्षा हिन्दुओंका धर्म बन गई तब गोमांस खानेवालोंका समाजसे बहिष्कार कर दिया गया। इसलिए निश्चय ही समाजमें भारी संघर्ष हुआ होगा। यह सामाजिक बहिष्कार सिर्फ इस धार्मिक बन्धनको न माननेवालोंपर ही नहीं लागू किया गया, बल्कि उनके पापोंका फल उनकी सन्तानों-को भी दिया गया। जो रिवाज आरंभमें शायद अच्छे उद्देश्योंसे शुरू किया गया वह बादमें कठोर परिपाटीके रूपमें बदल गया और हमारे धर्मग्रंथोंमें भी कुछ ऐसे श्लोक जोड़ दिये गये जिनसे यह परिपाटी सर्वथा अनुचित और अन्यायपूर्ण ढंगसे स्थायी बन गई। मेरा यह अनुमान सही हो या न हो, अस्पृश्यता बुद्धिके तथा करुणा, दया या प्रेमकी भावनाके विरुद्ध है। जिस धर्मने गायकी पूजाका प्रवर्तन किया, वह मनुष्यके निर्दय और अमानवीय बहिष्कारका समर्थन कैसे कर सकता है, उसका औचित्य कैसे ठहरा सकता है? और भले ही कोई मेरे टुकड़े-टुकड़े कर दे, मैं दलित वर्गोंका साथ नहीं छोड़ सकता। जबतक हिन्दू अपने उदात्त धर्मको अस्पृश्यताके कलंकसे दूषित रखेंगे तबतक वे कभी भी स्वतंत्रताके पात्र नहीं होंगे और न उसे प्राप्त कर सकेंगे। और चूँकि मैं हिन्दूधर्मको अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यार करता हूँ, इसलिए यह कलंक सहना मेरे लिए असम्भव हो गया है। अगर हम अपनी जातिके पाँचवें हिस्सेको हमसे बराबरीके दर्जेपर मिलने-जुलनेके अधिकारसे वंचित करते हैं तो उसका मतलब है, हम ईश्वरकी सत्ताको अस्वीकार करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६–१०–१९२१

१. देवदासी प्रथा।

१११. स्थिति बहुत ठीक नहीं है !

पन्द्रह मास पूर्व लोगोंने दमनात्मक कानून समितिकी रिपोर्टका हर्षके साथ स्वागत किया होता। लेकिन अब किसीको इसकी परवाह नहीं कि ये कानून रद किये जाते हैं या बरकरार रखे जाते हैं। हमें अब उनसे कोई डर नहीं लगता, क्योंकि गिर-फ्तारियों और जेलकी सजाओंका भय हमारे मनसे जाता रहा। अब हम किन्हीं खास कानूनों और विनियमोंको रद करानेकी कोशिश नहीं कर रहे हैं; कोशिश कर रहे हैं उस प्रणालीको जड़-मूलसे नष्ट कर देनेकी जिसके कारण इन कानूनों और विनियमोंका बनना सम्भव हुआ। अब हमें यह मालूम हो गया है कि (आम कानूनोंके अन्तर्गत भी) सरकार (तनिक भिन्न ढंगसे) वह सब-कुछ कर सकती थी जो उसने उन कानूनोंके अन्तर्गत किया है, जो रद किये जानेको हैं। आवश्यकता पड़नेपर सरकारके कानूनी सलाहकारोंने दण्ड प्रक्रिया संहिताके खण्ड १४४, १०७ और १०८ में ऐसी सम्भावनाएँ खोज निकाली हैं जिनका पहले सरकारको कोई एहसास नहीं था। तथ्य यह है कि अगर सामान्य कानूनको भी, भावनामें परिवर्तन लाये बिना, बदल लिया जाता है तो भारतके लोगोंको उससे कोई लाभ नहीं होगा।

इसलिए यद्यपि इस रिपोर्टमें जनताकी अभिरुचि नहीं है, फिर भी देशकी राज-नीतिक स्थितिके अध्येताओंके लिए यह एक स्थायी महत्वका दस्तावेज है। कोई अत्यन्त प्रतिक्रियावादी असैनिक अधिकारी दस वर्ष पूर्व भी यह रिपोर्ट उसी भाषामें तैयार कर सकता था जैसी वह आज है। समितिका निष्कर्ष इस प्रकार है:

> **हालकी वारदातों तथा उस सम्भावित घटनाक्रमको ध्यानमें रखते हुए, जिसे कोई भी अधिकसे-अधिक दुःशंकाके भावसे ही देखेगा, उन्हें (राजद्रोहात्मक सभाओंके निषेधका अधिनियम तथा भारतीय दण्ड विधान संशोधन अधिनियम, १९१८का भाग–२) कायम रखना जरूरी है।**

मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जो भी दमनात्मक कार्रवाई की गई है उसकी स्वीकृति उसी "कठोर कर्त्तव्य-भाव" के अनुरोधसे दी गई है जिसके अनुरोधसे उपर्युक्त कानूनोंको कायम रखना है।

मैं यह नहीं मानता कि जिन अधिकारियोंने ये सारे दमनात्मक कानून बनाये उन्हें दमनकार्यमें बहशियाना आनन्दका अनुभव होता था। लॉर्ड कर्जन[1] निश्चय ही यही मानते थे कि बंगालका विभाजन सार्वजनिक हितमें है और जो लोग उसका विरोध करते हैं वे प्रगतिके विरोधी हैं। सर माइकेल ओ'डायर सच्चे मनसे मानते थे कि शिक्षित वर्गके लोग मूर्ख हैं; वे अपना हित-अहित भी नहीं समझते हैं और ऐसे मामलोंमें दस्तन्दाजी करते हैं जिनके बारेमें उन्हें कोई जानकारी ही नहीं है, और दरअसल वे जन-साधारणके, जिसकी ओरसे बोलनेका वे दावा करते हैं, हित-

१. भारतके वाइसराय; १८९९–१९०५।

कामी नहीं हैं। जनरल डायर भी, निःसन्देह, यही मानते थे कि जबतक वे भारतीयों-को सबक न सिखा देंगे, यहाँ हर अंग्रेजकी जान खतरेमें है। अलबत्ता, इन तीनों मामलोंमें हमने (और इस समितिके अधिकांश सदस्योंने भी) यह माना था कि अधिकारियोंका दिमाग विकृत हो गया था। वे बंगालकी स्वाभिमानपूर्ण भावनाको नहीं समझ सके थे। वे यह नहीं समझ सके थे कि उन शिक्षित भारतीयोंका मन किस वेदनासे व्यथित है जिन्हें अधिकारियोंकी तुलनामें — जो सिर्फ सर्दियोंमें मौज-मजे करनेके लिए पहाड़ोंकी ऊँचाइयोंपर से उतरकर जनताके बीच आ जाते हैं — सर्वसाधारणकी आवश्यकताओंकी सहज ही कहीं अधिक अच्छी पहचान थी। वे नहीं समझ सके थे कि भारतीय कभी वैसा अमानवीय और कायरतापूर्ण आचरण कर ही नहीं सकते, जैसा कि एक सिपाही होते हुए भी जनरल डायरने उनके बारेमें सोचनेकी भूल की। उन दिनों हम ऐसा मानते थे कि भले ही जनता गलतीपर हो, लेकिन तब भी उसकी इच्छाकी अवहेलना करना अधिकारियोंके लिए अनुचित है। हम पूरे विश्वासके साथ कहा करते थे कि अपने हिताहितके सबसे उपयुक्त निर्णायक हम स्वयं हैं। लेकिन अब हममें से कुछके विचार बदल गये हैं। हममें से कुछ अब उसी स्थितिमें हैं, जो अधिकारियोंकी है। ये लोग अपने-आपको अज्ञानी जनसाधारणका "हित-रक्षक" समझते हैं और मानते हैं कि सिद्धान्तहीन आन्दोलनकारी, और यदि वे नहीं तो सचाईसे दूर कल्पना-लोकमें रहनेवाले कुछ व्यक्ति, उन्हें गुमराह कर रहे हैं; और इसलिए तीव्र (और शायद अज्ञानपूर्ण) विरोधके बावजूद वे "नई, सुधरी" कौंसिलों-को चलाये जा रहे हैं, और इसीलिए मलाबारके विद्रोहको मूल्यवान रक्त बहाकर दबा रहे हैं, यद्यपि हम उन्हें मलाबारमें मोपलोंको समझा-बुझाकर लूट-पाटके पागलपन भरे कामसे रोकनेके लिए निःशस्त्र लोग भेजनेको तैयार हैं। वे सचमुच मानते हैं कि ऐसा करके वे देशकी सेवा कर रहे हैं।

इस तरह हम पहलेसे कोई अच्छी स्थितिमें नहीं हैं; बल्कि शायद उससे बुरी स्थितिमें ही हैं। कारण, अब हमें न केवल एक विदेशी नौकरशाहीका सामना करना है, बल्कि एक राष्ट्रीय नौकरशाहीसे भी जूझना है। इस रिपोर्टका जोरदार विश्लेषण करते हुए लाला लाजपतरायने ठीक ही कहा है कि हम जो चाहते हैं वह यह नहीं है कि हमारे शासक बदल जायें, हम तो शासन-प्रणालीमें परिवर्तन चाहते हैं, जनता और राज्यके सम्बन्धोंमें तबदीली चाहते हैं। राज्य या तो जनताका प्रतिनिधि हो या फिर उसे खतम कर दिया जाये। रिपोर्टकी इस विचित्रताका कारण यह है कि गैर-सरकारी सदस्योंपर कोई जिम्मेदारी तो है नहीं, किन्तु वे सचमुच ऐसा मानते हैं कि वे हमारे हितोंको हमसे अधिक अच्छी तरह समझते हैं। इसलिए जो जनसमुदाय पूरी तरह जग गया है, और जिसे अपना अधिकार समझता है उसे पानेके लिए वह कोई भी तकलीफ उठानेको तैयार है, उस जनसमुदायकी आकांक्षाओंको इस तरहकी टाँक-जोड़से कैसे तुष्ट किया जा सकता है?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६–१०–१९२१

११२. ३० सितम्बर

अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीने पूर्ण वाद-विवादके बाद विदेशी वस्त्रोंके पूर्ण बहिष्कारकी अन्तिम तिथि ३० सितम्बर नियत की थी। बहस इस बातपर थी कि तारीख ३० सितम्बर रखी जाये, या ३० अक्तूबर! जो लोग ३० सितम्बरके पक्षमें थे, उनका कथन था कि यदि हम ३० अक्तूबरतक बहिष्कारका कार्य पूरा कर सकते हैं, तो हम उसे ३० सितम्बरतक भी पूरा कर सकेंगे। हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि जो प्रस्ताव हमने पास किया था उसे पूरा करनेमें हम सफल नहीं हो सके। हाँ, निश्चय ही बहुत काम हुआ है। खादी बहुत लोकप्रिय हुई है और उसका चलन भी बहुत बढ़ा है। कितने ही स्थानोंमें उसकी किस्म भी सुधरी है। निश्चय ही अब अधिक चरखे चल रहे हैं, कई नये करघे तैयार किये गये हैं। जो उन्नति इस समयतक हुई है, उसे सन्तोषजनक अवश्य कह सकते हैं। पर जब हम यह खयाल करते हैं कि हम लोग इसे युद्धके पैमानेपर चला रहे हैं तब हमें यह प्रगति बिलकुल कम लगती है।

आखिर इस आन्दोलनकी सफलता उपभोक्ताओंपर ही निर्भर है। बाहरसे मँगानेवालोंने कुछ सहायता अवश्य की है, पर उपभोक्ताओंने केवल आंशिक बहिष्कारसे सन्तोष कर लिया है। प्रायः सब लोगोंने विदेशी टोपियाँ पहनना छोड़ दिया है; कुछने वास्केटें छोड़ दी हैं, पर धोतियोंका बहिष्कार तो बहुत ही कम लोगोंने किया है। उपभोक्ताओंने माल तैयार करनेवालोंकी कोई खास सहायता नहीं की है। सूत कातनेका काम कुछ गरीबोंने ही उठाया है। उपभोक्ताओंने पूर्ण परिवर्तनकी आवश्यकता अनुभव नहीं की है। उपभोक्ता अभी पूरी तौरपर महसूस नहीं कर पाये हैं कि स्वराज्य प्राप्तिके बाद हमें किस प्रकार एक नये जीवनके तौर-तरीके अपनाने पड़ेंगे। टाल-मटोल करनेसे हमें सफलता नहीं मिलेगी। हमें इस मामलेमें सफलता पानेके लिए पूर्ण परिवर्तन करनेकी आवश्यकता है।

साथ ही बंगाल तथा मद्रासमें भ्रमण करते समय मैंने यह भी देखा कि लोग इसके लिए इच्छुक हैं। अधिकांश लोग आशान्वित थे और उनका यही कहना था कि थोड़ा और समय मिलनेपर वे पूरी तौरपर संगठन खड़ा कर लेंगे और बिना किसी कठिनाईके खादी तैयार करने लगेंगे। स्वदेशीके विषयमें स्त्रियोंको लेकर ज्यादा कठिनाई पड़ रही है। वे इस परिवर्तनको पुरुषोंकी भाँति खुशीसे स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं हैं। पर इन कठिनाइयोंको पार करनेसे ही हममें साहस, आशा, दृढ़ता और साथ ही भारतकी वास्तविक दशाका ज्ञान होगा। स्वदेशीके माने हैं वास्तवमें भारतका औद्योगिक पुनरुत्थान तथा फलस्वरूप बढ़ती हुई घोर दरिद्रताका विनाश। जब हम राज्यकी सहायताके बिना अपनी वस्त्रकी आवश्यकताएँ पूरी कर लेंगे और भारतकी गरीबीकी उस समस्याको हल कर लेंगे, जिसे हम लोग असाध्य समझते थे, तब

हममें यह आत्मविश्वास भी आ जायेगा कि हममें अपना प्रबन्ध आप कर लेनेकी योग्यता है।

आज सर विलियम विन्सेंट[1] हमें इच्छानुसार नाच-नचा सकते हैं। जो लोग अपने मनसे ही जनताके प्रतिनिधि बन बैठे हैं, उन लोगोंको वे यह समझाते हैं कि भारतके अल्पसंख्यक लोगोंके हितोंकी रक्षा केवल ब्रिटिश सरकार ही कर सकती है। उन्होंने इन लोगोंको यह विश्वास भी करा दिया है कि आजतक भारतीयोंमें से इतने भी अफसर और सैनिक नहीं निकल सके हैं जो विदेशियोंके आक्रमणसे देशकी सीमाओंकी रक्षा कर पाते।

पर जिस दिन सर विलियम विन्सेंट यह देखेंगे कि हम लोग अपनी मुख्य आवश्यकताओंकी पूर्ति ब्रिटिश सत्ताकी सहायताके बिना और सच कहें तो उसके विरोधके बावजूद स्वयं करने लग गये हैं और उसके लिए हमें दूसरे देशोंकी सहायताकी आवश्यकता नहीं रह गई है, उसी दिनसे वे हमें नाच नचाना छोड़ देंगे और उनका रुख बदल जायेगा।

स्वदेशी हमारे लिए खिलाफत है, यही हमारी कामधेनु है। जिस समय हम स्वदेशीको सिद्ध कर लेंगे उस समय हममें इतनी शक्ति आ जायेगी कि हम खिलाफतकी रक्षा कर सकेंगे। उस समय हम अपने देशकी सीमाओंको बाहरी आक्रमणसे बचा सकेंगे और अपना प्रबन्ध भी आप कर सकेंगे।

मुझे विश्वास है कि यदि ३० करोड़ भारतवासी आज कृत-संकल्प हो जायें, यदि एक करोड़ कांग्रेस सदस्य ही आज जी-जानसे जुट जायें, तो हम इसी मासमें विदेशी कपड़ेका बहिष्कार कर सकते हैं और अपनी आवश्यकताके लायक स्वदेशी कपड़ा तैयार कर सकते हैं। इसके लिए तीन शर्तें पूरी करनी पड़ेंगी। पहले हम हर तरहके विदेशी वस्त्रोंका परित्याग करें, दूसरे इस बीचके समयमें कमसे-कम वस्त्रोंसे ही अपनी आवश्यकता पूरी करें; और तीसरे इस कमसे-कम आवश्यकताकी पूर्तिके लिए हम जितनी खादी आवश्यक समझें उसके लिए अपने हाथसे सूत कातकर तैयार करें या अपने पड़ोसीसे सूत कतवाएँ और उसे गाँवके जुलाहेसे बुनवा लें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६–१०–१९२१

१. गवर्नर-जनरलकी कार्यकारिणी परिषद्के सदस्य।

११३. स्वदेशीमें विघ्न

ऊपर दिया गया पत्र[1] एक व्यापारी मित्रने लिखा है। उन्होंने आजतक जी-भर कर विदेशी कपड़ेका व्यापार किया है, फिर भी वे यह समझ सके हैं कि देशका हित किस बातमें है और चरखे और खादीका महत्त्व उनकी समझमें आ गया है। इस मित्रने जो भय बताये हैं वे हमारे लिए विचारणीय हैं।

मिलोंके कपड़ेको उत्तेजन देना हमारी भूल है, इतना ही नहीं, बल्कि उसको खरीदनेके लिए दौड़ना भी भूल है। मिलोंका कपड़ा तो खपता ही रहेगा। यदि हम मिलवालोंको लालचमें डालेंगे तो मालकी किस्म अवश्य बिगड़ेगी और जो लोग इस कपड़ेका व्यापार मुनाफेके लिए ही करते हैं उनको कपड़ेका दाम बढ़ानेका लालच हो जायेगा। जब देशके लोग स्वयं देशहितका विचार करें तभी व्यापारियोंसे भी यह आशा की जा सकती है कि वे देशहितकी ही खातिर व्यापार करें। मैं खादी पहननेकी दिक्कत उठा लूँ — यदि इसे दिक्कत कहूँ तो — और उसका दाम अधिक हो तो अधिक दाम भी दे दूँ, यह ज्यादा आसान है या मिलमालिकोंके लिए अपना करोड़ोंका मुनाफा छोड़ना ज्यादा आसान है? यदि हम मालिकोंसे कोई बहुत बड़ी आशा करें तो यह मूर्खता ही समझी जायेगी। हमें यही मान कर यह आन्दोलन चलाना चाहिए कि ये लोग सबसे पहले नहीं बल्कि सबसे पीछे जागेंगे। इसमें उनका दोष निकालना मानव-स्वभावका दोष निकालनेके बराबर है। यदि उनके स्थानपर हम हों तो निश्चय ही हम भी ऐसा ही करें। इसलिए हममें से जो लोग स्वदेशीका व्यवहार धर्मके रूपमें करते हैं उनको मिलोंका बना कपड़ा नहीं पहनना चाहिए।

इसका अर्थ यह है कि हमारे हिस्सेमें स्वभावतः हाथके कते सूतकी और हाथकी बुनी खादी ही रह जाती है। "खादी" शब्दमें कोई चमत्कार नहीं है, उसके गुणमें चमत्कार है। खादीके रूपरंगमें चमत्कार नहीं है। हाथके कते सूतका और हाथका बुना हुआ कपड़ा यदि खादी जैसा नहीं बल्कि मलमल जैसा लगता होता तो हम उसे पसन्द करते। हाथकी कती और हाथकी बुनी खादीका सार्वजनिक प्रचार करनेसे ही देशकी दरिद्रताका नाश होगा और उसके द्वारा ही स्वराज्य मिलना सम्भव है, यह बात हमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखकर रख लेनी चाहिये। कहनेका मतलब यह है कि जापान-से आई हुई अथवा हमारी मिलोंमें बनी हुई खादी, खादी नहीं, बल्कि खादी-जैसा दिखनेवाला एक कपड़ा है। उस कपड़ेका तो त्याग ही किया जाना चाहिए।

खादी लेनेके लिए नडियादके लोगोंको न अहमदाबाद जाना चाहिए और न बम्बई। यह खादी तो उन्हें नडियादमें ही बनानी चाहिए क्योंकि यह प्रयत्न है ही

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें उस खतरेकी ओर ध्यान खींचा गया था जो खादीकी तुलनामें कारखानोंके कपड़ेके प्रति लोगोंकी बढ़ती हुई रुचिके कारण स्वदेशी आन्दोलनके लिए पैदा हो गया था।

इसलिए कि नडियादके लोगोंका उतना पैसा नडियादमें ही रहे -- अथवा उन्हें अपने जिलेमें काते हुए सूतकी और वहाँ बुनी हुई खादीका व्यवहार करना चाहिए। इसमें खादी महँगी नहीं होगी। घरकी बनी रोटी बाजारकी बनी रोटीसे सदा सस्ती ही होती है। यदि मैं अपने पड़ौसी बुनकरको दो आने दूँ तो यह मांचेस्टर भेजे गये एक पैसेसे ज्यादा सस्ता है, क्योंकि अपने पड़ोसी बुनकरको दिये गये दो आनेमें से मेरे पास कुछ वापस आ जायेगा। किन्तु यदि मैं अपने पड़ोसी बुनकरको भूखों मारकर मांचेस्टरके बुनकर या बम्बईके बुनकरको रोटी दूँ तो इससे मेरा पड़ोसी बुनकर मेरे लिए भार-रूप हो जायेगा और मुझे उसके लिए सदावर्तकी व्यवस्था करनी पड़ेगी। हम भारतमें इस तरहके सदावर्तकी व्यवस्था करके अपने मनको धोखा देते हैं कि हम पुण्य कमा रहे हैं। हमें सदावर्तकी व्यवस्था करनेकी जरूरत पड़ती है, इस स्थितिके मूलमें हमारा जो पाप है वह हमें दिखाई नहीं देता -- या ऐसा कहें कि उसे हम देखना नहीं चाहते। यदि कोई हमारी सम्पत्ति छीन कर हमारे लिए सदावर्त जारी कर दे तो हमें कैसा लगेगा? अथवा दीर्घकालके अभ्याससे हमें इस तरह भीख माँगनेकी आदत पड़ जाये तो जो लोग हमें देखेंगे वे हमारे बारेमें क्या सोचेंगे? फिर भी हम अपना कताई और बुनाईका प्राचीन धन्धा छोड़कर भिक्षुक ही बन गये हैं, और यदि हम चेतेंगे नहीं तो हमारा यह भिक्षुकपन और भी बढ़ जायेगा और अन्तमें 'जो लोग यज्ञ किये बिना खाते हैं वे चोर हैं' इस नियमसे हम चोर ठहरेंगे।

मुझे बंगालके मिथ्याभिमानका भय नहीं है। यदि गुजरात अकेला ही स्वदेशी-व्रतका पालन करना सीख गया तो बंगाल उसका अनुकरण अवश्य करेगा। मद्रासके लोगोंको तरह-तरहके रंगोंका बहुत मोह है; उनके इस मोहको भंग करना मुझे अवश्य ही कठिन लगता है; किन्तु आजकी धर्म-जागृतिके समयमें जो आगे जाता हुआ दिखता है वह पिछड़ने लगे और जो पिछड़ता दिखता है वह आगे निकल जाये तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। बंगालमें भी उद्योग तो किया ही जा रहा है।

इस पत्र-लेखकने बंगालके धरनेके सम्बन्धमें ठीक जानकारी न होनेसे बंगालियोंके प्रति अन्याय किया है। मारवाड़ियोंकी दूकानोंके सामने धरना देनेवाले मारवाड़ी और खिलाफत समितिके स्वयंसेवक थे। इसमें बंगालियोंका हाथ था ही नहीं। इस धरनेका आरम्भ शुद्ध हेतुसे किया गया था और वह अन्ततक सभ्यतासे ही चलाया गया था। इसमें सेठ जमनालाल बजाज-जैसे मारवाड़ी सज्जनोंने प्रमुख भाग लिया था।

मुझे जो भय है वह केवल स्त्रियोंके सम्बन्धमें है। हमने स्त्रियोंको ऐसी महत्व-पूर्ण बातोंसे भी बेजानकार ही रखा है। वे ऐसे कामोंमें अभी-अभी रस लेने लगी हैं और जबतक विदेशी कपड़ेपर से उनका मोह नहीं जायेगा तबतक स्वदेशीका कार्य-क्रम पूरा न होगा। सौभाग्यसे स्त्रियोंकी जागृति अचानक इतनी बढ़ गई है कि मैं उनमें बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन होते देख रहा हूँ। किन्तु पुरुषोंको अपनी उपेक्षाका बहुत बड़ा प्रायश्चित्त करना ही पड़ेगा। जब पुरुषोंमें विदेशी कपड़ा ढूँढ़े नहीं मिलेगा तब स्त्रियोंको उसका त्याग करनेमें तनिक भी देर नहीं लगेगी। अभी तो पुरुषोंको भी सजने-धजनेकी जरूरत रहती है। उनका बारीक कपड़ेका मोह अभीतक नहीं गया है। उन्हें अभी धोतियाँ तो मिलकी ही चाहिए। उनको खादीका बोझा उठाने-

में असुविधा प्रतीत होती है। जबतक पुरुष विदेशी कपड़ेका पूर्ण त्याग नहीं करते तबतक स्त्रियोंसे ऐसी आशा कैसे की जा सकती है? इस तरह अनेक तरहकी बाधाएँ हमारे स्वदेशी प्रचारके मार्गमें खड़ी हैं। जब हम इनको दूर कर लेंगे तभी स्वराज्य-का सूर्य क्षितिजपर चमकता दिखाई देगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६-१०-१९२१

११४. टिप्पणियाँ

पूर्व आफ्रिका

पूर्व आफ्रिकाके भारतीयोंके कष्टोंकी[१] कथा यहाँके अखबारोंमें छपती है इतना ही नहीं बल्कि वहाँसे भी मित्र लोग मुझे समाचार देते रहते हैं। फिर भी मैं "नव-जीवन" या "यंग इंडिया" में इस सम्बन्धमें शायद ही कभी कुछ लिखता हूँ। पूर्वी आफ्रिकाके भारतीय इसका अर्थ यह न समझें कि मुझे उनके कष्टोंका ज्ञान नहीं है अथवा उनके प्रति मेरी सहानुभूति कम हो गई है। किन्तु जिसके ऊपर तलवारकी चोट पड़ रही हो वह सुईकी चुभनको कुछ नहीं मानता, मेरी स्थिति कुछ ऐसी ही है। मुझे भारतकी आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थिति इतनी बिगड़ी हुई दिखाई देती है और उससे मेरा मन इतना दुःखी होता है कि उसकी तुलनामें अन्य सब दुःख मुझे कुछ नहीं लगते। मैं यह भी जानता हूँ कि जबतक भारतके कष्टोंका अन्त नहीं होता तबतक पूर्वी आफ्रिकाके भारतीयोंके कष्ट दूर नहीं हो सकते। किन्तु जैसे कुएमें पानी भरता है तो चरईमें अवश्य ही आता है वैसे ही भारतका रोग जब मिट जायेगा तब पूर्वी आफ्रिकाके भारतीयोंका रोग भी अवश्य मिट जायेगा। यदि हम भारतके रोगको दूर करनेका उचित उपाय न करते होते तो हम सभी पूर्वी आफ्रिकाके भारतीयोंके कष्ट दूर करनेमें लग पड़ते।

इसका अर्थ यह नहीं है कि पूर्वी आफ्रिकाके भारतीय स्वयं कोई पुरुषार्थ न करें। उनको तो पुरुषार्थ करना ही चाहिए। किन्तु भारतकी ठोस सहायता आज उन्हें उनके नामपर नहीं, बल्कि भारतके रोगको मिटानेके नामपर मिलेगी और मिल रही है। वे समझ गये हैं कि भारतका तेज इतना बढ़ गया है कि इससे उनको सहायता मिलती रहेगी। स्वयं उनकी शक्ति भी बढ़ी है।

पूर्वी आफ्रिकाके गोरोंने मर्यादा तोड़ दी है। ऐसा जान पड़ता है उन्होंने ब्रिटिश विधानको न माननेका निश्चय कर लिया है। कानूनका ऐसा भंग कानूनकी अविनय अवज्ञा है। जब मनुष्य केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिए कानूनका भंग करता है तब वह सविनय भंग नहीं होता। अपने इस कार्यमें उन्होंने जनरल स्मट्ससे सहायता माँगी थी, किन्तु वहाँसे उन्हें कोई सहायता नहीं मिली। मुझे विश्वास है कि यदि

१. रिहायशी और व्यापारिक क्षेत्रोंमें जातीय पृथक्करणके प्रस्तावोंके फलस्वरूप।

पूर्वी आफ्रिकाके भारतीय साहसी, विनयशील, मर्यादापालक और सत्यपर आरूढ़ रहेंगे तो उनको कोई आँच नहीं आयेगी। झूठा मनुष्य सदा कायर होता है। पूर्वी आफ्रिकाके अंग्रेज पाप करना चाहते हैं, इसलिए यदि भारतीय सत्यके ही मार्गपर स्थित रहेंगे तो अंग्रेजोंकी पापपूर्ण उद्धतता दबी रहेगी। भारतीय सत्यके मार्गपर स्थित रहें इसका अर्थ यह है कि वे अपना मामला मजबूत रखें, उसको बढ़ा-चढ़ाकर न बतायें और उनमें जो भी दोष हों, निकाल डालें। हमपर सदा एक आरोप लगाया जाता है और वह ठीक होता है। वह आरोप यह है कि हम गंदे रहते हैं, धन कमाते हैं फिर भी अपना घरबार मैला रखते हैं। हम बहुत गन्दगी फैलाते हैं और थोड़ी जगहमें बहुतसे लोग रहते हैं। इस आरोपमें जिस हदतक सत्य हो उस हदतक हमें अपने रहन-सहनमें सुधार कर लेना चाहिए।

हमारे ऊपर दूसरा आरोप यह लगाया जाता है कि हम हब्शियोंको ठगते हैं। इस आरोपमें कोई सचाई नहीं है, क्योंकि आरोप लगानेवाले लोग स्वयं बहुत धोखेबाज हैं। फिर भी हमें तो यह दोष भी, जिस हद तक वह सही हो निकाल ही देना चाहिए।

हमारे ऊपर तीसरा आरोप वे तो नहीं लगाते, किन्तु हम स्वयं उसे अनुभव करते हैं और वह यह है कि हममें एकता नहीं है। हममें यद्यपि जातीय अभिमान नहीं है, फिर भी हम अपना स्वार्थ सिद्ध करनेमें अपने समाजके हितोंका ध्यान नहीं रखते। जब हम विदेश जाते हैं और वहाँ कम संख्यामें होनेपर भी हममें यह दोष रहता है तो वह वहाँ साफ दिखाई देने लगता है और हम वहाँ बहुत बुरे रूपमें दिखाई देते हैं।

यदि पूर्वी आफ्रिकाके भारतीय इन सब दोषोंसे मुक्त हो जायें अथवा मुक्त रहें और अपना साहस बनाये रखें तो उनको कोई भी हानि नहीं पहुँच सकती।

हृषीकेश

हृषीकेश हरद्वारसे गंगोतरीके मार्गपर एक बड़ा तीर्थ है। यहाँसे यात्री धीरे-धीरे पहाड़ोंमें प्रवेश करते हैं। इसे प्रकृतिने सुन्दर बनानेमें कोई कमी नहीं रखी है। पहाड़, उछलती-कूदती गंगा, निर्मल जल और ऐसी ही अन्य बातोंको देखकर हमें ऋषियोंकी दूर दृष्टि, कलाकी परख और सरलताका पूर्ण भान होता है। किन्तु उनके उत्तराधिकारियोंने उसकी कैसी दुर्दशा की है, इसका कुछ-कुछ दुःखद अनुभव मुझे कुम्भ मेलेके अवसरपर हुआ था। हृदयके मलिन और नामके साधु श्रद्धालु यात्रियोंको ठगते थे। मलिन-शरीर और आलसी यात्री चाहे जहाँ शौचादि करके इस पवित्र स्थानको गन्दा करते थे। यह देखकर मेरा हृदय रोता था। पुराने ऋषि [शौचादिके लिए] जंगल जाते थे तो मीलों दूर एकान्तमें चले जाते थे। आज तो हृषीकेशमें बहुत बड़ी आबादी है। वहाँ लोग गंगाके किनारे बेशर्मीसे शौचके लिए बैठ जाते हैं और 'जंगल गये' ऐसी कल्पना कर लेते हैं। यह तो आलस, अज्ञान और गन्देपनकी हद हो गई। ये सब बातें मैंने वहाँ पाँच वर्ष पहले अपनी आँखोंसे देखी थीं; किन्तु अब एक लेखकने तीन महीने वहाँ रहनेके बाद अपने व्यक्तिगत अनुभवके आधारपर एक हृदयविदारक

विवरण भेजा है। इसे पढ़कर मेरा हृदय रो उठता है और मुझे लज्जा लगती है। इस पुण्य क्षेत्रमें पापकर्मोंकी सीमा नहीं।

इस विवरणको जिसने भेजा है उसने अपना नाम-धाम भी दिया है और उसको छापनेसे मना भी नहीं किया है, किन्तु उसका नाम-धाम देकर इसे छापनेकी मेरी हिम्मत नहीं होती। उसकी कुछ बातें तो छापने योग्य ही नहीं हैं। इसमें वहाँ रहनेवाले साधुओंकी स्वेच्छाचारिताका, उनके वैभवका और उनकी व्यभिचार-लीलाओंका यथार्थ चित्र दिया गया है। उसमें यह भी बताया गया है कि इससे उन्हें कैसे-कैसे रोग हो जाते हैं। और यह भी बताया है कि गरीब यात्री कैसे लुटते हैं, तथा साधुवेशमें अनेक दम्भी लोग कैसी मौज करते हैं। इस गन्दगीको कौन दूर कर सकता है? पत्रमें कहा गया है कि इस सम्बन्धमें मुझे और शंकराचार्यको प्रयत्न करना चाहिए। मैं जानता हूँ कि मुझमें अभी तो इस गन्दगीको दूर करनेकी शक्ति नहीं है। मुझमें तो केवल इस वर्णनका सार छाप देनेकी शक्ति है। जो लोग वहाँ रहते हैं उनमें से कोई इसे देखकर कुछ कर सके तो अवश्य करना चाहिए। हिन्दुओंके तीर्थस्थानोंकी गन्दगी इतनी भयंकर है कि उसे अधिकांश हिन्दुओंके मनोंको बदले बिना दूर नहीं किया जा सकता। इस समय जो यह धर्मयज्ञ चल रहा है, इसमें हिन्दुओंका मन कितना बदलता है, इसीपर इन पाप-क्षेत्रोंको पुनः पुण्यक्षेत्र बनाना निर्भर है। इन स्थानोंकी शुद्धि करना हिन्दू धर्मका पुनरुद्धार करनेके समान है। इस कार्यको करनेके लिए बहुत बड़ी तपस्याकी आवश्यकता है। उसके लिए स्थानीय लोगोंका प्रभाव भी चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६–१०–१९२१

११५. पत्र : गंगाधरराव देशपाण्डेको

[८ अक्तूबर, १९२१ के पूर्व][1]

प्रिय गंगाधरराव[2],

मैं सुन रहा हूँ कि जेल-महलमें रहनेका सौभाग्य पानेकी आपकी बारी आ गई है। आपके इस सौभाग्यसे मुझे ईर्ष्या होती है। आप जेल जानेवाले पीछे रहनेवालोंका बोझ बढ़ाते जाते हैं। किन्तु हम अपनी समस्त चिन्ताएँ ईश्वरको सौंप देंगे। आप जेलमें चरखा तो अलबत्ता माँग ही लेंगे। बाकी, इस बरसके खत्म होनेके बाद हम आपको इस महलमें रहनेका सुख न उठाने देंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०–१०–१९२१

१. यह पत्र ८ अक्तूबरको जेलसे छूटकर आनेके बाद १५ अक्तूबरको रँगराव रामचन्द्र दिवाकरने हुबलीकी सार्वजनिक सभामें पढ़ा था। देखिए "भाषण: बम्बईकी सार्वजनिक सभामें", १७–११–१९२१।

२. कर्नाटकके एक राजनैतिक कार्यकर्ता; लोगोंमें 'कर्नाटक-केसरी' के नामसे प्रख्यात।

११६. "टू अवेकिंग इंडिया" की प्रस्तावना

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
८ अक्तूबर, १९२१

इस पुस्तिकामें श्री स्टोक्सने विदेशी कपड़ेकी होली जलानेके समर्थनमें केवल अपना तर्क ही नहीं दिया है, बल्कि स्वदेशीका अर्थशास्त्र भी दिया है। यदि हम इतनी बात भी याद रखें कि किसी भी सुगठित विकासके लिए जितना उपयोगी और आवश्यक सर्जन है उतना ही विनाश भी, तो हमें यह समझनेमें कोई कठिनाई न होगी कि देशके सम्मुख जो फौरी कायक्रम रखा गया है उसकी पूर्तिके लिए विदेशी कपड़ेकी होली जलाना भी आवश्यक है। किन्तु ऐसे समयमें जब विदेशी कपड़ेकी होलीपर घोर आक्षेप किया जा रहा है, श्री स्टोक्सका प्रयत्न अवश्य ही सहायक सिद्ध होगा।

मेरी दृष्टिमें तो यह विरोध विदेशी महीन कपड़ेके प्रति हमने जो मोह अपने अन्दर पैदा कर लिया है उसकी तीव्रताका और विदेशी कपड़ेके उपयोगके फलस्वरूप भारतके करोड़ों घरोंमें जो गरीबी पैदा हो गई है उसके अपर्याप्त ज्ञानका ही सूचक है। किन्तु मुझे बहसमें नहीं पड़ना चाहिए; मैं ये पंक्तियाँ केवल श्री स्टोक्सके योग्यतापूर्ण निबन्धोंकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करनेके लिए ही लिख रहा हूँ।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
टू अवेकिंग इंडिया

११७. भाषण: अहमदाबादके मजदूरोंकी पाठशालाओंके समारोहमें[1]

८ अक्तूबर, १९२१

मैं आपके पास बहुत दिनोंके बाद आया हूँ। मैं अबसे ढाई महीने पहले आपके पास आया था। इस बीचमें बहुत-सी घटनाएँ हो गई हैं और अभी क्या-क्या होनेवाला है इसका पता मुझे या आपको नहीं है। हमें ईश्वर जैसे रखेगा वैसा ही रहना है।

आज देशमें जो-कुछ हो रहा है उसकी एक कल्पना देनेसे पहले मैं आपके ही प्रश्नपर विचार करना चाहता हूँ। मैंने सुना है कि मजदूर भाइयों और मिल-मालिकोंके बीच कुछ मतभेद हो गये हैं। इस सम्बन्धमें अभी पंचोंकी बैठक होगी। जबतक पंच

१. यह समारोह अनसूयाबेनके सेवाश्रममें हुआ था और इसमें लाला लाजपतराय और चक्रवर्ती राजगोपालाचारी भी उपस्थित थे।

फैसला न दे दें तबतक आपको धीरज रखना चाहिए। एक बार मजदूर अधीर हो गये थे; किन्तु आखिर उन्होंने अपने सलाहकारोंकी बात सुनी और हड़ताल स्थगित कर दी।

सेठोंने अनाजकी दुकानें खोलना स्वीकार किया था लेकिन वे ऐसा नहीं कर सके हैं। इस सम्बन्धमें जो-कुछ मुझसे हो सकेगा मैं करूँगा। हमें अधीर होना उचित नहीं है। हमें हड़ताल एकदम नहीं कर देनी चाहिए। जो न्यायकी माँग करता है उसे राह देखनी चाहिए। हमने पंचोंसे मध्यस्थता कराना पसन्द किया है। इसलिए वे हमें जितना दें हमें उसे स्वीकार करना चाहिए। जो मजदूर, मजदूर-संघमें शामिल नहीं हैं, सम्भव है उनको अधिक लाभ मिलेगा। यदि वे संघमें होते तो उनको वह लाभ शायद न मिलता।

हम कितनी ही बार जो-कुछ माँगते हैं वह हमें मिल जाता है; किन्तु हमें अनुचित माँग नहीं करनी चाहिए। यदि हम अनुचित माँग करेंगे तो आज जो आक्षेप मालिकोंपर किया जाता है वही आक्षेप फिर हमपर किया जायेगा। उनके ऊपर आरोप यह है कि वे लोगोंके कष्टोंका अनुचित लाभ उठाते हैं। कपड़ेका भाव बढ़ाने-का दूसरा अर्थ और क्या हो सकता है? हमें उनके जैसा नहीं बनना चाहिए। हमारी माँगें उचित होनी चाहिए। मजदूरोंकी माँगें तो उचित ही होती हैं।

मजदूरों और मालिकोंका सम्बन्ध भागीदारोंके समान होना चाहिए। जैसा सम्बन्ध बाप और बेटेमें होता है वैसा ही सम्बन्ध मालिकों और मजदूरोंके बीच होना उचित है। जैसे बेटा बापके ज्ञान और अनुभवका लाभ उठाता है वैसी ही स्थिति मजदूरोंकी होनी चाहिए। मैं ऐसी स्थिति लानेका प्रयत्न कर रहा हूँ जिसमें मालिक मजदूरोंका शोषण न करें और न मजदूर मालिकोंको ठगें।

अब मैं वर्तमान स्थितिपर आता हूँ। जैसा सम्बन्ध पिता-पुत्रमें होता है वैसा ही सम्बन्ध राजा और प्रजामें होना चाहिए। किन्तु सरकारकी नीयत तो ऐसी ही है कि वह भारतको यथाशक्ति लूटना चाहती है। हमें इस सरकारसे कुछ नहीं मिल सकता। यदि कुछ मिल सकता है तो जैसे अली-भाइयोंको चुपचाप पकड़ लिया गया वैसा ही कुछ मिल सकता है। यह तो ऐसी स्थिति है जैसी मालिक और गुलामके बीच होती है। हमें अली-भाइयोंको जेलसे छुड़ाना है। किन्तु हमें उनको सरकारसे गिड़गिड़ा कर नहीं छुड़ाना है, अर्जियाँ दे कर भी नहीं छुड़ाना है; बल्कि स्वराज्य लेकर उस स्वराज्यके द्वारा मिले अधिकारसे हमें उन्हें छुड़ाना है। अभी एक विद्यार्थीने जो गीत गाया उसमें जैसा कहा गया है उस तरह हमें उनकी जंजीरें खादीसे ही तोड़नी हैं। अब जो हजारों निर्दोष लोग जेल जायेंगे हमें उनको भी इसी तरह छुड़ाना है। यदि हम स्वदेशीको अपना लें तो यह कार्य कठिन नहीं है। किन्तु अभी तो हम विदेशी कपड़ेको त्यागनेके लिए ही तैयार नहीं हुए हैं। मजदूरोंको तो खादी ही पहनना उचित है। मजदूर इतने अधिक गरीब नहीं हैं कि वे खादीका प्रयोग न कर सकें। उन्हें यह शिष्ट वेश ही पहनना चाहिए। वे स्वयं सूत कात सकते हैं, अपना चरखा रख सकते हैं, अपना करघा रख सकते हैं और अपने हाथसे खादी बुनकर पहन सकते हैं। जबतक वे ऐसा न कर सकें तबतक उन्हें मेरी तरह लंगोटी पहननी पड़े तो भी अच्छा है।

मैं कहता हूँ कि आप बाजारकी खादी भी न पहनें, हाथकी बनी हुई और अपनी तैयार की हुई खादी ही पहनें। जब आप इतना कर लें तब आप मुझसे पूछें कि अली-भाई क्यों नहीं छूटे, स्वराज्य क्यों नहीं मिला और खिलाफतके प्रश्नपर न्याय क्यों नहीं मिला। मैं आपके इन प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए तैयार बैठा हूँ।

सरकार मुझे पकड़ेगी ऐसी अफवाह उड़ी है। सरकारको मुझे पकड़नेका अधिकार है। जैसी भाषाका प्रयोग अली-भाइयोंने किया वैसी ही भाषाका प्रयोग मैंने किया है। हमें सरकारसे नहीं, ईश्वरसे ही डरना चाहिए। हमारे धर्मके अनुसार खून-खराबी करना पाप है और जबतक हिन्दुओं और मुसलमानोंका समझौता कायम है तबतक मुसलमानोंके लिए भी हिंसा अथवा खून-खराबी करना हराम होना चाहिए। मैं गिरफ्तार कर लिया जाऊँ तो आप न मकान जलायें न गुस्सा करें और न किसीको गाली दें। यदि स्वदेशीको अपनानेमें आप अभी सुस्त हों तो मेरे गिरफ्तार होनेपर चुस्त बन जायें और मेरे पकड़े जानेपर दिन-रात चरखा चलायें। यदि हिन्दुओंके मनमें मुसलमानोंके प्रति कोई द्वेष हो तो हिन्दू उसे अपने मनसे निकाल दें। मुसलमानोंके मनमें भी हिन्दुओंके प्रति कोई द्वेष हो तो वे भी उसे निकाल दें। कोई मजदूर शराब न पिये, चोरी न करे, ढेढ़ और भंगीको अस्पृश्य न माने। मैं आपसे यही आशा रखता हूँ।

अब मैं इधर-उधर जाने-आनेमें वक्त लगाना नहीं चाहता। अब मेरे पास नये विचार भी नहीं हैं और न नयी भाषा है। अब मैं यही देखना चाहता हूँ कि कितना काम हुआ।

अब मैं ऐसे समारोहोंमें आ भी नहीं सकूँगा। मेरे लिए अब इतना समय बचाना भी कठिन है; इसलिए आपको चाहिए कि आप मुझे ऐसे कामोंसे मुक्त कर दें। मेरा मोह छोड़ दें और मैंने आपसे जो काम करनेके लिए कहा है उस काममें लग जायें। यदि आप ऐसा करेंगे तो स्वराज्य हाथमें आया रखा है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०–१०–१९२१

११८. तार: गोपबन्धु दासको[1]

[८ अक्तूबर, १९२१ के पश्चात्]

केवल सच्चा साहसपूर्ण बयान दाखिल करें। परिणामका विचार कदापि न करें।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७६३६) की फोटो-नकलसे।

१. **समाज** नामक उड़िया साप्ताहिकके सम्पादककी हैसियतसे लिखे गये पत्रके उत्तरमें; जिसमें उन्होंने पूछा था कि उनपर मानहानिका जो आरोप लगाया गया है उसमें उन्हें अपना बचाव करना चाहिए या नहीं।

११९. यदि मैं पकड़ा जाऊँ तो?

मेरे पकड़े जानेकी अफवाह उड़ रही है। सभी कहते हैं कि उन्हें निश्चित समाचार मिला है। मद्रासके एक सज्जनने तो यह तार भी दे दिया है कि मैं पकड़ लिया गया हूँ।

लेकिन मैं पकड़ लिया जाऊँ तो इसमें आश्चर्य क्या है? सरकारको मुझे पकड़नेका हक है। जिस अपराधपर अली-भाई और उनके साथी पकड़े गये हैं, वह अपराध तो मैंने भी किया है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि उस अपराधका मूल मैं ही हूँ। मूलको छोड़कर डालियोंको काटनेका क्या अर्थ? लोगोंको यह बात समझानेवाला मैं ही तो हूँ कि सिपाहियोंको खुल्लमखुल्ला यह कहा जा सकता है, "आप इस सरकारकी नौकरी करके पाप कर रहे हैं।" वर्तमान राजतन्त्रका नाश किया जाये यह बात भी मैंने ही कही है। यदि अली-भाई इन्हीं दो आरोपोंमें पकड़े गये हैं तो सरकार मुझे क्यों न पकड़े?

यदि वह मुझे पकड़े तो इसमें नाराजगीकी क्या बात है? सरकारको यह पता कैसे चलेगा कि इस तरहके विचार रखनेवाले लोग मुट्ठी-भर हैं या बहुत सारे? जो मनुष्य अपने विचारोंके लिए दु:ख सहता है वही उन विचारोंको माननेवाला कहा जा सकता है। मैं अपने विचारोंको सचमुच मानता हूँ या नहीं, सरकार इसकी परीक्षा क्यों न करे?

असहयोगका नियम ही यह है कि या तो सरकार सीधी हो जाती है या असहयोगियोंको जेल भेजती है, उनको पीड़ित करती है और फाँसीपर चढ़ाती है।

यदि लोग सच्चे असहयोगी हैं, वीर हैं और समझदार हैं तो वे मेरे या किसी असहयोगीके जेल जानेसे न तो घबरायें, न मारधाड़ करें और न हड़ताल करें। वे ऐसा समझकर प्रसन्न हों मानो कोई बात ही नहीं हुई है अथवा जैसी आशा थी वैसा ही हुआ है। उन्हें यह समझकर सन्तोष करना चाहिए कि अब हम मंजिलपर जल्दी पहुँच जायेंगे।

जो कोई नाराज होगा अथवा हड़ताल करेगा अथवा खूनखराबी करेगा वह मेरा अपमान करेगा, वह मुझे धोखा देगा और देशसे द्रोह करेगा। यदि ऐसा मनुष्य असहयोगी होनेका दावा करता है तो वह अपनी प्रतिज्ञाका भंग करेगा।

अली-भाइयोंके गिरफ्तार होनेपर भारतमें जो शान्ति कायम रही है उसे मैं गौरवप्रद शान्ति मानता हूँ और उसमें अपनी जीत समझता हूँ। मैं यह आशा करता हूँ कि मेरे पकड़े जानेपर वैसी ही या उससे भी ज्यादा शान्ति रखी जायेगी। हमें किसीको मार कर नहीं, बल्कि स्वयं मरकर जीतना है और जीवित रहना है।

मैं चाहता हूँ और आशा रखता हूँ कि मेरे पकड़े जानेका एक ही परिणाम हो अर्थात् जिस बातको समझानेमें मुझे अबतक मुश्किल हुई है उस बातको स्त्री-पुरुष मेरे गिरफ्तार होनेसे तुरन्त समझ जायें। जिस कामको करनेमें उन्हें अबतक आलस

लगता है अथवा अरुचि होती है उसे वे तुरन्त करें और स्वराज्य प्राप्त करें। यदि हममें अभीतक कुछ विदेशी कपड़ेका मोह शेष है तो वे उसको निकाल दें, यह मेरी इच्छा है। आज तो लोग विदेशी कपड़ेमें से थोड़ा-सा ही जलाते हैं। मेरे बाद तो वे तत्काल अपने समस्त विदेशी कपड़ेकी होली कर दें। अगर ठीक कहें तो यह सब कार्य अली भाइयोंकी गिरफ्तारीपर ही हो जाना उचित था। लोगोंने उसके बाद स्वदेशीकी प्रवृत्तिको बढ़ाया तो है, किन्तु पूरी तरह नहीं बढ़ाया।

मैं यह आशा अवश्य करता हूँ कि मेरे गिरफ्तार होनेपर सभी स्त्री-पुरुष और बालक जिन्होंने अबतक चरखा चलाना शुरू न किया हो, चरखा चलाने लग जायेंगे। मैं यह आशा भी अवश्य ही रखता हूँ कि वे अन्त्यजोंसे प्रेम करेंगे, उनका स्पर्श करेंगे और उनके दु:खदर्दमें शामिल होंगे।

मैं यह भी आशा अवश्य रखता हूँ कि अन्त्यज लोग अपने जीवनमें सुधार करेंगे, शराब पीना छोड़ देंगे, दूसरे दुर्व्यसनोंको भी छोड़ देंगे, मांसाहार न करेंगे और साफ-सुथरे रहेंगे। साथ ही वे सूत कातेंगे, खादी बुनेंगे और अपना गुजारा ईमानदारीसे करेंगे।

सब लोग अहिंसाका पालन करें और दूसरोंसे भी करायें।

हिन्दू मुसलमानोंके लिए और मुसलमान हिन्दुओंके लिए प्राण देनेके लिए तैयार रहें। वे एक दूसरेके धर्मका सम्मान करें और हिन्दू यह समझें कि खिलाफतकी रक्षा करना उनका धर्म है, और यह मानें कि खिलाफतके लिए स्वराज्यको भी टालना पड़े तो वे उसे टाल देंगे क्योंकि खिलाफतके बिना मुसलमानोंके लिए स्वराज्यका कोई अर्थ ही नहीं है।

कोई यह न समझे कि गांधी जेल गये इसलिए अन्धेरा हो जायेगा। ऐसा मानना धर्म नहीं है; ऐसा मानना तो कायरता है। यदि हम स्वराज्यके लायक हैं तो हमें किसी नेताकी जरूरत इतनी नहीं लगनी चाहिए कि उसके बिना काम ही नहीं चलेगा। हरएक व्यक्तिमें देशका हित समझनेकी और उसकी रक्षा करनेकी योग्यता होनी ही चाहिए।

तिसपर भी हमें किसी-न-किसीको नेता बनाना ही होगा। इसलिए जिसका विचार, जिसका तर्क और जिसका चरित्र अधिकतर लोगोंको पसन्द हो, हम उसको तुरन्त नेता बना सकते हैं। उसके साथ अनेक प्रसंगोंपर झगड़ा और वादविवाद भले ही हो, किन्तु उसे एक बार नेता बना लेनेपर हमें उसका पूरा अनुशासन मानना चाहिए और वह जैसा कहे वैसा करना चाहिये। जब हम यह जान लेंगे कि स्वराज्य किन साधनों-से मिलेगा और खिलाफतकी सेवा कैसे होगी, तब हमें कोई परेशानी नहीं होगी। फिर हमारे लिए जानने योग्य और कोई बात नहीं रहती, केवल करनेका काम रह जाता है। भारत जैसा करेगा उसको वैसा फल मिलेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९–१०–१९२१

१२०. गुजरातकी परीक्षा

मैंने अपनी यात्रामें गुजरातकी जो प्रशंसा सुनी है वह सच्ची है या झूठी यह देखनेके लिए मैं गुजरातमें आ गया हूँ। गुजरातने सबसे पहले असहयोगको स्वीकार किया। मैंने तभी कहा था कि यदि एक गुजरात ही पूरा असहयोग कर सके तो उसको अवश्य स्वराज्य मिल जायेगा और भारतको भी स्वराज्य मिल जायेगा। मैं इस बात-पर आज भी कायम हूँ। यदि स्वराज्य इस वर्ष नहीं मिलेगा तो मेरी लाज तो जायेगी ही, समस्त भारतकी लाज भी जायेगी। सबसे अधिक लाज तो गुजरातकी ही जानी है। "आपने शर्तका पालन नहीं किया, मैं क्या करूँ?" ऐसा कहकर मैं तो छुट्टी पा लूँगा; किन्तु गुजरात क्या कहेगा? गुजरातके लोग तो यही कह सकते हैं, "हमने प्रतिज्ञा की थी, किन्तु हम उसे पूरा नहीं कर सके। हम इसी योग्य हैं।" गुजरातको ऐसी लजानेवाली बात स्वीकार न करनी पड़े, इसका प्रयत्न प्रत्येक गुजरातीको करना चाहिए।

गुजरातकी प्रशंसा तो मैंने सुनी किन्तु मैं देखता हूँ कि गुजरातियोंने सरकारी पद नहीं छोड़े हैं। वकालत भी कुछ ही वकीलोंने छोड़ी है। हाँ, इनकी अपेक्षा विद्यार्थियोंने कुछ ठीक किया है।

तब गुजरातने वास्तवमें ऐसा क्या काम किया है जिसके लिए वह इतनी प्रशंसा-का पात्र है?

यह काम स्वदेशीका प्रचार है। उसके स्वदेशीके प्रचारके सम्बन्धमें इतना ही कह सकते हैं कि दूसरोंकी तुलनामें उसने ज्यादा अच्छा काम किया है। इससे ज्यादा और उसके लिए क्या कहा जा सकता है? स्वदेशी एक ऐसी चीज है जिसमें हमारा विश्वास है। जबतक हरएक प्रान्त या जिला अपनी जरूरतके लायक सूत स्वयं नहीं कात लेता और कपड़ा नहीं बुन लेता और विदेशी कपड़ेका बहिष्कार नहीं करता तबतक स्वराज्य मिलना असम्भव है। इसलिए गुजरातको जो यश मिल रहा है वह स्वदेशीके कारण ही मिल रहा है, यही कहना उचित है।

दूसरी बात अस्पृश्योंके सम्बन्धमें है। इस सम्बन्धमें मैंने अपनी टिप्पणियोंमें संकेत किया है। हम इतना जरूर कह सकते हैं कि गुजरातमें अन्त्यज सभाओंमें बिना किसी बाधाके आ सकते हैं। किन्तु क्या इससे कोई सन्तोष माना जा सकता है? हम अन्त्यजों-को छोड़कर स्वराज्यका विचार भी नहीं कर सकते। यह तो ऐसी बात होगी — मानो हम अपने गुलामके तो मालिक बने रहना चाहते हों; किन्तु स्वयं अपने मालिककी गुलामीमें से छूटना चाहते हों। क्या ईश्वर कभी इसे सहन कर सकता है? यह कभी सम्भव है? क्या ये गुलाम स्वयं ही ऐसा सम्भव होने देंगे? और क्या हमारे मालिक स्वयं इतनी सावधानी न रखेंगे कि हमारे गुलामोंको अपनी ओर मिला लें और उन्हें हमसे भिड़ाये रखें? इसलिए हम गुजरातियोंको स्वयं ही यह विचार करना है कि

क्या हम सचमुच स्वराज्यके लिए तैयार हो गये हैं? क्या हममें उसके लिए पूरी योग्यता आ गई है?

मुझे मालूम है कि हमने तिलक स्वराज्य कोष संग्रह करनेमें अच्छा-खासा उद्योग किया है। हम सभाओंकी व्यवस्था भी ठीक कर सकते हैं। हमने शराबबन्दीके मामलेमें भी अच्छा काम किया है। हम देखते हैं कि हमने खादीका भी काफी प्रचार किया है। सामान्यतः देखें तो ये सब सोते हुए गुजरातकी जागृतिके सन्तोषप्रद लक्षण हैं। किन्तु जैसे कोई मनुष्य नदी पार करनेके लिए बल लगा कर तैरे; किन्तु वह अन्तमें किनारेके पास पहुँचकर बल न लगा सके तो डूब जाता है और फिर उसके बारेमें यही कहा जाता है कि वह पर्याप्त बल नहीं लगा सका। इसी तरह हमें सोचना है कि क्या हमने स्वराज्य लेनेके लिए पूरा जोर लगाया है। मैं इसका उत्तर हाँ या ना में नहीं दे सकता, क्योंकि अभी तो खादीके प्रचारका महीना समाप्त नहीं हुआ। इसकी समाप्ति तक तो हम बहुत कुछ कर सकते हैं। पहले इसकी अवधि सितम्बरतक रखी गई थी। वह समाप्त हो गई। इससे कोई हानि नहीं, क्योंकि वह तो मैंने एक आशा व्यक्त की थी। किन्तु हमें याद रखना चाहिए कि इसी बातको दिसम्बरमें कांग्रेसने बहुत सोच-समझकर स्वीकार किया था। सितम्बरसे दिसम्बरतक हमने इतनी प्रगति की थी कि प्रतिनिधियोंने इसकी शक्यतापर विश्वास करके एक वर्षकी अवधि निश्चित कर दी। इसलिए लोगोंकी प्रतिज्ञा तो दिसम्बरसे मानी जायेगी। और गुजरातने अबतक जो कुछ किया है उसको देखते हुए ढाई मासमें वह जोर लगा दे और इस कार्यको पूर्ण कर दे तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं होगी। हाँ, यदि वह जोर न लगाये और इसे पूरा न करे तो यह दुःखकी बात अवश्य होगी।

मुझे बताया गया है कि गुजरातके लोग जेल जानेके लिए तैयार हैं और उनमें से कुछ तो फाँसीसे भी न डरेंगे। गुजरात अहिंसाका पालन तो अन्ततक करेगा ही, किन्तु यह अभी देखना शेष है। सच पूछो तो हमारे सम्मुख पिछले बारह वर्षोंमें जेल जानेका अवसर तो आया ही नहीं है। किन्तु इसमें दुःखकी बात नहीं है। हम नीति-नियमोंका उल्लंघन करके जेल जाना नहीं चाहते। हमारी मानसिक तैयारी जेल जाने की है, अभी इतना ही पर्याप्त है।

किन्तु हम जेल जानेकी तैयारीका अर्थ समझ लें। हम निरपराध हों तो जिस दिन जेल जायें उस दिनको शुभ मानें। हमारे सगे सम्बन्धियों और प्रियजनोंको भी हमारे जेल जानेपर दुःख मानने या रोने-धोनेका कोई कारण नहीं रहता। हमें जेलके कष्टोंको सुख समझनेके लिए तैयार होना चाहिए।

फिर जेलकी तैयारीका अर्थ यह है कि यदि हमारे घर-द्वार बिकें तो भी हम चिन्ता न करें। मैंने ऐसे "वीर" भी देखे हैं जिनका कहना है, हम जेल तो जायेंगे; किन्तु अपना घर-द्वार न बिकने देंगे। यदि घर-द्वार जाये तो हम यह सहन नहीं कर सकते। यह स्थिति तो जेल जानेकी तैयारीकी सूचक नहीं है। अन्यायी राज्यमें अधिकांश लोगोंके पास माल-मिल्कियत हो ही नहीं सकती। उसका भोग इनेगिने लोग ही कर सकते हैं और वे प्रायः अन्यायीके सहयोगी होते हैं, अथवा संकटके समय

जब अन्यायी अपना स्वरूप बताता है, तब उसके सहयोगी बन जाते हैं। इसलिए जेल जानेकी तैयारीमें अपने-माल-मिल्कियतके जानेका डर छोड़ देना भी आ जाता है।

सच पूछो तो हम 'जेल' शब्दको दुःखका सूचक मानते हैं। जेल जानेकी तैयारीका अर्थ है, सरकार चाहे जितना उत्पीड़न करे उसे सहन करके भी उसके अधीन होनेसे इनकार करनेकी तैयारी। इसमें फाँसीकी तैयारी भी आ गई। फिर भी सामान्यतः हम फाँसीको जेलके अन्तर्गत नहीं गिनते। फाँसी लगनेका भय होने पर भी जो देशके सम्मान और धर्मकी रक्षा करनेके लिए तैयार हों, ऐसे कितने लोग हैं, यह अभी देखना है।

हमें शुद्ध त्याग करना है। हमारी आत्मशुद्धिमें इतनी बातें तो कमसे-कम आती ही हैं।

१. स्वदेशी व्रतका पालन,

२. अस्पृश्यताका त्याग,

३. हर हालतमें सत्य और अहिंसामें दृढ़ निष्ठा, और

४. हिन्दू और मुसलमानोंमें मित्रता

मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक कांग्रेस समिति और खिलाफत समिति अपना हिसाब इसी दृष्टिसे निकाले।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९–१०–१९२१

१२१. टिप्पणियाँ

दौरेकी समाप्ति

इन पिछले तेरह महीनोंमें हिन्दुस्तानमें जितनी यात्रा करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है उतना शायद ही किसीको हुआ हो। यात्रा क्या थी, हिन्दुस्तानकी पूरी परिक्रमा ही थी। और खासकर मुझे तो यह तीर्थयात्राके जैसी ही मालूम हुई। पश्चिममें कराचीसे लेकर पूर्वमें डिब्रूगढ़तक और उत्तरमें रावलपिंडीसे लेकर दक्षिणमें तूतीकोरिन तक मैंने यात्रा की। इस अवसरपर मुझे लोगोंसे जो-कुछ कहना-सुनना था सो सब मैंने कहा और सुना। अब कोई भी नई बात कहने-जानने लायक नहीं रह गई है। मैंने यह भी बता दिया है कि खिलाफत, पंजाबके प्रति न्याय और स्वराज्य प्राप्त करनेकी शर्तें क्या-क्या हैं। अब तो सिर्फ लोगोंको काम करना बाकी रहा है। लोग स्वदेशीको अपनायें और स्वराज्य लें। स्वदेशीके बिना स्वराज्य कभी नहीं मिल सकता।

हाँ, अब कहींसे भी, मेरे पास बुलावे नहीं आने चाहिए। अब तो मेरे लिए यही ठीक है कि मैं इन बाकी तीन महीनोंमें एक ही जगह बैठ कर सोचूँ-विचारूँ, लिखूँ और शंकाएँ दूर करता रहूँ।

इन तीन महीनोंमें लोग बहुत-कुछ काम कर सकते हैं। अगर लोग अपना मुँह बन्द कर लें और सिर्फ काम ही काम करते रहें तो अवश्य अपना उद्देश्य सफल कर सकते हैं। स्वराज्य बातें बनानेसे नहीं, केवल काम करनेसे ही मिलेगा।

शान्ति ही आन्दोलन है

ईश्वरके मौनको कौन पहुँच सकता है? और फिर, उसकी क्रिया-बहुलताको भी कौन पा सकता है? वह तो अँगड़ाई लेनेकी भी फुरसत नहीं चाहता; और न नींद ही लेता है। हमारे सो जानेपर भी वह जागता ही रहता है। काममें लगा हुआ वह न खाता है, न पीता है। क्या उसके कभी विश्राम लेनेकी बात भी सोची जा सकती है? उसकी गतिकी तो कोई सीमा ही नहीं है? उसे आराम बदा ही नहीं है; उसे आरामकी दरकार भी कहाँ है? और इन अनन्त क्रियाओंको करते हुए उससे भूल नहीं होती। इस अनोखे स्वराज्यवादीने भूल करनेका अधिकार अपनी ही मर्जीसे छोड़ रखा है। अगर इससे हम लेश भी सीख लें तो बातकी-बातमें स्वराज्य ले सकते हैं। शान्ति रखते हुए भी यह अधिकसे-अधिक काम करता है। इससे हम यह सबक क्यों न लें कि शान्तिमें ही अधिसे-अधिक शक्ति है? सरकार जो जीमें आये सो शौकसे करे, जो बकना हो, बका करे — हम तो बस अपना कर्त्तव्य ही करते चले जायेंगे। यही है कानूनका विवेकपूर्ण पालन और विवेकपूर्ण भंग।

शान्तिका अर्थ

इस दिव्य शान्तिका अर्थ जड़ता, अज्ञानका अन्धकार अथवा असामर्थ्य नहीं है। यह तो शुद्ध चेतना, ज्ञान और शूरवीरता है। जो अपनी कायाको पत्थर बनाकर रहता है वह एक ही जगह बैठे हुए सारे संसारको हिलाया करता है। पत्थरको कौन मार सकता है? पत्थरको चाहे चकनाचूर कर डालिए, पर वह कभी माफी नहीं माँगेगा। तुम चाहो कि वह तुम्हारा घर बनानेमें जुट जाये तो यह भी नहीं हो सकता। तुम उसे चाहे जितनी चोट पहुँचाओ वह तुम्हारी गुलामी नहीं करेगा; और तुम थक जाओगे। जिस मनुष्यने अपने शरीरको पत्थर बना लिया हो उसको इस दुनियामें कौन परास्त कर सकता है। मनुष्यमें पत्थर और ईश्वर दोनोंका योग होता है। मनुष्य क्या है, चेतनामय पत्थर है। इसीसे हमारे शास्त्र हमें यह शिक्षा देते हैं कि जिसने पूरी तरह अपना देह-दमन कर लिया है, पूरी विजय उसीकी है। इस तरह शान्तिका अर्थ है देह-दमन। हमने खुदको अपनी कायाका, शरीर-सुखका गुलाम बना लिया है; इसीलिए हमें सरकारका भी गुलाम होना पड़ा है। अब अगर हम अपनी कायाको जीत लें तो इस गुलामीके फेरसे छूट जायें। हम जितना ही अधिक शरीरके मोहका त्याग करेंगे उतनी ही अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त करेंगे।

सरकार हमें क्या दबायेगी? अगर हम उससे कुछ भी लाभ न चाहें तो फिर वह क्या कर सकती है? अगर हम उसके रुपये-पैसे, उसकी व्यवस्था और सुख-सुविधाओंसे कोई सरोकार न रखें तो हम गुलामीसे आज ही मुक्त हो सकते हैं।

शान्तिपर अमल

अलबत्ता हर एक आदमी पूर्ण शान्तिका पालन नहीं कर सकता; प्रत्येक मनुष्य अपनी कायाको पत्थरकी तरह नहीं बना सकता। इसलिए हम समाजमें रहकर थोड़ी-बहुत शान्तिका पालन करते हुए थोड़ा-बहुत सुख प्राप्त कर लेते हैं। स्वदेशीके

पालनमें हमने इस अल्प देह-दमनका मार्ग पाया है; और कोई कारण नहीं है कि छोटे-बड़े सभी लोग इतना भी त्याग न कर सकें। थोड़ी देर कातना और बुनना लोगोंको किसी भी तरह भारी नहीं जायेगा। इसीलिए चरखा हिन्दू-मुसलमानकी एकताका चिह्न है; यह एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा हमें यह बोध हो जाता है कि हम मद्रासी, कन्नड़ी, बंगाली, मराठी, पंजाबी, सिन्धी सब भाई एक हैं। इस बातका ज्ञान रखते हुए भी जो चरखा तो नहीं कातता पर स्वराज्य माँगनेके लिए हाथ पसारता है, वह भिखारी है। उसे स्वराज्य माँगनेका कोई हक नहीं है। भिखारीको स्वराज्य कदापि नहीं मिलता। इसलिए जो लोग स्वराज्य चाहते हों उन्हें चाहिए कि वे चुपचाप ज्ञानपूर्वक हमेशा ईश्वरका नाम लेते हुए अपने मुल्कके खातिर सुवर्णमय सूत कातें। जब प्रत्येक हिन्दुस्तानी, जैसा कि वह अपने ही घरका पका हुआ खाना खाता है, अपने ही घरके कते सूतसे कपड़ा बुनने लगेगा, अथवा अपने पड़ौसीसे बुनवाकर पहनने लगेगा, इसके सिवा और कोई कपड़ा न पहनेगा उसी दिन स्वराज्य तैयार है; उसके पहले हरगिज नहीं।

यह एक बालककी शक्तिसे भी बाहर नहीं है, इस बातसे कौन इनकार कर सकता है, और इससे अधिक आसान दूसरी कोई शर्त हो भी क्या सकती है? हमने खुद ही इसे कठिन बना लिया है और फलस्वरूप तकलीफें उठाते हैं, अकालसे पीड़ित होते हैं, छुआछूतसे दुःखी होते हैं और हिन्दू-मुसलमान एक दूसरेको अपना दुश्मन मानते हैं।

एक आदर्श

हासोट (गुजरात)में एक डाक्टर हैं। वे तथा उनकी धर्मपत्नी रोज कमसे-कम तीन घंटा कातते हैं। डाक्टरको चरखा कातना सीखे अभी चार ही महीने हुए हैं। दो ही महीनोंके अभ्याससे वे ३० नम्बरका सूत कातने लगे हैं। दो महीनेमें उन्होंने इतना सूत काता कि उससे उनके दो कुर्ते बन गये और फिर भी कुछ कपड़ा बच रहा। वे अपने इसी सूतके बने कुर्ते पहनते हैं। बचा हुआ टुकड़ा उन्होंने बड़े प्रेमके साथ मुझे दिया। इस टुकड़ेको मैं अपने साथ रखता हूँ और जहाँ-तहाँ बड़े हर्षके साथ लोगोंको दिखाता हूँ। उनकी धर्मपत्नी तो और भी महीन सूत कातती हैं। डाक्टर साहब अगर अपना प्रयत्न जारी रखें तो एक वर्षमें २५ गज़ महीन खादी के लायक सूत कात लेंगे। और इतना कपड़ा एक आदमीकी एक सालकी आवश्यकतासे ज्यादा ही है।

रुईका संग्रह

भाई लक्ष्मीदास पुरुषोत्तमने रुईके सम्बन्धमें जो चेतावनी दी है उसकी ओर मैं पाठकोंका ध्यान खींचता हूँ। उन्होंने बताया है कि रुईके दाम बढ़े हैं और अभी बढ़ते जा रहे हैं। कोई कहता है कि रुईके दाम बढ़नेका कारण रुईका सट्टा है। लेकिन मेरे एक परम मित्रके अनुसार उसका कारण यह है कि इस वर्ष अमेरिकामें रुई कम पैदा हुई है। सत्य इन दोनोंके बीचमें है। दाम बढ़नेका कारण अमेरिकामें रुईका कम होना और यहाँ उसका सट्टा, दोनों हैं। मान लीजिए कि कल मेरे पास

पचास मन सूत था और मैं उसे बाईस रुपये मनके भावसे बेच रहा था और प्रति मन चार रुपया लाभ उठा रहा था। आज मुझे खबर मिली कि अमेरिकामें फसल अच्छी नहीं हुई है और मैंने बाईसकी जगह उसका भाव अड़तीस रुपया मन कर दिया। ये सोलह रुपये ज्यादा लेनेका भला मुझे क्या अधिकार है? इस उलटे अर्थ-शास्त्रसे, वणिकको शोभा न देनेवाली व्यापारकी इस रीतिमें, सारी दुनिया तकलीफ पा रही है। जो शास्त्र यह कहे कि अमेरिकाकी आवश्यकता हमारे लिए लाभ उठानेका उत्तम अवसर है, वह शास्त्र मानुषी नहीं, राक्षसी ही कहा जा सकता है। इस जालमें से निकलनेका नाम ही स्वराज्य है। भाई लक्ष्मीदासने बताया है कि इस एक क्षेत्रमें हम इस जालसे कैसे निकल सकते हैं। यद्यपि भाव बढ़े हैं फिर भी हरएक आदमीको इस समय कुछ रुई खरीदकर अपने पास रख लेनी चाहिए; भले उसे कातना न आता हो, तो भी। इसके सिवा, हमें हर किसानको चेतावनी देनी चाहिए कि अपनी सारी कपास वह न बेचे। उसके पास उसकी जरूरतसे ज्यादा हो तो भले बेच दे। जो किसान तात्कालिक लाभके लिए, बढ़े हुए दामोंसे ललचाकर, अपनी सारी कपास बेचेगा, उसे अदूरदर्शी ही कहा जायेगा। सच तो यह है कि हरएक किसान अपनी जरूरतका अन्न और अपनी जरूरतकी कपास संग्रह करे, इतना ही नहीं, उसे उनका संग्रह कमसे-कम अपनी सालभरकी जरूरतका खयाल करके करना चाहिए। ताकि यदि किसी वर्ष फसल अच्छी न आये तो उसे चिन्तित न होना पड़े।

मैं यह कोई नई बात नहीं कह रहा हूँ। हमारे जंगली नहीं, सभ्य और ज्ञानी पूर्वज सौ-डेढ़ सौ वर्ष पहले ऐसा ही करते थे। कई तो बीस वर्ष पहले तक भी ऐसा ही करते थे और इसीमें अपनेको सुखी मानते थे। आज हम अल्प दृष्टिवाले लोग अपनी कपास महँगे भावसे बेच देते हैं, फिर अपना समय बेकार नष्ट करते हैं, और बादमें महँगा कपड़ा खरीदकर अपनेको सभ्य मानते हैं। मैं तो अपने उन जंगली माने जानेवाले पूर्वजोंको ही ज्यादा समझदार और दूरदर्शी कहूँगा। हाँ, मैं यह जरूर चाहता हूँ कि हम पाटीदार होने या बननेके झूठे खयालोंको छोड़ दें और सच्चे किसान बनें।

रायलसीमाका इलाका

निजामने अपने प्रदेशका एक बढ़िया इलाका सरकारको दे दिया था। रायलसीमाका यह इलाका तेलुगू भाषी आन्ध्र प्रान्तका हिस्सा है। अंग्रेजीमें इसे 'सीडेड डिस्ट्रिक्ट' कहा जाता है। मैं जो दौरा कर रहा हूँ उसकी समाप्ति इसी इलाकेमें हुई। ऐसा कहा जा सकता है कि मेरे ये तीन दिन यहाँ सभाएँ करते हुए ही बीते हैं — दिनमें भी सभाएँ और रातमें भी सभाएँ। इन तीन दिनोंमें हम लोग कालीकारी, चित्तूर, तिरुपति, रेनीगुंटा, राजमपेट, कड़प्पा, ताड़पत्री, गुन्टकल, करनूल और बेल्लारी गाँवमें गये। इनमें से अधिकांश जगहोंमें कम या अधिक मात्रामें आजकल अकालकी स्थिति है। इलाकेकी आबादी लगभग २८ लाखकी है। अकालके कारण इतनी ज्यादा भुखमरी फैली है कि कहीं-कहीं तो लोग सकुटुम्ब डूबकर, आत्मघात करके, मर गये हैं। बाजारमें अनाज न मिलता हो ऐसी बात नहीं है। लेकिन अनाज खरीदनेके

लिए लोगोंके पास पैसा नहीं है और वे पैसा कमा सकें ऐसा कोई काम उनके पास नहीं है। सरकारने सड़कें बनाने या सुधारनेका यानी पत्थर ढोने और फोड़नेका काम शुरू किया है लेकिन उसमें बहुत ही थोड़े लोग जा सकते हैं। इस काममें स्त्रीको बहुत हुआ तो ५ पैसे और पुरुषको ८ पैसे मिलते हैं। इसके सिवा, मजदूरी तीन आने ही क्यों न हो उन्हें प्रति आना एक पैसा दस्तूरीके रूपमें मुकादमको तो देना ही पड़ता है। इस प्रदेशमें तीस वर्ष पहले लोग कातने और बुननेका काम करते थे। आज भी स्त्रियाँ उसे भूली नहीं हैं। ताड़पत्री गाँवमें मैंने अन्त्यज स्त्रियोंको कांग्रेस कमेटीके मकानमें अच्छी तरह कातते हुए देखा। इन स्त्रियोंको आठ घंटा कताईकी मजदूरी तीन आना मिलती है और ये तीन आने उन्हें पूरे मिलते हैं; कोई दस्तूरी नहीं देनी पड़ती, कोई बदमाश उनपर कुदृष्टि नहीं डाल सकता। इस तरह वे पत्थर फोड़नेवालोंकी अपेक्षा अधिक कमाती हैं। इस इलाकेके हजारों स्त्री-पुरुषोंने चरखेका पुनरुद्धार करनेके लिए मुझे आशीर्वाद दिया। यदि हर जगह कांग्रेस कमेटियाँ अपना काम पूरा करें तो आगामी वर्ष अकाल नहीं होगा। महँगाई तो होगी लेकिन लोग कातकर और बुनकर अनाज अवश्य खरीद सकेंगे।

सरकारका द्वेषपूर्ण व्यवहार

एक परम मित्र कहते हैं कि जो लोग असहयोगकी निन्दा करते हैं वे यह भूल जाते हैं कि इतने वर्षतक यह सरकार हमारी सभ्यताके साथ, हमारी भाषाके साथ और हमारी जातिके साथ असहयोग ही तो करती रही है और अब यदि हम इस सरकारसे असहयोग नहीं करते तो हमारे जैसा बुद्धिहीन कोई नहीं होगा। सरकार हमारे साथ उक्त असहयोग आज भी कर रही है, उसका एक ताजा और द्वेषपूर्ण उदाहरण सेठ गोदरेजके प्रति उसके हालके व्यवहारमें मिलता है। इस उदार और दानी व्यक्तिने तिलक स्वराज्य कोषमें, केवल अस्पृश्योंके लिए और शराबबन्दीके कामके लिए, काफी पैसा दिया है, इसलिए सरकारने एक गुप्त गश्ती चिट्ठी जारी की है कि किसी भी सरकारी विभागके लिए गोदरेजकी तिजोरियाँ न खरीदी जायें। एक ऐसा समय था जब सरकारी कार्यालयोंमें ये तिजोरियाँ खासी संख्यामें ली जाती थीं लेकिन सेठ गोदरेजने तिलक स्वराज्य कोषमें दान दिया इसलिए 'न्यायी' सरकारने उनकी तिजोरियोंके बहिष्कारका फरमान निकाल दिया। ऐसी दुष्ट और द्वेषपूर्ण सरकारसे जनता असहयोग न करे तो और क्या करे?

दीवाली

दीवालीके दिन रामकी विजयका उत्सव मनाया जाता है। रामकी विजयका अर्थ है धर्मकी विजय। धर्मकी विजयका उत्सव तो धर्मका पालन करनेवाले ही मना सकते हैं। उसे वही राष्ट्र मना सकता है, जो अपने स्वाभिमानकी रक्षा करता हो और स्वाश्रयी हो। इसलिए मैं तो ऐसा समझता हूँ कि हमारा कर्त्तव्य है कि जबतक हमें स्वराज्य नहीं मिल जाता तबतक दीवालीके इन दिनोंमें हमें किसी प्रकारका आमोद-प्रमोद नहीं करना चाहिए और न मिष्टान्न भोजन करना चाहिए। जिस समय अपने धर्म और देशकी सेवाके लिए हजारों निर्दोष लोग जेल गये हुए हों उस समय

हम किसी भी प्रकारके आनन्दका उपभोग कैसे कर सकते हैं? जिसका सगा भाई जेलमें बाजरेकी रोटी खा रहा हो वह बाहर श्रीखण्डका स्वाद कैसे ले सकता है? जिसके हजारों भाई-बहन भूखसे मर रहे हों वह नाचना-गाना कैसे कर सकता है? दीवालीके इन दिनोंमें हम बहुत चमक-दमकवाले विदेशी कपड़े खरीदते हैं। मेरी सलाह है कि कोई भी बेकार कपड़ा न खरीदे, जितनी जरूरत हो उतनी हाथकी कती-बुनी खादी ही खरीदे और उसे खरीदनेमें भी जितनी काट-कसर हो सकती हो करे।

चरखा — अली-भाइयोंका हमदम

अली-भाई जेलमें बैठे-बैठे भी चरखेका ध्यान किया करते हैं। उनका एक तार आया है, जिसमें वे कहते हैं कि हमने तथा हमारे कैदी-भाइयोंने कुछ चरखे हमें देनेके लिए सरकारसे कहा है, जिससे कि हम लोग यहाँ फुरसतका वक्त सूत कातकर बिताया करें। इस प्रकार सब लोग अगर निश्चय कर लें तो जरूर ही स्वराज्य जल्द आ जाये। अब देखना है कि सरकारकी तरफसे इसका क्या जवाब मिलता है।

अन्त्यजोंके बारेमें

अब हमें इस बातपर विचार करना चाहिए कि अन्त्यजोंके लिए गुजरातमें हम क्या करते रहे हैं। हरएक कांग्रेस कमेटी इस दिशामें कुछ करती है या नहीं? ताड़-पत्रीकी कांग्रेस कमेटीने अन्त्यज बहनोंको अपने ही मकानमें काम दिया है। वहाँ सब लोग उनके बीचमें उठते-बैठते हैं और वे भी सब लोगोंके बीचमें उठती-बैठती हैं। इस तरह ऐसे अनेक रास्ते हैं जिनसे हम अन्त्यजोंको यह बता सकते हैं कि वे हमारे सगे भाई-बहन ही हैं। हाँ, हममें इस बातकी लगन होनी चाहिए। उनके लिए हमने कितने कुएँ खुदवाये हैं? कितनी पाठशालाएँ खोली हैं? उनके साथ हमारे घरमें कैसा व्यवहार किया जाता है? क्या हम उन्हें अपना जूठा भोजन देते हैं? यह अन्तिम सवाल स्त्रियोंके लिए अधिक विचारणीय है। अस्पृश्यताके नाशका केवल इतना ही अर्थ नहीं है कि अन्त्यजका स्पर्श हो जानेपर हम अपनेको अशुद्ध नहीं मानते और नहाते नहीं। हमें अस्पृश्यताके अर्थपर गहरा विचार करना चाहिए। उसमें तिरस्कारकी जो जबरदस्त भावना है उसे हमें जड़मूलसे उखाड़कर फेंक देना चाहिए। जबतक हमने अपने मनसे तिरस्कारकी इस भावनाको नहीं निकाल फेंका तबतक अस्पृश्यता कायम ही है। और तिरस्कारकी यह भावना जिस दिन सम्पूर्ण नष्ट हो जायेगी उस दिन निश्चय ही प्रत्येक अन्त्यज भाई-बहन इस बातको पहचाने बिना नहीं रहेगा।

धर्मके नामपर अत्याचार

कल नवरात्रिका अन्तिम दिन है। गत वर्ष भद्रकालीके मन्दिरमें उस मन्दिरके पुजारीको शहरके महाजनोंने बकरेका बलिदान नहीं करने दिया था और उसके साथ ऐसा समझौता किया था कि महाजन लोग उसे प्रति वर्ष छः सौ रुपये देंगे और वह दूसरी पूजाएँ जो भी उसे करनी हों करेगा, किन्तु देवीको बकरा नहीं चढ़ायेगा।

इस बार पुजारीका कहना है कि वह पिछले वर्षकी प्रतिज्ञासे बँधा हुआ नहीं है। यदि वह ऐसा कहता हो तो वह अपने पापमें प्रतिज्ञा-भंगके एक दूसरे पापकी वृद्धि कर रहा है।

मैंने सुना है कि इस सम्बन्धमें पुजारीको बकरेका वध करनेसे रोकनेके लिए निषेधादेश भी निकलनेवाला है। लेकिन यह आदेश निकले या न निकले, उससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है।

जो लोग अपनेको हिन्दू मानते हैं, वे ऐसे प्राणिवधमें कोई सहयोग नहीं दे सकते। मेरी दृढ़ मान्यता है कि धर्मके नामपर किसी प्राणीका वध करना अधर्म है। जिस मन्दिरमें ऐसा वध होता है वह मन्दिर ही नहीं है। ऐसे किसी भी मन्दिरमें हिन्दुओंको जाना ही नहीं चाहिए। कालीमाता पशुवध नहीं चाहती। वह तो हमारा ही बलिदान चाहती है। अपने पापका, अपनी मलिनताका वध करके ही हम कालीमाताके समक्ष खड़े हो सकते हैं। जो हिन्दू अष्टमीका होम करना चाहते हैं उनसे मैं कहता हूँ कि "आप लोग हाथके काते हुए सूतकी खादी पहनकर सत्यका, अहिंसाका और इन्द्रिय-संयमका व्रत लीजिए।" मुझे विश्वास है कि जो लोग ऐसा करेंगे वे शुद्धतम बलिदान करेंगे। इतना ही नहीं वे स्वराज्यके योग्य भी बनेंगे। इसलिए मुझे आशा है कि यदि यह पुजारी बकरेका वध करनेकी अपनी हठपर कायम रहता है तो कोई भी हिन्दू उस मन्दिरमें जाकर और प्राणिवधके इस पापमें सहयोगी होकर ईश्वरकी निन्दा करनेके पापका भागी नहीं होना चाहेगा।

शनिवार आश्विन सुदी ७ (८ अक्तूबर, १९२१)

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९–१०–१९२१

१२२. भाषण: बम्बईमें कार्यसमितिके प्रस्तावके सम्बन्धमें

९ अक्तूबर, १९२१

श्रीमती नायडूने सभाकी अध्यक्षता की और सभाके सम्मुख प्रस्ताव महात्मा गांधीने रखा। प्रस्तावका समर्थन लाला लाजपतराय, मौलाना आजाद सोबानी, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, आदि नेताओंने किया . . .। प्रस्ताव कराची-प्रस्तावसे मिलता-जुलता था। उसे सब लोगोंने खड़े होकर मंजूर किया। उसके बाद महात्मा गांधीने विदेशी कपड़ोंके ढेरमें आग लगाई और वह पटाखोंकी आवाजके साथ और आगकी लपटोंमें जल उठा।

महात्मा गांधीने प्रस्ताव रखा:

बम्बईमें इसी ५ तारीखको हुई बम्बईके नागरिकोंकी यह सभा कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें स्वीकृत किये गये निम्न प्रस्तावका समर्थन करती है:

> **कार्य-समिति अली-भाइयों और उनके साथियोंको जेल जानेपर बधाई देती है और इस सरकारके अधीन फौजमें नौकरी करनेके सम्बन्धमें कराचीके खिलाफत सम्मेलनके प्रस्तावपर विचार करनेके पश्चात् कार्य-समिति यह सम्मति**

प्रकट करती है कि इस प्रस्तावमें तत्त्वतः उसी सिद्धान्तका समर्थन किया गया है जिसे कांग्रेसने अपने कलकत्ताके विशेष अधिवेशनमें और पिछले वर्ष नागपुरके सामान्य अधिवेशनमें निर्धारित किया था। इस प्रस्तावमें कहा गया है कि इस सरकारकी किसी हैसियतमें नौकरी करना भारतीयोंके राष्ट्रीय सम्मान और राष्ट्रीय हितके विरुद्ध है; क्योंकि सरकारने हमारे सैनिकोंका उपयोग मिस्रियों, तुर्कों, अरबों और अन्य राष्ट्रोंकी राष्ट्रीय भावनाको कुचलनेके लिए किया है। कार्य-समितिने कांग्रेसकी ओरसे सैनिकों और असैनिक कर्मचारियोंको नौकरी छोड़नेका निर्देश इसलिए नहीं किया है कि सरकारी नौकरी छोड़ने और अपनी आजीविकाका साधन ढूँढ़नेमें असमर्थ ऐसे लोगोंके भरण-पोषणका भार लेनेके लिए कांग्रेस अभी तैयार नहीं है। किन्तु कार्य-समितिकी राय है कि कांग्रेसके असहयोग सम्बन्धी प्रस्तावकी भावनाके अनुसार सभी कर्मचारियोंका, फिर चाहे वे सैनिक हों या असैनिक, यह कर्त्तव्य है कि उनमें से जो लोग कांग्रेसकी सहायताके बिना अपना निर्वाह कर सकते हों वे अपनी नौकरी अवश्य छोड़ दें।

कार्य-समिति समस्त भारतीय सैनिकों और पुलिसके सिपाहियोंका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकर्षित करती है कि थोड़े ही समयतक प्रशिक्षण लेनेके बाद रुई धुनने, सूत कातने और हाथसे कपड़ा बुननेसे उनको स्वतन्त्र आजीविकाका एक सम्मानपूर्ण साधन मिल सकता है। कार्य-समितिकी राय यह भी है कि ऊपर बताये गये कराचीके प्रस्तावके सिलसिलेमें लोगोंपर मुकदमा चलाने और सजा देनेके जो कारण बताये गये हैं उनसे लोगोंकी धार्मिक स्वतन्त्रतामें अनुचित हस्तक्षेप होता है।

इस प्रस्तावको प्रस्तुत करते हुए, महात्मा गांधीने कहा :

प्रस्तावके दो भाग हैं। पहला भाग कराचीवाले प्रस्तावके सम्बन्धमें है और उसका उद्देश्य राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे उस प्रस्तावका समर्थन करना है। और यदि प्रस्तावका समर्थन करना अली-भाइयों और उनके साथी कैदियोंके लिए अपराध है तो वह मेरे लिए और इस सभामें प्रस्तुत श्रोताओंके लिए भी अपराध है, जिनकी ओरसे यह प्रस्ताव रखा जा रहा है और स्वीकार किया जा रहा है। मैं सैनिकोंको यह बतलाना अपना कर्त्तव्य मानता हूँ कि जिस सरकारने देशका विश्वास खो दिया है, उसकी सहायता करना अनुचित है। मुझे बताया गया है कि लोग इस प्रस्तावको एक वकीलकी चतुराईसे बनाया हुआ बताते हैं जिससे कानूनकी पकड़से बचा जा सके। यह कहा गया है कि यह प्रस्ताव खिलाफत-सम्बन्धी प्रस्ताव जैसा नहीं है और इसमें सैनिकोंको हथियार डालनेके लिए कहना सभीके लिए अनिवार्य नहीं है। इस रायसे मेरा मतभेद है। मेरी राय यह है कि जो भी व्यक्ति इस प्रस्तावका समर्थन करते हैं वे सैनिकोंसे कहते हैं कि यदि वे किसी अन्य साधनसे अपना निर्वाह कर सकें तो सरकारकी

नौकरी छोड़ देना उनका कर्त्तव्य है। यदि मेरी वाणी सैनिकोंतक पहुँच सके, तो मैं उनसे अवश्य ही कहता हूँ कि वे चाहे हिन्दू हों या मुसलमान, यदि अपने धर्म और देशमें उनका विश्वास है तो वे इस नौकरीको छोड़ दें, फिर चाहे उन्हें पत्थर तोड़कर भी अपनी जीविका क्यों न कमानी पड़े। जो मनुष्य भारतका सैनिक बनना चाहता है वह इस सरकारका, जिसने भारतका अहित किया है, सैनिक नहीं बन सकता। जिन लोगोंने जलियाँवाला बागमें निर्दोष लोगोंकी हत्या की वे सैनिक नहीं हैं, बल्कि पशु हैं। जो लोग बिना कोई खतरा उठाये केवल हत्या करते हैं, वे लोग सैनिक नहीं होते, पशु होते हैं। इसलिए मुझे इस सभाकी ओरसे सिपाहियोंसे यह कहनेमें कोई झिझक नहीं है कि यदि उन्हें देश और धर्मका कुछ भी ध्यान है तो वे इस सरकारसे सम्बन्ध तोड़नेमें एक क्षण भी न खोयें।

प्रस्तावमें एक बातका निषेध किया गया है और वह है गुप्त प्रचार। अहिंसाकी पुस्तकमें से गोपनीयता निकाल दी गई है। हम जिस बातको खुल्लमखुल्ला कहनेके लिए तैयार नहीं, उसे गुप्त रूपसे कहनेमें हमें शर्म आती है। इसलिए यदि सरकार असहयोगके ध्येय और सिद्धान्तके पठनको अपराध मानती है, तो मैं उससे कहता हूँ कि वह आज ही इस सायंकालीन सभाकी कार्रवाईमें भाग लेनेवालोंको गिरफ्तार कर ले। यदि सैनिकोंसे यह कहना अपराध है कि धर्म और राष्ट्रीय हितकी दृष्टिसे उनके लिए सरकारकी नौकरी करना अवैध है, तो मैं सरकारसे कहता हूँ कि वह मुझे गिरफ्तार कर ले और जिन लोगोंने इस प्रस्तावका समर्थन किया और इसे मंजूर किया है उन्हें भी पकड़ ले।

प्रस्तावके दूसरे भागमें सैनिकोंको सम्मानपूर्वक आजीविका कमानेका मार्ग बताया गया है। उसमें स्वदेशीका उल्लेख है। मैं श्रोताओंसे कहता हूँ कि यदि उनको विश्वास न हो कि स्वदेशी वस्तुओंका प्रयोग लाभप्रद है और चरखेमें देशकी गरीबी दूर करनेकी शक्ति है, तो वे इस प्रस्तावको स्वीकार न करें। प्रस्तावमें सैनिकोंसे कहा गया है कि वे रुई धुनकर और कपड़ा बुनकर अपनी आजीविका कमा सकते हैं। मैं मौलाना मुहम्मद अलीकी तरह सचमुच यह विश्वास करता हूँ कि हमें गोलियों और बारूदकी जरूरत नहीं है। सूतके गोले हमारी गोलियाँ है, और चरखे हमारी बन्दूकें। मैंने पिछले सितम्बरमें कहा था कि यदि हम कुछ शर्तोंको पूरा कर लें तो बारह महीनेमें स्वराज्य लेना और खिलाफत और पंजाबके अन्यायोंका प्रतिकार कराना हमारे लिए सम्भव है। बारह महीने तो बीत गये; किन्तु स्वराज्य नहीं मिला। इसमें दोष हमारा ही है। हमने काम बहुत किया है, किन्तु हमसे जो न्यूनतम शर्तें पूरी करनेकी अपेक्षा की गई थी वे पूरी नहीं हो सकीं। इस दोषमें मैं अपनेको भी शामिल मानता हूँ।

मुझे दुःख है कि मुझमें प्रत्येक वकीलको यह समझानेकी शक्ति नहीं है कि जिन अदालतोंसे न्याय नहीं मिलता उनमें वकालत करना अनुचित है। मुझे दुःख है कि

मेरी तपस्या इतनी नहीं कि मैं छात्रोंको विश्वास दिला सकूँ कि सरकारी स्कूलोंसे सम्बन्ध रखना अनुचित है। मैं जानता हूँ कि मैं बम्बईके सब स्त्री-पुरुषोंको यह विश्वास नहीं दिला सका हूँ कि खद्दरके सिवा दूसरा और कोई कपड़ा पहनना पाप है। किन्तु आपको मेरा खयाल करनेकी जरूरत नहीं। यदि देश इस महीनेमें भी स्वदेशीके कार्य-क्रमको पूरा कर ले, तो स्वराज्य इस वर्षके अन्दर निश्चित मिल जायेगा और खिला-फत और पंजाबके अन्यायोंका प्रतिकार भी हो जायेगा। चरखेमें मेरा विश्वास वैसा ही बना हुआ है। मुझे कोई सन्देह नहीं कि भारतकी गरीबीकी समस्या इससे, और केवल इसीसे, हल होगी। मेरी दृष्टिमें इसका मान लिया जाना इस बातकी कसौटी है कि हिन्दुओं और मुसलमानोंमें एकता हो गई है और हमने हिंसा त्याग दी है। यदि आप स्वदेशीके कार्यक्रमको पूरा न कर सके, तो मैं सामूहिक सविनय अवज्ञामें भाग नहीं लूँगा। जबतक खद्दरका प्रसार सर्वत्र नहीं हो जाता और विदेशी कपड़ा सिर्फ जहाँ-तहाँ ही नहीं रह जाता, तबतक मुझे सन्तोष नहीं होगा। मैं यह देखना चाहता हूँ कि बम्बईके स्त्री-पुरुष केवल खद्दर ही पहने हों। मुझे बताया गया है कि खादी-भण्डारसे जुलाईमें १८,००० रुपयेकी, अगस्तमें १३,००० रुपयेकी और सितम्बरमें ७,००० रुपये-की खादी बिकी। मैं लाखों रुपयेकी खादी बिकती देखना चाहता हूँ। मैं यह देखना चाहता हूँ कि बम्बईके घर-घरमें चरखा चल रहा है। बम्बई तिलक स्वराज्य-कोषके मामलेमें सबसे आगे रहा। वह स्वदेशी आन्दोलनके सम्बन्धमें भी आगे रहे और सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करनेका गौरव भी प्राप्त करे। मैंने अप्रैल १९१९ में जल्दीमें सविनय अवज्ञा आरम्भ करके भूल की थी। मैं बहुत ही अपूर्ण मनुष्य हूँ और भूल कर सकता हूँ। केवल ईश्वर ही ऐसा है जो भूल नहीं करता। किन्तु मैं इतना सीख गया हूँ कि मुझसे एक ही भूल दोबारा न हो। मैं स्वदेशीका कार्यक्रम पूरा किये बिना सविनय अवज्ञा करनेकी सलाह नहीं दूँगा। मैं सविनय अवज्ञा-का विज्ञान जानता हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि उसमें कितनी शक्ति है और उसके क्या-क्या खतरे हैं। उसके लिए पूर्ण अहिंसात्मक वातावरण चाहिए और पूर्ण अहिंसा-त्मक वातावरण तबतक नहीं हो सकता जबतक राष्ट्र चरखेकी शक्तिको नहीं मान लेता और उसको अपना नहीं लेता। यदि स्वदेशीमें और उसके परिणामोंमें आपका विश्वास है तो मैं यह देखनेकी अपेक्षा करता हूँ कि हर घरमें चरखा चल रहा है, सभी जातियों और धर्मोंके लोग चरखा चला रहे हैं और खद्दर पहन रहे हैं। मैं यह अपेक्षा करता हूँ कि धनी लोग भी चरखा चलायें और मिल-मजदूर भी चरखा चलायें और जब आप इतना कर लेंगे, तब आप एक-एक सिपाहीके पास बिना खतरेके जा सकते हैं और उससे नौकरी छोड़नेके लिए खुल्लमखुल्ला कह सकते हैं।

जब मैंने केवल एक धोतीसे तन ढँकना शुरू किया, तो मैंने देखा कि कई लोगोंकी आँखोंमें आँसू भरे हैं। लेकिन मैंने जो-कुछ देखा है उसके बाद मैं यही कर सकता था। मैं नहीं चाहता कि कोई मुझपर दया दिखाये, किन्तु मैं यह अवश्य

चाहता हूँ कि भारत स्वदेशीका पूर्ण व्यवहार करे। मैं अपनी साधारण पोशाक फिर पहनना तभी शुरू कर सकता हूँ। मैं मद्रासके रायलसीमा जिलोंको देखकर आया हूँ। वहाँ अकाल पड़ रहा है। कहा जाता है कि वहाँ अन्नकी कमीसे स्त्रियाँ अपने बच्चों सहित पानीमें डूबकर मर गई हैं। इतने भारी संकटकी बात जानकर मेरे लिए, जितना कपड़ा मैं अब पहनता हूँ, उससे ज्यादा कपड़ा पहनना सम्भव नहीं।

मैं अभी आप लोगोंके सामने लगे विदेशी कपडोंके ढेरकी होली जलाऊँगा। मेरी दृष्टिमें यह आग हमारे हृदयोंमें धधकती हुई आगकी ही निशानी है। यदि वह आग हमारे अन्तरमें धधकती ज्वालाका प्रतीक न हो तो फिर यह केवल दिखावा ही होगा।

आप स्वर्गीय लोकमान्य तिलकका बहुत आदर करते हैं। उनके 'गीता-रहस्य'को समझनेके लिए उनकी 'गीता'की व्याख्या पढ़नेकी जरूरत नहीं। उनका 'गीता-रहस्य' क्या है यह मैं दो शब्दोंमें बता सकता हूँ। उसका पहला भाग, स्वयं लोकमान्यके शब्दोंमें यह है: "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।" उसके दूसरे भागकी पूर्ति मैं कर देता हूँ, "चरखा उसको प्राप्त करनेका साधन है।" मुझे विश्वास है कि यदि लोकमान्य जीवित होते, तो वे आज हमारे साथ इस मंचपर बैठे होते। क्या उन्हें स्वदेशीसे प्रेम नहीं था? उस समय स्वदेशीका जिस रूपमें व्यवहार किया जाता था उसपर उन्होंने वर्षों आचरण नहीं किया था? मैं जानता हूँ कि असहयोगमें उनका विश्वास था। उसपर आचरण करनेकी देशकी शक्तिमें उन्हें अवश्य ही सन्देह था। आप स्वदेशीको पूर्ण रूपसे अपनाकर इसी वर्षमें स्वराज्यकी स्थापना करके इस सन्देहका निवारण कर दें। मुसलमानोंको खिलाफतके सम्बन्धमें गहरा दुःख है और हिन्दुओंको अपनी प्रतिज्ञाका उतना ही खयाल है। मैं दोनोंसे कहता हूँ कि वे चरखेको अपनायें और स्वदेशीकी सफलता सुनिश्चित बना दें।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १०–१०–१९२१

१२३. भाषण : स्त्रियोंकी सभा, बम्बईमें

९ अक्तूबर, १९२१

रविवारको दोहपरके बाद मारवाड़ी विद्यालयके सभा-भवनमें 'राष्ट्रीय स्त्री सभा' के तत्वावधानमें एक सार्वजनिक सभा हुई। इस सभामें महात्मा गांधी, लाला लाजपतराय और अन्य वक्ताओंने वर्तमान परिस्थितिपर भाषण दिये। सभा केवल खद्दर और स्वदेशी वस्त्र पहननेवाली महिलाओंके लिए बुलाई गई थी। सभाकी अध्यक्षता श्रीमती नायडूने की।

महात्मा गांधीने कहा :

मेरे सन्मुख हिन्दू, मुसलमान और पारसी स्त्रियाँ बैठी हुई हैं। वे यह जानकर ही सभामें आई हैं कि वे केवल खादी पहनकर ही सभामें भाग ले सकती हैं। मैं स्वयं यहाँ आपको कोई नई बात बताने नहीं आया हूँ, किन्तु देशने जो काम किया है उसके बारेमें बताने आया हूँ। आपने कांग्रेसकी सदस्या बनकर यह दिखा दिया है कि आप कांग्रेसके आदेशोंको माननेके लिए तैयार हैं, चाहे उसमें जो भी खतरे सामने आयें। आप जानती हैं कि हमारे देशके आठ नेता कराचीमें कुछ प्रस्तावोंको पास करनेपर गिरफ्तार कर लिये गये हैं और मैं चाहता हूँ कि इस सभामें भी वे ही प्रस्ताव पास किये जायें और आवश्यक हो तो आप सब जेल जायें। आपको यह नहीं सोचना चाहिए कि आप स्त्रियाँ हैं, इसलिए आपको गिरफ्तार नहीं किया जायेगा; आपका यह खयाल ठीक नहीं है। आपको जानना चाहिए कि सरकार अपना उद्देश्य पूरा करनेके लिए कुछ भी कर सकती है। दक्षिण आफ्रिकामें जो-कुछ हुआ था वह आपको मालूम है। वहाँकी सरकार स्त्रियोंको भी बाहर नहीं रहने देना चाहती थी। लाला लाजपतरायने आपसे कहा है कि आप अपने हृदयोंको लोहे-जैसा कड़ा बना लें जिससे जब आपके निकट सम्बन्धी और प्रियजन गिरफ्तार किये जायें तब आपकी आँखोंसे आँसूकी एक बूँद भी न निकले। आपको अली-भाइयोंकी माता और मौलाना मुहम्मद अलीकी पत्नीका अनुकरण करना है। यद्यपि हमारे किसीके धर्ममें यह नहीं लिखा है कि जब कोई मर जाये तो उसके लिए हमें रोना-धोना चाहिए, फिर भी हम अपने मृत सम्बन्धियोंके लिए रोते और शोक करते हैं। यह ठीक नहीं है। जो लोग जेल भेजे जायें, आप उनके लिए शोक न करें, क्योंकि आप जानती हैं कि वे देशमें धर्म-राज्यकी, स्वराज्यकी स्थापनाके लिए लड़ रहे हैं। मैं जिस स्वराज्यकी स्थापना करना चाहता हूँ वह धर्म-राज्य है, राम-राज्य है। जबतक भारतमें एक भी व्यक्ति भूखसे मरता है, तबतक संसदोंमें कोई भी अधिकार दिये जायें उससे हमें सच्चा स्वराज्य नहीं मिलता। जबतक इस देशमें अधर्म है, तबतक हमें मताधिकार और दूसरे

अधिकार मिलें तो उनसे कोई लाभ नहीं। मैं धर्म-राज्यकी स्थापना करना चाहता हूँ; ऐसा राज्य जो सद्‌गुणों और सदाचारपर आधारित हो। ऐसा राज्य हमें तभी मिल सकता है जब हम उसका संकल्प कर लें। लालाजी आपसे कह चुके हैं कि यदि सरकार हमारे नेताओंको फाँसीपर भी लटका दे तो भी आपको एक आँसूतक नहीं गिराना चाहिए। मुझे आशा है कि स्त्रियाँ ऐसा ही करेंगी और अपने धर्मका कभी त्याग नहीं करेंगी।

स्वदेशीके प्रश्नकी चर्चा फिर उठाते हुए महात्मा गांधीने कहा :

मैं देखता हूँ कि मेरे सामने ऐसी बहुत-सी स्त्रियाँ बैठी हैं जिनके स्वदेशी कपड़ा भी नहीं पहना हुआ है; कुछने मिलोंका बना कपड़ा पहन रखा है। मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या आपने अपने सन्दूकोंमें से विदेशी कपड़े निकालकर फेंक दिये हैं? आपको स्मरण रखना चाहिए कि मिलका बना कपड़ा भी उन लोगोंके लिए है जो बेहद गरीब हैं, जैसे धनी लोग यहाँ बैठे हैं उनके लिए नहीं। आपको तो केवल स्वयं अपने हाथोंसे बनाये कपड़े ही पहनने चाहिए। पहले जमानेमें यह देखा जाता था कि कोई आदमी कैसे कपड़े पहने है और उसके कपड़ोंसे ही उसकी प्रतिष्ठा आँकी जाती थी। हमें इस युगमें अपनी यह मनोवृत्ति बदल देनी चाहिए। मैं निजामके राज्यमें दत्तामण्डल नामके एक गाँवमें गया था। मैंने देखा कि वहाँके लोग अकालके कारण चार सालसे भूखों मर रहे हैं। उन स्त्री-पुरुषोंके पास कोई काम नहीं है और वे धीरे-धीरे कालके गालमें समाते जा रहे हैं, भूखसे मर रहे हैं। यदि मैं इस सभामें बैठी आज सब बहनोंको यह बताऊँ कि मैंने वहाँ क्या-क्या देखा था, तो आप लज्जाके मारे रो पड़ेंगी। लोग भूखों मर रहे हैं और उनकी कोई परवाह नहीं करता। मुझे बहुत दुःख है कि यद्यपि मैं पिछले एक सालसे स्वदेशीका प्रचार कर रहा हूँ, फिर भी इस दिशामें काफी प्रगति नहीं हुई है। मैंने इस देशमें पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंको भूखसे मरते देखा है, उनके शरीरोंमें खाल और हड्डियाँ रह गई हैं। वे कंकाल-मात्र ही रह गये हैं — क्योंकि उनके पास कोई काम नहीं है। वे हर काम करनेके लिए तैयार हैं, किन्तु उनके लिए कोई काम ही नहीं है, इसलिए वे कोई भी काम करनेमें असमर्थ हैं। सरकार उनको कभी-कभी सड़कोंपर पत्थर तोड़नेका काम देती है। इस स्थितिको देखते हुए भारतीय-स्त्री-पुरुष बढ़िया-बढ़िया कपड़े कैसे पहन सकते हैं? यदि हम चाहते हैं कि इस देशमें गरीबी न रहे और लोग वस्त्रहीन न रहें, तो हमें चरखेका उपयोग करना चाहिए। तभी हमारे करोड़ों लोग अपनी आजीविका कमा सकते हैं और अपने सम्मानकी रक्षा कर सकते हैं। यदि भारतीय इतना कर लें तो उनको स्वराज्य मिल जायेगा। भारतीयोंको कोई अधिकार नहीं कि वे अपना धन विलासकी वस्तुओंको खरीदनेपर खर्च करें और अपना समय व्यर्थ गँवायें। आपके पास जो-कुछ भी बचे, वह आपको गरीबोंको दे देना चाहिए। ईश्वर गरीबोंके, चाण्डालों, ढेढ़ों और भंगियोंके घरोंमें रहता है; अमीरों और बड़े लोगोंके घरोंमें नहीं। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि मैं यदि इस

देशमें फिरसे जन्म लूँ, तो किसी ढेढ़के घरमें ही लूँ। अदालतों और स्कूलों और कौंसिलोंका बहिष्कार एवं उपाधियोंका त्याग —— इन सभी कामोंमें हमें सफलता नहीं मिली है और लोगोंने देशके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन नहीं किया है। अब समय आ गया है जब स्त्रियोंको आगे बढ़ना चाहिए। आप विजय चाहती हैं तो आपको चरखेका प्रयोग करना होगा। धर्मके बिना हमें स्वराज्य नहीं मिलेगा, उसके बिना पंजाबके अन्यायोंका प्रतिकार नहीं होगा और न खिलाफतके अन्यायका। यदि हम स्वदेशीका कार्यक्रम पूरा कर लें तो हमें अपने लक्ष्यतक पहुँचनेसे कोई नहीं रोक सकेगा। यदि हममें स्वराज्यके लिए आवश्यक गुण हैं, तो हमें कोई भी सरकार अपने लक्ष्यतक पहुँचनेसे नहीं रोक सकेगी। समय बहुत कम रह गया है। हमें पिछले महीनेके अन्त तक स्वराज्य लेना था। उसमें हम असमर्थ रहे। क्या हममें अब इसके लिए आवश्यक श्रद्धा और आवश्यक विश्वास आयेगा? अब हमारे लिए चरखा ही एकमात्र साधन है। अन्तमें, मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि आप विदेशी कपड़ोंको त्याग दें, खद्दरका उपयोग करें और चरखेको स्वराज्यकी लड़ाईके शस्त्रके रूपमें स्वीकार करें।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ११–१०–१९२१

१२४. भाषण : स्वदेशीपर

सूरत[1]

१२ अक्तूबर, १९२१

महात्माजीने सभामें उपस्थित लोगोंमें लगभग आधा घंटा भाषण दिया और उनसे अनुरोध किया कि वे अपना ध्यान केवल स्वदेशीपर केन्द्रित करें। उन्होंने कहा :

मैं सूरतके लोगोंको जानता हूँ और सूरतके लोग मुझे जानते हैं। मैंने अभी यहाँका दौरा किया था। उस समय लोगोंने मुझे सूरतकी बहुत अच्छी-अच्छी खबरें सुनाई थीं और आज मेरे सामने जो यह मैदान सफेद टोपी पहननेवालोंसे भरा है उसे देखकर मुझे आश्चर्य नहीं होता। फिर भी जब मैं देखता हूँ कि सूरतकी बहनोंने अभीतक खद्दरको नहीं अपनाया है, तो मुझे दुःख होता है। यदि हमें गुजरातकी मारफत स्वराज्य स्थापित करना है और यदि सूरतके लोगोंको उसमें अगुआई करनी है, तो ढाई महीनेके इस थोड़ेसे बचे हुए समयमें अभी आपके लिए बहुत-कुछ करना शेष रहता है।

इसमें सन्देह नहीं कि इस समयतक सूरतमें अच्छा काम किया गया है, फिर भी अभी बहुत-कुछ करना रहता है। आपके रक्तके कण-कणमें स्वदेशीकी भावना

१. यह सभा ताप्तीके किनारे इतिहास-प्रसिद्ध पुराने किलेके पास हुई थी।

समा जानी चाहिए। आपको यह अनुभव करना चाहिए कि विदेशी कपड़ेको छूना भी पाप है। मुझे अबतक जो-कुछ कहना और समझाना था वह सब मैं कह और समझा चुका हूँ। अब हमको जो एकमात्र काम करना रहता है वह है स्वदेशीका प्रचार। पूर्ण शान्ति, हिन्दुओं और मुसलमानोंकी एकता, गरीबों और अकाल-पीड़ितोंकी सहायता, स्त्रियोंके शीलकी रक्षा —— इन सबके लिए केवल एक ही उपाय है और वह है चरखेका प्रचार। सभामें आनेके लिए खादीकी टोपी और कोट पहन लेना ही काफी नहीं, यद्यपि उसका थोड़ा महत्व तो है। अब मैं शब्दोंमें अपनी शक्ति लगानेके बजाय अपना समय और शक्ति बचाकर अपने-आपको तन-मनसे खद्दरके उत्पादनमें ही खपा देनेका विचार कर रहा हूँ। यह देशकी अधिक बड़ी सेवा होगी। अब मैं आपको यह बताऊँ कि मैंने अपने कपड़ोंमें यह परिवर्तन क्यों किया है और मैं केवल एक छोटी धोती मात्र क्यों पहनने लगा हूँ। मेरे देशके इतने स्त्री-पुरुष नंगे रह रहे हैं; इसलिए मैं लोगोंके सामने एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ। इस समय हाथ-कते सूत और हाथसे बुनी खादीकी जरूरत ही सबसे बड़ी है और यदि केवल सूरतके लोग ही यह कार्य करें तो सविनय अवज्ञाकी जरूरत नहीं रहेगी। अब आप जुलूस निकालना और सभाएँ करना भी छोड़ दें। अब आपको अपना समय सूत कातने और कपड़ा बुननेके लिए बचाना है। मेरे भाषणकी अपेक्षा इससे कहीं अधिक प्रचार होगा। मैं जल्दी ही उदाहरण प्रस्तुत करूँगा। सूरतके लोगोंको मेरा एक ही सन्देश है: स्वदेशी और केवल स्वदेशीका प्रचार करो। हमारे पास समय कम है; फिर भी यदि लोग ईमानदारीसे और संकल्पपूर्वक कार्य करें तो काफी है। यह एक धर्म-युद्ध है और इसमें हम ईश्वरको धोखा नहीं दे सकते। मैं हिन्दुओंसे विशेष रूपसे कहता हूँ कि वे अस्पृश्यताके अभिशापको दूर कर दें। यदि अस्पृश्यता कायम रही तो ईश्वर आपको क्षमा नहीं करेगा। ईश्वर इन छः करोड़ अछूतोंकी पुकार सुनता है और फलस्वरूप उसने हम उत्पीड़कोंको शेष संसारकी दृष्टिमें अछूत बना दिया है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २२–१०–१९२१

१२५. टिप्पणियाँ

अली-बन्धुओंके बारेमें

अली-भाइयोंका यह सौभाग्य है कि उनके कितने ही पक्के मित्र हैं। और यह भी उनका सौभाग्य है कि उनके कितने ही जबरदस्त आलोचक भी हैं। एक मित्र मुझे लिखते हैं कि आप अली-भाइयोंपर इतने मुग्ध हो गये हैं कि उनकी कोई भी बुरी बात आपको नहीं दिखाई देती। उनका कहना ठीक ही है। सन्देह न रखना ही मित्रताकी खास खूबी है, परन्तु जो अपने मित्रोंकी दुर्बलताओंको नहीं जानता, वह मित्र बुरा होता है। मैं अलीभाइयोंकी कमजोरियोंको जानता हूँ। लेकिन कमजोरियाँ तो मुझमें भी हैं, और इसलिए उनकी दुर्बलताओंके प्रति मेरा हृदय कोमल है। मेरा हृदय कहता है कि अबतक जिन-जिन लोगोंके साथ काम करनेका सौभाग्य मुझे मिला है, अली-भाई उन सबसे बढ़कर और सबसे अधिक वीर हैं। यह तो उनके विरुद्ध लगाये सामान्य आरोपके विषयमें हुआ।

उनकी विसंगति

परन्तु उनपर एक खास इल्जाम भी लगाया गया है। एक महोदय लिखते हैं:

मैं कुछ प्रश्न आपके सामने पेश करता हूँ। मैंने उनपर काफी देरतक और गहरा विचार किया है। परन्तु फिर भी असहयोगके सिद्धान्तसे मैं उनका मेल न बैठा सका। क्या आप कृपा करके बतायेंगे कि मेरी यह उलझन दर-असल ठीक है या निस्सार?

असहयोगका तकाजा है कि जब किसी अंग्रेजी अदालतमें किसीपर मुक-दमा चलाया जाये तो उसे उस मुकदमेकी कार्रवाईमें किसी भी तरहकी मदद न देना चाहिए। लेकिन क्या अली-भाइयोंका बयान देना अदालतको एक तरहकी मदद देना नहीं है? खुद सरकारी वकीलने भी यह कहकर इस बातको साफ कर दिया है कि मुल्जिमोंके बयानोंने मेरा काम बहुत-कुछ हल्का कर दिया है। . . .

दूसरी उलझन जो मुझे चक्करमें डाल रही है, यह है कि अभीतक हमने सविनय अवज्ञा प्रारम्भ नहीं की है। अतएव हमें फिलहाल तो अंग्रेज अफसरोंके हुक्मोंको जरूर ही मानना चाहिए। खुद आपने भी उस हुक्मको नहीं तोड़ा है जिसमें आपको मलाबार जानेसे मना किया गया था। ऐसी अवस्थामें क्या मौलाना मुहम्मद अलीके लिए यह वाजिब था कि कराचीके मजिस्ट्रेट द्वारा उनसे बैठ जानेको कहा गया तो उन्होंने उसकी आज्ञा माननेसे इनकार कर दिया और नाराज भी हुए। क्या यह मजिस्ट्रेटके हुक्मका जाहिरा तौरपर भंग करना नहीं था? क्या मौलाना मुहम्मद अलीका मजिस्ट्रेटसे यह पूछना कि "आप

> खुदाको तसलीम करते हैं या नहीं?" और जब उनसे बैठ जानेके लिए कहा गया तब बैठनेसे इनकार करना और यह कहना कि "देखूँ तो आप क्या कर सकते हैं," क्या उनके लिए ठीक था?
>
> मेरे खयालमें तो सविनय अवज्ञा शुरू कर देनेपर भी हम सबको नम्रताके साथ ही पेश आना चाहिए। असहयोगीको तो नम्रताकी मूर्ति होना चाहिए। उसको तो कैसी भी उत्तेजनात्मक स्थितिमें आपेसे बाहर न होना चाहिए और न किसी तरहका बल-प्रयोग ही करना चाहिए। गुस्ताखी तो उसे छू तक न जानी चाहिए। अगर मेरा यह कहना सही हो तो अली-भाइयोंका यह काम सर्वथा गैर वाजिब था बल्कि खासा गुस्ताखी-भरा माना जा सकता है। गुस्ताखी शब्दके प्रयोगके लिए क्षमा चाहता हूँ।
>
> मेरी समझमें तो अगर अली-भाई किसी भी तरहसे अदालतको मदद पहुँचानेके या हाकिमोंके साथ जहालतका बरताव करनेके बजाय, अदालतमें चुपचाप ही रहते तो यह उन जैसे नेताके लायक, बहुत ही बेहतर और बहुत ही दूरन्देशीका काम होता।
>
> मुझे डर है कि इस आखिरी बातसे शायद आप नाराज हो जायें। अगर ऐसा हो तो मैं आपसे माफीकी दरख्वास्त करता हूँ। मुझसे तो यह बात कहे बिना रहा ही नहीं गया। मैं जानता हूँ कि आप किसी-न-किसी तरह अली-भाइयोंके इस कामको भी सही ठहरायेंगे, परन्तु यह नहीं जानता कि किस तरह।

यह पत्र दिल खोलकर लिखा गया है। लेकिन इसमें पत्र-लेखकका हेतु अच्छा ही है। कितने ही मित्रोंने मुझसे ये ही सवाल किये हैं, और मैंने अपनी शक्ति-भर उनके समाधानका प्रयत्न किया है। लेकिन इस पूर्वोक्त पत्रपर सार्वजनिक रीतिसे विचार करनेकी जरूरत है। यदि अलीभाइयोंका आचरण असंगत है तो इसका कारण है अखिल भारतीय कांग्रेस समिति, जिसने कि बयान पेश करनेकी अनुमति दी है। कोई चाहे तो समितिके इस निर्णयके सही या गलत होनेके बारेमें सवाल कर सकता है, परन्तु वह अली-भाइयोंपर असंगतिका दोषारोपण नहीं कर सकता।

महासमितिने अपना यह निर्णय मेरी सलाहपर किया और मैंने ऐसी सलाह क्यों दी, इसके कारण जनताको बता देना शायद मेरा कर्त्तव्य है। बयान पेश करनेसे मुल्जिम-को अपनी स्थिति स्पष्ट करनेका अवसर मिलता है और यदि वह अदालतमें दिया जाता है तो वह हमेशाके लिए रेकार्डमें शामिल हो जाता है। इसके सिवा मुझे इस बातपर विश्वास है कि भारतवर्ष इसी साल स्वराज्य प्राप्त करनेकी सामर्थ्य रखता है। स्वराज्यकी स्थापना होनेके पहले मैं लाखों लोगोंके जेलमें दाखिल होनेकी उम्मीद करता हूँ। मैं स्वराज्यके बाद गठित पार्लियामेंटसे उन तमाम असहयोगी कैदियोंकी रिहाईकी अपेक्षा रखता हूँ, जिनपर कोई नैतिक अपराध करनेका आरोप साबित नहीं हुआ होगा। स्वराज्यके पश्चात् न्यायाधीशोंको ये बयान बड़ी कीमती मदद देंगे। फिर, मैं यह भी चाहता हूँ कि अपराधी लोग असहयोगसे अनुचित लाभ न उठा सकें और

ऐसा न हो कि बयान न पेश करके जनताको इस भ्रममें डाल दें कि वे निर्दोष हैं। इस कसौटीपर वही बयान खरा उतर सकता है जो छोटा और विषयसे पूरी तरह सम्बद्ध हो, और जिसमें कोई दलील न दी गई हो।

मौलाना मुहम्मदअलीका बयान इस श्रेणीमें नहीं आता। वे तो इस्लामके विधान-की लम्बी-चौड़ी व्याख्यामें लग गये। उन्होंने स्पष्टतः अपनी सफाईके लिए अदालतका "उपयोग" नहीं किया; बल्कि अपने स्वीकृत कार्यका प्रचार करनेके लिए किया। लोगोंने उनके बयानको बड़े चावके साथ पढ़ा है। उन्होंने उसे यदि निबन्धके रूपमें लिखा होता तो उसका असर मारा जाता। इसलिए मैं न तो उस बयानके पक्षमें कुछ कहनेके लिए तैयार हूँ और न विपक्षमें।

हाँ, वह छोटा तो जरूर ही किया जा सकता था। लेकिन संक्षेपमें कुछ कहना मौलाना मुहम्मद अलीके लिए नामुमकिन-सा हो गया है। मैं जानता हूँ उन्होंने थोड़ेमें व्याख्यान देनेका वादा करके भी एक-एक घंटातक लगाया है।

दूसरा आरोप ज्यादा गम्भीर है। बैठनेसे इनकार करनेके मामलेमें सविनय या विनयहीन अवज्ञा करनेका कोई सवाल नहीं था। वह तो सिर्फ रुचिका सवाल था। यह सब दृश्य मुझे तो पसन्द नहीं आया। बेशक, उसमें कोई गुस्ताखीकी बात नहीं थी, लेकिन एक गैर-जरूरी जिद्द जरूर थी। मैं मानता हूँ कि असहयोगीको बिलकुल नम्र होना चाहिए, और उन कैदियोंका व्यवहार नम्रताकी सीमाके बाहर था।

लेकिन फिर भी मैं उन कैदियोंके व्यवहारकी निन्दा करनेमें असमर्थ हूँ। उन्होंने इसके द्वारा एक प्रयोजनकी पूर्ति की है और वह कोई बुरा प्रयोजन नहीं है। हमें बहुत भयभीत करके रखा गया है। अदालतोंके आसपास देखिए तो एक खास भय और भीतिका वायुमण्डल फैला रहता है। कानून और अदालतोंके प्रति आदर एक चीज है और उनका डर दूसरी चीज। मेरी रायमें तो अली-भाई और उनके साथी कैदी शरारतपर तुले हुए थे। वे अदालतकी और कैदखानेकी दहशतको मिटा देना चाहते थे। इसलिए उन्होंने समझ-बूझकर अदालतको इस तरह ललकारा। अगर मजिस्ट्रेटने स्थितिके इस विनोदात्मक रंगको समझ लिया होता तो अली-भाइयोंने वैसा दुराग्रह नहीं किया होता जैसा वे कर रहे थे। अदालत अपनी शानपर कायम रहना चाहती थी। लेकिन अली-भाई उसे वैसा करने देना नहीं चाहते थे। मैं इनकार नहीं कर सकता कि इसका इससे अच्छा रास्ता भी था, फिर भी मेरा यह निश्चित मत है कि अली-भाइयोंने अपने अक्खड़ आचरण द्वारा हमारे उद्देश्यकी सेवा ही की है। अगर वे नम्रता-धारण कर लेते तो उद्देश्यको हानि पहुँचाते। उन्होंने इस बार भी अपनी सच्चाई और स्वाभाविकता सिद्ध कर दिखाई है। और यही मेरी दृष्टिमें उनके चरित्रका अत्यन्त प्रिय और प्रधान अंग है। हमको याद रखना चाहिए कि हमको इन आजकी अदालतोंकी प्रतिष्ठा समाप्त करनी है; क्योंकि ये हमारे मतमें प्रतिष्ठाके लायक नहीं हैं। लेकिन एक ओर जहाँ मैं अली-भाइयोंके अक्खड़ व्यवहारको बुरा नहीं बता सकता वहाँ दूसरी ओर, मैं उसे ऐसे नमूनेके तौरपर भी पेश नहीं करता, जिसका अनुसरण दूसरे लोग करें। जो ऐसा करनेका प्रयत्न करेंगे वे असफल हुए बिना न रहेंगे। क्योंकि मुझे पाठकोंको यह बता देना चाहिए कि अली-भाइयोंके दिलमें मजिस्ट्रेटके प्रति दुर्भाव नहीं

है, और मुझे इसमें कोई शक नहीं है कि जब मजिस्ट्रेट अदालतके बाहर हों तब उनसे वे उसी शिष्टतासे पेश आयेंगे जिससे वे मेरे साथ आते हैं।

एक प्रत्यक्षदर्शी

नीचे एक पत्र दिया जाता है, जिसमें उसके लेखकने उस दृश्यका अपनी आँखों देखा हाल लिखा है। उससे पाठक वहाँकी स्थितिका शायद और अच्छा अन्दाजा कर सकेंगे। पत्र इस प्रकार है:

> अखबारोंमें आपने इस मुकदमेकी कार्रवाई पढ़ी ही होगी। लेकिन इस मामलेकी कार्रवाईके मूक प्रेक्षकपर उसकी कैसी छाप पड़ी, यह बता देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। आरम्भमें ही "वीर" मुल्जिमको झिड़क देनेकी कोशिश की गई, लेकिन उस अभागे मजिस्ट्रेटका पाला किसी ऐसे-वैसेसे नहीं, मौलाना मुहम्मद अलीसे पड़ा था। और उस भले आदमीको उसके "योग्य" ही "डाँट-डपट" मिल गई।
>
> मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरी जिन्दगीमें यह दूसरा मौका था, जब मैं किसी अदालतमें किसी मुकदमेकी पेशी देखनेके लिए गया। . . . जहाँ कानून और व्यवस्थाका शासन है, उस देशमें लॉर्ड रीडिंगके[1] राज्यका यह तथाकथित न्यायालय एक नाटकगृहसे बेहतर नहीं था।
>
> नहीं, मैं गलती कर रहा हूँ। नाट्यशालामें तो नट अपना-अपना काम ईमानदारीके साथ करके अपने दर्शकोंको, जो अपने मनबहलावके लिए रुपया देकर वहाँ जाते हैं, खुश करते हैं, लेकिन अंग्रेजी अदालतका "न्यायाधीश", फिर चाहे वह गोरा हो या काला, प्रामाणिकतासे कोसों दूर रहता है और मुझे विश्वास है कि न्याय शब्द तो उसके कोशमें रहता ही नहीं।
>
> मैं वकील नहीं हूँ। इसलिए मैं कानूनी बेकायदगियोंको नहीं जान पाया; पर अगर सामान्य बुद्धिसे कानूनका कुछ भी सम्बन्ध है तो मैं साहसके साथ कह सकता हूँ कि उस दिन खालिकदीन हालमें जो कुछ भी हुआ वह एक खासा तमाशा था। . . .
>
> गवाहोंके बयान और साजिशको साबित करनेका तरीका बड़ा मजेदार था; और मुकदमेके अन्तमें निष्कर्ष रूपमें सरकारी वकीलने जो तकरीर की, उसके बारेमें तो कुछ कहना ही बेकार है।
>
> मैं खुद तो इसी नतीजेपर आ पहुँचा हूँ कि इन अदालतोंमें बयान पेश करना भी अरण्यरोदनके समान है। हाँ, अगर वह अपने देश-भाइयोंके प्रति आखिरी अपीलके रूपमें हो, और उससे प्रचारका उद्देश्य सिद्ध होता हो तो बात और है।

१. भारतके वाइसराय और गवर्नर-जनरल, १९२१-२६।

विपरीत दृश्य

बुलन्दशहरसे प्राप्त एक पत्र यहाँ दे रहा हूँ। उससे मेरा अभिप्राय और भी अधिक स्पष्ट हो जायेगा। पत्र इस प्रकार है:

> इसी ३ तारीखको यहाँके जिला मजिस्ट्रेटके इजलासमें एक राजनैतिक मुकदमा पेश हुआ। उसके सिलसिलेमें मजिस्ट्रेटकी बेजा कार्रवाइयोंकी तरफ आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ।
>
> यह मुकदमा जिला मजिस्ट्रेट मिस्टर डॉब्सके इजलासमें, महाशय महावीर-प्रसाद त्यागीका था[1] . . . जब गवाहकी जिरह-खास खतम हुई, तब अदालतने मुल्जिमसे पूछा कि क्या आप गवाहसे जिरह करना चाहते हैं? मुल्जिमने जवाब दिया — नहीं। उन्होंने कहा, आप सिर्फ इतना ही लिखा लीजिए कि अंग्रेजी अनुवाद[2] मूलसे नहीं मिलता है, जैसा कि सरकारी वकीलने अदालतके सामने साफ-साफ कबूल किया है।. . . मजिस्ट्रेटने यह बात लिख लेनेसे इनकार किया और कहा — "आप बेहूदा बातें कहते हैं।" इसपर मुल्जिमको बुरा लगा और उसने उलटकर कहा — "मैं तो समझता हूँ, आप ही बेहूदा बात कह रहे हैं।" तब मजिस्ट्रेटने काँस्टेबल नं० ५५ बलवन्तसिंहसे, जो कि मुल्जिमपर तैनात था, कहा कि इसे तमाचा लगाओ। सिपाही झिझका और उसने बड़ी ही अनिच्छाके साथ मुल्जिमकी गर्दनके पिछले हिस्सेपर धीरेसे एक थप्पड़ लगाया। यह देख कर मजिस्ट्रेटने फिर उसे आज्ञा दी कि मुँहपर एक जोरका तमाचा लगाओ। काँस्टेबल मजबूर हुआ। उसने वैसा ही किया। मुल्जिमने इस बेइज्जतीको चुपचाप बरदाश्त किया। उसकी ओरसे कोई वकील तो था ही नहीं और न उसने अपनी कोई सफाई पेश की . . . ।
>
> मजिस्ट्रेटकी इस ज्यादतीसे यहाँके लोगोंमें बड़ी उत्तेजना और रोष फैला हुआ है। . . . एक सार्वजनिक सभा की गई। . . . और उसमें उपयुक्त प्रस्ताव पास किये गये।

बुलन्दशहरकी आम सभाके प्रस्तावमें मुल्जिमको उसके आत्मसंयम, वीरता और मौन कष्ट सहनपर बधाइयाँ दी गई हैं। लेकिन मुझे बड़ा सन्देह है कि इन विशेषणोंका उपयोग समुचित रूपसे हुआ है या नहीं। मुल्जिमने विरोधस्वरूप एक भी शब्द क्यों नहीं कहा? इस तथाकथित मजिस्ट्रेटके इजलासमें अपना मुकदमा चलने देनेसे इनकार क्यों नहीं कर दिया? मजिस्ट्रेटने तो बिलकुल साफ-साफ जुर्म किया है और इसी तरह उस अनिच्छुक काँस्टेबलने भी गुनाह किया। क्या मुल्जिमने प्रेम और नम्रताके कारण अपना मुँह बन्द रखा? मौन या निष्क्रियताका उपयोग डर या डरसे भी किसी बुरी चीजपर परदा डालनेके लिए हरगिज न होना चाहिए। क्या अली-भाइयोंका

१. अ० भा० कांग्रेस कमेटीके सदस्य।

२. अपराधीके भाषणोंका।

बरताव अधिक पुरुषोचित और स्वाभाविक नहीं था? जहाँ बुलन्दशहरके जैसा मौका आता हो, वहाँ मनुष्यका अपना बल ही उसकी रक्षाका साधन हो सकता है। और मुझे इस बातमें कोई सन्देह नहीं है कि जब अली-भाइयोंने अदालतको ललकारा, तब उनकी नजरमें अपने देश-भाइयोंकी राजनैतिक निर्बलता ही थी।

अदालतोंमें हिन्दुस्तानी

डा० किचलू अंग्रेजीमें बोलनेसे इनकार करनेके लिए बधाईके पात्र हैं। कुछ विशेष अवसरोंको छोड़कर, अदालतोंमें हमें निश्चय ही अपनी मातृभाषामें शहादत देनेपर आग्रह रखना चाहिए। जब अंग्रेजीमें बोलना या बहस करना होता है, तो हममें से अच्छेसे-अच्छे लोगोंके लिए भी यह कठिनाईकी स्थिति होती है। और अगर सभी अपनी भाषा के अतिरिक्त और किसी भी भाषामें बोलनेसे इनकार कर दें, तो शीघ्र ही हमें अनुवादकोंसे छुट्टी मिल जाये और न्यायाधीशोंके लिए उस प्रान्तकी भाषा जानना जरूरी हो जाये, जिस प्रान्तमें वे नियुक्त किये जाते हैं। दुनियामें और कहीं भी ऐसा नहीं है कि न्यायाधीश उन लोगोंकी भाषासे अनभिज्ञ हों जिन्हें उन्हें न्याय देना है।

पतनका कारण

एक पत्रलेखक पूछते हैं, "क्या यह सच नहीं है कि हिन्दू राज्योंका पतन जनतामें बहुत अधिक आध्यात्मिकता आ जानेसे ही हुआ?" मैं नहीं समझता कि बात ऐसी है। सत्य तो यह है कि हिन्दुओंकी पराजय बराबर तभी हुई है जब उनमें आध्यात्मिकता अर्थात् नैतिक शक्तिका अभाव हो गया है। राजपूत लोग छोटी-छोटी बातोंके लिए आपसमें लड़ते रहे और इस तरह उन्होंने भारतको खो दिया। उनमें व्यक्तिगत शूरता तो थी, लेकिन उन दिनों सच्ची आध्यात्मिकताका उनमें बड़ा अभाव था। रावण क्यों पराजित हुआ, और रामको अगर आध्यात्मिकताका बल नहीं होता तो वे वानरोंकी सेना लेकर विजयी कैसे हो जाते? हम अकसर आध्यात्मिक ज्ञान और आध्यात्मिक सिद्धिको एक ही बात मान लेनेकी भूल कर बैठते हैं। धर्म-ग्रन्थोंका शाब्दिक ज्ञान और दार्शनिक वाद-विवाद कर सकनेकी योग्यताका मतलब आध्यात्मिक सिद्धि नहीं है। आध्यात्मिकता तो हृदयका शोधन और संस्कार है; वह एक अपरिमेय शक्ति है। निर्भयता आध्यात्मिकताकी सबसे पहली अपेक्षा है। जो कायर हैं, उनमें नैतिकता कभी आ ही नहीं सकती।

मूल कारण

वही पत्र-लेखक पूछते हैं: "क्या आप ऐसा नहीं समझते कि मौजूदा विदेशी सरकारकी सफलताका कारण उच्च वर्गीय लोगों द्वारा गरीबों, कमजोरों और तथा-कथित अस्पृश्योंका शोषण है?" हम जो अपने ही भाई-बन्धुओंका शोषण करते हैं, अवश्य यही इसका मूल कारण है। यह हमारे अध्यात्मकी राहसे भटक जानेकी निशानी है। हमने अपनी ही जातिके छठे हिस्सेका घोर शोषण किया है और धर्मके पवित्र नामपर उन्हें योजनापूर्वक पतितावस्थामें डाल दिया है। विदेशी शासनका अभिशाप और उसके साथ चलनेवाला शोषण हमारे इसी पापका अत्यन्त उपयुक्त दण्ड है। यही

कारण है कि मैंने अस्पृश्यता-निवारणको स्वराज्य-प्राप्तिकी एक अनिवार्य शर्तके रूपमें रखा है। हम तो खुद लोगोंको गुलाम बनाकर रख रहे हैं। फिर, अगर हम बिना किसी शर्तके अपने गुलामोंको नागरिकताके अधिकार देनेके लिए तैयार नहीं हैं तो हमें अपनी गुलामीपर नाराज होनेका कोई अधिकार नहीं है। पहले हम अपनी आँखसे तो अस्पृश्यता-रूपी टेंट दूर कर लें, फिर अपने शासकोंकी आँखकी फूली काटनेकी कोशिश करें।

स्त्रियोंके खिलाफ भी

श्रीमती सेनगुप्त एक सुसंस्कृत अंग्रेज महिला हैं, जो एक सुसंस्कृत बंगालीसे व्याही हुई हैं। जब श्री सेनगुप्त[1] जेलमें थे, श्रीमती सेनगुप्त चटगाँवमें कपड़ा-बाजारमें ग्राहकोंसे खादी खरीदने और विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करनेका अनुरोध करने गईं। सरकारकी दृष्टिमें यह किसी स्त्रीके लिए बहुत बड़ा अपराध था, और निदान उन्हें अपने इस कामसे बाज आनेका हुक्म देते हुए दफा १४४ के अधीन एक नोटिस मिल गया। कांग्रेस-के निर्देशके अनुसार उन्होंने वह हुक्म मान लिया है। मर्दोंके बारेमें चाहे जो कहा जाये, श्रीमती सेनगुप्तपर तो ऐसा कोई सन्देह नहीं हो सकता था कि वे फसाद खड़ा करना या किसीको डराना-धमकाना चाहती थीं। इसमें सन्देह नहीं कि ग्राहकोंके सामने उनकी उपस्थिति बड़ी प्रेरणाप्रद सिद्ध होती और उनके कारण वे शर्मके मारे विदेशी कपड़ेकी दुकानोंपर नहीं जा सकते थे। और यह बात मजिस्ट्रेटके दृष्टिकोणसे ठीक नहीं होती। इस तरह, यह आदेश स्वदेशीके प्रचारपर लगभग प्रतिबन्ध लगा देता है। लेकिन मुझे कोई आश्चर्य नहीं होगा, यदि यह सरकार, जो मुख्यतः विदेशी कपड़ेके व्यापारकी सुरक्षाके लिए ही शासन करती है, विदेशी कपड़ेका बहिष्कार होते ही समाप्त हो जाये। सच्ची स्वदेशीकी प्रगतिके साथ-साथ सरकार अपना आपा तो अधिकाधिक खोती ही जायेगी।

चटगाँवकी प्रतिध्वनि गौहाटीमें

जो-कुछ चटगाँवमें हुआ है, उसीकी नकल गौहाटीमें भी की गई है। वहाँ दशहरे-की छुट्टियोंके अवसरपर कार्यकर्त्ताओंको ग्राहकोंसे विदेशी कपड़े न खरीदनेका अनुरोध करनेकी मनाही कर दी गई है।

> **इस आदेशमें गौहाटी नगरपालिकाकी हदमें रहनेवाले सभी लोगोंको ताकीद की गई है कि वे खरीद-फरोख्तमें लगे किसी भी व्यक्तिको धमकियाँ देकर, या चीख-चिल्लाकर या इशारेसे या जोर-जबरन न तो डरायें और न परेशान ही करें, उक्त उद्देश्योंसे सार्वजनिक सड़कों या दुकानों अथवा बाजारोंके इर्दगिर्द चक्कर न लगायें; या ऐसा कोई अन्य कार्य भी न करें जिससे कानूनी तौरपर अपना कामकाज कर रहे लोगोंको परेशानी हो या सार्वजनिक शान्तिमें बाधा पड़े।**

१. यतीन्द्रमोहन सेनगुप्त, कांग्रेसी नेता और बंगालके एक प्रमुख बैरिस्टर।

श्री बारदोलोई जिन्होंने उक्त आदेशका पाठ तार द्वारा सूचित किया है, आगे कहते हैं कि "यह और कुछ नहीं, शान्तिपूर्वक धरना देनेवालोंको वैसा करनेसे रोकनेकी ही एक तरकीब है।

उपाय

मैं तो कार्यकर्त्ताओंको यही सलाह दूँगा कि जबतक बहुत जरूरी न हो आये, तबतक वे कपड़ेकी दुकानोंपर धरना न दें। लेकिन जब ऐसी जरूरत आ पड़े तब कांग्रेसकी कार्यसमितिके निर्देशके अनुसार लोगोंको यह छूट है कि वे चटगाँव और गौहाटीके जैसे आदेशोंकी अवहेलना कर सकते हैं, और निर्भीक होकर धरना देते हुए खुशी-खुशी जेल जा सकते हैं। अगर हम स्वदेशीके लिए जेलोंको भर देते हैं, तो जेल दरअसल महल बन जायेंगे, क्योंकि स्वदेशी हमारे राष्ट्रीय जीवनके लिए प्राण-वायुके समान है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-१०-१९२१

१२६. महान् प्रहरी

शान्तिनिकेतनके गायकने 'मॉडर्न रिव्यू' में वर्तमान आन्दोलनपर एक बड़ा सुन्दर लेख[1] लिखा है। वास्तवमें यह शब्द-चित्रोंकी एक आकर्षक मालिका है, जिसे केवल वे ही गूंथ सकते थे। इसमें आप्तत्वके खिलाफ, मानसिक दासताके खिलाफ — अर्थात् भय या आशासे किसीकी सनकका आँख मूँदकर अनुकरण करनेको जिस नामसे भी पुकारा जाये, उसके खिलाफ — एक जोरदार आवाज उठाई गई है। वह हम सभी कार्यकर्त्ताओंको इस बातकी याद दिलाता है कि हमें धीरज नहीं खोना चाहिए, किसी पर जबरदस्ती किसीका मत लादना नहीं चाहिए, चाहे वह मत कितने ही बड़े आदमी-का क्यों न हो। इस रूपमें यह लेख कल्याणकर तथा स्वागत करने लायक है। कविवर हमसे कहते हैं कि जो चीज बुद्धि या हृदयको ठीक नहीं लगे, उसे तुरन्त अस्वीकार कर देना चाहिए। अगर हम स्वराज्य पाना चाहते हैं तो हमें हर हालतमें सत्यके उस रूपपर दृढ़ रहना चाहिए जिस रूपमें हम उसे जानते हैं। जो सुधारक इस बातपर नाराज हो जाता है कि उसके सन्देशको लोग स्वीकार नहीं कर रहे हैं, उसे तो पहले जंगलोंमें जाकर जीवन-प्रवाहको तटस्थ बुद्धिसे देखना, प्रतीक्षा करना और भगवान्का भजन करते हुए धीरज रखना सीखना चाहिए। इन सारी बातोंसे सभी हार्दिक रूपसे सहमत होंगे, और सत्य तथा विवेकके पक्षमें अपनी आवाज उठानेके लिए कविवर अपने देशभाइयोंके धन्यवादके पात्र हैं। अगर हम अपने विवेकको दूसरेके हवाले कर देते हैं तो इसमें कोई शक नहीं कि हमारी परवर्ती स्थिति पूर्ववर्ती स्थितिसे भी बुरी

१. अक्तूबरके अंकमें "सत्यकी पुकार" ("कॉल ऑफ ट्रुथ") शीर्षकसे।

होगी। और यह देखकर मुझे बड़ा दुःख होगा कि देशने बिना सोचे-विचारे आँख मूँदकर, मैंने जो-कुछ कहा या किया, उसका अनुसरण किया। मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि प्रेमके आगे आँख मूँदकर आत्म-समर्पण कर देना अक्सर अत्याचारीके अत्याचारको लाचार होकर स्वीकार करनेसे भी अधिक अनिष्टकर सिद्ध होता है। जो अत्याचारीका गुलाम है, उसकी मुक्तिकी आशा तो फिर भी है, किन्तु प्रेमके गुलामके लिए कोई आशा नहीं है। प्रेमकी उपयोगिता दुर्बलोंमें बलका संचार करनेमें है और उस दृष्टिसे वह जरूरी है, लेकिन जब प्रेमके कारण किसी बातमें विश्वास न करनेवाला व्यक्ति भी उसको मानने लगता है तो प्रेम अत्याचार हो जाता है। किसी मन्त्रका महत्व जाने बिना उसका जप करना पुरुषोचित नहीं कहा जा सकता। इसलिए कविवरने, जो लोग चरखेकी पुकारपर बिना सोचे-समझे अन्ध-भावसे चल रहे हैं, उन सबसे विद्रोह करनेको कहकर ठीक ही किया है। हममें से जो लोग अधीर होकर अपनेसे भिन्न मत रखनेवालोंके प्रति असहिष्णुता या यहाँतक कि हिंसासे भी काम लेते हैं, उन सबके लिए यह लेख एक चेतावनी है। मैं कविवरको एक प्रहरी मानता हूँ, जो हमें हठ-धर्मी, बौद्धिक आलस्य, असहिष्णुता, अज्ञान, जड़ता और इसी तरहके अन्य शत्रुओंके आगमनके खिलाफ आगाह कर रहा है।

कविवरने हमसे सचेत और सजग रहनेको कहा है; उन्होंने कहा है कि यदि ऐसा न हुआ तो हो सकता है, हम सही-गलतका विचार करना ही बन्द कर दें, और उनके कथनके इस अंशसे मैं सहमत हूँ। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि मैं उनकी इस धारणाको भी सही मानता हूँ कि देशमें बड़े पैमानेपर लोग आँख मूँदकर किसीकी बातपर चल रहे हैं। मैंने बार-बार लोगोंसे अपनी विवेक-बुद्धिसे काम लेनेको कहा है और मैं कविवरको भरोसा दिलाता हूँ कि आज अगर सौभाग्यसे यह देश चरखेको खुशहालीका स्रोत मानने लगा है तो उसने बहुत सोचने-विचारने और संकोच-विकोचके बाद ही ऐसा किया है। हाँ, यह मैं नहीं कह सकता कि भारतके शिक्षित लोग अब भी चरखेके सत्यको ग्रहण कर पाये हैं या नहीं। ऊपरके कूड़ा-करकटको देखकर कविवर ऐसा न मानें कि इसके भीतर भी यही है। उन्हें सचाईकी तहमें पैठकर स्वयं यह देखना चाहिए कि लोगोंने चरखेको अन्ध आस्थाके कारण स्वीकार किया है या इस कारण कि उनकी बुद्धिको यह चीज आवश्यक जान पड़ी।

मैं तो कविसे लेकर किंकरतक सभीसे यज्ञके रूपमें चरखा चलानेको कहता हूँ। जब युद्ध छिड़ जाता है तब कवि अपना गायन बन्द कर देता है, वकील अपनी कानूनकी पोथियाँ रख देता है, बालक अपनी पाठ्य पुस्तकें छोड़ देते हैं। कवि युद्धकी समाप्तिके बात सच्चा गीत गा सकता है, वकील भी जब आपसी झगड़ेके लिए लोगोंके पास समय होगा तब कानूनकी पोथियाँ पुनः हाथमें लेगा। जब किसी घरमें आग लगती है तब उसमें रहनेवाले सभी लोग बाहर आकर एक-एक डोल लेकर आग बुझानेमें जुट जाते हैं। जब मेरे आसपासके सभी लोग भोजनके अभावमें मर रहे हैं तब मेरा एकमात्र काम यही हो सकता है कि उन भूखोंके लिए दाने जुटानेकी कोशिश करूँ। मेरी यह पक्की मान्यता है कि भारत एक ऐसा घर है जिसमें आज आग लगी हुई है, क्योंकि इसे दिन-ब-दिन पुंसत्वहीन बनाया जा रहा है; यह भूखसे मर रहा है, क्योंकि

इसके पास काम नहीं है जिससे यह अपनी रोटी कमाये। खुलनाके लोग भूखों मर रहे हैं — इसलिए नहीं कि वे काम नहीं कर सकते, बल्कि इसलिए कि उनके पास काम नहीं है। रायलसीमाका इलाका लगातार चौथी बार अकालके दौरसे गुजर रहा है, उड़ीसा तो बहुत समयसे अकालसे पीड़ित है। भारत नगरोंमें नहीं रहता। वह तो अपने साढ़े सात लाख गाँवोंमें रहता है, और उसके नगर इन गाँवोंके बूते ही पलते हैं। उनके पास जो धन-ऐश्वर्य है उसे वे किसी दूसरे देशसे नहीं लाते। नगरवासी लोग यूरोप, अमेरिका और जापानकी बड़ी-बड़ी पेढ़ियोंके दलाल और कमिशन पानेवाले एजेंट हैं। पिछले दो सौ वर्षोंसे जो इस देशका खून चूसा जाता रहा है, उसमें इन नगरोंने इन विदेशी पेढ़ियोंके साथ सहयोग किया है। मैं अपने अनुभवके आधारपर ऐसा मानता हूँ कि भारत दिन-ब-दिन गरीब होता जा रहा है। उसके पाँवोंमें रक्तका संचार बन्द हो गया है, और अगर अब हम इसके उपचारकी ओर ध्यान नहीं देते तो वह गिर-कर दम तोड़ देगा।

भूखसे मरते बेकार लोगोंका परमेश्वर तो योग्य काम और उससे मिलनेवाली रोटी ही है; उनके लिए परमेश्वरका यही एक-मात्र स्वीकार्य रूप हो सकता है। ईश्वरने मानवकी सृष्टि काम करके अपना भोजन जुटानेके लिए की और कहा कि जो काम नहीं करते वे चोर हैं। भारतके अस्सी प्रतिशत लोगोंको लाचारीवश आधे सालतक चोरोंका जीवन बिताना पड़ता है। फिर क्या आश्चर्य, यदि भारत आज एक विशाल कारागार बन गया है? भूख ही वह कारण है जो भारतको चरखेकी ओर लिये जा रहा है। चरखेकी पुकार सबसे उदात्त, सबसे मीठी है। कारण, यह प्रेमकी पुकार है। और प्रेम ही स्वराज्य है। अगर यह कहा जा सकता हो कि आवश्यक शारीरिक श्रमसे बुद्धि मन्द पड़ जाती है तो ही यह कहा जा सकता है कि चरखा लोगोंकी "बुद्धिको मन्द" कर देगा। हमें उन करोड़ों लोगोंके बारेमें सोचना है, जो आज पशुओंसे भी गई-बीती स्थितिमें हैं, लगभग मरणासन्न हैं। चरखा जलकी वह घूँट है जो हमारे करोड़ों दम तोड़ते भाई-बहनोंमें पुनः प्राणका संचार कर देगा। कोई पूछ सकता है: "मुझे तो अपने भोजनके लिए काम करनेकी जरूरत नहीं है, इसलिए मैं क्यों चरखा चलाऊँ?" उत्तर है, इसलिए कि मैं जो खा रहा हूँ, वह सचमुच मेरा नहीं है। मैं अपने देशभाइयोंको लूट कर खा रहा हूँ। आप तनिक अपनी जेबमें आनेवाले पैसे-पैसेके बारेमें सोचकर देखें कि वह कैसे आपकी जेबमें आया; फिर आपको मेरी बातकी सचाईका एहसास हो जायेगा। अगर हमारे करोड़ों देशभाइयोंको अपने बेकार समयका उपयोग करना नहीं आता तो उनके लिए स्वराज्यका कोई मतलब नहीं है। इस स्वराज्यको थोड़े ही समयमें प्राप्त करना सम्भव है और इसका एकमात्र उपाय यह है कि हम फिरसे चरखेकी शरणमें जायें।

मैं विकास चाहता हूँ, आत्म-निर्णयका अधिकार चाहता हूँ, स्वतन्त्रता भी चाहता हूँ, लेकिन सब-कुछ आत्माकी खातिर चाहता हूँ। मुझे तो इसमें शक है कि मानव लौह युगमें प्रस्तर युगसे सचमुच आगे बढ़ा है। मैं इस ओरसे उदासीन हूँ। हमें अपनी बौद्धिक शक्ति और अन्य सभी शक्तियोंका उपयोग आत्माके विकासके लिए करना है। आधुनिक ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न किसी व्यक्तिके बारेमें मैं आसानीसे

ऐसा सोच सकता हूँ कि वह मानव-जातिके लिए कोई स्थायी और नया आविष्कार कर सकता है, परन्तु उससे भी ज्यादा आसानीसे मैं इस सम्भावनाकी कल्पना कर सकता हूँ कि जिस व्यक्तिके पास अपनी राहको प्रकाशित करने और अपनी तोड़ेदार बन्दूकमें चिनगारी लगानेके लिए लोहेके एक टुकड़े और एक चकमक पत्थरके अलावा और कुछ नहीं है, वह ईश्वरका नित नवीन गुण-गान करते हुए इस दुःख-सन्तप्त धरित्रीको शान्ति और सद्भावनाका सन्देश दे सकता है। लोगोंसे चरखा अपनानेके लिए कहनेका मतलब है श्रमकी गरिमा स्वीकार करनेको कहना।

मैं तो कहता हूँ कि चरखेको खोकर हमने अपना बायाँ फेफड़ा ही खो दिया। इसलिए हम आज [अपनी श्री-समृद्धिके] भयंकर क्षयसे पीड़ित हैं। चरखेको फिर से अपनानेसे इस भयंकर रोगकी बढ़ती रुक जायेगी। कुछ ऐसी चीजें हैं जो सभीको सर्वत्र करनी चाहिए। और कुछ ऐसी चीजें हैं जो सभीको कुछ खास क्षेत्रोंमें करनी चाहिए। चरखा एक ऐसी चीज है जिसकी शरणमें कमसे-कम इस संक्रान्ति कालमें तो भारतके सभी लोगोंको जाना चाहिए और एक बहुत बड़ी संख्याको उसे सदा अपनाये रहना चाहिए।

चरखेको उसके गौरवपूर्ण स्थानसे विदेशी वस्त्रोंके प्रति हमारे आकर्षणने ही च्युत किया। इसलिए मैं विदेशी वस्त्र पहनना पाप मानता हूँ। यहाँ मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मैं अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्रमें बहुत ज्यादा या तनिक-भी फर्क नहीं करता। जो अर्थ-व्यवस्था व्यक्ति या राष्ट्रकी नैतिकताको चोट पहुँचाती है, वह अनैतिक है और इसलिए पापपूर्ण है। इसलिए जो अर्थ-व्यवस्था एक देशको दूसरे देशको लूटनेकी छूट देती है वह अनैतिक है। जिनके श्रमका शोषण होता है, ऐसे मजदूरों द्वारा बनाई गई वस्तुओंको खरीदना या उनका उपयोग करना पाप है। अमेरिकाका गेहूँ खाना और अपने पड़ौसके अन्न-विक्रेताको ग्राहकोंके अभावमें भूखों मरने देना पाप है। इसी तरह जब मैं जानता हूँ कि अगर मैंने पड़ौसके सूत कातनेवालों और बुनकरों द्वारा तैयार किया गया कपड़ा पहना होता तो मैं अपना बदन भी ढँकता और उन्हें भी अपनी रोटी-कपड़ा कमानेकी सुविधा कर देता, तब वैसी हालतमें रीजेंट स्ट्रीटके सुन्दर और नये फैशनके कपड़े खरीदना मेरे लिए पाप है। अपने इस पापकी प्रतीति होते ही मेरा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि विदेशी वस्त्रोंको आगमें होमकर अपने-आपको पवित्र बना लूँ, और भविष्यमें अपने पड़ौसियों द्वारा बुनी खुरदरी खादीसे ही सन्तोष करूँ। अगर यह मालूम हो कि मेरे पड़ौसी तो बहुत पहले इस धन्धेको छोड़ चुके हैं, इसलिए वे फिरसे चरखेको नहीं अपना सकते, तो उस हालतमें मुझे स्वयं ही चरखा चलाना शुरू करके उसे लोक-प्रिय बनाना चाहिए।

मैं कविवरसे निवेदन करना चाहता हूँ कि मैं उन्हें वही कपड़े जलानेको कहता हूँ जो उन्हींके हों और सचमुच उन्हींके हैं भी। कारण, अगर वे उन कपड़ोंको गरीबों और अध-नंगे लोगोंके मानते तब तो उन्होंने उन्हें कबका उन गरीबोंके सुपुर्द कर दिया होता। अपने विदेशी कपड़ेको जलाकर मैं अपनी लज्जाके कारणको जलाता हूँ। जो लोग नंगे हैं, निर्वस्त्र हैं, उन्हें जरूरत तो कामकी है। अगर मैं उन्हें काम न देकर कपड़े देता हूँ जिनकी उन्हें जरूरत नहीं है तो यह उनका अपमान है। मैं उनका

कृपालु संरक्षक बननेका पाप कभी नहीं करूँगा। लेकिन यह समझमें आनेपर कि उन्हें गरीब बनानेमें मेरा भी हाथ रहा है, मैं उन्हें अपनी जूठन और अपने शरीर परसे उतारा हुआ कपड़ा नहीं, बल्कि उनका उचित और गौरवपूर्ण स्थान दूँगा; मेरे पास खाने और पहननेको जो सबसे अच्छा है, वह दूँगा, और उनके काममें स्वयं भी शरीक हो जाऊँगा।

और यह भी सही नहीं है कि असहयोग और स्वदेशीकी योजनाके पीछे दूसरोंके वर्जनकी भावना है। मैंने किसी ऊँचे मंचपर चढ़कर कभी यह घोषणा नहीं की कि असहयोग, अहिंसा और स्वदेशीका सन्देश अखिल विश्वके लिए है — इसका कारण मेरी विनयशीलता ही है। इसके सिवा, जिस भूमिपर यह सन्देश दिया गया है, उस भूमिपर अगर यह फलित नहीं होता है तो निश्चित है कि यह सन्देश बेकार है। इस समय तो भारतके पास, सिवा उसके पतन, गरीबी और कष्टके, दुनियाको देनेके लिए कुछ नहीं है। क्या हम दुनियामें उसके प्राचीन शास्त्रोंका प्रचार करें? उनके तो संस्करणपर-संस्करण प्रकाशित होकर पड़े हुए हैं, लेकिन यह दुनिया, जो अपने मत पर अन्धभक्ति रखनेवाली और पर-मतको सदा सन्देहकी दृष्टिसे देखनेवाली है, उनकी ओर ध्यान ही नहीं देती। कारण यह है कि हम, जो उन शास्त्रोंके विरासतदार और रक्षक हैं, उनके अनुसार आचरण ही नहीं करते। इसलिए दुनियाको कुछ देनेकी सोचनेसे पहले मैं स्वयं कुछ प्राप्त कर लूँ, किसी लायक तो बन जाऊँ। हमारा असहयोग न अंग्रेजोंके खिलाफ है, न पश्चिमी दुनियाके खिलाफ। हमारा असहयोग तो उस प्रणालीके खिलाफ है जो अंग्रेजोंने स्थापित की है, हमारा असहयोग इस भौतिकवादी सभ्यता और उसके साथ जुड़े लोभ-लालच तथा कमजोरोंके शोषणकी प्रवृत्तिके खिलाफ है। हमारे असहयोगका मतलब है, हमारा लौटकर अपने घर आ जाना। हमारे असहयोगका मतलब है अंग्रेज शासकोंके साथ उनकी ही शर्तोंपर सहयोग करनेसे इनकार करना। हम उनसे कहते हैं, "आप आइए, और हमारी शर्तोंपर हमसे सहयोग कीजिए। यह हम सबके लिए कल्याणकारी होगा, आपके लिए कल्याणकारी होगा और दुनियाके लिए भी।" हमें अपने पैर दृढ़तासे अपनी मिट्टीपर जमाये रखने चाहिए। जो खुद डूब रहा हो, वह दूसरोंको क्या बचायेगा? दूसरोंको बचानेकी सामर्थ्य प्राप्त करनेके लिए पहले हमें अपने-आपको बचानेका प्रयत्न करना चाहिए। भारतीय राष्ट्रवाद कोई वर्जनशील, आक्रामक या ध्वंसात्मक प्रवृत्ति नहीं है। यह स्वास्थ्यकर, धार्मिक और इसलिए मानवतावादी है। भारतको मानवताके लिए मर मिटनेकी सोचनेसे पहले स्वयं जीना सीखना चाहिए। जो चूहे असहाय अवस्थामें किसी बिल्लीके दाँतोंके बीच पड़े हुए हों, उनकी इस लाचारीके बलिदानका क्या मोल?

कवि-सुलभ प्रवृत्तिके अनुसार ही कविवर कलके लिए, सुन्दर भविष्यके लिए जी रहे हैं, और वे चाहते हैं कि हम भी कलके लिए ही जियें। वे हमारी चमत्कृत आँखोंके सामने एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हैं — उषःकालमें पंछी अपने बसेरोंसे निकलकर आकाशमें ईश्वरका गुणगान करते हुए उड़े चले जा रहे हैं। वे भूल जाते हैं कि इन पंछियोंको उस रातसे पहलेके दिनमें पूरा आहार मिला था और जब ये प्रातःकाल आकाशमें उड़ चले तब इनके डैने काफी विश्राम पा चुके थे, और उनकी नसोंमें

पिछली रात नये रक्तका संचार होता रहा था। लेकिन मैंने तो शोक-विह्वल मनसे ऐसे पंछी भी देखे हैं जो शक्तिके अभावमें लाख प्रोत्साहन और हिम्मत देनेपर भी अपने डैने फड़फड़ा तक नहीं पाये। भारतीय आकाशके तले रहनेवाले मानव-पंछीको रातमें नींद नहीं आती, वह सोनेका महज बहाना करता है और प्रातःकाल जब वह उठता है, तब वह पिछले दिनसे भी ज्यादा कमजोर उठता है। यहाँ करोड़ों लोगोंका जीवन सतत जागरण और चिन्ताका या सतत संज्ञा-शून्यताका जीवन है। यह एक ऐसी दुःखद स्थिति है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, और उसका एहसास किसीको तभी हो सकता है जब कोई स्वयं उस स्थितिको भोगकर देखे। मैंने तो किसी रुग्ण व्यक्तिकी पीड़ाको कबीरका कोई भजन सुनाकर दूर कर पाना असम्भव ही पाया है। करोड़ों भूखे लोग आज एक ही कविताकी माँग कर रहे हैं — भूख मिटानेवाली भोजनरूपी कविताकी। लेकिन वह उन्हें कोई नहीं दे पा रहा है। उन्हें अपना भोजन स्वयं प्राप्त करना है; और वे प्राप्त कर सकते हैं सिर्फ अपने भालसे पसीना बहाकर।[1]

इन श्लोकोंमें मेरे लेखे चरखेका समस्त साहित्य निहित है — उस चरखेका, जिसे चलाना मैं आजके भारतके लिए एक अनिवार्य यज्ञ मानता हूँ। अगर हम अपना वर्तमान ठीक कर लेते हैं, तो हमारे भविष्यकी चिन्ता भगवान करेगा ही।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३–१०–१९२१

१. इसके बाद **भगवद्गीता**के तीसरे अध्यायके निम्नलिखित ८–१६ श्लोक दिये गये हैं :

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्राऽपि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥ ८॥
यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर॥ ९॥
सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥ १०॥
देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥ ११॥
इष्टान् भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥ १२॥
यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ १३॥
अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥ १४॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥ १५॥
एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥ १६॥

१२७. बम्बई क्या करेगा ?

३१ जुलाईको, बम्बईमें मैंने विदेशी कपड़ेकी पहली होली जलाई थी। उतनी ही बड़ी दूसरी होली पिछले रविवारको जलाई गई। ३१ जुलाईको भी रविवार था।

बम्बईने ही अपनी उदारता दिखाकर भारतकी लाज रखी और तिलक स्मारक कोष पूरा किया। स्वदेशीकी नींव बम्बईने ही डाली। बम्बईमें ही चौपाटीपर सबसे पहले सत्याग्रहकी विशाल सभामें स्वदेशी और हिन्दुओं तथा मुसलमानोंकी मैत्रीका निश्चय किया गया।

बम्बईमें हिन्दू हैं, मुसलमान हैं और बम्बई पारसी वीरोंका केन्द्र है। बम्बईमें स्वभावके गम्भीर गुजराती हैं। बम्बईमें पहाड़ोंमें पले-पुसे वीर मराठे हैं। बम्बईमें मेमन, भाटिया, पारसी और सिन्धी व्यापारी वीर हैं। बम्बईके लोग साहसी हैं। वे एक घड़ीमें धन कमाते हैं और एक घड़ीमें ही उसे गँवा देते हैं और उसका उनको कोई खयाल भी नहीं होता।

अगर बम्बई निश्चय कर ले तो उसमें स्वराज्य लेनेकी शक्ति कुछ कम नहीं है।

स्वदेशीमें स्वराज्य है, यह बात तो अब सर्वमान्य है।

स्वदेशी आन्दोलनमें सफलता प्राप्त करनेके लिए हमें व्यापारियों और स्त्रियोंकी सहायताकी आवश्यकता है।

स्वराज्यके आन्दोलनमें जितना रस बम्बईके व्यापारियोंने लिया है उतना भारतके दूसरे भागोंके व्यापारियोंने नहीं लिया है। क्या वे अपने स्वार्थका त्याग करके सहायता देंगे ? यदि सोचें तो इसमें त्याग भी कुछ नहीं करना है, क्योंकि उन्होंने विदेशी मालसे ही लाभ कमाया है और उन्हें इस लाभको कमानेका कोई हक नहीं था। उससे तो देशको असीम हानि हुई है। भारतको विदेशी कपड़ेके व्यापारसे जितना नुकसान पहुँचा है उतना किसी दूसरी चीज़से नहीं पहुँचा। इसलिए यदि विदेशी कपड़ेके व्यापारी अब समझ जायें तो वे पाप-मुक्त हो सकते हैं, शुद्ध हो सकते हैं। क्या वे रुपयेका लालच छोड़ेंगे ?

और उन्हें यह लालच क्यों नहीं छोड़ना चाहिए ? जापानमें तभी जागृति हुई जब जापानके धनिकोंने अपने धनका और उस धनसे प्राप्त प्रतिष्ठाका त्याग किया। हमें लड़ना तभी आ सकता है जब हम पहले त्याग करें। जो लोग लड़ते हैं वे पहले अपनी धन-सम्पत्तिका त्याग करते हैं। तभी वे लड़ना सीख पाते हैं। शस्त्र-बल दिखाना हो अथवा आत्मबल, दोनोंके लिए ही पहले धनका त्याग करना होता है।

किन्तु इस आन्दोलनमें तो इतना त्याग भी नहीं करना है। जो काम विचारपूर्वक किया जाता है उसमें त्याग सदा कमसे-कम करना होता है। यदि व्यापारी ज्ञानपूर्वक विदेशी कपड़ेका व्यापार छोड़ें तो वे खादीका व्यापार आरम्भ कर सकते हैं और ईमानदारीसे अपनी आजीविका कमा सकते हैं। आखिर किसीको इतनी बड़ी पूंजीका व्यापार करना ही है जितनी पूंजीसे सालमें ६० करोड़ रुपयेका मुनाफा मिल जाये।

६० करोड़ रुपयेका मुनाफा कमानेके लिए कितने व्यापारियों और कितने सहायकोंकी आवश्यकता होगी ?

किन्तु एक बातकी जरूरत अवश्य है। ये व्यापारी विचारशील होने चाहिए। जो आलसी व्यापारी दूसरोंकी नकल ही करते हैं, सट्टा खेलते हैं, और बापसे मिले धन्धेसे, बिना किसी प्रयत्नके, धन कमाते हैं वे इसमें कमाई नहीं कर सकते। इसमें तो वे ही कमाई कर सकते हैं जो अपना आलस छोड़ें। आलसी आदमी कभी वीर नहीं हो सकता। आलसीको कभी स्वराज्य नहीं मिल सकता। स्वराज्य और सुस्ती दोनोंमें बैर है।

बम्बईमें जैसे व्यापारी जागृत हैं वैसे ही स्त्रियाँ भी। बम्बईकी स्त्रियोंके बराबर प्रगतिशील स्त्रियाँ दूसरी जगह कहाँ हैं? और स्त्रियोंकी सहायताके बिना स्वदेशी आन्दोलन नहीं चल सकता, इसलिए उनकी सहायताके बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता। हम स्त्रियोंकी सहायता शोभा बढ़ानेके लिए नहीं माँगते, हम स्त्रियोंको भाषण देनेके लिए नहीं बुलाते। भारत आज स्त्रियोंसे यही भिक्षा माँगता है कि वे शुद्ध रहें, सादगी बरतें और परिश्रम करें। स्त्रियोंमें ज्ञान और देश-भक्ति होनी चाहिए। यदि स्त्रियाँ विदेशी कपड़ेका मोह न छोड़ें और भड़कीले रंगकी विदेशी साड़ियों, साटनों और मलमलके लिए जिद करें तो बेचारे पुरुष क्या करेंगे ?

क्या स्त्रियोंसे बलात् स्वदेशी व्रतका पालन कराया जा सकता है? यदि स्त्रियों-पर बल-प्रयोग करके उनसे स्वदेशी व्रतका पालन कराना हो तो मैं चाहता हूँ कि वे विदेशी कपड़ा ही पहनें। स्वराज्य स्त्रियोंके जागरण और स्वेच्छापूर्वक किये हुए त्याग-पर निर्भर है। यदि स्त्रियाँ विदेशी कपड़ेको छोड़ेंगी तो वे धर्म समझकर ही छोड़ेंगी। यदि मुसलमान बहनें खिलाफतका रहस्य समझेंगी, हिन्दू बहनें गो-रक्षाके प्रश्नको समझेंगी और सभी बहनें अपने गरीब पड़ोसियोंकी गरीबी दूर करना अपना धर्म मानेंगी अर्थात् यदि भारतकी स्त्रियाँ विदेशी कपड़ा पहनना अपना अधर्म समझेंगी, खादी पहनना और नित्य चरखा चलाना धर्म मानेंगी तो देशमें स्वदेशीका प्रचार आँधीकी तरह तेजीसे होगा। इस कामको बम्बईकी बहनें कर सकती हैं।

इसी तरह बम्बईमें पुरुषोंको भी अपना बारीक कपड़ेका शौक छोड़ना चाहिए। उन्हें चरखा हाथमें लेना चाहिए। जब वे ऐसा करेंगे तभी स्वदेशी आन्दोलन आगे बढ़ेगा।

यदि समस्त भारत स्वदेशी आन्दोलनको भली-भाँति समझ ले तो हम सविनय अवज्ञा या अहिंसात्मक विद्रोह किये बिना ही स्वराज्य ले सकते हैं, ऐसा मेरा विश्वास है। किन्तु सम्भव है कि ऐसा सुयोग न मिले और भारतके हजारों लोगोंको जेल जाना पड़े और अपने प्राण भी देने पड़ें। यदि केवल किसी एक प्रान्तमें स्वदेशीका पूरा प्रचार हो जाये तो उसका असर इतना नहीं हो सकता कि उससे स्वराज्यकी स्थापना हो जाये। परन्तु यदि एक प्रान्त या एक जिला इसके लिए तैयार हो जाये तो उसे विद्रोह करनेका अधिकार क्यों न मिलेगा? और उसकी शक्तिसे भारत स्वतन्त्र क्यों नहीं होगा? मेरा तो विश्वास है कि उसकी शक्तिसे सारा भारत स्वतन्त्र हो सकता है। क्या बम्बई इस तरह पहल करनेके लिए तैयार हो सकता है?

इसका उत्तर बम्बई ही दे सकता है। जो स्वदेशीका पूरा पालन नहीं करता है उसे विद्रोह करनेका अधिकार नहीं है, क्योंकि वह अपने क्रोधको नहीं रोक सकेगा और नाजुक वक्त आनेपर शान्ति कायम नहीं रख सकेगा। और यदि शान्ति कायम नहीं रहेगी तो जीतनेका मौका आनेपर भी हम बाजी हार जायेंगे। हमसे ऐसी भूल नहीं होनी चाहिए।

बम्बईने शान्तिका पाठ समझ लिया है, बम्बईमें गम्भीरता आ गई है, बम्बई संकल्पका धनी है, बम्बईके हिन्दू-मुसलमान और पारसी एक मन और एक दिल हो गये हैं — इन सबकी निशानी चरखा है, इसकी निशानी पींजन है, इसकी निशानी करघा और खादी है। यदि बम्बईके नागरिक — स्त्री-पुरुष और बालक हजारोंकी संख्यामें पींजें, कातें, बुनें और खादी पहनें तो वे अवश्य ही शान्ति-युद्धके योग्य हो सकते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं है कि हर स्त्री और पुरुष कातने लग जायेगा अथवा खादी पहनने लग जायेगा। सम्भवतः अंग्रेज खादी नहीं पहनेंगे, सहयोगी लोग भी शायद खादी नहीं पहनेंगे और सरकारी नौकर भी इतनी हिम्मत नहीं करेंगे। इसलिए विदेशी कपड़ेकी एक-दो दूकानें तो रह जायेंगी और थोड़ा-बहुत विदेशी कपड़ा बिकता रहेगा। किन्तु बम्बईके बाजारों, मस्जिदों, मन्दिरों, समारोहों और विवाह-शादियोंका रंग तो बदल ही जायेगा। इन सब जगहों और मौकोंपर तो खादी-ही-खादी दिखाई देनी चाहिए। नाटकोंका रंग भी बदला हुआ होना चाहिए। यदि लोगोंको विदेशी कपड़ा पसन्द नहीं होगा तो जिन नाटकोंमें विदेशी कपड़ेका व्यवहार होता होगा क्या वे उनमें जायेंगे? विदेशी कपड़ेका मोह दूर न हो और खादीका प्रचार हो जाये मैं यह असम्भव समझता हूँ। जहाँ-जहाँ सामान्य और स्वतन्त्र लोग जाते हैं वहाँ-वहाँ भी मैं अवश्य ही खादीके उपयोग किये जानेकी आशा रखता हूँ।

इतना काम बम्बईके लोग इस महीनेके अन्ततक कर सकते हैं। जब बम्बई इतना कर ले तब वह भले ही अकेला अहिंसात्मक युद्ध छेड़ दे।

मुझे आशा है, कोई इस तरहकी शंका नहीं करेगा कि अहिंसात्मक युद्धके साथ खादीका क्या सम्बन्ध है। मैं ऊपर बता चुका हूँ कि चरखा शान्तिका चिह्न है और जब उसकी माँग भी अहिंसाके नामपर की जाती है तब जो लोग अहिंसाको नहीं मानते वे चरखेका उपयोग नहीं करेंगे अथवा करेंगे तो प्रेमपूर्वक नहीं करेंगे। हमने चरखेमें वीरता, सच्चाई, सादगी और अहिंसा आदि गुणोंका आरोप किया है; इसलिए चरखा अधिकाधिक इन गुणोंका पोषक बनता जायेगा।

स्वराज्यकी प्राप्ति और खिलाफतकी रक्षाके लिए किये जानेवाले विद्रोहमें थोड़े आदमियोंसे काम नहीं चलेगा। उसके लिए तो हमें हजारों आदमियोंकी जरूरत है। यदि हमें अकेली बम्बईसे ही स्वराज्य लेनेकी शक्ति प्राप्त करनी हो तो हमें एक लाख सैनिकोंकी जरूरत होगी। इनमें स्त्री और पुरुष दोनों ही हो सकते हैं। सोलह सालसे ऊपर किसी भी उम्रके स्त्री-पुरुष काम आ सकते हैं। इतने सैनिकोंके खानपानका प्रबन्ध कोई भी संस्था नहीं कर सकती। अगर कांग्रेस यह काम अपने ऊपर ले तो हम हार जायेंगे। इतने आदमियोंका खर्च फी आदमी आठ आना रोजके हिसाबके लगायें तो

५०,००० रुपये आता है। अगर हम मान लें कि हमारी लड़ाई एक महीनेतक चलेगी तो पन्द्रह लाख रुपये तो सिर्फ इतने लोगोंके खानपानमें ही खर्च हो जायेंगे। अगर उनके कुटुम्बियोंके भरण-पोषणका प्रवन्ध भी करना पड़े तो उस खर्चका अनुमान करना ही कठिन है। फिर भी मेरी बताई रकम कमसे-कम दुगुनी तो कर ही देनी चाहिए।

इतना खर्च उठानेके लिए हम तैयार नहीं, और कदाचित् इतना रुपया जुटाना बम्बईके लिए कठिन न भी मानें तो भी हमें लाभ नहीं होगा; बल्कि हम हार ही जायेंगे। इस बातका कोई निश्चय नहीं कि तब आन्दोलनमें कैसे लोग शामिल होंगे। इस भारतीय स्वातन्त्र्य युद्धको चलानेका भार उठानेवाले लोग चरित्र, सचाई और साहसमें पहले दरजेके होने चाहिए। और इसकी कसौटी भी चरखा और रुईकी क्रियाएँ हैं। जबतक इन सैनिकोंकी समझमें यह बात न आयेगी कि धुननेसे या बुननेसे वे अपनी रोटी कमा सकते हैं तबतक हम लाखों सैनिक प्राप्त कर ही नहीं सकते।

अब हम इस बातकी कल्पना कर सकते हैं कि अगर बम्बई इस काममें सबके आगे होना चाहे तो उसे क्या करना चाहिए।

(१) इस मासके अन्ततक युद्ध करनेकी इच्छा रखनेवाले प्रत्येक आदमीको धुनने, कातने और बुननेकी क्रियाओंकी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। उसे कमसे-कम रोज एक घंटा सूत जरूर ही कातना चाहिए।

(२) बम्बईमें अधिकांश लोगोंको इस मासके भीतर-भीतर हाथ-कते सूतकी खादीका उपयोग करने लग जाना चाहिए।

(३) इस महीनेके आखीरतक बम्बईके बाजारोंका, मन्दिरोंका, मस्जिदों और नाटकघरोंका रूप बदल जाना चाहिए और वे सब खादीमय दिखाई देने चाहिए।

(४) बम्बईके स्त्री-पुरुषोंको अपना फुरसतका समय धुनने, कातने और बुननेमें लगाना चाहिए।

(५) यदि बम्बईके नागरिकोंका मारपीटमें अब भी कुछ विश्वास रह गया हो तो उन्हें उसे छोड़ देना चाहिए।

(६) यदि बम्बईके हिन्दुओं और मुसलमानोंमें अब भी कुछ अनबन हो और उनके मनोंमें कुछ मैल हो तो उन्हें उसे निकाल देना चाहिए।

यदि इतना काम इस मासके अन्ततक हो जाये तो बम्बईके लोग नवम्बरमें बड़े पैमानेपर शान्तिपूर्वक कानून-भंग शुरू कर सकते हैं।

बम्बईमें युवराजके उतरनेकी तारीख १७ नवम्बर है। क्या उसके पहले बम्बई अपनी शक्तिका चमत्कार दिखा सकेगा? बम्बई जब ऊपर लिखी आसान शर्तोंका पालन कर दिखायेगा तभी वह इस विद्रोहका आरम्भ कर सकता है; उससे पहले नहीं। जो प्रान्त ऐसा कर दिखायेगा वही सविनय भंग शुरू कर सकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १६–१०–१९२१

१२८. टिप्पणियाँ

थकावट

जब मुझसे कोई कहता है कि लोग अब थकने लगे हैं, कोई नई बात बताइए, तब मैं हैरान हो जाता हूँ, तब मैं समझता हूँ कि लोग स्वराज्यका रहस्य नहीं जानते, धर्म-युद्धका अर्थ नहीं समझते।

स्वराज्य अगर नित्य बदलनेवाली कोई चीज हो तो उसके उपाय भी बदलें। मैं तो स्वदेशीके सिवा दूसरा उपाय नहीं खोज सकता; और अगर हम स्वदेशीसे ऊब गये हों तो हमें स्वराज्यसे भी उदासीन हो जाना पड़ेगा।

अगर कोई साँस खींचनेसे ऊबने लगे तो मानना चाहिए कि वह मरनेकी तैयारीमें है। तन्दुरुस्त आदमीकी साँस चलती रहती है, नाड़ी चलती रहती है, और इन्द्रियाँ भी अपना काम करती रहती हैं; पर इसकी खबरतक उसको नहीं रहती। जरूरी तमाम क्रियाओंको करते हुए भी वह कभी नहीं थकता। कवि अपनी शक्तिका उपयोग करते हुए कभी नहीं थकता; और जो कवि-कर्म करते हुए थक जाता है वह कवि ही नहीं है। सारंगी जिसके हाथमें खेलती है वह वादक बजाते हुए कभी नहीं थकता। इसी प्रकार अगर हमपर स्वदेशीका रंग गाढ़ा चढ़ गया है तो हम उससे ऊब नहीं सकते; बल्कि हमारे निकट तो यही स्पष्ट होगा कि जितनी सीढ़ियाँ हम स्वदेशीकी चढ़े हैं उतनी ही स्वराज्यकी चढ़े हैं और जिस प्रकार हम स्वराज्यका रास्ता तय करते हुए कभी ऊब नहीं सकते उसी प्रकार स्वदेशीकी राहपर बढ़ते हुए भी हम नहीं ऊब सकते। मनुष्य स्वच्छ और प्राणप्रद हवामें आगे बढ़ता हुआ जैसे अधिकाधिक शक्तिमान होता जाता है, ऐसा ही अनुभव हमें होना चाहिए। स्वदेशीकी दिशामें हमारा बल मंजिल-दर-मंजिल बढ़ता ही चलता है। एक साल पहले जो लोग चरखेका मजाक उड़ाया करते थे, आज वे कहाँ हैं? श्रीयुत प्रफुल्लचन्द्र राय[1] हमारे एक महान विज्ञानाचार्य हैं। वे श्रीयुत वसुकी[2] जोड़के हैं। सूक्ष्म शास्त्रोंके परखैया हैं। स्वयं कितनी ही कम्पनियोंसे उनका सम्बन्ध भी है। पर उन्हें भी कबूल करना पड़ा है कि बंगालके साढ़े चार करोड़ स्त्री-पुरुषोंका एकमात्र आधार चरखा ही है। जो व्यक्ति ऐसे उत्तम कार्यक्रमसे थक जाता है, वास्तवमें वह उसका रहस्य ही नहीं जानता।

ऊबा हुआ योद्धा क्या लड़ेगा? जो योद्धा हमेशा अपनी लड़नेकी गति कायम नहीं रखता वह हारे बिना नहीं रहता। हम तो उत्तरोत्तर आगे ही बढ़ते गये हैं। धारासभा, खिताब, वकील और विद्यार्थियोंके किलोंको थोड़ा-बहुत हमने तोड़ा और थोड़ा-बहुत हमारे हाथ भी लगा; उससे हमारा काम भी थोड़ा-बहुत चला। परन्तु इस विदेशी कपड़ेके किलेने तो हमारे सारे रास्ते ही रोक रखे हैं। इस किलेको

१. (१८६१-१९४४); देशभक्त और वैज्ञानिक।

२. सर जगदीशचन्द्र वसु, एफ० आर० एस०, वनस्पति-शास्त्री।

हम जबतक मिट्टीमें नहीं मिला देते तबतक हम स्वराज्यकी आशा नहीं रख सकते। उसके समूल नाशपर ही स्वराज्य प्राप्त हो सकता है। इसलिए, चाहे महीना लगे या महीनों, विदेशी कपड़ेकी चट्टानके टुकड़े-टुकड़े किये बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते। दूसरी चट्टानोंमें तो हम छेद करके ही पार हो गये थे।

स्वराज्य क्या चीज है, सो तो अनुभवके बाद ही समझा जा सकता है। रोगीका रोग दूर हुआ या नहीं, इसका अन्तिम निर्णय तो स्वयं रोगी ही कर सकता है। जो रोगी बिछौनेपर ही पड़ा रहता था, उठ-बैठ ही नहीं सकता था, उसकी चरबी बढ़ जाये, चेहरेपर सुर्खी छिटकने लगे, और वैद्य भी कह दे कि हाँ, अब तुम चंगे हो गये, तो भी रोगी इसे नहीं मान सकता। स्वराज्य मिला है या नहीं, इस बातका साक्षी तो प्रत्येक मनुष्य स्वयं ही अपने लिए हो सकता है। और अगर यह सिद्ध होता है कि चरखेसे, धुननेसे, करघेसे और खादीसे लोगोंका जी ऊब उठा है तो उसका अर्थ मैं यह करता हूँ कि लोगोंको स्वराज्यकी जरूरत ही नहीं है। यदि कोई रोजके-रोज लंघन करे अथवा चावलको छोड़कर भूसी खाये तो हम यही कहेंगे कि यह व्यक्ति आत्मघात करना चाहता है। उसी प्रकार जो स्वदेशीका उल्लंघन करता है उसके विषयमें कहा जा सकता है कि इसे स्वराज्यकी इच्छा नहीं है।

क्या कार्यकर्त्ताओं और उनके कुटुम्बियोंने पूरी तरह स्वदेशीको अंगीकार कर लिया है, अब ज्यादा करनेकी गुंजाइश नहीं है और वे इसीलिए उसमें रस नहीं लेते? जबतक सभी असहयोगी स्वयं तथा उनके परिवारोंका एक-एक व्यक्ति स्वदेशी-मय नहीं हो गया है तबतक विराम लेने या निराश होनेका कोई कारण ही नहीं है। और जिस दिन तमाम असहयोगी अपना कर्त्तव्य समझकर सच्चे स्वदेशी हो जायेंगे उस दिन मुझे विश्वास है कि सारा हिन्दुस्तान स्वदेशी हो जायेगा। आजकी हमारी थकावट तो बालकोंकी थकावट जैसी है। बालकको जो सवाल कठिन मालूम होता है उसको वह छोड़ देता है और कहता है — दूसरा सवाल दीजिए। जो शिक्षक इस प्रकार बालकको थकने और हारने देता है वह उसका शत्रु है। दिया हुआ सवाल हल कर लेनेपर ही बालकको छुट्टी दी जा सकती है। उसी प्रकार स्वदेशीका जो यज्ञ हमने आरम्भ किया है उसके पूर्ण हो जानेपर ही बात बन सकती है। हमारी यह उकताहट अपनी अपूर्णता और अज्ञानके कारण है। हम स्वराज्यकी कीमत नहीं जानते। और अगर जानते हैं तो उसे चुकाना नहीं चाहते। हमारा खिलाफत-सम्बन्धी प्रेम सभाएँ करके और चन्दा देकर ही समाप्त हो जाता है। अगर ऐसी ही स्थिति रहे तो स्वराज्य कभी नहीं मिल सकता। स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए पहले हमको उद्योगी बनना होगा; सभाओंका, जुलूसोंका, व्याख्यानोंका शौक हमें छोड़ना होगा; और यदि ऐसा मालूम होता हो कि अभी इन खेल-तमाशोंकी जरूरत है तो कुबूल करना होगा कि अभी स्वराज्य दूर है।

स्वेच्छापूर्वक नियम-पालन

एक मित्रने मुझसे कुछ सवाल पूछे। उत्तर सहित उनको नीचे देता हूँ :—

सवाल — क्या स्वराज्यमें हमें कुछ कानूनोंकी जरूरत पड़ेगी?

जवाब — जी हाँ।

तब तो लोगोंको वे कानून मानने भी पड़ेंगे?

जरूर, लेकिन वे स्वेच्छापूर्वक उन्हें मानेंगे। अगर वे कानून-कायदे लोगोंकी सलाहसे बनाये हुए होंगे तो वे उन्हें खुशीसे मानने लगेंगे। क्या इसमें आपको कोई अचरज मालूम पड़ता है?

जी हाँ, इसमें मुझे कुछ शक होता है।

मैंने पूछा — किस तरह?

अपने अनुभवसे।

मैं चौंका, और मैंने फिर पूछा: मुझे समझाओ। मैं जरा उलझनमें पड़ गया हूँ।

देखिए, नागपुरमें २०,००० मनुष्योंने असहयोगका प्रस्ताव पास किया था। जिन-जिन लोगोंने उस प्रस्तावको मंजूर किया, उनके लिए तो वह बन्धन-कारक था ही। लेकिन फिर भी क्या उन सब अर्थात् बीसों हजार मनुष्योंने उसका पालन किया है? क्या वहाँ हाजिर रहनेवाले सभी वकीलोंने वकालत छोड़ दी? जो विद्यार्थी वहाँ मौजूद थे क्या उन्होंने स्कूल या कालेज छोड़ दिये? सबने स्वदेशी-व्रतका पालन किया? सभीने चरखा अपनाया? इन बातोंको भी जाने दीजिए। कार्यकारिणी समितिने जो-जो प्रस्ताव पास किये हैं, क्या सब जगह उनपर अमल हुआ? जैसा महासभाका हाल है वैसा ही छोटी-छोटी संस्थाओंके लोगोंका भी है। हमारी जितनी संस्थाएँ हैं उनमें अपने ही बनाये हुए कायदोंका पालन कितने लोग करते हैं? मुझे सार्वजनिक जीवनका तजुरबा है और मैंने देखा है कि अपने ही बनाये हुए कायदोंका पालन हम खुद बहुत थोड़ा करते हैं। जबतक यह कुटेव नहीं छूटती तबतक क्या हम स्वराज्यका उपभोग कर सकते हैं। क्या आप यह नहीं मानते कि इस दुःखके समय बनाये हुए नियमोंके पालन करनेकी हमारी शक्तिमें ही स्वराज्य है? और आज अगर हममें वह शक्ति नहीं है, तो फिर स्वराज्यके मिल जानेपर भी वह हममें नहीं आ सकती। अर्थात् उस शक्तिके बिना स्वराज्य असम्भव है। फिर, अपने ही बनाये हुए कायदोंका पालन करना तो बड़ी ही आसान बात है। क्योंकि इसके लिए हमें किसी दूसरेसे जाकर कहनेकी जरूरत नहीं रहती। मैं जो कह रहा हूँ इसका सम्बन्ध सिर्फ उन लोगोंसे है जिन्होंने अपना मत प्रस्तावके पक्षमें दिया था अर्थात् जो कांग्रेसी असहयोगी हैं और जिन्होंने प्रस्ताव पास करनेके लिए हाथ उठाया था उन्हें तो तदनुसार आचरण करना था; किन्तु जब मैं उनकी हालतपर विचार करता हूँ तो व्याकुल हो उठता हूँ और इसी साल स्वराज्य प्राप्त कर लेनेकी बातपर मुझे सन्देह होने लगता है।

इसके प्रत्युत्तरमें मैंने कहा: हाँ, आप जो-कुछ कह रहे हैं उसमें सत्यांश जरूर है। हम सब अपने ही बनाये हुए नियमोंका पूरी तरह पालन नहीं करते। फिर भी आपको यह तो कबूल करना ही पड़ेगा कि बारह महीने पहले हम जितने लापरवाह थे उतने आज नहीं हैं। कहा जा सकता है कि नागपुरके प्रस्तावपर लोगोंने अच्छी

तरह अमल किया है। जिन बातोंमें लोग उसपर अमल नहीं कर पाये वहाँ वे अपनी कमजोरी कबूल करते हैं और सबल बननेकी कोशिश करते हैं।

इस तरह जवाब देकर मैंने प्रश्नकर्त्ताका तो कुछ समाधान किया, लेकिन खुद मेरा समाधान नहीं हुआ। उनके सवालोंमें मुझे तथ्य दिखाई दिया। मैं विचारमें पड़ गया। उनसे तो मैंने यही कहा कि इस बारेमें मैं "नवजीवन" में लिखूँगा, लेकिन यह टिप्पणी लिखते समय मुझपर उन प्रश्नोंका बहुत ज्यादा असर हुआ है। यद्यपि मैं समझता हूँ कि मैंने लोगोंकी तरफसे जो वकालत की, वह वाजिब है तो भी मैं यह तो समझ रहा हूँ कि जिन नियमों और कायदोंको खुद हमी बनाते हैं उनको अमलमें लानेकी शक्ति भी हममें बहुत ज्यादा होनी चाहिए। "जहाँ वृक्ष हों ही नहीं वहाँ एरण्ड ही वृक्ष मान लिया जाता है" वाली कहावतके अनुसार हम सन्तोष नहीं मान सकते। हम तो स्वराज्यकी कसौटीपर कसे जा रहे हैं, उसमें हम पूरे नहीं उतर रहे हैं। हमारे सोनेमें जरूरतसे ज्यादा मिलावट है। सोनेके कसको तो परखैया ही परख सकता है। और हमें तो उस कसौटीपर स्वराज्यके लायक सिद्ध होना है। इसलिए जबतक हम उतने पूरे न उतरेंगे तबतक हम स्वराज्य प्राप्त करनेकी शक्ति ही किस तरह प्राप्त कर सकते हैं? प्रश्नकर्त्ताकी यह दलील भी वाजिब है कि कांग्रेसके हम सेवकोंको तो बिना दिक्कतके ही पूरे सौ टंच उतरना चाहिए। यह बात तो स्वतः सिद्ध है कि हम सब कार्यकारिणी समिति या प्रान्तीय समितिके पास किये हुए प्रस्तावोंका अमल यन्त्र या मशीनकी तरह नियमित होकर नहीं करते।

इस लापरवाहीका एक कारण भी है। वह यह कि आजतक हमने बिना विचारे हाथ ऊँचे किये हैं, डर या शर्म अथवा लालचसे हाथ ऊँचे उठाये हैं। लेकिन स्वतन्त्रता चाहनेवालोंको ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं। ऐसा मनुष्य तो अकेला होनेपर भी अपने मनके प्रतिकूल किसी भी प्रस्तावके खिलाफ हाथ ऊँचा उठाता है और स्वतन्त्र तन्त्रमें दूसरे लोग उसे धन्यवाद देकर आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। इसलिए हमें जो प्रस्ताव मंजूर न हो उसके खिलाफ हम अवश्य अपनी आवाज उठायें, अवश्य उसपर वादविवाद करें; और जब उसमें सार दिखाई दे तभी उसे मंजूर करें। लेकिन एक बार स्वीकार कर लेनेपर फिर मन, वचन और कर्मसे उसपर दृढ़ रहना ही चाहिए। इस तरहके फी हजार एक भी आदमी अगर हमें मिल जाये तो हम जरूर ही स्वराज्य स्थापित करनेमें समर्थ हो सकते हैं। इस हिसाबसे हमें सारे हिन्दुस्तानमें तीन लाख ऐसे आदमियोंकी जरूरत है जो अ० भा० काँ० कमेटीके प्रस्तावोंपर खुद पूरी तरह अमल करें और दूसरों-से भी उन्हें पालन करानेका प्रयत्न करें। यों ऐसे काफी आदमी हो गये हैं, लेकिन फिर भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि वे तीन लाख तो किसी हालतमें नहीं हैं।

आजतक तो हम सरकारसे ही आशा रखते आये थे। हमारे प्रस्ताव उसके लिए होते थे; इसलिए उन प्रस्तावोंके पास कर देनेपर हमारे लिए करनेका काम बहुत कम रह जाता था। लेकिन गये बारह महीनोंमें हमने एक उद्योग किया है; और वह यह कि खुद हम ही कुछ काम करें।

अभी वक्त चला नहीं गया है। अगर हम पूरी मेहनत करें और जो-जो प्रस्ताव पास हुए हैं उनपर अमल करें तो मैं मानता हूँ कि हम बहुत कुछ आगे बढ़ जायेंगे।

हमारा बहुत-सा काम तो विचार, कार्यदक्षता और उद्यमके अभावमें पड़ा रह जाता है। आलस्यको छोड़ना, कार्यशक्तिको बढ़ाना और विचारमय बनना तो हमारा एक आवश्यक कर्त्तव्य है। ये गुण तो प्रत्येक स्वराज्यवादीमें होने ही चाहिए।

शादीमें खादी

सिर्फ खादी पहनकर शादी करनेमें सबसे पहले पारसी जातिने ही कदम बढ़ाया है। खंडवेकी कांग्रेस-समितिके सभापति श्रीयुत लवंगियाकी शादी उस दिन बम्बईके कामाबागमें श्रीमती दीनबाई पटेलके साथ सम्पन्न हुई। दुल्हा-दुल्हिन दोनों खादीकी ही पोशाकमें थे। उन्हींके साथ-साथ शादी करानेवाले पुरोहितने भी खादीका जामा पहना था और मेहमानोंसे भी प्रार्थना की गई थी कि वे खादीके ही लिबासमें पधारें। इसलिए मजलिसमें ज्यादातर खादी ही दिखाई देती थी। इसी तरह और भी सब बातोंमें सादगीसे काम लिया गया था। दूल्हेके पिताने स्वराज्य फंडमें ५०० रुपये दिये। इस तरह सभी लोग स्वदेशी और सादगीका अनुकरण करें तो कितना अच्छा हो। मैं आशा करता हूँ कि मेरी ही तरह, प्रत्येक पाठकके हृदयमें इन दम्पतिकी दीर्घायु-कामना और इनके हाथों बहुत बड़ी देशसेवा होनेकी भावना उत्पन्न होगी।

रंग-विद्वेष

श्री मणिलाल बैरिस्टरने फीजीमें जनताकी बड़ी सेवा की। जब उन्हें सरकारने देश-निकालेकी सजा दे दी, तो वे रहनेके विचारसे न्यूजीलैंड गये। उन्होंने वहाँ वकालत प्रारम्भ करनेका प्रयत्न किया और अदालतको सनदके लिए दरखास्त दी। न्यूजीलैंडकी विधि-समितिने, जिसके सभी सदस्य गोरे थे, फीजीसे पूछताछ की; फीजीकी सरकारने मणिलालकी वफादारीके प्रति शक जाहिर किया। इस शकके आधारपर श्री मणिलालकी अरजी नामंजूर कर दी गई है। इसका यह अर्थ होता है कि श्री मणिलाल न्यूजीलैंडमें अपनी जीविका नहीं कमा सकते। फीजीमें श्री मणिलालपर कोई अपराध साबित नहीं हुआ था और न्यूजीलैंडमें भी उनके खिलाफ कोई बात नहीं थी। उनके वफादार न माने जानेका सम्बन्ध उनकी चमड़ीके रंगसे था और उनकी बेवफादारीका प्रमाण था अपने देशभाइयोंकी सेवा करना। जिनका रंग गेहुँआ है, जो हिन्दुस्तानी हैं और जो अपने देशवासियोंकी सेवा करते हैं, वे व्यक्ति यदि सफेद चमड़ीवालोंकी दृष्टिमें बेवफा न गिने जायें, तो फिर बेवफा और कौन गिना जा सकता है। आश्चर्यकी बात है कि इतना सब देखते हुए भी हमारे बीचमें ऐसे भोले और उदार मनके काफी देशवासी हैं जिनका यह कहना है कि हमें जो-कुछ प्राप्त करना है, वह हमें सरकारके साथ सहयोग करते हुए ही प्राप्त करना है।

पूर्वी-आफ्रिका

मुझे तो सभी जगहोंमें सरकारके साथ सहकार करनेके कटु परिणाम ही दिखाई देते हैं। पूर्वी आफ्रिकाके गोरे श्री एन्ड्रयूजका वहाँ जानातक सहन नहीं कर पाते! उन्होंने उनका विरोध करनेके लिए कमर कस रखी है। गोरे श्री एन्ड्रयूजको चोट तक पहुँचा सकते हैं। इसीके साथ वे ब्रिटिश अधिकारियोंके साथ ऐसी बातचीत भी

चला रहे हैं जिससे हम अपना एक भी अधिकार प्राप्त न कर पायें। यदि भारतीयोंके अधिकार उनसे छिनाये गये, तो इसे दिन-दहाड़े लूटमार कहा जायेगा। मैं आशा करता हूँ कि पूर्वी आफ्रिकामें भारतीय ऐसा कोई समझौता नहीं करेंगे जिससे उनके हकोंपर आँच आये। भारत इस मामलेमें उनकी एक ही तरहसे मदद कर सकता है और वह है मदद देनेकी शक्ति प्राप्त करना; यह शक्ति है स्वराज्य।

अस्पृश्यताका फल

हम लोग संसारमें सभी जगह इस तरह अछूत क्यों माने जा रहे हैं? मुझे इसका कारण स्पष्ट दिखाई देता है। ईश्वर आदमीको उसके पापकी सजा रहस्यमय रीतिसे दिया करता है। हमने अपने ही छः करोड़ लोगोंको जो कुछ बना दिया है, जगतने वही हमें बना दिया। हम जहाँ-कहीं भी जाते हैं, यह कलंक हमारे साथ रहता है। आफ्रिकाके हब्शी भी हमें गुलाम मानकर तिरस्कार करते हैं, यह मैंने देखा है। जबतक हम लोग अछूतोंके प्रति वास्तविक ममताका अनुभव नहीं करते, तबतक हम जगतकी मैत्रीके पात्र नहीं बन सकते। हम धर्मके नामपर अपने आपको धोखा दे रहे हैं और जड़ता अपनाये हुए हैं। इसीलिए हम बहुत नीचे गिरते चले जा रहे हैं। मुझे तो अन्त्यजोंकी अपेक्षा भी हम सबकी स्थिति अधिक करुणाजनक लगती है, क्योंकि हम तो संसार और ईश्वर दोनोंकी ठोकरें खा रहे हैं। अन्त्यज केवल हमारी ठोकरें खाते हैं, जब कि हम जगत और ईश्वर, दोनोंकी ठोकरें खा रहे हैं। अन्त्यजोंको ईश्वर ठोकर नहीं मारता। उनकी त्रुटियोंके पक्षमें तर्क दिये जा सकते हैं, और उनकी निर्योग्यताएँ सिद्ध की जा सकती ह और उस सबसे उनका पक्ष सबल बनेगा। अस्पृश्यताका मैल धोनेका अर्थ है अपने मनका मैल धोना। जबतक यह मैल हमारे मनसे नहीं गया है, तबतक हम कोई दूसरा चाहे जितना अच्छा काम क्यों न करें, उसका फल नहीं होगा। जिस आदमीके हृदयमें कठोरताने घर कर लिया है, उसका छुटकारा नहीं हो सकता। और जब आदमी धर्मके नामपर निर्दयता अपना लेता है, तब उसके मनकी निर्दयता हटाये नहीं हटती। जो व्यक्ति धर्मके नामपर पशु-वध करता है, उसे पशु-वध सम्बन्धी क्रूरता समझाना कठिन है। जो स्वादके लिए पशु-वध करता है, उसे समझाना सरल है। इसलिए हम बहुत ही ध्यानसे, जबतक अन्त्यजोंके प्रति तिरस्कारकी भावनाको विचारपूर्वक अपने मनसे नहीं हटा देते, तबतक हिन्दू धर्मकी यह सड़ायँध दूर नहीं हो सकती। अगर कोई मनमें मैल रखकर अछूतको छूता भी है, तो पापसे छुटकारा नहीं होता। अस्पृश्योंको स्पर्श करनेका तो अर्थ है जाति-बंधन जैसी स्वच्छ पद्धतिमें जो विष व्याप्त हो गया है, उसे निकाल फेंकना, ऊँच-नीचकी भावनाको भुला देना और उसके स्थानमें भ्रातृ-भावकी स्थापना करना। जब हम ऐसा करने लगेंगे, तभी अस्पृश्यता दूर की जा सकेगी। आज तो यह सड़ांध इतनी व्यापक हो गई है कि अन्त्यजोंमें भी परस्पर ऊँच-नीचकी भावनाने घर कर लिया है। हम ढेढ़ और भंगियोंको स्पर्श नहीं करते, इसका परिणाम यह हुआ है कि भंगियोंके मनमें भी अपनेको किसी-न-किसीसे बड़ा कहलवानेकी इच्छा होती है। इसे निकालना ही अस्पृश्यताकी भावना दूर करना है।

और जब कविने "अस्पृश्यता अतिरिक्त अंग" कहा, तब उसका भी यही अर्थ था कि यह हिन्दू धर्मके ऊपर एक थोपी गई चीज है।

कांग्रेसके कार्यकर्त्ताओंको इस विषयमें तनिक भी असावधानी नहीं दिखलानी चाहिए। उन्हें जहाँ-कहीं भी ऊँच-नीचकी भावनाका कोई चिह्न दिखाई देता है, उन्हें वहाँ उसका मुकाबिला करना चाहिए। हम परम्परागत धर्मका लोप नहीं करना चाहते, किन्तु हम अज्ञानको मर्यादाका रूप भी नहीं देना चाहते। मर्यादाका स्वरूप स्वयं दु:ख सहन करना है, दूसरेको दु:ख देना नहीं। जो दूसरेको दु:ख देते हैं, वे स्वेच्छाचारी हैं, संयमी नहीं। जो स्वर्ग प्राप्त करनेके लिए दूसरोंसे ऊँचा-नीचा काम करवाते हैं, वे संयम-धर्मका पालन नहीं करते। अस्पृश्यता और उसमें समाहित निर्दयताको दूर करनेके लिए यह बहुत आवश्यक है कि हम अस्पृश्योंकी सदा कुछ-न-कुछ सेवा करते रहें, उनके दु:खको समझें, उनके अनाथ बालकोंका पालन करें, उनकी झोंपड़ियोंमें जाकर उन्हें मदद पहुँचायें। यदि हम कोई शाला आदि चलाते हों, तो उनके बच्चोंको उसमें दाखिल करें और जो बच्चे हमारी देखरेखमें पढ़ रहे हैं, उन्हें भी इसकी आवश्यकता समझायें। हरएक गाँवमें हम उनके मुहल्लोंमें जायें और जाँच करके जिन बातोंकी वहाँ सुविधा न हो, वे सुविधाएँ वहाँ मुहैया करें। यदि इस प्रकार हम उनपर प्रेम करेंगे, तो उसका असर हमारे मनपर इतना अधिक पड़ सकता है कि हम रोज-रोज शुद्ध और पवित्र बनते चले जायेंगे और हमारे मनमें पड़ी हुई कठोरता निर्मल हो जायेगी। स्वराज्यका अर्थ ही है सबके दु:खमें भाग लेनेकी भावनाका निर्माण।

दर्शकोंके लिए सुविधाएँ

आगामी कांग्रेस अधिवेशनमें कितनी ही बातोंमें इतना परिवर्तन होनेवाला है कि अगर लोग उसका मतलब ठीक-ठीक न समझें तो सम्भव है कि या तो लोग अप्रसन्न हो जायें या अव्यवस्था फैल जाये। महासभाकी सफलताका आधार जितना उसके कर्मचारियों और स्वयंसेवकोंपर है उतना ही लोगोंपर भी है। जैसा इन्तजाम सोचा गया है अगर लोग उसे पसन्द करें, नियमोंका पालन करें तो काम ठीक-ठीक चलेगा। लेकिन अगर लोगोंने ऐसा न किया तो फल अच्छा हो ही नहीं सकता। इस बार दर्शकोंकी संख्याकी हद बाँध दी गई है। एक तो यही बात कितने ही लोगोंको पसन्द नहीं आ रही है। फिर भी अगर लोग कुछ विचार करें तो उन्हें तुरन्त ही इसकी आवश्यकता समझमें आ सकती है। महासभा प्रजाका कार्य संचालन करनेवाली संस्था है। अब अगर केवल कार्य-संचालनकी विधिको ही देखनेके लिए हजारों आदमी इकट्ठा होना चाहें तो उनकी व्यवस्था करना ही एक जबर्दस्त काम बन बैठे। इसलिए जब महासभा कार्य-सम्पादन अथवा कार्य-योजना करती हो तब उसके देखनेकी इच्छा अधिक लोगोंको करनी ही न चाहिए।

इसका एक उपाय तो यह था कि दर्शक बिलकुल ही न लिये जायें। परन्तु अभी हालमें तो ऐसा नहीं हो सकता। किसी-किसीके आनेकी सुविधा करना आवश्यक था। इसलिए अधिकसे-अधिक तीन हजार दर्शकोंकी व्यवस्था करनेका प्रस्ताव स्वागत-समितिने किया। अब यह विचार शेष रहा कि किस तरहके तीन हजार आदमी आ

सकें। इसलिए फीसकी शर्त रखी गई और स्वागत-समितिको यह अधिकार दिया गया कि कुछ प्रथम पंक्तिके लोगोंको वह निमन्त्रित कर सके। इस प्रकार स्वागत-समितिने भरसक हर तरहकी सुविधा रखनेका विचार किया है। जनताको उचित है कि वह इस मर्यादाको स्वीकार करे।

परन्तु जो बातें देखने-सुननेकी हैं, उन्हें सब कोई देख-सुन सकते हैं। हर रोज चार आना देनेवाला आदमी महासभाकी हदमें तमाम दिन रह सकेगा और दिनमें वहाँ होनेवाले जल्सोंमें, संगीत, व्याख्यान इत्यादिमें शरीक हो सकेगा । सिर्फ जितनी देरतक महासभाका काम चलता होगा उतने ही समयतक वह महासभाके मण्डपमें न जा सकेगा। महासभाके प्रत्येक वक्ताका भाषण भी वह सुन सकेगा। अतएव चार आने देकर सब अपनी जिज्ञासा तृप्त कर सकेंगे । इस बार कमसे-कम एक लाख आदमी महासभाके निमित्त एकत्र होंगे, मुझे ऐसी आशा है और यह आशा भी है कि उन्हें अपने सन्तोष और ज्ञान-वृद्धिके लिए यहाँ उचित प्रबन्ध दिखाई देगा।

पारसी स्वयंसेवक

श्री शापुरजी बहरामजी गोटला नवसारीसे लिखते हैं:[1]

मैं आशा करता हूँ कि इस सुझावको कार्यान्वित किया जायेगा और यदि लगे कि पारसियोंका अलग स्वयंसेवक दल बनाना सम्भव नहीं है तो जो दल बन चुके हैं वे उनमें तो अवश्य ही शामिल होंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १६–१०–१९२१

१२९. पत्र : ए० जी० कानिटकरको

साबरमती
१७ अक्तूबर, [१९२१]

प्रिय मित्र,

आपका पत्र पाकर प्रसन्नता हुई।

वर्तमान बालचर (स्काउट) संगठनमें मेरा विश्वास नहीं है और न मैं सम्भवतः किसीको युवराजके किसी तरहके स्वागतमें सम्मिलित होनेकी सलाह दे सकता हूँ; क्योंकि उनको यहाँ एक घृणित अन्यायका समर्थन करनेके लिए लाया जा रहा है। मैं आपकी इस बातसे बिलकुल सहमत हूँ कि हमारा पतन सादे जीवन और प्रेमके आदर्शोंको त्याग देनेके कारण हुआ है। जबतक हम फिरसे स्वदेशी वस्त्रोंका व्यवहार

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है । पत्रमें आगामी कांग्रेस अधिवेशनके लिए पारसियोंसे पारसी स्वयंसेवक दलका निर्माण करनेकी अपील की गई थी और स्वयं पत्र लेखकने इसमें अपनी सेवाएँ सौंपनेकी बात भी कही थी ।

नहीं करने लगते और अस्पृश्यताको नहीं मिटा देते, तबतक भारतमें किसी प्रकारकी शान्ति सम्भव नहीं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[पुनश्चः]
एक शिष्ट अंग्रेज बालक हमें अपने भाईके समान प्यारा होना चाहिए।

मूल अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७९९) से।
सौजन्य: डी० पी० जोशी

१३०. पत्र: बहरामजी खम्भाताको

साबरमती
सोमवार [१७ अक्तूबर, १९२१][१]

भाईश्री बहरामजी,

मैंने आपका पत्र आज ही देखा है। यदि मुझे कोई अच्छा ढेढ़ या भंगी लड़का मिल गया तो मैं आपके पास भेज दूंगा। ऐसे लड़के मिलना कठिन होता है। मुझे बिलकुल मालूम न था कि आप निरामिष भोजी हैं।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ४३६०) से।
सौजन्य: तहमीना खम्भाता

१३१. पत्र: बनारसीदास चतुर्वेदीको

[१८ अक्तूबर, १९२१][२]

भाईश्री,

आपका पत्र मिला। आपको नौकरी करनेकी कोई आवश्यकता नहिं है। न है बिना काम असोसिएशनकी ओफिसपर जाने की। आपका भी पेटीटपरका पत्र देखा। मुझे खेद हुआ है। उसमें रोष ही देखता हुँ। मुझे मेरेपर रख दिया है तो ली . . . उनको कुछ भी लीखनेकी आवश्यकता न थी।

१. डाकखानेकी मुहरसे।
२. पत्रपर १९ अक्तूबर, १९२१ की बम्बई-डाकखानेकी मुहर है।

मेरा कार्य भी अब थोड़ा-सा मुश्केल हो जायगा। परन्तु आप निश्चन्त रहें। भविष्यके लिये मेरा इशारा है।

मोहनदास गांधी

बनारसीदास चतुर्वेदी
हीराबाग
गीरगांव मुंबई

जी० एन० २५७९ की फोटो-नकलसे।

१३२. तार : सी० विजयराघवाचार्यको[1]

[१९ अक्तूबर, १९२१]

सी० विजयराघवाचार्य
सेलम

नेहरूजी[2] कार्यसमितिके[3] प्रस्तावकी उपेक्षा कैसे कर सकते हैं? दुःख है आप नाराज़ हैं। आप अलग होनेकी धमकी कैसे दे सकते हैं? बैठक अवश्य होनी चाहिए। जैसा आपकी अन्तरात्मा कहे वैसा करें।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७६४०) की फोटो-नकलसे।

१. जिस तारके उत्तरमें यह भेजा गया था वह विजयराघवाचार्यने १९ अक्तूबरको भेजा था। तार इस तरह है: "नेहरूजीने जवाबी कार्रवाई करके लड़नेकी धमकी दी है। उनकी लड़ाई काल्पनिक विपक्षीसे होगी। मैं अलग होना या दल बनाने शुरू कर दूँगा। कृपया उनको तार दें। अपने सहज प्रेमके सन्देशपर आग्रह करें, अन्यथा लोग हमारे ऊँचे उद्देश्यपर अनावश्यक हँसेंगे।..."

२. पण्डित मोतीलाल नेहरू, कांग्रेसके तत्कालीन महामन्त्री।

३. इसी कार्यसमितिने उक्त प्रस्ताव द्वारा अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठक ४ नवम्बरको बुलाई थी।

१३३. तार : मोतीलाल नेहरूको

अहमदाबाद
१९ अक्तूबर, १९२१

मैं आपसे सहमत हूँ कि अध्यक्ष कार्यसमितिके प्रस्तावकी उपेक्षा नहीं कर सकता। कमेटीकी[1] वैठक निश्चयके अनुसार दिल्लीमें होनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २२-१०-१९२१

१३४. पत्र : जी० वी सुब्बारावको

साबरमती
१९ अक्तूबर, १९२१

प्रिय मित्र,

इसमें सन्देह नहीं कि खेती करना, पुराने ढंगके बुनाईके पेशेकी अपेक्षा अधिक अच्छा है; किन्तु उसके लिए पूँजीगत अधिक व्यय, धैर्य और लगनकी जरूरत है तथा उसमें घरसे बाहर जाकर श्रम करना पड़ता है। इसलिए जो सरकारी नौकर दफ्तरमें मेजोंपर काम करनेका अभ्यस्त होता है उसके लिए एकाएक खेतीका काम शुरू कर देना शायद व्यावहारिक नहीं। फिर सामान्यतः उसके साधन शायद इतने सीमित होते हैं कि मामूली पैमानेपर भी खेती शुरू करना उसके लिये असम्भव होगा।

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ३६२२) की फोटो-नकलसे।

१. अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी।

१३५. पत्र : महादेव देसाईको

आश्रम

बुधवार [१९ अक्तूबर, १९२१को या उसके पश्चात्][1]

भाई श्री ५ महादेव,

तुम्हारा भेजा हुआ चेक तो मुझे रखना ही पड़ेगा। बादमें, जब तुम्हें जरूरत होगी तब तुम्हें पैसा मुझसे माँगना पड़ेगा। ऐसा लगता है कि मोतीलालजीको परिवारके लोगोंकी इन बीमारियोंसे छुटकारा कभी मिलेगा ही नहीं।

स्वदेशीके विषयमें लोगोंको अपनी बात मैं जँचा नहीं पाता, इससे क्या मेरी तपस्याकी कमी नहीं सूचित होती? एक पूर्ण तपस्वी बोले बिना भी लोगोंको अपनी भावनाओंसे प्रभावित करता है। कुछ लोग संकेतमात्रसे, तो कुछ बोलकर और कुछ लिखकर ही अपनी बात समझा पाते हैं? इस सबका क्या रहस्य है? जो लोग खादी केवल मेरी हाजिरीमें पहनते हैं वे मेरी तपस्याके कारण नहीं, मेरे प्रति अपने प्रेमके कारण ही ऐसा करते हैं। भविष्यमें स्वतन्त्र हिन्दुस्तान अपना अनाज क्या विदेशोंसे मँगायेगा? यदि नहीं, तो कपड़ा भी नहीं मँगायेगा। क्या हम पानी और दवा भी विदेशसे मंगायेंगे? अलबत्ता, जब हमारे देशमें कपास पैदा होना बन्द हो जायेगा तब जरूर हमारा धर्म बदल जायेगा। लेकिन तब तो हमें यह देश ही छोड़ देना पड़ेगा।

यह तो तुमने सुन ही लिया होगा कि किशोरलालने एकान्तमें एक झोंपड़ी बनवाई है और आजकल उसीमें रह रहे हैं।

गुजराती पत्र (एस० एन० १०६०१) की फोटो-नकलसे।

१३६. टिप्पणियाँ

गीतामें चरखा

कविवर [रवीन्द्रनाथ ठाकुर] ने 'मॉडर्न रिव्यू' में इस बातके खिलाफ अनेक आपत्तियाँ उठाई थीं कि एक पुनीत कार्य मानकर सभीको चरखा चलाना चाहिए। पिछले अंकमें मैंने उनकी इन आपत्तियोंका उत्तर देनेकी कोशिश की है।[2] मैंने पूरे विनीत भावसे और इस इच्छाके वश ऐसा किया है कि कविवरको तथा उनके सदृश मत रखनेवाले अन्य लोगोंको अपने मतसे सहमत कर सकूँ। पाठकोंके लिए यह जानना रोचक होगा कि मेरी यह मान्यता बहुत अंशोंमें 'भगवद्गीता' पर आधारित है।

१. अन्तिम अनुच्छेदमें किशोरलाल मशरूवालाके एकान्तमें एक झोंपड़ीमें जाकर रहनेका उल्लेख है। श्री मशरूवाला इस झोंपड़ीमें शुक्रवार, १४ अक्तूबर, १९२१ को रहनेके लिए गये थे।

२. देखिए "महान् प्रहरी", १३–१०–१९२१।

सम्बन्धित श्लोक मैंने उस लेखमें ही दे दिये हैं। अब नीचे उन लोगोंके लाभके लिए, जो संस्कृत नहीं जानते, उन श्लोकोंका अंग्रेजी अनुवाद दे रहा हूँ। यह 'भगवद्गीता' के 'साँग सेलेशियल' नामसे एडविन आर्नाल्ड-कृत अनुवादसे लिया गया है।[1]

यहाँ कर्मसे तात्पर्य, निस्सन्देह, शारीरिक श्रमसे है, और यज्ञरूपमें किया गया कर्म वही है जो समान लाभके लिए सभी लोगों द्वारा किया जाये। ऐसा कर्म, ऐसा यज्ञ सिर्फ चरखा चलाना ही हो सकता है। मैं यह नहीं कहना चाहता कि ये श्लोक रचते समय 'गीता'कारके मनमें चरखा ही रहा होगा। उन्होंने तो सिर्फ आचरणका एक बुनियादी सिद्धान्त प्रस्तुत कर दिया। और भारतमें इन श्लोकोंका अध्ययन करते हुए तथा भारतपर उन्हें लागू करते हुए तो मैं यही सोच सकता हूँ कि कताईका काम ही वह शारीरिक श्रम है, जिसमें यज्ञकी गरिमा है। मैं तो इससे शुभतर या बढ़कर राष्ट्रीय कर्मकी कोई कल्पना ही नहीं कर सकता कि जो काम करना हमारे सभी गरीब भाइयोंके लिए अनिवार्य है, उस कामको सभी लोग प्रतिदिन ज्यादा नहीं तो एक घंटा ही करें, और इस तरह उनके साथ और फलस्वरूप समस्त मानव-जातिके साथ तादात्म्य स्थापित करें। मैं ईश्वरकी इससे बड़ी आराधनाकी कल्पना नहीं कर सकता कि मैं गरीबोंके लिए उसी तरह काम करूँ जिस तरह वे स्वयं करते हैं। चरखेका मतलब है दुनियाकी दौलतका अधिक न्यायोचित और समान बँटवारा।

बंगालका उत्साह

जिन लोगोंने कविवरका वह लेख नहीं पढ़ा है, उन्हें यह जानकर सन्तोषका अनभव होगा कि वे चरखेके बिलकुल विरुद्ध हैं, ऐसी बात नहीं है। उन्हें इस बातकी जरूरत नहीं दिखाई देती कि सभी लोग चरखा चलायें। लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि जैसे-जैसे हम इस क्षेत्रमें आगे बढ़ते जायेंगे, भारतसे उसकी कष्टकर और बढ़ती हुई गरीबीको दूर करनेके साधनके रूपमें चरखेकी कार्य-साधकता और महत्वमें लोगोंका सन्देह समाप्त हो जायेगा। डा० प्रफुल्लचन्द्र रायने चरखेके महत्वको खुले दिलसे स्वीकार किया है। यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। और इससे भी बड़ी बात चिट्ठियोंसे प्राप्त यह समाचार है कि देशबन्धु दास तथा उनकी पति-परायण पत्नी जहाँ कहीं जाती हैं, लोग सामूहिक रूपसे विदेशी वस्त्रोंका त्याग करके चरखेको अपना लेते हैं। यहाँ एक पत्रके अंशका अनुवाद दिया जा रहा है। यह पत्र एक बंगाली भाईको उनके पिताने लिखा है, जो चाँदपुरके पास रहते हैं, जिसे गोरखोंके कारनामेने भारत-भरमें प्रसिद्ध कर दिया है। चाँदपुरके ही स्टेशनपर गोरखोंने उस भयंकर रात्रिमें धावा किया था और असहाय कुलियोंको स्टेशनके अहातेसे निकाल बाहर किया था। उक्त पत्रका अंश इस प्रकार है:

> **कल समूह-गायन करता हुआ एक जुलूस निकला, हाथ-कते सूतकी प्रदर्शनी हुई और नीरद पार्कमें एक भारी सार्वजनिक सभा हुई। . . . एक बहुत**

१. अंग्रेजी अनुवादका हिन्दी रूपान्तर यहाँ नहीं दिया जा रहा है। **भगवद्गीताके** मूल श्लोकोंके लिए देखिए "महान् प्रहरी", १३-१०-१९२१ ।

बड़ी होली जलाई गई, जिसमें टोपियों और कपड़ोंका इतना बड़ा ढेर जलाया गया कि मैं वर्णन नहीं कर सकता। पाल मार्केटका शाह साहूकार अपने विदेशी कपड़ोंका पूराका-पूरा स्टाक ही सभामें ले आया था, जिसे उसने आगको होम दिया। चरखेका प्रचार अबतक उतना अधिक नहीं हो पाया है, लेकिन मैं अब अच्छे परिणामोंकी आशा करता हूँ। मेरे परिवारमें तुम्हारी माँ, बहन और तीन भाई —— सभी बहुत अच्छा सूत कात रहे हैं। . . .

सारे बंगालमें जो कुछ हो रहा है, यह उसका एक नमूना-भर है। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जब बंगालकी भावना जाग्रत हो उठेगी तब वह इस क्षेत्रमें सबसे आगे होगा।

उपाधियोंकी सूची

उपाधियोंकी सूची रोज-ब-रोज बढ़ती ही जा रही है। एक ओर जहाँ हम सरकारके लिए एक किस्मके खिताबोंको छोड़ रहे हैं तहाँ दूसरी तरहके खिताब, और सच्चे खिताब, माँग रहे हैं। इस सम्मानके लिए अभी सबसे हाल ही में गंगाधरराव देशपाण्डे चुने गये हैं। उनका नाम तथा जिन दूसरे बहुतसे लोगोंके बारेमें मैं सोच सकता हूँ उनके नाम देखकर मुझे यकीन होता है कि अब हमारी विजयकी घड़ी निकट आ रही है। बस, हमें सिर्फ बौछारके सामने स्थिर-भर रहना चाहिए। अगर हम सरकारके वारंट आते ही बिना शोरगुल, बिना चीख-पुकार और बिना क्रोधके सरकारके हवाले हो जाया करें तो हम निश्चित मान सकते हैं कि हम शीघ्र ही सफल होंगे। मेरे पास मित्रोंके ऐसे पत्र लगातार आ रहे हैं जिनमें वे पूछते हैं कि अगर तमाम नेता लोग पकड़ लिये गये तो फिर क्या होगा। उनका यह सवाल करना चाहे स्वराज्यके लिए उनकी अयोग्यता न प्रकट करता हो, पर उसके प्रति उनका अविश्वास अवश्य प्रकट करता है। अगर सभी नेता मर जायें तो क्या होगा? हमारी स्वराज्यकी योग्यता तभी सिद्ध होगी जब हम मृत्यु अथवा कैदके कारण अपने नेताओंके हमारे पास न रहनेपर भी बराबर काम करते रहें। नेताओंके जेल जानेकी स्मृतिसे निश्चय ही अनुशासित ढंगसे तथा और अधिक कार्य करनेकी प्रेरणा मिलनी चाहिए। ऐसी अफवाह थी कि ५ तारीखको मैं गिरफ्तार कर लिया जाऊँगा। ऐसा न होनेपर एक दूसरे मित्रको बड़ी निराशा हुई, लेकिन उन्होंने स्वयं अपने और अपने कार्यके विषयमें बड़ा जबरदस्त विश्वास प्रकट किया है। हमें तो बिना किसीके सहारेके अपने ही पाँवपर खड़ा होना चाहिए —— ठीक उसी तरह जिस तरह हम बिना किसी बनावटी इमदादके अपनी साँस लेते और छोड़ते हैं। अगर कर्नाटक वैसा ही देश है जैसी कि मेरी धारणा उसके विषयमें है, तो गंगाधरराव देशपाण्डेकी गिरफ्तारी और उनके जेल जानेके परिणामस्वरूप वहाँ विदेशी कपड़ोंका पूरा बहिष्कार होना चाहिए और बहुत ज्यादा खादी तैयार होने लगनी चाहिए। कर्नाटक तबतक सन्तुष्ट नहीं हो सकता जबतक कि वह खुद अपने ही प्रयत्नोंके द्वारा अपने जेल गये हुए तथा आगे जो जेल जानेवाले हैं उन देशभक्तोंको स्वतन्त्र न करा ले।

अन्य नेता

इस बातमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि बम्बई सरकार नेताओंको जेल भेजनेके काममें बड़े ढंगके साथ लगी हुई है। सो इस तरह कि पीर तुराव अली शाह और पीर मुजहिदको गिरफ्तार करके उसने दो ऐसे मुसलमानोंको गिरफ्तार किया है जिनके अनुयायियोंकी संख्या बहुत बड़ी है और जिनके प्रभावका उपयोग साधारण लोगोंकी हिंसा-वृत्तिको रोकनेके लिए किया जाता था। कहनेकी जरूरत नहीं कि कर्नाटकमें श्रीयुत देशपाण्डेके अद्वितीय प्रभावका उपयोग भी शान्ति-रक्षाके लिए था। इसके बारेमें कोई भी यही सोचेगा कि बम्बई सरकारको अब अपनी नरमीपर शायद शर्म आने लगी और वह अबतककी कसर निकालनेकी कोशिश कर रही है। धारवाड़-निर्णय और सिन्ध तथा कर्नाटककी गिरफ्तारियोंसे लगता है कि बम्बई सरकार लोगोंको हिंसा-के लिए निमन्त्रण-सा दे रही है। लेकिन हमें यह उम्मीद करनी चाहिए कि इसका मौका अब उसके हाथसे निकल गया है। मालूम होता है कि देश अब इस बातको समझ गया है कि उसका हित किस बातमें है। और अब वह सरकारके हाथका खिलौना न बन जायेगा। अगर हिन्दू और मुसलमान एक रहते हैं, जनता अहिंसाके सिद्धान्तको सोच-समझकर बुद्धिपूर्वक अपना लेती है और स्वदेशीका काम तरतीबके साथ होने लगता है तो फिर कोई भी ताकत हमको इसी साल स्वराज्य प्राप्त करनेसे नहीं रोक सकती।

मजिस्ट्रेटकी क्षमा-याचना

पाठकोंको याद होगा कि बुलन्दशहरके मजिस्ट्रेटने श्री त्यागीको थप्पड़ लगवाये थे[1], हालाँकि उस समय उनके मुकदमेकी सुनवाई हो रही थी और इसलिए वे मजिस्ट्रेटके संरक्षणमें थे। मजिस्ट्रेटने इसके लिए मुजरिमसे क्षमा-याचना की। अब मुझे उसका पाठ मिल गया है। वह इस प्रकार है:

अदालतमें हाजिर मुजरिम,

आजकी कार्रवाई आगे चलनेसे पहले मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

ऐसा मैं दो कारणोंसे कर रहा हूँ — एक तो इस कारणसे कि मैं तुम्हारे मामलेकी सुनवाई कर रहा हूँ और यह ठीक नहीं है कि तुम या कोई भी ऐसा सन्देह करे कि तुम्हारी सुनवाई न्यायपूर्वक और उचित ढंगसे नहीं होगी। दूसरा कारण यह है कि सरकारका कोई भी अधिकारी यह नहीं चाहेगा कि कोई भी ऐसी घटना हो जिससे समाजके किसी भी हिस्सेको शिकायतका कोई उचित अवसर मिले — विशेषकर इसलिए कि बहुतसे सिद्धान्तहीन और मौकेका नाजायज फायदा उठानेवाले लोग ऐसी घटनाओंको नमक-मिर्च लगाकर पेश करनेको तैयार बैठे हैं।

पहली सुनवाईके समय मैं अधीर हो रहा था और तुम उद्धत थे। मैंने तुम्हें थप्पड़ लगवाकर गलती की और उसके लिए मुझे खेद है।

१. देखिए "टिप्पणियाँ", १३-१०-१९२१ का उप-शीर्षक "विपरीत दृश्य"।

अब मैं तुम्हें बता दूँ कि अगर अदालतके प्रति तुम्हारा व्यवहार आदरपूर्ण रहेगा तो मैं भी तुम्हारे साथ शिष्टतापूर्ण व्यवहार करूँगा। अगर तुम ठीक व्यवहार नहीं करोगे तो मैं उचित तरीकेसे उसका निराकरण करनेकी कोशिश करूँगा। जो भी हो, तुम्हारे मामलेकी धैर्यपूर्वक, उचित सुनवाई की जायेगी; और ठीक अवसर आनेपर तुमको अगर कोई संगत बात कहनी होगी तो उसे कहनेका तुम्हें पूरा मौका दिया जायेगा।

यहाँ मैं इतना और बता दूँ कि तुमपर जो अभियोग है, उस अभियोगसे इस अदालतमें या किसी अन्य अदालतमें यदि तुम निर्दोष साबित हुए तो तुम्हारे समाजके लोग इस जिलेमें जो अच्छा काम कर रहे हैं, उसका खयाल रखते हुए मैं मलाबार-सहायता कोषमें ५० रुपये दूँगा।

डब्ल्यू० ई० जे० डॉब्स

मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि जैसे सर माइकेल ओ'डायरको कौंसिलकी शानमें गुस्ताखी करनेके लिए क्षमा माँगनेपर मजबूर किया गया था, वैसे ही उक्त मजिस्ट्रेटपर भी दबाव डालकर क्षमा-याचना कराई गई है। इस क्षमा-याचनाकी शब्दावलीमें हार्दिकता या भावनाका अभाव था क्योंकि मजिस्ट्रेटने उसी दिनकी सुनवाईके दौरान अभियुक्तके बयानके एक हिस्सेको, जो उसे पसन्द नहीं था, कार्रवाईके विवरणसे निकालकर उनकी धैर्यपूर्ण सुनवाई करनेका अपना वचन तोड़ दिया। उसने जो अभियुक्तके दोषमुक्त सिद्ध होनेकी शर्तपर वफादार लोगोंका खयाल करके मलाबार सहायता कोषमें ५० रुपये देनेकी बात कही, उससे सिद्ध होता है कि वह सही रास्तेपर आ ही नहीं सकता। उस दानका उद्देश्य उस अपराधको धोना था जो मजिस्ट्रेटने किया था। वफादार लोगोंका अभियुक्तके दोषी अथवा निर्दोष सिद्ध होनेसे क्या सम्बन्ध हो सकता था? फिर उस दानके पीछे अभियुक्तके निर्दोष होनेकी शर्त लगानेकी क्या जरूरत थी? मजिस्ट्रेटने जो अभियुक्तको थप्पड़ लगवाये, उससे एक बहुत गम्भीर सवाल उठ खड़ा होता है। क्या ऐसा कोई व्यक्ति किसी सभ्य सरकारमें एक दिन भी मजिस्ट्रेटके पदपर आसीन रह सकता था? उदाहरणके लिए, क्या इंग्लैंडके मुख्य न्यायाधीश महोदय, जिस कैदीके मामलेकी सुनवाई हो रही हो, उसे थप्पड़ लगवानेके बाद अपने पदपर आसीन रह सकते? अगर भारत सरकार बिलकुल नियम-विधान रहित और सर्वथा गैरजिम्मेदार सरकार नहीं होती तो मजिस्ट्रेटको तुरन्त मुअत्तिल करके उसपर एक जरायमपेशा आदमीकी तरह मुकदमा चलाया जाता। एक न्यायाधीश द्वारा किसी अभियुक्तके मुकदमेकी सुनवाईके दौरान उस अभियुक्तको पिटवाना कोई मामूली बात नहीं है और उसे यों ही टाला नहीं जा सकता।

सहयोग करते जानेमें भी धीरजकी कोई हद होती है। क्या सम्बन्धित भारतीय मन्त्रियोंकी आत्मा, मजिस्ट्रेटने राष्ट्रके प्रति जो अपराध किया है उसके लिए उन्हें धिक्कार नहीं देती? या वे ऐसा मानते हैं कि चूँकि मजिस्ट्रेट उनके विभागमें नहीं है, इसलिए उनपर उसकी कोई जिम्मेदारी नहीं है?

अन्य नेता

इस बातमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि बम्बई सरकार नेताओंको जेल भेजनेके काममें बड़े ढंगके साथ लगी हुई है। सो इस तरह कि पीर तुराब अली शाह और पीर मुजहिदको गिरफ्तार करके उसने दो ऐसे मुसलमानोंको गिरफ्तार किया है जिनके अनुयायियोंकी संख्या बहुत बड़ी है और जिनके प्रभावका उपयोग साधारण लोगोंकी हिंसा-वृत्तिको रोकनेके लिए किया जाता था। कहनेकी जरूरत नहीं कि कर्नाटकमें श्रीयुत देशपाण्डेके अद्वितीय प्रभावका उपयोग भी शान्ति-रक्षाके लिए था। इसके बारेमें कोई भी यही सोचेगा कि बम्बई सरकारको अब अपनी नरमीपर शायद शर्म आने लगी और वह अबतककी कसर निकालनेकी कोशिश कर रही है। धारवाड़-निर्णय और सिन्ध तथा कर्नाटककी गिरफ्तारियोंसे लगता है कि बम्बई सरकार लोगोंको हिंसाके लिए निमन्त्रण-सा दे रही है। लेकिन हमें यह उम्मीद करनी चाहिए कि इसका मौका अब उसके हाथसे निकल गया है। मालूम होता है कि देश अब इस बातको समझ गया है कि उसका हित किस बातमें है। और अब वह सरकारके हाथका खिलौना न बन जायेगा। अगर हिन्दू और मुसलमान एक रहते हैं, जनता अहिंसाके सिद्धान्तको सोच-समझकर बुद्धिपूर्वक अपना लेती है और स्वदेशीका काम तरतीबके साथ होने लगता है तो फिर कोई भी ताकत हमको इसी साल स्वराज्य प्राप्त करनेसे नहीं रोक सकती।

मजिस्ट्रेटकी क्षमा-याचना

पाठकोंको याद होगा कि बुलन्दशहरके मजिस्ट्रेटने श्री त्यागीको थप्पड़ लगवाये थे[1], हालाँकि उस समय उनके मुकदमेकी सुनवाई हो रही थी और इसलिए वे मजिस्ट्रेटके संरक्षणमें थे। मजिस्ट्रेटने इसके लिए मुजरिमसे क्षमा-याचना की। अब मुझे उसका पाठ मिल गया है। वह इस प्रकार है:

> **अदालतमें हाजिर मुजरिम,**
>
> **आजकी कार्रवाई आगे चलनेसे पहले में कुछ कहना चाहता हूँ।**
>
> **ऐसा मैं दो कारणोंसे कर रहा हूँ — एक तो इस कारणसे कि मैं तुम्हारे मामलेकी सुनवाई कर रहा हूँ और यह ठीक नहीं है कि तुम या कोई भी ऐसा सन्देह करे कि तुम्हारी सुनवाई न्यायपूर्वक और उचित ढंगसे नहीं होगी। दूसरा कारण यह है कि सरकारका कोई भी अधिकारी यह नहीं चाहेगा कि कोई भी ऐसी घटना हो जिससे समाजके किसी भी हिस्सेको शिकायतका कोई उचित अवसर मिले — विशेषकर इसलिए कि बहुतसे सिद्धान्तहीन और मौकेका नाजायज फायदा उठानेवाले लोग ऐसी घटनाओंको नमक-मिर्च लगाकर पेश करनेको तैयार बैठे हैं।**
>
> **पहली सुनवाईके समय मैं अधीर हो रहा था और तुम उद्धत थे। मैंने तुम्हें थप्पड़ लगवाकर गलती की और उसके लिए मुझे खेद है।**

१. देखिए "टिप्पणियाँ", १३–१०–१९२१ का उप-शीर्षक "विपरीत दृश्य"।

अब मैं तुम्हें बता दूँ कि अगर अदालतके प्रति तुम्हारा व्यवहार आदर-पूर्ण रहेगा तो मैं भी तुम्हारे साथ शिष्टतापूर्ण व्यवहार करूँगा। अगर तुम ठीक व्यवहार नहीं करोगे तो मैं उचित तरीकेसे उसका निराकरण करनेकी कोशिश करूँगा। जो भी हो, तुम्हारे मामलेकी धैर्यपूर्वक, उचित सुनवाई की जायेगी; और ठीक अवसर आनेपर तुमको अगर कोई संगत बात कहनी होगी तो उसे कहनेका तुम्हें पूरा मौका दिया जायेगा।

यहाँ मैं इतना और बता दूँ कि तुमपर जो अभियोग है, उस अभियोगसे इस अदालतमें या किसी अन्य अदालतमें यदि तुम निर्दोष साबित हुए तो तुम्हारे समाजके लोग इस जिलेमें जो अच्छा काम कर रहे हैं, उसका खयाल रखते हुए मैं मलाबार-सहायता कोषमें ५० रुपये दूँगा।

डब्ल्यू० ई० जे० डॉब्स

मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि जैसे सर माइकेल ओ'डायरको कौंसिलकी शानमें गुस्ताखी करनेके लिए क्षमा माँगनेपर मजबूर किया गया था, वैसे ही उक्त मजिस्ट्रेट-पर भी दबाव डालकर क्षमा-याचना कराई गई है। इस क्षमा-याचनाकी शब्दावलीमें हार्दिकता या भावनाका अभाव था क्योंकि मजिस्ट्रेटने उसी दिनकी सुनवाईके दौरान अभियुक्तके बयानके एक हिस्सेको, जो उसे पसन्द नहीं था, कार्रवाईके विवरणसे निकालकर उनकी धैर्यपूर्ण सुनवाई करनेका अपना वचन तोड़ दिया। उसने जो अभि-युक्तके दोषमुक्त सिद्ध होनेकी शर्तपर वफादार लोगोंका खयाल करके मलाबार सहायता कोषमें ५० रुपये देनेकी बात कही, उससे सिद्ध होता है कि वह सही रास्तेपर आ ही नहीं सकता। उस दानका उद्देश्य उस अपराधको धोना था जो मजिस्ट्रेटने किया था। वफादार लोगोंका अभियुक्तके दोषी अथवा निर्दोष सिद्ध होनेसे क्या सम्बन्ध हो सकता था? फिर उस दानके पीछे अभियुक्तके निर्दोष होनेकी शर्त लगानेकी क्या जरूरत थी? मजिस्ट्रेटने जो अभियुक्तको थप्पड़ लगवाये, उससे एक बहुत गम्भीर सवाल उठ खड़ा होता है। क्या ऐसा कोई व्यक्ति किसी सभ्य सरकारमें एक दिन भी मजिस्ट्रेटके पद-पर आसीन रह सकता था? उदाहरणके लिए, क्या इंग्लैंडके मुख्य न्यायाधीश महोदय, जिस कैदीके मामलेकी सुनवाई हो रही हो, उसे थप्पड़ लगवानेके बाद अपने पदपर आसीन रह सकते? अगर भारत सरकार बिलकुल नियम-विधान रहित और सर्वथा गैरजिम्मेदार सरकार नहीं होती तो मजिस्ट्रेटको तुरन्त मुअत्तिल करके उसपर एक जरायमपेशा आदमीकी तरह मुकदमा चलाया जाता। एक न्यायाधीश द्वारा किसी अभियुक्तके मुकदमेकी सुनवाईके दौरान उस अभियुक्तको पिटवाना कोई मामूली बात नहीं है और उसे यों ही टाला नहीं जा सकता।

सहयोग करते जानेमें भी धीरजकी कोई हद होती है। क्या सम्बन्धित भारतीय मन्त्रियोंकी आत्मा, मजिस्ट्रेटने राष्ट्रके प्रति जो अपराध किया है उसके लिए उन्हें धिक्कार नहीं देती? या वे ऐसा मानते हैं कि चूँकि मजिस्ट्रेट उनके विभागमें नहीं है, इसलिए उनपर उसकी कोई जिम्मेदारी नहीं है?

असहयोगीका कर्त्तव्य सीधा-सादा है। सरकारी अधिकारियों द्वारा कानून और नैतिकताको भंग करनेके ऐसे एक-एक मामलेसे हमें अपने काममें और भी संकल्पके साथ जुट जानेकी प्रेरणा मिलनी चाहिए। जिस प्रणालीके अन्तर्गत ऐसा बर्बरतापूर्ण आचरण सम्भव है, वह प्रणाली जबतक जड़मूलसे नष्ट नहीं हो जाती तबतक हम सन्तुष्ट नहीं हो सकते।

अभियुक्तका बयान

अपने मामलेकी दूसरी सुनवाईसे दो दिन पूर्व श्री त्यागीने मजिस्ट्रेटको निम्नलिखित बयान भेजा:

वन्देमातरम्,

बुलन्दशहरके जिला मजिस्ट्रेटके न्यायालयमें।

भारतीय दण्ड-संहिताके खण्ड १२४ और १५३के अधीन अभियुक्त

महावीर त्यागीकी ओरसे

मैं, महावीर त्यागी, एक निर्दोष अभियुक्त, निम्नलिखित बयान देनेपर मजबूर हो गया हूँ। इस बयानमें मैं कहना चाहता हूँ कि उक्त मजिस्ट्रेटने अपने अत्याचार और अयोग्यताका परिचय देते हुए इसी ३ तारीखको खुली अदालतमें मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया जो मेरे आत्म-सम्मान, धर्म और राष्ट्रीयताको चोट पहुँचानेवाला था। उसने मुझे "सावधान" मुद्रामें खड़े रहनेको मजबूर किया और मुझे धमकी दी कि तुम्हें पुलिससे ठोकरें लगवाऊँगा और सचमुच मुझे थप्पड़ लगवाये भी। मजिस्ट्रेटका यह कार्य सर्वथा गैर-कानूनी और बर्बरतापूर्ण था। इसलिए अपने राष्ट्रीय, धार्मिक और व्यक्तिगत सम्मान तथा स्वाभिमानकी रक्षा करनेके लिए मैंने, विरोधके तौरपर, मौनव्रत धारण करनेका निश्चय किया है, और तय किया है कि जिस अदालतने सारे कानून-कायदे ताकपर रख दिये हैं उसमें मैं अपना मुँह नहीं खोलूँगा।

(टिप्पणी — यहाँ बयानमें से अदालतने अभियुक्तकी इच्छाके खिलाफ निम्नलिखित शब्द निकाल दिये और उसपर हस्ताक्षर और तारीख दिलवा दी: "जैसी कि पंजाबमें मेरी बहनोंकी बेहुरमती की गई और वह बेहुरमती इन्साफके लिए दरबार-ए-इलाहीमें पेश है", वैसे ही) मैं अपनी बेहुरमतीको भी, जो उन बहनोंकी बेहुरमतीके मुकाबले कुछ नहीं है, दरबार-ए-इलाहीके इन्साफपर छोड़ता हूँ। यह सम्भव है कि मेरे साथ जो दुर्व्यवहार किया गया, उसका उद्देश्य जनताको भड़काना रहा हो, लेकिन मैं अपने अनुभवसे यही कहूँगा कि अब भारतकी जनता काफी समझदार हो गई है। वह हर अत्याचार बरदाश्त कर सकती है, लेकिन महात्मा (गांधी) ने उसके लिए जो अहिंसात्मक कार्यक्रम निर्धारित कर दिया है, उससे वह एक पग भी पीछे नहीं हटेगी।

अपने देशकी आजादीके लिए ईश्वरसे प्रार्थना करता हुआ —

मैं हूँ,
मौनव्रती
महावीर त्यागी

बुलन्दशहर जेल,
४ अक्तूबर, १९२१

यह बड़ा साहसपूर्ण और निर्भीक बयान है, और अगर इसमें कही गई बातें श्री त्यागीकी अपनी ही भावनाएँ व्यक्त करती हैं तो जिस समय उनको थप्पड़ लगाये गये थे उस समयके उनके आचरणमें साहसका अभाव देखनेवालोंको अपना विचार बदलनेकी जरूरत है। मामला बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे कैदियोंकी शारीरिक सुरक्षाका सवाल जुड़ा हुआ है। इसलिए इससे उठनेवाले सवालपर कुछ विस्तारपूर्वक विचार करना जरूरी है।

मेरे विचारसे तो "मुँह बन्द रखने" और "मौनव्रती" का खिताब लेनेसे कोई फायदा नहीं है। जिस दिन कैदीको पीटा गया, उस दिन उसका स्पष्ट कर्त्तव्य था कि वह स्वेच्छासे अदालतमें रहनेसे इनकार कर देता। उसे तत्काल उसी स्थानपर उस तथाकथित जज द्वारा अपने मुकदमेकी सुनवाईकी कार्रवाईमें शरीक होनेसे इनकार कर देना चाहिए था। उसे इतना तो करना ही चाहिए था कि वह वहाँ बैठ जाता और इस तरह जाहिर कर देता कि वह उस न्यायालयके अधिकार क्षेत्रको स्वीकार नहीं करता। इस सबका मतलब शायद यह होता कि उसे और मारा जाता, और सजा तो ज्यादा दी ही जाती। लेकिन बलवानके अस्त्रके रूपमें अहिंसाके प्रयोगका मर्म ही यह है कि अत्याचारके निवारणके लिए खुशी-खुशी कष्ट उठाया जाये और शारीरिक चोट सहनेके लिए तैयार रहा जाये। सामान्यतया इस आन्दोलनमें वारंट आनेपर अदालतमें हाजिर होनेकी अपेक्षा की जाती है या उसकी छूट दी गई है क्योंकि इसमें वैसे आचरणकी पूर्वकल्पना नहीं की गई थी जैसा कि बुलन्दशहरके मजिस्ट्रेटने किया। लेकिन मजिस्ट्रेटके इस असामान्य आचरणका तकाजा है कि उसके निराकरणके लिए असामान्य उपाय भी अपनाया जाये।

बयानमें अहिंसापर जोर दिया गया है, और यह ठीक ही किया गया है। लेकिन कोई मुझे गलत न समझे। अहिंसाकी प्रतिज्ञा हमपर यह बन्धन नहीं डालती कि कोई हमारा अपमान करे और हम उसमें सहयोग करें। इसलिए अहिंसाकी प्रतिज्ञा हमसे यह अपेक्षा नहीं रखती कि हम अधिकारियोंका आदेश मिलते ही चुपचाप पेटके बल रेंगने लगें, या नाकसे लकीरें खींचें, या ब्रिटिश झंडेको सलामी देने जायें या ऐसा कुछ करें जो हमारे लिए अपमानजनक हो। इसके विपरीत, हमने जिस धर्म और सिद्धान्तको अपनाया है, उसका तकाजा यह है कि भले ही हमें गोलीसे उड़ा दिया जाये, किन्तु हम ऐसा कोई काम नहीं करें। तो उदाहरणके तौर पर कह सकते हैं कि जब जलियाँवाला बागमें लोगोंपर गोलियाँ चलने लगीं तो उस समय वहाँसे भाग खड़े होना या कि पीठ दिखाना उनका कर्त्तव्य नहीं था। अगर उनतक अहिंसाका सन्देश पहुँचा होता तो उनसे अपेक्षा यही की जाती कि जब उनपर गोलियाँ चलने लगीं, उस समय वे सीना खोलकर आगे बढ़ते और इस विश्वासके साथ अपने प्राण उत्सर्ग कर देते कि उनका यह प्राणोत्सर्ग उनके देशको मुक्ति दिलायेगा। जो अहिंसाका व्रती है वह अत्याचारीकी शक्तिपर हँसता है और उसके वारका जवाब न देकर तथा अपने स्थानपर डटा रहकर उसे निष्प्रभ बना देता। है। हम लोग जनरल डायरके हाथोंमें खिलौने बन गये, क्योंकि हमने वैसा ही आचरण किया जैसे आचरणकी वे आशा रखते थे। वे चाहते थे कि उनकी गोलियोंकी बौछारसे डरकर हम भाग

जायें; वे चाहते थे, हम अपने पेटके बल रेंगें, अपनी नाकसे लकीर खींचें। यह उनके "आतंक" के खेलका हिस्सा था। जब हम आमने-सामने डटकर आतंकका सामना करते हैं तो वह ऐसे विलीन हो जाता है मानो कोई परछांई हो। यह हो सकता है कि हम सभी अपने भीतर वैसा साहस विकसित नहीं कर पायें, लेकिन मेरा निश्चित विश्वास है कि अगर हममें से कुछमें भी ऐसा साहस न जगे कि हम प्रतिकारके लिए अपना हाथ उठाये बिना चट्टानकी तरह अडिग रह सकें तो इस वर्ष स्वराज्य मिलना असम्भव है। जब अत्याचारीके प्रहारका कोई उत्तर नहीं मिलता, कोई उस पर उलट कर प्रहार नहीं करता तो वह स्वयं ही उस प्रहारका शिकार होता है — ठीक वैसे ही जैसे कोई हवामें जोरसे अपना हाथ मारे तो उसका हाथ उखड़ जाता है, और किसीका कुछ नहीं बिगड़ता।

एक प्रसंगोचित सवाल

और जैसे हमें उपर्युक्त ढंगके ठंडे साहसकी जरूरत है, वैसे ही अगर हम सविनय अवज्ञा करने लायक बनना चाहते हैं तो हमें पूर्ण अनुशासनकी जरूरत है और अपने भीतर स्वेच्छासे आज्ञा पालन करनेका गुण विकसित करना है। सविनय अवज्ञा अहिंसाकी सक्रिय अभिव्यक्ति है। सविनय अवज्ञा बलवानोंकी अहिंसाको कमजोरोंकी निष्क्रिय यानी निषेधात्मक अहिंसासे अलग करके दिखाती है। और जैसे कमजोरीसे हम स्वराज्य नहीं पा सकते, वैसे ही निषेधात्मक अहिंसा हमें कभी अपने लक्ष्यतक नहीं पहुँचा सकती।

तो क्या हममें आवश्यक अनुशासन है? जैसा कि एक मित्रने मुझसे पूछा, क्या हमने स्वयं अपने ही नियमों और प्रस्तावोंपर चलनेकी भावना विकसित की है? पिछले बारह महीनोंमें वैसे हमने बहुत अधिक प्रगति की है, लेकिन निश्चय ही इतनी प्रगति नहीं की है कि हम निश्चित भावसे सविनय अवज्ञा प्रारम्भ कर सकें। जो नियम हम स्वेच्छासे बनाते हैं और जिनका पालन नहीं करनेपर हमें अपनी अन्तरात्माके धिक्कारके अलावा और किसी दण्डका भय नहीं है, उन्हें कर्त्तव्यके बन्धनकी तरह उन नियमोंसे भी अधिक बन्धनकारी मानना चाहिए जो हमपर किसीके द्वारा थोप दिये जाते हैं या जिन्हें भंग करनेपर जुर्माना वगैरह देकर हम अपने कर्त्तव्यसे छुट्टी पा जाते हैं। तो इससे निष्कर्ष यही निकलता है कि अगर हमने स्वयं अपने नियमोंका पालन करना नहीं सीखा है, दूसरे शब्दोंमें, अगर हमने अपना वचन निभाना नहीं सीखा है, तो इसका मतलब यह है कि हम उस अवज्ञाके योग्य नहीं हैं जिसे किसी भी तरह सविनय अवज्ञा कहा जा सकता है। इसलिए मैं सभी कांग्रेसियोंसे, सभी असहयोगियोंसे, और सबसे बढ़कर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सभी सदस्योंसे कहता हूँ कि वे, चाहे स्त्री हों या पुरुष, कठिनसे-कठिन आत्म-निरीक्षण करें और जहाँ उनसे चूक हुई हो वहाँ अपनेमें सुधार करके अपने आपको कांग्रेस और अपने स्वीकृत धर्मके सच्चे अनुगामी बनायें।

आगामी बैठक

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी आगामी बैठकमें, जहाँतक उन तीन लक्ष्योंका सम्बन्ध है जिन्हें हमें इसी साल प्राप्त करना है, लगभग हमारे भाग्यका निबटारा हो

जायेगा। उसमें कोई ऐसा कार्यक्रम तैयार होना चाहिए जिसे अगर हम स्वीकार कर लें तो फिर अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर भी पूरा करें। मैं आशा करता हूँ कि हर सदस्य अपने निर्वाचन क्षेत्रसे सम्बन्धित सभी बातोंकी पूरी-पूरी जानकारी लेकर आयेगा। और मैं यह आशा करता हूँ कि हर कोई, जहाँतक उस कार्यक्रमके अन्तर्गत उसके अपने दायित्वोंका सम्बन्ध है, अपने मनको सब-कुछ स्वीकार कर लेनेके लिए तैयार करके आयेगा। हर सदस्यको, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, समझना चाहिए कि वह जनताका और विशेष रूपसे अपने निर्वाचकोंका ऐसा सच्चा प्रतिनिधि है जैसे सच्चे प्रतिनिधि होनेका दावा नई कौंसिलोंके सदस्य किसी तरह नहीं कर सकते। अगर उसे जनताके एक प्रतिनिधिकी हैसियतसे दो महीनेमें राष्ट्रीय लक्ष्यकी प्राप्तिमें अपनी उचित भूमिका निभानी है तो उसे अपनी जिम्मेदारीका अर्थ ठीकसे समझ लेना चाहिए।

और भी हस्ताक्षर

कराची-प्रस्ताव सम्बन्धी एक ज्ञापनमें[1] अपने हस्ताक्षर दाखिल करानेके लिए मेरे पास तारों और पत्रोंका तांता लग गया है। ये तार देशबन्धु दास-जैसे बड़ेसे-बड़े लोगोंसे लेकर साधारणसे-साधारण लोगोंतक ने भेजे हैं। मैं सभी नाम नहीं बता रहा हूँ, क्योंकि यह जरूरी नहीं समझता। यह इस बातको प्रकट करनेका एक रास्ता था कि सिर्फ मुसलमान मुल्ले आदि ही इस सरकारकी सेवा करना पापमय नहीं मानते, और कराची-प्रस्तावके हामी सिर्फ अली-बन्धु और उनके साथी अभियुक्त ही नहीं हैं। अगर सरकार हस्ताक्षरकर्त्ताओंको गिरफ्तार करे तो बहुत-से दूसरे लोग भी इस सम्मानको प्राप्त करनेके लिए घोषणापत्रपर हस्ताक्षर करनेको तैयार हैं।

कांग्रेसकी वित्तीय स्थिति

अखबारोंमें मैंने तिलक स्वराज्य कोषके लिए उगाही और उस रकमकी व्यवस्था-के बारेमें आलोचना पढ़ी है। बेशक जनताको इस कोषके बारेमें और कांग्रेसके अन्य चन्दोंके सम्बन्धमें जाननेका हक है। मेरे विचारसे, कांग्रेसकी वित्तीय स्थिति आज जितनी सन्तोषजनक कभी नहीं रही। श्री सोपारीवालाको सारे भारतमें कांग्रेसका लेखा-परीक्षक नियुक्त किया गया है। जब श्री सोपारीवाला कांग्रेसकी सभी शाखाओंका निरी-क्षण करके स्थितिके बारेमें अपनी रिपोर्ट दे देंगे तब इस विषयपर अधिक निश्चितता-पूर्वक कुछ कहा जा सकेगा। उगाहीके बारेमें १ जुलाईको जो घोषणा की गई थी[2], वह अबतक कायम है। श्री दासका तार पढ़नेमें मैंने एक गलती की थी। मैंने यह पढ़ा था कि पन्द्रह लाख इकट्ठा किया जा चुका है और दस लाख और इकट्ठा हुआ ही समझा जाये। उनसे मिलनेपर मुझे मालूम हुआ कि पन्द्रह लाखका तो निश्चित वादा किया गया है और वे इस संख्याको पचीस लाखतक ले जानेकी आशा करते हैं। जब मैं पिछली बार कलकत्ता गया, उस समयतक श्री दास पन्द्रह

१. देखिए "एक ज्ञापन", ४–१०–१९२१।
२. देखिए खण्ड २०।

लाखकी वह रकम इकट्ठा नहीं कर पाये थे, जिसका निश्चित वादा किया गया है। लेकिन निश्चय ही उन्हें यह रकम इकट्ठा कर लेनेकी आशा थी और दस लाख अतिरिक्त भी। खैर, यह दस लाख न भी मिले तो भी, एक करोड़ रुपये इकट्ठा हो जाना तो निश्चित ही है। अन्य प्रान्तोंके बारेमें बताई गई राशियाँ कम करके बताई गई थीं। अधिकांश पैसा निश्चय ही अब इकट्ठा किया जा चुका है। कुछ देनदारियाँ अभी बाकी हैं। हर प्रान्तको अपनी वित्तीय स्थितिकी जानकारी है। हर प्रान्त अपना हिसाब-किताब अलग रखता है और उसकी जाँच कोई भी सदस्य कर सकता है। मुझे मालूम है कि कुछ प्रान्तोंमें समय-समयपर हिसाब प्रकाशित होता रहता है और स्थानीय लेखा-परीक्षक उसकी जाँच भी करते हैं। अधिकांश प्रान्तोंने अपना-अपना बजट बना लिया है, और वे स्वीकृत बजटके अनुसार ही खर्च करते हैं। यह सम्भव है कि कुछ प्रान्तोंने दूसरे प्रान्तोंके मुकाबले अधिक लापरवाहीसे खर्च किया हो, यह भी सम्भव है कि कोई बाहरी आदमी हर प्रान्तमें यह सिद्ध कर दिखाये कि वहाँके किसी-न-किसी-विभागमें फिजूलखर्ची हुई है। लेकिन इतना तो मैं निश्चित तौरपर जानता हूँ कि अधिकांश प्रान्तोंमें प्रान्तीय संगठनोंके सदस्योंकी जानकारीमें और उनकी स्वीकृतिसे ही खर्च किया गया है और किया जा रहा है। जहाँतक मैं जानता हूँ, हर प्रान्तमें अध्यक्षपदपर बड़े-बड़े ईमानदार लोग हैं। सर्वश्री जमनालाल बजाज और उमर सोबानीके रूपमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको ऐसे कोषाध्यक्ष प्राप्त हैं जिन्हें सर्वत्र सम्मानकी दृष्टिसे देखा जाता है और सर्वश्री नेहरू, अन्सारी तथा राजगोपालाचारीके रूपमें उसे ऐसे मन्त्री मिले हुए हैं जिनसे अधिक योग्य, अध्यवसायी या ईमानदार आदमी मिलने असम्भव हैं। इसलिए मैं अपने व्यस्त पाठकोंको, जो कांग्रेसकी वित्तीय स्थिति-की इतनी अधिक चिन्ता करते हैं, बेहिचक यह आश्वासन दे सकता हूँ कि कांग्रेसके अधिकारियोंने कांग्रेसके सभी कोषोंकी उगाही और उसकी समुचित व्यवस्थाके लिए वह सब-कुछ कर लिया है जो मनुष्यके वशमें है।

परराष्ट्र नीति

कार्यसमितिने परराष्ट्र-नीतिसे सम्बन्ध रखनेवाले अपने प्रस्तावका जो मसविदा तैयार किया है और जगह-जगह भेजा है, उससे देशमें कुछ सनसनी-सी फैल गई है। कार्यकारिणी समितिको इसपर गम्भीरताके साथ चर्चा करते हुए देखकर कुछ लोगोंको आश्चर्य हुआ। इससे यह जाहिर होता है कि उनकी रायमें भारत अभी स्वराज्यके योग्य नहीं है। इससे पहले भी मैंने यह दिखलानेका प्रयत्न किया है कि प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्र हमेशा स्वराज्यके योग्य रहता है, या दूसरे ढंगसे यों कहें कि किसी भी राष्ट्रको किसी दूसरे राष्ट्रकी मुहाफिजत या निगहबानीकी जरूरत नहीं है। आज जबकि हम स्वराज्य स्थापित करनेकी अपनी योजनाओंको अंजाम दे रहे हैं, अपनी परराष्ट्र-नीतिपर विचार करना और उसे निर्धारित करना हमारे लिए जरूरी है। निश्चय ही हम इस बातके लिए बाध्य हैं कि दुनियाको हम अधिकारपूर्वक यह बता दें कि हम उसके साथ कैसा नाता रखना चाहते हैं। अगर हम अपने पड़ोसी देशोंसे निर्भय हैं, या अपने-आपको शक्तिशाली महसूस करते हुए भी हम उनके खिलाफ कुछ

नहीं करना चाहते हैं तो हमें यह बात उनसे स्पष्ट बता देनी चाहिए। इसी तरह संसारको यह बता देना भी हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने सिपाहियोंको फ्रांस और मेसोपोटामियाके मैदाने-जंगमें भेजना चाहते हैं या नहीं। जिन-जिन बातोंका राष्ट्रसे सम्बन्ध है उनके विषयमें अपने विचारोंको प्रकट करनेमें हमें डरनेकी कोई जरूरत नहीं।

लुधियानासे एक सज्जनने एक खासी प्रश्न-माला ही मुझे भेजी है, जिससे यह पता चलता है कि जन-मानस इस प्रश्नपर कितना उद्वेलित है। वे पूछते हैं:

१. भारतकी परराष्ट्र नीतिका संचालन केवल भारतके ही हितको मद्दे-नजर रखकर किया जायेगा या और किसी बातपर ध्यान रखकर?

दूसरी बातोंकी अपेक्षा स्वभावतः भारतके हितपर प्रधान रूपसे दृष्टि रखी जायेगी।

२. इंग्लैंड अथवा दूसरे देशोंके लिए लड़ाई लड़नेमें क्या भारतके धन-जनका उपयोग होना चाहिए?

हाँ, अगर भारत सन्धिकी शर्तोंके अनुसार दूसरे देशोंकी तरफसे लड़ाई लड़नेको बँधा हुआ हो।

३. क्या देशका कानून किसी विशेष सम्प्रदाय, संगठन या समाजके हितोंके अधीन माना जायेगा?

हरगिज नहीं। पर, इसी तरह देशका कानून ऐसा हो सकता है, जिसमें हमारे पड़ोसी मित्रराष्ट्रोंको सहायता देनेकी व्यवस्था हो — उसी तरह जिस तरह अगर आज हम स्वतन्त्र होते तो अपनी सामर्थ्य-भर टर्कीको धन-जनसे सहायता देना चाहते।

४. क्या किसी भी सरकारको किसी भी धर्म, जाति या वर्गकी रक्षाका साधन-स्वरूप होना चाहिए?

स्वराज्य-सरकारका नाम तो तभी सार्थक हो सकता है जब वह भारतमें वर्तमान धर्मों और उसमें बसनेवाली जातियोंकी रक्षा करे।

५. जब शास्त्र या शरीअत किसी बातका विधान करे और देशकी आव-श्यकता उसके विरुद्ध हो तब निपटारा कैसे होगा?

सवाल बेतुका है। किसी सम्प्रदायकी या उसके धर्मकी जो आवश्यकता है, वही देशकी आवश्यकता होगी।

६. क्या जमींदारों और उनकी रैयतका सम्बन्ध विरोधभावपर ही आधारित होना चाहिए?

मैं तो यही आशा करता हूँ कि स्वराज्यके अन्तर्गत उनका सम्बन्ध ऐसा नहीं होगा; उनके सम्बन्ध अच्छे होंगे और एक दूसरेके लिए लाभप्रद।

७. क्या देशभक्तिकी कोई मर्यादा भी होनी चाहिए; और अगर हाँ, तो कैसी?

देशभक्ति सदा ही ईश्वरभक्तिकी तुलनामें गौण है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०–१०–१९२१

१३७. क्या हिन्दू-मुस्लिम एकता बनावटी है ?

'मॉडर्न रिव्यू' के ताजे अंकमें सम्पादकीय टिप्पणीमें हिन्दू-मुस्लिम एकताकी कुछ टीका की गई है, जिसका उत्तर देना जरूरी है। प्रतिभावान् सम्पादकने उस टिप्पणीका शीर्षक रखा है "बनावटी"। और स्पष्टतः वे इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि यह एकता सिर्फ नामके लिए ही है। लेकिन मेरे विचारसे यह बनावटी नहीं है; इतना ही नहीं बल्कि इसके विपरीत एक ऐसी वास्तविकता है जो बड़ी तेजीसे स्थायी रूप ग्रहण करती जा रही है। मैंने 'यंग इंडिया' के स्तम्भोंमें यह स्वीकार किया है कि यह अभी भी एक सुकुमार पौदा है, जिसकी बड़ी सावधानीसे देख-रेख करनेकी जरूरत है। लेकिन निश्चय ही यह कोई बनावटी या दिखावटी चीज नहीं है — भले ही इसका कारण सिर्फ यही हो कि दोनों जातियाँ महसूस करती हैं कि आज वे एक ही विपत्तिसे घिरी हुई हैं।

दुर्भाग्यवश यह बात आज भी सत्य है कि साम्प्रदायिक भावनाका बड़ा जबरदस्त बोलवाला है, पारस्परिक अविश्वासकी भावना अब भी वर्तमान है। पुरानी यादें अभी भी जीवित हैं। यह आज भी सच है कि चुनावोंमें उम्मीदवारोंकी योग्यताका नहीं, धर्मका ही ज्यादा खयाल किया जाता है। लेकिन इन तथ्योंको स्वीकार करनेका मतलब है — इस एकताके मार्गमें आनेवाली कठिनाइयोंको स्वीकार करना। जब दोनों पक्ष उन कठिनाइयोंको जानते हैं और उनके बावजूद ईमानदारीके साथ एकता स्थापित करनेकी कोशिश कर रहे हैं, तब इस प्रयासको या सीमित सफलताको बनावटी कहना ठीक नहीं है।

यह कहना ठीक नहीं है कि खिलाफत संगठनोंने गो-हत्याके विरुद्ध जो अपील की, उसकी ओर मुसलमानोंने कोई ध्यान नहीं दिया और उसका उनपर कोई असर नहीं हुआ। अव्वल तो क्या यह एक बहुत ही उत्साहवर्धक बात नहीं है कि खिलाफत कार्यकर्त्ता, जो स्वयं मुसलमान हैं, गो-हत्या बन्द करवानेके लिए काम कर रहे हैं? दूसरे, मैं सम्पादक महोदयको विश्वास दिलाता हूँ कि यह अपील भारतके लगभग सभी हिस्सोंमें आश्चर्यजनक रूपसे सफल रही। क्या यह कोई छोटी बात है कि गोरक्षाका पूरा भार मुसलमान कार्यकर्त्ताओंने अपने सिर ले लिया है? क्या यह हिन्दुओंकी आत्माको आनन्दसे आलोड़ित कर देनेवाली बात नहीं थी कि सर्वश्री छोटानी और खत्रीने बम्बईमें अपने सहधर्मियोंके हाथोंसे सैकड़ों गौओंको बचाया और उन्हें कृतज्ञताके भावसे भरे हिन्दुओंको सौंप दिया?

यह बेशक सच है कि मौलाना मुहम्मद अली और मैं दोनों ही इस बातकी सावधानी रखते हैं कि "एक दूसरेकी दुखती रग न पकड़ें।" लेकिन पारस्परिक व्यवहारमें हमारी साफगोईका जवाब मुश्किलसे मिलेगा। सम्पादक महोदयने इस एकताको बड़ी निष्ठुरतापूर्वक "ताशका घर" कहा है, लेकिन हमारे लिए वह ऐसा नहीं है। हम तो उसे ऐसा ठोस तथ्य मानते हैं कि उसे अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिए मर मिटनेको भी तैयार हैं। मैं पाठकोंको सूचित कर दूँ कि हमारी इन तमाम यात्राओंके दौरान हमारे

बीच कभी कोई मनमुटाव नहीं हुआ है, कभी एक-दूसरेसे किसी तरहका दुराव-छिपाव करनेकी जरूरत नहीं पड़ी। लेकिन उक्त सम्पादकीयमें सबसे क्रूर प्रहार निम्नलिखित वाक्यमें किया गया है:

अगर उनके भाषणोंके गूढ़ार्थकी ओर ध्यान दें तो यह बात आसानीसे स्पष्ट हो जायेगी कि उनमें से एक मुख्यतः दूर देश टर्कीमें खिलाफतकी दुर्दशाकी चिन्तासे परेशान है तो दूसरेका मुख्य लक्ष्य यहाँ भारतमें स्वराज्यकी स्थापना है।

मेरा दावा है कि हम दोनोंके लिए खिलाफतका सवाल मुख्य सवाल है — मौलाना मुहम्मद अलीके लिए इसलिए कि यह उनका धर्म है, और मेरे लिए इस कारणसे कि खिलाफतके लिए अपना जीवन उत्सर्ग करके मैं मुसलमानोंके छुरेसे गौओंकी रक्षा सुनिश्चित करूँगा, जो मेरा धर्म है। हम दोनोंको स्वराज्य भी समान रूपसे प्यारा है, क्योंकि हम अपने-अपने धर्मकी रक्षा स्वराज्य द्वारा ही कर सकते हैं। यह शायद एक निम्न कोटिका विचार लगे, लेकिन इसमें कहीं कोई दुराव-छिपाव नहीं है। मेरे लेखे भारतकी शक्तिके सहारे खिलाफतकी प्रतिष्ठाको फिरसे कायम कर देना स्वराज्यकी प्राप्ति ही है। जैसे धर्मका आधार प्रेम है, वैसे ही हमारी मैत्रीका आधार भी स्नेह ही है। प्रेमके अधिकारके बलपर मैं मुसलमानोंकी मैत्री पाना चाहता हूँ। अगर एक समुदाय भी प्रेमके मार्गपर आग्रहपूर्वक डटा रहा तो एकता हमारे राष्ट्रीय जीवनमें एक निश्चित तथ्य बन जायेगी। मौलाना मुहम्मद अलीके बारेमें यह कहना अन्याय है कि वे ऐसी चुस्त उर्दू बोलते हैं जो अधिकांश बंगाली मुसलमानोंकी समझमें नहीं आती। मैं जानता हूँ कि वे अपने उर्दू भाषणोंको यथासम्भव अधिकसे-अधिक सरल रखनेकी कोशिश करते रहे हैं।

दुर्भाग्यसे यह सच है कि हमारे बीच अभी भी ऐसे हिन्दू और मुसलमान हैं जो एक-दूसरेके भयके कारण विदेशी शासनका रहना आवश्यक मानते हैं। और स्वराज्य-प्राप्तिमें जो विलम्ब हो रहा है, उसका यह कोई छोटा कारण नहीं है। अभीतक हम इस बातको स्पष्ट रूपसे नहीं समझ पाये हैं कि दोनों समुदायोंके आपसमें खुलकर लड़नेकी सम्भावना वर्तमान विदेशी शासनकी अपेक्षा एक छोटी बुराई है। और अगर हम महज ब्रिटिश सरकारके बीचमें खड़े रहनेके कारण ही एक-दूसरेसे नहीं लड़ रहे हैं तो हमें जितनी जल्दी खुलकर लड़ लेनेको मुक्त कर दिया जाये, दोनों ही समुदायोंके पौरुषके लिए, धर्मके लिए, और देशके लिए उतना ही अच्छा होगा। अगर हम अपना आपा खोये बिना आपसमें लड़ें तो यह कोई नई बात नहीं होगी। इंग्लैंडमें अंग्रेज लोग इक्कीस वर्षोंतक लगातार आपसमें लड़ते रहे और तभी वे झगड़ेसे छुट्टी पाकर शांतिपूर्ण कार्योंके लिए प्रवृत्त हुए। फ्रांसीसी लोग आपसमें ऐसी बर्बरता और नृशंसतासे लड़े, जिसे हालका कोई भी युद्ध मात नहीं कर सकता। और अमेरिकावालोंने भी अपना संघ कायम करनेसे पहले यही सब किया। हमें आपसमें लड़ाई होनेके भयसे पुंसत्व-हीनतासे नहीं चिपके रहना चाहिए। 'मॉडर्न रिव्यू' के योग्य टिप्पणीकारको भी एकतासे उतना ही प्रेम है जितना कि हममें से किसीको; और वे कहते हैं कि आवश्यकता "आमूल-चूल परिवर्तनकी, सब-कुछको बदल देने और नये सिरेसे ही निर्माण करनेकी"

है। लेकिन उपाय खोजनेकी जिम्मेदारी वे पाठकोंपर ही छोड़ देते हैं। बड़ा अच्छा होता, अगर उन्होंने कुछ ठोस सुझाव दिये होते। स्पष्टतः, वे चाहेंगे कि भले ही यह सिर्फ शुरुआतके तौरपर ही हो, किन्तु हिन्दू और मुसलमान आपसमें शादी-विवाह और खान-पानका सम्बन्ध स्थापित करें। यदि यही आमूल-चूल परिवर्तन है जो वे चाहते हैं, और यदि यह स्वराज्य-प्राप्तिकी एक पूर्व-शर्त है तो मुझे लगता है कि हमें उसके लिए कमसे-कम सौ सालतक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। यह तो हिन्दुओंसे अपना धर्म छोड़ देनेको कहनेके बराबर है। मैं यह नहीं कहता कि ऐसा करना गलत है। लेकिन यह अवश्य कहता हूँ कि व्यावहारिक राजनीतिकी सीमामें समानेवाला सुधार नहीं है। और अगर ऐसा परिवर्तन कभी आया भी तो उसका मतलब हिन्दू-मुसलमान एकता नहीं होगा। और वर्तमान आन्दोलनका उद्देश्य है कि निष्ठावान मुसलमान अपना धर्म ज्योंका-त्यों कायम रखें और निष्ठावान हिन्दू अपना धर्म। और तब भी दोनोंके बीच एकता रहे। इसीलिए मैंने सभाओंमें उपस्थित लोगोंसे अक्सर कहा है कि अली-बन्धु और मैं, सभी हिन्दुओं और मुसलमानोंके लिए हिन्दू-मुस्लिम एकताकी एक मिसाल हैं। हम दोनों अपने-अपने धर्मोंमें प्रबल निष्ठा रखनेका दावा करते हैं। दोनों भाइयोंका मैं बहुत अधिक आदर करता हूँ, फिर भी मैं उनके किसी भी लड़केसे अपनी बेटीकी शादी नहीं कर सकता, और मैं जानता हूँ वे भी कुछ ऐसा सोचकर कि हिन्दू होनेके बावजूद मैंने अपनेमें इतना परिवर्तन कर लिया है कि उनकी लड़कीका हाथ अपने लड़केके हाथमें दिलानेको लालायित हूँ, अपनी लड़की मेरे लड़केको ब्याह नहीं देंगे। मैं उनके सामिष भोजनमें शामिल नहीं होता, और वे मेरी इस कट्टरताका — अगर मेरे इस संयमको कट्टरता कहा जा सके तो — बड़ी सावधानीसे खयाल रखते हैं। और फिर भी मैं नहीं जानता कि किन्हीं तीन व्यक्तियोंके हृदय उस तरह एकात्म हैं जिस तरह अली-बन्धुओंका और मेरा हृदय है। और मैं पाठकोंको भरोसा दिलाता हूँ कि यह एकता बनावटी नहीं, बल्कि ऐसी स्थायी मैत्री है जो एक दूसरेके विचारों और आचार-व्यवहारके प्रति विशिष्ट आदरभाव और सहिष्णुतापर आधारित है। और मुझे ऐसा कोई भय नहीं है कि जब अंग्रेजोंका सुरक्षादायी हाथ मेरे ऊपरसे हट जायेगा तो अली-बन्धु या उनके मित्र मेरी स्वतन्त्रतापर हाथ डालेंगे या मेरे धर्मपर आघात करेंगे। और मेरी इस निर्भयताका प्रथम आधार तो ईश्वर और उसका यह आश्वासन है कि मेरी सृष्टिका जो जीव मुझसे डरकर चलनेकी कोशिश करेगा वह सर्वदा सुरक्षित रहेगा, और दूसरा आधार है अली-बन्धुओं और उनके मित्रोंका सच्चा और खरा आचरण; हालाँकि मैं जानता हूँ कि अली-बन्धुओंमें से कोई भी एक मुझ-जैसे बारह आदमियोंके लिए शारीरिक दृष्टिसे भारी पड़ेगा। और इस विशेष उदाहरणको मैंने सामान्य रूपसे सारे भारतपर लागू किया है और दिखाया है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता तभी सम्भव है जब हममें पारस्परिक सहिष्णुता हो और अपने आपमें, और इसलिए सामान्य रूपसे मानव-प्रकृतिकी नेकीमें, विश्वास हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-१०-१९२१

१३८. मोपला उपद्रवका मतलब

स्कॉटलैंडके एक सज्जनने इस बातपर मेरी खबर ली है कि मैंने इन स्तम्भोंमें मोपला विद्रोहपर काफी नहीं लिखा। वे कहते हैं, इसका परिणाम यह हुआ कि ग्रेट ब्रिटेनमें जो लोग भारतीय मामलोंमें दिलचस्पी रखते हैं वे यह मान बैठे हैं कि भारतमें एक इस्लामी सल्तनत कायम हो गई है। ऐसा नहीं कि यह फटकार सर्वथा अकारण है, किन्तु साथ ही यह बात भी नहीं है कि मैंने इस मामलेमें अपने कर्त्तव्यसे जी चुराया है। बात इतनी ही है कि मैंने यहाँ अपने आपको असहाय पाया है। मैं कालीकट जाकर झगड़ेकी तहतक पहुँचना चाहता था, और मेरा विश्वास था कि मैं ऐसा कर सकता था। लेकिन सरकारकी इच्छा कुछ और ही थी। मुझे दुःखके साथ यह मानना पड़ता है कि जो लोग मौकेपर मौजूद हैं वे इस उपद्रवको समाप्त नहीं करना चाहते हैं। इतना तो निश्चित है कि वे असहयोगियोंको इस फसादको शान्तिपूर्ण ढंगसे समाप्त करनेका श्रेय नहीं देना चाहते। वे एक बार फिर दिखा देना चाहते हैं कि भारतमें अगर कोई शान्ति कायम रख सकता है तो ब्रिटिश सैनिक ही; और तब मैं विरोध करनेके लिए सरकारके निर्देशोंकी अवज्ञा करके उपद्रवग्रस्त क्षेत्रोंमें नहीं जा पाया।

मौकेपर मौजूद लोगोंके बारेमें ऐसा कोई खयाल रखना मेरे लिए सुखकर नहीं। मेरा यह स्वभाव नहीं कि मैं मनुष्यको दुराचारी मानूँ। लेकिन मेरे सामने नौकरशाहीके दुराचारके इतने प्रमाण उपस्थित हैं कि मैं मानता हूँ वह अपना लक्ष्य सिद्ध करनेके लिए कुछ भी कर सकती है। मैं शब्दशः सच कह रहा हूँ कि चम्पारन जानेसे पहले चम्पारनके किसानोंके खिलाफ की गई बर्बरताकी जो कहानियाँ कही जाती थीं उनपर मुझे जरा भी विश्वास नहीं होता था। लेकिन जब मैं वहाँ गया तो मैंने स्थितिको, जितना बताया गया था उससे भी बदतर पाया। मैं यह कतई मान नहीं सका कि बिलकुल निर्दोष लोगोंको उस तरह बिना चेतावनी दिये नृशंसतापूर्वक मौतके घाट उतार दिया जा सकता था, — जैसा कि जलियाँवाला बागमें किया गया। मैं नहीं मान सका कि आदमीको पेटके बल रेंगनेको मजबूर किया जा सकता था। लेकिन पंजाब पहुँचकर मैंने आतंकित मनसे देखा कि जो-कुछ मुझे बताया गया था, उससे भी बुरी बातें हुई थीं। और यह सब कहनेको तो शान्ति और सुव्यवस्थाके नामपर किया गया था, लेकिन वास्तवमें उसका उद्देश्य था झूठी प्रतिष्ठा, एक झूठी प्रणाली और एक अस्वाभाविक व्यापार-व्यवसायको कायम रखना। यह सत्य है कि एक शक्तिशाली लेफ्टिनेंट गवर्नरने चम्पारनमें प्रबल विरोधके बावजूद लोगोंको न्याय दिलाया। लेकिन, यह एक अपवाद था जो कुछ असाधारण कारणोंसे सम्भव हो पाया था। और इसलिए मैं समझता हूँ कि यह मोपला उपद्रव उस प्रणालीके लिए वरदान-स्वरूप आया है जो अपनी ही विशालताके भारसे टूटती जा रही है।

मोपला उपद्रव हिन्दुओं और मुसलमानोंके लिए एक परीक्षा है। हिन्दुओंके मैत्रीभावपर जो यह भार आ पड़ा है उसको क्या वह झेल पायेगा? क्या मुसलमानों-का अन्तस्तल मोपलोंके इस आचरणकी ताईद करता है? सत्य क्या है, यह तो समय ही बतायेगा। मजबूर होकर दार्शनिक भावसे इस होनीको मौखिक रूपसे स्वीकार-भर कर लेना हिन्दुओंकी मैत्रीकी सच्ची परीक्षा नहीं है। हिन्दुओंमें इतना साहस होना चाहिए, इतनी आस्था होनी चाहिए कि वे समझें कि ऐसे धर्मान्धतापूर्ण विस्फोटोंके बावजूद वे अपने धर्मकी रक्षा कर सकते हैं। और मुसलमानोंको तो स्वभावतः मोपलोंके ऐसे आचरणपर, इस तरह जबर्दस्ती लोगोंसे धर्म-परिवर्तन कराने और लूटपाट करने-पर लज्जा और अपमानका अनुभव करना ही चाहिए। उन्हें इतने शान्तिपूर्वक और कारगर ढंगसे काम करना चाहिए कि — धर्मान्धसे-धर्मान्ध मुसलमानोंके लिए भी ऐसे काम करना असम्भव हो जाये। मेरा अपना विश्वास तो यह है कि हिन्दुओंने आम तौरपर मोपलोंके इस पागलपनको बहुत शान्त और निरुद्विग्न भावसे ग्रहण किया है और सुसंस्कृत मुसलमानोंको पैगम्बरके उपदेशोंका मोपलों द्वारा इस तरह अनर्थ करनेपर सचमुच बड़ा दुःख है।

मोपला विद्रोहसे एक और भी सबक मिलता है — यह कि हर व्यक्तिको आत्म-रक्षाका कौशल सिखाना चाहिए। और इस दृष्टिसे हमारे शरीरको प्रतिकार करनेके लिए तैयार करनेकी बजाय हमारी मानसिक स्थितिको उसके उपयुक्त बनाना चाहिए। और अभीतक हमें जो मानसिक प्रशिक्षण दिया गया है, वह है ऐसी स्थितिमें अपने-आपको असहाय महसूस करना। बहादुरी शरीरका नहीं, आत्माका गुण है। मैंने बहुत ही हट्टे-कट्टे और बलिष्ठ लोगोंको भी कायर पाया है और बहुत ही क्षीणकाय लोगोंको भी अद्भुत साहसी पाया है। मैंने दीर्घकाय और बलिष्ठ शरीरवाले कायर पुरुषोंको एक अंग्रेज छोकरेके सामने काँपते देखा है, और भरी हुई पिस्तौल सामने तनी पाकर दुम दबाकर भागते भी देखा है। मैंने एमिली हॉबहाउसको, पक्षाघातसे पीड़ित होनेके बावजूद, प्रबलतम साहसका परिचय देते देखा है। उस महिलाने अकेले ही बहादुर बोअर जनरलों और बोअर औरतोंके टूटते हुए साहसको कायम रखा। हममें से शारीरिक रूपसे दुर्बलसे-दुर्बल लोगोंको भी खतरोंका सामना करना और यह दिखा देना सिखाया जाना चाहिए कि हम किस धातुके बने हुए हैं। दोनोंमें से कौन-सी चीज अधिक घृणित थी, मोपला भाइयोंकी अज्ञानजनित धर्मान्धता, या उन हिन्दू भाइयोंकी कायरता जिन्होंने असहाय होकर कलमा पढ़ा, या अपनी शिखा काटने दी अथवा अपना वस्त्र बदलने दिया? कोई मेरी बातोंका गलत अर्थ न लगाये। मैं चाहता हूँ कि हिन्दू-मुसलमान दोनों ऐसे उद्वेगहीन साहसका विकास करें जिससे वे किसीको मारे बिना खुद हँसते-हँसते मर सकें। लेकिन अगर किसीमें ऐसा साहस न हो तो मैं चाहता हूँ कि वह खतरेका सामना होनेपर कायरतापूर्वक भाग जानेके बजाय मारने और मरनेकी कला सीखे। कारण, जो खतरेका सामना होनेपर भाग खड़ा होता है वह मानसिक रूपसे हिंसा करता है। वह भाग खड़ा होता है इसलिए कि उसमें अपने बैरीको मारते हुए खुद मर मिटनेका साहस नहीं है।

मोपला उपद्रवसे हमें एक और भी सबक मिलता है। ऐसा नहीं हो सकता कि हम अपने देशभाइयोंके किसी अंशको बिलकुल अन्धकारमें छोड़ दें और फिर आशा करें कि उनकी यह अवस्था खुद हमारे ही सिर विपत्ति बनकर नहीं टूटेगी। हमारे अंग्रेज "मालिकों" को इस बातमें कोई दिलचस्पी नहीं थी कि मोपला लोग भी ढंगके नागरिक बनें और सहिष्णुताका गुण सीखें और इस्लामके सत्यको ग्रहण करें। लेकिन हम भी सदियोंसे अपने इन अज्ञान देशभाइयोंकी उपेक्षा ही करते आये हैं। हमने प्यारकी इस पुकारको नहीं सुना और यह प्रयत्न नहीं किया कि कहीं कोई भी ममताकी मानवीय भावनासे अनभिज्ञ या अन्न और वस्त्रके अभावसे पीड़ित न रह जाये। अगर हम समयपर नहीं जगते तो हम देखेंगे कि अज्ञानके अन्धकारमें डूबे सभी वर्ग ऐसे ही भयंकर कृत्य कर रहे हैं। वर्तमान जागरण सभी वर्गोंको प्रभावित कर रहा है। अगर हम अपने कियेका प्रायश्चित्त नहीं करते और अछूतों और तथाकथित अर्ध जंगली कहे जानेवाले कबीलोंके प्रति जल्दी ही न्याय नहीं करते तो वे, हमने उनके प्रति जो अन्याय किया है, उसकी कहानी दुनियाको सुनायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०–१०–१९२१

१३९. पाठकोंसे

इस अंकमें अन्यत्र मैं यह कह चुका हूँ कि अब मैं जहाँतक मुझसे बन सकेगा यह वर्ष गुजरातमें ही बिताना चाहता हूँ और सो भी आश्रममें।

ऐसा करनेका उद्देश्य यही है कि मैं यथासम्भव एकान्तका सेवन कर सकूँ, सोच-विचार कर सकूँ, लिख सकूँ और जिससे मिलना चाहिए उससे मिल सकूँ। यदि मुझे देखनेके लिए सारा दिन ही लोग आते रहें तो मैं यह काम नहीं कर सकता। लोगोंका मेरे प्रति ऐसा प्रेमभाव है कि वे आश्रममें मुझसे मिलनेके लिए आते ही रहते हैं। यदि ऐसा हो तो मुझे जितना काम करना है उतना नहीं हो सकता।

इसलिए 'नवजीवन'के उन पाठकोंसे, जो आश्रममें प्रायः आते रहते हैं, मेरी प्रार्थना है कि महज मुझे देखनेके खातिर वे न आयें। इसकी अपेक्षा अधिक अच्छी बात तो यह है कि वे मुझे देखने आनेके लिए जितना समय नष्ट करते हैं उतना वे पींजने, कातने और बुननेमें लगायें। जिन्हें मुझसे कुछ भी पूछना है वे अगर लिखकर पूछेंगे तो भी उन्हें जवाब मिलेगा।

जिनका आये बिना चल ही नहीं सकता वे यदि पूछकर आयें तो उनका समय बचेगा; अथवा वे शामके तीन बजेसे लेकर चार बजेतक आ सकते हैं; सवेरे तो, कोई मुझसे खास तौरपर पूछे बिना न आये, क्योंकि सवेरेका समय मैं लिखने-पढ़ने आदिमें बिताता हूँ।

जब हम, जो जनताकी सेवा करना चाहते हैं, जनताके हितकी दृष्टिसे अपना और दूसरोंका अच्छेसे-अच्छा उपयोग करेंगे तभी इस बाकी समयमें अपना कार्य पूरा

कर सकेंगे। ऐसा करनेके लिए मैं 'नवजीवन'के पाठकोंसे तो मददकी पूरी-पूरी उम्मीद रखता ही हूँ और मैं मानता हूँ कि यदि 'नवजीवन' के सभी पाठक 'नवजीवन'में दी गई सलाहका पूरा उपयोग करें और उसे अमलमें लायें तो भी हम समयपर ध्येयको प्राप्त कर सकते हैं। सत्य, शौर्य और परिश्रमकी अत्यन्त आवश्यकता है। यदि हम इस वर्ष स्वराज्य प्राप्त न कर सकें तो इसका एकमात्र कारण हमारा आलस्य ही होगा।

उद्योगी स्त्री-पुरुषोंको इस बातका विचार करना चाहिए कि उनका समय कैसे व्यतीत होता है और उसका दैनिक हिसाब रखना चाहिए। उन्हें एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिए, व्यर्थकी बातोंमें नहीं खोना चाहिए और अपनी आजीविका कमाते हुए भी देशके हितका ध्यान रखना चाहिए। इतना ही नहीं, बाकीका समय सिर्फ देशकार्यमें ही लगाना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-१०-१९२१

१४०. टिप्पणियाँ

सूरतका अनुभव

मैं एक दिनके लिए सूरत हो आया हूँ। वहाँ मैं मात्र अनुभव प्राप्त करनेके लिए गया था।

नवसारी, कठोड़ आदि स्थानोंसे भी ऐसी ही माँग की गई थी, लेकिन मैं उसे स्वीकार नहीं कर सका। यदि गुजरातमें भी मैं प्रत्येक स्थानपर जाता-आता रहूँ तो जिस उद्देश्यको दृष्टिमें रखकर मैंने फिलहाल भ्रमण बन्द कर देनेका इरादा किया है वह उद्देश्य पूरा नहीं होगा। मेरे लिए तो यही उचित है कि मैं आश्रममें बैठे-बैठे ही जो लिख पाऊँ सो लिखूँ और जो सुझाव दे सकूँ, सो दूँ।

मैं बहुत बोल चुका हूँ। यदि मेरी उपस्थितिसे किसी स्थानके लोगोंको अधिक बल मिलता है तो मेरे खयालसे उन्हें अब उस बलके बिना भी काम चला लेना चाहिए। यह ज्यादा जरूरी है कि हम लोगोंने अभी जितना बल प्राप्त कर लिया है हम उसीमें इजाफा करें और उसका जितना उपयोग किया जा सकता है, करें; ऐसा करनेपर ही हम इसी वर्ष स्वराज्य प्राप्त करनेके अपने निश्चयको पूरा कर सकेंगे। देशमें जो जागृति आई है उसके ठीक-ठीक उपयोग होते रहनेमें ही स्वराज्य निहित है; ऐसी मेरी मान्यता है। इसलिए लिख-पढ़कर दी गई मेरी सलाह और कातनेके द्वारा दिये गये मेरे उदाहरणके रूपमें ही मेरी सेवाओंका अधिक उपयोग अब जनता कर सकेगी।

मैं सूरत गया था, सो मात्र जाँच करनेके उद्देश्यसे ही गया था। सूरत किस हदतक स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए तैयार हो गया है सो देखनेके लिए मैंने सूरतमें

श्वेत टोपियोंके विशाल समुद्रको देखा और देखा कि वहाँ खादीका ठीक-ठीक उपयोग किया जाता है। लेकिन यह देखकर मैं मुग्ध नहीं हुआ। सूरतके स्त्रीवर्गमें खादीका प्रचार बहुत कम है। वे सब अच्छी-खासी संख्यामें सभामें आईं, तथापि उनके शरीरों-पर मुझे विदेशी कपड़ेकी साड़ियाँ दिखाई दीं। फिर भी सूरत जिलेमें काफी अच्छा काम हुआ है। मुझे लगता है कि इस समय प्रतिस्पर्धा सूरत और खेड़ाके बीच है। इतना होनेपर भी मेरा विचार है कि सविनय अवज्ञा करने योग्य शक्ति सूरतके लोगोंमें नहीं आई है। सूरतके समस्त कार्यकर्त्ता पींजने, कातने और बुननेमें प्रवीण नहीं हैं। सूरतमें हजारों व्यक्तियोंको अभी इस बातका विश्वास नहीं हुआ है कि यदि वे जेल जायेंगे तो उनके पीछे उनके परिवारके लोग सार्वजनिक सहायताके बिना पींजने और कातनेके कामके द्वारा अपनी आजीविका प्राप्त कर सकेंगे।

लेकिन मैं यह मानता हूँ कि सूरत एक मासमें ऐसी तैयारी कर सकता है। सूरत जिलेमें लोग स्वदेशीकी कीमत समझ गये हैं; अब केवल स्वदेशीको सुदृढ़ आधार-पर प्रतिष्ठित करनेकी आवश्यकता है। इसके लिए, मैं मानता हूँ कि सूरत जिलेके कार्यकर्त्ताओंको उसमें जुट जाना चाहिए। इस समय जो स्कूल चालू हैं उनमें कातने-बुननेको प्रमुखता दी जानी चाहिए। शिक्षकोंको भी इसी काममें जुट जाना चाहिए। सूतका प्रकार, नम्बर, मजबूती आदि पहचाननेवाले व्यक्ति एक नहीं अनेक मिलने चाहिए। जबतक हम खादीमय नहीं बनते, हमारी स्त्रियोंमें खादी पहननेका चाव पैदा नहीं हो जाता तबतक हम स्वराज्य प्राप्त करने योग्य नहीं बनते। क्योंकि तबतक भुखमरीका उपचार हमारे हाथ नहीं लगेगा, तबतक हम कंगालकी सेवा करने योग्य नहीं बनेंगे, और जबतक हम इस योग्य नहीं बन पाते तबतक हम सविनय अवज्ञा करनेके योग्य नहीं हैं।

सूरतमें एक सवाल पूछा गया था: "यदि स्त्री-पुरुष खादीका अधिक इस्तेमाल न करें, कातें नहीं तो क्या करना चाहिए?" इसका उत्तर सीधा है। क्या हम यह सवाल पूछनेवाले स्वयं भी कातते और बुनते हैं? यदि दूसरोंको समझाने-बुझानेमें कोई लाभ दिखाई न दे तो क्या हमें अपना प्रत्येक क्षण कातने, बुनने और पींजनेके कामको शास्त्रका रूप देने और उसमें कुशलता हासिल करनेमें नहीं लगाना चाहिए। हम यह मानकर क्यों न चलें कि अपनी परिपूर्णताके द्वारा हम दूसरोंको परिपूर्ण बना सकेंगे? बाड़ बाँधनेसे ही बेलें चढ़ती हैं। प्रत्येक जिलेमें हमें शुद्ध रूपसे पींजने, कातने और बुननेवाले सौ व्यक्ति भी नहीं मिलते, तब फिर स्वदेशी आन्दोलन जोरोंपर नहीं है अथवा लोगोंको खादीमें दिलचस्पी नहीं है — यह कहना निरर्थक है। सौके बाद हम लाख पैदा कर सकेंगे। लेकिन यदि एक भी न हो तो? इसलिए सूरत जिलेके कार्यकर्त्ताओंको मेरी तो यह सलाह है कि वे स्वयं स्वदेशीमें पूर्णता प्राप्त करें और दूसरोंको भी इसमें परिपूर्ण बनायें; इतना तो वे इसी मासमें कर सकेंगे। इससे स्वदेशी खुद-ब-खुद प्रत्येक स्थानपर व्यापक हो जायेगी। और यदि प्रयत्न करनेपर भी हमें सफलता नहीं मिलती तो हम जानेंगे कि हम अभी योग्य नहीं बने हैं। हम जब कभी करें, काम तो हमें यही करना होगा।

राँदेरमें असहयोग

मैं जब सूरतकी जाँच करने गया था तब मैं राँदेर भी हो आया था। मैं राँदेर इससे पहले भी हो आया हूँ और उस समय मैंने राँदेरके आलस्यके सम्बन्धमें निराशा अभिव्यक्त की थी।[1] वह राँदेर अब बदल गया है। अब राँदेरमें सुन्दर राष्ट्रीय स्कूल है। राँदेरमें शराबकी दुकानें बन्द हो गई हैं। और जहाँ देखो वहीं पुरुषोंके शरीरपर खादीके वस्त्र दिखाई देते हैं। राँदेरमें कोई विदेशी कपड़ा बिलकुल नहीं बेच सकता, यदि ऐसा कहें तो ठीक होगा। राँदेरमें मुसलमानोंकी आबादी बहुत ज्यादा है। कितने ही करोड़पति मुसलमान वहाँ रहते हैं। उन्होंने लगभग ६०,००० रुपयेका विदेशी कपड़ा स्मर्ना भेज दिया है। धनिक मुसलमानोंके लड़के शराबकी दुकानोंपर धरना देते थे। इस तरह राँदेरने असहयोग आन्दोलनमें हर तरहसे प्रगति की है और यह समस्त प्रगति दो मासमें ही हुई, यदि ऐसा कहें तो अनुचित न होगा। मौलाना शौकत अलीके वहाँ जानेके बाद उत्साहकी यह लहर आई। राँदेरके लोगोंने अंगोरा कोषमें २५,००० रुपये दिये हैं; किन्तु यह बहुत छोटी रकम है। राँदेरकी शक्ति लाखों रुपये देनेकी है। और इसे लेकर मौलाना आजाद सोबानी साहबने उन्हें खूब फटकारा भी है। मुझे उम्मीद है कि राँदेरमें लोगोंमें देरसे जागृति आई है तथापि वे हर बातमें सूरत जिलेके लोगोंसे आगे बढ़ जायेंगे। प्रथम स्थान पानेके लिए राँदेरके प्रत्येक युवक और युवतीके हाथमें चरखा अथवा करघा होना ही चाहिए। जो धनवान हो वह यह श्रम न करे, ऐसा विचार तो हमारे मनमें आना ही नहीं चाहिए। इस विचारसे हम आलसी और दीन हो गये हैं। धनवानोंको भी लोकहितके लिए उद्यम करना चाहिए। औरंगजेबको कोई काम करनेकी जरूरत नहीं थी; तथापि वह टोपी सीता था। हम तो दरिद्र हो चुके हैं, इसलिए श्रम करना हमारा दोहरा फर्ज है। विदेशी वस्त्र अपनाकर हम गुलाम बन गये, अतएव स्वदेशीकी खातिर पींजने, कातने और बुननेमें श्रम करना हमारा दोहरा कर्त्तव्य है।

मिथ्या भ्रम

सूरतमें एक भाईने मुझे दस रुपये दिये, सो यह कह कर कि ये रुपये मन्नतके रुपये हैं। मेरे नामकी मन्नत मानकर कोई व्यक्ति स्वस्थ हो गया था। ये रुपये सार्वजनिक उपयोगके लिए थे, इसलिए मैंने वे रुपये ले तो लिये लेकिन जिन्होंने मुझे ये रुपये दिये उन्हें मैंने फिर कभी ऐसे पैसे न लानेकी बात कही। हमारा देश बहुतसे वहमोंके तले कुचला हुआ पड़ा है। इनमें मेरे नामसे एक और जुड़ जाये यह बात मेरे लिए बहुत दुःखदायक होगी। वहममें इजाफा करके हम राष्ट्रकी उन्नति नहीं कर सकते। मन्नत माननेका रिवाज बहुत ही पुराना है। उसमें श्रद्धाका तत्त्व निहित है, इसलिए यह ठीक भले ही जान पड़े, लेकिन यह रिवाज प्रोत्साहन देने लायक नहीं है — ऐसा मेरा विश्वास है। इसलिए जहाँ-जहाँ लोग मेरे नामसे मन्नत मानते हों, वहाँ-वहाँ उन्हें ऐसा करनेसे रोका जाना चाहिए। मन्नत ऐसी वस्तु है कि उसे

१. देखिए खण्ड २०, पृष्ठ ३५ ।

चाहे जिसके नामसे प्रचलित किया जा सकता है। "मैं ठीक हो जाऊँगा तो फलाँको भेंट चढ़ाऊँगा," ऐसी मन्नत माननेवाला कोई तो ठीक होगा ही और फिर वह बेचारा भेंट चढ़ायेगा ही। लेकिन ठीक होनेके साथ मन्नतका क्या सम्बन्ध हो सकता है? मन्नत माननेपर कोई स्वस्थ न हो और मुझसे कुछ जुर्माना ले सके तब तो ठीक होनेपर पैसा देनेकी बात मेरी समझमें आ सकती है और यदि ऐसा रिवाज प्रचलित हो जाये तो मैं दण्ड भरते-भरते ही अधमरा हो जाऊँ और लोकसेवाके कामका ही न रहूँ। लेकिन, चूँकि, जो लोग ठीक नहीं होंगे मैं उनको दण्ड भरनेके लिए तैयार नहीं हूँ, इसलिए ठीक होनेवाले भी मुझे भेंट न दें — ऐसी मेरी कामना है। मुझे तो यही उचित लगता है कि सार्वजनिक सभाके लिए भी इस तरह मिलनेवाले पैसोंको हमें अस्वीकार कर देना चाहिए।

जो बात मन्नतके सम्बन्धमें लागू होती है वही पूजाके सम्बन्धमें भी होती है। चरणस्पर्श, साष्टांग नमस्कार, आरती आदि क्रियाएँ भी त्याज्य हैं। लाखों व्यक्ति आरती उतारने और चरणस्पर्श करनेमें जुट जायें तो राष्ट्रका कितना समय नष्ट हो जाये? मैं तो दर्शन करनेवालोंसे त्रस्त हो जाता हूँ। यदि सब "दर्शन" करनेवाले साष्टांग प्रणाम करने लगें तब तो मैं पागल ही हो जाऊँ अथवा फिर मुझे नमस्कार करनेवालेकी ओर न देखनेका अभद्रतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए। इसलिए मेरी सलाह है कि हमें सीधे खड़े रहकर दूरसे नमस्कार अथवा सलाम करनेके अतिरिक्त अन्य विनय बरतनेकी आदत ही छोड़ देनी चाहिए। इससे जनताको कोई नुकसान न होगा। एक दूसरेके प्रति मान तो केवल मनकी भावना है। हम प्रसंग आनेपर ही आदरकी भावनाको अभिव्यक्ति दे सकते हैं। जहाँतक मेरा सवाल है मैं तो, यदि मैं तनिक भी योग्य होऊँ, एक ही पूजा चाहता हूँ; और वह यह है कि मैं जो-कुछ कहता हूँ, उसमें से जो भी बात जनताको पसन्द आये वह उसे ग्रहण करे और इस तरह स्वराज्य-को प्राप्त करे। यही सच्ची और करने लायक पूजा है। दूसरी खोटी हो सकती है इसलिए त्याज्य है।

राष्ट्रीय स्कूलोंकी राष्ट्रीयता

राष्ट्रीय शालाओंकी राष्ट्रीयता किस बातमें है, इस विषयपर कुछ समय पहले एक सज्जनने मुझसे कुछ सवाल किये थे। उनमें से जानने योग्य प्रश्नोंके उत्तर नीचे दिये जाते हैं:

सवाल — जो लड़के राष्ट्रीय शिक्षा-मन्दिरोंसे शिक्षा प्राप्त कर चुकेंगे उन्हें अपने जीवनके लिए किसी व्यवसायकी खोजसे छुट्टी मिलेगी?

जवाब — हाँ, मिलनी तो चाहिए। जिस विद्यासे इतनी भी मुक्ति नहीं मिलती वह विद्या ही नहीं है। विद्या उसीका नाम है जिससे त्रिविध — आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक — मुक्ति मिलती है। जिसे पहले प्रकारकी मुक्ति नहीं मिली उसे दूसरे प्रकारकी नहीं मिल सकती।

राष्ट्रीय संस्थाके सेवकके लिए क्या स्वार्थ-त्याग धर्म न होना चाहिए?

अवश्य होना चाहिए। मेरा तो यह विश्वास है कि जो स्वार्थ-त्याग नहीं कर सकता वह राष्ट्रका सेवक नहीं हो सकता।

क्या स्नातकको अपना जीवन देशसेवाके लिए समर्पित न करना चाहिए?

यह नियम सर्वदाके लिए लागू नहीं होता। जब राष्ट्रका संगठन धार्मिक रीतिसे होता है तब जो लोग प्रामाणिकताके साथ निर्भय जीवन व्यतीत करते हैं वे सब सेवा ही करते हैं।

हम यह मानते हैं कि सरकारी स्कूलोंमें दिये जानेवाले ज्ञानके साथ चरित्रका सामंजस्य नहीं होता, क्या इसका अर्थ यह नहीं कि राष्ट्रीय पाठशालाओंमें चारित्र्यको प्रधानपद मिलना चाहिए?

हाँ, बेशक यही अर्थ है। ज्ञान भी चारित्र्यके लिए दिया जाना चाहिए। ज्ञान साधन है, चारित्र्य साध्य है।

अतएव आप राष्ट्रीय शिक्षकोंमें चारित्र्यको आवश्यक मानेंगे?

जरूर।

इससे क्या मदिरापान करनेवाला और बीड़ी पीनेवाला शिक्षक त्याज्य नहीं है?

नीति सम्बन्धी हमारा धरातल इतना ऊँचा तो उठ ही चुका है कि हम शराब पीनेवाले शिक्षकोंका त्याग कर सकें। बीड़ीके लिए ऐसा कहनेकी हिम्मत मुझे नहीं होती। बीड़ी पीनेवाला दूसरी तरहसे शीलवान हो सकता है, ऐसा मेरा अनुभव है। और यह भी जरूरी है कि शीलपर नजर रखते हुए हम कहीं शील-शून्य चौकीदार न बन जायें।

मैट्रिक पास करते ही बीमार पड़ जाना और बी० ए० होते ही बेहाल हो जाना, यह हालत क्या शोचनीय नहीं है?

यदि मेरा वश चले तो मैं रोगी विद्यार्थियोंका अक्षर-ज्ञान बन्द ही कर दूँ।

क्या राष्ट्रीय शिक्षा पानेवाले विद्यार्थीकी समस्त शक्तियोंका विकास न होना चाहिए?

जरूर होना चाहिए। तन दुरुस्त तो मन दुरुस्त? और मन दुरुस्त होनेसे ही आत्मा दुरुस्त —— यही सीधा नियम मालूम होता है।

२१ वर्षसे कम उम्रके विवाहित विद्यार्थियोंके राष्ट्रीय स्कूलोंमें दाखिल होनेपर क्या प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाना चाहिए?

होना तो चाहिए। पाठशालाका विद्याभ्यास विवाहित जीवनका विरोधी है।

क्या ऐसी शिक्षा न दी जानी चाहिए कि विधुर दूसरा विवाह न करें?

हाँ, ऐसी शिक्षा कमसे-कम मुझे तो बहुत पसन्द है।

राष्ट्रीय स्कूलोंमें शारीरिक दण्डको स्थान मिलना चाहिए?

हरगिज नहीं।

अगर विद्यार्थीके मनमें राष्ट्रीय शिक्षाके प्रति तिरस्कार-भाव पैदा हो जाये तो इसमें दोष किसका है?

दोष आम तौरपर तो विद्यार्थी और शिक्षक दोनोंका होता है; परन्तु ज्यादातर शिक्षकका।

क्या पाठ्यक्रममें भाषाओंको अधिक प्रमुखता नहीं दी जाती?

एक ही गोत्रकी अधिक भाषाएं होनेसे बहुत बोझ नहीं मालूम होता। जैसे कि हिन्दुस्तानी, गुजराती, मराठी, बंगाली, इन चार भाषाओंको लोग, मेरा खयाल है, कम परिश्रमके साथ सीख सकते हैं। परन्तु अंग्रेजी, ग्रीक, लेटिन, अरबी इत्यादिका मेल नहीं बैठ सकता।

क्या शिक्षकका पद मंत्रीकी अपेक्षा बड़ा नहीं है? यदि वाइसरायका वेतन हजार रुपये हो तो क्या शिक्षकको दो हजार नहीं मिलना चाहिए?

वाइसरायकी नौकरीकी तो कीमत होती है; पर शिक्षककी कदापि नहीं होती। अतएव शिक्षक तो हमेशा गरीब ही होना चाहिए। उन्हें तो सिर्फ खाने-भरको लेकर पढ़ाना चाहिए। वाइसराय तो अपनी कीमत माँगता है; पर शिक्षक यदि कीमत माँगता है तो वह निकम्मा है।

एक अन्य प्रश्नकर्त्ताने भी मुझसे प्रश्न किया जो इसी विषयसे सम्बद्ध है। इसलिए उसे भी यहीं लिखे देता हूँ।

क्या शिक्षकको अपने पास पढ़नेवाली कन्यासे विवाह करना चाहिए? विद्यार्थीको अपने साथ पढ़नेवाली लड़कीके साथ शादी करनी चाहिए?

मुझे तो दोनों बातें अत्यन्त अनुचित जान पड़ती हैं। मेरे पास पढ़नेवाली कन्या-की रक्षा मेरी कन्याकी तरह होनी चाहिए। मेरे साथ पढ़नेवाली बालिकाकी रक्षा मेरी बहनकी तरह होनी चाहिए। सहाध्यायियोंमें भाई-बहनका निर्मल सम्बन्ध ही शोभा दे सकता है। यहाँ केवल इतना ही कहकर मैं इस सवालके जवाबको खतम कर देना चाहता हूँ। विषय बड़ा है इसलिए उसकी सविस्तार चर्चा ही करनी अधिक उचित होगी। पहले प्रश्नके विषयमें तो मुझे जरा भी शंका नहीं है। पर दूसरे प्रश्नमें, जब कि आज हजारों बालक-बालिकाएँ एक पाठशालामें शिक्षा पाते हैं, जरा कठिनाई नजर आती है। परन्तु मेरी स्थापित जितनी संस्थाएँ हैं उन सबमें इस नियमका पालन अनिवार्य रखा गया है और उसका फल भी अच्छा ही निकला है।

बुनकरोंकी खुशामद

एक मित्र लिखते हैं कि जिस तरह हम वकील, व्यापारी, विद्यार्थी आदिकी खुशामद कर चुके हैं उसी प्रकार यदि बुनकरोंकी खुशामद भी करें तो क्या ठीक न होगा? इस विषयपर मैं पहले ही लिख चुका हूँ और बार-बार इसकी चर्चा इसलिए नहीं करता क्योंकि बुनकरोंमें पढ़नेवाले लोग नहीं हैं। इसमें कोई शक नहीं कि अगर कारीगरोंमें और उसमें भी बुनकर वर्गमें देशसेवाकी प्रवृत्ति उदय हो जाये, तो हम स्वदेशीका काम बहुत जल्दी पूरा कर लें। देशमें लाखों बुनकर — हिन्दू और मुसल-मान — केवल विदेशीका पोषण कर रहे हैं। वे लाखों रुपयेके विदेशी सूतसे कपड़ा बुनते हैं। कुछ हमारी मिलोंके सूतको भी काममें लाते हैं। वे यदि सिर्फ हाथकते सूतको ही बुनने लगें और उसमें सुधार करते जायें तो आज देश चमक उठे और लोगोंके घरमें करोड़ों रुपया भर जाये।

यदि अकेले बुनकर लोग ही सचेत हो जायें और केवल हाथका ही कता हुआ सूत इस्तेमाल करें तो करोड़ों सूत कातनेवालोंको थोड़ा-थोड़ा लाभ हो; इतना ही नहीं

बल्कि उनके द्वारा लाखों पिंजारों या धुनियों, लाखों लोढ़नेवालों, और हजारों माडी देनेवालोंका धन्धा जीवित हो जाये, हजारों लुहार और बढ़इयोंकी आजीविकामें वृद्धि हो जाये। सम्पूर्ण स्वदेशीका अर्थ यह है कि देशमें केवल साठ करोड़ रुपये ही वापस न आ जायें, बल्कि उसके द्वारा दूसरे करोड़ों रुपयोंका उद्योग देशमें फैले और देशकी नष्ट हुई प्राचीन सुन्दर कलाएँ फिरसे सजीव हो उठें। आज तो हम केवल कलाहीन मजदूर बनकर ही रह गये हैं।

इस हालतमें यह बात तो हर कोई समझ सकता है कि बुननेवालोंको इस तरफ झुकाकर जनताकी सेवामें लगाना बड़े ही महत्वका काम है। उनको स्वदेश-कार्यमें शरीक करनेका अच्छेसे-अच्छा उपाय तो यह है कि हम खुद ही बुननेका काम करने लगें। हम अपने स्वार्थको लेकर बुनकर भाइयोंके पास जायें, यह एक बात है और उन्हींके भलेके लिए जायें, यह दूसरी बात है। उनका भला तो हम उनके धन्धेको सीखकर, उसके तत्त्व और विद्याको समझकर तथा वह बात बुनकरोंको समझाकर ही कर सकते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०–१०–१९२१

१४१. पत्र : 'बॉम्बे क्रॉनिकल' को

साबरमती
२१ अक्तूबर, १९२१

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्षका निर्णय और वक्तव्य मुझे मिल गया है और मैंने उनके सम्बन्धमें पण्डित मोतीलाल नेहरूका वक्तव्य भी पढ़ लिया है। मेरी विनम्र सम्मतिमें अध्यक्षके रुखका बिलकुल कोई औचित्य नहीं है; उसका समर्थन नहीं किया जा सकता। अध्यक्षके निर्णयके सम्बन्धमें अन्तिम निर्णय देना कांग्रेस महासमितिका काम है। किन्तु ४ नवम्बरको अखिल भारतीय कांग्रेस समितिकी बैठक बुलानेके कार्यसमितिके प्रस्तावको रद करना या बदलना किसी भी तरह संवैधानिक व्यवहारके अनुकूल नहीं होगा। पण्डित मोतीलाल नेहरूने जो रुख अपनाया है मैं उसका पूरा समर्थन करता हूँ और मुझे आशा है कि कांग्रेस महासमितिके सभी सदस्य ४ नवम्बरको दिल्लीकी बैठकमें भाग लेंगे। मैं यह भी मानता हूँ कि अध्यक्ष पूरी ईमानदारीसे अनुभव करते हैं कि मद्रास और बंगालके चुनावोंमें हस्तक्षेप न करके कार्यसमितिने अनुचित काम किया है। साथ ही, कार्यसमिति भी उतनी ही ईमानदारीके साथ महसूस करती थी कि उसे हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था। अन्तिम निर्णय तो केवल कांग्रेस महासमिति ही कर सकती है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २४–१०–१९२१

१४२. आशावाद

आशावाद आस्तिकता है। सिर्फ नास्तिक ही निराशावादी हो सकता है। आशावादी ईश्वरका डर मानता है, विनयपूर्वक अपने अन्तर्नादको सुनता है, उसके अनुसार आचरण करता है और मानता है कि 'ईश्वर जो करता है अच्छा ही करता है।'

निराशावादी कहता है कि 'मैं करता हूँ', अगर सफलता न मिले तो अपनेको छोड़ वह अन्य सब लोगोंको दोष देता है; भ्रमवश कहता है कि 'किसे पता, ईश्वर है या नहीं' तथा अपनेको भला और दुनियाको बुरा मानकर और यह कहते हुए कि मेरी किसीने कद्र नहीं की अन्ततः आत्मघात कर लेता है। और यदि न करे तो भी मुर्देकी तरह जीवन बिताता है।

आशावादी प्रेममें मगन रहता है। किसीको अपना दुश्मन नहीं मानता। इससे वह निडर होकर वन और नगरमें भ्रमण करता है। हिंसक जानवरों तथा उन जैसे मनुष्योंसे भी वह नहीं डरता; क्योंकि उसकी आत्माको न तो साँप काट सकता है और न पापीका खंजर भेद सकता है। शरीरकी तो वह चिन्ता ही नहीं करता। क्योंकि वह तो कायाको काँचकी गुड़िया समझता है और जानता है कि एक-न-एक दिन तो यह फूटने ही वाली है। इसलिए वह उसकी रक्षाके निमित्त संसारको पीड़ित नहीं करता, वह न किसीको परेशान करता है, न किसीकी हत्या करता है। वह अपने हृदयमें निरन्तर वीणाका मधुर गान सुनता है और आनन्द-सागरमें डूबा रहता है।

निराशावादी स्वयं राग-द्वेषसे भरपूर होता है। इसलिए वह हरएकको अपना दुश्मन मानता है और हरएकसे डरता है। अन्तर्नाद तो उसके होता ही नहीं। किसी मधु-मक्खीकी तरह वह इधर-उधर भिन्नाता हुआ बाहरी सुखोंका उपभोग करते हुए घूमता है और उससे ऊबकर रोज नया सुख खोजता है। और इस तरह प्रेम-रहित तथा मित्र-रहित होकर इस दुनियासे कूच कर जाता है; और उसके नामकी यादतक किसीको नहीं आती।

मेरे ऐसे विचार होनेके कारण, मुझे उम्मीद है, कोई यह नहीं समझेगा कि मैंने कभी किसीसे यह कहा होगा कि यदि इस वर्ष स्वराज्य न मिला तो मैं आत्म-हत्या कर लूँगा। विषय-संगसे मुक्ति पानेके अलावा अन्य किसी प्रसंगपर आत्महत्या-को मैं महापाप और कायरता मानता हूँ। और यदि हिन्दुस्तान स्वराज्य न प्राप्त करे तो भला मैं आत्महत्या क्यों करूँ? हिन्दुस्तानको गरज हो तो स्वराज्य ले। स्वरा-ज्यकी कीमत हिन्दुस्तानको मालूम हो चुकी है, उसने स्वराज्यका स्वाद भी चख लिया है। अब, उसे गरज हो तो उसकी कीमत चुकाये और स्वराज्य ले। कोई दे या न दे, वह ले या न ले, इसके लिए मुझे आत्महत्या करनेकी क्या जरूरत है?

हाँ, एक बात मैंने अपने मित्रोंसे जरूर कही है। यह सच है कि मुझसे पूछा गया था कि यदि जनवरीमें स्वराज्य न मिला तो आप क्या करेंगे? मैंने कहा कि मुझे

हिन्दुस्तानपर इतना अधिक विश्वास है कि मैं तो ३१ दिसम्बरतक भी यही मानूँगा कि भारत हर हालतमें स्वराज्य प्राप्त करके रहेगा। इस कारण मैं यह नहीं कह सकता कि जनवरीमें मैं क्या करूँगा। मुझे तो यही अच्छा मालूम होगा कि मैं जनवरीमें जनतासे विदा हो किसी शान्त स्थानमें जाकर रहूँ या स्वराज्य-तन्त्रके संगठनमें यथाशक्ति जनताका हाथ बटाऊँ। यदि हम किसी तरह इस वर्ष स्वराज्य प्राप्त न कर सकें तो मुझे अगले वर्ष जीवित रहना अच्छा नहीं लगेगा। ऐसी हालतमें मेरी आत्माको इतना अधिक कष्ट होगा कि उससे मेरे प्राण ही छूट जायेंगे — छूट जायें, यही मैं चाहूँगा।

मैंने हिन्दुस्तानके दुःखों — आर्थिक और नैतिक दोनों प्रकारके दुःखोंका इतना अनुभव किया है कि उनकी लपटोंसे अगर मैं जलकर भस्म नहीं हो गया हूँ तो उसका कारण केवल यही है कि मैं जनता द्वारा दी गई आशाके बलपर जी रहा हूँ। "आज हम आत्मशुद्ध होंगे" और "आज हमारे करोड़ों लोगोंके शरीरोंपर कुछ चमड़ी चढ़ेगी, इस आशाके, और केवल इस आशाके भरोसे ही मैं जीवित हूँ। इस आशाको पूर्ण करनेके लिए एक साल काफी है, ऐसा मेरा खयाल है। सितम्बरमें एक वर्षकी बातको मानने और कहनेवाला अकेला मैं ही एक व्यक्ति था।

दिसम्बरमें सब लोगोंने उस वचनको ग्रहण कर लिया। अब अगर कांग्रेस अपनी प्रतिज्ञाको पूरा न करे तो फिर मुझ जैसेकी क्या हालत होगी? अगर कांग्रेस दिवाला निकाल दे तो मेरा भी दिवाला निकला कहा जा सकता है। कांग्रेसकी आशापर मैंने हुंडी निकाल दी है और अगर वही उसे स्वीकार न करे, तो फिर? मेरी कामना है कि स्वराज्य न मिलनेसे जनवरीकी पहली तारीखको मुझे जो दुःख होगा वही सबको हो। सब लोगोंको धर्म और अनाजके अभावकी पीड़ा अवश्य होनी चाहिए।

इसपर एक मित्रने मुझे पूछा, इसका अर्थ क्या कायरता नहीं है? पर मुझे तो इसमें कायरता नहीं दिखाई देती; बल्कि करुणा प्रतिबिम्बित दिखाई देती है। इसमें मुझे व्यावहारिकता नजर आती है। जहाँ सेवाकी कद्र न हो वहाँ सेवा क्या करना? जिस जीवनसे लाभ नहीं वह जीना किस कामका? जीर्ण और जर्जर शरीरको बसन्त-मालती आदि औषध खिलाकर आकृतिमात्रको जबरदस्ती बनाये रखनेकी अपेक्षा अगर वह शरीर गंगाजलपर जीकर क्षीण हो जाये तो इसमें क्या बुराई है? आजकल जहाँतक मैं देखता हूँ तहाँतक मेरे मुँहसे "स्वदेशीका पालन करो और स्वराज्य लो" के अलावा और कोई बात निकल ही नहीं सकती। इसके सिवा मुझे दूसरा कुछ दिखाई ही न देता हो तो इसमें मेरा क्या दोष?

अब हम आखिरी सीढ़ीतक आ पहुचे हैं। यहाँ खूब अच्छी तरह पैर जमाये बिना — शक्ति प्राप्त किये बिना — आगे पैर उठाना मानो पीछे हटना है। मुझे याद है कि जब मैं सिंहगढ़के[1] पहाड़पर चढ़ रहा था तब एक मुकाम ऐसा आया कि जहाँसे मेरा कदम आगे बढ़ता ही नहीं था। वहाँ दम लेकर, बल प्राप्त करनेपर ही, मैं आगे बढ़ सका।

१. महाराष्ट्रमें पूनाके समीप एक पहाड़ी किला।

हमारी भी ठीक यही दशा है। स्वदेशीका पालन किये बिना हमें आगे बढ़नेके लिए बल प्राप्त हो ही नहीं सकता। अतएव, मेरा जीवित रहना, मेरा समाजमें रहना, स्वदेशीपर ही अवलम्बित है।

आज मैं इसी तरह सोचता हूँ; यह है मेरी आजकी मनोदशा। कलकी बात तो परमात्मा जानता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३–१०–१९२१

१४३. मिल मजदूरोंसे

भाइयो,

दौरा पूरा करके मैं अहमदाबाद आया हूँ, तबसे सुन रहा हूँ कि शराब पीनेकी आदत और सब लोगोंमें तो कम हो गई है, लेकिन जिन दुकानोंपर मिल-मजदूर जाते हैं वहाँ तो धन्धा पहलेकी तरह ही चल रहा है। इतना ही नहीं वे स्वयंसेवकों-की परवाह ही नहीं करते, उन्हें गाली देते हैं और मारते भी हैं। मुझे मालूम नहीं कि इसमें कितना सत्य है। मेरा विश्वास है कि मजदूर भाइयोंमें सैकड़ों लोग होंगे जो ऐसे व्यवहारको पसन्द नहीं करेंगे।

आपके लिए जो मेहनत कर रहे हैं वे इस आशासे मेहनत कर रहे हैं कि आप अच्छे बनें और सुखी हों, आप अपनी खराब आदतें छोड़ें, पैसा बचाना सीखें, कर्जदार न रहें, अच्छे घरोंमें रहें, आपके बच्चे पढ़ें-लिखें, आप स्वच्छ रहें, आप स्वयं फुर्सतके समय अच्छी पुस्तकें पढ़ें, उनपर विचार करें और हर तरहसे समाजमें सुशोभित हों।

आपको मदद करनेवाले आपको सिर्फ अधिक वेतन अथवा बोनस आदि दिलवाकर सन्तोष मान लें, सो बात नहीं। आप यदि केवल वेतन बढ़ानेके लिए ही उनकी सेवाको स्वीकार करें और अपने जीवनमें सुधार न करें तो आप उनकी सेवाको खो बैठेंगे और आज जो जनमत आपकी तरफ है, वह भी आपका पक्ष नहीं लेगा।

आप अच्छे बनें इतना ही नहीं बल्कि आपको देशमें चल रहे आत्मशुद्धिके धार्मिक आन्दोलनमें भी भाग लेना चाहिए। आप खिलाफतके प्रति, पंजाबके प्रति और अपने स्वराज्य-सम्बन्धी कर्त्तव्यको समझें और उसका पालन करें। आप ऐसा करना चाहते हों तो आपको बुरी आदतें छोड़ देनी चाहिए। हम ईश्वरके नामपर लड़ रहे हैं। क्या ईश्वर शराबी, जुआरी अथवा विषयीकी मदद करनेवाला है? शराबी मुसलमान खिलाफतका क्या भला करेगा? शराबी हिन्दू अपने मुसलमान भाईकी क्या मदद करेगा?

मैं आपके मालिकोंसे जब-जब आपका वेतन बढ़ाने अथवा बोनस देनेकी बात करता हूँ तब-तब वे मुझसे कहते हैं, आप वेतन बढ़वाकर करोगे क्या? क्या मजदूर उससे अच्छी खुराक खायेंगे? अच्छे कपड़े पहनेंगे? अपने बच्चोंको पढ़ायेंगे? अथवा उससे वे ज्यादा शराब पीयेंगे? यह सुनता हूँ तब मेरा सर शर्मसे झुक जाता है।

आपको मुझे ऐसी विषम स्थितिसे उबार लेना चाहिए; और यह आप शराब छोड़कर ही कर सकते हैं।

आप पाठक तो सम्भवतः शराब नहीं पीते होंगे; तब आप अपने साथियोंके लिए कैसे जवाबदार हो सकते हैं? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि साथीके लिए जवाबदार बननेमें ही स्वराज्य है। आप ही अपने साथी मजदूरोंको समझा-बुझा सकते हैं, उनको सुधारनेका बोझ आपपर ही होना चाहिए और इस तरह अगर आप अपने बीच लगातार सुधार करते चले जायेंगे तभी वेतनमें वृद्धि और बोनस आदिकी बातें अच्छी लगेंगी। अगर आप सुधार नहीं कर सकते तो लोकमत हमेशाके लिए आपके साथ नहीं रह सकता; यह एक ऐसी बात है जिसे आप अच्छी तरह समझ सकते हैं। अतएव मुझे उम्मीद है कि आप शराबके इस दुर्गुणको खूब प्रयत्न करके निकाल डालेंगे।

आपका हितेच्छु,
मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २३–१०–१९२१

१४४. टिप्पणियाँ

यात्रा करनेकी शर्तें

गुजरातके विभिन्न भागोंकी यात्रा करनेकी माँगें निरन्तर मेरे पास आती रहती हैं। मुझे डाकोरजी आदि स्थानोंसे आमन्त्रण मिले हैं और पेटलाद और सोजित्रासे भी। लेकिन इस मासके अन्ततक तो मैंने इन सबसे क्षमा माँग ली है। बादमें, मुझे दिल्ली जाना है। वहाँसे वापस आनेपर मैं गुजरातमें थोड़ा घूमना-फिरना चाहूँगा। गुजरातसे मैं निराश नहीं हो गया हूँ। मुझे अब भी यह आशा है कि गुजरात इस धर्म-युद्धमें पूरा-पूरा बलिदान देगा और इसीलिए मैं यह आशा करता हूँ कि मुझे केवल उसी स्थानके लोग आनेको कहेंगे जहाँ स्त्री-पुरुष त्यौहार तथा अन्य सभी अवसरोंपर घर और बाहर खादी ही व्यवहारमें लाते हों। सभी लोग मेरे वक्तका ध्यान रखें, ऐसी मेरी कामना है। यदि एक जिला भी पूरी तरहसे तैयार होगा तो उसकी मार्फत हम अच्छी तरह संघर्ष चलाकर विजय प्राप्त कर सकेंगे और ऐसे जिलेमें मैं उस अवधिके दौरान रहनेको तैयार हूँ। उस तैयारीकी शर्तें निम्नलिखित हैं:

१. वहाँके हिन्दू और मुसलमान परस्पर सगे भाइयोंके समान रहते हों — और ऐसा परस्पर डरके कारण नहीं, एक-दूसरेके प्रेमके कारण हो।

२. वहाँके हिन्दू मुसलमान, पारसी सब अन्तःकरणपूर्वक यह मानते हों कि खिलाफतमें हिन्दुस्तानकी मार्फत विजय केवल शान्तिमय युद्धसे ही सम्भव है।

३. वहाँके लोगोंको इस बातका अनुभव हो जाना चाहिए कि उनमें हिंसाकी भावनाके साथ ही फाँसीके तख्तेपर लटकनेकी हिम्मतका होना भी जरूरी है। और

प्रतिशत ऐसा एक व्यक्ति तो वहाँ होना ही चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि पाँच लाखकी आबादीवाले जिलेमें इस प्रकार शान्तभावसे मरनेवालोंकी संख्या कमसे-कम पाँच हजार होनी चाहिए।

४. वहाँके हिन्दू अस्पृश्यताको पाप समझते हों और भंगी ढेढ़ आदिके साथ ममतापूर्ण व्यवहार करते हों।

यह हुआ मानसिक आचरण। इसके अलावा उनकी सच्चाई और उत्साहके प्रमाणस्वरूप :

५. वहाँके नब्बे प्रतिशत स्त्री-पुरुष विदेशी कपड़ेका उपयोग न करते हों और अपने हाथसे कते सूत और अपने जिलेमें तैयार खादीके वस्त्र पहनते हों। उनके बीच प्रति दस व्यक्तिके हिसाबसे एक चरखा चलता हो।

इन सभी शर्तोंका पालन करना बहुत आसान है और यदि एक जिलेके लोग भी यह करें तो स्वराज्य लगभग हाथमें आ जाये और यदि समस्त गुजरात इस तरह तैयार हो जाये तो हम निश्चय ही स्वराज्य प्राप्त कर लें। इसी तरह यदि किसी एक भी जिलेमें दस व्यक्तियोंमें से अपने प्राणोंकी आहुति देनेवाला एक भी व्यक्ति हो तो हमें स्वराज्य अवश्य मिल जायेगा। पाठक समझ सकेंगे कि इन सबका केवल एक ही कारण है और वह यह कि हम अपने युद्धको सत्य और अहिंसामय मानते हैं। यदि सत्य और अहिंसा हमारे दिलोंमें समा गये हैं तो उपर्युक्त शर्तोंका पालन हमारे लिए खेलके समान है। इतना तो सभी याद रखें कि हम अपने विरोधियोंका, फिर चाहे वे अंग्रेज हों अथवा हमारे ही वर्णके सरकारके सहयोगी, अपमान नहीं करेंगे, उन्हें भला-बुरा नहीं कहेंगे, उनका तिरस्कार नहीं करेंगे। हमें अपने बलके आधार-पर ही जूझना है, उनका अहित नहीं करना है।

हमारी लड़ाई सभ्यताकी है और सुसभ्य व्यक्तिके लिए इस जगतमें कोई शत्रु नहीं है — कदापि नहीं।

दिवाली

दिवाली अब नजदीक आ गई है। उसकी तैयारी कैसे की जाये, यह मैं पहले एक-दो बार बतला चुका हूँ[1], लेकिन, फिर भी आज उसपर कुछ लिखता हूँ। दिवाली-के लिए हमें पवित्र बनना चाहिए। चरखेकी पूजा ही लक्ष्मी-पूजा है, अर्थात् हरएक घरमें अच्छेसे-अच्छा चरखा दाखिल कर देना चाहिए। और उसपर नित्य कुछ सूत हमें कातना चाहिए। दिवालीपर तो घरके सब आदमियोंको बारी-बारीसे दिन-भर चरखा कातना चाहिए। और उसमें से जो सूत निकले उसे हमें अपनी बहियोंमें देशके खातेमें जमा करना चाहिए।

बच्चोंको दिवालीपर कोई-न-कोई नई चीज अवश्य ही मिलनी चाहिए। इसलिए हमें हाथसे कते सूतकी खादीकी गुड़ियाँ लड़कियोंको देनी चाहिए और खादीके सुन्दर बस्ते बालकोंको देने चाहिए। हाथके सूतकी रस्सियाँ बनाकर बच्चोंको रस्सा-खैंचके

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ९-१०-१९२१।

खेलके लिए देनी चाहिए। खादीका उनके लिए एक-एक वस्त्र तो जरूर ही बनवा लेना चाहिए। लेकिन हाँ, खादीको जरूरतके मुताबिक ही उपयोगमें लाना है।

अगर बच्चे पटाखे माँगें तो उनसे कहना चाहिए कि पटाखे चलानेके दिन तो स्वराज्य मिलने और भुखमरी मिटनेपर ही आ सकते हैं। जबतक देशसे भुखमरी नहीं मिट जाती तबतक हम पटाखोंके लिए अपना पैसा खर्च नहीं कर सकते। लेकिन हमें इस दिन अपने यहाँका मैलापन अवश्य दूर करना चाहिए। इसके लिए अबतक हमारे पास जितने भी विदेशी कपड़े बच रहे हों उनको निकालकर दिवालीके दिन उनकी एक खासी होली कर डालनी चाहिए और इस तरह अपने मैलको जलता देखकर आनन्दित होना चाहिए।

लेकिन एक जैन-भाई लिखते हैं कि इस होलीमें बहुतसे जीवजन्तु जल जाते हैं। इस तरह जो हिंसा हो रही है, वह देखी नहीं जा सकती। इससे तो अगर हम विदेशी कपड़ोंको इकट्ठा करके रख छोड़ें तो क्या कुछ बुराई है? जैनियोंके वर्तमान दृष्टिकोण-को देखते हुए यह सवाल ठीक ही है। छोटेसे-छोटा जन्तु भी अपने-जैसा ही है, और उस पर दया करना हमारा धर्म है, यह शाश्वत सत्य है। लेकिन ऐसा मानकर हम निश्चेष्ट नहीं बैठ सकते। हम चूल्हा तो जलाते ही हैं और मुर्दे भी जलाते हैं। जिस तरह नाश हिंसाका रूप है, उसी तरह उत्पत्ति भी हिंसाका रूप है। क्योंकि उत्पत्ति-के बिना नाश नहीं और नाशके बिना उत्पत्ति नहीं हो सकती। अपने कियेका फल तो सबको भोगना ही पड़ता है। अगर हम इस बातको स्वीकार कर लें कि विदेशी कपड़ोंका व्यवहार त्याज्य है तो फिर उनके जलानेमें बहुत ही थोड़ी हिंसा होते हुए भी जब दो हिंसाओंमें से किसी एकको पसन्द करनेका समय आता है, तब हमें अल्पतम हिंसाको स्वीकार करके आगे बढ़ना पड़ता है। अगर विदेशी कपड़े इकट्ठे करके एक तरफ डाल दिये जायें और उनमें दीमक लग जाये तो वहाँ नाश और उत्पत्तिकी क्रिया इतनी तेजीके साथ होने लगेगी कि होलीसे जितने जीवोंका नाश होता है उसकी बनिस्बत इसमें कई गुना ज्यादा नाश होगा। किसी आदमीको भूखों मरने देनेकी अपेक्षा उसका तुरन्त नाश कर देनेमें कम हिंसा है। इसीलिए मैंने यह बतलाया था कि हमारे समागममें रहनेवाले मनुष्यका अन्न-जल बन्द कर देना हमारी लड़ाईके नियमके विरुद्ध है। लेकिन इस विषयपर मैं अभी इससे ज्यादा बात नहीं करना चाहता; मैं फिर कभी समय मिलनेपर इसपर विस्तारसे चर्चा करूँगा। अभी तो इतना ही कहता हूँ कि विदेशी कपड़े जलाना हर एक दृष्टिसे कमसे-कम हिंसा है और यह हिन्दुस्तानके और इसलिए संसारके भलेके लिए एक बहुत ही जरूरी क्रिया है।

लेकिन दिवालीके दिनोंमें मुसलमान क्या करें? यह तो हिन्दुओंका त्यौहार है। इसीलिए मुसलमानोंसे मेरा कहना है कि वे भी इसमें दिलचस्पी लें। इस त्यौहारमें जो धर्म-विधि है वह तो हिन्दुओंकी ही रहेगी, लेकिन यह हिन्दुओंके उत्सवका दिन है, इसलिए इसमें मुसलमान भी शरीक हों और जितने परिमाणमें उसका उपयोग सारे देशके लिए किया जाता है उतने अंशमें तो वे ही नहीं बल्कि सभी जातियाँ शामिल हों। मुस्लिम नव वर्षके अथवा पारसी नव वर्षके दिन अथवा ईसाई नव वर्षके दिन हमें इन मतावलम्बियोंके लिए शुभ कामना करनी चाहिए और इस अवसरपर ये

लोग जो सार्वजनिक उत्सव करें उसमें भाग लेना चाहिए। एक दूसरेके सुख-दुःखमें शरीक होना तो हमारा काम ही है। इसीलिए मुझे उम्मीद है कि हिन्दुओंके इस त्यौहारपर सभी कौमें मिलकर स्वदेशीको हर तरहसे अपनायेंगी।

गीतामें चरखा

मैंने गत अंकमें कविवरके चरखा सम्बन्धी विचारोंके प्रत्युत्तरमें कुछ कहनेका[1] प्रयत्न किया था, उसमें मैंने यह बताया था कि मैं तो 'गीता' में भी चरखा ही देखता हूँ। अपनी इस बातके आधारके रूपमें मैंने तीसरे अध्यायके कुछ श्लोकोंको उद्धृत किया। मैं यह भी जानता हूँ कि मैं उनका जो अर्थ करता हूँ वह 'गीता' की टीकाओंमें प्रत्यक्ष रूपसे देखनेमें नहीं आता। तथापि यह अर्थ मैंने आज ही नहीं निकाला है; अपितु १९०९ से मैं इसका यह अर्थ मानता आया हूँ। इन श्लोकोंका भावार्थ यह है कि जो यज्ञ किये बिना भोजन करता है वह चोरी करता है। इसमें यदि यज्ञके अर्थको समझ लें तो मैंने जो अर्थ किया है उसे स्वीकार करनेमें कोई दिक्कत नहीं आयेगी। "यज्ञसे वर्षा होती है"[2] इसका सीधा-सादा अर्थ तो यह है कि यदि व्यक्ति श्रम करे तो पेड़ लगेगा और पेड़ वर्षामें सहायक होगा। लोककल्याणके अर्थके लिए किया गया शारीरिक श्रम ही सच्चा यज्ञ है। पशुओं अथवा फलादिका भोग देकर किया गया यज्ञ शुद्ध यज्ञ नहीं है। सार्वजनिक शुद्ध यज्ञोंमें खेती एक है। अपनी मेहनतसे उत्पन्न फसलमें से किसान थोड़ा ही ग्रहण करता है। उसकी मुख्य मेहनत जाने-अनजाने लोकसंग्रहके लिए है। सब उतनी मेहनत नहीं कर सकते, इसके लिए सर्दी और गर्मीको बरदाश्त कर सकनेवाले शरीरकी जरूरत है। लेकिन चरखा तो सब कोई चला सकते हैं। श्री राय-जैसे वैज्ञानिकने भी अत्यन्त सरस शब्दोंमें यह बताया है कि चरखेके द्वारा भले ही व्यक्ति अपना भरण-पोषण न कर सके परन्तु प्रजाका तो कर सकता है। और आज जब कि हिन्दुस्तानके नाशकी घड़ी आ गई है उस समय अगर कोई वस्तु इस स्थितिको सुधार सकती है तो वह केवल चरखा ही है और इसीलिए वह सच्चा यज्ञ है। "ऐसे प्रवर्तित चक्रका जो अनुसरण नहीं करता वह व्यक्ति केवल अपने ही लिए और इसलिए व्यर्थ जीता है।"[3] यह चक्र वर्तमान युगमें चरखा ही है। जब यह श्लोक रचा गया था तब भले ही महाकवि और ऋषिके मनमें चरखेकी कल्पना न रही हो परन्तु कवि तो समयकी परिधिमें नहीं बँधता, उसकी रचना अनन्त कालके लिए होती है और इसीलिए उनके काव्यसे ऐसे अर्थ भी सिद्ध होते हैं जो उसकी अपनी कल्पनामें नहीं होते। यही उसके काव्यकी पूर्णता और विशेषता है। सिद्धान्त रूपमें ऐसे वचन शाश्वत होते हैं, उनके फल अनेक हैं और मेरा यह नम्र अभिप्राय है कि अमूल्य अमृत वचनोंमें से हमें अनेक सुन्दर अर्थ-फल निकालनेका अधिकार है। कवि और किंकर, मालिक और मजदूर, सेठ और नौकर, सेठानी और दासी सबको लोक-कल्याणके अर्थ श्रम अवश्य करना चाहिए। करोड़पति भले अपने लिए शरीर-श्रम न करे, चरखा न चलाये

१. देखिए "महान प्रहरी", १३-१०-१९२१।
२. **भगवद्गीता**, ३-१४।
३. **भगवद्गीता**, ३-१६।

लेकिन उसे देशके अर्थ, लोकके अर्थ, चरखा चलाना ही चाहिए, नहीं तो 'गीता'के वाक्यके अनुसार वह व्यर्थ ही जीता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३-१०-१९२१

१४५. भाषण: अहमदाबादमें स्वदेशीपर[1]

२३ अक्तूबर, १९२१

महात्मा गांधीने कहा: स्वदेशीके सम्बन्धमें अब काफी ज्यादा कहा-सुना जा चुका है, और अगर १२ महीनेतक दिन-रात समय-असमयका खयाल न किये बिना स्वदेशीका प्रचार करनेके बाद भी मैं इसपर लोगोंका विश्वास नहीं जमा पाया हूँ तब तो अब इस समय मेरे गला फाड़कर चिल्लानेसे कोई फायदा नहीं; विशेष रूपसे इसलिए कि स्पष्ट है कि इस सभामें ऐसे कुछ व्यक्ति हैं जिन्होंने मेरे सन्देशको एक कानसे सुनकर दूसरेसे निकाल दिया है। मैं 'नवजीवन' के स्तम्भोंमें हर सप्ताह इस अपरिवर्तनीय सत्यको विविध रूपोंमें पेश करता रहा हूँ कि यदि हम भारतमें राम-राज्य स्थापित करना चाहते हैं तो स्त्रियोंको डटकर खादी पहननेका प्रयत्न करना चाहिए। मेरी समझमें राम-राज्यकी स्थापनाके लिए इससे अच्छा दूसरा कोई साधन नहीं हो सकता। यदि आप सीताके पदचिह्नोंपर चलतीं तो आज भारतका इतिहास इससे बहुत भिन्न होता। सीताकी भावना बनवासके कष्टोंमें भी अविचल रही। वह अपनी इच्छासे वनमें गई थीं। यदि आज भारतकी स्त्रियोंमें वैसी ही दृढ़ता होती तो कुछ समयमें ही धर्म-राज्य स्थापित हो जाता।

यदि आप चाहती हैं कि लोग आपका वैसा ही आदर करें जैसा सीताका करते थे तो आप यह काहिली छोड़ दें और अधिकाधिक लगन और उत्साहसे चरखा चलानेमें जुट जायें।

अपने सतत अध्यवसायसे चरखा चलाकर आप जो सूत कातेंगी उससे भारतके वस्त्रहीन लोगोंके तन ढकेंगे और इस देशपर आर्थिक गुलामीकी जो केंचुली चढ़ गई है, वह उतर जायेगी।

महात्मा गांधीने आगे कहा: सेवा करना स्त्रियोंके लिए एक प्रकारसे धर्म बन गया है। यहाँ हममें जो ग्रेजुएट पुरुष हैं वे देशकी मुक्तिके लिए उतना काम नहीं कर सकते जितना काम सेवाकी भावनासे अनुप्राणित स्त्रियाँ कर सकती हैं। भारतको ऐसे स्त्री-पुरुषोंकी जरूरत है जो मजदूरोंमें खुलकर आ जा सकें और उनके सुख-दुःखमें सम्मिलित हो सकें। आप भिखारियोंको बिना सोचे-समझे जो दान देती हैं उससे उनका

१. यह सभा 'अहमदाबाद राष्ट्रीय स्त्री-मण्डल' के तत्त्वावधानमें हुई थी।

काम करनेका उत्साह चला जाता है और इससे उनके आत्मविश्वासके नष्ट होनेका खतरा भी रहता है। देशसे भिक्षा-वृत्तिको दूर करनेका केवल एक उपाय यह है कि हम भिखारियोंको चरखा चलाने और मेहनत करके अपनी रोजी कमानेके लिए तैयार करें। भारतके नंगे लोगोंका खयाल करके ही मैंने यह एक छोटी धोती-मात्र पहननेका निश्चय किया है और जबतक देशके करोड़ों अधनंगे लोगोंको कपड़ा देनेके उद्देश्यसे सभी कोई चरखा नहीं चलाने लगते तबतक मैं चैन नहीं लूँगा। मैं इस धोतीको लपेट कर कैसा लगता हूँ यदि आप यह देखनेकी उत्सुकतासे यहाँ आकर्षित होती हैं, यदि आप केवल दिखावेके लिए खादी पहनती हैं, तो आप मुझे धोखा देती हैं। आप अपने असली विचारोंको छिपाकर मुझे और अपनी अन्तरात्माको भी धोखा दे सकती हैं, लेकिन मनुष्यकी बुद्धि जितने भी उपाय ढूँढ़ सकती है उनमें से किसीका भी आश्रय लेकर आप ईश्वरको धोखा नहीं दे सकतीं। हमारे पास पहलेसे जो विदेशी कपड़े रखे हैं उनको तो हम पहन लें, ऐसा सोचकर आपका विदेशी वस्त्र पहनते जाना बेमतलब है। यदि हमारे घरमें शराबकी एक बोतल रखी है, तो क्या हम शराब पियेंगे? जब हमें एक बार यह विश्वास हो जाता है कि विदेशी कपड़ा अपवित्र है तब हम कोई भी ठीक जँचनेवाला बहाना देकर विदेशी कपड़ेके प्रयोगको उचित नहीं ठहरा सकते। क्या सीताने अशोक वाटिकामें वल्कल वस्त्रोंकी तुलनामें कीमती वस्त्रोंको अस्वीकार नहीं कर दिया था? उन्होंने बड़ी वीरतासे अपने सतीत्वकी रक्षा की थी, अनेक प्रलोभनोंको ठुकराया था और धमकियोंकी परवाह नहीं की थी। इसी कारण 'सीता-राम' कहकर हम जो अभिवादन करते हैं उसमें सीताको पहला स्थान मिला है। यदि आप भोजन बनानेकी कलामें निपुण हैं तो आप बढ़ियासे-बढ़िया सूत कातनेमें भी निपुण हो सकती हैं। मैं आशा करता हूँ कि कांग्रेसके अगले अधिवेशनमें मैं आप सबको खादी पहने हुए देखूँगा। अबतक मैंने आपसे जो भी चीज माँगी है वह आपने मुझे खुशी-खुशी दी है और अब जब मैं आपसे आपके विदेशी कपड़े माँगता हूँ तब मैं आपसे यही आशा करता हूँ कि आप मेरी इस माँगका उत्तर भी उसी उदारतासे देंगी।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ११-११-१९२१

१४६. सन्देश : बम्बई राष्ट्रीय कालेजके अध्यापकोंको[1]

२४ अक्तूबर, १९२१

धुनो, बुनो, कातो,
कातो, बुनो, धुनो;
बुनो, धुनो, कातो।

[अंग्रेजीसे]
सेवन मंथ्स विद महात्मा गांधी

१४७. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदीको

साबरमती
२४ अक्तूबर, १९२१

भाईश्री बनारसीदासजी,

आपका पत्र मीला। मैं चाहता हुं अब आप भी जहांगीर पीटीटको कुछ भी न लिखें।

आपका,
मोहनदास गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल पत्र (जी० एन० २५६०) की फोटो-नकलसे।

१४८. पत्र : डी० बी० शुक्लको[2]

साबरमती
मंगलवार, आश्विन बदी ९ [२५ अक्तूबर, १९२१]

भाईश्री,

आपने मुझसे काठियावाड़में आनेका आग्रह किया है। मेरा भी मन तो बहुत होता है कि मैं स्वयं आकर काठियावाड़की जनतामें जो उत्साह फैला हुआ है, उसने

१. राष्ट्रीय कालेजके अध्यापकोंने गांधीजीसे पूछा था कि अवकाश बितानेका सबसे अच्छा और उपयोगी तरीका क्या है। वह गांधीजीका मौनवार था, इसलिए उत्तरमें ये तीन पंक्तियाँ लिख दीं।

२. श्री शुक्लने गांधीजीका यह पत्र **गुजराती**के दीपावली अंकमें प्रकाशनार्थ भेजा था; किसी कारणसे वह दीपावली अंकमें तो प्रकाशित नहीं हो सका किन्तु बादके एक अंकमें 'काठियावाडको गांधीजीका सन्देश' — शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

जो आत्मशुद्धि की है उसका अनुभव करूँ और पवित्र खादीधारी हजारों बहनोंके दर्शन करूँ।

लेकिन आप जानते हैं कि अभी तो मैं लाचार हूँ। इतना ही कह सकता हूँ कि पहला अवसर प्राप्त होते ही आ जाऊँगा। लेकिन मैं अत्यन्त लोभी बन गया हूँ, यह बात तो अब सारा हिन्दुस्तान जानता है। जबतक एक भी पुरुष विदेशी कपड़ेका इस्तेमाल करता है अथवा एक भी घर चरखेके विना है अथवा एक भी गली करघे अथवा पींजनसे विहीन है तबतक मेरा लोभ शान्त नहीं हो सकता। आपने बहुत किया है लेकिन इतना तो नहीं कर पाये हैं, यह मैं जानता हूँ। इसीसे मेरा विशेष अनुरोध है कि सब लोग अन्य प्रवृत्तियोंको छोड़कर भी स्वदेशीको पूर्ण बनानेकी ओर ध्यान दें। स्वयंसेवक जबतक रुई पींजनेवाले तथा कातनेवाले नहीं बनते तबतक वे पूरा काम नहीं कर सकते, मैं अपनी अपूर्णताको देखते हुए ही यह कह सकता हूँ।

मैं सुनता हूँ कि काठियावाड़में अब भी अन्त्यजोंका तिरस्कार चालू है। उन्हें गाड़ीमें अभी भी तकलीफें उठानी पड़ती हैं। उनके साथ हम सगे भाई-बहनका-सा व्यवहार नहीं करते और जबतक यह प्रेम-भावना हममें जाग्रत नहीं होती तबतक आत्मशुद्धिकी बातको मैं कृत्रिम ही मानता हूँ। मैं प्रार्थना करता हूँ कि काठियावाड़ धर्मके नामपर चलनेवाली इस धांधलीका बहिष्कार करे।

मेरा विश्वास है कि काठियावाड़को ब्रिटिश भारतमें चल रहे आन्दोलनके अन्तर्गत जारी अन्य प्रवृत्तियोंको छूनेकी कोई जरूरत नहीं है। वहाँ किसी-किसी स्थानपर राजा-प्रजाके बीच मन-मुटाव है, यह मुझे मालूम है। मुझे तो विश्वास है कि अगर लोग चुपचाप उपर्युक्त दोनों कार्योंमें जुटे रहेंगे तो दूसरी कठिनाइयाँ स्वयमेव दूर हो जायेंगी। इस बीच लोगोंको मेरी सलाह है कि जो कठिनाइयाँ आयें उन्हें वे सहन कर लें।

राजाओंकी स्थिति जनताकी अपेक्षा अधिक विषम है, ऐसी मेरी मान्यता है; और जब मैं देशी राज्योंमें चलनेवाली अन्धाधुन्धीकी बात सुनता हूँ तब मैं उसे ब्रिटिश साम्राज्यमें प्रवर्तित महान अन्धाधुन्धीकी ही प्रतिध्वनि मानता हूँ। लेकिन हम इस समय इस प्रश्नमें जायें ही क्यों? जो अनिवार्य दुःख हैं, उन्हें हम अगर ईश्वरको पहचानते हैं तो उसकी ही झोलीमें क्यों न डाल दें? जो ईश्वरका भय रखता है वह अन्य प्रकारके भयसे मुक्त रहता है, इसलिए मेरी इच्छा है कि आप भय-मात्रको छोड़ दें।

आपके छोटेभाई
मोहनदासके प्रणाम

[गुजरातीसे]
गुजराती, ६–११–१९२१

१४९. टिप्पणियाँ

नगरपालिकाओ सावधान!

अहमदाबाद, सूरत और नडियादकी नगरपालिकाओंसे सम्बन्धित बम्बई सरकारकी टिप्पणीसे स्पष्ट हो गया है कि जो बात दिनके उजालेकी तरह बिलकुल साफ है, वह उसे भी देखनेको तैयार नहीं है। उसका तानाशाही लहजा जनताकी जागृत भावनासे मेल नहीं खाता। व्यक्तिगत रूपसे कर-दाताओंको नगरपालिकाके सदस्योंपर, जो मानते हैं कि उन्होंने अपना कर्त्तव्य निभाया है, मुकदमा चलानेके लिए उकसाना किसी भी तरह शोभनीय नहीं कहा जा सकता। सरकारके लिए सही रास्ता तो यह था कि वह नगरपालिकाओंको अपनी राह चलने देती और खुद आगे बढ़कर झगड़ा मोल नहीं लेती। लेकिन इस सरकारी टिप्पणीका उद्देश्य तो संकट पैदा करना ही है। सदस्योंको यह चुनौती स्वीकार करके सरकारको इस बातके लिए ललकारना चाहिए कि अगर हिम्मत हो तो वह नगरपालिकाओंकी अवहेलना करके देखे। अगर नगर-पालिकाएँ अपनी व्यवस्था ठीकसे न चलाना चाहें तो उन्हें वैसा करनेका भी अधिकार होना चाहिए। अगर किसी नगरकी व्यवस्था ठीक नहीं है तो उसमें कर-दाताओंकी गलती भी उतनी ही है जितनी कि नगरपालिकाके सदस्योंकी है। लेकिन हमारी बुद्धिमान सरकार एक ओर तो नगरपालिकाओंके स्वतन्त्र अस्तित्वको स्वीकार करती है और दूसरी ओर कानूनके शब्दार्थसे चिपटी रहना चाहती है, हालाँकि यह शब्दार्थ भाव और असली तत्त्वको मारनेवाला होता है। यह सरकार नगरपालिकाओंको अपना शासन स्वयं चलाने देनेके बजाय उस समयतक खुद ही उनका शासन चलाना चाहेगी जबतक कि वैसा करनेमें सरकारको कुछ खोना नहीं पड़ता। अब नगरपालिकाओंको यह चुनौती स्वीकार करके अपनी ओरसे उचित कार्रवाई करनेकी तैयारी करनी चाहिए। हो सकता है, सरकारको कुछ कर-दाताओंसे कुछ मुकदमे करवानेमें कामयाबी हासिल हो जाये। वह जो कमसे-कम कर सकती है, वह यही है। और अधिकसे-अधिक वह यह कर सकती है कि सम्बन्धित नगरपालिकाओंको भंग कर दे। और अगर विरोध करनेवालोंका दल मजबूत लोगोंका दल है तो सरकारकी ऐसी कार्रवाईको स्वागत करनेके लायक ही मानना चाहिए। अगर मान लिया जाये कि हाँ, वे इतने मजबूत हैं, तो उन्हें सीधे कर-दाताओंको यह समझाना चाहिए कि क्या कुछ हो रहा है, और संघर्षकी तैयारी करनी चाहिए। अगर सरकार ऐसी कोई कार्रवाई करे और नगरपालिकाके सदस्यगण अपनी ओरसे कार्रवाई करनेको तैयार रहें तो मुझे सरकारी टिप्पणीमें भी स्वराज्यकी झाँकी दिखाई देती है। जबतक नगरपालिकाओंको भंग नहीं किया जाता तबतक उन्हें सब अधिकार हैं; और उनके भंग किये जानेपर, अगर हम यह मान लें कि कर-दाता लोग मजबूत और समझदार हैं और उनमें एकता है तो सरकार शक्तिहीन हो जायेगी। कर-दाताओंमें ये सारे गुण हैं, लेकिन उन्हें काम कर-नेके लिए संगठित करनेकी जरूरत है। अभीतक जनता अफसरों और तथाकथित

प्रतिनिधियोंके बीच फुटबालकी तरह ठोकरें खाती रही है। असहयोग वह चीज है जो जनताको इस खेलमें खिलाड़ीकी तरह शामिल होनेमें सक्षम बनाती है। प्रतिनिधिगण जनताका या तो सच्चा प्रतिनिधित्व करें अन्यथा वे समाप्त हो जायेंगे।

कांग्रेस अधिवेशनके दर्शक

कांग्रेसकी स्वागत समिति इस बार कांग्रेस अधिवेशनको विशुद्ध कामकाजी अधिवेशन बनानेके लिए कोशिश कर रही है। ऐसा करनेकी फिक्रमें उसने अपनी संख्या भी सीमित कर दी है और दर्शकोंकी भी। प्रतिनिधियोंकी संख्या सीमित कर देनेपर दर्शकोंकी संख्या सीमित न करना असम्भव था। इसलिए समितिके सामने — चुनावका एक तरीका ढूँढ़ निकालनेका सवाल था। इस दृष्टिसे एक ही पैमाना — यानी आर्थिक पैमाना — तय करना सम्भव था। कुछ विशिष्ट अतिथियोंको निःशुल्क टिकट देनेकी व्यवस्था भी करनी ही थी। इसके पीछे विचार सिर्फ दर्शकोंकी संख्या सीमित करनेका है, न कि पैसा जमा करनेका। यह पहली ही बार होगा कि इस वार्षिक जलसेका उपयोग वर्षभरके खर्चके लिए धन-संग्रह करनेके लिए नहीं किया जायेगा। बहुत बड़े पैमानेपर तैयारी हो रही है, जिसमें प्रतिदिन आठ आनेके टिकटपर प्रदर्शनी, संगीत-सम्मेलन और आजके सभी जाने-माने वक्ताओं द्वारा सामयिक विषयोंपर व्याख्यान आदि देखने-सुननेका प्रबन्ध भी शामिल है। प्रतिबन्धक शुल्क कांग्रेस अधिवेशनमें सिर्फ दर्शकोंपर ही लगाया गया है। इसके पीछे विचार यह है कि दर्शक लोग अधिवेशन देखनेके लिए अर्जियाँ देना बन्द करें। मैं चाहता हूँ कि जनता स्वागत समितिकी स्थितिको समझे। उसके कंधेपर नये संविधानके अन्तर्गत असाधारण परिस्थितियोंमें पहला अधिवेशन आयोजित करनेका भार आ पड़ा है। कांग्रेस अधिवेशनकी सफलता मुख्यतः जनताके प्रत्येक व्यक्तिके स्वेच्छाप्रेरित हार्दिक सहयोगपर ही निर्भर है।

खादीकी टोपीके खिलाफ जिहाद

कराचीके श्री धरमदास ऊधाराम लिखते हैं कि फोर्ब्स कैम्बेल कम्पनीने उन्हें खादी-टोपी पहननेकी हिमाकत करनेके आरोपमें अपनी नौकरीसे हटा दिया है। उन्हें मैं इस साहसके लिए बधाई देता हूँ कि उन्होंने बर्खास्तगी मंजूर कर ली लेकिन टोपी पहनना छोड़नेसे इनकार कर दिया। अगर हमारा नैतिक बल टूट नहीं गया होता तो सभी क्लर्क, चाहे वे कहीं भी काम करते हों, एक ही साथ इसी तरह खादी टोपीको अपनाकर खुदको बर्खास्त करनेकी अपने-अपने मालिकोंको चुनौती देते। इसके परिणाम-स्वरूप लोग सचमुच जो अवश्यम्भावी है उसे पहचान लेते और एक सर्वथा निर्दोष पहनावेके खिलाफ जिहाद बोलनेकी गलती उनकी समझमें आ जाती। दरअसल, यह जिहाद नौकरी करनेवालोंको आतंकित करने और उन्हें दब्बू, बल्कि पुंसत्वहीन बनाकर रखनेके खयालसे बोला गया है। मद्रासमें लोक-शिक्षा निदेशक महोदय इंस्पेक्टरोंको स्कूलोंमें चरखेका प्रवेश करानेकी इजाजत नहीं दे रहे हैं — भले ही उसका कारण सिर्फ इतना हो कि निदेशक महोदयके अनुसार चरखेको राजनीतिक महत्व दिया जाता है। इस तर्कके आधारपर नशाबन्दीपर किसी भाषणको भी वर्जित मानना चाहिए, क्योंकि असहयोगियोंके लिए इसका एक राजनीतिक महत्व है। स्वदेशी-

के खिलाफ तरह-तरहके अभियान चला देनेसे प्रकट होता है कि सरकारको यह अच्छी नहीं लगती। दूसरे शब्दोंमें, सरकार भारतकी आर्थिक स्वतन्त्रता सहन नहीं कर सकती। क्या इन लक्षणोंको देखते हुए हमें स्वदेशी कार्यक्रमपर अमल करनेके लिए कृतसंकल्प नहीं हो जाना चाहिए?

फौजी लोग

अली-बन्धुओं और उनके साथियोंपर चलाये गये मुकदमेका हाल और एक ज्ञापन[1] बैरकोंमें पहुँच चुका है, और फौजी लोग यह पूछ रहे हैं कि अगर वे नौकरी छोड़ देंगे तो उनका भरण-पोषण कैसे होगा। एक पत्रलेखक उनकी ओरसे पूछता है कि स्वराज्यके अन्तर्गत उनका क्या होगा। जहाँतक पहली जिज्ञासाकी बात है कार्य-समितिने उन्हें रास्ता दिखा दिया है। हर सिपाही आसानीसे बुनकर और धुनिया बन सकता है। धुननेके लिए बाहोंमें ताकतकी जरूरत है जो हर सिपाहीमें होगी ही। और बम्बईमें तो कोई भी धुनिया प्रतिदिन दो-से तीन रुपयोंके बीच कमा लेता है। पंजाबके बहुतसे बुनकरोंने करघे छोड़ दिये हैं और किरायेके टट्टू बनकर तलवारें उठा ली हैं। मैं करघेको ऐसी तलवारसे लाख दर्जा श्रेयस्कर मानता हूँ। जिस सिपाहीको यह निर्णय करनेका अधिकार नहीं हो कि उसे कब और किन लोगों अथवा किस जातिके खिलाफ तलवार उठानी पड़ेगी, उसके धन्धेको मैं खरा धन्धा नहीं कह सकता। सिपाहियोंकी सेवाका उपयोग हमारी रक्षा करनेकी अपेक्षा हमें गुलाम बनानेके लिए ही अधिक किया गया है, जब कि आज कोई भी बुनकर अपने देशका सच्चा मुक्तिदाता, और इस तरह, सच्चा सिपाही बन सकता है।

एक मित्रका सुझाव है कि कांग्रेसने जो बुनाई और धुनाईकी सलाह दी है, उसमें खेती भी जोड़ देनी चाहिए। यह तात्कालिक उपाय नहीं हो सकता, क्योंकि खेती आसानीसे नहीं शुरू की जा सकती और इसमें पूँजीकी भी जरूरत है और इस कारण यह काम हमारे उद्देश्यकी दृष्टिसे अव्यवहार्य ही हो जाता है।

स्वराज्यके अन्तर्गत क्या होगा; इसका जवाब आसान है। तब सिपाही किरायेके टट्टू नहीं होंगे। वे सिर्फ बाहरी दुश्मनोंसे बचाव और जानमालकी हिफाजतके लिए राष्ट्रीय सैनिक बनकर रहेंगे। राष्ट्रके मामलोंको दिशा देनेमें उनकी एक अपनी आवाज होगी। और निश्चय ही तब उन्हें निरीह तुर्कों या अरबोंका गला काटनेके लिए देशसे बाहर पश्चिममें नहीं भेजा जायेगा और न उतने ही निरीह चीनियों और बर्मियोंका गला काटनेके लिए पूर्वमें ही भेजा जायेगा।

श्री त्यागीके बचावमें

श्री भगवानदास[2] इस आन्दोलनको काफी गहरी दिलचस्पीसे देखते रहे हैं। उन्होंने श्री त्यागीके बचावमें निम्नलिखित विद्वत्तापूर्ण पत्र[3] लिखा है।

१. कराची-प्रस्तावपर; देखिए "एक ज्ञापन", ४-१०-१९२१।

२. १८६९-१९५८; लेखक, दार्शनिक; काशी विद्यापीठ, बनारसके आचार्य।

३. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

पाठक ध्यान देंगे कि पिछले हफ्ते श्री त्यागीका बयान देखते ही मैंने कुछ भूल-सुधार कर ली थी।[1] मैंने आगाही इसलिए जरूरी समझी कि मुझे ऐसा अनुभव है कि हमारा मौन कमजोरीका परिणाम हुआ करता है। दुर्भाग्यवश यह इक्के-दुक्के लोगोंतक ही सीमित नहीं है, बल्कि एक राष्ट्रीय दोष बन गया है। जब मैंने श्री त्यागीका उदाहरण दिया तो उसका मतलब इस दोषका सिर्फ सबसे ताजा नमूना पेश करना था। जैसा कि मैं पहले भी बता चुका हूँ, मोपलोंका पागलपन तो बुरा है ही, लेकिन दूसरे लोग उस पागलपनके आगे झुक गये, यह और भी बुरा है। वे जोर-जबरदस्तीसे मजबूर होकर अपना मजहब बदलनेकी कहानी कहनेको जीवित ही क्यों रहें? कोई दूसरा व्यक्ति तो हमारे लिए हमारे धर्मकी रक्षा नहीं कर सकता। हममें से हरएक स्त्री या पुरुषको अपना रक्षक आप होना चाहिए। जिस ईश्वरने हमें धर्म दिया है, उसने उसकी रक्षा करनेकी भी शक्ति हमें दी है। हर व्यक्तिमें प्रहार करनेकी शक्ति नहीं है; परन्तु चाहे लूला-लंगड़ा हो, या अन्धा-गूंगा हो, मर मिटनेकी शक्ति तो सभीमें है। मजिस्ट्रेटने श्री त्यागीपर जो कायरतापूर्ण प्रहार करवाया, वह उनकी मर्दानगीपर प्रहार था और इस तरह धर्मपर। उन्हें कुछ-न-कुछ करके — चाहे उसे अवज्ञा कहिए या अविनय या उद्धतता — मजिस्ट्रेटको और भी तमाचे लगवानेके लिए ललकारना चाहिए था और "एक शान्तिपूर्ण दृश्य" उपस्थित कर देना चाहिए था। यह सबसे सच्चा असहयोग होता। लेकिन मैं श्री त्यागीको या किसीको भी दोष नहीं देता। हमारी मर्दानगीको तो जानबूझकर खत्म किया गया है। हमें इस तरह बेबस कर दिया गया है कि हमें सब-कुछ चुपचाप सहना ही पड़ता है। अहिंसाके आधुनिक स्वरूपके प्रणेताके नाते मुझे इस बातकी बहुत फिक्र है कि अहिंसाकी आड़में हम अपनी कमजोरियोंको ही देवत्वका गुण न मानने लगें। जबतक हम इस क्षेत्रमें कुछ निश्चित काम नहीं कर लेते तबतक मैं इस बाबत लोगोंपर बधाइयोंकी वर्षा न करना ही अच्छा मानूँगा। जहाँतक बाकीका सवाल है, सत्ताका भय और आतंक त्यागनेकी दृष्टिसे हमने जो प्रगति की है, उसके लिए तो हमें हर तरहसे प्रसन्न होना चाहिए। असहयोग कमजोरों और बलवानों, दोनोंके हाथमें एक मजबूत शस्त्र देता है। और जबतक हम यह महसूस करते हैं कि हम किसी अपमानके आगे झुक गये तो वह हमारी अपनी कमजोरी थी, और हमने हर बार इस कमजोरीपर विजय पानेकी कोशिश की तबतक हमें अपने आचरणपर लज्जित नहीं होना चाहिए।

बाबू भगवानदास यह जाननेको बहुत उत्सुक हैं कि भयसे अधिक बुरा और क्या हो सकता था। मेरे मनमें तब कायरताकी बात थी।

इस सम्बन्धमें एक बात काफी दिलचस्प लगती है। बाबू भगवानदासने श्री त्यागीका वक्तव्य तो देखा था, किन्तु उन्हें मेरे द्वारा भूल-सुधारकी कोई जानकारी नहीं थी। इसलिए मैंने जल्दबाजीमें श्री त्यागीके मामलेमें जो कमजोरी देखी, उसकी भर्त्सना-के खिलाफ उन्होंने प्रतिवाद करके ठीक ही किया; किन्तु दूसरी ओर मौलाना मुहम्मद

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २०–१०–१९२१ का उप-शीर्षक "मजिस्ट्रेटकी क्षमा-याचना" और "अभियुक्तका बयान"।

अलीने, जैसा कि उनके अन्यत्र प्रकाशित पत्रसे[1] प्रकट होगा, बड़ी तत्परतासे इस बातका विरोध किया है कि श्री त्यागीके कामको "अवज्ञा" (डिफायंस) कहा गया है। मेरी टिप्पणीके अन्तमें जो बचाव (डिफेंस) शब्द आया है, वह छपाईकी भूल है।[2] दर-असल यह "अवज्ञा" (डिफायंस) होना चाहिए था। ये प्रतिवाद मुझे बहुत अच्छे लगे हैं, क्योंकि मैं इन्हें राष्ट्रकी इस इच्छाका प्रतीक मानता हूँ कि जहाँ भूल हो, वहाँ वह उसे सुधारनेको आतुर है। मौलाना साहबको ऐसे किसी भी कार्यका श्रेय स्वीकार नहीं है जो संस्कृतिकी कड़ीसे-कड़ी कसौटीपर खरा न उतरे। और उधर बाबू भगवानदास मुझे किसी ऐसे कार्यके पीछे भयका दोष दिखानेकी इजाजत नहीं देंगे जिसे बहादुरोंकी अहिंसाके सर्वथा अनुकूल समझा जा सकता है। अब हम इस आशा और मंगल-कामनाके साथ यह विवाद बन्द करें कि हमारा देश बहादुर बने और विनयी तथा सर्वथा वीरोचित आचरण करनेवाला भी बने।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-१०-१९२१

१५०. पत्र-लेखकोंको

बिशनदास चड्ढा : आपको और कहीं जानेसे पहले भारतके प्रमुख केन्द्रोंमें जाकर देशी कलाका अध्ययन करना चाहिए। आप देखेंगे कि जर्मनीके चरखेपर हमारे चरखेसे ज्यादा सूत नहीं काता जा सकता।

भगीरथ मिश्र : जब आप पूरी प्रणालीको बुरा समझकर उससे असहयोग कर रहे हैं, तब ऐसा नहीं हो सकता कि किसी दूसरी प्रणालीके आ जानेके कारण आप फिर पहलीवाली प्रणालीसे सहयोग करने लगें। उस हालतमें तो आपको दोनोंसे असहयोग करना होगा। मेरी इस "धमकी"का यही कारण है कि अगर भारतमें अहिंसा सर्वव्यापी हो जाये और उसीकी चपेटमें आकर मैं दुनियासे उठ न जाऊँ तो मैं हिमालयकी गुफाओंमें शरण ले लूँगा।

एम० एस० शंकररमण : विधि-विधान अक्सर ईश्वर पूजनमें सहायक होते हैं। प्रार्थना आत्माकी तीव्रतम अभीप्सा है और हमारे विकासके लिए सर्वथा अनिवार्य है।

बिन्दुमाधव : एक बारमें एक ही काम करो, यह सुनहरा नियम है। अगर हम कुछ वस्तुओंका वर्जन कर दें, तब जिन शेष वस्तुओंका वर्जन करना चाहते हैं उनका भी वर्जन सहज ही कर सकेंगे। जड़ काट देनेपर तना तो एक ही धक्केमें गिराया जा सकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-१०-१९२१

१. देखिए "जेलसे लिखा एक पत्र", २७-१०-१९२१।

२. देखिए "टिप्पणियाँ", १३-१०-१९२१ का उप-शीर्षक "उनकी विसंगति"।

१५१. जेलसे लिखा एक पत्र

जेल
करांची
१८ अक्तूबर, १९२१

प्यारे बापू,

स्वभावतः, मैं आपको एक लम्बे अर्सेसे लिखनेकी सोचता रहा हूँ, लेकिन किसी-न-किसी वजहसे हर दिन टालता रहा। लेकिन, वाल्टेयरमें मेरी गिरफ्तारी-पर मेरी पत्नीने जो-कुछ किया और उसके बाद उसकी जो गतिविधि रही, उसके बारेमें अखबारोंमें आपकी कलमसे लिखी बातें पढ़नेके बाद आपको पत्र लिखनेकी इच्छा किसी तरह दबा नहीं सका। आप खुद ही सार्वजनिक रूपसे स्वीकार कर चुके हैं कि मेरे लिए पत्र लिखना कितना मुश्किल है। इसलिए, भले ही बहुत थोड़े शब्दोंमें सही, किन्तु आपको यह बताये बिना नहीं रह सकता कि आपने मेरे दिलको कितनी गहराईतक छू लिया है। शायद मैं आपको एक बार बता चुका हूँ कि हमारा "प्रेम-विवाह" हुआ था, जिसका भारतमें आम चलन नहीं है। इसके अतिरिक्त भी हमारे विवाहित जीवनका हर साल मेरी पत्नीको मेरी अधिकाधिक निकटकी संगिनी बनाता गया, और नजरबन्दी तथा कारावासके पिछले कुछ घटनापूर्ण वर्षोंको उसने जिस साहसके साथ झेला है, और १९१९में हमारी रिहाईके बाद हम जिन "खतरों" में रहते आये हैं उनका उसने जिस हिम्मतके साथ सामना किया है, उसके कारण वह मुझे और भी प्यारी हो गई है। लेकिन, मैं आपको सच बता रहा हूँ कि उस दिन जब उस छोटेसे रेलवे पुलिस स्टेशनके अन्दर आकर उसने बड़ी हिम्मत और बेपर-वाहीसे मुझसे अपनी और लड़कियोंकी फिक्र न करनेको कहा और अलविदा कहकर, कुल एक-दो मिनटमें ही, दृढ़ताके साथ गाड़ीकी ओर चल पड़ी तबसे वह मुझको इतनी प्यारी लगने लगी है, जिसका आधा भी पहले कभी नहीं लगी थी। खैर, मैंने आपके लेखोंमें अपना या हम दोनों "भाइयों"का उल्लेख एकाधिक बार पाया है। आपने सबमें हमारी तारीफ ही की है, और मुझमें ऐसा कोई बनावटीपन नहीं है कि मैं यह बात आपसे छिपा लूँ कि ऐसी हर चर्चासे मुझे बहुत खुशी हुई और मेरा दिल जोरोंसे धड़कने लगा। मैंने कई बार हमारे लिए आपकी "हिमायत" या "सफाई" भी अखबारोंमें पढ़ी है। इन लेखोंमें आपने हमारे आलोचकोंके आक्रमणका जोरदार विरोध किया है और ऐसे समयमें हमारा हौसला बढ़ाया जब हम अपना आपा खोने लगे थे। लेकिन हमारी तारीफ अथवा हिमायतके रूपमें लिखी गई आपकी किसी बातसे मेरे दिलको

उतनी खुशी नहीं हुई जितनी मेरी अजीज और बहादुर पत्नीके बार-बार जिक्रसे हुई। असलियत तो यह है कि इसने मेरे दिलको इस कदर छू लिया है कि आपने उसकी तारीफमें जो भरमानेवाली बातें कही है, उनके लिए आपको माफी देनेके लिए भी तैयार हो गया हूँ और उनपर आपसे रश्क न करनेके लिए भी तैयार हूँ। खैर। मैं सिर्फ यही उम्मीद करता हूँ कि यह मुश्किल इम्तिहान जल्दी पूरा हो जायेगा और जिससे वह अपना काम करनेके लिए फिरसे आजाद हो जाये और आपसे और भी ज्यादा भरमानेवाली तारीफें पाये।

हाँ, पता नहीं, आपने तैरसीके नाम मेरा वह खत देखा है या नहीं जिसमें मैंने मजिस्ट्रेट द्वारा की जानेवाली तहकीकातके चौथे दिनके वाकयातका ब्यौरा दिया है। आप जानते हैं कि "क्रॉनिकल" तकने मेरी तकरीरकी कितनी गलत रिपोर्ट दी थी; इसलिए आप शायद यह समझ सकते हैं कि ऐसे "नौसिखिये" अखबारनवीसोंकी रिपोर्टोंकी बिनापर किन्हीं मामलों और वाकयातके बारेमें अपनी राय कायम कर लेना कितना खतरनाक है, जो शार्टहैंड बिल्कुल नहीं जानते और जब बात बहुत रोचक और आकर्षक रूप धारण कर लेती है तब उसे देखने-सुननेमें इस कदर मशगूल हो जाते हैं कि अपने अखबारके लिए उसे लिख लेनेके कामकी उपेक्षा कर देते हैं। जिन दिनों मैं जेलमें नहीं था उन दिनों न तो इतना वक्त मेरे पास था और न इतना सब्र ही मुझमें था कि अपनी तकरीरोंकी रिपोर्टोंकी गलतियाँ हर रोज सुधारता चलता। अब चूँकि जेलकी जिन्दगीमें मुझे ज्यादा अवकाश मिलता है और कैदीका जीवन बितानेकी तैयारी करनेके लिए अधिक सब्रकी आदत डालना लाजमी हो गया है, इसलिए मैं इन गलतियोंको बिना ठीक किये नहीं रह सकता। लेकिन लोगोंको भी सिर्फ इसीलिए छपनेवाली हर बातको आँख मूँदकर सच नहीं समझ लेना चाहिए। जब मैंने अदालतकी चौथे दिनकी कार्यवाहीकी बिलकुल नाकाफी, गलत-सलत और पूरी तरह गुमराह करनेवाली रिपोर्ट पढ़ी तो मुझे लगा कि कुछ लोग तो हमें जरूर ही गलत समझेंगे, और तैरसीको लिखे पत्रमें मैंने जहाँ इस बातका जिक्र किया था कि "क्रॉनिकल"ने किस तरह मेरे बयानकी रिपोर्ट देनेमें दर्जनों जगह पूरेके-पूरे जुमले और पैरे ऊलजलूल ढंगसे धर दिये हैं, वहाँ वह हालात भी बयान किये थे जिनकी वजहसे अदालतकी शानमें "गुस्ताखी"की नौबत आई। लेकिन दरअसल हम "शरारत"पर "आमादा" नहीं थे। तीन दिनतक अदालतकी कार्यवाही बड़े आरामसे चलती रही और तीनों दिन अगर सरकारी वकीलकी निगाहमें हम इसीलिए गुनहगार ठहरे हों कि हमने "अपना बचाव" किया तो अलबत्ता अदालत भी हमपर "गुस्ताखी" करनेका इल्जाम लगा सकती है। लेकिन कठिनाई मौलाना हुसैन अहमद साहबके बयानसे शुरू हुई। अदालतने किसी योग्य दुभाषियेको बुलानेसे इनकार कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि

किचलू उर्दूमें बोलनेका आग्रह करते रहे, जब कि मजिस्ट्रेट दूसरे साथी-मुजरिमके बयानसे शुरुआत करना चाहता था, क्योंकि उसका कहना था कि उसके लिए दुभाषियेकी जरूरत नहीं पड़ेगी। अगले दिन माहौल बिलकुल बदल गया, हालाँकि हमें इस बातका बिलकुल इल्म नहीं है कि रात-भरमें ऐसी कौन-सी बात हो गई, जिसने फिजाँको बिलकुल बदल दिया। "गुस्ताखी" अदालतने की। किचलूको बयान देते समय हर नये जुमलेपर टोका गया, और मजिस्ट्रेटने उनका बयान लिखनेसे इनकार कर दिया, हालाँकि उनका बयान बिलकुल मेरे ही बयानकी तरह था। फिर वह शंकराचार्यसे इस बातकी जिद करने लगा कि अगर उनको कोई बयान देना है तो वे खड़े होकर दें, लेकिन शंकराचार्यने कह दिया कि धार्मिक कारणोंसे वे ऐसा नहीं कर सकते। इसी बातने मुझे मजबूर कर दिया कि मैं बिना गरम हुए मजिस्ट्रेटकी बातकी मुखालफत करूँ। मैंने उससे पूछा कि हिन्दुओंके बीच जिस धर्माधिकारी व्यक्तिका स्थान शंकराचार्यकी तरह ऊँचा हो, क्या आप उससे अदालतके अदब-कायदे मनवानेकी तब भी जिद करेंगे, जब ऐसा करनेमें उस व्यक्तिको उस कानूनकी अवहेलना करनी पड़े जिसे वह दैवी कानून मानता है। आप जिस कौमके हैं उस कौमके पुरखोंका भारतमें पुराना इतिहास यह है कि वे महज उस कानूनकी अवहेलना होनेके डरसे, जिसे वे दैवी कानून मानते थे, अपनी जन्मभूमि छोड़कर यहाँ आ बसे थे। ब्रिटिश अदालतका अदब कायम रखनेमें आपको इतना ज्यादा विश्वास है। क्या आप खुदाको नहीं मानते? अखबारमें सिर्फ मेरा यही प्रश्न-सूचक वाक्य छपा : "क्या आप खुदाको नहीं मानते?" मेरी आरजू-मिन्नतके जवाबमें उसने किया यह कि मुझे गन्देसे-गन्दे लहजेमें बैठ जानेको हुक्म दिया। मैंने बैठनेसे इनकार जरूर किया, लेकिन यह कभी नहीं कहा कि "देखता हूँ, आप क्या कर लेते हैं।" मैंने यह कहा था कि आप ताकतका इस्तेमाल कर सकते हैं, लेकिन ऐसा कोई कानून नहीं है जो किसी मुजरिमको बैठनेके लिए मजबूर कर सके। बेचारे शौकतने मजिस्ट्रेटकी काफी मान-मनौती की, और यह गुजारिश की कि वह बयान देते वक्त उसे टोके नहीं, क्योंकि इससे वह बिलकुल गड़बड़ा जाता है। लेकिन स्पष्ट ही मजिस्ट्रेट इस बातपर बिलकुल आमादा था कि पिछले दिनके मेरे बयानकी तरहकी कोई बात रिकार्डमें न लिखी जाये या उन सहयोग करनेवाले और दूसरे लोगों द्वारा सुनी भी जाये जो अदालतमें मौजूद थे। जब मौलाना हुसैन अहमद साहबने अपना बयान शुरू किया तो न तो उसने अदालतके दुभाषियेसे उसका तर्जुमा कराया (जो पहले ही यह मान चुका था कि उसमें इस्लामी कानूनकी व्याख्याका तर्जुमा कर सकनेकी लियाकत नहीं है), न इस बातकी जरा-सी भी कोशिश की कि मौलाना जो-कुछ कह रहे थे उसे समझे। लिखा कुछ भी नहीं गया लेकिन इतना सब काफी नहीं था। यों तो उसने जो उपेक्षाका रुख अपना

रखा था, वही काफी चुभनेवाला था, लेकिन उसने उसके साथ-साथ एक या दो बार सीधे-सीधे तौहीन करनेवाली बातें भी कहीं; जैसे, "यहाँ पूरा 'कुरान' सुनानेकी कोई जरूरत नहीं है।" मौलाना निसार अहमद साहबके मुख्तसर-से बयानका हश्र भी कुछ अच्छा नहीं हुआ। और यह मजिस्ट्रेट कायदे-कानूनकी पाबन्दीकी तरफसे इतना लापरवाह था कि उसने मेरे बयानका बाकी हिस्सा, जो खुद उसीके कहनेपर मैंने शार्टहैंड-टाइपिस्ट मिलनेपर उसे लिखकर देनेका वादा किया था, देखे बिना ही हमें सेशन-सुपुर्द कर दिया। लेकिन असलमें यह सब-कुछ तो तमाशा-भर था; क्योंकि दूसरे ही दिन जब अभी सबूत पक्षकी ओरसे गवाहोंके बयान लेनेका काम आधा भी नहीं हो पाया था, उसने दो गवाहोंके नाम सम्मन जारी करनेके लिए सरकारी वकीलकी अर्जीपर यह हुक्म जारी कर दिया कि कार्यवाहीको व्यर्थ ही लम्बा करनेसे कोई फायदा नहीं है और इन गवाहोंको सेशन अदालतके सामने बुलानेसे काम चल जायेगा। मजिस्ट्रेट साहब काफी पहले ही अपनी राय कायम कर चुके थे! और २९ तारीखको जाँच पूरी होनेसे पहले ही खुद जुडीशियल कमिश्नर सेशन अदालतके लिए हालका मुआयना करने आये और सरकारी वकीलके साथ अगली योजनाओंके बारेमें चर्चा करते रहे। जैसा मैंने अदालतसे कहा, यदि फाँसीकी टिकटी तैयार करनेके लिए वे बढ़इयोंको भी भेज देते तो ज्यादा अच्छा होता! इस्लामी कानूनका जिक्र आते ही मजिस्ट्रेटका सब्र खत्म हो जाता और वह कहने लगता "इन फतवोंसे हमारा कोई सरोकार नहीं है।" शौकत इस कदर बौखला गया कि उसे उससे कहना पड़ा, "ऐसी छोटी-छोटी बातें मुझसे पूछनेसे क्या फायदा? मुझसे तो यह पूछो कि ऐसी हालतोंमें इस्लामी कानूनमें क्या व्यवस्था दी गई है।" लेकिन सब बेकार गया; यहाँतक कि खुद शौकत तक ज्यादा देर जब्त नहीं कर पाया और "पूरे तमाशे पर" लानत देने लगा। लेकिन क्या आप यह यकीन कर सकते हैं कि इस तहकीकातके पूरे होनेके फौरन बाद जब मजिस्ट्रेट कुछ वक्तके लिए हटा तो वह फिरसे एक नया ही आदमी बन गया। 'शौकतके खिलाफ दूसरे मुकदमेमें और मेरे खिलाफ अगले मुकदमेमें वह फिर वैसा ही आदमी बन गया जैसा वह तीसरे दिन था। मैं यह नहीं बता सकता कि दूसरी बार यह कायापलट कैसे हुई। लेकिन आपको इस बातसे अदालत (जिसमें मुजरिम भी शामिल है) के "सामान्य" माहौलका अन्दाज हो जायेगा कि आखिरी दिन सरकारी वकीलने जल्दी-जल्दी मेरे पास आकर मुझसे कहा, "आपको एक बार फिर अदालतके सामने आनेमें तो कोई एतराज नहीं है? एक गवाहने गलत सबूत पेश कर दी है और मैं उसे दुबारा बुलाना चाहता हूँ।" मैं राजी हो गया और बोला, "आप जैसा कहें।" और जब खुफिया पुलिसके रिपोर्टरने दुबारा हलफ उठाकर यह कहा कि वह जो चीज दाखिल

कर रहा है वह मेरी तकरीर ही है तो मैंने मजिस्ट्रेटसे खुशी-खुशी कह दिया कि क्योंकि पहले एक दूसरे ही दस्तावेजको कसम खाकर मेरी तकरीरके नामसे दाखिल किया गया था, इसलिए मैं गलतबयानीके इल्जामपर मुकदमा चलानेकी माँग करनेका अपना अधिकार उठा रखता हूँ, तो मजिस्ट्रेटने भी उतने ही खुशनुमा तरीकेसे मेरा शुक्रिया-अदा कर दिया। असलियत यह है, जैसा कि हम सभी जानते हैं, मजिस्ट्रेट हमेशा स्वचालित यन्त्रकी तरह होता है (और उस घटनापूर्ण दिन मैंने उसे बता दिया था कि मुझे इस बातका बड़ा अफसोस है कि मेरे एक देशवासीको ऐसा गन्दा काम पूरा करनेके लिए इस्तेमाल किया जा रहा है), लेकिन मेरे बयानके दूसरे दिन वह बिलकुल "बँधा-बँधाया" सा आया। मुझे पता लगा है कि उसी दिनसे ऐसे लोगोंने भी, जिनसे उसे अपनी वफादारी और फरमाबरदारीके लिए शाबासी मिलनेकी उम्मीद थी, ऐसे ऐतिहासिक महत्वके मुकदमेको, जिसे नई व्यवस्थाके अधीन "इन्साफ"की मिसाल पेश करनेकी मंशासे चलाया गया था, कायदे-कानूनकी परवाह न करके बिगाड़ देनेपर उसके खिलाफ नाराजी जाहिर की है। इसलिए, स्थितिको जितना हो सके, सुधारनेके लिए इलाहाबादके रॉस एल्स्टन और आलिम आ रहे हैं और लाहौरसे एक योग्य दुभाषिया आ रहा है। लेकिन यह सब-कुछ तमाशा था और इसमें किसी भी बातसे सुधार नहीं हो सकता है। अपनी ओरसे गुस्ताखी करनेकी न कोई हमारी मंशा है और न हम शरारतपर आमादा हैं। न ही हम ऐसे ढोर बने रहना चाहते हैं जिन्हें जो जैसे चाहे हाँक ले; और अहिंसा भी ऐसी नरमी नहीं माँगती। अभी तो हिंसाके हामियोंको बहुत-सी बातोंका जवाब देना है और बहुतसे मुसलमानोंकी आँखें तो फैसलेके उस दिन खुलेंगी जब खुद उनके मामलेमें "हिंसाकी वास्तविक सीमा एक बार फिर तय की जायेगी। परन्तु अहिंसावादियोंको भी अभी काफी बातोंका जवाब देना है और मुझे तो अभीसे दिखाई पड़ रहा है कि 'अहिंसाका देवदूत' अहिंसाके उन कमजोर समर्थकोंका भ्रम दूर करनेमें लगा हुआ है जो कायरताको अहिंसाका नाम देनेकी कोशिश करते हैं।"

और अब अलविदा। देवदास और छोटे बच्चोंको प्यार और 'बा' को स्नेहपूर्ण सलाम।

वह चेक खिलाफत-कोषके लिए ही भेजा गया होगा। मेरी माँ और बीवीको किसी माली इमदादकी जरूरत नहीं है लेकिन हम ऐसे भिखारी हैं जो अपने उसूलके लिए सब-कुछ हज्म कर जायेंगे। खुद आपको हमारा प्यार-भरा सलाम।

हमेशा आपका,
मुहम्मद अली

मुझे यकीन है कि पाठक यह समझ लेंगे कि ऊपरका पत्र उनके सामने रखनेके अनेक कारण होंगे। मेरा अपना ख्याल है कि यह ऐसा भावपूर्ण दस्तावेज़ है जिससे मौलानाकी पूरी हस्ती उभर कर सामने आ जाती है। यह पत्र मजिस्ट्रेटको कुदरतन भेजे जानेकी अनुमति देनी पड़ी। मेरी यह इच्छा नहीं हुई कि मैं पत्रका एक हरूफ भी निकाल दूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७–१०–१९२१

१५२. युवराजका सम्मान करें

इस लेखका शीर्षक देखकर पाठक आश्चर्य न करें। मान लीजिए युवराज एक ऊँचे पदपर आसीन आपके सगे भाई ही होते, मान लीजिए पड़ोसी लोग अपने नीच स्वार्थोंकी सिद्धिके लिए उनका दुरुपयोग करनेको होते, यह भी फर्ज कीजिए कि वे मेरे पड़ोसियोंके हाथोंमें होते, मेरी आवाज उनतक ठीकसे पहुँच नहीं पाती और उक्त पड़ोसी लोग उन्हें मेरे गाँव ला रहे होते, तो उनके प्रति सच्चा सम्मान क्या यह नहीं होगा कि उनसे नाजायज फायदा उठानेके सिलसिलेमें उनके 'सम्मान' में आयोजित समस्त समारोहोंसे मैं अलग रहूँ और हर सम्भव तरीकेसे उन्हें यह जताऊँ कि लोग उनसे नाजायज फायदा उठाने जा रहे हैं? अगर मैं अपने पड़ोसियों द्वारा बिछाये गये जालमें पाँव रखनेके विरुद्ध उन्हें सचेत न करूँ तो क्या यह उनके प्रति धोखेबाजी नहीं होगी?

मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि युवराजकी यात्राका नाजायज फायदा उठाकर भारतमें ब्रिटिश शासनके "कल्याणकारी" रूपका प्रचार किया जा रहा है। और अगर महाविभव युवराजको उनके व्यक्तिगत आमोद-प्रमोद और क्रीड़ाके लिए लाया जा रहा है तो यह हमारे प्रति अन्याय है। इसके लिए यह अवसर सर्वथा अनुपयुक्त है। सर्वसाधारणका मन आज उस प्रणालीके प्रति असन्तोषकी भावनासे भरा हुआ है, जिसके अन्तर्गत उसपर शासन किया जा रहा है। खुलना और रायलसीमाके इलाकेमें अकाल पड़ा हुआ है और मलाबारमें सशस्त्र संघर्ष चल रहा है। भारतके प्रति यह अन्याय है कि सिर्फ एक तमाशेपर करोड़ों रुपये खर्च किये जायें जब कि करोड़ों लोग बहुत समयसे भुखमरीकी अवस्थामें रह रहे हों। इस तमाशेके लिए आठ लाख रुपये खर्च करनेकी स्वीकृति तो सिर्फ बम्बईकी कौंसिलने ही दे दी है।

युवराजके आगमनपर उनका स्वागत करनेके लिए देशमें सर्वत्र दमनचक्रको गति दे दी गई है। सिन्धमें कोई छप्पन असहयोगी जेलोंमें हैं। कुछ बहादुरसे-बहादुर मुसलमानोंपर इसलिए मुकदमे चल रहे हैं कि उनके विचार अमुक ढंगके क्यों हैं। बंगालके उन्नीस कार्यकर्त्ताओंको अभी हालमें जेल भेजा गया है। इनमें अपने वहाँके प्रमुख बैरिस्टर श्री सेनगुप्त भी हैं। एक मुसलमान पीर और तीन अन्य आत्मत्यागी कार्यकर्त्ताओंको ऐसे ही "अपराध" पर जेल भेज दिया गया है। कर्नाटकके भी बहुतसे नेताओ

को जेल भेज दिया गया है, और अब उसके प्रमुख नेतापर महज वे ही बातें कहनेके कारण मुकदमा चल रहा है जो बातें मैं इन स्तम्भोंमें बार-बार कहता आया हूँ और कांग्रेसी लोग भी सारे देशमें गत बारह महीनोंसे कहते आ रहे हैं। मध्य प्रान्तके भी बहुतसे नेताओंको इसी तरह जेलोंमें बन्द कर दिया गया है। डा० परांजपे जो एक अत्यन्त लोकप्रिय डाक्टर हैं और अपनी आत्मत्यागकी भावनाके लिए प्रसिद्ध हैं, किसी आम जरायमपेशा आदमीकी तरह कठोर कारावास भोग रहे हैं। और कोई यह न समझे कि जेल भेजे गये असहयोगियोंकी यह पूरी सूची है — और भी बहुत-से लोग हैं। इन लोगोंकी कैद चाहे असली अपराधकी द्योतक हो या बढ़ते हुए असन्तोष-की, लेकिन युवराजके आगमनके बारेमें जो कमसे-कम कहा जा सकता है वह यह कि उनकी यात्राके लिए बहुत ही अनुपयुक्त अवसर चुना गया है। इस बातमें किसी तरहके सन्देहकी गुंजाइश ही नहीं है कि लोग नहीं चाहते कि इस समय युवराज यहाँ आयें। उन्होंने अपना मत स्पष्ट शब्दोंमें प्रकट कर दिया है। उन्होंने घोषित किया है कि जिस दिन युवराज बम्बईमें उतरें, उस दिन वहाँ हड़ताल की जाये। लोगोंके ऐसे तीव्र विरोधके बावजूद युवराजको यहाँ लाना लोगोंकी इच्छाके विरुद्ध किया गया कार्य है।

इन परिस्थितियोंमें हम क्या करें? हमें युवराजके सम्मानमें आयोजित सभी समारोहोंका बहिष्कार करनेका प्रयत्न करना चाहिए। इस उद्देश्यसे आयोजित सदाव्रतों, भोजों और जलसों तथा आतिशबाजियोंसे हमें संकल्प पूर्वक अलग रहना चाहिए। हमें विशेष प्रकाशकी व्यवस्था नहीं करनी चाहिए और न प्रकाशका आयोजन देखनेके लिए अपने बच्चोंको बाहर जाने देना चाहिए। इस उद्देश्यसे हमें करोड़ों पर्चे छापकर लोगोंके बीच बँटवाना चाहिए, और इस तरह उन्हें बताना चाहिए कि इस मामलेमें उनका क्या कर्त्तव्य है। जिस दिन युवराज बम्बईमें उतरें उस दिन अगर बम्बई बिलकुल वीरान दिखाई दे तो यही उनका सच्चा सम्मान होगा।

लेकिन युवराजको व्यक्तिके रूपमें हमें अलग करके देखना है। व्यक्तिके रूपमें उनके प्रति हमारे मनमें कोई दुर्भावना नहीं है। वे शायद भारतकी भावनाके बारेमें कुछ भी नहीं जानते हों; उन्हें यहाँ चल रहे दमनचक्रकी शायद कोई जानकारी न हो। और उतना ही सम्भव यह भी है कि वे इस तथ्यसे अनभिज्ञ हों कि पंजाबका घाव अभी बिल्कुल हरा है, खिलाफतके मामलेमें भारतके साथ जो धोखेबाजी की गई उसकी स्मृति अब भी एक-एक भारतीयके हृदयमें ज्योंकी-त्यों बनी हुई है, और जैसा कि सरकारने खुद कहा, नई कौंसिलोंके सदस्य यद्यपि कहनेको निर्वाचित सदस्य हैं, किन्तु दरअसल मतदाता सूचियोंमें जिनके नाम दर्ज हैं, उनमें से चन्द लाख व्यक्तियों-का भी वे प्रतिनिधित्व नहीं करते! युवराजको शारीरिक रूपसे कोई क्षति पहुँचाने या ऐसी कोई कोशिश करनेका मतलब न केवल क्रूरता और अमानवीयता होगी, बल्कि ऐसा करके हम अपने-आपको और युवराजको धोखा देंगे, क्योंकि हमने स्वेच्छासे यह शपथ ली है कि हम अहिंसापर दृढ़ बने रहेंगे। अगर हम युवराजको जरा भी चोट पहुँचाते हैं या उनका अपमान करते हैं तो वह भारत और इस्लामके साथ इतना बड़ा अन्याय होगा जितना बड़ा कोई अन्याय अंग्रेजोंने भी इनके प्रति नहीं किया है।

वे लोग तो खैर इसके अलावा और कुछ जानते ही नहीं। लेकिन हम तो अज्ञानका ऐसा कोई बहाना नहीं कर सकते। हमने तो पूरी तरह सोच-समझकर ईश्वर और मनुष्यकी साक्षीमें यह प्रतिज्ञा की है कि जिस प्रणालीको नष्ट करनेके लिए हम हर-चन्द कोशिश कर रहे हैं, उस प्रणालीसे किसी भी तरहसे सम्बद्ध किसी भी व्यक्तिको हम कोई चोट नहीं पहुँचायेंगे। इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि अपने ही शरीरकी तरह युवराजके शरीरकी सुरक्षाके लिए भी हम हर सम्भव सावधानी बरतें।

हम जानते हैं कि हमारी सारी कोशिशके बावजूद ऐसे कुछ लोग अवश्य होंगे जो किसी भी भय या आशासे अथवा अपनी मर्जीसे विभिन्न समारोहोंमें शामिल होना चाहेंगे। उन्हें भी अपनी इच्छाके अनुसार चलनेका उतना ही अधिकार है, जितना हमें है। हम जो स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहते हैं, हम जिसका उपभोग करना चाहते हैं, उस स्वतन्त्रताकी कसौटी ही यह है। तो यह मदान्ध नौकरशाही हमें जितना परेशान करना चाहे, करती रहे, पर हम अधिकसे-अधिक संयमसे काम लेते रहें। और अगर हम नौकरशाही द्वारा आयोजित तमाशोंसे बिल्कुल अलग रहकर अपने इस दृढ़ निश्चयका परिचय देंगे कि हमारा उससे कोई सरोकार नहीं है, और साथ ही यदि हम अपनेसे भिन्न मत रखनेवालोंके प्रति सहिष्णुता बरतेंगे तो इससे हमारा उद्देश्य बहुत कारगर ढंगसे आगे बढ़ेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-१०-१९२१

१५३. असहयोगका रहस्य

इसमें कोई शक नहीं कि असहयोग एक ऐसी तालीम है जिससे लोकमत विकसित और एक स्पष्ट स्वरूप पाता जा रहा है। और ज्यों ही उसका इतना संगठन हुआ कि उसके द्वारा कारगर कदम उठाया जा सके, त्यों ही हमें स्वराज्य मिल जायेगा। हिंसात्मक वायुमण्डलमें लोकमतका संगठन नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार वे लोग जिन्हें मोपलोंने बलपूर्वक कलमा पढ़ाया, मुसलमान नहीं माने जा सकते, उसी प्रकार वे लोग भी, जो अपनेको शौकिया या मजबूरीसे असहयोगी कहते हैं, सच्चे असहयोगी नहीं हैं। वे सहायक नहीं, उलटे बाधक हैं। अगर लोगोंपर हम अपनी इच्छा जबर्दस्ती थोपेंगे तो हमारा यह जुल्म इस नौकरशाहीके अंगभूत मुट्ठी-भर अंग्रेजोंके जुल्मसे भी खराब होगा। इन अंग्रेजोंका जोर-जुल्म तो मुट्ठी-भर लोगोंका जुल्म है, जो विरोधके बीच अपने अस्तित्वकी रक्षाके लिए लड़ रहे हैं। परन्तु हमारा जुल्म तो बहुसंख्यक लोगों द्वारा थोपा गया होगा और इसलिए वह उस जुल्मसे ज्यादा बुरा और वाकई ज्यादा अधर्ममय होगा। अतएव हमें अपने आन्दोलनमें से हर किस्मके दबावको बिल्कुल निकाल देना चाहिए। अगर हम लोग केवल मुट्ठी-भर ही हों, परन्तु हों असहयोगके सिद्धान्तके पक्के पाबन्द, तो हमें विरोधी मतको अपने पक्षमें करते हुए चाहे प्राण गँवाने पड़ें किन्तु हम फिर भी सचमुच अपने उद्देश्यकी रक्षा कर सकेंगे और

साथ ही उसके प्रतिनिधि कहे जा सकेंगे। किन्तु यदि हम लोगोंको दबाव डालकर अपने दलमें शामिल करेंगे तो हम ऐसा करके अपने उद्देश्यको भ्रष्ट करेंगे और ईश्वरसे विमुख होंगे। और यदि हमें इसमें सफलता मिली दिखे तो वास्तवमें हम एक अधिक बड़ी निरंकुश सत्ताकी स्थापनामें ही सफल होंगे।

अगर हम असहिष्णुता दिखाकर दूसरोंको अपना मत प्रकट न करने देंगे तो हम अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें बाधा डालेंगे। क्योंकि उस अवस्थामें हम यह कभी न जान सकेंगे कि कौन हमारे साथ है और कौन खिलाफ है। इसलिए सफलताकी सबसे अनिवार्य शर्त यही है कि हम लोगोंको अपनी राय ज्यादासे-ज्यादा आजादीसे प्रकट करनेके लिए उत्साहित करें। हम अपने वर्तमान 'अधीश्वरों' से कमसे-कम इतना सबक तो सीख ही सकते हैं। उनकी दण्डसंहितामें उन विचारोंके लिए कड़ीसे-कड़ी सजाएँ रखी गई हैं जिन्हें वे पसन्द नहीं करते हैं। और उन्होंने हमारे कुछ निहायत शरीफ देशभाइयोंको महज इसलिए गिरफ्तार किया है कि उन्होंने अपनी राय प्रकट की है। हमारा यह असहयोग उस शासन-प्रणालीका खुल्लमखुल्ला विरोधी है। अतएव हम खास इसी लड़ाईमें, जिसे हम मत-प्रकाशनकी पाबन्दीके खिलाफ लड़ रहे हैं, खुद ही दूसरोंकी रायपर उस पाबन्दीको लगानेका अपराध न करें। इन विचारोंके प्रकट करनेका कारण यह है कि जब कोई सज्जन हमारे मतके प्रतिकूल अपनी राय प्रकट करते हैं तब उनका नाम प्रकाशित करनेमें मुझे बड़ी बेचैनी मालूम होती है। मैं इन लोगों-को उन पाठकोंकी मानसिक हिंसाका भाजन नहीं बनाना चाहता जो उनके मतोंको पसन्द न करते हों। हमको इतना साहस और उदारता अवश्य रखनी चाहिए कि हम खुद अपने प्रति तथा अपने विषयमें कही गई तमाम गन्दी बातोंको सुन और पढ़ सकें। इससे हमें उनके विचारोंको बदलनेका मौका मिलता है। मुझे एक पत्रलेखकने एक बहुत बड़ी प्रश्न-सूची भेजी है; मैं यह प्रयत्न इस पत्रलेखकसे ही आरम्भ करना चाहता हूँ। प्रश्न हमारे प्रचलित आन्दोलनके सम्बन्धमें किये गये हैं और सार्वजनिक रूपसे चर्चा किये जानेके योग्य हैं। लेखकने आरम्भ इस प्रकार किया है—

आप इस बातको स्वीकार करेंगे कि आपको माननेवाले और न माननेवाले दोनों तरहके लोग आपकी राजनैतिक हलचलोंके उद्देश्यके सम्बन्धमें अनिश्चयकी अवस्थामें हैं। इसलिए क्या आप नीचे लिखे प्रश्नोंका उत्तर देकर उनका भ्रम दूर करनेकी उदारता दिखायेंगे?

१. क्या आप वाकई महात्मा हैं?

मुझे तो नहीं मालूम होता कि मैं महात्मा हूँ। हाँ, यह मैं जरूर जानता हूँ कि मैं ईश्वरकी सृष्टिका एक अति विनम्र जीव हूँ।

२. अगर आप महात्मा हैं तो क्या आप "महात्मा" शब्दकी परिभाषा बतायेंगे?

किसी महात्मासे मेरा परिचय नहीं, अतः मैं उनकी परिभाषा नहीं बता सकता।

३. अगर आप महात्मा नहीं हैं तो क्या कभी आपने अपने अनुयायियोंसे कहा है कि 'मैं महात्मा नहीं हूँ।'

ज्यों-ज्यों मैं इसके खिलाफ आवाज उठाता हूँ त्यों-त्यों उसका प्रयोग बढ़ता जाता है।

४. क्या साधारण जनता आपके 'आत्म-बल' को प्राप्त कर सकती है?

उसके पास तो वह बल पहले ही बहुतायतसे है। एक दफा फ्रांसिसी वैज्ञानिकों-का एक दल ज्ञानकी खोजमें निकला और घूमता-फिरता भारत आ पहुँचा। दलके सदस्योंने अपनी अपेक्षाके अनुसार उस ज्ञानको विद्वन्मण्डलीमें खोजनेका भगीरथ प्रयत्न किया; परन्तु वे इसमें कृतकार्य न हुए। पर उन्हें वह अचानक एक पंचमके झोंपड़ेमें मिल गया।

५. आप कहते हैं कि ये 'यन्त्र' तो सभ्यताके लिए अभिशाप सिद्ध हुए हैं। तब आप रेलगाड़ी और मोटरमें क्यों सफर करते हैं?

कुछ बातें ऐसी हैं जिनके फन्देसे, प्रयत्न करते हुए भी, एकबारगी नहीं छूट सकते। मेरा यह पार्थिव ढाँचा जिसमें मैं बन्द हूँ, मेरे जीवनमें अनेक परेशानियों और चिन्ताओंका कारण है; परन्तु मैं उसको सहन करनेके लिए और, जैसा आप जानते हैं, उनके आगे झुकनेके लिए भी मजबूर हूँ। परन्तु क्या आपको वास्तवमें इस बातमें शक है कि 'इस पिछले महायुद्धमें जो आयोजित नर-संहार हुआ उसका कारण यह 'यन्त्र-युग' ही है?' विषाक्त गैस तथा अन्य दूषित वस्तुओंसे हमारी एक इंच भी प्रगति नहीं हुई है।

६. क्या यह बात सच है कि पहले आप रेलगाड़ीमें तीसरे दरजेके डिब्बेमें बैठकर यात्रा करते थे और अब आप स्पेशल गाड़ीमें और पहले दरजेके डिब्बेमें बैठकर चलते हैं?

अफसोस! आपको यह सही खबर मिली है। स्पेशल गाड़ियोंका कारण तो यह महात्मापन है और दूसरे दर्जेके डिब्बोंतक पहुँचनेके अधःपतनका कारण यह पार्थिव कलेवर।

७. काउंट टॉल्स्टॉयको आप किस दृष्टिसे देखते हैं?

मैं उनको अत्यन्त आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ और अपने जीवनकी कितनी ही बातोंके लिए मैं उनका ऋणी हूँ।

८. आप स्वराज्यकी व्याख्या क्यों नहीं करते? क्या आप यह नहीं समझते कि कमसे-कम अपने अनुयायियोंके लिए तो आप इस शब्दकी व्याख्या करनेके लिए बाध्य हैं?

पहले तो, यह शब्द ऐसा नहीं है जिसकी व्याख्या की जा सके। दूसरे, अगर प्रश्नकर्त्ता 'यंग इंडिया' की फाइल देखेंगे तो उसमें उनको उसकी व्यावहारिक व्याख्या मिल जायेगी। तथापि मैं यहाँ दूसरी व्याख्या करनेका प्रयत्न करता हूँ। स्वराज्यका अर्थ है — मत प्रकट करनेकी और कार्य करनेकी ऐसी पूरी आजादी जिससे दूसरेके

मत-प्रकाशनके और कार्य करनेके अधिकारमें हस्तक्षेप न होता हो। इसलिए इसका अर्थ यह है कि आमदनीके तमाम साधनों और खर्चपर हिन्दुस्तानका पूरा नियन्त्रण रहे और दूसरे देश उसके काममें हस्तक्षेप न करें और वह भी दूसरे देशोंके काममें हस्तक्षेप न करे।

९. जब स्वराज्य प्राप्त हो जायेगा तब आप क्या करेंगे?

मैं तो निश्चय ही बहुत लम्बी छुट्टी लेना पसन्द करूँगा और वह शायद बिलकुल उचित भी होगी।

१०. स्वराज्य प्राप्त हो जानेपर मुसलमानोंके राजनैतिक और धार्मिक हितोंकी रक्षा किस तरह की जायेगी?

उनके लिए किसी तरहकी रक्षाकी जरूरत नहीं रहेगी, क्योंकि हरएक हिन्दुस्तानी दूसरे हिन्दुस्तानीकी तरह ही आजाद रहेगा और उस हालतमें परस्पर सहिष्णुता, सम्मान और प्रेम होगा; इसलिए परस्पर विश्वास भी होगा।

११. क्या आप सचमुच यह मानते हैं कि १९२१के अक्तूबरकी ३१ तारीखतक या इस सालमें जो दिन आप मुकर्रर कर दें, उस दिन सरकार अपना बोरिया-बिस्तरा बाँधकर हिन्दुस्तानसे रवाना हो जायगी?

सरकार तो एक प्रणाली है और मैं जरूर यह मानता हूँ कि अगर भारतके हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई और यहूदी चाहें तो वह ३१ अक्तूबरसे पहले भी नष्ट की जा सकती है। मैं तो अब भी यह आशा करता हूँ कि वे इस वर्षके समाप्त होनेके पहले ही इसका नाश कर देंगे। लेकिन उस नई शासन-प्रणालीमें किसी भी अंग्रेजको, जो हिन्दुस्तानमें उसका वफादार नौकर बनकर रहना चाहेगा, हिन्दुस्तान छोड़नेकी जरूरत नहीं होगी।

१२. क्या आप ऐसा खयाल नहीं करते कि सरकार इतनी कमजोर है कि वह आपके आन्दोलनको नहीं रोक सकती?

हाँ, मैं जरूर ही ऐसा मानता हूँ और वह दिनपर-दिन कमजोर होती जा रही है।

१३. अगर खुद आपके लड़केपर (ईश्वर न करे) राजद्रोहका नहीं, बल्कि खूनका मुकदमा चलाया जाये, तो क्या आप उसको बिना सफाईके ही रहने देंगे?

हाँ, वाकई मुझे भरोसा है कि ऐसा करनेका साहस मुझमें है। मैंने अपने कितने ही प्रिय मित्रोंको ऐसी सलाह देनेकी कठोरता की है। और मैं आन्ध्र जिलेके अपने एक प्रिय मित्रको यह सलाह दे भी चुका हूँ कि वे अपने दीवानी मुकदमेमें, जो उनपर केवल राजनैतिक द्वेषके कारण दायर किया गया है, हर्गिज सफाई न दें, चाहे उनकी तमाम कीमती जायदाद भी क्यों न चली जाये।

१४. अगर कोई व्यक्ति (मिसालके तौरपर) आपके लड़केके कुछ रुपये धोखा देकर ठग ले और रफूचक्कर हो जाये तो वह क्या करेगा?

मेरा लड़का अगर अच्छा असहयोगी है, तो निश्चय ही उन रुपयोंको उस चोरके पास छोड़ देगा। नौ महीने पहले मौलाना शौकत अलीके ६००) किसीने चुरा लिये

थे। वे चुरानेवाले शख्सको जानते भी थे। परन्तु उन्होंने इस रुपयेका खयाल ही छोड़ दिया।

१५. आपके सत्याग्रहका पंजाबपर क्या असर हुआ है?

सर माइकेल ओ'डायर सत्याग्रहके सन्देशको पंजाबमें नहीं पहुँचने देना चाहते थे। इससे कुछ पंजाबी लोग उत्तेजित हो गये और कुछ लोग अपनेको काबूमें न रख सके। सर माइकेल ओ'डायर तो उनसे भी ज्यादा भड़क उठे। और उन्होंने अपने सहायकके द्वारा बे-गुनाह लोगोंकी हत्या करवा डाली। लेकिन सत्याग्रह तो एक बड़ी पौष्टिक दवा है और अब पंजाबमें वैसी ही सजीवता दिखाई देती है जैसी भारतके दूसरे प्रान्तोंमें है और वहाँके लोगोंके मिजाज तेज होते हुए भी वहाँ ऐसा आत्मसंयम दिखाई दे रहा है, जो दूसरे प्रान्तोंके लिए स्पृहणीय है।

१६. क्या आप वाकई मानते हैं कि यह असहयोग शान्तिमय बना रह सकता है?

जरूर। सिन्ध, कर्नाटक और पूर्व-बंगालमें, गिरफ्तारियोंके समय और उसके बाद भी लोगोंने जो आश्चर्यजनक संयम दिखाया है वह इस बातका सबूत है।

१७. हिन्दुओंको बलात् मुसलमान बनाने और उनके घरोंमें लूटपाट मचानेका हिन्दू-मुस्लिम एकतापर क्या प्रभाव पड़ा है?

इससे हिन्दुओंके धैर्यको गहरा धक्का पहुँचा है; परन्तु उन्होंने उसे सहन कर लिया है। उनके धीरजका ज्योंका-त्यों बना रहना साबित करता है कि इस एकताका आधार ज्ञान है। मोपलोंकी इस धर्मान्धताको कोई भी मुसलमान अच्छा नहीं कहता।

१८. मलाबारमें हिन्दुओं और मुसलमानोंकी एकतामें जो यह भंग हुआ है उसका वास्तविक कारण क्या है?

जहाँ उत्पात हुआ है वहाँ एकताका भंग नहीं हुआ। मोपले आजतक कभी हिन्दुओंको अपना भाई नहीं समझ सके थे। उत्पातके वे ही कारण हैं जो १९१९ में पंजाबमें थे। मलाबारमें असहयोगका सन्देश अभी बिलकुल अनिश्चित रूपसे ही पहुँच पाया था तभी अधिकारियोंने उसकी गति बन्द कर दी। मोपले मलाबारके हिन्दुओंके साथ कभी खास तौरपर मेल-जोलसे नहीं रहे। वे पहले भी उन्हें लूट चुके हैं। इस्लामके सम्बन्धमें उनकी कल्पना बड़ी अपरिपक्व है। सरकारने उन्हें बिलकुल अँधेरेमें रखा था और मुसलमानों और हिन्दुओंने भी उनकी हालतपर कभी ध्यान नहीं दिया था। वे स्वभावके उग्र और वीर हैं, परन्तु अज्ञानी हैं। इससे उन्होंने खिलाफतके ध्येयको समझनेमें गलती की और यह बेरहमीका जंगली एवं धर्म-विरुद्ध काम कर डाला। मोपलोंके इस वर्तमान व्यवहारको देखकर इस्लाम या भारतके शेष मुसलमानोंके बारेमें निर्णय करना अनुचित होगा।

१९. क्या आप बता सकते हैं कि आपने खिलाफत और पंजाबके अत्याचारोंका जो गठ-बन्धन किया, उसका क्या कारण है?

खिलाफतके अन्यायका जन्म पंजाबके अत्याचारोंसे पहले हुआ है और मैंने उस प्रश्नको १९१८ में दिल्लीकी युद्ध-परिषद्में अपना प्रश्न बनाया। (वाइसरायके नाम

मेरी खुली-चिट्ठी देखिए)[1] असहयोगकी बात पंजाबके अन्यायका निश्चित स्वरूप मिलनेके पहले १९१९ में ही दिल्लीमें उठ चुकी थी। जब यह बात साफ हो गई कि पंजाबके अत्याचारोंके लिए तेज इलाजकी उतनी ही जरूरत है जितनी कि खिलाफतके लिए है, तब दोनोंका गठबन्धन कर दिया गया।

२०. क्या आप बता सकते हैं कि जब दूसरे मुसलमानी देशोंके मुसलमान खिलाफतकी चिन्ता करते दिखाई नहीं देते तब भारतके ही मुसलमान क्यों इतना जोश दिखाते हैं?

मैं यह बात नहीं जानता कि भारतके बाहरके मुसलमान खिलाफतकी चिन्ता नहीं करते; परन्तु अगर वे उसकी चिन्ता नहीं करते और भारतीय मुसलमान करते हैं तो मैं तो इसे इस बातका सबूत समझता हूँ कि भारतके मुसलमानोंमें बाहरी मुसलमानोंकी अपेक्षा धार्मिक चेतना अधिक विकसित हुई है।

२१. टर्कीके सुलतानने मुसलमानोंके तीर्थस्थानोंकी रक्षा नहीं की; क्या तब भी वे खलीफा माने जानेका हक रखते हैं?

इस सवालका जवाब देना एक हिन्दूके लिए ठीक नहीं है। तथापि अगर मैं उत्तर देनेकी धृष्टता करूँ तो तुर्कोंने खिलाफतकी रक्षा सैकड़ों वर्षोंतक बड़ी दिलेरीसे की है और इसीलिए उसपर उनका अधिकार है। सुलताननने चाहे गफलत की हो; परन्तु तुर्कोंने तो नहीं की है। खिलाफत आन्दोलन किसी व्यक्तिके लिए नहीं किया जा रहा है; बल्कि एक भावनाके लिए किया जा रहा है। इसमें उसके भौतिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक तीनों रूप आ जाते हैं। यदि तुर्क उसकी रक्षा नहीं कर सकते, और दुनियाके मुसलमान अपने मत-बल या सक्रिय सहानुभूतिसे तुर्कोंका साथ नहीं देते तो इससे दोनोंकी ऐसी क्षति होगी कि फिर उसकी पूर्ति कभी नहीं हो सकेगी। और अगर ऐसा हुआ तो यह सारे संसारके लिए एक घोर विपत्ति होगी, क्योंकि मेरा यह विश्वास है कि इस्लाम भी दुनियामें अपना वैसा ही स्थान रखता है जैसा कि ईसाई-धर्म तथा दूसरे मजहब रखते हैं। शूरताका तकाजा है कि इस विपत्तिके मौकेपर तुर्कोंकी सहायता की जाये।

२२. क्या अर्थशास्त्रका यह नियम गलत है कि मनुष्यको अच्छीसे-अच्छी और सस्तीसे-सस्ती चीजें ही खरीदनी चाहिए?

आधुनिक अर्थशास्त्रियोंका यह सिद्धान्त एक अत्यन्त निष्ठुर सिद्धान्त है। हम सदा किसी ऐसे स्वार्थपूर्ण विचारसे मानवीय व्यवहार चलाते भी हैं। (मिसालके तौरपर) एक अंग्रेज कोयलेकी खानमें इटलीके कम मजूरी लेनेवाले मजदूरको छोड़कर अंग्रेज मजदूरको ही नौकर रखता है और उसे ज्यादा मजूरी देता है। (और यह ठीक भी है)। इंग्लैंडमें सस्ते मजदूर लानेकी जरा भी कोशिश करनेसे अवश्य ही क्रान्ति हो जायेगी। किसी ज्यादा वेतन पानेवाले परन्तु वफादार नौकरको इसलिए निकाल देना कि दूसरा उससे अच्छा और सस्ता नौकर मिल सकता है, मेरी नजरमें

१. देखिए खण्ड १६।

तो पाप है, चाहे यह दूसरा नौकर उतना ही वफादार भी क्यों न हो। जो अर्थशास्त्र नैतिकता और मानवकी भावनाका खयाल नहीं करता वह एक ऐसे मोमके पुतलेकी तरह है जो दिखाई तो सजीव देता हो, परन्तु जो होता निर्जीव है। जब-जब ऐसा आनबानका अवसर उपस्थित हुआ है तब-तब अर्थशास्त्रके ऐसे नये बने नियम व्यवहारमें टूटे हैं; और जो राष्ट्र या व्यक्ति उन्हें अपने व्यवहारके मूलभूत सिद्धान्त मानेंगे, उनका अवश्य सर्वनाश होगा। मुसलमान लोग अपनी धर्म-विधिके अनुसार पकाये खानेको ज्यादा कीमत देकर लेते हैं और हिन्दू लोग उस भोजनको नहीं ग्रहण करते जो शुद्ध और पवित्र विधिसे न बनाया गया हो। दोनोंके इस संयममें जरूर कुछ अच्छाई है। हम जब इंग्लैंड और जापानका सस्ता कपड़ा खरीदने लगे, तभी चौपट हो गये। अब हममें तभी जान आ सकती है जब हम उसी कपड़ेको जिसे हमारे पड़ोसियोंने अपनी झोंपड़ियोंमें तैयार किया है, खरीदना धर्मतः आवश्यक समझें।

२३. क्या 'धरना देना' अहिंसात्मक है?

अधिकांश जगह वह अवश्य ही शान्तिमय रहा है। धरना देनेमें हिंसाका आश्रय लेना अत्यन्त आसान बात तो है; परन्तु स्वयंसेवकोंने सब जगह बहुत ही संयमसे काम लिया है।

२४. जब कि देशमें कितने ही लोग अर्धनग्न रह रहे हैं और अगले जाड़ेके खयाल-मात्रसे थरथर काँप रहे हैं, तब क्या आप कपड़ोंकी होलियाँ जलानेमें (आध्यात्मिक अथवा अन्य प्रकारकी) अच्छाई लोगोंको बताते हैं?

हाँ, बताता हूँ; क्योंकि मैं मानता हूँ कि उनकी अर्धनग्नताका कारण हम भारतीयों द्वारा जीवनके इस मूलभूत सिद्धान्तकी अक्षम्य अवहेलना करना कि "जिस प्रकार हम अपने ही घरका पका खाना खाते हैं उसी प्रकार हमें अपने ही हाथके कते सूतका कपड़ा भी पहनना चाहिए।" अगर मैं उन्हें अपनी विदेशी उतारन दूँ तो इससे उनकी व्यथाकी अवधि और भी बढ़ जायेगी। लेकिन इन होलियोंसे उत्पन्न होनेवाली गरमी अगले जाड़ेतक ठहरेगी और अगर ये होलियाँ बराबर तबतक जलती ही रहीं जबतक कपड़ेका अन्तिम टुकड़ा नहीं जल जाता, तो वह गरमी चिरस्थायी हो जायेगी और हम देखेंगे कि आगे आनेवाले हर जाड़ेमें यह देश क्रमशः अधिकाधिक शक्तिमान होता जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७–१०–१९२१

१५४. हिन्दू शास्त्रोंमें अस्पृश्यता

ऊपर जो पत्र[1] दिया गया है मैं उसे प्रसन्नतापूर्वक प्रकाशित करता हूँ ताकि 'यंग इंडिया' के पाठकोंको दूसरे पक्षकी जानकारी भी मिल सके। श्री अय्यर एक विद्वान् वकील हैं, और उनसे अपेक्षा तो यह है कि अपने पत्रमें उन्होंने मेरी स्थिति-की जानकारीका जैसा परिचय दिया है उससे वह ज्यादा अच्छा होना चाहिए था। मद्रास प्रान्तमें मेरे जो भाषण हुए उनमें मैंने इस बातपर जोर दिया था कि अस्पृश्यों-के विरुद्ध विवेकहीन और निर्दयतापूर्ण द्वेषभाव दिखाया जाता है। हमारी माताएँ और बहनें जब 'अस्पृश्य' होती हैं तब हम उनसे जैसा व्यवहार करते हैं क्या हम वैसा ही व्यवहार "अस्पृश्य" पंचमोंसे भी करते हैं? मैं अब भी यह स्वीकार करता हूँ कि मैंने पण्डितोंकी तरह शास्त्रोंका अध्ययन नहीं किया है किन्तु मैं हिन्दूधर्मके रहस्यको समझनेका दावा करता हूँ। और मैं पूर्ण विनम्रतासे किन्तु पूरी शक्तिसे कहना चाहता हूँ कि अस्पृश्यता अपने उस रूपमें जिसमें हम उसे कायम रखते आये हैं और रख रहे हैं, हिन्दूधर्मके लिए एक गम्भीर कलंक है। वह 'स्मृतियों'के अवांछनीय दुरुपयोगकी सूचक है और सबके प्रति प्रेम-भाव, जो हिन्दूधर्मका आधार है, उसके विपरीत है। इसलिए मैं अस्पृश्यताके वर्तमान रूपको राक्षसी कृत्य कहनेमें नहीं झिझकता। मैं श्री अय्यरसे कहता हूँ कि वे अपनी ईश्वर-प्रदत्त प्रतिभाका उपयोग अपने बहिष्कृत देशवासियोंकी सेवामें करें और मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि हिन्दू शास्त्रोंमें मानवजीवनका जो अर्थ मुझे दिखाई दिया है वही उनको भी दिखाई देगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७–१०–१९२१

१५५. पत्र: मथुरादास त्रिकमजीको

२७ अक्तूबर, १९२१

यदि मैंने षड्रिपुओंको जीत ही लिया हो तो मैं जो करता हूँ उसे लोग अनु-भव-वाक्य मानकर स्वीकार कर लेंगे। लेकिन स्वयं मुझे ऐसी विजय प्राप्त करनेकी कोई प्रतीति नहीं है। अभी क्या मैंने सर्पादिके भयको छोड़ दिया है? नहीं छोड़ा है; यह बात मेरी आत्माकी मूर्च्छितावस्थाकी द्योतक है।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

१. यह पत्र, जो **यंग इंडिया**के २०–१०–१९२१ और २७–१०–१९२१ के अंकोंमें प्रकाशित हुआ था, आर० कृष्णस्वामी अय्यरने अस्पृश्यताका समर्थन करते हुए लिखा था। उन्होंने **मनुस्मृति** और अन्य शास्त्रोंका उद्धरण देते हुए अपनी बात सिद्ध करनेकी कोशिश की थी। पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

१५६. भाषण : अहमदाबादमें स्वदेशीपर

२९ अक्तूबर, १९२१

भाइयो और बहनो,

आज मुझे एक भी शब्द नहीं कहना है। मैं नये शब्द ढूँढ़ भी नहीं सकता। मेरी मानसिक स्थिति मुझे कहीं भी भाषण देने अथवा जुलूसमें भाग लेनेके लिए जानेकी अनुमति नहीं देती और फिर बम्बई, अहमदाबाद अथवा गुजरातमें मुझे भाषण देने अथवा जुलूसमें भाग लेनेके लिए जानेकी जरूरत भी क्या है?

मैं गुजरातमें रहता ही नहीं ऐसा जानकर ही आप लोगोंको काम करना चाहिए। अगर अभी भी गुजरातके लोगोंको मुझसे बल प्राप्त करनेकी आवश्यकता जान पड़ती हो तो मुझे स्वीकार करना चाहिए कि इस वर्ष स्वराज्य नहीं मिलनेका। स्वराज्यका अर्थ ही यह है कि गुजरात अपने पाँवपर खड़ा हो और मुझे भी भूल जानेके लिए तैयार हो। बालक अथवा वृद्ध, सब ऐसी निर्भयताका प्रदर्शन करें कि अच्छे और बड़ेसे-बड़े व्यक्ति भी अगर जेल चले जायें अथवा उनका पतन हो जाये तो भी वे डरें नहीं और कहें कि गांधी द्वारा शुरू की गई यह लड़ाई अब हमारी है, भले ही वह पागल हो गया हो और उसकी बुद्धि भ्रान्त हो गई हो लेकिन हम तो वैसा कदापि नहीं करेंगे। जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाये तभी स्वराज्य हुआ कहा जा सकता है।

मुझे जब यहाँ आनेके लिए कहा गया तब मैंने कहा कि वल्लभभाईसे पूछो। मैं तो इस नेताकी इच्छाके अधीन हूँ। मुझे आज यहाँ बोलना है अथवा नहीं, इसकी खबर तो उस नेताको ही है जो आज सारे गुजरातको हिला रहा है। उनकी इच्छाकी अवगणना करके मैं कभी कोई काम नहीं कर सकता। मैं उन्हें सलाह दे सकता हूँ, उनके सामने सुझाव रख सकता हूँ, लेकिन उनकी इच्छाके विरुद्ध जाकर मैं कोई काम नहीं कर सकता। किसीका भी विश्वास न करना, यह बुद्धिका पहला लक्षण है लेकिन किसीका विश्वास करनेके बाद तो सब-कुछ उसीपर छोड़ देना चाहिए; इसके बाद नुक्ताचीनी करते रहनेसे काम नहीं चलेगा।

और तो मैं आज आपसे क्या कहूँ? मुझे जो कहना था सो तो मैंने इतनेमें ही कह दिया। भट्टी सुलगाना मुझे अच्छा लगता है। आप मुझसे भले किसी भी भट्टीमें दियासलाई लगानेको कहें तो मैं लगा दूँगा। मैं अहिंसावादी हूँ। मेरी रग-रगमें अहिंसा और प्रेम समाया हुआ है। किसीका अनिष्ट करनेकी मेरी इच्छा नहीं है। मैंने कभी किसीका बुरा नहीं चाहा है, कभी किसीको मारनेका विचार नहीं किया है। मैं अहिंसावादी हूँ तथापि विदेशी कपड़े जलाना मुझे प्रिय है क्योंकि जब हम विदेशी कपड़ा जलाते हैं तब हम पाप नहीं करते बल्कि आत्मशुद्धि करते हैं। नहाने, खाने अथवा रसोई बनानेमें भी पाप तो है। उसी प्रकार विदेशी कपड़े जलानेमें पाप भले ही हो, लेकिन आज इसके बिना काम नहीं चल सकता। श्वासोच्छ्वास लिए बिना,

पानी पिये बिना अथवा भोजन बनाये बिना गुजारा नहीं होगा -- ये सब तो अनिवार्य हैं, ऐसा समझकर हम पाप होते हुए भी ये सब काम करते ही हैं। हिन्दू तो शरीरके बन्धनसे छूट जाना भी पसन्द करते हैं, लेकिन इसके लिए कोई आत्महत्या नहीं करता।

आज गुलामीकी जंजीरको तोड़नेके लिए इसके सिवा अन्य कोई रास्ता नहीं है। हम तो उसे, सम्भव हो तो स्वदेशीके बिना भी तुरन्त तोड़ डालना चाहेंगे। लेकिन यह कैसे हो सकता है? खुद गुजरातके प्रमुख नगरमें ही जबतक कुछेक भाई और बहन विदेशी सूतके बने कपड़े पहनकर जुलूसमें अथवा सभामें आनेका साहस रखते हैं, तबतक यह बात कैसे हो सकती है? मिलके कपड़े भी कोई हमारे लिए नहीं, वरन् गरीबोंके लिए हैं। मिलके कपड़ोंको अपने लिए रखकर अगर हम गरीबोंको खादी देने जायेंगे तो वे हमसे पूछेंगे, "आप क्यों खादी नहीं पहनते? हमें मोटी खादी देते हो और आपका तो अच्छी और महीन मलमल, जगन्नाथी और केलिकोके बिना नहीं चलना।" मैं कह चुका हूँ कि जिसे गरीबोंकी सेवा करनी है उसे शृंगारमात्रका त्याग कर देना चाहिए। उस समय ऐसी स्थिति आयेगी कि गरीब दलील पेश नहीं कर सकेगा, वह मिलका कपड़ा नहीं माँगेगा। वह शर्मिन्दा होगा और कहेगा कि हमें भी खादी दो।

लेकिन अहमदाबादमें तो हजारों स्त्रियाँ और पुरुष अब भी विदेशी कपड़े पहनते हैं। इसके अतिरिक्त स्त्रियोंके दिलोंमें तो अनेक विचित्र भावनाएँ उठती रहती हैं; उदाहरणके लिए, वे सोचती हैं कि अगर हम आजतक पहने वस्त्रोंको जला देंगी तो यह अपशकुन होगा। भला मैलको जलानेमें क्या अपशकुन हो सकता है? मैलका संग्रह भी कैसे किया जा सकता है? धर्मको उलटी दृष्टिसे देखनेका ही यह परिणाम है। घरके सड़े हुए अनाजका संग्रह नहीं किया जाता, तो फिर जो विदेशी कपड़ा हमारी गुलामीका परिचायक है उसका संग्रह भी कैसे किया जा सकता है?

अब हमारे सामने पूरे दो महीने भी नहीं रह गये हैं। दिसम्बरकी २५ तारीखको कांग्रेसका अधिवेशन होगा। अगर उस समयतक हम स्वराज्यके झंडेको न फहरा सके तो कांग्रेस बुलाना किस कामका? यह कार्य हम किस तरह कर सकते हैं? मैंने वल्लभभाईसे कहा कि चित्तरंजन दासने कांग्रेसकी अध्यक्षताको स्वीकार करनेका तार नहीं दिया, उसका कारण है। वह बंगालको शर्मिन्दा करना चाहते हैं। वे बंगालसे कह रहे हैं कि "आप मुझे बंगालसे दूर भारतके पश्चिमी छोरको भेज रहे हैं, तो वहाँ जाकर मैं क्या हिसाब दूँगा? मैं बंगालको शर्मिन्दा नहीं करना चाहता। समस्त भारतने कांग्रेसके अध्यक्ष-पदके लिए बंगाली को चुना है, इसका क्या कारण है? वह कारण यही हो सकता है कि बंगालमें कुछ तो ऐसा होगा, जिससे बाहर भी उसकी कीमत आँकी जाती है?" देशबन्धु दास इस तरह बंगालसे विनती कर रहे हैं। उनका तार भेजना [या न भेजना] इस बातपर निर्भर है कि लोग उनकी इस विनतीका क्या उत्तर देते हैं।

जिस तरह अली-भाई अमृतसरकी कांग्रेसमें अन्तिम क्षणोंमें हाजिर हो सके थे उसी तरह अगर हम अहमदाबादकी कांग्रेसमें अली-भाई, मौलाना मुजह्दि और अन्य

लोग जो जेल जानेकी तैयारीमें हैं अथवा जा चुके हैं -- ऐसे सब असहयोगियोंका स्वागत नहीं कर सकते तो हमारा कांग्रेसका आयोजन करना किस कामका?

जैसा कि मैंने बम्बईमें कहा है, अगर यह होली हृदयमें सुलग रही होलीकी परिचायक है तो अच्छी है। बालक जिस तरह पटाखे चलाकर खुश होते हैं अगर हम भी उसी तरह होली जलाकर खुश हों तो इससे हमें क्या हासिल हो सकता है? अगर ऐसा हो तो यह होली व्यर्थकी ज्वाला है, निरा उत्पात है। लेकिन अगर यह हृदयमें सुलगती होलीकी परिचायक है तो मैं पूछूंगा कि आज जो बहनें इस सभामें विदेशी कपड़े पहनकर आई हैं, क्या वे ऐसा साहस कर सकती थीं?

घरकी रोटी मोटी-पतली, चाहे कैसी भी क्यों न हो, खाकर जिस तरह लोग सन्तुष्ट होते हैं उसी तरह जब बहनें मोटी-महीन, जैसी मिले वैसी, खादी पहनने लगेंगी और मुझसे पूछेंगी कि मुहम्मद अली और शौकत अली क्यों नहीं छूटे, अन्य योद्धा क्यों नहीं छूटते, स्वराज्य क्यों नहीं मिलता, तब मैं कहूँगा कि स्वदेशीमें अब कुछ दम नहीं है। तब मैं आपको कोई और उपाय बताऊँगा। आज तो हिन्दुस्तान, गुजरात अथवा अहमदाबादमें कोई मुझसे प्रश्न नहीं कर सकता।

हममें खूब जागृति आ गई है, खादीका उपयोग भी बहुत बढ़ गया है, यह सब सही है, लेकिन अगर मुझसे पूछा जाये कि अहमदाबादमें ऐसे कितने लोग हैं जिन्होंने सारे विदेशी कपड़े जला दिये हैं तो मैं कहूँगा कि मैं नहीं जानता। लेकिन ऐसे लोग दस-बारहसे ज्यादा नहीं होंगे। पूरे गुजरातमें हजार-एक बहनें खादी पहनने लगी हैं, लेकिन उससे क्या? सारे गुजरातमें एक हजार स्त्रियाँ किस गिनतीमें आती हैं? गुजरातमें कितने स्त्री-पुरुष समय मिलनेपर चरखा चलाते हैं?

डा० राय लिखते हैं कि मेरे कारखानेमें सब स्त्री-पुरुष चरखा चलाने लगे हैं और वे कहते हैं कि चरखेमें जो चमत्कार दिखाई दिया है वह अन्य यन्त्रोंमें कभी नहीं देखा। क्या अहमदाबादके स्त्री-पुरुषोंने स्वराज्यके लिए इतना किया है कि वे मुझसे स्वराज्यके बारेमें प्रश्न पूछ सकें?

स्वदेशी करोड़ोंके लिए कल्याणकारक है, हिन्दू-मुस्लिम एकताकी निशानी है, गरीब लोगोंके प्रति दयाभावकी सूचक है। नेताओंके पकड़े जानेपर हमें सरकारी इमारतें जलाने अथवा मारपीट करनेकी बात कभी नहीं सूझनी चाहिए। अगर सरकार मुझे इस सभासे पकड़कर ले जाना चाहे तो ऐसी स्थिति होनी चाहिए कि एक सिपाही भी सबके बीचसे मुझे निर्भयतापूर्वक ले जा सके। उस समय किसीकी आँखसे आँसू न टपके, बल्कि तब सबके चेहरोंपर अधिक कान्ति आ जाये और सब समझें कि हाँ, अब स्वराज्य आया।

उस समय सब अपने विदेशी कपड़े निकाल फेंकें, बहनें अपनी लाज ढकनेके लिए जितना कपड़ा शरीरपर चाहिए उतना पहने रहें, बाकी सब यहाँ छोड़ती जायें और अन्य कपड़ोंको घर जाकर उतार दें। जिस प्रकार किसी अस्पृश्य वस्तुके छू जाने पर स्त्रियाँ नहा डालती हैं उसी तरह बहनोंको चाहिए कि वे विदेशी कपड़ोंके स्पर्शसे बचें, उन्हें छुएँ तो नहा डालें और फिर कभी उन कपड़ोंको न पहननेका निश्चय करें।

गुजरातमें पड़ा हुआ मैं लोगोंको लगातार अपनी प्रार्थना सुनाता हुआ घूम रहा हूँ। मेरी तो यही इच्छा है कि कोई ऐसा ताल्लुका मिले जहाँ स्वदेशीका पूरा-पूरा पालन होता हो, जहाँ स्त्री-पुरुष जेल जाने अथवा फाँसीपर चढ़नेके लिए तैयार हों। वहाँ जाकर मैं रहूँ और काम करूँ। मुझे ले जानेकी शर्तें मैं 'नवजीवन' में दे चुका हूँ, तथापि यहाँ भी गिनाये देता हूँ :

१. स्वदेशीका सम्पूर्ण पालन करें।
२. ढेढ़ और भंगीके प्रति तिरस्कारके भावको छोड़ें और उन्हें सगे भाईके समान मानें।
३. हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरेको सगे भाईके समान मानें।
४. सब यह समझ लें कि स्वराज्यके लिए शान्तिसे बढ़कर कोई उपाय नहीं है।

हममें शान्ति और हिम्मत आई है, इसीसे कुछ करनेकी शक्ति भी आ गई है। अली-भाइयोंके गिरफ्तार होनेपर हमने पागलपनका परिचय नहीं दिया इसीसे अली-भाई अदालतको मनमाना नाच नचा सके हैं। अगर हम होश गँवा बैठते तो यह नहीं हो सकता था। अब तो अगर सरकार यह कहे कि हम आपके व्यवहारको सहन नहीं कर सकते तो अली-भाई उनसे कहेंगे, 'तब आप भारतसे चले जाइए।' अदालत उनकी इस निर्भयताको पहचान गई है, इसीसे कुछ बोलती नहीं है। अगर हम पागल बनेंगे तो सरकार भी पागल बन जायेगी।

स्वराज्यके लिए तीन शर्तें अनिवार्य हैं :

१. शान्तिका पालन करना और लोगोंसे वैसा ही करनेके लिए कहना।
२. गरीबको दिलासा देना।
३. हिन्दू-मुस्लिम एकताके कोमल और नन्हेसे पौधेकी सार-सँभाल करना।

हिन्दू-मुस्लिम एक-दूसरेसे रूठ जायें, यह कैसे चल सकता है? मलाबारके सम्बन्ध-में मेरे पास अनेक पत्र आते रहते हैं। एक व्यक्तिने लिखा है "हिन्दू-मुसलमान एक दिल नहीं हैं"। मेरी दृढ़ मान्यता है कि यह वाक्य केवल पत्र-लेखकके विचारोंका प्रतीक है। हिन्दू और मुसलमान दोनोंके दिल कोमल हैं। मुसलमान ऐसा न मानें कि वे और हिन्दू, बस ये दो पक्ष ही हैं। उनके बीच तीसरा खुदा भी खड़ा हुआ है। हिन्दू भी ऐसी श्रद्धा क्यों न रखें कि ईश्वर-भक्तको मुसलमान क्योंकर मारेंगे? पाखण्ड होनेपर ही मुसलमान मार सकता है। लेकिन अभी तो हिन्दू और मुसलमान दोनोंमें से कोई भी पाखण्ड नहीं छोड़ता, तथापि दोनों स्वराज्य प्राप्त करनेकी, खिला-फतका उद्धार करनेकी और गायको बचानेकी बात कर रहे हैं। हिन्दुओंको गायको बचाना हो तो उन्हें अपना सिर मुसलमानकी गोदमें रख देना चाहिए। उस समय मुसलमानोंके दिलोंमें ईश्वर अवश्य वास करेगा और गायको बचायेगा। मुसलमानके मजहबमें गायको मारनेकी मनाही नहीं है, लेकिन ऐसे कार्यको न करना उनका फर्ज है जिससे पड़ोसीका मन दुःखता हो। हिन्दू-मुसलमान दोनों डरपोक बनकर नहीं बल्कि शुद्ध हृदय रखकर ही स्वराज्य प्राप्त कर सकेंगे, इतना ही नहीं बल्कि खिलाफत और गाय दोनोंको भी बचायेंगे।

गुजरातका एक भी ताल्लुका अगर ऐसी वीरता दिखायेगा तो स्वयं भी स्वराज्य लेगा और दूसरोंको भी दिलायेगा। आज हम जो आग सुलगा रहे हैं उससे ऐसी शक्ति प्रगट हो कि हमें जो करना है सो हम करके रहें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६–११–१९२१

१५७. कितने पानीमें ?

अहमदाबाद, नडियाद और सूरतकी नगरपालिकाएँ कितने पानीमें हैं, इस बातका अब थोड़े समयमें पता चल जाना चाहिए। तीनोंने ही शिक्षा-विभागपर सरकारी अंकुशको माननेसे इनकार कर दिया है और अबतक उनकी शक्ति बढ़ी ही है। ऐसा कहा जाता है कि अब सरकारने इनकी कसौटी करनेका निश्चय किया है। सरकारने जो नोट जारी किया है उसमें नगरपालिकाओंको धमकी दी गई है तथा कर-दाताओंको भड़काया गया है। सरकारका कहना है कि जिन्होंने शिक्षाको [सरकारी नियन्त्रणसे] स्वतन्त्र रखनेके प्रस्तावका समर्थन किया है उन्होंने अपनेको जोखिममें डाला है और उनपर कोई भी कर-दाता दावा ठोक सकता है। ऐसी सूचनाके अर्थको तो हम जानते ही हैं। अब सरकारका दूसरा कदम यह होना चाहिए कि वह किसी कर-दाताको खड़ा करके उसके द्वारा नगरपालिकाके किसी सदस्यपर दावा दाखिल करवाये। मैं उम्मीद रखूँगा कि सरकारको ऐसा कोई भी कर-दाता न मिलेगा कि जो, अपना काम धर्म समझकर करनेवाले नगरपालिका-सदस्यपर दावा करेगा और यह उम्मीद भी करता हूँ कि अगर कोई ऐसा कर-दाता निकल आये तो इससे वह सदस्य भयभीत न होगा। यदि ऐसे जोखिमोंसे खेलनेकी शक्ति हममें न आई तो हम अपने आपको स्वराज्य प्राप्त करनेकी योग्यता रखनेवाला कैसे मान सकते हैं ?

सरकार जो दूसरा काम कर सकती है वह यह है कि नगरपालिकाओंको रद्द करके आयोगकी नियुक्ति द्वारा शहरोंका काम स्वयं करे। ज्यादासे-ज्यादा वह इतना ही कर सकती है। यदि सरकार ऐसा करती है तो उस परिस्थितिमें मुझे स्वराज्य पानेकी सम्भावना प्रतीत होती है। यदि सरकार ऐसा करेगी और यदि हम पूरी तरह तैयार होंगे तो हम युद्धका जो अवसर चाहते थे वह मानो हमें मिल गया और इस तरह अनायास ही प्राप्त हुआ यह अवसर किस योद्धाको प्रिय नहीं लगेगा ?

जिस तरह कोई डूबता हुआ मनुष्य तिनका पकड़नेको लपकता है उसी तरह सरकार भी जो-कुछ उसकी पकड़में आता है उसे पकड़ लेती है और उसके फलस्वरूप और भी अधिक डूबती जाती है। क्या हम तैयार हैं ?

अगर इन तीनों शहरोंके निवासी तैयार हों तो सरकारको हार माननी ही पड़ेगी। सरकारका किसीके द्वारा दावा करवाना तो बिलकुल ही हास्यास्पद होगा। सरकारके सामने दूसरा कदम नगरपालिकाको समाप्त कर देना है। इस कदमका स्वागत किया जाना चाहिए। जबतक सरकार नगरपालिकाओंको समाप्त नहीं करती है तब-

तक सत्ता सदस्योंके हाथमें ही है। और जब वह उन्हें समाप्त करेगी तब भी सत्ता सरकारके हाथमें तो नहीं जानेवाली है; वह नागरिकोंके हाथमें रहेगी। इसका नाम ही नागरिक सत्ता है। सदस्योंको जो सत्ता प्राप्त है वह सरकारकी दी हुई नहीं है, वह तो नागरिकोंकी दी हुई है।

जबतक नागरिक सजग नहीं हुए थे तबतक अधिकारी और सदस्य, दोनों ही अपने सामने नागरिकोंको कुछ गिनते ही न थे। वे नागरिकोंको जैसा नाच नचाना चाहते थे वैसा नचा सकते थे। अब जमाना बदल गया है। नागरिक अब उनके हाथकी कठपुतली नहीं हैं अब वे स्वयं सूत्रधार बन गये हैं; या, ऐसा कहें कि उन्हें बन जाना चाहिए। अतएव नगरपालिकाको समाप्त करके सरकार मालपुए नहीं उड़ा सकेगी।

क्या नागरिकोंमें इतनी जागृति आ गई है? क्या सदस्योंकी आवाज सचमुच नागरिकोंकी ही आवाज है? यह सब सामने आनेवाला है। सदस्योंको चाहिए कि वे नागरिकोंको सरकारकी विज्ञप्तिका आशय समझायें और यह भी सुझाएँ कि उनका कर्त्तव्य क्या है। अब केवल तीन बातें करनी हैं:

१. यदि सरकार अपने स्कूल खोले तो उसमें बच्चोंको न भेजा जाये।

२. सरकार नगरपालिकाको समाप्त करके अगर शहरकी सफाई आदिकी व्यवस्था अपने हाथमें लेना चाहे तो नागरिक लोग उसे कर न दें। वह बाहरसे पैसा लाकर भले शौचालयोंकी सफाई कराये।

३. यदि सरकार उसपर काबिज हो जाये तो शहरकी व्यवस्थाका कार्य हम अपने हाथमें ले लें।

हमारी लड़ाई सत्यकी लड़ाई है। इसलिए न तो सरकार हमारे साथ विश्वासघात करके टिक सकती है और न हम ही ढोंग करके सरकारको नीचा दिखा सकते हैं। यदि नागरिकोंमें जागृति आ गई है तो उनका नाश कोई नहीं कर सकता। अगर नहीं आई है तो यह काम सदस्य नहीं कर सकते। इसलिए अगर हम सरकारके प्रत्येक कदमसे नागरिकोंको परिचित करायें, उनके साथ सलाह-मशविरा करके आगे बढ़ते जायें तो हम देख सकेंगे और सरकारको बता भी सकेंगे कि उसमें कोई शक्ति नहीं है। हमारी निर्बलता ही सरकारकी शक्ति है। हमारी शक्ति अर्थात् इस बातका भान कि हम ही सरकार हैं और यह शक्ति यानी यह भान अहमदाबादकी अढ़ाई लाख, नडियादकी पैंतीस हजार और सूरतकी एक लाख आबादीकी बौद्धिक, हार्दिक, सामाजिक और राजनैतिक शिक्षासे फलित होगा। वे बुद्धिसे यह समझें कि किसका विश्वास करें और किसका न करें, हृदयसे यह जानें कि दुःखके पीछे सुख मिलता है, वे बुद्धि और हृदयसे जानें कि जिस तरह कुटुम्ब-व्यवहारको शुद्ध होना चाहिए वैसे ही समाज-व्यवहार भी शुद्ध होना चाहिए। इसलिए जिस तरह घर साफ होना चाहिए उसी तरह मुहल्ला और शहर भी साफ होना चाहिए। जैसे कुटुम्बमें किसी प्रकारका लड़ाई-झगड़ा नहीं होना चाहिए वैसे ही समाजमें भी लड़ाई-झगड़ा नहीं होना चाहिए; जैसे कुटुम्बके लिए वैसे ही समाजके लिए भी मरना सीखना चाहिए और इस तरह उन्हें

समझना चाहिए कि अगर राजा-प्रजाके बीचका व्यवहार मलिन हो जाये अर्थात् वह ऊँच और नीचका, मालिक और नौकरका, सरदार और गुलामका हो जाये तो उस राजाका अर्थात् राज्यपद्धतिका त्याग करना चाहिए। यही बात हमारे अन्य सब तरहके व्यवहारके सम्बन्धमें भी लागू की जा सकती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०-१०-१९२१

१५८. बोध बनाम अक्षरज्ञान

मेरी विषम स्थितिका कोई अन्त ही नहीं है। गोहेलके एक गरासिया[1] भाईने १२ अप्रैलको मुझे एक पत्र लिखा था। मैंने यह पत्र बचाकर रख लिया था। वह प्रकाशित करनेके उद्देश्यसे नहीं लिखा गया था, किन्तु उसमें ऐसी बातोंकी चर्चा की गई है, जिनपर मुझे कार्रवाई करनी चाहिए। मेरी पूरी यात्राके दौरान वह पत्र मेरे साथ-साथ घूमा है। मैं हर हफ्ते उसे देखता था और फिर यह कहकर छोड़ देता था कि बादमें देखूँगा। पत्र छोटे और सुन्दर अक्षरोंमें लिखा हुआ है लेकिन काफी लम्बा है। मुझे नौ पन्नोंका पत्र लिखनेवाले व्यक्तिको इस बातकी उम्मीद कदाचित् ही करनी चाहिए कि मैं उसे पढ़ूँगा और उसपर विचार करूँगा। इस पत्रके आरम्भिक वाक्य मुझे अच्छे लगे इसीसे मैंने उसे सुरक्षित रखा और अब इसे पूरा पढ़ सका हूँ।

मेरी इच्छा है कि ये भाई और इनकी तरह लिखनेवाले दूसरे लोग मेरी स्थितिको ध्यानमें रखें। उन्हें इस नियमको याद रखना चाहिए कि जो लोग साफ-साफ अक्षरोंमें एक ही पन्नेपर अपने विचार पेश करेंगे उन्हें जल्दी उत्तर मिलेगा। अगर अच्छेसे-अच्छे विचारोंको एक ही वाक्यमें रखा जा सकता है तो हम अपनी इच्छाको एक ही वाक्यमें क्यों प्रकट नहीं कर सकते? जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे वैसे-वैसे हमें मालूम होगा कि हम जनकार्यको कमसे-कम शब्दोंका उपयोग करके भी चला सकते हैं। अंग्रेजीकी 'सैनिक' भाषा जितनी संक्षिप्त है उतनी संक्षिप्त भाषा मैंने कहीं नहीं देखी है। मैंने सैनिक आदेशोंको एक शब्दमें दिये जाते देखा है। वे जिन शब्दोंका उपयोग करते हैं उन्हें और छोटा रूप दे देते हैं। इसके सबल कारण है। जहाँ कार्य करना होता है वहाँ शब्द-जाल कमसे-कम होता है। "कमाडिंग ऑफिसर" को "कमांडिंग आफिसर" कहना गुनाह करने जैसा माना जाता है, पत्रोंमें उसे "सी० ओ०" ही लिखा जाता है।

मतलब यह कि जहाँ समझ है, बोध है, वहाँ शब्दोंकी — अक्षरज्ञानकी — बहुत कम जरूरत है। जिसने मोक्षको समझ लिया है, जिसने आत्माका साक्षात्कार कर लिया है, क्या वह 'वेदों'का अध्ययन करेगा? जिसका पेट भरा हुआ है, उसे रबड़ीसे **क्या** सरोकार? जिसने हिमालयके दर्शन कर लिये हैं उसे हिमालयका मार्ग-निर्देशन

१. सौराष्ट्रकी एक जाति।

करनेवाली पुस्तकसे क्या मतलब? इसीलिए मैंने गरासिया और काठियों आदिके सम्बन्धमें यह लिखा था कि उन्हें अपनी उन्नतिके लिए अक्षरज्ञानकी अपेक्षा समझ-शक्तिके विकासकी अधिक जरूरत है।

इसपर इस गोहेल गरासिया भाईने मुझे लिखा है, "अगर अक्षरज्ञानकी अपेक्षा समझकी ज्यादा जरूरत है तो यह भी आप ही दीजिए। हममें शराबका और अफीमका व्यसन है, आलस्य है। दूसरी जातियोंकी भाँति हम अन्य प्रपंचोंसे पीड़ित नहीं हैं। आप आत्मरक्षाकी शक्तिको बढ़ाना चाहते हैं, सो तो हमें विरासतमें मिली है। हमें अगर अपनी शक्तिकी प्रतीति हो जाये तो हम फिरसे हिन्दुस्तानके सच्चे सेवक बन जायें। हम बनना तो चाहते हैं। कैसे बनें सो कहिए?" पत्रका सार इतना ही है।

मैं छः महीनेके बाद इस प्रश्नका उत्तर देने बैठा हूँ, इसलिए मेरा कार्य आसान हो गया है क्योंकि मैंने इन छः महीनोंमें तो बहुत लिखा है। अगर उसे समझ-बूझके साथ पढ़ा गया हो तो अब एक भी अक्षर लिखना बाकी नहीं बचा; और अगर कोई मेरे सब लेखोंको एक साथ पढ़ जाये तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि वह यह टीका कर सकता है कि "यह व्यक्ति तो दिन-प्रतिदिन एक ही बात करता है। शायद यह इसीलिए 'नवजीवन' का सम्पादक बना है?" टीकाकारकी यह टीका बिल्कुल सही है। मैंने 'नवजीवन'के सम्पादन कार्यका यह बोझ अपने ऊपर एक ही सत्यको कहनेके लिए लिया है।

काठियावाड़में मेरों और बघेरोंके प्रदेशमें जन्म लेनेके कारण मैं काठियाओं, मेरों और बघेरोंके गुण-दोषोंसे भलीभाँति परिचित हूँ। वे लोग ही अगर सच्चे हो जायें तो वे सौराष्ट्रको तो जाग्रत कर ही सकते हैं और हिन्दकी भी भारी सेवा कर सकते हैं। मुलु माणेक और जोधा माणेक तो अपने तुच्छ अधिकारोंके लिए हाथोंके टूट जानेपर पाँवसे बन्दूक दाग कर लड़े थे, ऐसी दन्तकथा है। उनमें कमालकी बहादुरी थी। उनके गीत आज भी गाये जाते हैं सो इसलिए नहीं कि उनका निशाना अचूक था बल्कि इसलिए कि उनमें शत्रुके बहुसंख्यक दलके सामने टिके रहनेकी और मौतको अपनी जेबमें डालकर लड़नेकी शक्ति थी। यूनानमें तो थर्मापोलीकी एक ही लड़ाई हुई लेकिन बरड़ामें[1] तो मुझे स्थान-स्थानपर ऐसी लड़ाइयाँ दिखाई देती हैं।

काठी राजपूतोंसे मैं एक ही आशा रखता हूँ। आपके पूर्वज तो गरासके[2] लिए लड़ते हुए मरे। आप अपने उत्तराधिकारको सुशोभित करना चाहते हैं तो हिन्दुस्तान-जैसे गरासके लिए मारनेका विचार छोड़कर मरनेकी तैयारी कर शुद्ध क्षत्रिय बनें। मारना क्षत्रियका धर्म नहीं है। जो क्षत्रिय अपनेसे दुर्बलको मारता है वह क्षत्रिय नहीं, हत्यारा है। जो दुर्बलकी रक्षा करनेके लिए बलवानसे भिड़ता है और उसे मारता है, उसका मारना क्षम्य होता है। लेकिन जो बलवानको न मारकर दुर्बलकी रक्षा करते हुए अपने प्राण दे देता है, वह सच्चा क्षत्रिय है। मरना — पलायन न करना — उसका धर्म है। दूसरेके मनमें मरणका भय उत्पन्न करना उसका धर्म नहीं है। उसका

१. सौराष्ट्रमें।

२. राज्यकी ओरसे राजवंशियोंको उनके निर्वाहके लिए दी गई जमीन।

धर्म तो स्वयं भयका त्याग करना है। इसीलिए वह रक्षा करनेको तैयार होता है। रक्षा करनेवालेके लिए कुश्ती सीखनेकी अपेक्षा मरण-भयको छोड़नेकी ज्यादा जरूरत है। सिरसे पैरतक शस्त्रोंसे लैस और बख्तरसे सुरक्षित किसी राक्षसके विरुद्ध एक निःशस्त्र काठी युवक क्या करेगा? वह उसके हाथमें एक गरीब लड़कीको जाने देगा या उस राक्षसके हाथों मृत्युका आलिंगनकर, लड़कीको ईश्वरके भरोसे छोड़, उस लड़कीको भी निःशस्त्र-बलका पाठ पढ़ाता जायेगा? सीताकी दृष्टि भगवे वस्त्र पहने हुए दो बालकोंपर जाकर क्यों टिक गई और उसने राक्षसों-जैसे विशालकाय मनुष्योंका अनादर क्यों किया? सीताको रामके आत्मबलकी प्रतीति हो गई थी। वह भोली कुमारिका उस समय यह कहाँ जानती थी कि उनमें शिवका धनुष तोड़ डालनेको शक्ति है।

लेकिन रामकी भाँति ऐसी रक्षा कौन कर सकता है? वह व्यक्ति जो ब्रह्मचारी है, जिसने निद्राको जीत लिया है, जो अल्पाहारी है, जो निर्व्यसनी है, सत्यवादी है, अल्पभाषी है और जो निरन्तर पर-दुःखके विचारसे दुःखी होता है तथा जो अन्य लोगोंको न मिल सके ऐसी वस्तुका त्याग करनेकी इच्छा रखता है और सदा अपरिग्रही रहता है। इतना दयाभाव रखनेके लिए कुछ लोगोंको दयाका सागर बनना पड़ेगा। मैं स्वीकार करता हूँ कि इसके लिए अगर राजपूत चाहें तो ज्यादा जल्दी तैयार हो सकते हैं। लेकिन इस समय तो हिन्दुस्तानमें एक ही वर्ण है और वह नया वर्ण है — गुलामोंका।

जबतक हिन्दुस्तान गुलाम है, तबतक क्षत्रियको न तो सोना अच्छा लग सकता है, न उठना-बैठना और पहनना ही अच्छा लग सकता है। जिसे ऐसा क्षत्रिय बनना हो वह बन सकता है। चारों वर्णों और समस्त धर्मावलम्बियोंको अपनी रक्षा करनेके लिए तो क्षत्रिय बन ही जाना चाहिए। क्षत्रिय जाति दूसरोंके दुःखोंको उठा लेती है, दूसरोंकी भी रक्षा करती है। हम सब क्षत्रिय नहीं बन सकते; कुछ तो दुर्बल ही रहेंगे। हमारी इस लड़ाईमें मानो क्षत्रियोंकी जन-गणना होनेवाली है। हमारा हिसाब देनेका दिन आ गया है। लेकिन जो चरखा चलाना नहीं जानता वह कभी भी इस युगके भारतको मुक्त करनेवाला क्षत्रिय नहीं बन सकता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०–१०–१९२१

१५९. टिप्पणियाँ

ढेढ़ लोगोंको सन्देश

सरकारने इस शीर्षकसे ढेढ़ोंमें एक गुजराती पत्रिका वितरित की है। इसमें कहा गया है, लोगोंमें ऐसी अफवाह है कि यदि वे लोग असहयोग आन्दोलनमें शामिल नहीं होंगे तो उनके घरोंको जला दिया जायेगा; यह अफवाह भी है कि सरकार उनकी रक्षा नहीं करेगी। पत्रिकामें कहा गया है कि यह अफवाह झूठी है और "कोई भेदभाव किये बिना समस्त जातियोंके लोगोंके विकासके लिए जितना सम्भव है उतना करनेके लिए कदम उठाये जा रहे हैं।"

यदि किसीने ढेढ़ भाइयोंको धमकी दी है अथवा किसीने उनके घरमें आग लगाई है तो उसे असहयोगी नहीं कहा जा सकता, उसे हिन्दू अथवा भारतीय भी नहीं कहा जा सकता। मैं यह बात मान ही नहीं सकता कि कोई ऐसी धमकी दे भी सकता है। लेकिन यदि ऐसी धमकी दी भी गई हो तो सरकार उनकी क्या रक्षा कर सकती है? उसने क्या किया है? जिस ढेढ़को रेलोंमें उद्धत हिन्दू गाली देते हैं सरकार उसे क्या रक्षण दे पाती है? कचहरियोंमें जिन्हें पहचान लेनेके बाद अधिकारी लोग स्वयं ही परेशान करते हैं, उन्हें क्या रक्षण दिया जाता है? जो कुँआ, मकान और स्कूल रहित हैं, उनकी सरकार क्या रक्षा करती है? उनकी हालतमें सरकारने क्या सुधार किया है, यह बात मैं अवश्य जानना चाहूँगा।

हाँ, सरकारने एक काम तो जरूर किया है। इसमें सन्देह नहीं कि उसने उनसे बहुत बेगार ली है, उनमें से कुछेकको गो-मांस-भक्षी बना दिया है, उनकी खराब आदतोंको पोषित किया है। उनकी नैतिक स्थितिमें लवलेश भी सुधार नहीं किया है। हाँ, अब उन्हें टाउनहालमें सभा करनेकी अनुमति अवश्य दी है। इसका कारण युवराज-को सम्मान दिया जाना है। इसमें तो केवल सरकारका स्वार्थ ही है। जहाँतक मुझे जानकारी है, बम्बईके टाउनहालमें उनके द्वारा सभा आयोजित करनेका यह पहला अवसर है। यह तो केवल खुशामद अथवा घूस है। और उन सभीको जो युवराजके सम्मानमें शामिल होना चाहते हैं, शामिल करनेके लिए सरकार आतुर है। यह एक निर्दोष युवराजका अपमान करना है, अपने स्वार्थके निमित्त उसका दुरुपयोग करना है। युवराजका किस तरहसे सम्मान किया जानेवाला है अगर इसकी उन्हें खबर हो तो मैं नहीं जानता कि वे भारत आना पसन्द भी करेंगे अथवा नहीं। इतना होने पर भी यदि वे आते हैं तो यह बात अंग्रेज जनताकी शिक्षाकी चरम परिणति है कि जहाँ कर्त्तव्यका सवाल आता है वहाँ राजा और प्रजा दोनों ही वर्ग हर तरहका बलिदान देनेके लिए तैयार हो जाते हैं। ऐसा त्याग यदि नीच स्वार्थसे प्रेरित होकर न किया गया हो तो त्याग करनेवाला मोक्षका अधिकारी होता है।

लेकिन मेरा उद्देश्य ब्रिटिश सरकार अथवा ब्रिटिश जनताकी भूल बताना कम और हिन्दुओंको अपने कर्त्तव्यका भान कराना अधिक है। हिन्दू धर्मावलम्बियोंने अपने

धर्मको नहीं पहचाना है इसीलिए ढेढ़ भाइयोंको प्रलोभन देकर फँसानेका प्रयत्न किया जाता है और इस रस्साकशीमें मुझे अनेक बार कलह होती दिखाई देती है। अतएव ये दो प्रसंग — सरकारी सन्देश और टाउनहालकी सभा — ऐसे हैं जिनसे अन्त्यज और अन्त्यजेतर हिन्दुओंको शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। अन्त्यजोंको ऐसे सन्देशों अथवा टाउनहालकी सभासे भ्रमित नहीं होना चाहिए। वे जिसे अपना अधिकार समझते हैं उसके लिए वे अवश्य ही हिन्दू समाजसे शिष्टतापूर्वक लड़ें किन्तु साथ ही हिन्दू समाजके नियमोंका पालन करें, मांसादिका — मुख्य रूपसे गोमांसका — त्याग करें, मैला काम करनेके बाद शरीरको साफ करें और व्यभिचार आदि छोड़कर अपने अन्तःकरणको भी निर्मल बनायें। अन्य हिन्दू अन्त्यज भाइयोंके साथ प्यार करें, उन्हें कांग्रेस महासमितिके सदस्य बनायें, उनकी पीड़ाको समझें, उन्हें कोई भी कष्ट पहुँचाये तो उससे उनकी रक्षा करें, उन्हें सगे भाईके समान मानें और ऐसा न समझें कि उनका स्पर्श करना पाप है।

लेकिन एक विचारवान विवेकी हिन्दूने मेरे साथ बात करते हुए बताया कि हिन्दू धर्ममें स्पर्श-मात्रसे — प्राणके स्पन्दन-भरसे — भी सामनेके व्यक्तिपर असर होता है इसीसे उनके दूर रहनेका सुझाव दिया गया है। "ऐसे सूक्ष्म प्रभावसे अपने आपकी रक्षा करके ही हिन्दू लोग हजारों वर्षतक जीवित रह सके हैं और सुन्दर शास्त्रोंकी रचना कर सके हैं", ऐसा उन्होंने कहा।

एक दृष्टिसे विचार करनेपर यह बात सच है। मैलके स्पर्शसे, दुर्जनके संगसे हम मलिन होते हैं और सत्संगसे हम शुद्ध होते हैं, लेकिन यह सब तिरस्कारको पोषित करनेके लिए नहीं लिखा है। यह तो केवल एकान्त-सेवनके लिए, संयमके लिए लिखा गया है। हमें अपनी आत्माको स्वच्छ करना है और यह हम अन्त्यज भाइयोंकी सेवा कर, उनकी उन्नति करके अधिक अच्छी तरह कर सकते हैं। सफाई करनेके लिए हम गटरमें भी हाथ डालते हैं तथापि उसका स्पर्श हमारे लिए हानिकर नहीं है। इसके अलावा यदि हम दूसरोंके दोषोंका विचार करके सबसे अलग रहनेका प्रयत्न करते हैं तो हम निरे पाखण्डी बन जाते हैं क्योंकि दूसरोंके दोषका वर्णन करते समय हम अपनेको इतना सम्पूर्ण मान लेते हैं कि हमारे लिए कुछ करनेको नहीं रह जाता अर्थात् हम नीचसे-नीच बन जाते हैं। ढेढ़-भंगी तो हमारी आत्मामें ही पड़े हुए हैं, हमें उनका त्याग करना है, उनसे स्पर्श कर जानेपर हमें नहाना है। बाहरके ढेढ़-भंगियोंमें मैला साफ करनेके बावजूद अनेक ऐसे सरल, ऐसे सज्जन और नीतिमान हैं कि वे पूजा करने लायक हैं। ढेढ़-भंगीको दुर्गुणोंका और अन्य वर्णोंको सद्गुणोंका कोई ठेका नहीं मिला हुआ है। इसलिए हिन्दू शास्त्रोंमें निहित कुछेक विचारों और वाक्योंको बिना समझे केवल उनका अक्षरार्थ पालन करके पतित न बनें, इस बातकी हमें खूब सावधानी रखनी है।

स्वदेशी और ब्रह्मचर्य

एक मित्र लिखते हैं कि देशमें स्वदेशीका जोर तो बढ़ता जाता है लेकिन ब्रह्मचर्यके पालनमें कोई वृद्धि दिखाई नहीं देती। जबतक स्त्री-पुरुष अपने मनपर अंकुश

नहीं रख सकते तबतक स्वराज्य कैसे मिलेगा? यह विचार सुन्दर प्रतीत होता है; लेकिन इसमें कार्य-कारण जैसा सम्बन्ध नहीं है। स्वदेशी और ब्रह्मचर्य दो अलग विषय हैं। खादी विदेशी कपड़ेकी तुलनामें पवित्र है। चरोतरका गेहूँ अमेरिकाके गेहूँसे पवित्र है लेकिन जिस तरह चरोतरका गेहूँ खानेवाला व्यक्ति पाखण्डी और विषयी हो सकता है उसी तरह पवित्र खादी पहननेवाला भी हो सकता है। स्वदेशीमें अथवा खादीमें इससे अधिक पवित्रताका आरोप करके हम नुकसान उठायेंगे। यदि खादीकी पोशाक सम्पूर्णताकी परिचायक मानी जाने लगेगी तो स्वदेशीका प्रचार करना ही असम्भव हो जायेगा। अच्छे-बुरे, रोगी-निरोगी, पुण्यवान-पापी सबमें खादी पहनने जितनी पवित्रता तो आनी ही चाहिए। इसमें देशभक्ति, देशवासीके प्रति — पड़ौसीके प्रति — दयाधर्म और मित्रभाव भी आ जाता है, इससे इसे भी मैंने आत्मशुद्धि माना है। और यदि करोड़ों लोग यह अल्प आत्मशुद्धि करें तो उनके सम्मिलित पुण्यका परिमाण इतना अधिक हो जायेगा कि हम अपना जन्मसिद्ध अधिकार, जिसे हम आज खो बैठे हैं, वापस प्राप्त कर लेंगे। इस समय तो हम पूर्ण-अपूर्ण स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए जी-जानसे जुटे हुए हैं, इसे प्राप्त करनेके लिए स्वदेशी आवश्यक है और पर्याप्त है।

ब्रह्मचर्यका पालन थोड़े लोग ही करेंगे। सब इसका पालन करें, यह अपेक्षणीय है। सब इसका पालन करें तो हम विश्व-साम्राज्य लेकर बैठ जायें। यह हमारा धर्म है लेकिन हम उसे स्वदेशीके साथ जोड़कर — स्वदेशी, जो अत्यन्त सहल है — ब्रह्मचर्य जितना दुरूह न बना दें।

इस तरह दोनोंमें निहित अन्तरको कहने और सुननेके बाद मैं कहना चाहूँगा कि हर तरहका कार्य करनेवाले स्त्री-पुरुष स्वराज्य प्राप्तितक ब्रह्मचर्यका पालन करें। हम कार्य करनेवाले लोग इतने कम हैं, गहरे उतरनेपर मालूम होगा कि हम गरीब भी इतने ज्यादा हैं कि हमारे पास न तो सन्तानोत्पत्तिके लिए अवकाश है और न उसके लालन-पालनकी शक्ति ही है। रोगीको सन्तानोत्पत्ति हो, इससे किसीको क्या लाभ? क्षयसे पीड़ित व्यक्ति सन्तान पैदा करे तो यह कितना अत्याचार है? तो फिर गुलाम सन्ततिके बारेमें तो कहना ही क्या? सबसे ज्यादा दुःखकी बात तो यह है कि हम विषयोंके उपभोगका, रतिभोगका विचार करते समय सन्तानका विचार ही नहीं करते। हम अपने विषयोंके इतने अधिक गुलाम बन गये हैं कि हम विवेकको छोड़ बैठे हैं। सन्तानोत्पत्ति तो हमारी स्वच्छन्दताका परिणाम है। यह कोई किसी संयमीके स्वल्प मात्रामें अपने गृहस्थ-धर्मके पालनका ऐसा योग्य अथवा पवित्र फल नहीं है जिसकी कि उसने इच्छा की हो; अधिकतर तो यह फल अनपेक्षित और दुःखद ही होता है।

मेरा इतना दृढ़ विश्वास है कि जिन्होंने जनताकी सेवामें अपना जीवन समर्पित कर दिया है, उन मतवालोंके लिए विषय भोगकी अपेक्षा करना सम्भव ही नहीं है। वे इतना समय निकाल भी कहाँसे सकते हैं? इसी आशासे मैं स्वराज्य-यज्ञमें यथाशक्ति बलिदान कर रहा हूँ। यदि जनताके हाथमें सत्ता देना ही अन्तिम उद्देश्य हो तो मुझे विश्वास है कि मैं ऐसा बालक नहीं हूँ जो उस खिलौनेको प्राप्त करनेके मिथ्या प्रयासमें पड़ूँ। मेरी मान्यता है कि आजके कार्यकर्त्ता यदि इस स्थूल स्वतन्त्रताको प्राप्त करनेके

उद्देश्यको लेकर काम करेंगे तो देखेंगे कि जबतक वे सत्यवादी, दयावान, शूरवीर, निडर, सरल और स्वदेशी नहीं बनते तबतक स्वराज्य नहीं मिलेगा। इस प्रयासमें कुछेक लोगोंको रत्नचिन्तामणि मिले बिना न रहेगी। इस प्रयासमें प्रजाकी ऊर्ध्वगति है, ऐसा जानकर ही मैं इसमें पड़ा हुआ हूँ और शान्त हूँ। इसलिए मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि स्वयंसेवक व स्वयंसेविकाएँ स्वराज्य प्राप्त होने तक ब्रह्मचर्यका व्रत लें। लेकिन अपने मनको अथवा हृदयको धोखा देकर न लें, मेरे कहनेसे भी न लें, अपितु यदि वे बहुत सोच-समझकर और दृढ़ होकर यह व्रत लेंगे तो इसका पालन कर सकेंगे और फल प्राप्त करेंगे।

राम और रहीम

एक सिख भाई लिखते हैं कि स्वदेशीकी बात ठीक है; परन्तु आप तो स्वयं ईश्वरके माननेवाले हैं। फिर आप ईश्वरका नाम पहले क्यों नहीं रखते? सब लोगोंको अपने खुदा, ईश्वर, राम अथवा वे जिस नामसे अपने परमात्माको पहचानते हों, उस नामकी माला जपनेके लिए क्यों नहीं कहते? यह बात सच है, मैं ऐसी बात उनसे नहीं कहता। परन्तु मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि केवल शब्दोंके उच्चारण मात्रसे स्वर्ग नहीं मिल सकता। शब्दोच्चारके लिए योग्यताकी जरूरत है। हम जबतक विदेशी वस्त्र पहनते हैं तबतक, मेरा खयाल है कि हम हिन्दुस्तानमें रहकर ईश्वरका या खुदाका नाम जपनेके लायक नहीं हो सकते। अगर एक आदमी दूसरेके गलेपर छुरी फेरते हुए रामनाम जपता है तो वह रामको लज्जित करता है। इसी प्रकार एक भारतीयके हाथके कते सूतसे बने कपड़ेको छोड़कर सैकड़ों कोस दूरसे अपने कपड़े मँगाना अपने भाईके गलेपर छुरी चलाना है। वह व्यक्ति भी ईश्वरका नाम लेने योग्य नहीं है। इस प्रसंगमें चरखेके महत्त्वको मैं पहले ही बता चुका हूँ। चरखा कातना एक ऐसी शान्तिमय विधि है कि हम अपने हाथको सूतके साथ मिलाते हुए अपने हृदयको ईश्वरके नामके साथ जोड़ सकते हैं। ईश्वर-भक्तिको भी, ब्रह्मचर्यकी तरह, स्वदेशीके साथ नहीं जोड़ा जा सकता। ईश्वरका नाम न लेनेवाला मनुष्य भी अगर स्वदेशीका पालन करे तो वह तो उसका फल पाता ही है; पर अगर नास्तिक भी स्वदेशीका पालन करे तो वह भी उसका उतना ही फल प्राप्त कर सकता है तथा खुदको और देशको उन्नत कर सकता है। जिसके मनमें ईश्वरका नाम है, जिसके हृदयमें ईश्वर निवास करता है, वह स्वयं तो बहुत लाभ उठाता ही है; देशको भी लाभ पहुँचाता है। स्वदेशी हमें ईश्वरकी ओर ले जानेवाली शक्ति है, क्योंकि वह हमें ऊपरकी ओर ले जाती है। उक्त मित्रके सुझावपर मैंने इतना लिखा सो यह बतलानेके लिए कि अगर हम ईश्वरकी आराधना नहीं करते तो हम अपने युद्धको धर्म-युद्ध नहीं कह सकेंगे। हम लोग तो एक दूसरेके धर्मकी रक्षा करनेके हेतुसे लड़ रहे हैं, हमें तो ईश्वरका नाम भूलना ही न चाहिए। उसकी रटन तो हमारे हृदयमें नित्य होती रहनी चाहिए। हमारे हृदयमें जितनी बार धड़कन होती है उतनी बार अर्थात् निरन्तर हमें उसका चिन्तन करते रहना चाहिए। इसमें स्वदेशी सहायक है; परन्तु दोनों एक बात नहीं हैं। स्वदेशी देहका धर्म है; ईश्वर स्तवन आत्माका गुण है।

"पीपल्स फेअर"

'पीपल्स फेअर' का अर्थ है 'मेला'। दो पारसी बहनें लिखती हैं कि माननीय युवराजके आगमनके समय मेला लगाया जानेवाला है। कुछ लोग समझते हैं कि उसमें हम लोग शरीक हो सकते हैं। उनका कहना है कि युवराजके सम्मान-समारम्भमें शरीक न होनेकी बात तो समझमें आ सकती है लेकिन नगरपालिकाके खर्चसे जो आतिशबाजी, मेले आदि हों उनमें क्यों न जायें? यह दलील ठीक नहीं है। क्योंकि अगर रुपयेकी ही बात हो तो युवराजका जो सम्मान किया जानेवाला है वह हमारे ही खर्चसे होगा। सरकार जो रुपया खर्च करती है वह तो हमारा ही है। हमारी दलील तो यह है कि यदि लोगोंका रुपया उनकी सलाहसे खर्च नहीं किया जाता है तो उससे किये जानेवाले मेलोंमें हमें शरीक नहीं होना चाहिए। अगर कोई लुटेरा अपने खर्चसे हमें भोज दे तो क्या उसमें हमें जाना चाहिए? इसी प्रकार युवराजका सम्मान और उनके सम्मानमें आयोजित किये जानेवाले मेलेमें मुझे तो कोई फर्क नहीं दिखाई देता। यदि एक त्यागनेके लायक है, तो दोनोंको ही त्यागना चाहिए।

चरखा और बुद्धि

कविवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अपने लेखमें एक वाक्य लिखा है[1], जिसकी जगह-जगहसे मेरे पास आलोचनाएँ आ रही हैं। वह वाक्य यह है कि चरखा कातने-वालेकी बुद्धि कुंठित हो जाती है। इसकी टीका-टिप्पणियोंको मैं प्रकाशित करना नहीं चाहता क्योंकि कविवरका यह वाक्य एक अनुमान-मात्र है। हिन्दुस्तानमें आज लाखों चरखे चल रहे हैं। उनमें वकील, डाक्टर और तत्त्वज्ञानी लोग भी हैं और मुझे मालूम है कि ऐसे लोग तमाम प्रान्तोंमें हैं। इन लोगोंके अनुभवका सबूत कविवरके अनुमानके खिलाफ है। बस, इतना ही कह देना काफी है कि मैंने सैकड़ों विद्यार्थियोंसे पूछा है और उन्होंने चरखको बुद्धिका विरोधक नहीं पाया है। डाक्टरों और वकीलोंका अनुभव भी यही कहता है। बंगालके एक प्रख्यात उपन्यास लेखक मेरे पास सिर्फ अपना अनुभव बयान करनेके लिए ही आये थे। उन्होंने मुझे बताया कि 'मैं नियमित रूपसे चरखा कातता हूँ और उससे मेरी उपन्यास लिखनेकी शक्तिका विकास ही हुआ है।' इन सब प्रान्तोंसे जो-कुछ सिद्ध हो सकता है उससे अधिक मैं सिद्ध करना ही नहीं चाहता। मैं तो सिर्फ यही बताना चाहता हूँ कि बुद्धिमान मनुष्यकी बुद्धि हर तरहका शारीरिक कार्य करनेसे अधिक तेज होती है और अगर वह काम लोकोपयोगी हो तो पुनीत भी होती है। ऐसे शारीरिक कार्योंमें चरखा अच्छा, हलका और मधुर कार्य होनेके कारण उत्तम है और हिन्दुस्तानकी वर्तमान अवस्थामें तो वह कल्पद्रुमके समान है।

"इस्माइली फिरका जमातसे अपील"

इस शीर्षकके अन्तर्गत लिखते हुए श्री फिदाहुसैन दाऊदभाई पूनावाला कहते हैं कि खोजा, बोरा और अन्य सब मुसलमानोंका यह फर्ज है कि वे स्वदेशीमें पूरा-पूरा सहयोग दें; यदि वे ऐसा नहीं करते तो इसके लिए उन्हें भविष्यमें कष्ट सहन करना

१. अक्तूबरके **मॉडर्न रिव्यू**में।

होगा। मेरा भी [कुछ] ऐसा ही विश्वास है। जो स्वदेशीको पूर्णतया अंगीकार नहीं करते वे, निस्सन्देह, पिछड़ जायेंगे। यह अपील काफी लम्बी है। मैंने तो केवल सार ही प्रस्तुत किया है। और चूँकि उसमें दी गई सब दलीलें सर्वप्रसिद्ध हैं इसलिए मैंने सारी अपीलको प्रकाशित करना जरूरी नहीं समझा है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०-१०-१९२१

१६०. पत्र : मियाँ मुहम्मद हाजी जान मुहम्मद छोटानीको

३१ अक्तूबर, १९२१

प्रिय छोटानी मियाँ,

आपका वह पत्र मिला जिसमें आपने एक लाख चरखे देनेकी बात कही है। उसके लिए धन्यवाद। आपने बहुत बड़ा दान दिया है और मुझे यकीन है कि इस बातका भारतीयों — खासकर मुसलमानोंके मनपर बहुत असर होगा। बम्बई प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके पास आपका पत्र भेजते हुए मैं मन्त्रियोंको आपकी इस इच्छाका खयाल रखनेको लिख दूँगा कि मैमन समाजके लोगोंको प्राथमिकता दी जाये। मुझे नहीं मालूम कि आपने अपने मनमें कुछ तय कर रखा है या नहीं कि इस काममें आप कितना पैसा खर्च करना चाहते हैं; मेरा तो अनुभव यह है कि सस्ता चरखा बादमें चलकर बड़ा खर्चीला हो जाता है। एक अच्छे, ठोस और वजनदार चरखेपर छः रुपयेसे कम लागत नहीं बैठेगी। इसलिए अगर आप इतना बड़ा दान न देना चाहें तो मेरी सलाह है कि चरखोंकी संख्या कम कर दीजिए। मैं तो यह सलाह भी दूँगा कि आप जो रकम खर्च करना चाहते हों वह सब सूत कतवानेपर ही खर्च न करें बल्कि गरीब औरतें जो सूत कातें उस सूतको ज्यादा ऊँचे भावपर खरीदनेमें और इस कामको अंजाम देनेके लिए विशेष कार्यकर्त्ताओंको नियुक्त करनेमें करें। इस तरह आप अपने दानकी रकमका उपयोग लगभग अपनी ही देखरेखमें और अधिकसे-अधिक मितव्ययिताके साथ कर सकेंगे। काठियावाड़में ऐसा ही किया जा रहा है। कहनेकी जरूरत नहीं कि ये बातें सिर्फ आपके मार्ग-दर्शनके लिए लिख रहा हूँ; इनसे आपके कार्यके मूल्यमें और उसकी महत्तामें कोई फर्क नहीं पड़ता।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ७६४९) की फोटो नकलसे।

१६१. पत्र : महादेव देसाईको

नववर्ष दिवस[1]
मौनवार [३१ अक्तूबर, १९२१]

भाईश्री महादेव,

वर्ष-प्रतिपदा और मौनवार, इन दोनोंका मिलन मेरे लिए तो बहुत शुभ है। आजसे मेरे चरखेका व्रत शुरू हुआ है। प्रतिदिन दूसरी बारका भोजन करनेसे पहले आधा घंटा कातूँगा और अगर न कात पाया तो भोजन ही न करूँगा। यह कोई बहुत बड़ी बात नहीं है तथापि चूँकि मैंने व्रत लिया है इसीलिए मेरा कातना कुछ नियमित रूपसे चलेगा। जब मैं रेलमें होऊँ तब यह बन्धन नहीं होगा।

दीवालीके उपलक्षमें लिखा हुआ तुम्हारा पत्र और भजन मिले। ये किसलिए लिखे? तुम्हारा धर्म तो जल्दसे-जल्द रोग-शय्यासे उठनेका था। इस कामके लिए तुम दुर्गाको अथवा किसी अन्य व्यक्तिको कैसे जगा सकते हो? तुम्हारे तार भी मिले। एक तारमें 'एम्बलेजन यूनिवर्सिटी' शब्द लिखे हुए मिले जिन्हें कोई भी न समझ सका। विजय-राघवाचार्य चालाक आदमी नहीं है और ऋषि भी नहीं हैं। 'नॉट' शब्द तो भूलसे रह गया होगा, लेकिन जब मैंने उन्हें एक कड़ा तार भेजा तब उन्होंने उत्तरमें अपनी भूल क्यों न सुधारी?

नये वर्षमें तुम तन, मन और हृदयसे स्वस्थ रहो — यह मेरा तुम दोनोंको आशीर्वाद है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ११४२३) की फोटो-नकलसे।

१६२. तार : पारसी रुस्तमजीको

१ नवम्बर, १९२१

पारसी रुस्तमजी[2]
डर्बन

न्यासको भेजे गये अधिकार पत्रमें फेरफारकी आवश्यकता। बुनाई शालाके लिए चालीस हजारके उपयोगका अधिकार दें तथा और रुपया भेजें।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७७२५) की फोटो-नकलसे।

१. विक्रम सम्वत्के अनुसार कार्तिक मासकी प्रथम तिथि।
२. नेटालके भारतीय व्यापारी जिन्होंने दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहमें प्रमुख भाग लिया था।

१६३. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

१ नवम्बर, १९२१

प्रातःकालका समय है। तुम्हारा पत्र मेरे पास पड़ा हुआ है। तुम्हें अपने लिखेपर माफी माँगनेकी क्या जरूरत है?

मेरे लेख अथवा मेरे व्यवहारमें अनजाने ही अहंकारकी गन्ध हो सकती है। मैं नहीं जानता कि कैसे, लेकिन 'क्लेश' शब्दका अर्थ यहाँ कुछ अलग ही करना चाहिए। परदुःखसे मुझे व्यथा होती है। करुणाका गुण ही यह होता है कि जब भी व्यक्ति दूसरोंके दुःखोंको मिटानेमें असमर्थ होता है तब-तब वह असह्य पीड़ाका अनुभव करता है। मनकी दशाके वर्णनमें तर्क-शास्त्रकी बात लागू नहीं होती। मैंने अपनी भावनाओंका[1] हूबहू चित्रण किया है। ये भावनाएँ दोषपूर्ण हो सकती हैं। लेकिन यह लिखते समय मेरे मनमें मोक्षकी भावना भी थी — मोक्षकी भावना उस समय कोई मन्द न थी लेकिन सच्ची बात यह है कि मैं मोक्षार्थी हूँ, किन्तु इस जन्ममें आज भी मोक्षके लायक नहीं बन पाया हूँ। मेरी तपश्चर्या इतनी बलवान नहीं है। विकारोंको मैं वशमें रख सकता हूँ लेकिन मैं विकार-रहित नहीं हुआ हूँ। स्वादपर काबू पा सकता हूँ लेकिन जीभका स्वाद लेना बन्द नहीं हुआ है। जो विषयेन्द्रियोंको काबूमें रखता है वह संयमी है। लेकिन जिसकी इन्द्रियाँ अभ्यासके द्वारा विषयोंका उपभोग करनेमें असमर्थ हो गई हैं वह तो संयमातीत है, वह मानो मोक्षकी दशामें अवतीर्ण हो गया है। स्वराज्यके लालचमें भी मोक्षके लिए प्रयत्न करना नहीं छोड़ँगा लेकिन इससे यह तो नहीं कहा जा सकता कि मुझे मोक्ष मिला है? इसलिए मेरी भाषामें अवश्य तुम्हें त्रुटियाँ दिखाई देंगी। स्वराज्य प्राप्त करनेका प्रयास भी मेरे लिए मोक्ष प्राप्त करनेका ही प्रयास है। तुम्हें लिखता हूँ, यह भी इसीके अन्तर्गत आता है। यदि तुम्हें यह पत्र लिखनेका कार्य अपने मोक्षके प्रयत्नमें बाधा जान पड़े तो मेरी कलम इसी क्षण रुक जायेगी — ऐसी है मोक्षके प्रति मेरी लगन! ऐसा होनेपर भी मन तो मदिरापान किये हुए वन्दरके समान है, इसलिए उसको रोकनेके लिए खाली पुरुषार्थ ही काफी नहीं है। कर्म भी आड़े ही आते रहते होंगे।

जो वचन दे और उसका पालन न करे उसके साथ व्यवहार बन्द कर दें, इस न्यायका मैंने अपने "आशावाद" नामक लेखमें सुझाव दिया है। यह अनासक्तका लक्षण है। अगर मैं अगले वर्ष भी हिन्दके वातावरणको प्रतिकूल पाऊँ और तिसपर भी इसी बातको दोहराता जाऊँ तो यह बलात्कार करनेके समान होगा। उस हालतमें पहले मुझे इसके योग्य बनना चाहिए। इसीसे मौनको सर्वोत्तम भाषण माना गया है। मैं जो करूँगा वह मेरे लिए बिलकुल स्वाभाविक होगा, ऐसा मैं अवश्य मानता हूँ क्योंकि जिसे मैं सत्य मानूँगा, मैं वही कहूँगा और करूँगा।

१. देखिए "आशावाद", २३-१०-१९२१।

लेकिन "आजका लाभ ले लो; कल किसने देखा है", स्वेच्छाचारी और संयमी दोनों ही अपने-अपने जीवन व्यवहारमें इस नियमका उपयोग करते हैं।

नया वर्ष तुम सबके लिए फलदायक हो।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

१६४. पत्र: वालजीभाई देसाईको

रेलमें

बुधवार [२ नवम्बर, १९२१][1]

प्रेससे राजस्थान सेवा संघके पतेपर 'यंग इंडिया' के अग्रिम प्रूफ भेजनेके लिए कहना। अगर वे बुधवार रातको डाकमें डाले जायें या बृहस्पतिवारको बहुत सवेरे, तो उसी दिनकी सवेरेकी मेलसे अजमेर पहुँच जायेंगे।

मोहनदासके वन्देमातरम्

भाईश्री ५ वालजी देसाई
'यंग इंडिया'
अहमदाबाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०४०) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: वालजीभाई गोविन्दजी देसाई।

१६५. टिप्पणियाँ

अनशन

जेलमें अनशन करनेमें असहयोगी कैदी जो जल्दी कर डालते हैं उसके खतरेके विरुद्ध मैं जितनी भी चेतावनी दूँ वह कम है। इस अनशनका समर्थन हम यह कह-कर तो कर ही नहीं सकते कि वह जेलकी तकलीफदेह बन्दिशोंको हटवानेका एक उपाय है। क्योंकि अगर जेलमें वे बन्दिशें न हों, जिनको हम अपने साधारण जीवनमें नहीं मानना चाहते, तो वह जेल ही क्या है। अनशन तो तभी ठीक कहा जा सकता है जब हमारे साथ अमानुषिक व्यवहार किया जाता हो अथवा हमें हमारे धर्मके खिलाफ खाना खिलाया जाता हो या ऐसा खाना खिलाया जाता हो जो मनुष्यके खाने योग्य न हो। हम खाना खानेसे तब भी इनकार कर सकते हैं जब वह हमें अपमान-

१. पत्रपर "अजमेर ३ नवम्बर, १९२१" की मुहर लगी हुई है। यह पत्र गांधीजीने दिल्ली जाते हुए रास्तेमें लिखा था।

जनक रीतिसे दिया जाये। अथवा यों कहें कि जब उसको लेनेसे हम भूखके गुलाम साबित होते हों तब हमें खाना लेनेसे इनकार कर देना चाहिए।

आखिर कैद हो गई

चटगाँवके नेता और असम-बंगाल रेलवेके हड़ताल-आन्दोलनके प्राण श्री सेन-गुप्तको उनके अठारह साथियोंके साथ आखिर कैदकी सजा दे दी गई। लेकिन बहुत दिनकी नहीं। उन्हें और उनके साथियोंको सिर्फ तीन-तीन मासकी सख्त कैदकी सजा दी गई है। श्रीमती सेनगुप्त अपने पतिके विषयमें लिखती हैं कि वे सजा होनेके खयालसे बहुत प्रसन्न थे। जब मैं चटगाँव गया था तब मुझे बताया गया था कि चटगाँवके लोगोंने तो स्वराज्य प्रायः प्राप्त कर लिया है। यह "प्रायः" शब्द बड़ा भ्रामक है। उसका अर्थ पूर्णताके समीप या पूर्णतासे अत्यन्त दूर, दोनों ही हो सकते हैं। फिर भी हम उसका प्रयोग दोनोंमें से किसी भी अवस्थाके लिए कर सकते हैं। परन्तु यदि चटगाँवके लोग सचमुच ही पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हों तो उन्हें अपने [पहनने-ओढ़नेके] तमाम कपड़े अपने घरोंमें खुद ही अपने हाथसे सूत कातकर बुन लेने चाहिए और विदेशी कपड़ा बेचनेवालोंको प्रलोभन न देना चाहिए। चटगाँवकी अदालतें सूनी और सरकारी पाठशालाएँ खाली हो जानी चाहिए। अगर वे इतना कर सकें तो उन्हें 'सविनय अवज्ञा' करनेकी भी जरूरत न रहेगी। परन्तु शायद उनमें इतनी एकता या शक्ति न हो। फिर भी यदि जनताका एक बड़ा बहुमत स्वराज्य चाहता हो तो उसे थोड़ेसे लोग रोक नहीं सकते। किन्तु अधिक लोगोंको उसका अधिकारी बननेके लिए सविनय अवज्ञा रूपी कठिन तपस्याकी अग्निमें से निकलना होगा।

कष्ट-सहन किसलिए?

हम इन कैदकी सजाओंका सच्चा मतलब समझनेमें गलती न करें। यद्यपि इनसे सरकार सचमुच तंग होती है; तथापि इनको प्राप्त करनेमें हमारा हेतु 'सरकारको तंग करना' नहीं होता है। हम नियम पालन तथा तपस्याके लिए जेल जाते हैं। हम इसलिए जेल जाते हैं कि हम उस सरकारकी अधीनतामें जेलसे बाहर रहना बुरा मानते हैं, जिसे हम तमाम बुराइयोंसे भरी हुई मानते हैं। इसलिए अब हमें कोई भी ऐसा उपाय करनेमें कसर न रखनी चाहिए जिससे सरकार यह जान ले कि अब हम किसी तरह भी उसकी अधीनतामें नहीं रहना चाहते और आजतक किसी भी सरकारने इतना खुला विरोध — चाहे वह कितना ही आदरयुक्त क्यों न हो — बरदाश्त नहीं किया है। इसलिए यह तो कहा ही जा सकता है कि अगर हम अभीतक जेलकी दीवारोंके बाहर हैं तो उसके लिए हम भी उतने ही जिम्मेवार हैं जितनी कि सरकार है। हम एक संस्थाके सदस्यकी हैसियतसे सावधानीसे काम करते जा रहे हैं। हम अभीतक सरकारके कई कानून अपनी खुशीसे मान रहे हैं। मसलन, मद्रास सरकारकी आज्ञाका उल्लंघन करके गिरफ्तार होनेसे मुझे कोई नहीं रोक सकता था[1]

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २९-९-१९२१ का उप-शीर्षक "पीड़ित मद्रास"।

किन्तु खुद मैंने ही उसे टाला। इसी प्रकार सिपाहियोंके बैरकोंमें बगैर इजाजत और उनमें अनुचित रूपसे प्रवेश करके कैद होनेसे भी मुझे अपनी दूरदर्शिता या कमजोरीके सिवा कोई नहीं रोक सकता। मेरा तो यह निश्चित विश्वास है कि ये बैरकें राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं; और उस सरकारकी सम्पत्ति नहीं हैं जिसे मैं जनताकी सच्ची प्रतिनिधि नहीं समझता। इसलिए एक ओर एक खराब सरकारके अन्तर्गत जेलसे बाहर रहना दुःखदायक है यह कहना और दूसरी ओर ऐसे कारणोंसे जो पूर्णतः नैतिक नहीं हैं, बल्कि अधिकांशमें समयोपयोगी हैं, कैदको जान-बूझकर टालना, इन दोनों बातोंमें ऊपर ही ऊपर देखनेसे विरोध मालूम होता है। इस तरह हम कैदसे इसलिए बचते हैं कि एक तो हमारे विचारसे राष्ट्र अभी पूर्ण सविनय विद्रोहके लिये तैयार नहीं हुआ है और दूसरे हम यह समझते हैं कि देशमें अभी स्वेच्छापूर्ण आज्ञापालन और अहिंसाका वातावरण पक्का नहीं बना है और तीसरे, हमने अभी कोई ऐसा सुसंगठित रचनात्मक कार्य नहीं किया है जिससे लोगोंमें आत्मविश्वास उत्पन्न हो जाये। इसलिए हम अभी सविनय अवज्ञा, जो एक शान्तिपूर्ण विद्रोह होगा, शुरू नहीं करते; बल्कि महज अपने कार्यक्रमके अनुसार सामान्य काम करते हुए और मत-प्रकाशनकी पूरी स्वतन्त्रताकी रक्षा करते हुए तथा बगावतके अतिरिक्त अन्य कार्योंको करते हुए कैद होते हैं।

इसलिए यह साफ है कि एक बुरी सरकारकी जेलोंसे हमारा बाहर रहना तभी तक ठीक कहा जा सकता है जबतक उसके लिए वैसे ही असाधारण कारण हों। और हमें पूरा स्वराज्य तो तभी मिलेगा जब या तो हम जेलोंमें चले जायेंगे या सरकारको अपनी इच्छाके सामने झुकायेंगे। इसलिए चाहे सरकार हमारे जेल जानेसे तंग आती हो, चाहे प्रसन्न होती हो, हमारे लिए तो सुरक्षा और सम्मानका स्थान बस एक जेल ही है। और यदि यह स्थिति हमें मंजूर हो तो इसका अर्थ यह होता है कि हमें जब अपना कर्त्तव्य पालन करते हुए जेल जाना पड़े तब उससे हमें प्रसन्न ही होना चाहिए; क्योंकि उससे हममें बल बढ़ता है, तथा उस रूपमें हम अपने उचित कर्त्तव्य-पालनकी कीमत अदा करते हैं। और यदि अपनी सच्ची शक्तिको प्रदर्शित करना ही उत्कृष्ट आन्दोलन हो तो हमें विश्वास होना चाहिए कि जब एक भी मनुष्य जेल जाता है तो उससे जनताकी शक्ति बढ़ती है और स्वराज्य नजदीक आता है।

कुछ विलक्षण बात

मेरे कई मित्र आकर कानमें मुझसे कहते हैं कि युवराजके आनेके समय हमें कुछ-न-कुछ ऐसा काम करना चाहिए जिसमें कुछ विशेषता हो, जो सबको चकित कर दे। इसका मतलब यह नहीं है कि वह काम युवराजपर असर डालनेके लिए किया जाये या लोगोंको दिखानेके लिए किया जाये। परन्तु मैं तो युवराजके इस जबरदस्ती आगमनके अवसरका उपयोग अपने सब लोगोंको अधिक कार्यशील बनानेके लिए करना चाहता हूँ। युवराजपर तथा सारे संसारपर उसका बहुत अच्छा असर होगा, क्योंकि इस तरह हम खुद अपने आपपर ही असर डालेंगे। स्वराज्यका सबसे नजदीकका रास्ता तो है सामाजिक और वैयक्तिक आत्म-संस्कार, आत्माभिव्यक्ति और स्वावलम्बन। मुझे यह कल्पना सचमुच बड़ी प्यारी मालूम होती है कि युवराजके आनेके पहले हम

सब जेलोंको भर दें। परन्तु मुझे उसके लिए जोर-शोरसे स्वदेशीके प्रचारके सिवा दूसरा मार्ग ही नहीं दिखाई देता। निःसन्देह उस दिशामें हमारी प्रगति तो बहुत हुई है, परन्तु उसमें क्रान्तिकारी अथवा बिजली-जैसी गति नहीं है। अब हमारा काम इस प्रकार चींटीकी चालसे नहीं चल सकता; बल्कि हमें दिन-दूनी और रात चौगुनी प्रगतिकी परम आवश्यकता है। स्वदेशीकी भावनाके स्पर्श-मात्रसे हमारा काम न चलेगा; वह हमारे मनमें पूरी तरह भर जानी चाहिए। तब हम आप ही आप हजारोंकी संख्यामें इस तरह सविनय अवज्ञा भंग करनेके लिए आगे बढ़ेंगे, मानो हमारे सबके मनमें एक ही खयाल हो। आज पूरा आत्मविश्वास न होनेके कारण हमें एक-एक पैर गिन-गिनकर रखना पड़ता है और यह ठीक भी है। असलमें अभी तो मुझे यह भी यकीन नहीं हुआ है कि हजारों लोग जेल जानेके लिए तैयार हैं या अहिंसाके सन्देशको यहाँतक समझ गये हैं कि उकसानेपर भी कदापि हिंसा न करेंगे।

छँटनी

मद्रास सरकार सभी खास-खास लोगोंको छाँट-छाँटकर बड़ी तेजीसे बीन रही है। श्री याकूब हसन और डाक्टर वरदराजुलु उसके नये शिकार हैं। श्री याकूब हसनको सभी लोग एक अथक परिश्रमी खिलाफत कार्यकर्त्ता और राष्ट्रवादी व्यक्तिके रूपमें जानते हैं। वे कालीकटकी एक भीड़को हिंसा करनेसे रोकनेकी कोशिश करते हुए बाध्य होकर असहयोग करनेके कारण कैद भोग चुके हैं। क्षणिक कमजोरी दिखानेके कारण वे अपनी मियाद खतम होनेसे पहले ही रिहा कर दिये गये थे। उन्होंने ऐसी कमजोरीके कारण माफी माँगी थी जिसे श्री याकूब हसनकी स्थितिमें कोई भी आदमी दिखा सकता है। मद्रास सरकारने अब उनको यह दिखानेका मौका दिया है कि वे किस मिट्टीके बने हैं। डाक्टर वरदराजुलुको मद्रास अहातेके बाहर उतने लोग नहीं जानते, लेकिन स्थानीय रूपसे वे अपनी योग्यता और कर्मठताके लिए काफी प्रसिद्ध हैं और लोग उनके स्वार्थ-निरपेक्ष देशप्रेमके लिए उनका बड़ा आदर करते हैं। वे जी-जानसे जुट कर काम करनेवाले कार्यकर्त्ताओंका एक दस्ता तैयार कर रहे थे और बड़े कारगर ढंगसे स्वदेशीका काम चला रहे थे। वे अपने किसी भाषणके कारण बिलकुल ऐसे ही गिरफ्तार कर लिये गये हैं जैसे श्री याकूब हसन अपने तंजौरके भाषणके कारण। हिंसात्मक कार्योंकी शुरूआत हो जानेका खतरा अब प्राय: दूर हो गया है। लोग समझ गये हैं कि उनकी प्रगति बिलकुल अहिंसक रहनेसे ही हो सकती है। इस प्रकारकी प्रत्येक गिरफ्तारीसे सरकारकी शान कम होती है और उसकी तौहीन होने अथवा उसका मजाक उड़नेकी गुंजाइश पैदा होती है। असहयोगियोंके मजाक उड़ाने और तौहीन करनेसे उसका जितना नुकसान होता है वह उस नुकसानका आधा भी नहीं है जो स्वयं सरकार द्वारा इस प्रकार की गई गिरफ्तारियोंसे होता है।

विश्रामोपचार

और जनताके मनसे जेलोंका आतंक निकल गया है। एक या दो व्यक्तियोंको छोड़कर शायद ही कोई असहयोगी ऐसा होगा जिसने जेल जानेमें जरा-सी भी हिचक

दिखाई हो। उलटे प्रायः लोग इसे आरामका इलाज मानते हैं। स्वराज्यकी स्थापनाके लिए सबसे अच्छी स्थिति वही होगी जिसमें अहिंसाका वातावरण हो — जो सबसे ज्यादा जरूरी है — लोगोंके मनसे जेलका आतंक निकल जाये और जेल जानेवालोंके कारण कामकी सरगर्मी और भी बढ़ जाये।

स्वस्थ राष्ट्रीयताका सबूत

स्थितिका सही-सही अध्ययन करनेवाले दो पर्यवेक्षकोंके पत्रोंसे यह पता चलता है कि कैदकी सजाओंसे निराशाकी भावना पैदा होनेके बजाय राष्ट्रीयताके अधिक स्वस्थ विकासको प्रोत्साहन मिलता है। बारीसालसे एक मित्र लिखते हैं:

> हिन्दू-मुसलमानोंकी एकताके लिए, जो अब काफी पक्की है, और विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कारके लिए, जो जनतामें अब पूरी तरह सफल हो चुका है, पूर्वी बंगाल पीर बादशाह मियाँकी गिरफ्तारीका बड़ा आभारी है।

इस बारेमें आन्ध्र देशका प्रमाण भी इतना ही सबल है। आन्ध्रके पत्रमें कहा गया है:

> यद्यपि स्वदेशीकी वास्तविक भावना अभी जनताके हृदयपर विजय नहीं प्राप्त कर सकी है फिर भी इस बातके काफी सबूत मौजूद हैं कि इस आन्दोलनके प्रति लोगोंकी आस्था बढ़ती जा रही है। कई स्थानोंमें आवश्यक खादी उपलब्ध नहीं है। बुनकर अभी स्वदेशी सूत बुननेके लिए पूरी तरह राजी नहीं हुए हैं, और जो राजी भी हैं उनके लिए काफी सूत नहीं मिलता। इस दिशामें एक बातसे प्रगति बढ़ गई प्रतीत होती है और वह है सरकार द्वारा दमनकी नीतिका आश्रय लेना। अनेक सुस्त और उदासीन लोग किसी-न-किसी कांग्रेस कार्यकर्त्ताके गिरफ्तार किये जाने और जेल भेजे जानेकी वजहसे क्रियाशील हो गये हैं और यदि बड़े पैमानेपर गिरफ्तारियाँ की जाने लगीं तथा कैदकी सजाएँ दी जाने लगीं तो इसमें शक नहीं है कि सभी दिशाओंमें प्रगति और भी बढ़ जायेगी। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे हम देखते हैं कि हिंसात्मक कार्योंका खतरा कम होता जाता है।

मुझे कराचीसे जो भी पत्र लिखता है वह इसी बातकी पुष्टि करता है कि लोगोंमें जैसे-जैसे अनुशासन और आत्म-नियन्त्रण बढ़ता जाता है और वे स्वदेशीको अपनाते जाते हैं वैसे-वैसे उनकी शक्ति भी बढ़ती जाती है। इन सबका कारण यह है कि इन विशिष्ट कैदियोंपर कराचीमें मुकदमा चलाया जा रहा है। इस मुकदमेके माध्यमसे सरकार और जन-साधारणको अहिंसाका और ऐसे साहसका सबक सिखाया जा रहा है जो प्रायः खुली अवज्ञा-जैसा ही है। ब्रिटिश भारतकी एक अदालतमें कराचीमें पहली बार यह बात कही गई है कि "हमारे मनमें तुम्हारी अदालतोंके लिए कोई इज्जत नहीं है।" इससे भी बड़ी बात यह है कि न्यायाधीश अदालतके इस प्रकार खुले आम किये गये अपमानके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कर सका है। क्यों? इसलिए

कि इस बातको कहनेवाले भारी-भरकम मनुष्य शौकत अलीके मनमें (न्यायाधीश) कैनेडीके प्रति व्यक्तिशः किसी प्रकारका रोषका भाव नहीं था। उन्होंने यह कहकर वास्तवमें उस मनुष्यके प्रति, जो न्यायाधीशकी कुर्सीपर बैठा था अपनी आत्मीयताका परिचय दिया था कि वह जिस व्यवस्थाका अन्ध-समर्थक है उससे वे घृणा करते हैं।

तर्क-संगत परिणाम

इन सब दलीलोंका तर्क-संगत परिणाम यही निकलता है कि हमें शीघ्रतासे बड़े पैमानेपर इच्छापूर्वक गिरफ्तार होनेके लिए अपने आपको संगठित कर लेना चाहिए। इसमें उद्दण्डता, कठोरता अथवा छीना-झपटी नहीं की जानी चाहिए, हिंसा तो कभी की ही नहीं जानी चाहिए; बल्कि इसे बहुत शान्ति, सौम्यता, विनय, नम्रता, भक्तिभाव और साहसके साथ करना चाहिए। दिसम्बरके अन्ततक प्रत्येक कार्यकर्त्ताको जेलके भीतर पहुँच जाना चाहिए, बशर्ते कि उससे विशेष रूपसे यह न कहा जाये कि वह इस संघर्षके हितकी दृष्टिमें जेल जानेका प्रयास न करे। परन्तु, यह याद रखना चाहिए कि सविनय अवज्ञामें हम स्वयं गिरफ्तारीको न्योता देते हैं और इसीलिए बहुत थोड़े-से लोगोंको इससे बरी रखा जा सकता है।

आवश्यक शर्तें

सविनय अवज्ञा केवल वे लोग ही कर सकते हैं जो राज्य द्वारा लागू किये गये परेशान करनेवाले ऐसे कानूनोंतक का स्वेच्छासे पालन करनेमें विश्वास करते हों, जो उनकी आत्मा अथवा धर्मको ठेस नहीं पहुँचाते हों और जो उसी तरह स्वेच्छासे सविनय अवज्ञाका दण्ड सहनेके लिए तैयार हों। अवज्ञा विनयपूर्ण हो, इसके लिए जरूरी है कि उसमें हिंसा बिलकुल न हो, क्योंकि उसका अन्तर्निहित सिद्धान्त यह है कि स्वयं कष्ट उठाकर, अर्थात् प्रेम द्वारा विरोधीका हृदय जीता जाये।

खिलाफत, पंजाब या स्वराज्यके प्रयोजनके लिए सविनय अवज्ञा करनेवालोंके मनमें हिन्दू-मुस्लिम एकताकी आवश्यकताके बारेमें पूर्ण निष्ठा होनी चाहिए और उसका आधार वक्तकी जरूरत नहीं, बल्कि सच्चा प्रेम होना चाहिए। सविनय अवज्ञा करनेवालोंको स्वदेशीमें विश्वास रखना चाहिए और इसीलिए उन्हें केवल हाथ-कते सूतके बने कपड़े काममें लाने चाहिए। व्यावहारिक दृष्टिसे यदि भारतके ढ़ाई सौ जिलोंमें से एक भी जिला इस कामके लिए तैयार नहीं है तो मैं इस साल स्वराज्य प्राप्त करना प्रायः असम्भव मानता हूँ। यदि एक भी जिला ऐसा मिल सके जिसकी नब्बे फीसदी आबादीने विदेशी कपड़ेका बिलकुल बहिष्कार कर दिया हो और जो अपनी जरूरतका पूरा कपड़ा हाथसे कात-बुनकर तैयार करती हो, यदि उस जिलेकी पूरी आबादी, चाहे उसमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सिख, ईसाई अथवा यहूदी कोई भी हों, बड़े मेल-जोलसे रहती हो, यदि उसकी पूरी हिन्दू आबादी छुआछूतके पापसे मुक्त हो चुकी हो और यदि उसके प्रत्येक दस निवासियोंमें से कमसे-कम एक व्यक्ति जेल जानेके लिए अथवा फाँसीके तख्तेपर चढ़नेके लिये तैयार हो, और जब उस जिलेमें सविनय, शान्तिपूर्वक और सम्मानपूर्वक ढंगसे सरकारकी मुखालफत की जा रही हो

तब यदि भारतके बाकी लोग अहिंसक और ऐक्यबद्ध रह सकें तथा स्वदेशीके कार्य-क्रम पूरे करते रहें तो मेरा विश्वास है कि इस वर्षके दौरान स्वराज्यकी स्थापना पूरी तरह सम्भव है। मैं आशा तो यही करता हूँ कि ऐसे कई जिले तैयार होंगे। जो भी हो, कार्यकर्त्ताओंको अब यही तरीका अपनाना चाहिए कि वे दूसरोंकी चिन्ता छोड़कर अपने-अपने जिलोंपर पूरा ध्यान लगाकर उनको तैयार करें। वे जबतक पूरी तरह तैयार न हो जायें, तबतक कैदको न्योता न दें, और यदि बिना बुलाये उसकी नौबत आ ही जाये तो उससे मुँह न मोड़ें। उन्हें भाषण न देकर स्वदेशीका कार्यक्रम बिलकुल काम-काजी ढंगसे पूरा कर लेना चाहिए। जहाँ कार्यकर्त्ताओंको अपने जिलेमें किसी प्रकारका प्रोत्साहन न मिले वहाँ उनको हतोत्साह न होकर एक धुनाई, कताई और बुनाईके काममें ही महारत हासिल कर लेनी चाहिए। जिस समय उनके आसपास-के लोग इसी सोच-विचारमें पड़े हों कि क्या किया जाये, उस समय यह उत्पादन ही उनके लिए सर्वश्रेष्ठ और सर्वांगपूर्ण कार्य होगा।

फूट डालो और राज करो

मद्रासमें श्री याकूब हसनकी गिरफ्तारी और दिल्लीमें श्री अन्सारी, सिन्धमें पीर मुजद्दिद और बंगालमें पीर बादशाह मियाँकी जेल-यात्रासे एक पाठकने यह निष्कर्ष निकाला है कि सरकार हमारे बीच फूट डालनेकी कोशिश कर रही है। वह हिन्दुओंको हाथ भी नहीं लगा रही है। इस प्रकार सरकार हिन्दुओंको अपना फरमा बरदार बना रही है और कांग्रेसकी बैठक होनेतक एक भी महत्त्वका ऐसा मुसलमान असहयोगी बाहर नहीं बचेगा जो कांग्रेसमें भाग ले सके और मुसलमानोंसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नोंके बारेमें उसकी नीतिका मार्गदर्शन कर सके। मुझे आशा है कि इस पाठकका यह विश्लेषण सही नहीं है और सरकार ऐसी खतरनाक गलती नहीं करेगी। मेरा खयाल है कि सरकार अब समझ गई है कि वह हिन्दू और मुसलमान असहयोगियोंमें फूट नहीं डाल सकती। यदि उसने पीर बादशाह मियाँको गिरफ्तार किया है तो उसने डाक्टर बनर्जी, नृपेन बाबू और बाबू सेनगुप्तको भी पकड़ा है। जहाँ उसने श्री याकूब हसनको पकड़ा है वहाँ डाक्टर वरदराजुलुको भी गिरफ्तार किया है। लेकिन यदि सरकार सभी प्रमुख मुसलमानोंको जेलमें डाल ही देती है तो इससे तो दोनों सम्प्रदायोंका एका और भी मजबूत हो जायेगा और हिन्दुओंको खिलाफतकी लड़ाई अकेले चलानेका अद्वितीय मौका मिल जायेगा। यदि हिन्दुओंमें कुछ भी बल होगा तो वे शान्ति और सम्मानपूर्ण तरीकोंसे सरकारको इस बातके लिए मजबूर कर देंगे कि वह उनको भी जेलमें डाल दे।

सराहनीय दान

पाठकोंने मेरे नाम छोटानी मियाँका वह पत्र जरूर देखा होगा जिसमें उन्होंने एक लाख चरखे देनेकी बात कही है। इतनी उदारतापूर्ण सहायता देनेके लिए छोटानी मियाँ हार्दिक बधाईके पात्र हैं। मैंने उन्हें यह बतानेकी चेष्टा की है कि इस प्रयोजन-के लिए उन्होंने जो धन रख छोड़ा हो उसका उपयोग वे किस प्रकार कर सकते

हैं। उपयोगी ढंगसे एक लाख चरखे बाँटनेका काम आसान नहीं है। ये चरखे केवल उन्हीं लोगोंको दिये जा सकते हैं जो हर दृष्टिसे सुपात्र हों। इसलिए पूनियाँ देने और सूत लेनेका प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

दो विद्यार्थी

श्री मुहम्मद हुसैन और श्री शफीक रहमान किदवई राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालयके छात्र हैं। मौलाना मुहम्मद अलीने उनको आन्ध्र जिलेमें नियुक्त किया था। वे वहाँ बिना कोई दिखावा किये बहुत अच्छा काम कर रहे थे। वे तो जेल चले भी गये हैं जब कि उनके नेतापर अभी मुकदमा ही चल रहा है। वे जिन परिस्थितियोंमें जेल गये उसका सजीव चित्रण उस पत्रमें किया गया है जो उन्होंने जेल जाते-जाते रास्तेमें लिखकर मुझे भेजा है। उसे मैं ज्योंका-त्यों नीचे उद्धृत कर रहा हूँ:

> गुण्टकलसे आपको विदा करनेके बाद हम अडोनी चले गये जहाँ हमें डा० हरिसर्वोत्तम रावका तारसे यह निर्देश मिला कि हम कड़प्पा आ जायें क्योंकि वहाँ तीन कांग्रेस-कार्यकर्त्ता गिरफ्तार हो गये थे। हम ग्यारह अक्तूबरको वहाँ चले गये और गण्टूरके कुछ साथियोंके साथ काम करने लगे। वहाँ हमने कई सभाएँ कीं और कांग्रेस तथा खिलाफत समितियाँ कायम कीं। २१ अक्तूबरको छः हजारसे भी अधिक लोगोंकी विशाल सभामें हमने फतवा वितरित किया और श्रोताओंने खड़े होकर कराची-प्रस्तावका समर्थन किया। वहाँ हमने १९०० लोगोंके हस्ताक्षर लिये और अंकारा भेजनेके लिए ढ़ाई हजार रुपये जमा किये। २४ तारीखकी शामको सभी कार्यकर्त्ताओंपर दफा १४४ तामील कर दिया गया, जिसके द्वारा दो महीनेके लिए हमारे बोलनेपर पाबन्दी लगा दी गई। कल तड़के हमें अदालतमें हाजिर होकर नेकचलनीकी जमानत देनेके लिए सम्मन दिये गये। उसके मुताबिक हम कचहरी चले गये और वहाँ कलक्टरकी इजाजतसे (यूरोपीय) पुलिस सुपरिंटेंडेंटसे दो घंटेतक गैर-रस्मी तौरपर बातचीत करते रहे। उसके बाद मुकदमा शुरू हुआ और हमपर दफा १०८ के मातहत देशद्रोहके लिए भड़कानेवाले भाषण करने और दफा १२४-क के अधीन फतवा बाँटकर और उसकी व्याख्या करके सैनिकोंको देशद्रोहके लिए भड़कानेका इल्जाम लगाया गया। सबूतके दो गवाहोंके बयान होनेके बाद हमने अपने बयान दिये और अदालत तीसरे पहर ४ बजेतक के लिए उठ गई। सभीको यह देखकर बड़ा ताज्जुब हुआ कि हमें बिना किसी पुलिस हिरासतके शहरमें अपने डेरेपर जाने दिया गया। चार बजे हम अदालतमें लौटे और मजिस्ट्रेटने हमसे जमानतें देनेके लिए कहा, जिससे हमने इनकार कर दिया। इसपर मजिस्ट्रेटने हमें छः महीनेकी सादी कैदकी सजा देते हुए कहा: "जनाब, आप-जैसे विचारोंके लोगोंको सजा देनेका काम बड़ा कष्टप्रद है।" इसके बाद उसने हमसे हाथ मिलाये। सुपरिंटेंडेंटने हमसे गले मिलते हुए कहा, "मैं भी इस देशकी भलाईके

लिए आपके कन्धेसे-कन्धा भिड़ाकर काम करना चाहता हूँ।" उसके बाद भी उन्होंने हमें हिरासतमें नहीं लिया। हम मस्जिदमें गये और नमाज पढ़नेके बाद नगरकी जनताके साथ स्टेशन पहुँच गये, जहाँ हमें एक थानेदार और दो सिपाही मिले जो हमें वेल्लोरकी केन्द्रीय जेलमें ले जानेके लिए हमारा इन्तजार कर रहे थे। हमें पुलिससे ऐसे बर्तावकी कभी उम्मीद नहीं थी क्योंकि उसने श्री राम-मूर्ति और अन्य लोगोंसे बड़ा कठोर बरताव किया था। हमें इस बातकी बड़ी खुशी हुई है कि हम अपने स्नेही और श्रद्धेय प्रिंसिपल मौलाना मुहम्मद अलीके नक्शे-कदमपर चल सके हैं और हमने अपने आपको इस बातके लिए बड़ा मुबारकबाद दिया है कि फतवा बाँटकर और कराची-प्रस्तावका समर्थन करके सेनाको विद्रोह करनेके लिए उभाड़नेके तथाकथित इल्जामपर सजा पानेवाले पहले लोग हमीं हैं। हमने अपना फर्ज पूरा कर दिया है और आपसे विनती है कि आप हमें अपनी दुआएँ दें। हमारा दिल बड़ा खुश है और परवरदिगारसे यही दुआ है कि वह हमें सभी तकलीफों और मुश्किलोंका सामना करनेकी हिम्मत और ताकत दे।"

मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि सबसे ज्यादा बधाई किसे दूँ, इन बहादुर नौज-वानोंको, मजिस्ट्रेट और पुलिसको या उस प्रिंसिपलको जिसने इन नौजवानोंका चरित्र बनाया है। ऐसे मासूम लोगोंको जेल भेजनेवाली सरकारके लिए मैं यही कह सकता हूँ कि इस प्रकार वह खुद ऐसे ढंगसे अपनी कब्र खोद रही है जिस ढंगसे कोई असह-योगी भी नहीं खोद सकता।

दस अनमोल कारण

बिहार सरकारके प्रचार विभागने हिन्दुस्तानीमें पर्चे निकाले हैं जिनमें विदेशी कपड़ेका बहिष्कार न करनेके दस कारण बताये गये हैं। पाठकोंको यह मालूम होना ही चाहिए कि सुधारोंपर अमल किस ढंगसे किया जा रहा है और जनताको किस तरह गुमराह किया जा रहा है। ये कारण इस प्रकार हैं:

१. भारतमें जितना कपड़ा तैयार होता है वह हमारी जरूरतोंके लिए काफी नहीं है।

२. जिन लोगोंको काफी अर्सेसे महीन कपड़े पहननेकी आदत है उन्हें भारतीय सूतसे बने कपड़े पहननेमें भारी लगते हैं।

३. भारतीय कपड़ा-मिलें महीन कपड़ा बुननेके लिए विदेशी सूत ही काममें लाती हैं।

४. यदि हम विदेशी कपड़े पहनना छोड़ दें तो हमारी वैसी ही दुर्दशा होगी जैसी सन् १९०५ में स्वदेशी आन्दोलनके फलस्वरूप हुई थी। उस समय भारतीय कपड़ा-मिलोंने दाम बढ़ाकर हमारा सारा धन खींच लिया था। इस प्रकार मिल-मालिक हमें बरबाद करके अपनी तिजोरियाँ भरेंगे।

५. जबतक विदेशी कपड़ेका आयात होता रहेगा, भारतीय और विदेशी कपड़ोंमें होड़ बनी रहेगी और इस प्रकार मिल-मालिक दाम बहुत ज्यादा नहीं बढ़ा सकेंगे।

६. हिन्दुस्तानमें इतनी कपड़ा-मिलें अथवा हाथ-करघे नहीं हैं जो हमारी जरूरत-भरका पूरा कपड़ा तैयार कर सकें।

७. हाथसे सूत कातनेका काम लाभदायक नहीं है, क्योंकि इससे दो आने रोजसे ज्यादाकी आमदनी नहीं हो पाती।

८. हाथ-करघोंसे बहुत थोड़ा कपड़ा बुना जाता है; इसलिए उनसे ज्यादा उत्पादन नहीं किया जा सकता।

९. इस प्रकारके बहिष्कारसे बड़ी अशान्ति और उत्तेजना फैलेगी और हिन्दुस्तानकी तरक्की बहुत ज्यादा हदतक रुक जायेगी।

१०. कपड़ेके दाम बढ़नेसे गरीबोंको बड़ा कष्ट होगा और सारे देशमें असन्तोष फैलेगा।

मुझे आशा है कि लॉर्ड सिन्हाको[1] इन अनमोल कारणोंके बारेमें कोई जानकारी नहीं होगी, लेकिन वे इस जिम्मेदारीसे बच नहीं सकते। मैं यह मानता हूँ कि किसी एक व्यक्तिके लिए मानवीय सामर्थ्यको देखते हुए किसी बड़े प्रान्तके सभी विभागोंके छोटे-छोटे कामोंपर पूरा नियन्त्रण रखना सम्भव नहीं है। लेकिन यही तो वह वजह है कि किसी भी स्वाभिमानी मनुष्यको इस सरकारकी सेवा नहीं करनी चाहिए। यह व्यवस्था तो बनाई ही इसीलिए गई है ताकि विदेशी पूंजीपतियों, विशेष रूपसे लंकाशायरके उत्पादकोंके लाभार्थ भारतका शोषण किया जा सके और विदेशी जुआ हमारे कन्धोंपर कायम रखा जा सके। यदि प्रत्येक विभागमें इस प्रकार स्वार्थ-साधन करनेकी दृष्टिसे काम न किया जाता तो जिस परिपत्रका अनुवाद मैंने ऊपर दिया है उसका जारी किया जाना असम्भव होता। राष्ट्रीय सरकारका अत्यन्त स्वाभाविक कार्य होगा हाथ-करघों और चरखोंकी संख्या बढ़ाना और बाजारोंको हाथ कते सूतके हाथ-बुने कपड़ेसे भर देना। राष्ट्रीय सरकार मिल-मालिकोंको अनुचित रूपसे दाम बढ़ानेसे रोकेगी और इस महान् जन-जागृति और आन्दोलनका लाभ उठाकर इस महान् कुटीर उद्योगके पैर जमा देगी। इन अनमोल कारणोंको गढ़नेवाले मनुष्यको ये बातें नहीं सूझीं कि करोड़ों लोगोंको तो अब भी कपड़ा पहननेको नहीं मिलता, कि कताईका लाभ तो फुर्सतके वक्त करनेके लिए है, कि करोड़ों लोगोंको सूत कातनेके लिए कुछ भी नहीं देना पड़ेगा और चूँकि कताई वे स्वयं करेंगे इसीलिए हाथ-कते सूतका बना कपड़ा उन्हें अपेक्षाकृत वैसे ही सस्ता पड़ेगा जैसे होटलके भोजनसे घरका भोजन सस्ता पड़ता है। सरकारके इस परिपत्रसे हमें यही शिक्षा लेनी चाहिए कि हम स्वदेशीके पक्षमें किये जानेवाले अपने कार्योंको बढ़ा दें और उस व्यवस्थाका अन्त करनेमें जरा भी देर न करें जो घुनकी तरह हमारे राष्ट्रके परमावश्यक अंगोंको खाए जा रही है।

१. सत्येन्द्रप्रसन्न सिन्हा (१८६४–१९२८); बिहार और उड़ीसाके गवर्नर १९२०-२१। वाइसरायकी कार्यकारिणीके प्रथम भारतीय सदस्य। अध्यक्ष, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, १९१५।

कूकी कबायली

मैंने अपनी असम-यात्राके दौरान कूकी कबायलियोंका जो उल्लेख किया था मेरे एक मित्रने उसके सम्बन्धमें निकाली गई एक सरकारी विज्ञप्ति भेजी है। मुझे अफसोस है कि मैं उस टिप्पणीको प्रकाशित होनेके बाद बहुत दिनतक नहीं देख सका। परन्तु कुछ भी हो, मैं जो-कुछ लिख चुका हूँ उसका कोई भी अंश वापस लेनेके लिए तैयार नहीं हूँ। मुझे जिन लोगोंसे वह जानकारी मिली थी उनका कहना था कि वास्तविक तथ्य दबा दिये गये हैं। यदि कांग्रेसने जाँच न की होती तो मार्शल-लॉके अन्तर्गत की गई पंजाब सरकारकी अमानुषिक करतूतोंका पता किसे चलता? जब-तक केई और मेलिसनने पर्दाफाश नहीं किया था तबतक जनताको इस बातका क्या पता था कि १८५७ के विद्रोहके दौरान सेनाने क्या-क्या जुल्म ढाये थे। हमारे पड़ोसियोंको सजा देनेके लिए समय-समयपर जो अभियान किये जाते हैं उनके वास्तविक तथ्य किसे मालूम हैं? मैं यह कह सकता हूँ कि सैनिक भरतीके अन्धकार-पूर्ण दिनोंमें पंजाबमें जो अत्यन्त नृशंसतापूर्ण अत्याचार किये गये थे उनके बारेमें जनताको अब भी कोई जानकारी नहीं है; और यदि कुछ है तो अधिक नहीं है। मेरे पास वे सबूत मौजूद हैं जो मैंने पंजाब सरकारके सामने पेश किये थे, लेकिन मैंने जनताके सामने नहीं रखे हैं क्योंकि समय कम होनेसे ब्यौरेकी जिन बातोंका पता चला था उनके बारेमें मैं आगे जाँच नहीं कर पाया था। मैंने ऐसे खण्डन बहुत देखे हैं जिनकी असत्यता प्रामाणोंके आधारपर सिद्ध करना शायद सम्भव न हो। इसलिए मैंने सोच-समझकर असमके अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रमाणोंको ही माना है; उसकी तुलनामें सरकारकी ओरसे दिये गये अधिकृत किन्तु स्वार्थ-प्रेरित वक्तव्यको नहीं माना है और मैं कूकी कबायलियोंके सम्बन्धमें लिखी गई अपनी उस टिप्पणीपर अनिच्छापूर्वक कायम रहनेके लिए मजबूर हूँ जिसका खण्डन स्थानीय सरकारने किया है।

'स्टेट्समैन' के एक संवाददाताने कूकियोंको बेहद बुरा बताया है। मुझे उस कबीलेके लोगोंके बारेमें कुछ भी पता नहीं है। मैं उनका समर्थन नहीं करता। हो सकता है कि वे जितने खराब बताये गये हैं उससे भी ज्यादा खराब हों। परन्तु यदि मैं दण्ड देनेके लिए भेजे गये अभियान-दलका नायक होता तो मुझे सूचना देनेवालोंके कथनानुसार, जो अत्याचार इस अभियान-दलने किये हैं, मैं उनका अपराधी न होता।

कर्मचारियोंके लिए

एक पत्र-लेखकने पूछा है:

रेलवे कम्पनियों, यूरोपीय पेढ़ियों और अन्य ऐसे प्रतिष्ठानोंके कर्मचारियों-को, जो यह नहीं चाहते कि उनके कर्मचारी राष्ट्रीय कोषमें चन्दा दें या खादी पहनें, आप क्या यह सलाह देंगे कि वे कांग्रेसकी आज्ञाको स्वीकार कर इस्तीफा दे दें?

मैं तो यह समझता था कि संघर्षके इस अन्तिम चरणमें इस प्रश्नको हल करनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी। मुझे ताज्जुब तो इस बातका है कि कोई व्यक्ति ऐसे किसी पदपर कैसे रह सकता है जिसपर रहकर वह अपने धर्मका पालन न कर सके या अपने आत्म-सम्मानको कायम न रख सके। सैकड़ों क्लर्क जीवनदायी खादीको पहनने अथवा राष्ट्रीय कोषमें खुले आम चन्दा देनेसे रोके जानेके बावजूद अपनी नौकरियाँ छोड़ना असम्भव मानते हैं, इससे प्रकट होता है कि हम कितने नीचे गिर गये हैं। आत्म-सम्मानकी आरम्भिक बातें सीखनेके लिए असहयोगके कठोर पाठकी आवश्यकता नहीं थी। लेकिन पिछले कुछ महीनोंसे असहयोगको बिलकुल यही काम करना पड़ रहा है। मैं प्रत्येक कर्मचारीसे विशाखापट्टमके मैडिकल कालेजके बहादुर विद्यार्थियोंके उदाहरणका अनुकरण करनेकी सिफारिश करता हूँ जिन्होंने अपने विद्यालयमें बने रहनेकी खातिर खादीकी पोशाकको नहीं छोड़ा।[1]

चिरला-पेरला

इन छोटे-छोटे स्थानोंके बहादुर लोग अब भी अपना संघर्ष जारी रखे हुए हैं।[2] उनके नेता श्री गोपालकृष्णय्या जेलमें हैं। लेकिन उन लोगोंने हिम्मत नहीं हारी है। वे अब भी अपने झोंपड़ोंमें मौजूद हैं। मेरे सामने एक पत्र रखा है, इसमें लेखकने लिखा है, "लोग डटे हुए हैं। उनके गाँवके कुछ अत्यन्त प्रमुख नेताओंपर नगरपालिका-के कर न देनेके कारण हाल ही में मुकदमे चलाये गये हैं और वे लोग खुशी-खुशी जेल चले गये हैं। इससे उनका यह निश्चय और भी पक्का हो गया है कि वे वापस लौटकर गाँवमें नहीं जायेंगे। फिलहाल दोनों गाँव अपने इस निश्चयपर डटे हुए हैं कि तमाम हानियों, कठिनाइयों और कष्टोंके होते हुए भी अपनी बातपर कायम रहेंगे। कुछ ऐसे गरीब जरूर हैं जिनके झोंपड़े गिर चुके हैं और कुछ ऐसे हैं जिनको नये झोंपड़ोंकी जरूरत है।" इसी तरहके लोगोंकी शक्तिसे ही स्वराज्य स्थापित हो सकता है। नेताओंके न रहनेपर निराशाकी भावना नहीं आनी चाहिए और गोलियोंके सामने भी घुटने नहीं टेकने चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-११-१९२१

१. देखिए "टिप्पणियाँ", १७-११-१९२१ का उप-शीर्षक 'बहादुर विद्यार्थी' और २४-११-१९२१ का उप-शीर्षक "चिकित्सा-शास्त्रके छात्रोंके बारेमें कुछ और"।

२. देखिए "चिरला-पेरला", २५-८-१९२१।

१६६. एक और गोरखा हमला

प्रायः ऐसा मालूम होता है कि कष्ट-सहनमें, अतः स्वराज्यकी प्राप्तिम, बंगाल प्रथम आनेवाला है। हमें चाँदपुरके क्रूर कृत्यकी याद भी अभी ज्योंकी-त्यों बनी हुई है। अब ऐसे ही भयंकर एक अन्य क्रूर कृत्यकी खबर चटगाँवसे आई है। वहाँकी जिला कांग्रेस समितिके मन्त्री बाबू प्रसन्नकुमार सेनके अपने शब्दोंमें वह इस प्रकार है:

> मैं इस पत्रमें आपको चटगाँवकी वर्तमान स्थिति बताना चाहता हूँ। चटगाँव जिला कांग्रेस समितिके सभापति श्रीयुत सेनगुप्त और मन्त्री श्री महिमचन्द्र दास तथा दूसरे १६ सज्जन गत २ जुलाईको गिरफ्तार किये गये थे, उनका अपराध यह था कि वे एक जलूसमें बिना इजाजत शामिल हुए थे। स्थानीय हाकिमोंने जुलूसके पहले पुलिस कानूनकी धारा ३०के अन्तर्गत एक नोटिस जारी किया था। पूर्वोक्त सज्जनोंका जुलूसमें शरीक होना उस नोटिसकी मंशाके खिलाफ माना गया। उनपर भारतीय दण्ड-विधानकी धारा १५१ और पुलिस कानूनकी धारा ३२ के अन्तर्गत आरोप लगाये गये थे। मुल्जिमोंने अपनी सफाई नहीं दी। फलतः २० अक्तूबरको उनमें से हरएकको तीन-तीन मासकी सख्त कैदकी सजा दे दी गई। कस्बेमें यह बात मालूम थी कि इन बन्दियोंको उसी रात अलीपुरकी केन्द्रीय जेलमें ले जाया जायेगा। अतः लोग शामके ४ बजेसे पहले ही जेलके फाटकके पास जमा होने लग गये थे। वाद्य-मंडलियाँ, भजन-मंडलियाँ और संकीर्तन मंडलियाँ भी वहीं आ गई थीं। शामके वक्त सारे शहरमें रोशनी की गई और आतिशबाजी छोड़ी गई। लोगोंने यह सब कांग्रेस समितिकी सूचनाके बिना ही किया था। ८ बजनेके कुछ ही देर बाद कैदी लोग जेलके दरवाजेपर लाये गये और स्टेशनपर जानेके लिए पुलिसकी गाड़ियोंमें सवार कराये गये। उनके पीछे-पीछे वाद्य-मंडलियाँ और भजन-मंडलियोंका जुलूस निकला। जुलूसमें मशालें जल रही थीं और वह अत्यन्त शान्त और व्यवस्थित था।
>
> जलूस ज्यों ही रेलवे स्टेशनके नजदीक पहुँचा, कोई सौ बन्दूकधारी गोरखोंकी टोली, एक स्थानसे जहाँ वह छुपी बैठी थी, बाहर निकली। किसी मनुष्यने, जिसका पता अभीतक नहीं लगा है, लैम्प बुझा दिये और गोरखे लोग 'मारो, मारो', 'लगाओ, लगाओ', चिल्लाते हुए किसी तरहकी चेतावनी दिये बिना एकदम पूरी खूंख्वारीसे उन बेगुनाह और शान्त लोगोंपर टूट पड़े. . . पता लगा है कि कोई सौ लोगोंके शरीरोंपर जगह-जगह ऐसे घाव आये जिनमें से खून बह रहा था और कोई तीन सौ लोगोंको ऐसी चोटें लगीं जिनमें बहुत

दर्द था। उस समय जिला मजिस्ट्रेट श्री स्ट्रांग और संयुक्त जिला मजिस्ट्रेट श्री बरोज वहाँ मौजूद थे। लोगोंने देखा कि अमन सभाका एक खास आदमी प्रहार कर रहा था और जोर जोरसे 'मारो, मारो,' चिल्ला रहा था और जब यह मारपीट खत्म हो गई तब वह जिला मजिस्ट्रेटके पास पहुँच गया। स्टेशनके बाहर मारपीट होनेके बाद एक यूरोपीय फौजी अफसर जो कि अनुमानतः गोरखोंका कमांडर था, प्लेटफॉर्मपर आया। पहले तो उसने ऐसा दिखावा किया मानों वह कैदियोंके लिए रिजर्व किये हुए डिब्बेकी ओर जा रहा हो; परन्तु फिर वह एकाएक बायीं ओर मुड़ गया और जो लोग प्लेटफॉर्मपर टिकट लेकर गये थे उन्हें धक्का मार-मार कर हटाने लगा। प्लेटफॉर्मसे जाने या प्लेटफॉर्म खाली करनेकी कोई चेतावनी नहीं दी गई थी और न ऐसी कोई प्रार्थना ही की गई थी। यदि ऐसी भारी उत्तेजनाकी हालतमें लोग शान्त और अहिंसक न रहते तो प्लेटफार्मपर और प्लेटफार्मसे बाहर दोनों जगह कितने ही लोगोंकी जानें चली गई होतीं . . .।

स्थानीय कांग्रेस कमेटी, चटगाँव-संघ और स्थानीय खिलाफत समितिकी एक असाधारण आवश्यक बैठक २१ अक्तूबरको हुई थी जिसमें इस घटनाकी तहकीकातके लिए एक निष्पक्ष जाँच समिति नियुक्त की गई . . .। जख्मी लोगोंकी तस्वीरें खींचनेके लिए फोटोग्राफर नियुक्त कर दिये गये हैं। अगर आप कृपा करके हमें यह बता देंगे कि इस विषयमें अपनी शिकायतें दूर करानेके लिए हमें क्या कार्रवाई करनी चाहिए, तो हम आपके कृतज्ञ होंगे।

स्वदेशी-आन्दोलन पहलेसे भी अधिक जोरसे चलाया जा रहा है . . .।

अबतक कांग्रेस-आन्दोलनके सम्बन्धमें ३० लोगोंको सजाएँ दी जा चुकी हैं, जिनमें से २७ अभीतक जेलमें हैं और छः लोगोंके मुकदमे अभी शुरू होने हैं।

ये तथ्य इतने यथार्थ रूपमें दिये गये हैं कि इनके विषयमें अत्युक्तिका सन्देह करना कठिन है। परन्तु हाकिमोंपर उस बेहद संगदिलीका आरोप करना भी उतना ही कठिन है जिसका अनुमान प्रसन्नबाबूके विवरणसे होता है। यह तो स्पष्ट है कि लोग उस समय खुशी मना रहे थे। ईश्वरको धन्यवाद है कि अब हमारे दिलोंसे जेलों-का डर निकल गया है। इसलिए लोगोंने अपने घरोंमें रोशनी की और उन कैदियोंको पहुँचानेके लिए जुलूस निकालकर स्टेशनपर गये। इसमें उनका इरादा दंगा-फसाद करनेका नहीं हो सकता। लेकिन मजिस्ट्रेटको तो इतना ही सहन नहीं हुआ। उसने स्पष्टतः यह सोचा कि इन खुशियोंसे उसकी दी हुई सजाओंका प्रतिरोधक प्रभाव ही समाप्त हो रहा है और आगे चलकर उसे सारे चटगाँवको एक जेलखाना बनाना पड़ेगा तब कहीं ये तमाम लोग जेलमें रखे जा सकेंगे। इसलिए उसने गोरखोंसे प्रहार करवाया। इसके सिवा (यदि पूर्वोक्त रिपोर्टको सत्य मानें) उस पशुता-पूर्ण व्यवहारका, जो उन बिलकुल बेगुनाह खुशियाँ मनानेवाले लोगोंके साथ किया गया, कोई

दूसरा कारण समझमें आना कठिन है। यह भी स्पष्ट है कि कथित अमन-सभाओंके लोग नौकरशाहीके हाथकी कठपुतली बन रहे हैं। निस्सन्देह ये स्थितियाँ अत्यन्त विषम हैं। लेकिन इसके लिए हमें क्या-क्या सहन करना होगा यह तो हमने इस रास्तेपर कदम बढ़ानेके पहले ही समझ लिया था। अब हमें उसे अवश्य सहन करना चाहिए। हमें यह अग्नि-परीक्षा देनी होगी और उसमें से शुद्ध होकर निकलना होगा; तब हम अपने गन्तव्य स्थानपर पाँव रख पायेंगे। चटगाँवके लोगों और नेताओंने ऐसी उद्वेग-जनक स्थितियोंमें जो उदाहरण-स्वरूप आत्मसंयम और शान्ति-भावका परिचय दिया है उसके लिए वे हार्दिक बधाईके पात्र हैं। मैं उन्हें इसके सिवा दूसरी कोई सलाह नहीं दे सकता कि इससे कठिन संकट उपस्थित होनेपर भी वे अपने सीधे रास्तेपर आगे ही बढ़ते रहें। हमारे पास तो शिकायत दूर करानेका केवल एक ही रास्ता है और वह यह है कि हम ऐसे हर मौकेपर अधिकाधिक साहस और अधिकाधिक आत्मसंयम दिखायें तथा तबतक ऐसा करते रहें जबतक जालिम अपनी ही कोशिशसे थक नहीं जाता। चटगाँवके असहयोगियोंको अमन-सभाके सदस्यों या सरकारी लोगोंके प्रति रोष न करना चाहिए। वे तो सिर्फ अपने स्वभावके अनुसार काम करते हैं। असहयोगीका स्वभाव तो यह होता है कि वह न तो बदला ले और न झुके ही। उसे तो अपने चारों ओर उठते हुए तूफानमें भी अविचल सीधा खड़ा रहना चाहिए। अगर हम सचाईसे गायें और प्रार्थना कर सकें तो यह गीत गायें :

> **जबतक तेरा वरद हस्त है मेरे सिरपर हे प्रभुवर!**
> **निश्चय ही वह पार लगावेगा प्रति पल आगे रहकर;**
> **कठिन-कँटीले मगसे, डरसे, दुर्गम गिरि, दारुण दुखसे—**
> **बाँह पकड़कर ले जायेगा तिमिर रात्रिमें वह सुखसे।**[1]

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ३–११–१९२१

१६७. सहकार

इस बातकी ओर शायद बहुत कम कार्यकर्त्ताओंका ध्यान गया होगा कि कताईकी प्रगतिका मतलब है स्वेच्छापूर्ण सहकारका एक ऐसा उदाहरण जैसा दुनियाने कभी नहीं देखा होगा। इसका मतलब है बहुत विस्तृत क्षेत्रमें फैले और अपनी रोजीके लिए काम करते हुए करोड़ों लोगोंका आपसी सहकार। इसमें सन्देह नहीं कि कृषिके लिए बहुत अधिक सहकारी प्रयत्नकी जरूरत रही है, लेकिन हाथ-कताई तो और भी अधिक तथा और भी सच्चे सहकारकी अपेक्षा रखती है; गेहूँका उत्पादन मनुष्यके सच्चे प्रयत्नकी अपेक्षा प्रकृतिकी अनुकूलतापर अधिक निर्भर करता है। लेकिन, हमारी झोपड़ियोंमें सूतका उत्पादन सिर्फ इस बातपर निर्भर करता है कि मनुष्य कितनी ईमानदारीसे काम करता है। जबतक करोड़ों लोग स्वेच्छा और समझदारीसे आपसमें

१. कार्डीनल न्यूमैनकी "लीड काइंडली लाइट" कवितासे।

सहकार नहीं करते, हाथ-कताईका काम चल पाना नामुमकिन है। हमें ऐसी अवस्थामें पहुँचना है जब अन्न-विक्रेताकी तरह कताई करनेवालेको भी अपने सूतकी बिक्रीके लिए एक सुस्थिर बाजार मिल जाये और अगर वह पींजनेकी क्रिया नहीं जानता तो उसे उसकी जरूरतकी पूनियाँ मिलती रहें। अगर मैं कहता हूँ कि सर्वसाधारणकी बढ़ती हुई गरीबीको कताई ऐसे दूर कर देगी, मानो कोई जादू हो, तो क्या उसमें कोई आश्चर्यकी बात है? एक अंग्रेज मित्रने मुझे एक अखबारकी कतरन भेजी है। उसमें चीनकी यान्त्रिक प्रगति दिखाई गई है। स्पष्ट है, वे समझते हैं, कताईकी हिमायत करके मैं यन्त्रों-सम्बन्धी अपने विचारोंका प्रचार कर रहा हूँ। मैं ऐसा कुछ नहीं कर रहा हूँ। अगर यन्त्रोंके प्रयोगसे भारतकी गरीबी दूर हो सके और यन्त्रोंके प्रयोगके परिणाम-स्वरूप जो बेकारी बढ़ती है, उससे बचा जा सके तो मैं बड़ेसे-बड़े यन्त्रोंके प्रयोगको भी पसन्द करूँगा। मैंने हाथ-कताईका सुझाव ऐसा मानकर दिया है कि यही वह एकमात्र तात्कालिक उपाय है जिससे गरीबी हटाई जा सकती है और रोजगार तथा धनकी कमी दूर की जा सकती है। चरखा तो खुद ही एक मूल्यवान यन्त्र है, और मैंने भारतकी विशेष परिस्थितियोंका खयाल करते हुए इसमें जैसा सुधार हो सकता है, अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार वैसा सुधार करानेकी भी कोशिश की है। इसलिए भारत और मानवताके प्रेमीको जिस एक-मात्र सवालपर विचार करना है वह यह है कि भारतके दुःख और दीनताको दूर करनेकी व्यावहारिक योजना क्या होगी। मनुष्य अपनी मेधासे सिंचाई अथवा कृषि-सम्बन्धी दूसरे सुधारोंकी जैसी भी योजना बनाये, उससे भारतकी दूर-दूरतक फैली इतनी बड़ी आबादीको लाभ नहीं पहुँच सकता, और न जनसाधारणको, जिसे बराबर बेरोजगारीका सामना करना पड़ता है, रोजगार ही मिल सकता है। एक ऐसे राष्ट्रकी कल्पना कीजिए जो प्रतिदिन औसतन सिर्फ पाँच घंटे ही काम करता है और वह भी कोई अपनी इच्छासे नहीं, बल्कि परिस्थितियोंसे मजबूर होकर। यही भारतकी सच्ची तस्वीर है।

अगर पाठक इस तस्वीरकी कल्पना करें तो शहरी जीवनकी व्यस्तता-भरी हलचल, कारखानोंमें काम करनेवालोंके थककर चकनाचूर कर देनेवाले श्रम या बागानोंमें गुलामोंकी जिन्दगी बितानेवालोंकी मशक्कतके बारेमें न सोचेंगे। यह तो भारतके विशाल मानव-समुद्रमें चन्द बूँदोंके समान है। अगर वे दरिद्रता और भूखसे पीड़ित भारतके नर-कंकालोंकी तस्वीर अपनी आँखोंके सामने खींचना चाहें तो उन्हें यहाँकी आबादीके उन अस्सी प्रतिशत लोगोंका ध्यान करना चाहिए जो खेतोंमें काम करते हैं और जिनके पास वर्षके कमसे-कम चार महीने प्रायः कोई धन्धा नहीं होता और इसलिए वे लगभग भुखमरीकी स्थितिमें रहते हैं। यह तो तबकी बात है, जब स्थिति सामान्य हो। बार-बार जो अकाल पड़ते रहते हैं, उनके कारण यह मजबूरीकी बेकारी और भी बढ़ जाती है। तो वह कौन-सा काम है जो ये पुरुष और स्त्रियाँ अपनी-अपनी झोंपड़ियोंमें आसानीसे कर सकती हैं, ताकि उनकी आयके जो अत्यन्त सीमित साधन हैं, उनमें कुछ वृद्धि हो सके? क्या किसीको अब भी इस बातमें सन्देह है कि वह काम हाथ-कताईके अलावा और कुछ नहीं हो सकता? और मैं एक बार फिर

कहता हूँ कि अगर कार्यकर्त्ता चाहें तो चन्द महीनोंमें इसे सर्वव्यायी बनाया जा सकता है। जरूरत सिर्फ ऐसे विशेषज्ञोंकी है जो इसका संगठन कर सकें। लोग उसके लिए तैयार बैठे हैं, और हाथ-कताईके पक्षमें सबसे बड़ी बात यह है कि यह कोई नया और अनपरखा तरीका नहीं है, बल्कि लोग अभी हाल तक इसका उपयोग करते रहे हैं। अतः, इसे सफलतापूर्वक एक बार फिर घर-घरमें प्रवेश करा देनेके लिए युक्ति-पूर्ण प्रयास, ईमानदारी और ऐसे जबरदस्त पैमानेपर सहकारकी आवश्यकता है, जैसा सहकार दुनियाने आजतक नहीं देखा है। और अगर भारतमें यह सहकार आ जाये, तो इस बातसे कौन इनकार कर सकेगा कि भारतने इस एक ही कामसे स्वराज्य पा लिया है?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३–११–१९२१

१६८. पत्र-लेखकोंसे

अवधबिहारी लालजी : मुझे खेद है कि मैं आपका पत्र प्रकाशित नहीं कर सकता क्योंकि 'यंग इंडिया' के स्तम्भोंमें हिन्दू धर्मके बारेमें वाद-विवाद आरम्भ करना असम्भव है। हिन्दू धर्मके बारेमें मुझे जो कुछ कहना था वह मैं अपने लेखमें लिख चुका हूँ। यदि आगे समय मिला तो और लिखूँगा। लेकिन उस लेखमें कही गई बातोंके पीछे मंशा यह नहीं था कि दूसरे भी उसे प्रामाणिक मान लें। वह तो मैंने सनातन हिन्दू धर्मकी केवल अपनी परिभाषा देनेके विचारसे लिखा था। हो सकता है कि मैंने जो-कुछ लिखा वह बिलकुल गलत हो और प्रत्येक सनातनी उसका खण्डन करे। परन्तु तब भी मुझे यही आशा करनी चाहिए कि मैं अपने विश्वासपर दृढ़ रह सकूँगा। यदि विशाल हिन्दू-बहुमत मेरे विचारोंको अस्वीकार कर दे तो मुझे जातिसे बहिष्कृत बने रहनेमें भी सन्तोष होगा।

जी० एस० राममूर्ति : अस्पृश्यताको कार्यक्रममें दूसरा स्थान नहीं दिया जा सकता। जबतक इस दागको मिटाया नहीं जाता, स्वराज्य एक निरर्थक शब्दमात्र रहेगा। अपना कर्त्तव्य पूरा करनेमें कार्यकर्ताओंको सामाजिक बहिष्कार और लोक-घृणातक का स्वागत करना चाहिए। मैं अस्पृश्यता-निवारणको स्वराज्य प्राप्तिका और साथ-साथ खिलाफतके सवालके हलका बड़ा सशक्त साधन मानता हूँ। अशुद्ध हिन्दूवाद इस्लामकी शुद्धिमें सहायक नहीं हो सकता।

लाल : प्रार्थना निस्सन्देह राष्ट्रीय पुनरुत्थानमें बड़ी सहायक है। चरखा प्रार्थनामें सहायक होता है। बाधक तो वह कभी नहीं होता। यन्त्रवत्, बिना समझे की जानेवाली प्रार्थना तो व्यर्थ और निकृष्ट होती है, क्योंकि वह धोखेमें रखकर लोगोंको आत्मतुष्ट और निष्क्रिय बना देती है। असहयोग सामूहिक-लोकशिक्षाका साधन है। जनसाधारणसे प्रार्थना करनेके लिए कहनेकी जरूरत नहीं है। उनकी प्रार्थनाओंमें तो केवल जीवन फूँकनेकी कसर है।

जे० भट्टाचार्य : केवल यह दिखानेके लिए ही कि आपका पत्र कितना शानदार है, काश ! मैं उसे प्रकाशित कर पाता। लेकिन मेरा खयाल है कि उसे गलत समझा जायेगा। देशमें कुल मिलाकर बहुत अधिक अन्धानुकरण चल रहा है। आपने जो उदाहरण दिये हैं वे इस आन्दोलनपर लागू नहीं होते, क्योंकि इसमें तो प्रत्येक व्यक्तिको विशेष रूपसे अपने-आप सोच-विचारकर काम करनेकी प्रेरणा दी जाती है। स्वराज्यकी मेरी कल्पना यह नहीं है कि बहुतसे लोग एक व्यक्तिका अन्धानुकरण करें। कवि-[रवीन्द्रनाथ ठाकुर]ने इस प्रवृत्तिका ही विरोध किया है और वह उचित है; सर्वमान्य नेताओंकी आज्ञाको सोच-समझकर माननेका विरोध नहीं किया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३–११–१९२१

१६९. व्याख्याके सिद्धान्त

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके प्रिंसिपल श्री आ० बा० ध्रुवने 'वसन्त' नामक गुजराती मासिकमें शास्त्रोंकी व्याख्या करनेके सही तरीके और उनमें अस्पृश्यताका जो स्थान है उसके बारेमें उस तरीकेको लागू करनेके सम्बन्धमें एक बड़ा विद्वत्तापूर्ण लेख लिखा है। मेरे पास बड़े लम्बे-लम्बे पत्र आये हैं जिनमें से कुछका रूप तो सैद्धान्तिक और पारिभाषिक है और कुछ मेरे विचारसे ऐसे व्यक्तियोंकी मिथ्या धारणापर आधारित हैं जो शास्त्रोंसे बिलकुल अनभिज्ञ हैं। मैं यह जानता हूँ कि लिखनेवालोंने ये पत्र सदुद्देश्योंसे प्रेरित होकर ही लिखे हैं। 'यंग इंडिया' जैसे छोटेसे साप्ताहिक-पत्रके स्तम्भोंमें इन सब पत्रोंको प्रकाशित करना तो सम्भव नहीं है। परन्तु मैं इन पत्र-लेखकोंको किसी प्रामाणिक विद्वान्‌के जरिये अवश्य सन्तुष्ट करना चाहता हूँ। मेरे विचारसे आचार्य ध्रुव ऐसे ही प्रामाणिक विद्वान् हैं। उनकी विद्वत्ता उतनी ही निर्विवाद है, जितनी उनकी ईमानदारी और निष्पक्षता। जो लोग जल्दीसे-जल्दी अस्पृश्यताके प्रश्नका न्यायपूर्ण हल ढूँढ़ना चाहते हैं उनके लिए उनका यह लेख निश्चय ही रुचिकर होगा। मैंने उसका अनुवाद 'यंग इंडिया' के लिए करा लिया है। पण्डित मदनमोहन मालवीयजी और ये विद्वान् प्रिंसिपल महोदय, जो कट्टर हिन्दू होनेका दावा करते हैं और कट्टर हिन्दू माने भी जाते हैं, दोनों ही हिन्दू धर्मपर लगे इस दागको मिटानेके हार्दिक समर्थक हैं, इस बातको देखकर मुझे जितनी शान्ति मिली है उतनी और किसी बातसे नहीं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३–११–१९२१

१७०. शिक्षा और असहयोग

सम्पादक
'यंग इंडिया'
महोदय,

प्रसिद्ध पत्रकार श्री रामानन्द चटर्जी द्वारा सम्पादित बंगला-मासिक 'प्रवासी'के कार्तिक-अंकमें एस० सी०के हस्ताक्षरोंसे एक लेख छपा है, जिसमें रूसमें शिक्षाके क्षेत्रमें जो कार्य हो रहा है, उसका उल्लेख है। इस लेखमें एक अंश ऐसा है, जिसकी ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। मैं इसका अनुवाद नीचे दे रहा हूँ।

"किन्तु वर्तमान उथल-पुथलकी परिस्थितियोंमें भी रूसने ज्ञानकी ज्योति जलाये रखी है—भले ही उसका प्रकाश मन्द हो। हमारे देश (भारत)के बुद्धिमान देशभक्तोंकी तरह वहाँ किसीने ऐसी कोई सलाह नहीं दी है कि अभी शिक्षाको बन्द रखा जाये। रूस जानता है, जैसे पानी और तेलमें परस्पर विरोध है, युद्ध और शिक्षामें परस्पर वैसा कोई बड़ा विरोध नहीं है।"

मेरा अनुवाद अच्छा नहीं है, इसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ। किन्तु बंगलाकी उक्त कतिपय पंक्तियोंमें जो विचार दिया गया है, वह यही है।

मैं ठीक-ठीक नहीं समझ पा रहा हूँ कि लेखकका आशय इन पंक्तियोंसे क्या है, और चूँकि श्री गांधी उन "बुद्धिमान देशभक्तों" में हैं, "जिन्होंने हमें फिलहाल अपनी शिक्षाको बन्द रखने" की सलाह दी है, अतः मैं उनसे नम्र निवेदन करता हूँ कि वे उक्त अंशके सम्बन्धमें अपने विचार व्यक्त करें। मेरे इस निवेदनका कारण यह है कि यही विचार हमारे समाजके एक वर्गका है, जो अपनेको "समझदार" और "विवेकशील" बताता है।

भवदीय,
फणीन्द्रनाथ दासगुप्त

पुरुलिया

"प्रवासी"ने जो विचार व्यक्त किया है, उससे मुझे कोई आश्चर्य नहीं होता। मेरी नम्र सम्मतिमें इससे एक ही साथ यह भी प्रकट होता है कि लेखकको इन "बुद्धिमान देशभक्तों"की स्थितिकी जानकारी नहीं है और यह भी कि उनके शिक्षा-सम्बन्धी विचार बहुत विकृत हैं। रूसी लोग अपनी वर्तमान संस्थाओंसे असहयोग नहीं कर रहे हैं, और फिर भी वहाँ युद्धकी स्थितिमें "ज्ञानकी ज्योति मन्द रूपमें ही जल रही है।" लेकिन वैसा तो हमारे असहयोग कार्यक्रमके अन्तर्गत खोले गये स्कूलोंमें भी हो रहा है। किन्तु जब इंग्लैंडकी जर्मनीसे लड़ाई चल रही थी, तब वहाँ क्या हुआ

था? तब इंग्लैंडमें कितने स्कूलोंमें पढ़ाई हो रही थी? मैं जानता हूँ कि बैरिस्टरीके सभी कालेज और कितने ही दूसरे कालेज करीब-करीब बन्द कर दिये गये थे। मैं जानता हूँ कि बोअर युद्धके समय एक भी बोअर बालकको किताबी शिक्षा नहीं मिल पाई थी। उनकी शिक्षा अपने देशकी खातिर कष्ट-सहनमें ही निहित थी। बात दर-असल यह है कि हमारा यह अहिंसात्मक आन्दोलन कुल मिलाकर इतने शान्त और विनयपूर्ण ढंगसे चल रहा है कि ऐसा हो सकता है कि जो लोग इस सिद्धान्तमें विश्वास नहीं रखते वे उसी प्रणालीके अधीन अपने बच्चोंको शिक्षा देते रहें जिस प्रणालीके खिलाफ हम "लड़ाई कर रहे हैं।" और मैं आज ही बता देता हूँ कि इस विनयसे आन्दोलनको और भी अधिक बल मिल रहा है, भावी इतिहासकार इस बातकी साक्षी कृतज्ञताके साथ देंगे। और अन्तमें, हमें उस शिक्षा-प्रणालीपर गर्व करनेका कोई कारण दिखाई नहीं देता, जिस प्रणालीके अन्तर्गत शिक्षाका लाभ हमारी विशाल आबादीके सिर्फ मुट्ठीभर लोगोंको ही मिल पाता है। हम अपनी बेहोशीमें नहीं देख पा रहे हैं कि यह शिक्षा-प्रणाली हमारे देशपर कैसा विनाशकारी प्रभाव डाल रही है। इस प्रणालीमें ऐसी कोई चीज ढूँढ़ निकालनेकी मैंने बहुत कोशिश की है जो इस देशसे सम्बद्ध महत्व-पूर्ण समस्याओंके समाधानमें किसी तरह सहायक सिद्ध हो सके। लेकिन मुझे उसमें ऐसी कोई चीज नहीं मिली। आज ७, ८५१, ९४६ बच्चे स्कूलोंमें शिक्षा पा रहे हैं। मेरा दावा है कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली ऐसी है कि अगले पचास वर्षोंमें इस संख्याके दुगुनी होनेकी भी सम्भावना नहीं है। अगर शिक्षाको सर्वव्यापी बनाना है, तो वर्त-मान प्रणालीमें आमूल परिवर्तन करना होगा। यह सिर्फ असहयोगसे ही सम्भव है। इससे किसी अधिक नरम उपचारसे भारतीय जनताकी अन्तरात्माको जाग्रत नहीं किया जा सकता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३–११–१९२१

१७१. अफगानिस्तानमें हिन्दू

सम्पादक

'यंग इंडिया'

महोदय,

यदि ऐसा कोई अत्यन्त साधारण हिन्दुस्तानी, जिसकी इस बातमें कोई आस्था न हो कि असहयोग द्वारा स्वराज्य प्राप्त किया जा सकता है, जो यह समझता हो कि खिलाफत आन्दोलनसे ऐसे लोगोंके हाथ मजबूत हो रहे हैं जो हृदयसे एक मुस्लिम राज्यकी — जो मौजूदा 'दानवी' शासनसे कहीं ज्यादा मनमानी करनेवाला और अन्यायकारी होगा — स्थापनाका प्रयास कर रहे हैं, परन्तु इतनेपर भी जो भारतीय अपने ढंगसे देशको प्यार करता हो और जिसकी

और कुछ भी ध्यान दिया जाये तो क्या मैं आपसे नीचे लिखी बातें पूछ सकता हूँ?

मैंने बेलो-लिखित 'जर्नल ऑफ ए पोलिटिकल मिशन टु अफगानिस्तान' में पढ़ा है कि हिन्दकीयों, अर्थात् अफगानिस्तानके हिन्दुओंको अनेक अपमानजनक और अन्यायपूर्ण निर्योग्यताओंके अधीन रहना पड़ता है; उदाहरणके लिए उन्हें "जजिया" देना पड़ता है, अलग तरहकी पोशाक पहननी पड़ती है, वे जीन कसे घोड़ेपर सवारी नहीं कर सकते, आदि। उस समय इन बातोंको अवश्य ही अफगानिस्तानकी मुस्लिम सरकारकी स्वीकृति प्राप्त थी। तबसे यदि स्थितिमें कुछ सुधार हो गया हो तो मुझे उसकी कोई जानकारी नहीं है। आपके अनेक 'खिलाफती' मित्र ऐसे हैं जो खुले आम हिन्दुस्तानपर अफगानिस्तानके आक्रमणके पक्षमें होनेका ऐलान कर चुके हैं। क्या आप हिन्दुओंको यह बतायेंगे कि अफगानिस्तानके हिन्दुओंपर लगी कानूनी निर्योग्यताएँ हटा दी गई हैं या नहीं? यदि ये निर्योग्यताएँ अभी नहीं हटाई गई हों तो क्या आपको इनके हटानेके लिए भी उतनी ही जोरदार दलीलें नहीं देनी चाहिए जितनी आप मौजूदा "दानवी" सरकार द्वारा भारतीयोंसे किये जानेवाले तथाकथित "गुलामों जैसे" व्यवहारके सम्बन्धमें देते हैं? यह "दानवी" सरकार जिस जातिकी है उस जातिने हिन्दुस्तानियोंके साथ वैसा अनुचित व्यवहार कभी नहीं किया जैसा अफगानिस्तानके मुसलमान शासकोंने हिन्दुओंके साथ किया है।

मैं समझता हूँ कि छुआछूतके सम्बन्धमें आपने जो कठोर रुख अपनाया है उससे, खिलाफतके समर्थनकी अपेक्षा, अधिक भलाई हो सकेगी। यदि आप हिन्दुओंमें से छुआछूत और प्रान्तीय भेद-भावोंको मिटा सकें तो आप मानव-जातिके एक बहुत बड़े हित साधक होंगे। मुसलमान तो स्वयं इतने सशक्त हैं कि अपनी रक्षा आप कर सकते हैं।

आपका,
आर० सी० बनर्जी

रतनगंज,
२४ अक्तूबर, १९२१

अफगानिस्तानमें हिन्दुओंके साथ कैसा व्यवहार किया जाता है इसके बारेमें मुझे कुछ भी मालूम नहीं है, तथापि एक क्षणके लिए मैं इस पत्रके लेखकके कथनकी सत्यता स्वीकार करनेके लिए तैयार हूँ। परन्तु इसकी संगति तब होती जब हम हिन्दुस्तानमें अफगान-शासन लानेकी कोशिशमें लगे होते। मेरा सम्बन्ध तो केवल भारतके मौजूदा कुशासनसे है जिसने मुझे घोड़ेपर चढ़ने देकर भी मेरी स्थिति अपने ही देशमें गुलामों-जैसी कर रखी है। मुझे यह डर दिखाकर इस कुशासनका तख्ता उलटनेसे भी नहीं रोका जा सकता कि यहाँ अफगान-शासन या कोई अन्य मुस्लिम शासन आ

जायेगा। इस पत्रके लेखक यह देखेंगे कि स्वराज्य प्राप्त कर लेनेपर हमारे अन्दर यह योग्यता भी आ जायेगी कि हम किसी अन्य कुशासनका भी मुकाबला कर सकें। उस समय, सैंडहर्स्टमें प्रशिक्षण पाये बिना भी, हम यह कला सीख जायेंगे कि देश और धर्मके लिए जानकी बाजी कैसे लगाई जाती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-११-१९२१

१७२. भाषण : सविनय अवज्ञापर[1]

४ नवम्बर, १९२१

श्री गांधीने प्रस्ताव पेश करते हुए[2] . . . कहा कि अगर मुझसे पूछा जाये कि पिछले दस महीनेमें भारतने कितनी प्रगति की है तो मैं निस्संकोच कहूँगा, इस बीच उसने जबर्दस्त प्रगति की है। अगर आप सिर्फ इसी बातका अन्दाजा लगाने बैठें कि प्रगति कहाँतक हुई है, तब तो आप हर तरहसे गर्वका अनुभव कर सकते हैं, लेकिन अगर कोई मुझे एक वैद्यकी हैसियतसे स्वराज्य-प्राप्तिके लक्ष्यको दृष्टिमें रखते हुए इस प्रगतिका अन्दाजा लगानेको कहे और पूछे कि हम जिन तीन रोगोंसे पीड़ित हैं, उनसे छुटकारा पानेके खयालसे यह प्रगति पर्याप्त है या नहीं तो मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि जरूरतको देखते हुए अभी बहुत कम प्रगति हुई है। इसीलिए सविनय अवज्ञाका प्रस्ताव पेश करते हुए मुझे एक बार फिर पूरा जोर देकर कहना पड़ता है कि अबतक असहयोग कार्यक्रमके अन्तर्गत जो-कुछ करनेको कहा गया है, उसे पूरी तरह कर दिखाना है, और खासकर वह सब जिसका उल्लेख इस प्रस्तावमें है। इसके बाद उन्होंने मौलाना मुहम्मद अलीके निजी सचिव द्वारा भेजा गया तार पढ़ा, जिसमें बताया गया था कि उनके साथ आम कैदियोंकी तरह व्यवहार करनेके कारण उन्हें कितनी तकलीफें उठानी पड़ रही हैं। अतः श्री गांधीने सभीको आगाह किया कि अगर सविनय अवज्ञा प्रारम्भ करनी हो तो काफी सोच-समझकर ही वैसा करें। उन्होंने आगे कहा कि हमें सरकारसे किसी प्रकारकी नरमीकी आशा नहीं करनी चाहिए और न ऐसी आशा करनेका हमें अधिकार ही है। न हम सरकारके साथ कोई मुरौवत करनेको तैयार हैं, और न हमें उससे किसी मुरौवतकी आशा रखनी चाहिए। हमारे साथ जितना ही बड़ा अन्याय किया जायेगा, हमें जितनी ही अधिक यातना दी जायेगी और हम जितना ही अधिक धैर्य और अडिग संकल्प दिखायेंगे, हमें उतनी ही जल्दी स्वराज्य मिलेगा।

१. यह भाषण अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी दिल्लीकी बैठकमें दिया गया था।

२. देखिए "अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी", १०-११-१९२१।

सविनय अवज्ञाकी परिभाषा करते हुए श्री गांधीने आगे कहा कि यह सविनय क्रान्ति है, जिसका मतलब है कि जहाँ इसका प्रयोग किया जाता है वहाँ सरकारकी सत्ता समाप्त हो जाती है। सविनय अवज्ञा सरकार तथा उसके कानूनोंको खुली चुनौती है। यह एक बहुत बड़ा कदम है, और यद्यपि इस मामलेमें प्रान्तीय संगठनोंको पूरी आजादी दे दी गई है, फिर भी मेरी सलाह है कि अगर गुजरातमें मेरे जिलेमें सविनय अवज्ञा की जाती है तो आप सब अभी जरा रुककर देखें कि मैं वहाँ क्या करता हूँ, और उसके परिणामोंको देखनेके बाद आप उस उदाहरणका अनुकरण करें, जिससे आपकी अद्भुत उपलब्धि देखकर सारी दुनियाकी आँखें खुल जायें। मैं जानता हूँ कि इस समय देशमें व्यापक पैमानेपर सविनय अवज्ञा असम्भव है, इसलिए पूरी तरह तैयार हुए बिना सारे देशकी जनता इसमें शामिल हो, इसके बजाय सिर्फ एक तहसील या जिला ही भली-भाँति तैयार होकर सविनय अवज्ञा प्रारम्भ करे, तो इससे मुझे पूरा सन्तोष प्राप्त होगा। अतः, श्री गांधीने उन्हें सावधानी बरतनेकी सलाह दी और एक तरहसे उनसे तबतक प्रतीक्षा करनेको कहा जबतक वे स्वयं अगले पन्द्रह दिनोंमें गुजरातमें आगे बढ़कर उन्हें नेतृत्व न दें। उन्होंने इस चेतावनीको फिर दुहराया कि प्रस्तावमें जैसा जबर्दस्त कदम उठानेकी बात है, उसे ध्यानमें रखते हुए वस्तुस्थितिको पूरी तरह सोचे-समझे बिना कुछ नहीं करना चाहिए, ताकि एक बार जब कदम बढ़ा दिया जाये तो फिर उसे वापस लेनेका सवाल न रहे। . . .

जब श्री गांधीने अपना प्रारम्भिक भाषण समाप्त किया, . . . प्रस्तावमें बताई शर्तोंको ढीला करनेके लिए . . . संशोधनोंकी बौछार हो गई . . . श्री गांधी तथा उनके विचारके समर्थकोंने इस बातपर जोर दिया कि चूँकि हम प्रतिज्ञाबद्ध हैं और ऐसा मानते हैं कि स्वदेशीके कार्यक्रमको पूरी तरहसे सम्पन्न करके ही हम स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं, इसलिए अगर हम स्वदेशीके कार्यक्रममें पूरी निष्ठाके साथ दत्तचित्त रहनेकी बात हटा दें तो उसका मतलब अबतक हम जितना-कुछ बना पाये हैं उसकी नींवपर ही आघात करना होगा। बिना पूरी तैयारीके सारा देश सविनय अवज्ञा करे, इससे तो बहुत बेहतर है कि पूरी तैयारीके साथ सिर्फ एक तहसील या एक जिला ही इसका प्रयोग करे।

बहुत गरमागरम बहसके बाद . . . स्वदेशी सम्बन्धी सख्त धाराओंको हटानेके उद्देश्यसे पेश किये गये सभी संशोधन अस्वीकृत हो गये . . . श्री गांधीने कहा कि हमें किसी ऐसे निष्कर्षपर पहुँचना चाहिए जिसे सभी सही मानें और जिसपर अमल करनेके लिए सभी लगन और ईमानदारीके साथ कोशिश करें।[१] . . .

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ७-११-१९२१

१. बैठकमें कार्य-समितिको यह सत्ता दे दी गई कि वह चाहे तो खास-खास मामलोंमें शर्तोंमें ढील दे सकती है।

१७३. भाषण : अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीमें[1]

५ नवम्बर, १९२१

सरकारी नौकरी छोड़नेके सम्बन्धमें पेश किये गये प्रस्तावपर बोलते हुए श्री गांधीने कहा, यद्यपि प्रस्तावमें यह कहा गया है कि प्रत्येक नागरिकको सरकारी नौकरीके सम्बन्धमें सलाह देनेका जन्मसिद्ध अधिकार है, फिर भी कांग्रेस कमेटी कोई ऐसा फरमान जारी नहीं कर रही है कि सभी लोग सेनाकी बैरकोंमें जाकर सैनिकोंको वहाँसे निकल आनेकी सलाह दें। और अगर ऐसा फरमान जारी नहीं किया गया है तो उसका कारण जेलका भय नहीं, बल्कि यह है कि इस समय कांग्रेस नौकरी छोड़नेवाले सभी सैनिकोंकी आजीविकाकी व्यवस्था करनेमें असमर्थ है। किन्तु हरएक आदमीको पूरी स्वतन्त्रता है कि व्यक्तिगत रूपमें अपनी जिम्मेदारीपर वह बैरकोंमें जाकर सैनिकोंसे फौजी नौकरी छोड़नेके लिए कहे। खुद मैंने सैकड़ों सैनिकोंको नौकरी छोड़नेकी सलाह दी है।

[अंग्रेजीसे]

अमृत बाजार पत्रिका, ८–११–१९२१

१७४. भाषण : मथुरामें[2]

५ नवम्बर, १९२१

श्री गांधीने . . . अक्तूबरके अन्ततक स्वराज्य प्राप्त करनेके सवालपर बोलते हुए कहा, मैंने ऐसा कभी नहीं कहा कि मैं स्वयं ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दूँगा जिनका लाभ उठाकर आप स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे। जो लोग भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके पिछले अधिवेशनमें प्रतिनिधि बनकर गये थे, उन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी कि कांग्रेस और देशके लोगोंने असहयोगका जो कार्यक्रम निश्चित किया है, उसको वे कार्य-रूप देंगे। उन्होंने अपनी यह प्रतिज्ञा पूरी नहीं की, इसलिए स्वराज्य न मिलनेके लिए उन्हें अपने-आपको दोषी मानना चाहिए। अभी देशने यह सिद्ध नहीं किया कि उसमें स्वराज्य पानेकी सामर्थ्य है। त्याग और अनुशासनका वह सीधा-सादा क्रम, जो उन्हें स्वराज्य दिलानेका एकमात्र साधन है, अभीतक पूरा नहीं किया गया है।

१. कमेटीकी यह बैठक दिल्लीमें हुई थी।

२. मथुरामें दिल्ली राजनीतिक सम्मेलनका उद्घाटन करते हुए गांधीजीने यह भाषण किया था। कान्फ्रेंसके अध्यक्ष पं० मोतीलाल नेहरू थे।

अब देशके लिए यह और भी अधिक जरूरी हो गया है कि वह शेष कार्यक्रमको इस वर्षकी समाप्तिसे पहले ही पूरा करनेमें अपनी समस्त शक्ति लगा दे। और यदि देश ऐसा कर पाया तो मैं अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर आपको आश्वासन देता हूँ कि यह वर्ष समाप्त होनेके पहले ही हमें स्वराज्य मिल जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ११-११-१९२१

१७५. हिन्दुओंका कर्त्तव्य

गोधराके अन्त्यज आश्रमकी ओरसे मुझे निम्नलिखित हृदयद्रावक पत्र[1] मिला है। उस ओर मैं प्रत्येक भारतीयका ध्यान खींचता हूँ।

इस पत्रको पढ़कर प्रत्येक हिन्दूका सिर शर्मसे झुक जाना चाहिए। इस बालकको मार पड़ी, इसके लिए उसके माँ-बाप उत्तरदायी नहीं हैं, हम हैं। हमने अन्त्यजोंका तिरस्कार किया, उन्हें अपना जूठा और सड़ा हुआ अन्न खानेके लिए दिया और यह माना कि हमने पुण्य किया है। हमने उन्हें कमसे-कम वेतन दिया है और उन्हें भीख माँगनेपर विवश किया है। हमने उनसे अपना कचरा न सिर्फ उठवाया, उन्हें अपना कचरा खिलाया भी। अपनी उतारनको उनका श्रृंगार बनाया। परिणाम यह हुआ कि अब अन्त्यज वर्ग भीख माँगकर खुश होता है, जूठा भोजन पाकर गर्वका अनुभव करता है। सड़ा हुआ अनाज जब उनके घरमें आता है तो उनके बच्चे खुशीसे नाचते हैं। जिस मालिकके गुलाम अपनी गुलामीमें प्रसन्न होते हैं उसके पापका कोई हिसाब ही नहीं है। सो हालत हिन्दुओंकी हुई है।

जिस बालकको अच्छा बननेके लिए, जूठा भोजन खानेसे इनकार करनेके लिए मार खानी पड़ी वह हमारा ही बालक था। इस लेखको पढ़कर हरेक माँ-बापको विचार करना चाहिए कि उपर्युक्त बालकके स्थानपर अगर उनका अपना लड़का होता तो? और वह बालक कितना पवित्र था! मार खानेके बाद भी उसने माँस खानेसे इनकार किया। ऐसे बालकको अस्पृश्य माननेवालेकी मानसिक दशाका विचार कीजिए। वह स्वराज्यका उपभोग क्या करेगा? वह किसकी रक्षा करेगा?

लेकिन इस समय मैं अन्त्यजेतर हिन्दू माता-पिताओंको अस्पृश्यताके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहना चाहता। क्या वे अन्त्यज भाइयोंपर दया भी नहीं करेंगे? क्या उनको सड़ा-गला और जूठा भोजन देना भी शास्त्रोचित है? क्या उन्हें कमसे-कम वेतन देना शास्त्रोचित है?

१. यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है। अन्त्यज आश्रमके एक अध्यापक द्वारा लिखे गये इस पत्रमें विद्यार्थियोंकी अपने घरोंमें जो दुर्दशा होती थी उसका वर्णन किया गया था। माता-पिताओंको उनकी सुधरी हुई आदतें अच्छी नहीं लगती थीं और वे उनके साथ दुर्व्यवहार करते थे।

मैं प्रत्येक माँ-बापसे प्रार्थना करता हूँ कि :

१. वे अन्त्यजोंको पका हुआ भोजन न दें।
२. केवल सूखा और बिना पका हुआ भोजन दें।
३. उन्हें विदेशी अथवा फटे-पुराने वस्त्र न दें।
४. उनका वेतन कम हो तो उसमें वृद्धि करें।
५. जो दें सो प्रेमपूर्वक दें।

जो अन्त्यज इस लेखको पढ़ें उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे जूठा और सड़ा हुआ अनाज अथवा माँस न लेने और न खानेका निश्चय करें और अपने बच्चोंको, उनके लिए जो राष्ट्रीय स्कूल खोले जायें उनमें भेजें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६–११–१९२१

१७६. पत्र : महादेव देसाईको

दिल्ली
मौनवार, [७ नवम्बर, १९२१][1]

चि० महादेव,

दिल अर्थात् आत्मा क्योंकि दिल अर्थात् हृदय। तन्दुरुस्त तो प्रचलित शब्द है। मुझे लिखना तो था शरीरकी तन्दुरुस्तीके बारेमें ही लेकिन केवल इतने-भरसे मुझे कैसे सन्तोष हो सकता था?

परसराममें दोष होनेके बावजूद मैंने उसे पुत्रके रूपमें स्वीकार कर लिया है। तुम्हें तो मैंने मित्र ही माना है। दुर्गाको पहली ही मुलाकातमें बेटी माननेमें कोई संकोच नहीं हुआ। जमनालाल पुत्र बननेका दावा किया करता है लेकिन उसके सम्बन्धमें मेरे मनमें पितृत्वकी भावना आ ही नहीं सकती।

तुम्हारे एक भजनके बारेमें मुझे ऐसा लगा कि मैंने उसे कहीं पढ़ा है, तथापि कोई कारण नहीं कि वैसा ही भजन तुम्हें क्यों नहीं सूझ सकता? लेकिन मैं तुम्हारा पत्र मिलनेसे पहले ही कल इसका उत्तर दे चुका हूँ? बीमारीमें तुम्हारे मनमें आत्मा सम्बन्धी विचार ही आये, सो इसमें ही स्वराज्य आ गया। स्वराज्यका अलगसे विचार करनेकी कोई जरूरत ही न थी।

शरीर-धर्मको पूरा किये बिना निस्तार नहीं है। खाने, नहाने, भीख माँगते हुए घूमनेकी बातको हम बुरा नहीं समझते और मात्र मेहनत करके अन्न खानेकी बातसे द्वेष करते हैं। मनके यज्ञसे मनकी, आत्माके यज्ञसे आत्माकी और देहके यज्ञसे देहकी

१. 'दिल', 'तन्दुरुस्त' और 'भजन' के उल्लेखसे यह स्पष्ट है कि यह पत्र ३१–१०–१९२१ के तुरन्त बाद पड़नेवाले मौनवारको लिखा गया था। देखिए "पत्र : महादेव देसाईको", ३१–१०–१९२१।

शुद्धि होती है। देहको जो अन्न मिलता है उसका बदला मनुष्य मनका काम करके नहीं दे सकता। जब अनाज मिलनेकी अपेक्षा किये बिना मनुष्य मजदूरी करता है तब वह यज्ञ होता है। इस युगमें, इस देशमें शरीर यज्ञ चरखेसे ही सम्भव है। क्योंकि उसीके अभावसे हिन्दुस्तानका शरीर जीर्ण हो गया है। जब हिन्दुस्तानकी आबोहवा बदल जायेगी और हमारी जरूरतें बदल जायेंगी तब हम दूसरा यज्ञ कर सकते हैं। यदि ऐसा हो कि इस देशमें पानी प्राप्त करनेके लिए हमेशा कुआँ खोदना पड़े तो कुआँ खोदनेकी क्रिया कुछ अंशमें यज्ञ बन जायेगी। लेकिन जबतक ऐसी स्थिति कायम है तबतक जिस तरह ब्रह्मचर्य आदि आवश्यक हैं उसी तरह शरीर-यज्ञ भी आवश्यक है। लेकिन चूँकि वह केवल शरीरका ही धर्म है इसलिए जब शरीर अनशन कर रहा हो तब वह इस यज्ञसे मुक्त रह सकता है [अन्यथा नहीं]। लेकिन जिस तरह मेरे जैसा व्यक्ति — सहज ही अथवा अपने मनको फुसला कर यह मान लेता है कि मैं तो निरन्तर २४ घंटे प्रार्थना ही करता रहता हूँ और उसके लिए एक निश्चित समय निर्धारित नहीं करता उस तरह अगर कोई व्यक्ति शरीर-यज्ञ किये बिना ही यह मानता है कि वह यज्ञ कर रहा है तो वह भूल करता है, क्योंकि प्रार्थना मानसिक या हार्दिक क्रिया है जब कि यह क्रिया तो केवल शरीर द्वारा ही सम्पादित की जा सकती है। हाँ, वह इस क्रियाको निष्ठापूर्वक एकाग्र मनसे न करे और लोगोंको छले, यह एक अलग बात है लेकिन यह क्रिया उसे करनी तो अवश्य पड़ेगी। इतनेमें तुम्हारे इस सम्बन्धमें पूछे गये दोनों प्रश्नोंका उत्तर आ जाता है।

मैंने श्री दासके तारको गलत समझा। छोटानी मियाँके पत्रके बारेमें भी मुझे गलतफहमी हुई। उनमें गलतफहमी पैदा करनेकी जानबूझ कर कोई कोशिश नहीं की गई थी। छोटानी मियाँसे जब मेरी बातचीत हुई उस समय भी उन्होंने मेरी गलतफहमी दूर करनेकी कोशिश नहीं की। यह सच है कि हमने लम्बी बातचीत नहीं की। लेकिन जो अच्छी तरहसे समझता नहीं है वह भी सत्यका पूरा-पूरा पालन नहीं करता। मैं तो जानता हूँ कि यदि मैं मन, वचन और कर्मसे सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्यका पालन कर सकूँ तो इसी वर्ष स्वराज्य मिल जाये; अथवा हममें से कोई ऐसा हो जाये तो भी; अथवा हम सब लोगोंका तप मिलकर उसके लिए पर्याप्त हो तो भी; मैं अपने सम्बन्धमें ऐसी आशा नहीं छोड़ता। अपनी कोशिशमें तो मैं कोई कसर . . .।[1]

गुजराती प्रति (एस० एन० ११४२४) की फोटो-नकलसे।

१. यहाँ मूल पत्र कटा-फटा है।

१७७. भाषण: लाहौरके राष्ट्रीय कालेजके दीक्षान्त समारोहमें[1]

९ नवम्बर, १९२१

भाषण प्रारम्भ करते हुए उन्होंने कहा कि मुझसे राष्ट्रीय कालेजके विद्यार्थियोंको उपाधि बाँटनेको कहा गया है, यह मेरा सौभाग्य है। मैं विद्यार्थियोंको बधाई देता हूँ, अपनी शुभ कामनाएँ देता हूँ और ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह उन्हें, आज उन्होंने जो प्रतिज्ञा की है, उसका पालन करनेकी शक्ति दे। आजसे उनके हृदयमें देश-सेवाका फौलादी निश्चय हो। मेरे लिए तो उपाधि स्वीकार करनेका सिर्फ एक ही मतलब है—अर्थात् देशकी स्वतन्त्रताके लिए ठोस काम करनेको तैयार रहनेका संकल्प लेना। सभी राष्ट्रोंका इतिहास इसी मार्गकी ओर इंगित करता है। मैंने तीन बड़ी लड़ाइयाँ देखी हैं और देखा है कि शिक्षाको किस तरह अपने समयके राष्ट्रीय विचारों और आदर्शोंके अनुरूप ढाल लिया जाता है। जब मैं पिछले सितम्बर माहके बारेमें सोचता हूँ, मुझे कोई दुःख नहीं होता। उस समय हमने यह तय किया था कि भावी भारतको कैसी शिक्षा देनी चाहिए। हम जितना चाहते थे, उतनी सफलता नहीं प्राप्त कर पाये हैं। कुछ स्कूलोंमें विद्यार्थियोंके साथ बुरा व्यवहार किया जाता है। इसके परिणाम स्वरूप एक विद्यार्थीने मुझको लिखा है कि मैंने तो आत्म-हत्या कर लेनेका निश्चय कर लिया है। 'यंग इंडिया'के पाठकोंको यह बात शायद याद होगी। अगर भविष्यमें किसी विद्यार्थीके साथ बुरा व्यवहार किया जाता है तो मुझे आशा है कि वह मुझे इस ढंगका पत्र नहीं लिखेगा। विजगापट्टमसे मुझे एक तार मिला है, जिसमें बताया गया है कि मेडिकल स्कूलके विद्यार्थियोंने अब स्कूल न जानेका निश्चय कर लिया है, क्योंकि उनके प्रिंसिपलने उन्हें खद्दर पहननेके कारण स्कूलसे निकाल दिया था। उत्तरमें उन्हें, उनके संकल्पपर बधाइयाँ भेजी हैं। सबसे अच्छा शल्य-चिकित्सक वह है जो अपने देशकी मुक्तिके लिए सबसे अच्छा उपाय करे। हैजे, प्लेग और मलेरियासे हजारों लोग मरते हैं, लेकिन मुझे इसकी कोई परवाह नहीं है। किन्तु अगर एक व्यक्ति भी गुलामीकी जिन्दगी बिता रहा है तो वह मेरे लिए बहुत दुःखकी बात है।

अगर लोग अगले दिसम्बर माहके बाद भी ऐसा महसूस नहीं करने लगते तो मुझे तो लगता है, जैसे मैं आत्म-हत्या कर लूँगा। किन्तु मैं ऐसा नहीं करूँगा, क्योंकि

१. यह समारोह ब्रैडलॉ हालमें हुआ था और इसकी अध्यक्षता लाला लाजपतरायने की थी। भाषण मूलतः हिन्दीमें दिया गया था किन्तु हिन्दी विवरण उपलब्ध न होनेके कारण अंग्रेजीसे ही अनुवाद करके दिया जा रहा है।

मुझे यह पसन्द नहीं कि कोई अपना अस्तित्व आप ही मिटा ले। मैं तो सिर्फ एक ही अवसरको ऐसा मानता हूँ, जब मनुष्यको अपने-आपको मिटा देना चाहिए। मेरा तात्पर्य उस अवसरसे है, जब कोई पुरुष परायी स्त्रीपर कुदृष्टि डाले। स्त्रीके लिए ऐसा अवसर मैं तब मानता हूँ जब वह देखे कि कोई पुरुष उसके साथ दुराचार करनेपर तुला हुआ है। ऐसे समयमें अपने-आपको मिटा देना ही उसके लिए अच्छा है। भारतीय स्त्रियाँ सीताकी तरह सती-साध्वी हैं।

अभी मैंने 'वन्देमातरम्' का सुन्दर गायन सुना। १९१५ में मैंने यही गायन मद्रासमें सुना था।[1] तभी मैंने अपने-आपसे पूछा था कि यह गीत हमारे लिए वास्तवमें क्या अर्थ रखता है। क्या हमें इस तरह गानेका अधिकार है? हम भारतमाताको नमन करते हैं और उससे सुरक्षाकी माँग करते हैं। लेकिन आज भारत किस अवस्थामें पड़ा हुआ है? उसकी लाखों सन्तानोंको सिर्फ एक ही समय भोजन मिलता है, और सो भी नमक और रोटीके अलावा और कुछ नहीं। उसके साथ खानेके लिए सब्जी वगैरह कुछ भी उन्हें मयस्सर नहीं। क्या हम ईमानदारीके साथ ऐसा कह सकते हैं कि हमारी मातृभूमि हमें सुरक्षा देती है? हम अपनी मातृभूमिकी अयोग्य सन्तान हैं।

पेशावरका एक छः फुट ऊँचा हट्टा-कट्टा हिन्दू मेरे सामने आकर खड़ा हो गया और शिकायत करने लगा कि सीमा प्रान्तके मुसलमानोंने उन लोगोंकी स्त्रियोंके साथ दुर्व्यवहार किया। क्यों नहीं वह अपने घरकी स्त्रियोंकी रक्षा करते हुए मर मिटा? आज सुबहकी ही बात है कि एक व्यक्तिने मुझसे कहा कि अगर आप मुसलमानोंको मित्र बनाना चाहते हैं तो यह आपका पागलपन ही है। मैंने जवाब दिया कि मैं मुसलमानोंको इस कारण मित्र बनाना चाहता हूँ कि मुझमें साहस है। अगर कुछ मुसलमान कुछ बुरे काम करते हैं तो इस कारण सभी मुसलमानोंको उसके लिए दोषी ठहराना उचित नहीं है। यही बात हिन्दुओंके साथ भी लागू होती है, जो अस्पृश्योंके प्रति डायरवादी व्यवहार करनेके दोषी हैं। अगर पंजाबमें मुसलमानोंकी आबादी पचास प्रतिशतसे अधिक हो तो हिन्दुओंको उनसे डरनेकी जरूरत नहीं है। अगर हिन्दू मुसलमानोंके साथ कोई ज्यादती या बेईमानी नहीं करना चाहते तो फिर उन्हें मुसलमानोंसे डरना ही क्यों चाहिए? सभी प्राचीन सन्त-महात्माओंकी सीख यही है कि भला करोगे तो भला पाओगे और बुरा करोगे तो उससे भी बुरा पाओगे। चाहे दयानन्द[2] हों, या रामानुज अथवा मध्वाचार्य, सभीकी सीख यही है। अगर हिन्दू लोग ईमानदारीका व्यवहार करना चाहते हैं तो उन्हें किसीसे डरनेकी कोई जरूरत नहीं है। यही बात मुसलमानों और सिखोंपर भी लागू होती है।

१. देखिए खण्ड १३, पृष्ठ. ६८ ।

२. स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८२४-८३); आर्यसमाजके संस्थापक ।

लालाजीने अपने भाषणके अन्तमें कहा था कि अगले दिसम्बरसे पहले ही वह समय आ रहा है, जब शायद मैं और लालाजी तथा दूसरे लोग भी गिरफ्तार कर लिये जायें। उस हालतमें आपको आगजनी और रेलकी पटरियाँ उखाड़नेपर आमादा नहीं हो जाना चाहिए, अंग्रेज स्त्रियोंको बुरी दृष्टिसे नहीं देखना चाहिए, और न हड़ताल करनी चाहिए। अगर आपने ऐसा-कुछ किया तो उसका मतलब होगा, आप लोग कायर हैं। सच्चा वीर वह है जो शान्त है, अहिंसापर दृढ़ है। आपको अपने क्रोधपर नियन्त्रण रखना चाहिए, आपमें से हरएकको अपना नेता, अपना मार्ग-दर्शक आप ही बनना चाहिए। फिर तो स्वराज्य मिलकर रहेगा। आपको प्रह्लादका दृष्टान्त याद रखना चाहिए। उस बहादुर किशोरने तलवारधारी हिरण्यकशिपुके आगे झुकनेसे इनकार कर दिया था, क्योंकि उसका राम उसके साथ था।

अगर आपका कोई नेता क्रोधी या असहिष्णु बन जाये तो उसे नेतृत्वसे हटा देना चाहिए। आपको अपने भीतर वर्ड्सवर्थके "हैपी वारियर" ("प्रसन्नचित्त योद्धा") के गुण उतारने चाहिए। फिर तो स्वराज्य पाना कोई मुश्किल काम नहीं रह जायेगा।

स्वराज्यकी दूसरी शर्त है, चरखा। पंजाबमें लोग कहते हैं कि सूत कातना तो औरतोंका काम है। लेकिन इंग्लैंडमें जिसने कताई-यन्त्र ईजाद किया वह हारग्रीव्ज नामक एक पुरुष ही था। इसी तरह कहते हैं, खाना बनाना औरतोंका काम है। पेरिसके एक होटलमें एक रसोइया है जो पाक-शास्त्रका विशेषज्ञ है। वह पाक-कलाका किसी भी स्त्रीसे अधिक बड़ा जानकार है। उसे भारतके वाइसरायके बराबर तनख्वाह मिलती है। मैं नहीं जानता कि वाइसराय महोदयको जितनी मोटी तनख्वाह मिलती है, उसके योग्य वे हैं या नहीं, लेकिन यह अवश्य जानता हूँ कि पेरिसके उस रसोइयेको जितनी तनख्वाह मिलती है, उसके योग्य वह है। आपको याद रखना चाहिए कि कातना आपका कर्त्तव्य है। जिस क्षण आप चरखेका त्याग कर देंगे, समझ लीजिए, उसी क्षण आपने अपने धर्मका भी त्याग कर दिया। अगर आप भारतको स्वतन्त्र कराना चाहते हैं तो चरखेका प्रयोग कीजिए। जबतक आप चरखेको नहीं अपनाते, आप देशकी गरीबी दूर नहीं कर सकते। स्वदेशी बननेका मतलब है शुद्ध स्वदेशी वस्त्रोंका उपयोग करना, न कि मिलके सूतसे तैयार वस्त्रोंका। आपके राष्ट्रीय स्कूलोंमें कताई और बुनाई सिखाई जाती है। जब सविनय अवज्ञा प्रारम्भ होगी, उस समय पंजाबके हर विद्यार्थीको खद्दर पहनना अपना कर्त्तव्य मानना चाहिए।

लालाजीने मुझे दो शब्द विद्यार्थियोंसे कहनेका हुक्म दिया है। मैं पंजाबके विद्यार्थियोंको याद दिलाना चाहता हूँ कि आपको ब्रिटिश झंडेको सलामी देनेके लिए मजबूर किया गया है। आपको एक-एक दिनमें अठारह-अठारह मील चलनेको विवश किया गया है। मार्शल लॉ के दौरान आपका तरह-तरहसे अपमान किया गया। अतः आपको विदेशी कपड़ेका इस्तेमाल करना हराम समझना चाहिए। अब आपको चरखा और करघा अपना लेना चाहिए।

महात्माजीका भाषण समाप्त होनेपर लाला लाजपतरायने धन्यवाद देते हुए कहा कि आपने इतनी दूर आकर हमारे सामने बोलनेका जो कष्ट किया, उसके लिए हम आपके आभारी हैं।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १९–११–१९२१

१७८. टिप्पणियाँ

चरखेकी उपयोगिता

दिल्लीमें अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति द्वारा स्वीकृत सविनय अवज्ञाके प्रस्तावमें स्वदेशीके सम्बन्धमें जो शर्तें रखी गई हैं उनका बड़ा विरोध किया गया था। यह विरोध इन दो शर्तोंके विषयमें था — एक, सविनय प्रतिरोध करनेवाला, उस प्रस्तावकी योजनाके अनुसार, चरखा कातनेका ज्ञान रखनेके लिए तथा सिर्फ हाथ-कती और हाथ-बुनी खादी ही पहननेके लिए बाध्य है; और दूसरे यह कि जो जिला या तहसील सामूहिक सविनय अवज्ञा करना चाहे उसे अपनी जरूरत-भरका तमाम सूत और कपड़ा अपने हाथसे जरूर तैयार करना चाहिए। इस विरोधसे यह मालूम हो गया कि लोग अभीतक चरखेका महत्व नहीं समझ पाये हैं। भारतभूमिसे दरिद्रताको देश-निकाला देनेवाली अगर कोई वस्तु है तो वह चरखा ही है। कंगाल लोग खुशी-खुशी कष्ट-सहन नहीं कर सकते। उन्हें समृद्धिकी पीड़ाका इतना ज्ञान नहीं है कि वे स्वेच्छापूर्वक भूख-प्यास अथवा दूसरे शारीरिक कष्ट-सहन करनेके सुखको समझ सकें। उनकी दृष्टिमें तो स्वराज्यका इतना ही अर्थ हो सकता है कि वे बिना भीख माँगे अपना पेट पालनेके लायक हो जायें। उनके हृदयमें अपनी वर्तमान स्थितिके प्रति असन्तोषकी भावनाको जाग्रत करना परन्तु उन्हें उसका कारण दूर करनेके साधन न देना, मानो विनाश, अराजकता, मारकाट और लूटमारको निश्चित रूपसे बुलावा देना है। और इनके खास शिकार होंगे खुद वे ही बेचारे दीन-दरिद्र। बस, अकेला चरखा ही उनके लिए अपनी आमदनीका दूसरा सहायक साधन हो सकता है। बुनाईके द्वारा बहुतेरे, और धुनाईके द्वारा कुछ कम लोग, अपनी गुजरके लायक पूरी आमदनी कर सकते हैं। लेकिन कपड़ा बुनाईकी कला अभी नष्ट नहीं हुई है। कई लाख आदमी कपड़ा बुननेकी विद्या जानते हैं। लेकिन ठीक अर्थोंमें सूत कातना तो, बहुत ही कम लोग जानते हैं। हाँ, यह सच है कि आज हजारों लोग चरखा घुमा रहे हैं; परन्तु असलमें सूत कातनेवाले लोग सिर्फ थोड़े ही हैं! चारों ओर पुकार मच रही है कि हाथ-कता सूत अच्छा नहीं आता — उससे ताना अच्छा नहीं बनता। जिस प्रकार अध-सिकी रोटी, रोटी नहीं होती उसी प्रकार खराब कता कमजोर धागा सूत नहीं हो सकता। देशमें आज जो सूत कत रहा है उसमें सुधारकी अभी बहुत जरूरत

है और इसके लिए अभी हजारों आदमियोंको अच्छी तरह सूत कातना जाननेकी जरूर है, जिससे वे अपने-अपने जिलोंमें अच्छे किस्मका सूत कतवा सकें। अतः जो लोग स्वराज्यकी स्थापनाके लिए सविनय अवज्ञा करें उन्हें अवश्य ही सूत कातना जानना चाहिए। गौर कीजिए, उनसे यह नहीं कहा गया है कि आप रोज सूत काता करें। हाँ, अगर वे ऐसा करें तो 'अधिकस्याधिकं फलम्।' परन्तु उन्हें सूत — अच्छा कसदार सूत — कातना जरूर आना चाहिए। विरोधके होते हुए भी उस संशोधनका एक बहुत बड़े बहुमतसे नामंजूर किया जाना मेरी दृष्टिमें तो एक शुभ शकुन है। उसे अस्वीकार करनेके पक्षमें एक दलील यह पेश की गई थी कि सिख भाई चरखा चलाना एक हीन काम समझते हैं और कपड़ा-बुनाईको नीची निगाहसे देखते हैं। मुझे जरूर यह आशा है कि यह खयाल उस सारी बहादुर जातिके खयालको जाहिर नहीं करता है। जो जाति एक ईमानदारीकी रोजी देनेवाले पेशेको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखती है, वह एक ऐसी जाति है जो अपना कदम पतनकी ओर बढ़ा रही है। यदि अबतक सिर्फ औरतें ही सूत कातती रही हैं तो इसका सबब यह है कि उन्हें फुरसत अधिक रहती है, यह नहीं कि वह एक नीचा काम है। इसके पीछे खयाल यह है कि जो शख्स तलवार चलाता है वह चरखा नहीं चलायेगा; किन्तु यह तो सैनिकके व्यवसायका विकृत अर्थ है। जिस तरह सरकारकी नौकरी करनेवाले सैनिक देशकी सेवा नहीं करते, उसी तरह जो तलवारसे अपनी रोजी कमाता है वह भी अपने समाजकी सेवा नहीं करता। तलवार चलाना तो एक अस्वाभाविक व्यवसाय है और सभ्य जाति केवल असाधारण अवसरोंपर अपनी रक्षा-भरके लिए उसका अवलम्बन करती है। दूसरोंको मारनेका धन्धा करके पेट पालनेकी अपेक्षा चरखा चलाकर पेट भरना हर हालतमें ज्यादा मर्दानगीका काम है। औरंगजेब टोपियाँ सीता था। क्या वह कम बहादुर था? सिख भाइयोंके जिस गुणकी हम कद्र करते हैं वह दूसरोंको मारनेकी उनकी सामर्थ्य नहीं है। स्वर्गीय सरदार लछमनसिंहको आनेवाली पीढ़ियाँ 'वीर' मानेंगी; क्योंकि उन्हें मरनेका मर्म मालूम था। ननकाना साहबके महन्तको आनेवाली पीढ़ियाँ 'खूनी' कहेंगी। अतः मुझे आशा है कि कोई भी सूत कातनेके कामको हीन मानकर इस सुन्दर जीवनदायिनी कलाको सीखनेसे मुँह नहीं मोड़ेगा।

मिलका कता बनाम हाथकता

हरएक सत्याग्रही तहसील या जिलेको अपना कपड़ा खुद ही तैयार करना चाहिए, इस शर्तपर प्रहारके मूलमें द्वेषके अतिरिक्त कुछ अन्य भी कारण थे, और अगर इस शर्तसे हमारा अभिप्राय यह हो कि हरएक तहसीलको सामूहिक सविनय अवज्ञामें शामिल होना चाहिए तो उस शर्तकी पूर्ति होना असम्भव होगा। किन्तु यह उम्मीद तो कोई भी नहीं करता कि इन बाकी बचे कुछ महीनोंमें हरएक तहसील सविनय अवज्ञा शुरू करनेके लिए और इसलिए अपनी जरूरतें खुद ही पूरी करनेके लिए तैयार हो सकेगी अथवा हर जिला तैयार हो सकेगा। बस, कुछ इनी-गिनी थोड़ी-सी तहसीलें ही तैयार हो जायें, तो काफी हैं। किन्तु अगर कुछ तहसीलें भी पूरी तरहसे स्वावलम्बी बनकर स्वराज्य लेनेके लिए तैयार न हो सकीं तो इस सालमें स्वराज्य लेना असम्भव ही

समझना चाहिए। जो तहसील अपना अन्न खुद ही पैदा करती है, अपना सूत खुद ही कातती है, अपना कपड़ा खुद ही बुनती है, और अपनी स्वाधीनताके लिए मुसीबतें उठानेके लिए भी तैयार है, वही वास्तवमें इस मालमें स्वराज्यकी स्थापनाके लिए तैयार है। और अगर एक तहसीलने भी अपने कार्यको पूरा कर लिया तो वह एक दीपककी तरह तमाम मकानको अपनी रोशनीसे जगमगा देगी। मैं तो सफलतापूर्वक सविनय अवज्ञा करना तबतक नामुमकिन ही समझता हूँ जबतक लगभग आदर्श परिस्थितियोंमें कोई ऐसा प्रयत्न न किया जाये जो दूसरे प्रान्तोंके लिए मार्ग-दर्शक हो। इसमें कोई शक नहीं कि भारतके कई भाग ऐसे हैं जहाँ ऊनी तथा सूती कपड़ोंके सूतकी कताई पूरी तरह चरखेपर ही होना फिलहाल नामुमकिन है। किन्तु जब उन भागोंमें, जहाँ फिलहाल यह काम हो सकता है, पूरी तरहसे संगठन हो जायेगा तब उन दूसरे भागोंके विषयमें शर्त कुछ ढीली कर देनेमें कुछ कठिनाई न होगी।

हिन्दुस्तानी

अखिल भारतीय कांग्रेस महासमितिमें हिन्दुस्तानी — अर्थात् सर्व-साधारणकी भाषा — बड़ी तेजीसे विचार-प्रकाशनका माध्यम होती जा रही है। समितिमें बहुतसे सदस्य अंग्रेजीका एक भी शब्द नहीं समझते और मद्रास प्रान्तके सदस्य हिन्दुस्तानी नहीं समझते। बंगालके सदस्य कठिनाईसे हिन्दुस्तानी समझते हैं। वे हिन्दी-भाषामें बोलनेकी आवश्यकताको मानते भी हैं और जब समितिकी कार्यवाही हिन्दुस्तानीमें चल रही थी तब उन्होंने उसपर नाक-भौं नहीं चढ़ाई। किन्तु द्रविड़-भाइयोंके लिए तो वह एक प्रकारका सचमुच त्याग ही था। गत अधिवेशनमें मद्रासका सिर्फ एक ही सदस्य उपस्थित था और मलाबारसे भी अधिक लोग नहीं आ सके थे। किन्तु जब सब द्रविड़ सदस्य उपस्थित होंगे तब तो सचमुच बड़ी मुश्किल होगी। परन्तु फिर भी उसे दूर करनेका इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग ही दिखाई नहीं देता कि द्रविड़ भाई जितनी जल्दी हो सके काफी हिन्दुस्तानी सीख लें। जो लोग अंग्रेजी नहीं जानते उनसे तो यह अपेक्षा की नहीं जा सकती कि वे अंग्रेजी पढ़ लेंगे और अब तो लोक-संस्थाओंकी नीति अधिकाधिक यही होनी चाहिए कि उनमें ऐसे ही सदस्य रहें जो अंग्रेजी न जानते हों। इसलिए, हिन्दुस्तानीके भावनात्मक अथवा राष्ट्रीय महत्वकी बात छोड़ दें तो भी यह दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक आवश्यक मालूम होता जा रहा है कि तमाम राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओंको हिन्दुस्तानी सीख लेनी चाहिए और राष्ट्रकी तमाम कार्यवाही हिन्दीमें ही की जानी चाहिए। किन्तु, यद्यपि गत अधिवेशनमें यह बात तय हुई थी; तथापि द्रविड़ और बंगाली सदस्य यह बात सुनना ही नहीं चाहते थे कि उसके अनु-सार समिति कोई कड़ा नियम बना दे। हाँ, वे इतना तो खुशीसे सहन कर लेते हैं कि जिसका जी चाहे वह हिन्दुस्तानीमें बोले; परन्तु वे यह पसन्द नहीं करते कि समिति ऐसा प्रस्ताव स्वीकार करके लोगोंको उसके लिए मजबूर करे। आखिर यह बात कार्यकारिणी समितिपर छोड़ दी गई। किन्तु इस दुविधाके होते हुए ऐसे कोई सुझाव देना कार्यकारिणी समितिके लिए बहुत कठिन है जिसे सदस्य एकमतसे मंजूर कर लें।

श्री त्यागीका पत्र

मैं समझता था कि श्री त्यागीकी वीरतापर सन्देह प्रकट करते हुए मैंने जो-कुछ लिखा[1] था उससे उत्पन्न विवाद मैं समाप्त कर चुका हूँ। लेकिन, बन्दीके रूपमें मेरठ जाते हुए उन्होंने मुझे जो पत्र लिखा है उसका अविकल रूपान्तर पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है:

> मैं 'यंग इंडिया' का वह अंक नहीं देख सका था जिसमें आपने अपने प्रिय मित्र मौलाना शौकत अलीकी हिमायत की है। भाग्यसे उस समय जेलमें होनेकी वजहसे वह मुझे कुछ देरसे मिला। मैंने यह दुःखद समाचार देखा जिसमें मेरे लिए आपने डरपोक और कायर शब्दोंका प्रयोग किया है। अपने सम्बन्धमें इन विशेषणोंका प्रयोग हुआ देखकर मुझे जितनी पीड़ा हुई है मैं आपसे उसका बयान नहीं कर सकता। मैं अपने मनको यह समझाकर तसल्ली देना चाहता हूँ कि आपने जो-कुछ भी लिखा है वह नेकनीयतीसे ही लिखा है। लेकिन मेरी आत्मा मानती ही नहीं। आपकी राय यह प्रतीत होती है कि थप्पड़ खानेके बाद मुझे अदालतसे बाहर चले जानेकी कोशिश करनी थी और उस कोशिशका फल भोगनेके लिए तैयार रहना था। मैं यह मानता हूँ कि मैं ऐसा कर सकता था। लेकिन यह निश्चित है कि ताकतके नशेमें चूर मजिस्ट्रेट मेरे ऊपर और भी अधिक हिंसाका प्रयोग करता और इस बातकी बहुत संभावना थी कि अधिक हिंसा देखकर दर्शक मजिस्ट्रेटपर हाथ छोड़ बैठते। उसका परिणाम यह होता कि गोली चल जाती और मेरा संयम टूटनेके कारण मेरे सैकड़ों देशवासी गोलियोंसे मारे जाते। केवल इसी विचारने मुझे रोके रखा। लेकिन फिर भी मैं बिल्कुल ही निष्क्रिय नहीं रहा। क्या आपने वह पत्र अभीतक नहीं देखा है जो इस घटनाके बाद ही मैंने मजिस्ट्रेटको लिखा था? हिंसाके प्रयोगके फौरन बाद मजिस्ट्रेटने जब मुझसे यह पूछा कि क्या मुझे कोई बयान देना है, तो मैंने तेज आवाजमें जवाब देते हुए यह कहा था, "मैं ऐसी अन्यायी और कानून न माननेवाली अदालतके सामने बयान देनेसे इनकार करता हूँ जो खुद मुलजिमपर हाथ छोड़ती है।" क्या यह कथन इस बातका सबूत नहीं है कि मैं दबा नहीं था? उस समय मैंने जो-कुछ भी किया वह देशकी भलाईके लिए ही किया था और मैंने मनमें कभी यह सोचा भी नहीं था कि वह मेरे कार्यसे नाखुश होगा। मैं ही जानता हूँ कि थप्पड़ खानेके बाद शान्त रह सकना मेरे लिए कितना मुश्किल था। यदि आप अब भी यह सोचते हैं कि मैंने गलती की तो आप मुझे क्षमा कर दें। देशको मेरा श्रद्धावनत प्रणाम।

१. देखिए "टिप्पणियाँ", १३–१०–१९२१ का उप-शीर्षक "विपरीत दृश्य" तथा "टिप्पणियाँ" २०–१०–१९२१ का उप-शीर्षक "मजिस्ट्रेटकी क्षमा-याचना" और "अभियुक्तका बयान"।

इसमें सन्देह नहीं कि श्री त्यागीके जो देशवासी वहाँ मौजूद थे और जिन्होंने उनका आचरण देखा था वे यह समझ गये थे कि उन्होंने जो-कुछ किया है वह देशके हितके लिए ही किया है। चूँकि मुझे यह पता नहीं था कि उन्होंने बादके अपने आचरणसे मजिस्ट्रेटको यह जता दिया था कि उनकी विनय एक वीर पुरुषकी विनय है अतः मैंने एक दूर बैठे आलोचकके रूपमें तथ्योंका जिस रूपमें वे मेरे पास भेजे गये थे उसी रूपमें विश्लेषण कर दिया था; जिससे इस बहादुर देशवासीके प्रति अनचाहे ही घोर अन्याय हो गया है और मैं उनसे हजार-हजार बार माफी माँगता हूँ। मैं यह जानता हूँ कि हर हफ्ते जिन तथ्यों अथवा कार्योंकी मैं सराहना अथवा आलोचना करता हूँ उनका चुनाव मैं बड़ी सावधानीके साथ करता हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि किसी निर्दोष व्यक्तिपर दोषारोपण और किसी अपात्रकी प्रशंसा करनेसे मैं कितना बचना चाहता हूँ। परन्तु यह बात अब मेरे सामने और भी स्पष्ट होती जा रही है कि ऐसे पत्रकारका काम कितना कठिन होता है जो केवल सच्ची खबरें ही देना चाहता है और सही तरीकेसे लोकमतका निर्माण करना चाहता है।

अहिंसाका व्यवहार

पाठक स्वभावतः अनुमान कर लेंगे कि मैंने श्री त्यागीके सम्बन्धमें जो अनुच्छेद लिखा था उसपर मेरे पास और अधिक आपत्तियाँ अवश्य आई होंगी। इनमें से अधिकांशका उत्तर मैं इस सम्बन्धमें दूसरी बार की गई उस चर्चामें दे चुका हूँ जिसमें मैंने उनसे क्षमा याचना की है।

किन्तु मोतीहारीके एक सज्जनने लिखा है कि वे मेरी आलोचनासे भ्रममें पड़ गये हैं और उनकी समझमें नहीं आता कि अगर ऐसा अवसर उनके सामने उपस्थित हो तो उन्हें क्या करना चाहिए। मैं स्वीकार करता हूँ कि इसके लिए कोई निश्चित नियम बनाना कठिन है। कायरता और शूरता, द्वेष और प्रेम, असत्य और सत्य ये सब हृदयके गुण हैं। सद्‌गुणका झूठा दिखावा करना आसान होता है और बाहरी मनुष्यके लिए उस गुणको दूसरेके हृदयमें खोज लेना हमेशा ही कठिन होता है। सबसे अधिक निरापद नियम तो यह है कि मनुष्य जो-कुछ कहता है उसीको तबतक सच माना जाये जबतक अन्यथा प्रमाण न मिले। श्री त्यागीके व्यवहारके सम्बन्धमें मुझे अधूरी खबरें मिली थीं और उन्हींके आधारपर मैंने उनके व्यवहारके औचित्य और अनौचित्यका निर्णय किया था। नीचे दी हुई मिसालोंसे यह जाना जा सकता है कि हमें खुद किस तरह बरतना चाहिए। प्रह्लादको रामनाम लेनेकी मनाही कर दी गई थी। जबतक मनाही नहीं की गई थी तबतक वह चुपचाप अपने रास्ते चलता जाता था; परन्तु जब उसे रामनाम लेनेकी मनाही की गई तब उसने उसका प्रतिरोध किया और अत्यन्त कठोर सजाका आह्वान करके हँसते-हँसते उसे सहन किया। डैनियल पहले तो अपने घरके कोनेमें ही पूजा-पाठ किया करता था; परन्तु जब उसे ऐसा करनेसे रोका गया तब उसने झट अपने घरका दरवाजा खोल दिया, खुल्लम-खुल्ला ईश्वरकी पूजा करने लगा और शेरकी गुफामें मेमनेकी तरह डाल दिया गया। हजरत अली अपने विरोधीसे ज्यादा जोरावर थे। उनके विरोधीने उनपर

थूक दिया तो उन्होंने उसका हाथ चूम लिया; बहादुर अली जानते थे कि अगर वे अपने विरोधीको इसका जवाब देंगे तो उनका ऐसा करना मानो, क्रोधके वश हो जाना होगा। परन्तु मैं यह जानता हूँ कि हम इन प्राचीन साधु-संतोंकी श्रेणीमें खड़े नहीं हो सकते क्योंकि हममें न तो उनके जैसा विशुद्ध शौर्य है, न उनकी जैसी पवित्रता और न उनकी जैसी सम्यक् दृष्टि। हम भय और क्रोधको नहीं जीत पाये हैं। हम तो अभी अहिंसाका पाठ पक्का करने और निर्भयता सीखनेका यत्न कर रहे हैं। हमारी अहिंसामें तो अभी मिलावट है। हमारी अहिंसा अभी अधिकांशमें दुर्बलता-मूलक और अल्पांशमें सबलता-मूलक है। हमारे लिए तो सबसे अधिक निरापद नियम यही है कि अपनेको बलवान् बनाने और अपने बलका साक्षात्कार करनेके प्रयत्नमें हमें जितने कष्ट सहन पड़ें उतने कष्ट सहें। अतएव जब कोई मजिस्ट्रेट मुझे थप्पड़ लगाये तब मुझे ऐसा बरताव करना चाहिए जिससे उसे मुझे दूसरा थप्पड़ लगाना पड़े। हाँ, यह बात जरूरी है कि मैं उसे पहले थप्पड़के लिए अपनी तरफसे कोई कारण न दूँ। यदि मैंने बदतमीजी की हो तो माफी माँग लूँ, गुस्ताखी की हो तो नम्र हो जाऊँ और गाली दी हो तो शान्त हो जाऊँ। अदालतमें तो मुझे मुनासिब तरीकेसे ही बरतना चाहिए। कहनेकी जरूरत नहीं कि मैं कभी तो मुनासिब तरीकेसे पेश आऊँ और कभी ना-मुनासिब तरीकेसे, यह नहीं हो सकता। अदालतमें हमारा वही तर्ज-तरीका अच्छा हो सकता है जो स्वाभाविक हो। अतएव अगर हमें भरसक जल्दी किला सर करना हो तो अपने कामोंमें हमसे जो-कुछ भूल हो वह अहिंसाकी ही तरफ होनी चाहिए।

नशाबन्दीका काम अपराध है!

एक मित्रने नीचे लिखी टिप्पणी भेजी है जिससे पता चलता है कि जनताके प्रति कर्त्तव्यके सम्बन्धमें अधिकारियोंकी धारणा कैसी है:

"सरकारने . . . मुकदमोंका जो सिलसिला-सा चला दिया है वह हमारी बढ़ती हुई राष्ट्रीय शक्तिका . . . प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करता है। हम ज्यों-ज्यों प्रगतिके मार्गपर अग्रसर हो रहे हैं, त्यों-त्यों दमन भी बढ़ता जा रहा है। . . . अबतक देशके किसी भी भागमें केवल नशाबन्दीका काम करनेके आरोपपर एक भी मुकदमा नहीं चलाया गया था। अब इसका सौभाग्य बिहारको प्राप्त हुआ है। सरकारके पापी स्वरूपका गिधौरके महाराजा बहादुरके भतीजे कुँवर कालिकाप्रसाद सिंहके खिलाफ चलाये गये मुकदमेसे अधिक अच्छा उदाहरण दूसरा नहीं मिल सकता। वे जमानत देनेसे इनकार करके एक सालके लिए जेल चले गये हैं। उनके अभियोग पत्रमें कहा . . . गया था:

चूँकि पुलिसकी ३ अक्तूबर, १९२१की सूचनासे यह प्रतीत होता है कि तुम कालिकाप्रसाद सिंह उर्फ हीराजी पुत्र महुलीगढ़के राव महेश्वरी प्रसाद सिंह, थाना जमुई, . . . असहयोग आन्दोलनके नेता हो और तुम्हारा मुख्य उद्देश्य आबकारीके अधीन आनेवाली वस्तुओंकी खरीद-फरोख्त रोकना है और चूँकि

तुम इस उद्देश्यकी प्राप्तिके अपने प्रयासमें आबकारीवाली वस्तुओंकी दूकानोंके सामने धरना देनेके लिए दूसरे लोगोंको बाहरसे . . . बुला रहे हो और इस काम-में लगा रहे हो और चूँकि . . . तुम्हारे व्यक्तिगत आचरणके कारण शान्ति और सार्वजनिक व्यवस्था भंग होनेकी आशंका है . . . इसलिए मैं तुमको इस नोटिस द्वारा जाब्ता फौजदारीकी दफा १०७के अधीन हुक्म देता हूँ कि तुम १९–१०–२१को मेरे सामने इसका कारण बताओ कि तुमसे एक वर्षतक शान्ति कायम रखनेके लिए १००० रु० का मुचलका क्यों न माँगा जाये और ५००–५०० रु०की दो जमानतें क्यों न ली जायें।

इसपर कुछ भी टिप्पणी करना व्यर्थ है। कुँवर साहबने अदालतमें बड़ा ही जोर-दार वक्तव्य दिया जिसमें डराने-धमकानेके आरोपका खण्डन करते हुए उलटे सरकारके बारेमें यह कहा गया था कि हिंसाके सब कार्य कानून और व्यवस्थाके तथाकथित रक्षकों द्वारा ही किये गये हैं।

क्या खून-खराबी आवश्यक है?

एक सज्जन लिखते हैं:

"क्या आप अपने हृदयमें यह विश्वास नहीं रखते कि स्वराज्य अन्ततः बिना खून-खराबी किये कभी प्राप्त नहीं हो सकता? क्या यह अहिंसात्मक आन्दोलन वर्तमान समयके अनुकूल महज ऐसा उपाय नहीं है, जिससे लोगोंको आगेकी मारकाट और सशस्त्र क्रान्तिकी अवस्थाके लिए संगठित और तैयार किया जा सके?"

प्रश्न बिलकुल सीधा-सादा है। इससे जाहिर होता है कि अब भी कुछ लोग वर्तमान आन्दोलनकी सत्यतामें विश्वास नहीं करते। दुनियामें ऐसा कोई सबब नहीं है जो मुझे ऐसा कहनेसे रोक सकता हो कि अहिंसा हिंसाकी तैयारीके लिए है। जब मैंने राज्यके कानूनोंके खिलाफ कितने ही गुनाह किये हैं, तब मुझे ऐसा कहनेमें हिचकिचानेकी क्या जरूरत है कि वर्तमान आन्दोलन तो हिंसात्मक कार्योंकी पेशबन्दी है? सच बात तो यह है कि अकेला मैं ही निःशस्त्र — रक्तहीन — क्रान्तिको पूर्णतः सम्भव मानता हूँ सो नहीं, बल्कि कितने ही दूसरे लोग भी हिन्दुस्तानको आजाद करनेके लिए 'अहिंसा' में पूर्ण विश्वास करते हैं। अली-भाई जो बात कहते हैं वही उनके दिलमें होती है और जो बात उनके दिलमें होती है उसीको वे कहते हैं। वे शरीरबलके उपयोगको अर्थात् किसी हालतमें हिंसाको, जायज मानते हैं; लेकिन उनका यह विश्वास है कि हिन्दुस्तानकी परिस्थितिको देखते हुए यहाँ शरीरबलके उपयोगकी आव-श्यकता नहीं है। जब हम "एकता और अनुशासन" प्राप्त कर लेंगे तब हम तीस करोड़ लोग, एक लाख अंग्रेजोंके विरुद्ध हिंसा करना अपने गौरवके प्रतिकूल और नामर्दानगीका काम समझेंगे। हमारे मनमें अभीतक जो बेकार क्रोधकी भावना बनी हुई है, उसका कारण यह है कि हममें धोखे और दहशतके मौकोंपर विचारकी

सम्बद्धता, चित्तकी शान्ति और उदारता कायम नहीं रहती। और मैंने जो यह कह दिया है कि जब हिंसा भारतका धर्म हो जायेगी तब मैं हिमालयमें जाकर शरण लूँगा, उसका कारण यही है कि मैं 'अहिंसा' का पूरी तरह कायल हूँ और मानता हूँ कि 'हिंसा' भारतके लिए विनाशकारी है।

क्या खादी चन्दरोजा है?

ये ही सज्जन पूछते हैं:

> **जब आप कार्यक्रमके दूसरे भागोंको हाथमें ले लेंगे और स्वदेशी हलचलकी ओर आपका ध्यान कम हो जायेगा, तब क्या खादीकी कद्र कम न हो जायेगी और लोग फिर महीन कपड़ोंको न पहनने लग जायेंगे? जब विद्यार्थियोंको स्कूलों और कालेजोंसे उठा लेनेकी आँधी चली थी तब सरकारी स्कूलों और कालेजोंको बड़ा धक्का पहुँचा था। परन्तु अब फिर झुंडके-झुंड विद्यार्थी उन्हीं स्कूल-कालेजोंमें घुस रहे हैं। इस उदाहरणसे भी क्या पूर्वोक्त अनुमान नहीं निकाला जा सकता?**

इन सज्जनने मिसाल अच्छी नहीं ढूँढ़ी। शिक्षा-संस्थाओंके बहिष्कारकी हलचलसे सरकारी स्कूलों और कॉलेजोंकी प्रतिष्ठाको जो धक्का पहुँचा है उससे वे चेते ही नहीं हैं। हाँ, जिन्होंने महज आवेशमें आकर बहिष्कार किया था वे फिर अपने पहले स्थानोंपर पहुँच गये हैं। परन्तु जरा सर आशुतोष मुकर्जीके अश्रुपातपर तो नजर डालिए, जो उन्होंने बंगालके कालेजोंकी हानिपर किया है। पत्र-प्रेषकको शायद यह खबर न होगी कि इस हलचलका असर आज भी काम कर रहा है। परन्तु शिक्षा-संस्थाओंके त्यागके आन्दोलनका सम्बन्ध तो अल्पसंख्यक लोगोंसे ही था और फिर वह आन्दोलन अस्थायी-सा भी था। लेकिन स्वदेशीका सम्बन्ध तो प्रत्येक स्त्री-पुरुष और बालकसे है और यह है भी स्थायी। स्वराज्य प्राप्त होनेपर स्वदेशीका त्याग नहीं किया जा सकता; और स्वराज्य तो स्वदेशीके बिना असम्भव ही है। फिर विदेशी महीन कपड़े पहनना महँगा पड़ता है। अतः कुछ लोग यद्यपि केवल दिखावेके लिए ही स्वदेशी कपड़ेका इस्तेमाल करते हैं और अन्तमें उनके फिसल जानेका डर है, मैं इस बातको मानता हूँ, फिर भी बहुत बड़ी संख्या तो पक्के तौरपर स्वदेशीको अपनाये ही रहेगी। स्वदेशी केवल साधन ही नहीं है। यह तो साधन और साध्य दोनों है।

मेरी गिरफ्तारीका असर

पत्र-लेखकका तीसरा प्रश्न है:

> **क्या आप यह नहीं मानते कि सरकार आपको गिरफ्तार करनेमें हमारी नैतिक विजयके कारण नहीं हिचकिचाती है, बल्कि इसलिए हिचकिचाती है कि उसे यह डर है कि आपकी गिरफ्तारीसे देश-भरमें जनसमूह उत्तेजित हो जायेगा और खून-खराबी कर बैठेगा? और क्या आपका यह विश्वास नहीं है कि अगर**

आप जेलमें बन्द कर दिये गये तो यह आन्दोलन रसातलको चला जायेगा या तहस-नहस हो जायेगा?

सरकारके मनका विचार जानना तो कठिन है। मैं तो यह भी नहीं कह सकता कि उसके मन भी है। मेरा अनुमान तो यह है कि सरकार इस आन्दोलनके नैतिक बलको अनुभव करती है और उसे हिंसाके विस्फोटका भय है भी। उसके मनमें अभी तक यह भय है, यह हमारे लिए कोई श्रेयकी बात नहीं है। अगर हम यह सुनिश्चित कर दें कि चाहे कैसी ही उत्तेजनाका मौका क्यों न हो, हम कभी हिंसाका आश्रय न लेंगे तो स्वराज्य हमारे लिए उसी क्षण तैयार है। इस दिशामें बेशक हम काफी रास्ता तय कर चुके हैं, और इसीसे मेरा यह विश्वास दृढ़ होता जाता है कि स्वराज्य इसी सालमें स्थापित हो जायेगा। यदि मेरी गिरफ्तारीसे आन्दोलनकी रफ्तार धीमी पड़ गई या वह नष्ट-भ्रष्ट हो गया तो मुझे अत्यन्त निराशा और व्यथा होगी। परन्तु, इसके विपरीत, मेरी धारणा तो यह है कि मेरी गिरफ्तारीसे तमाम काहिली दूर हो जायेगी और हमारे कदम तेजीसे आगे बढ़ने लगेंगे।

अल्पसंख्यकोंका हित

इस जिज्ञासु पत्र-लेखकका अन्तिम प्रश्न है:

> **इस बातका क्या निश्चय है कि स्वराज्य प्राप्त हो जानेके बाद बहुसंख्यक सम्प्रदाय पारसियों-जैसे अल्पसंख्यक सम्प्रदायोंकी बात चलने देंगे? हम प्रायः अच्छे सम्बन्धोंकी दुहाई तो देते रहते हैं, परन्तु इस बातको परखनेकी पक्की कसौटी क्या है कि स्वराज्यकी संसदमें जातीय पूर्वग्रह हावी नहीं होंगे?"**

यह आन्दोलन अपनी कसौटी आप है। यह आन्दोलन विचारोंके स्वतन्त्र विकास-पर आधारित है। यह आन्दोलन शुद्धिपर आधारित है और यदि कोई विकारोंसे मुक्त राष्ट्र तुच्छ पूर्वग्रहोंसे प्रेरित होकर कार्य करता है तो वह उचित ही समस्त मानव-जातिका धिक्कार पानेके योग्य है। इसके अतिरिक्त हम जो उपाय काममें ला रहे हैं उनसे सभी हितोंको आत्म-रक्षाकी शक्ति प्राप्त हो जाती है। असहयोगका रहस्य ही यह है कि वह कमजोरसे-कमजोर व्यक्तिको आत्म-निर्णय और संरक्षणकी शक्ति दे देता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०–११–१९२१

१७९. अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी

गत ४ नवम्बरको दिल्लीमें वर्तमान अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी आखिरी बार बैठक हुई।[१] दिल्लीके प्रसिद्ध हकीम अजमलखाँकी देखरेखमें सारा प्रबन्ध किया गया था। उनकी तबीयत खराब है और उनको कुछ समयतक आराम करनेकी सख्त जरूरत है। लेकिन वे इस समय आराम करना नहीं चाहते। उनका विशाल भवन और डाक्टर अन्सारीका मकान अच्छी-खासी धर्मशाला हो रहे हैं; हिन्दू और मुसलमान सब मेहमानोंके ठहरनेका इन्तजाम उन्हींमें किया गया है। हिन्दुओंके धार्मिक विचारोंका पूरा खयाल रखा जाता है। जो लोग मुसलमानके घरमें पानी भी नहीं पीना चाहते, उनको अलहदा मकान दिये गये हैं। यहाँ दिल्लीमें हिन्दू-मुसलमान एकतापर पूरा अमल होता दिखाई देता है। यहाँके हिन्दू हकीमजीको कामिल तौरपर और कृतज्ञता-पूर्वक अपना नेता मानते हैं, यहाँतक कि वे अपने धार्मिक हितोंको भी उनको सौंपनेमें नहीं हिचकते।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी जनताकी संसद है, जो हर साल चुनी जाती है। उसका महत्व और प्रातिनिधिक स्वरूप वर्ष-प्रतिवर्ष बढ़ता ही गया है; और आज तो वह उन तमाम बालिग लोगोंकी प्रवक्ता हो गई है, जो चाहे किसी मजहबके पाबन्द हों, या किसी दलसे ताल्लुक रखते हों; परन्तु जो सिर्फ चार आने दे सकते हों, जो कांग्रेसका ध्येय-भर स्वीकार करते हों और जिन्होंने अपना नाम कांग्रेसके रजिस्टरमें दर्ज करा लिया हो। प्रतिनिधियोंमें दरअसल हिन्दू, मुसलमान, सिख और ईसाई लोग प्रायः शायद अपनी जनसंख्याके अनुपातसे ही हैं। उनमें पारसी और यहूदी लोग भी हैं या नहीं, सो मैं नहीं जानता। उनमें स्त्री-प्रतिनिधियोंकी संख्या भी अच्छी है और 'पंचम' प्रतिनिधि भी हैं। अगर किसी समाजके लोगोंके प्रतिनिधि कम हों तो इसमें दोष उस समाजका ही है। तमाम प्रतिनिधि अवैतनिक हैं। वे अपने ही खर्चसे अधिवेशनोंमें शरीक होते हैं और भोजन और निवासका खर्च भी खुद ही उठाते हैं। यह एक अच्छी प्रथा अस्तित्वमें आ गई है कि आमन्त्रक शहर ही प्रतिनिधियोंका अतिथिके रूपमें स्वागत-सत्कार करते हैं। यह उनके निवासियोंकी उदारताका लक्षण है; परन्तु कांग्रेसके नियमोंके अनुसार वे इसके लिए बँधे नहीं है। अधिकांश निर्वाचित प्रतिनिधि तीसरे दरजेमें सफर करते हैं और मामूली सुविधाओंसे सन्तोष कर लेते हैं। इस जन-संसदका भवन था बस एक काम-चलाऊ शामियाना और सजावटका सामान था कुछ पेड़-पौधे। हाँ, कुर्सियाँ और मेजें लगाई गई थीं; परन्तु मैं समझता हूँ, वे इसलिए लगाई गई थीं कि जहाँ पण्डाल था वहाँ धूल उड़ती थी; कुर्सियों और मेजोंके बिना उससे बचाव करने और काफी सफाई रखनेमें कठिनाई होती। सभापतिकी मेजपर पीला रंगा हुआ खादीका कपड़ा

१. देखिए "भाषण: सविनय अवज्ञापर", ४-११-१९२१।

मेजपोशका काम दे रहा था। प्रायः सब प्रतिनिधि — क्या स्त्री और क्या पुरुष — मोटी खादीके कपड़े पहने हुए थे; और कुछ इनेगिने लोग, आजकल जिसे बेजवाड़ाकी महीन खादी कहते हैं, उसके कपड़े पहने थे। पोशाकें सीधी-सादी और हिन्दुस्तानी थीं। इन सब बातोंकी सविस्तार चर्चा मैंने इसलिए की है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, बहुतेरे लोगोंकी दृष्टिमें, भावी स्वराज्य-संसदका नमूना है। यह हिन्दुस्तानकी सच्ची हालतके अनुरूप ही है। इससे भारतभूमिकी दरिद्रता, सादगी और उसकी आबोहवाकी जरूरतोंका थोड़ा-बहुत आभास मिलता है।

अब, इसके साथ जरा शिमला और नई दिल्लीके झूठे दिखावे, आडम्बर और फिजूल-खर्चीका मुकाबला करें।

जैसा बाहर वैसा ही भीतर। राष्ट्रका यह अत्यन्त महत्वपूर्ण काम बहुत ही व्यवस्थित और यथोचित रीतिसे बारह घंटोंमें समाप्त किया गया। कोई भी ऐसी बात नहीं की गई या करने दी गई जिसकी प्रायः पूरी छान-बीन न कर ली गई हो। कार्यकारिणी समिति और सभापतिके मतभेदसे सम्बन्धित प्रस्तावपर पूर्ण शान्तिसे विचार किया गया। कांग्रेस महासमितिने, जो अपने अधिकारोंकी रक्षाके विषयमें सावधान है, कार्यकारिणी समितिके इस निर्णयकी पुष्टि की कि स्वीकृत नियमकी व्याख्या करना सभापतिकी अपेक्षा उसका अधिकार है। फिर भी उसने प्रस्तावमें ऐसी कोई बात नहीं रहने दी जिससे दिमाग लड़ानेपर भी वह सभापति महोदयके प्रति अशिष्टतापूर्ण मालूम हो।

किन्तु इस अधिवेशनका मुख्य प्रस्ताव था सविनय अवज्ञाके सम्बन्धमें, जो यहाँ दिया जाता है:

> **चूँकि राष्ट्रके इस निश्चयकी पूर्तिके लिए कि "हम इस सालके समाप्त होनेसे पहले स्वराज्यकी स्थापना कर लेंगे" — अब एक महीनेसे कुछ ही अधिक समय बाकी रहा है, और चूँकि, अली-भाइयों और अन्य कांग्रेस नेताओंकी गिरफ्तारी और सजाके मौकोंपर राष्ट्रने पूर्ण अहिंसाका पालन करके अनुकरणीय आत्मसंयमकी क्षमताका परिचय दिया है, और चूँकि अब राष्ट्रको यह वांछनीय मालूम होता है कि वह अधिक कष्टसहन और स्वराज्य-प्राप्तिके योग्य नियम-पालनकी क्षमताका परिचय दे, अतः अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी प्रत्येक प्रान्तको यह अधिकार देती है कि वह अपनी जिम्मेदारीपर, प्रान्तीय समिति जिस ढंगसे अधिकसे-अधिक उपयुक्त समझे उस ढंगसे सविनय अवज्ञा करे, जिसमें लगान न देना भी शामिल है।**
>
> **१. व्यक्तिगत सविनय अवज्ञाकी अवस्थामें, प्रत्येक मनुष्यको सूत कातनेका ज्ञान होना चाहिए और कार्यक्रमके अनुसार पूरे तौरपर अपने-अपने कर्त्तव्योंका पालन करना चाहिए अर्थात् ऐसा प्रत्येक मनुष्य विदेशी कपड़ोंका इस्तेमाल बिल्कुल छोड़ चुका हो और केवल हाथका बुना कपड़ा पहनता हो, हिन्दू-मुस्लिम एकताको तथा भारतकी भिन्न-भिन्न मतावलम्बिनी दूसरी जातियोंकी एकताको 'अटल सिद्धान्त'की तरह मानता हो, खिलाफत और पंजाबके अन्यायोंके निरा-**

करण और स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए अहिंसाको पूर्ण आवश्यक मानता हो और अगर वह हिन्दू हो तो उसके निजी व्यवहारसे यह प्रकट होता हो कि वह छुआछूतको राष्ट्रीयतापर एक कलंक समझता हो।

२. सामूहिक सविनय अवज्ञाकी अवस्थामें, एक जिला या तहसील एक 'घटक' समझा जाना चाहिए और उसके अधिकांश निवासी ऐसे होने चाहिए जो पूर्ण स्वदेशीका पालन करते हों, उसी जिले या तहसीलमें हाथके कते सूतसे करघोंपर बुने कपड़े पहनते हों और असहयोगकी दूसरी तमाम बातोंके माननेवाले हों और उनपर अमल करते हों।

यह शर्त है कि कानून-भंग करनेवाला मनुष्य सार्वजनिक चन्देकी रकमसे निर्वाह करनेकी आशा न रखेगा और सजा पानेवाले व्यक्तियोंके परिवारके लोग रुई धुनकर, सूत कातकर, कपड़ा बुनकर तथा दूसरे किसी साधनसे अपना निर्वाह करेंगे।

इसके अतिरिक्त यह भी व्यवस्था की जाती है कि यदि कोई प्रान्तीय समिति दरख्वास्त करे तो कार्यकारिणी समितिको यह अधिकार है कि वह उसे अपना इत्मीनान कर लेनेपर सविनय अवज्ञा भंगकी किसी शर्तसे मुक्त कर दे।

जो लोग सविनय अवज्ञाके लिए बहुत आतुर थे उन्होंने संशोधनोंका तांता बाँध दिया। उन्होंने तरमीमोंकी ताईद बड़ी चतुराईसे की। फिर भी उनके भाषण बहुत ही मुख्तसिर थे। पूर्ण वादविवादके बाद हरएक संशोधन नामंजूर कर दिया गया। वादविवाद करनेवालोंमें मौलाना हसरत मोहानी मुख्य थे। वे सविनय अवज्ञाके लिए बहुत अधीर थे। इससे वे उन कसौटियोंका मर्म नहीं समझ सके, जो भावी कानून-भंग करनेवालेके लिए रखी गई थीं। सिख प्रतिनिधियोंके कहनेसे सिर्फ एक परिवर्धन किया गया। वे अपने विशेष अधिकारोंका बहुत खयाल रखते हैं। ऐसी अवस्थामें अगर हिन्दू-मुस्लिम एकताकी रक्षा की जाती है तो पंजाबमें हिन्दू-मुस्लिम-सिख एकतापर जरूर ही जोर दिया जाना चाहिए। तब दूसरे लोगोंको कहना लाजिम था कि "फिर और दूसरी जातियोंका भी नाम क्यों न दिया जाये?" फल यह हुआ कि "भारतकी भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बिनी दूसरी जातियोंकी एकता" का भी उल्लेख किया गया। यह संशोधन अच्छा है; क्योंकि इससे यह जाहिर होता है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता कोई डरावनी बात नहीं है; बल्कि सब जातियोंकी एकताका प्रत्यक्ष चिह्न है।

इस प्रकार यद्यपि समितिमें पूर्ण मतैक्य रहा है, तथापि इससे यह समझना गलत होगा कि उसमें बाधा या विरोध था ही नहीं। महाराष्ट्र-दल एक सामर्थ्यवान और प्रशिक्षित दल है। उसने इस कार्यक्रमको अपने विश्वासके कारण उतना स्वीकार नहीं किया है जितना कांग्रेसके प्रति अपनी भक्तिके और बहुमत निर्णयके नियमके कारण। उसको इस कार्यक्रममें पूर्ण विश्वास नहीं है; फिर भी वह इसकी आजमाइश कर रहा है। वह हलकी-हलकी बाधाएँ उपस्थित करके अपनी मौजूदगीका अनुभव कराता है। परन्तु उसकी देशभक्ति इतनी जाग्रत है कि वह इन बाधाओंको कार्यनाशकी सीमातक नहीं

पहुँचने देता। श्रीयुत अभ्यंकर[1] अपनी तीव्र प्रहारकारी वक्तृता द्वारा उसकी किलेबन्दी करते हैं; श्रीयुत अणे[2] अपने शान्त तर्कोंसे उसकी पुष्टि करते हैं; और श्रीयुत जमनादास मेहता[3] तो इस दलमें बड़े मौजी जीव हैं। वे अपनी विवाद-पटुता और बाधक हथकंडोंको परिष्कृत करनेके लिए समितिका प्रभावकारी उपयोग करते हैं। समिति उनकी बातोंपर संजीदगीसे विचार नहीं करती और वे भी इस बातको स्पष्ट कर देते हैं कि वे समितिसे इसकी अपेक्षा नहीं रखते। उनकी बातपर सब लोग हँस पड़ते हैं और वे भी उनके साथ खुलकर हँसते हैं। कार्यारम्भके समय यह प्रश्न उठा कि कार्यकारिणी समितिका कोई सदस्य तैयार न हो तो दूसरे किसको सभापति बनाया जाये। तब उन्होंने खुद ही अपना नाम सभापति पदके लिए प्रस्तुत किया। इससे कार्रवाई रोचक बन गई। वे कार्यकारिणी समितिके तमाम सदस्योंको माननीय मानते हैं; और उनके मानका माप यह है कि उनकी रायमें वे लोग उन अधिकारोंको भी अनुचित रीतिसे निरन्तर हथियानेका प्रयत्न करते हैं, जो उन्हें प्राप्त नहीं हैं।[4] परन्तु इससे पाठक यह खयाल कदापि न करें कि ये सब बातें किसी बुरे भावसे की जाती हैं। मैंने किसी सभा-समाजमें लोगोंको इतनी अच्छी तरह पेश आते हुए और हास्य-विनोद करते हुए नहीं देखा, मैं महाराष्ट्र-दलको एक ऐसा दल मानता हूँ जिसे पाकर प्रत्येक राष्ट्रको गर्व होना चाहिए। मैंने जो इस दलका उल्लेख किया है वह वस्तुतः अपनी इस दलीलको मजबूत करनेके लिए कि कांग्रेस महासमितिमें ऐसे सज्जन हैं जो अपने इरादोंको अच्छी तरहसे समझते हैं और जिन्होंने इस बातका दृढ़ संकल्प कर लिया है कि भारतमाताको स्वतन्त्र करानेके प्रयत्नमें वे अपनी सेवाओंका संसारको अच्छा परिचय देंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०–११–१९२१

१८०. महत्त्वपूर्ण प्रश्न

हम अगले कुछ सप्ताहोंमें ही भारतके किसी-न-किसी भागमें सविनय अवज्ञाके कार्यक्रमपर पूरा अमल होता देखेंगे। व्यक्तिगत अवज्ञाके उदाहरणोंसे तो देश परिचित हो चुका है। पूर्ण सविनय अवज्ञाको "बगावत" कहना चाहिए; परन्तु वह ऐसी बगावत है जिसमें "हिंसा" या मारकाट नहीं है। एक पक्का सविनय अवज्ञाकारी व्यक्ति राजकी सत्ताकी पूर्ण उपेक्षा करता है। वह बागी हो जाता है और राज्यके तमाम नीति-विरुद्ध कानूनोंको न माननेका दावा करता है। इस तरह, उदाहरणार्थ, वह कर देनेसे इनकार कर सकता है, वह अपने दैनिक व्यवहारोंमें राज्यकी सत्ता माननेसे

१. नागपुरके एम० वी० अभ्यंकर।
२. बरारके मा० श्री० अणे।
३. १८८४–१९५५; अ० भा० कांग्रेस कमेटीके सदस्य, १९२१-३१।
४. इस सम्बन्धमें श्री मेहताके विरोधके लिए देखिए "एक प्रतिवाद", १–१२–१९२१।

इनकार कर सकता है, वह अनधिकार प्रवेश विषयक कानूनकी अवज्ञा कर सकता है और सैनिकोंसे बातचीत करनेके लिए फौजी बैरकोंमें जानेके अधिकारपर आग्रह कर सकता है। वह धरना देनेके तरीकेके बारेमें लगाई गई पाबन्दियोंको माननेसे इनकार कर सकता है और मना किये गये मुकामोंपर जाकर 'धरना' दे सकता है। परन्तु इन सब कार्योंको करते हुए वह अपने विरुद्ध बलप्रयोग किये जानेपर स्वयं कभी बल प्रयोग नहीं करता। सच बात तो यह है कि वह स्वयं अपने खिलाफ कैद तथा बल-प्रयोगके दूसरे प्रकारोंको निमन्त्रित करता है। वह ऐसा इसलिए और तभी करता है जब वह देखता है कि उसका शरीर-स्वातन्त्र्य, जिसका उपभोग वह प्रकटतः करता है, एक असह्य बोझ हो गया है। वह अपने मनमें यह सोचता है कि राज्य सिर्फ वहींतक व्यक्तिगत स्वतन्त्रताकी इजाजत देता है जहाँतक नागरिक उसके कानून-कायदोंको मानता है। नागरिक राज्यके कानून कायदोंको मानकर अपनी निजी आजादीकी कीमत देता है। अतएव एक पूर्ण या अधिकांश अन्यायी राज्यको मानना, आजादीका अनीति-मूलक सौदा करना है। जो नागरिक इस प्रकार यह देख लेता है कि यह राज्य तो बुरा है तब वह उसे चुपचाप सहन करता हुआ सन्तुष्ट नहीं रहता और इसलिए वह जब नीतिका उल्लंघन किये बिना राज्यको अपनी गिरफ्तारीके लिए मजबूर करता है तब वह उन लोगोंको, जो उससे मतभेद रखते हैं, समाजके लिए एक व्याधि दिखाई देता है। इस तरह सोचें तो सविनय प्रतिरोध आत्माकी वेदना प्रकट करने और एक बुरे राज्यके अस्तित्वके खिलाफ कारगर तौरपर अपनी ऊँची आवाज उठानेका बहुत जोर-दार तरीका है। क्या संसारके सारे सुधारोंका इतिहास ऐसा ही नहीं है? क्या उन सुधारकोंने, अपने साथवालोंकी तीव्र अनिच्छा होनेपर भी, उन निर्दोष स्थूल-चिह्नों तक को नहीं छोड़ा है जिनका सम्बन्ध बुरी प्रथाओंसे था?

जब कुछ लोग उस राज्यसे अपना सम्बन्ध तोड़ देते हैं जिसमें वे अबतक रहते आये हैं, तो इसका अर्थ यह है कि वे करीब-करीब अपनी निजी सरकार स्थापित कर लेते हैं। मैंने 'करीब-करीब' शब्दका प्रयोग इसलिए किया है कि जब राज्यकी ओरसे वे ऐसा करनेसे रोके जाते हैं तब वे बल-प्रयोग करनेकी सीमातक नहीं जाते। व्यक्तिगत रूपसे उनका 'काम' तो यह है कि जबतक राज्य उसका पृथक् अस्तित्व स्वीकार न कर ले, या दूसरे शब्दोंमें, उसकी इच्छाके आगे सिर न झुका दे तबतक वे कोठरियोंमें बन्द रहें या राज्यकी गोलियाँ खाकर मरते रहें। १९१४में[१] दक्षिण आफ्रिकामें तीन हजार हिन्दुस्तानियोंने इसी प्रकार ट्रान्सवाल प्रवासी अधिनियमको भंग करनेके लिए ट्रान्सवालकी सीमामें प्रवेश किया था और सरकारको अपनी गिरफ्तारीके लिए बाध्य किया था। जब सरकार उनको मारकाटके लिए उभाड़नेमें या दबानेमें सफल न हो सकी तब उसने उनकी माँग स्वीकार कर ली। इसलिए सविनय अवज्ञा करने-वालोंका समुदाय एक ऐसी सेना है, जिसके लिए एक सैनिककी तरह पूरा अनुशासन, बल्कि उससे भी कड़ा अनुशासन आवश्यक होता है; क्योंकि उसमें वह उत्तेजना नहीं होती जो मामूली सैनिकके जीवनमें पाई जाती है। और चूँकि इस सविनय प्रतिरोध करनेवाली

१. ६ नवम्बर, १९१३ को; देखिए खण्ड १२, पृष्ठ २५१।

सेनामें बदला लेनेकी भावनासे मुक्त होनेके कारण रोपका अभाव होता है अथवा होना चाहिए, इसलिए उसके थोड़ेसे-थोड़े सिपाही भी काफी होते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि सिर्फ एक — अकेला ही — 'पूर्ण' सविनय प्रतिरोध करनेवाला मनुष्य अन्यायके मुकाबलेमें न्यायकी ओरसे युद्ध करके विजय प्राप्त करनेके लिए काफी होता है।

इसलिए, यद्यपि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने प्रान्तोंकी समितियोंको खुद उन्हींकी जिम्मेदारीपर सविनय अवज्ञा करनेकी सत्ता दे दी है, तथापि मैं आशा करता हूँ कि वे 'जिम्मेदारी' शब्दका पूरा ध्यान रखेंगी और काफी सोचे-समझे बिना सविनय अवज्ञा शुरू न करेंगी। हरएक शर्तका पालन अवश्य पूरी तरह होना चाहिए। हिन्दू-मुस्लिम-एकता, अहिंसा, स्वदेशी और छुआछूतको दूर करनेके उल्लेखका अर्थ यह है कि वे अभी हमारे राष्ट्रीय जीवनके अभिन्न अंग नहीं हो पाये हैं। अगर अब भी किसी व्यक्ति या समुदायको हिन्दू-मुसलमान एकताके विषयमें कुछ खटका बाकी रहा हो, अगर उसे अब भी इसमें कुछ शक बाकी हो कि हमारे इस तीन-सूत्री ध्येयकी सिद्धिके लिए अहिंसा आवश्यक है, अगर अबतक उसने स्वदेशीका पूर्ण पालन न किया हो और अगर उस समुदायके हिन्दुओंमें अब भी छुआछूतका जहर बाकी हो तो वह व्यक्ति या समुदाय सविनय अवज्ञा शुरू करनेके लिए तैयार नहीं है। हाँ, निस्सन्देह, सबसे अच्छा यह होगा कि जबतक उसका प्रयोग एक क्षेत्रमें हो रहा है तबतक दूसरे क्षेत्र उसे गौरसे देखें और रुके रहें। अगर हम उसे सेनाकी भाषामें कहें तो जो पलटनें देखती और रुकी रहती हैं, वे भी लड़ाईमें उतना ही सक्रिय सहयोग करती हैं जितना कि वे पलटनें करती हैं जो वास्तवमें लड़ती हैं। जब एक जगह यह प्रयोग चल रहा है, तब उसके साथ ही व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा करनेका मौका उसी समय आ सकता है, जब सरकार चुपचाप स्वदेशीका प्रचार करनेमें बाधा डाले। इसी तरह यदि किसी होशियार सूत कातनेवालेको यह आदेश दिया जाये कि वह कताईके संगठनका या शिक्षणका कार्य न करे तो उसे तुरन्त ऐसी आज्ञाका अनादर करना चाहिए और जेल चले जाना चाहिए। परन्तु दूसरी समस्त बातोंमें, जहाँतक मैं मौजूदा हालतमें सोच सकता हूँ, दूसरे प्रान्तोंके लिए यह सबसे अच्छा होगा कि जबतक एक प्रान्त सोच-समझ कर उसमें अग्रसर हो रहा है और राज्यके ज्यादासे-ज्यादा जितने नीति-विरुद्ध कानूनोंको तोड़ सकता है उन्हें विचार-पूर्वक तोड़ रहा है, तबतक वे ठीक-ठीक तमाम आज्ञाओं और हिदायतोंको मानते रहें। यह कहनेकी तो आवश्यकता ही नहीं है कि उस समय अगर दूसरे किसी भी भागमें जरा भी हिंसाका उद्रेक हुआ — लोगोंकी तरफसे जरा भी खून-खराबी हुई — तो इससे उस प्रयोगकी निस्सन्देह बड़ी ही हानि होगी और शायद वह बन्द भी हो जाये। प्रयोग-कर्त्ता प्रान्तके लोग चाहे जेल भेजे जायें, उन पर गोलियाँ चलाई जायें या वे हाकिमों द्वारा तरह-तरहसे सताये जायें, परन्तु दूसरे प्रान्तोंके लोगोंसे ऐसी अवस्थामें भी बिलकुल अचल और अक्षुब्ध रहनेकी उम्मीद की जाती है। हम उनसे यह जरूर उम्मीद करते हैं कि वे हर कल्पनीय स्थितिमें शोभनीय व्यवहार करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०–११–१९२१

१८१. ब्रह्मचर्यका पालन कैसे किया जाये ?

एक स्वयंसेवकने अत्यन्त करुणाजनक पत्र लिखा है। वह कहता है कि बहुत प्रयत्न करनेके बावजूद वह ब्रह्मचर्यका पालन नहीं कर पाता। उसे स्वप्नदोष होता है और इससे कभी-कभी उसे आत्महत्या करनेकी इच्छा होती है। इसमें मुझे घबराहट दिखाई देती है। जबतक मनुष्य जानबूझकर अपराध नहीं करता; पुरुष स्त्रीकी ओर अथवा स्त्री पुरुषकी ओर बुरी निगाहसे नहीं देखती तबतक निराशाका कोई कारण नहीं है। जाग्रत अवस्थामें मनपर पूरी तरहसे नियन्त्रण प्राप्त करनेके बाद निद्रावस्थाके लिए ईश्वरपर भरोसा करके सोना चाहिए। सोते समय दोष हो तो समझना कि अभी मनकी वासनाओंका क्षय नहीं हुआ है। "निराहारीके विषय शान्त हो जाते हैं, लेकिन रस नहीं जाता, रस तो आत्मदर्शनके बाद ही जाता है।"[१] यह वचन अनुभव-जनित है और अक्षरशः सत्य है। आत्माकी मूढ़ दशामें ही पाप सम्भव है — आत्मज्योति प्रकट होनेके बाद पापका सर्वथा क्षय हो जाता है। ब्रह्मचर्यका सतत पालन करनेवालेको निम्नलिखित नियमका पालन करना चाहिए :

१. अल्पाहार करे।

२. आहारमें भी मसालेदार, बहुत घीवाले या तले हुए पदार्थोंका, मिठाइयोंका तथा माँसादिका त्याग करना चाहिए।

३. मदिरापान तो किया ही नहीं जा सकता; लेकिन अनेक प्रकारके पेय, उदाहरणके रूपमें चाय, कहवा और काढ़ा भी, दवाके रूपमें ही पिये जा सकते हैं।

४. गुह्य भागोंको हमेशा दो-तीन बार ठण्डे पानीसे धोये और उनपर ठण्डा पानी उंडेले।

५. भारी आहार कभी न ले।

६. रातके भोजनका त्याग करे।

७. भूखे पेट सोये, इसलिए अन्तिम भोजन हमेशा हलका करे।

८. श्रृंगार रसकी पुस्तकें न पढे, वैसी बातें न करे और न सुने।

९. स्त्री-मात्रको बहन समान समझे; कभी उनकी ओर लोभी नजरोंसे न देखे। यह सुन्दर है, यह सुन्दर नहीं है — ऐसा विचारतक भी न करे। सौन्दर्य आकृतिमें अथवा रंगमें ही होता तो हम पुतलोंको देखकर ही आँखोंकी तृप्ति कर लेते। सौन्दर्य सद्गुणोंमें है और सद्गुण इन्द्रियोंकी तृप्तिकी वस्तु नहीं हैं। अपनी माँ अथवा बहनको जो सुन्दर या असुन्दर मानता है वह पापी बनता है, ऐसा सोचकर विकारोंपर विजय प्राप्त करे।

१०. स्त्रीके साथ कभी एकान्तवास न करे।

१. भगवद्गीता, २-५९।

११. शरीर और मनको हमेशा सत्कार्यमें लगाये रखे। चरखेके निरन्तर उपयोगको मैं इसमें बहुत सहायक मानता हूँ। अलबत्ता, यह मेरा अनुमान है; अभी अनुभवसे नहीं लिख सकता। कहनेका तात्पर्य यह है कि अन्य शारीरिक क्रियाओंकी अपेक्षा चरखा संयमका पालन करनेमें अधिक मदद करता है, ऐसा मेरा अनुमान है।

१२. आत्मशुद्धिके लिए निरन्तर ईश-स्मरण करे। आस्तिक मानता है कि ईश्वर अन्तर्यामी है, नींदमें भी हमारी चेष्टाएँ देखता है। इसलिए हमें चौबीसों घंटे सावधान रहना चाहिए। कोई भी मानसिक अथवा शारीरिक क्रिया करते समय ईश्वरके नामको भूलना नहीं चाहिए। उसका नाम सारे पापोंको हरनेवाला है। थोड़ी मेहनत करनेके बाद प्रत्येक इस बातका अनुभव कर सकेगा कि कोई भी काम या विचार करते हुए ईश-स्मरण करना सम्भव है। एक समयमें व्यक्ति एक ही बातपर विचार कर सकता है, यह नियम ईश-स्मरणपर लागू नहीं होता, क्योंकि ईश्वरका स्मरण करना आत्माका स्वाभाविक गुण है। दूसरे विचार तो उपाधि रूप हैं। जो व्यक्ति यह मानता है कि सब-कुछ ईश्वर करता है और उसीके ध्यानमें लीन रहता है उसे सोचने अथवा करनेके लिए क्या रह जाता है? वह स्वयं मिटकर ईश्वरके हाथका साधन-मात्र रह जाता है। ऐसे ईश-स्मरणके बिना मन, कर्म और वचनसे मैं शुद्ध ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी बातको असम्भव मानता हूँ।

जो इतने नियमोंका पालन करेगा वह अवश्य जितेन्द्रिय बनेगा। और इतना प्रयत्न करनेवाले व्यक्तिको निश्चिन्त रहना चाहिए और स्वप्नदोषसे तनिक भी नहीं घबराना चाहिए। स्वप्नदोषको असावधानीकी स्थिति माने और उसकी अधिक चौकसी करे, परन्तु घबराये बिलकुल नहीं। लेकिन हाँ, अगर उसकी दृष्टि मलिन हो और वह दूसरे व्यक्तिकी तुष्टिको मलिन करनेके लिए ललचाये तो उसे अवश्य आत्महत्या करनी चाहिए। परस्त्रीगमनकी अपेक्षा आत्महत्या करना अधिक श्रेयस्कर है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १०–११–१९२१

१८२. टिप्पणियाँ

एक सलाहकार

एक सलाहकार लिखते हैं कि एक बार 'इंडियन सोशल रिफॉर्मर' में यह टीका प्रकाशित हुई थी कि "गांधी अपनी अन्तरात्माकी आवाजको बहुत दृढ़तासे पकड़े रखते हैं और फिर दूसरे महापुरुष उनके बारेमें क्या सोचते हैं, इसका विचारतक नहीं करते और उसे जानना भी नहीं चाहते।" इसके बाद सलाहकार महोदय लिखते हैं कि अगर उपर्युक्त टीका सही है तो यह दुःखकी बात है। इसके बाद वे अंग्रेज लेखकोंके इस कथनको उद्धृत करते हैं कि प्रत्येक सेवकको, उसके आलोचक अथवा विरोधी क्या कहते हैं, यह देखना चाहिए और मुझे सलाह देते हैं कि मुझे विदुषी एनी बेसेंट[1] आदिकी

१. एनी बेसेंट (१८४७–१९३३); थियोसॉफिकल सोसाइटीकी अध्यक्षा; बनारसके केन्द्रीय हिन्दू कालेजकी संस्थापिका; कांग्रेस अध्यक्ष, १९१७।

आलोचनाको पढ़ना चाहिए, उसपर विचार करना चाहिए। अन्तमें वे अंग्रेज लेखकोंके कथनको उद्धृत करनेके लिए क्षमा माँगते हैं। ऐसे पत्र मुझे मिलते हैं, सो ठीक है और मुझे प्रिय भी हैं। पत्र-लेखकको क्षमा माँगनेकी कोई जरूरत नहीं है। मैं अंग्रेज लेखकोंकी अवगणना नहीं करता। मैंने उनमें से अनेक लेखकोंकी रचनाएँ पढ़ी हैं और उनसे लाभ उठाया है। कुछेक व्यक्तियोंका मैं पुजारी हूँ। अपनी आलोचनाको पढ़कर उसपर विचार करना, प्रत्येक विवेकी और विनम्र व्यक्तिका कर्त्तव्य है। व्यक्ति जितना आलोचकोंसे सीखता है उतना अपने अनुयायियोंसे नहीं सीखता। इसीलिए कितने लोग मेरे वचनोंको पसन्द करते हैं इसकी अपेक्षा मैं इस बातका ज्यादा ध्यान रखता हूँ, कितने नापसन्द करते हैं। और यदि मैं एक बार निश्चित किये गये विचारोंको एकाएक नहीं बदलता तो उसका सबल कारण यह है कि मैं टीकाओंपर पहले ही विचार कर लेता हूँ। श्रीमती एनी बेसेंट द्वारा की गई एक भी टीका ऐसी नहीं है जिसपर मैंने विचार न किया हो। एक बात निस्सन्देह सत्य है। अन्तरात्माकी आवाजको मैं प्रमुख स्थान देता हूँ; उसके आगे महान पुरुषोंके वचन भी नहीं टिक सकते और न टिकने ही चाहिए। स्वराज्यवादी कुछ और कर ही नहीं सकता। जो व्यक्ति अन्तरात्माकी आवाजको प्रथम स्थान नहीं देता वह मनुष्यतासे गिर जाता है और उसकी कीमत कौड़ीकी ही हो जाती है। अन्तरात्माकी आवाज सबको सुनाई नहीं देती, यह बात हमें समझ लेनी चाहिए। अन्तरात्माकी आवाज मननशील, विवेकी, नम्र, आस्तिक और संयमीको ही सुनाई देती है। मैं मनन, विवेक अथवा नम्रतासे शून्य नहीं हूँ। आस्तिक तो हूँ ही। संयमका पालन करनेका पूरा प्रयत्न करता हूँ। इससे मैं मानता हूँ कि मुझे अन्तरात्माकी आवाज सुनाई देती है। सब लोग मेरी तरह अपनी अन्तरात्माकी आवाज सुन सकते हैं और जो इस आवाजको सुन पाता है उसे एक बहुत बड़ा सहारा प्राप्त हो जाता है। बादमें वह महानसे-महान पुरुषोंके वचनोंसे उसकी तुलना कर सकता है? इसमें कभी-कभी वह भूल भी कर सकता है और तब वह अत्यन्त नम्रतापूर्वक उसको स्वीकारकर पश्चात्ताप भी करता है।

सविनय अवज्ञा

यही पत्र-लेखक पूछता है कि "आप कानूनकी सविनय अवज्ञा करनेकी सलाह देते हैं तो इसके साथ ही कानून भंगके फलस्वरूप प्राप्त सजाका अनादर करनेके लिए क्यों नहीं कहते?" लेकिन सजाका अनादर होनेपर तो अन्धेरगर्दी ही हो जायेगी, क्योंकि उसमें विनय नहीं रहेगा। विनयका तकाजा है कि सजाका अनादर नहीं होना चाहिए, अनादर तो हुक्मका ही होता है। इसके सिवा, सजाका अनादर असम्भव है। सविनय अवज्ञाकी उत्पत्ति आत्मबलसे होती है। अत्याचारी अपने शरीर-बलपर मुग्ध हो जगतको अपने अधीन करनेका प्रयत्न करता है। आत्मबली अपना शरीर अत्याचारी-को सौंपकर आत्माको स्वतन्त्र बनाता है। क्योंकि अत्याचारी आत्माका स्पर्शतक भी नहीं कर सकता। प्रह्लादने सविनय अवज्ञाकी लेकिन पर्वतपरसे गिरनेमें उसे कोई हिचक नहीं हुई। अंगार जैसे लाल लोहेके स्तम्भसे उसने मित्रकी तरह भेंटकी। सुधन्वा उबलते तेलकी कड़ाहीमें हँसते-हँसते गिर गया। यूसुफ पैगम्बरने अन्यायपूर्ण आदेशोंको

माननेकी अपेक्षा जेल जाना पसन्द किया। सविनय कानून भंग करनेवाला जुर्माना नहीं भरता क्योंकि वह तो उसीका कार्य कहा जायेगा। जेल जाना उसका कार्य नहीं; वह; स्वेच्छासे जेल नहीं जाता, अत्याचारी उसे बलात् जेलमें डालता है।

भय-जनित प्रश्न

यही पत्र लिखनेवाला फिर पूछता है "समझिए कि असहयोगके कारण अंग्रेजोंने हमारे साथ सम्बन्ध तोड़ लिया तो फिर हम कैसे विश्वास कर लें कि अफगानिस्तान आदि देश हिन्दुस्तानपर चढ़ाई नहीं करेंगे? और यदि ऐसा हुआ तो क्या हमारी हालत वही नहीं हो जायेगी जो थी?"

कुछेक लोगोंके दिलोंमें यह प्रश्न उठता है और यदि बहुत ज्यादा लोग यह सोचें तो हमें स्वराज्य नहीं मिल सकता। क्योंकि अफगानिस्तान और जापान आदिका भय रखनेवाले तो अंग्रेज-राज्यको अवश्य पसन्द करेंगे। ऐसे भयका निराकरण करनेका नाम ही स्वराज्य है। यदि हम अंग्रेजोंको निकाल बाहर करने जितनी शक्ति प्राप्त कर लें तो क्या वह अफगानिस्तान अथवा जापानका सामना करनेके लिए पर्याप्त नहीं है? जबतक हम स्वदेशीका पूर्ण रूपसे पालन नहीं करते तबतक हम भयभीत बने ही रहेंगे। स्वदेशीका पालन पतिव्रता स्त्रीके व्रतके समान है। जिस तरह पतिव्रता स्त्रीपर कोई उद्धत पुरुष कुदृष्टि नहीं डाल सकता उसी तरह स्वयं काते और बुने वस्त्रोंसे सज्जित भारत-मातापर भी कोई कुदृष्टि नहीं डाल सकता। जापान स्वावलम्बी भारत-का क्या बिगाड़ सकेगा? जिस हिन्दुस्तानके हिन्दू और मुसलमान एक हो गये हैं उस हिन्दुस्तानका अफगानिस्तान क्या कर सकता है? जिसको स्वदेशीका सेवन नहीं करना है उसे जापानका भय है, जिसे मुसलमानकी सज्जनतापर सन्देह है वह अफगानसे डरता है। स्वराज्यवादीको सब प्रकारके भयसे छुटकारा पाना है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-११-१९२१

१८३. भाषण: लाहौरकी सार्वजनिक सभामें

१० नवम्बर, १९२१

महात्मा गांधीने प्रस्तावका समर्थन करते हुए एक भाषण दिया। उन्होंने कहा कि अली-बन्धुओं तथा अन्य लोगोंके लिए बधाईके प्रस्तावका समर्थन करते हुए मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि अगर आप अली-बन्धुओं और दूसरे असहयोगियोंको इसी वर्ष जेलसे छुटकारा दिलाना चाहते हैं तो आपको अहिंसात्मक असहयोगका कार्यक्रम पूरा करनेकी कोशिश करनी चाहिए। अली-बन्धुओंने एक सन्देश भेजकर सूचित किया है कि वे तो अब सरकारके आदेशसे ही मुक्त होना चाहते हैं। अगर आप खिलाफत तथा पंजाबके साथ किये गये अन्यायोंका परिशोधन कराना चाहते हैं तो उसका एक ही

तरीका है। पंजाबने जो प्रगति की है, उसपर मैं उसे बधाई देना चाहता हूँ, लेकिन उसने इसी वर्ष स्वराज्य पाने लायक प्रगति नहीं की है।

अव्वल तो आप युवराजकी यात्राका पूरा बहिष्कार कीजिए। आपकी नगरपालिकाने इस आशयका एक प्रस्ताव भी पास किया है, लेकिन उस प्रस्तावको वापस करानेकी कोशिशें की जा रही हैं। किन्तु, मुझे पूरी आशा है कि आप इस तरह अपनी अप्रतिष्ठा नहीं होने देंगे। नगरपालिकाको मैं उसके निर्णयके लिए बधाई देता हूँ। हम लोग युवराजके शत्रु नहीं हैं, और न उनका अपमान करना चाहते हैं। महात्माजीने आगे कहा कि अगर किसीने युवराजका बाल भी बाँका करनेकी हिम्मत की, तो आपको अपने प्राणोंकी बाजी लगा कर भी उनकी रक्षाके लिए तैयार रहना चाहिए। यह आपका कर्त्तव्य है। लेकिन भारतके प्रति भी आपका कुछ कर्त्तव्य है। युवराज यहाँ युवराजके ही रूपमें आ रहे हैं और उनका उद्देश्य वर्तमान सरकारको बल देना है। अगर आपमें तनिक भी मानवता है, देश और खिलाफतसे आपको तनिक भी प्रेम है, या अगर पंजाबके साथ किये गये अन्यायका आपके मनमें कोई खयाल है, तो चाहे कोई आये — युवराज आयें या कोई भी आये — आपको उसकी यात्राका बहिष्कार करना चाहिए। एक बार पूनामें मैंने कहा था, अगर गोखले भी वर्तमान सरकारको बल प्रदान करनेके उद्देश्यसे आपके बीच आयें तो आपको उनका कोई स्वागत नहीं करना चाहिए। मुझे आशा है कि पंजाब युवराजका कोई स्वागत नहीं करेगा।

नगरपालिकाने जिस दूसरे सवालकी ओर ध्यान दिया है वह है लॉरेंसकी प्रतिमा, जिसपर ये शब्द खुदे हुए हैं: "तुम कलमके हुक्मपर चलना चाहते हो या तलवारके हुक्मपर?" वह दिन आ गया है जब कोई भी भारतको भयभीत नहीं कर सकता। भारतीय न तो किसीकी तलवारसे डरना चाहते हैं और न कलमके हुक्मसे प्रभावित होना चाहते हैं। मैं आपकी नगरपालिकाको बधाई देता हूँ। जब आपकी नगरपालिकाने एक काम करना तय कर लिया है तो आप सभी स्त्री-पुरुषोंको एकमत होकर वैसा ही करना चाहिए। हम लॉर्ड लॉरेंसके दुश्मन नहीं हैं, लेकिन हम नहीं चाहते कि प्रतिमापर वे शब्द खुदे रहें। भारतमें अब बातें बदल गई हैं। भारतीय लोग ईश्वरके अलावा और किसीसे नहीं डरते। वे नहीं चाहते कि वह प्रतिमा वहाँ बनी रहे। तो आप सबको एक सभा करके सरकारसे स्पष्ट कहना चाहिए कि "तुम्हें यह प्रतिमा हटानी होगी।"[1]

जैसा कि प्रस्तावमें कहा गया है, आप सब अली-बन्धुओंके रास्तेपर चलेंगे। अगर सरकार अपने अंग्रेज, सिख, गुरखा या पठान सिपाहियोंके बलपर प्रतिमाकी रक्षा करना चाहे तो जनताको कहना चाहिए, "हम मरकर भी इस प्रतिमाको हटवायेंगे।" नगरपालिका जिस-किसीको आदेश दे, उसे प्रतिमा हटानेके लिए जानेको तैयार

१. देखिए "कलम या तलवार", १७-११-१९२१।

रहना चाहिए। अगर कुछ औरतें वहाँ जाकर संगीनोंके सामने डट जायें और अपनी जेल जानेकी तत्परता दिखायें तो और भी अच्छा हो। मैं नहीं मानता कि वर्तमान सरकार इतनी बर्बर है। वह झुक जायेगी। लेकिन अगर सरकार पागलपनसे काम ले, तो आपको अपनी आनकी रक्षा करने और उसके लिए कष्ट उठानेको तैयार रहना चाहिए। अगर वैसा समय आ जाये, तो आपको दिखा देना चाहिए कि आप सिपाहियोंकी परवाह नहीं करते। अली-बन्धुओंको उनके मुकदमेके दौरान जब अपनी-अपनी कुर्सियोंपरसे उठनेको कहा गया तो उन्होंने इनकार कर दिया, किन्तु फिर जब अपनी मर्जी हुई, उन्होंने कुर्सियाँ छोड़ दीं और दोनों भाई अपने-अपने लबादे बिछाकर जमीन पर ही बैठ गये। आपको जरूरत सिर्फ पक्के साहसकी है। लेकिन, किसीको रातमें वह प्रतिमा हटानेके लिए नहीं जाना चाहिए। आपको सब-कुछ खुले-आम करना चाहिए। बल्कि आपको सरकारको पहले ही इस बातकी सूचना दे देनी चाहिए। कोई बारह वर्ष पहले रातमें किसी आदमीने वहाँ जाकर प्रतिमाको जूतोंकी माला पहना दी थी। किसीको ऐसा-कुछ नहीं करना चाहिए।

अगर आप अहिंसापर आग्रह रखते हुए काम करते जायेंगे तो जजीरत-उल-अरब और स्मर्ना भी मिल जायेंगे, थ्रेस और फिलिस्तीन भी मिल जायेगा। लेकिन अगर कोई हिन्दू, मुसलमान या सिख हत्या करे या मुँहसे अपशब्द भी निकाले तो उसे राष्ट्रका शत्रु मानना चाहिए। आपको अहिंसापर डटे रहना है। आपको अपने भीतर लछमनसिंह और दलीपसिंहका साहस सँजोना चाहिए, जो ननकाना साहबमें शहीद हुए। इसके विपरीत, महन्तको हत्यारा माना जाता है। आपको मरना सीखना चाहिए।

मैं 'जमींदार'को[1] भी बधाई देना चाहता हूँ। पहले मौलाना जफर अली खाँ जेल गये, उनके पीछे उनका लड़का और फिर पत्रके एक तीसरे सम्पादक जेल गये। अब एक दूसरे सज्जन सम्पादककी हैसियतसे आये हैं, और मैं चाहता हूँ, वे भी जेल जायें। मैं चाहता हूँ मर्दोंका स्थान औरतें लें और कष्टसहन करें। आपको इसकी चिंता ही नहीं करनी चाहिए कि दण्ड प्रक्रिया संहिताके खण्ड १४४ या प्रेस ऐक्टके अधीन क्या-कुछ हो सकता है। मुझे आशा है कि जबतक सरकार 'जमींदार'का प्रेस जब्त न कर ले तबतक वह चलता रहेगा।

अन्तमें उन्होंने कहा कि तीन बातें हैं, जिनकी याद मैं आपको दिलाना चाहूँगा। एक है अहिंसा, दूसरी हिन्दू-मुस्लिम एकता और तीसरी चीज है चरखा।

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, १२-११-१९२१

१. एक दैनिक पत्र।

१८४. परीक्षा

गुजरातकी परीक्षाके दिन नजदीक आ रहे हैं। महीने भी नहीं रहे, सिर्फ हफ्तोंकी बात है। कुछ ही समयमें दिनोंकी बात होने लगेगी और फिर घंटोंकी गिनती होगी।

एक ओर तो गुजरातको अ० भा० कांग्रेस कमेटीका अधिवेशन सम्पन्न करना है। देखना है कि हम अतिथि-सत्कार, व्यवहार-कुशलता व उदारतामें कम न निकलें।

दूसरी ओर गुजरातने असहयोगमें जो पहले कदम बढ़ाया है,[1] उसकी शोभाके योग्य काम करके दिखाना है। गुजरातको कमसे-कम एक तहसील तो ऐसी तैयार करनी चाहिए जो मौतकी गोदमें जानेके लिए तत्पर हो और वैसा सामर्थ्य भी रखती हो।

इसकी शर्तें मैं पहले ही लिख चुका हूँ। यह कहा जा सकता है कि महा समितिने भी उन्हें स्वीकार कर लिया है। ये शर्तें निश्चय ही कार्य-रूपमें परिणत की जा सकती हैं। परन्तु उन बातोंका भी विचार हमें कर रखना चाहिए, जिनके विषयमें प्रस्ताव तो नहीं हो सकता, परन्तु जिनके पाबन्द रहे बिना शर्तोंका पालन सम्भव नहीं है। जो व्यक्ति रेखा-गणितके सिद्धान्तको बिना समझे ही उसे रट डालता है वह अगर 'बारह' की जगह 'बारहवाँ' कह दे तो क्या आश्चर्य? जिसने रटा तो हो 'इसलिए' परन्तु कह जाये 'क्योंकि' तो फिर उसकी क्या गत हो? जिस प्रकार उसकी रटाईकी पोल खुल जाती है उसी प्रकार जो व्यक्ति बिना समझे ही समितिकी शर्तोंके पालन करनेका दावा करता है, वह दरवाजेसे वापस लौटे बिना नहीं रहनेका। क्योंकि वह दरवाजेकी तरफ जाता तो है, पर उसके खोलनेकी तरकीब नहीं जानता।

यह लड़ाई ही धर्मकी है। इसे चाहे व्यवहार्य कहिए, चाहे आप अ-व्यवहार्य, राजनैतिक कहिए अथवा सांसारिक, इसका कुछ भी नाम रख दीजिए, पर इसका मूल धर्म है। धर्मकी खातिर, धर्मके नामपर, हम यह लड़ाई लड़ रहे हैं। अली-भाइयोंने बिलकुल पक्की बात कही। उन्होंने कहा है: "राज्यके कानून और ईश्वरके कानून, दण्ड-संहिता और 'कुरान पाक'में से किसीका चुनाव करना हो तो हम अपने ईश्वरको और अपने 'कुरान' पाकको ही पसन्द करेंगे।" यह लड़ाई तो इस बातकी है कि मुसलमान, हिन्दू, पारसी, ईसाई आदि सब अपने-अपने धर्मको जानें और उसके अनुसार बरतें। सब धर्मके खातिर मरें। जो मरता है वह पार होता है, जो मारता है वह मरता है। अगर दूसरोंकी हत्या करके कोई अपने धर्मका पालन कर सकता तो आज लाखों आदमियोंको मुक्ति मिल गई होती।

इसलिए हमें तो संकटके समयमें केवल ईश्वरको ही याद करना है। जिसे इतना विश्वास नहीं है उसकी गतिमें अन्ततः अवरोध उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकता। खोटा रुपया चाहे कितनी ही दूकानोंपर क्यों न चक्कर लगा आये, उसकी कीमत

१. अहमदाबादमें २७, २८ और २९ अगस्त, १९२०को हुई गुजरात राजनीतिक परिषद्में। देखिए खण्ड १८।

जहाँकी-तहाँ रहेगी। सराफके यहाँसे तो वह लौटे बिना नहीं रह सकता। और इस बीच वह जिन-जिन हाथोंसे होकर गुजरा है उन सबको भी उसके स्पर्शसे थोड़ी-बहुत खोट पहुँची होगी। इसी प्रकार हममें जो 'रंगे सियार' होंगे वे जरूर आखिरी मंजिलमें पिछड़ जायेंगे।

जिसकी इच्छा हो वह मैदानमें आये। जिनसे हो सके वे इसमें कूदें। मैं सबको निमन्त्रण देता हूँ। परन्तु जो भूखे हों वही थालीपर बैठें। अगर दूसरे लोग बैठ जायेंगे तो पछतायेंगे। जिसे भूख नहीं है, उसे बढ़ियासे-बढ़िया व्यंजन भी अच्छे नहीं लगते। जो भूखा है उसे रूखी-सूखी बाजरेकी रोटी भी मीठी लगती है। इसी प्रकार जो लोग असहयोगका अर्थ समझ चुके हैं, जो धर्मका मर्म जान चुके हैं, वही इसमें टिक सकेंगे। जो समझ चुका है उसके लिए सब बातें आसान हैं। जो समझ नहीं पाया है उसके लिए सब बातें कठिन हैं। अन्धेके लिए आईना किस कामका?

अवसर कठिन है। बिना विचारे कदम उठाकर पीछे पछतानेका मौका न आये। अगर कोई भी तहसील तैयार न हो तो गुजरात हुंडी वापस कर सकता है; परन्तु उसपर सही कर चुकनेके बाद तो उसको सिकारे बिना गुजर ही नहीं। अभी गुजरातके लिए मौका है। पर बीड़ा उठा लेनेके बाद फिर पीठ नहीं दिखानी है। अगर शेखीमें आकर बीड़ा उठा लिया हो और तब कुछ न बन पड़े तो फिर हम जीवित भी मरेके समान हो जायेंगे। आज तो गुजरातको जरा भी घबरानेका या संकोच करनेका कारण नहीं है।

अब यह विचार करना चाहिए कि हमारी योग्यता किन-किन बातोंपर अवलम्बित है —

(१) शान्ति
(२) स्वदेशी
(३) हिन्दू-मुस्लिम एकता
(४) छुआछूतको दूर करना।

ये सब बातें तो आसान हैं।

पर कानूनकी सविनय अवज्ञा? इससे भी हम लोग अनजान नहीं हैं। जेल तो उसके साथ है ही। उसे भोग लेंगे। बड़े-बड़े लोग गये हैं और सब देख आये हैं तो फिर हम क्यों ऐसा नहीं कर सकेंगे? अतएव यह तो कोई बड़ी बात नहीं रही।

पर — ?

मार्शल लॉ जारी हो जाये तो? गुरखोंकी फौज आये तो? गोरी-सेना चढ़ आये तो? और फिर संगीनें भौंकें, गोलियोंकी बौछार करें, पेटके बल रेंगायें तो? ठीक है, यह भी हो जाये। आने दो सेनाको। देखें वह हमें पेटके बल कैसे चलाती है। मर मिटेंगे, पर पेटके बल न रेंगेंगे। संगीनें भौंकना हो तो भौंक दें। प्लेग, हैजे या किसी बीमारीसे मरनेके बदले संगीनोंसे मरना अच्छा है। और अगर गोलियाँ भी दागें तो हम पीठ दिखानेवाले नहीं हैं। अब तो इतना बल आ गया है कि हम गिल्ली-डंडेके खेलकी तरह, सीना तानकर गोलियोंकी बौछारको झेल लेंगे। गुरखोंको

अपना भाई बना लेंगे; और वे न बनें तो भाईके हाथों मरने-जैसा सुख दूसरा क्या होगा? ऐसा कहते हुए तो जरूर बदनमें खून दौड़ने लगता है।

पर करते हुए?

मुझे तो विश्वास है कि दब्बू गुजरात इस बार जौहर कर दिखायेगा। परन्तु यह बात लिखते हुए कलम भारी पड़ जाती है। गुजरातने बन्दूकोंके धड़ाके किस दिन सुने? गुजरातने लहूकी नदियाँ कब देखीं? क्या गुजरातसे यह दृश्य देखा जा सकता है कि पटाखोंकी तरह तड़ातड़ बन्दूकें चल रही हैं और मिट्टीके घड़ोंकी तरह लोगोंके सिर धड़ाधड़ फूट रहे हैं?

अगर गुजरात औरोंके सिरोंको फूटते हुए देख सके तो वह 'गर्वी गुजरात' न रहे। अगर गुजरात अपने ही सिरोंको टूटते हुए देखे तो अमरत्वको प्राप्त करे। इसके लिए किस तालीमकी जरूरत है?

विश्वासकी। यह विश्वास समितिके प्रस्तावोंसे नहीं मिल सकता। ईश्वर दीन-दुखियोंका वाली है; ईश्वर हिम्मतका देनेवाला है। "राम राखे तो कोई न चाखे।" यह देह उसीका दिया हुआ है। वह खुशीसे इसे ले जाये। देहको सुरक्षित रखनेसे कहीं वह चिरस्थायी हो सकता है? रुपयेकी तरह देहका भी विनियोग अच्छे काममें ही करना उचित है। और देह अर्पण करनेके लिए इस अत्याचारसे मुक्त होने जैसा सुअवसर दूसरा क्या होगा? इस तरह जो सच्चे दिलसे मानता है वह तो मुसकराते हुए छाती खोलकर बेधड़क और बेफिक्र होकर गोलियोंको गेंदकी तरह झेल लेता है।

इतना अटल विश्वास अगर हो तभी गुजरातकी किसी तहसीलको इस रणमें सामने आना चाहिए।

सब लोगोंको इतना विश्वास न भी हो तो हर्ज नहीं। इतना विश्वास कमसे-कम कितने लोगोंको होना चाहिए इसका अन्दाज मैं दे चुका हूँ। दूसरे लोगोंको गोलियोंका स्वागत करनेकी हिम्मत न हो तो भी हानि नहीं। पर उनमें इतनी दृढ़ता तो अवश्य होनी चाहिए कि चाहे उनका सारा घर-बार क्यों न लूट लिया जाये, पर वे हरगिज टससे-मस नहीं होंगे। भले ही घर-बार लूट लिये जायें। जीते रहेंगे तो फिर उन्हींमें जायेंगे और उनको लेनेका प्रयत्न करते हुए मर मिटेंगे; यही स्वराज्य है।

अगर इतना बल किसी एक तहसीलमें भी न हो तो फिर हम स्वराज्यके योग्य किस तरह हो सकते हैं? परन्तु जिस दिन एक भी तहसील इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो जायेगी, बस, उसी दिन स्वराज्यकी उपलब्धि हो जायेगी। क्योंकि उसी दिन हिन्दुस्तान दिव्य शस्त्रके उपयोग करनेमें कुशल माना जायेगा।

पर इससे यह न समझना चाहिए कि हममें बहुत बल आ गया है। यह तो आत्माका स्वभाव ही है। बोअर लोगोंकी स्त्रियोंने ऐसी बहादुरी दिखाई है। लाखों अंग्रेज ऐसी वीरताका परिचय दे चुके हैं, और तुर्क स्त्री-पुरुष तो आज भी उसको प्रकट कर रहे हैं।

परन्तु भेद है। वे तो मारते भी हैं और मरते भी हैं। लेकिन हम जानते हैं कि अमरता तो मरनेमें ही है। मारनेका काम छोड़कर मरनेका ही काम सीखनेमें क्या कोई कठिनाई है? मरना सीखनेके लिए तो हिम्मतकी जरूरत है। और विश्वास

रखनेवालेमें वह निमिष-मात्रमें आ जाती है। मारना सीखनेके लिए शरीरकी जरूरत है, बन्दूक चलानेके मुहावरेकी जरूरत है। ऐसे हजारों ढकोसले जाननेके बाद कहीं मरना सीखनेकी नौबत आती है और फिर भी अन्तको "खूनी" लोगोंमें ही गिनती होती है।

पर कोई हिन्दू भाई कहेंगे कि ये बातें तो क्षत्रियत्व की हैं। गुजरातसे क्षत्रित्व-का क्या वास्ता? हम तो एक व्यापार-मात्र करना जानते हैं। गुजरात चाहे भले ही ऐसा हो, परन्तु हिन्दुत्व ऐसा नहीं। चारों वर्णोंमें चारों गुण अवश्य होने चाहिए। हाँ, यह सच है कि हरएकमें अपना-अपना गुण विशेष रूपसे होता है; परन्तु अगर दूसरे गुण उसमें बिलकुल न हों तो वह नपुंसक है। जो माता अपने बच्चेके लिए मरना जानती है वह क्षत्राणी है, और जो पति अपनी पत्नीके लिए प्राण देता है, वह भी क्षत्रिय है। परन्तु इन सबका कर्त्तव्य जगत्की रक्षा करना नहीं है; अतएव हम उन्हें क्षत्रियके रूपमें नहीं पहचानते।

इस समय तो जगतकी — हिन्दुस्तानकी — रक्षा करना हरएकका धर्म है; क्योंकि वह धर्म आज किसीका नहीं रहा है — और न किसीका दिखाई ही देता है।

यह तो हिन्दुओंकी बात हुई। गुजरातके मुसलमान, पारसी, आदि क्या करें? हिन्दुस्तान उनका भी है; गुजरात उनका भी है। उन्हें भी हिन्दुस्तानको गुलामीसे छुड़ाना है। और वे भी केवल मरकर ही ऐसा कर सकते हैं।

अतएव क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, पारसी, ईसाई, और क्या यहूदी — जो अपनेको हिन्दुस्तानी मानते हैं उन सबको मरनेका मन्त्र सीखना है और उसकी साधना करना है। इस पाठको तो केवल वही पढ़ सकता है और वही बरत सकता है जो एकमात्र ईश्वरमें भरोसा रखता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३–११–१९२१

१८५. पत्र : महादेव देसाईको

साबरमती
मंगलवार [१५ नवम्बर, १९२१]

चि० महादेव,

बिना रोये तो माँ भी दूध नहीं देती, आवाज लगाये बिना बेर भी नहीं बिकते। माँ बिचारी क्या जाने कि बालकको क्या चाहिए और बेरवालीके टोकरेकी दशा तो वही जाने। इसलिए तुमने माँगा और लिया, इसमें शरमानेकी क्या बात है?

तुम्हारे भजन मिले हैं। उन्हें पढ़ गया हूँ। मुमकिन है बीमारीमें काव्यशक्ति अधिक बढ़ती हो लेकिन क्या उसका प्रयोग करनेसे स्वस्थ होनेमें अधिक समय नहीं लगेगा? अगर इस काव्यशक्तिको संगृहीत कर रखा जाये तथा स्वस्थ होनेके बाद भी वह प्रकट हो तो वह और भी सराहनीय होगी।

मनुष्य बीमारीके अवसरको अन्तर्नाद सुननेका अवसर मानकर इस समयका उपयोग अपना ही निरीक्षण करनेमें करे तो उससे मनुष्यकी शक्ति बढ़ती है।

तुम्हारी तबीयत अच्छी है, इसकी खबर मुझे मोतीलालजीने तार द्वारा दी है। ईश्वर तुम्हें अपने व्रतोंका पालन करनेके लिए सम्पूर्ण बल दे।

तुम दोनों सुखी रहो और सेवा करो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ११४१४) की फोटो-नकलसे।

१८६. पत्र: ए० एस० फ्रीमैंटलको[1]

[१५ नवम्बर, १९२१ के पश्चात्]

प्रिय महोदय,

आपके इसी १५ तारीखके पत्रके लिए धन्यवाद। मैं 'यंग इंडिया' में पूरा पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर रहा हूँ। सिर्फ वह पत्र छाँट दिया है जिसमें आपने यह पत्र-व्यवहार प्रकाशित करनेकी अनुमति दी है।

आपका विश्वस्त,

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ७६६३) की फोटो-नकलसे।

१८७. भाषण: राजचन्द्र जयन्तीके अवसरपर, अहमदाबादमें

१६ नवम्बर, १९२१

भाइयो और बहनो,

इस अवसरपर मैं आपको एक पुरानी बातका स्मरण दिलाना चाहता हूँ। आप कदाचित् उस प्रसंगको भूल गये हों, लेकिन मैं नहीं भूला हूँ। मेरे विलायतसे लौटनेके बाद अहमदाबादमें इस जयन्तीको मनानेके लिए हम प्रेमाभाई हॉलमें इकट्ठे हुए थे। उस समय मैंने कहा था कि अगर हम शोर मचाते रहे तो जिसकी पूजा करनेके लिए हम इकट्ठे हुए हैं उसकी पूजा नहीं हो सकेगी; उलटे हम उसकी बदनामी करेंगे। बादमें, बहुत मुश्किलसे लोग शान्त हुए थे। उसके बाद तो जमाना गुजर चुका। हमें भी अनेक मीठे-कड़वे अनुभव हुए हैं। सभामें शान्ति बनाये रखनेका नियम हम कुछ हद-तक सीखे हैं। सभामें समयपर आयें और आनेके बाद अपने स्थानको न छोड़ें, यह

१. मथुरा जिलेके कलेक्टर।

सभ्यताका एक अत्यन्त सरल नियम है। आजके विषयको ध्यानमें रखकर कहूँ तो यह नियम दयाधर्मका प्रथम पाठ है।

हमें स्वयं असुविधाको सह लेना चाहिए ताकि दूसरोंको सुविधा हो सके। जिस घड़ी जो इच्छा हो उसपर तुरन्त अमल कर देना, उसका दुनियापर क्या असर होगा, इसका विचार भी न करना — यह संयम नहीं है, यह तो स्वच्छन्दता है। यह देवोचित प्रवृत्ति नहीं बल्कि राक्षसी प्रवृत्ति है। अव्यवस्थाको ही व्यवस्था मानना राक्षसी प्रवृत्तिका ही लक्षण है। जहाँ शोरगुल ही हो रहा हो, किसीको किसीका कोई विचार न हो, किसीका कोई सम्मान न हो, वहाँ, यही कहना होगा कि राक्षसी प्रवृत्ति चल रही है। राक्षसी प्रवृत्तिका कोई ऐसा विशेष चिह्न नहीं बताया जा सकता जिसे देखकर हम तुरन्त पहचान लें कि यह राक्षसी प्रवृत्ति है। प्रत्येक प्रवृत्ति हमेशा मिश्रित होती है। जिस प्रवृत्तिसे ऐसा प्रकट होता हो कि लोगोंके हृदयमें ज्यादातर अशान्ति है, जिस प्रवृत्तिसे अशान्तिकी आकृति खड़ी होती हो, उस प्रवृत्तिको राक्षसी प्रवृत्ति ही कहेंगे।

आजकल "राक्षसी" शब्दका उपयोग मैं सबसे ज्यादा करता हूँ। इस शब्दका प्रयोग करना मुझे अच्छा लगता है, सो बात नहीं। सारी दुनिया भले वैसा मान ले, लेकिन मेरी अपनी आत्मा गवाही देती है कि मेरे इस शब्दका प्रयोग करनेमें दयाके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उसमें द्वेष नहीं है, रोष नहीं है। मैं वस्तुस्थितिको जिस तरह देख रहा हूँ उसी तरह उसका चित्रण कर रहा हूँ। उसमें मैं दयाधर्मका पालन कर रहा हूँ। दयाधर्मके चिन्तनके लिए आजके अवसरका दुगुना स्वागत किया जाना चाहिए।

जिस पुरुषके स्मरणार्थ हम यहाँ आये हैं उसके हम पुजारी हैं। मैं उसका पुजारी हूँ। टीकाकार किसी भी दिन पुजारी नहीं हो सकता। इसलिए जिनके मनमें टीकाका भाव है उनके लिए यह प्रसंग नहीं है। टीकाकार भी शंका-समाधानके लिए नम्र बनकर भले आयें, लेकिन अगर उनका इरादा अपनी शंकाको पोषित करनेका हो तो सभ्यताका यह तकाजा है कि आज उनका यहाँ कोई काम नहीं है। जगत्‌में सबको स्वतन्त्रता होनी चाहिए। यह सच है कि टीकाकारको जगतमें स्थान होना चाहिए लेकिन भक्तके — पुजारीके — लिए भी ऐसा स्थान होना चाहिए जहाँ टीकाकार न हो और वह अपना कार्य निर्विघ्न सम्पन्न कर सके। इसलिए मैं यह मान लेता हूँ कि आज वही लोग यहाँ आये हैं जिनके मनमें कविश्रीके[१] प्रति प्रेमभाव है और जो उनके भक्त हैं। ऐसे श्रद्धालुओंको ही मैं कहना चाहता हूँ कि आजके प्रसंगका दूने उत्साहसे स्वागत किया जाना चाहिए।

जिनका पुण्य-स्मरण करनेके लिए हम यहाँ इकट्ठे हुए हैं वे दयाधर्मकी मूर्ति थे। उन्होंने दयाधर्मको जान लिया था और अपने जीवनमें उसका विकास किया था। इस समय हिन्दुस्तानमें हम जो काम कर रहे हैं उसमें भी दयाधर्म ही निहित है। यह काम हम रोषसे प्रेरित होकर नहीं कर रहे हैं। वस्तुस्थिति ऐसी आ पड़ी है कि हमें रोषके जबरदस्त कारण मिले हैं, हमें अत्यन्त आघात पहुँचा है। उस समय भी हमें

१. अर्थात् श्रीमद् राजचन्द्र।

इस बातका विचार रहा है कि आघात पहुँचानेवालेके साथ हम कैसा व्यवहार करें जिससे उसको आघात न पहुँचे बल्कि हम कुछ-न-कुछ उसका भला ही करें। असहयोग-का मूल दयामें निहित है, रोषमें नहीं। कदाचित् हम स्वयं भूलते हों यह सोचकर हम अपने विरोधीपर रोष नहीं करते। उससे हम स्वयं दूर भागते हैं।

इस तरह भागनेका परिणाम अवश्य गम्भीर होता है। इसलिए जिन व्यक्तियों अथवा जिस संस्थासे हम असहयोग करते हैं उस संस्थाको चलानेवाले व्यक्तियोंको आघात तो अवश्य पहुँचता है लेकिन दयाधर्मका अर्थ यह नहीं है कि आघात कभी किया ही न जाये। कविश्रीसे मैंने ऐसा दयाधर्म नहीं सीखा है। हमारे अपने सत्कार्यसे, कर्त्तव्य-पालनसे दूसरोंको दुःख होता हो तो उसे सहकर भी सत्कार्य करनेमें ही सच्चा दयाधर्म है।

मैं अनेक बार कह चुका हूँ कि मैंने बहुत सारे व्यक्तियोंके जीवनसे बहुत-कुछ ग्रहण किया है। लेकिन सबसे अधिक अगर मैंने किसीके जीवनसे ग्रहण किया है तो वह कविश्रीके जीवनसे ही किया है। दयाधर्म भी मैंने उनके जीवनसे सीखा है। ऐसा एक भी कार्य नहीं हो सकता जिससे किसीको भी आघात न पहुँचता हो लेकिन यह आघात दयासे प्रेरित होना चाहिए। इस आघातकी दो शर्तें हैं:

(१) हम अमुक कार्य तभी कर सकते हैं जब हमें अपने प्रतिपक्षी व्यक्तिसे अधिक आघात पहुँचता हो।

(२) हमारा हेतु अत्यन्त शुभ होना चाहिए, उसमें अपने विरोधीका कल्याण भी हमारे मनमें होना चाहिए।

मान लीजिये कि मेरा लड़का शराब पीता है, बीड़ी पीता है, व्यभिचारी है। वह मुझसे पैसा माँगता है। आजतक तो उसने माँगा और मैंने दिया क्योंकि मैं एक अन्धा बाप था। मैंने रायचन्दभाईके[1] प्रसंगसे सीखा कि मुझे स्वयं तो शराब-बीड़ी आदि नहीं ही पीनी चाहिए, व्यभिचार नहीं करना चाहिए लेकिन दूसरोंको भी उसमें से उबार लेना चाहिए। इसलिए मेरा धर्म है कि मैं अपने लड़केको पैसा न दूँ, उसके हाथमें शराबका प्याला देखूँ तो उसे छीन लूँ। मुझे मालूम हो कि वह अमुक सन्दूकमें शराब रखता है तो मुझे वह सन्दूक जला डालना चाहिए; बोतल देखूँ तो मुझे उसे फोड़ डालना चाहिए। ऐसा करनेसे लड़केको तो जरूर आघात पहुँचेगा और वह मुझे क्रूर बाप मानेगा। दयाधर्मको समझनेवाला बाप, पुत्रको आघात पहुँचेगा, यह सोचकर नहीं डरता, पुत्रके श्रापसे वह घबराता नहीं है। इस अवसरपर दयाधर्म — परोपकार-धर्म ही यह बताता है कि उसके हाथमें से शराबकी बोतल छीन लेनी चाहिए। बलप्रयोगके द्वारा मैं भले ही उससे बोतल न छीनूँ लेकिन मुझे अगर मालूम हो कि घरमें अमुक स्थान-पर वह बोतल रखता है तो वहाँसे बोतल लेकर मैं उसे फोड़ अवश्य डालूँगा।

रायचन्द भाईने दयाधर्मका बहुत ही सुन्दर मापदण्ड प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि हम सामान्य मामलोंमें किसीको व्यर्थ नाराज न करें, दयाधर्मका नाम लेकर दूसरोंको छोटी-छोटी बातमें टोकने न बैठ जायें, दयाधर्मके इस सामान्य नियमको अगर

१. गुजरातकी आम जनता श्रीमद् राजचन्द्रको इसी तरह पुकारती है।

हम समझ लें तो ऐसी अनेक बातें, जो हमारी समझमें पूरी तरह नहीं आती हम लोक-लज्जावश ही करने लग जायें। खादी किसलिए पहनी जाये यह बात मुझे समझमें न आये और मुझे झीनी मलमल अच्छी लगती हो तो भी जिस समाजमें मैं रहता हूँ वहाँ सब खादी पहनते हैं और खादी पहननेमें कुछ बुरा नहीं है, कोई अधर्म नहीं है ऐसा समझकर मैं वही करूँगा जो उस समाजमें होता है। यह सरल नियम मुझे रायचन्दभाईने ही सिखाया।

बम्बईमें हम एक बार दयाधर्मकी चर्चा कर रहे थे। चमड़ेका उपयोग करना चाहिए अथवा नहीं, इसका विचार हो रहा था। हम दोनोंने अन्तमें स्वीकार किया कि चमड़ेके बिना तो नहीं चल सकता। खेती-जैसे उद्योग तो चलने ही चाहिए; लेकिन अगर कुछ नहीं तो चमड़ा माथेपर तो कदापि नहीं पहनना चाहिए। मैं तो स्वभावसे ही जरा मजाक-पसन्द ठहरा। मैंने पूछा कि आपकी सिरकी टोपीमें क्या है? वे स्वयं तो आत्मचिन्तनमें लीन रहनेवाले थे। स्वयं क्या पहनते हैं, क्या ओढ़ते हैं इसका विचार करने नहीं बैठते थे। टोपीमें चमड़ा लगा हुआ है, यह उन्होंने देखा नहीं था। लेकिन जैसे ही मैंने उन्हें बताया वैसे ही उन्होंने टोपीमें से चमड़ा तोड़कर फेंक दिया। मुझे ऐसा नहीं लगता, मेरी दलील इतनी सशक्त थी कि वह तुरन्त उनके मनमें उतर गई, उन्होंने तो दलील ही नहीं की। उन्होंने यही सोचा होगा कि इसका हेतु अच्छा है, मेरे प्रति पूज्यभाव रखता है, उसके साथ बहस किसलिए करूँ? उन्होंने तो तुरन्त चमड़ेको उतार फेंका और मैं समझता हूँ कि बादमें उन्होंने कभी चमड़ा नहीं पहना। लेकिन अगर कोई मुझसे आज आकर यह बात कहे कि उसने उन्हें बादमें भी चमड़े-की टोपी पहनते हुए देखा है तो भी मुझे उससे आघात नहीं पहुँचेगा। अगर मैं फिर उनके पास पहुँचूँ तो वे उसे फिर उतार फेंकेंगे। वह इसीलिए रह गया होगा कि उसकी ओर उनका ध्यान ही नहीं था।

इसीमें महापुरुषका महत्व है। इससे यह पता चलता है कि उनमें मिथ्याभिमान नहीं होता। वे बालकसे भी सीख लेनेको तैयार रहते हैं। बड़े लोग छोटी बातोंमें मतभेद नहीं रखते हैं। छोटी-छोटी बातोंमें जो दयाधर्मका बहाना करके मतभेद रखता है, और आत्माकी आवाजकी बात करता है उससे मैं कहता हूँ कि उसे आत्माकी आवाज सुनाई नहीं पड़ती या फिर पशुकी तरह उसकी आत्मा सुप्त है। अधिकतर मनुष्योंकी आत्मा सुप्तावस्थामें ही रहती है। मनुष्यमें और पशुमें इतना ही भेद है कि मनुष्यकी आत्मा सम्पूर्ण रूपसे जाग्रत हो सकती है। अगर हम निन्यानवे अवसरोंपर दुनियाके साथ चलते हों तो सौवें अवसरपर उससे कह सकते हैं कि वह सही नहीं है। जन्मके साथ ही जो दुनियाके साथ वैर बाँध लेता है वह प्रेम कैसे कर सकता है?

अधिकांश अवसरोंपर तो हमें ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए मानो हम जड़ हों। शुद्ध जड़ और चैतन्यमें भेद नहींके बराबर है। सारा जगत जड़ रूपमें ही दिखाई देता है, आत्मा तो कभी-कभी ही चमकती है। अलौकिक पुरुषका व्यवहार ऐसा ही होता है और मैंने देखा है कि ऐसा ही व्यवहार रायचन्दभाईका था।

वे अगर आज जीवित होते तो इस समय जो प्रवृत्ति चल रही है उसको उन्होंने जरूर आशीर्वाद दिया होता। इस वस्तुमें धर्म है। जिसकी आत्मामें दयाधर्म वास

करता है वह इसमें पड़े बिना रह ही नहीं सकता। इसमें से राजनैतिक, आर्थिक आदि विषयों के परिणाम तो सुन्दर आयेंगे ही, लेकिन सबसे सुन्दर परिणाम तो यह होगा कि इस प्रवृत्तिसे बहुत सारे लोगोंका उद्धार हो जायेगा, बहुत सारे मोक्षके योग्य बन जायेंगे। अगर सालके अन्तमें हमें ऐसा अनुभव न हो तो मेरे लिए जीना दूभर हो जायेगा।

वे बहुत बार कहा करते थे कि अगर कोई मुझे चारों ओरसे बरछी भौंके तो मैं उसे सह सकता हूँ, लेकिन जगतमें जो झूठ, पाखण्ड और अत्याचार चल रहा है, धर्मके नामपर जो अधर्म किया जा रहा है उसकी बरछी सहन नहीं होती। अत्याचारोंपर उन्हें रोष आता था और मैंने उन्हें अनेक बार क्रोधित होते हुए देखा है। उनके लिए सारा जगत् उनका सगा था। अपने भाई अथवा बहनको मरते देख हमें जो क्लेश होता है उतना ही क्लेश उन्हें जगतमें दुःख और मृत्युको देखकर होता था। अगर कोई कहता कि लोग अपने पापके कारण दुःख पा रहे हैं, तो वे कहते : लेकिन उन्हें पाप करना क्यों पड़ा? जब पुण्यको सरल मार्ग नहीं मिलता और बड़ी-बड़ी खाइयों और पर्वतोंको लाँघना पड़ता है तब उसे हम कलिकाल कहते हैं। उस समय जगतमें पुण्य बहुत नहीं दिखाई देता, स्थान-स्थानपर पाप ही दिखाई देता है। पुण्यके नामपर पाप चल पड़ता है। वैसी स्थितिमें अगर हम दयाधर्मका पालन करना चाहें तो हमारी आत्मा क्लेशसे विकल होनी ही चाहिए। हमें ऐसा लगेगा कि ऐसी स्थितिमें जीवित रहनेकी अपेक्षा तो देह जर्जरित हो जाये अथवा उसका अवसान हो जाये, यही ज्यादा अच्छा है।

रायचन्दभाईका इतनी कम उम्रमें देहावसान हो गया, इसका कारण भी मुझे यही लगता है। यह सच है कि वे बीमार थे, लेकिन जगतके तापका जो कष्ट उन्हें था वह उनके लिए असह्य था। अगर उन्हें केवल शारीरिक कष्ट ही होता तो वे जरूर उसपर विजय पा लेते। लेकिन उन्हें लगा कि ऐसे विषम कालमें आत्मदर्शन कैसे हो सकता है? यह उनके दयाधर्मका सूचक है।

दयाधर्मकी परिसीमा खटमलको न मारनेमें नहीं है। यह सच है कि खटमलको नहीं मारना चाहिए, लेकिन खटमलोंकी उत्पत्तिको भी रोकना चाहिए। खटमलोंको मारनेमें जितनी क्रूरता है उससे कहीं अधिक क्रूरता उनको उत्पन्न होने देनेमें है।

हम सब खटमलोंको पैदा करते हैं, श्रावक भी ऐसा ही करते हैं और मैं वैष्णव भी ऐसा करता हूँ। हम शौचादिके नियमोंसे परिचित ही नहीं हैं। परिग्रहको बढ़ाते समय हम कोई विचार नहीं करते और अनावश्यक वस्तुओंके परिग्रहसे खटमल नहीं होंगे तो और क्या होगा?

खटमल, मच्छर आदि क्षुद्र जन्तुओंको न मारनेमें दयाधर्म है। लेकिन इससे बढ़कर दयाधर्म तो यह है कि हम मनुष्यकी हत्या न करें। मनुष्यको मारें अथवा खटमलको — यह प्रश्न उपस्थित होनेपर हम क्या करेंगे? मनुष्यको मारकर मच्छरको उबारनेका प्रसंग आना भी सम्भव है। मैं तो इन दोनों तरहके प्रसंगोंसे छुटकारा पानेका मार्ग बताता हूँ और वह है दयाधर्म।

कविश्रीका कहना था कि "जैन-धर्म अगर श्रावकोंके हाथमें न गया होता तो इसके तत्त्वोंको देखकर जगत चकित हो उठता। बनिये तो जैन-धर्मके तत्त्वोंको बदनाम

कर रहे हैं। वे तो चींटियोंको 'चून' डालते हैं। आलू उनके मुँहमें चला जाये तो उन्हें दुःख होता है। ऐसी छोटी-छोटी बातोंमें वे धर्मका पालन करते हैं। उनकी यह सावधानी उन्हें मुबारक हो लेकिन जो यह मानते हैं कि इनमें ही जैन-धर्मकी परिसीमा है, वे लोग धर्मकी निम्नसे निम्नतर श्रेणीमें आते हैं। इतना-सा धर्म तो पतितका धर्म है, यह पुण्यवान्का धर्म नहीं है।" इसलिए अनेक श्रावक कहते हैं कि राजचन्द्रको धर्मका भान न था, वे दम्भी थे, अहंकारी थे। मैं स्वयं तो यह जानता हूँ कि उनमें दम्भ अथवा अहंकारका नाम भी न था।

यद्यपि खटमल आदि जन्तुओंको नष्ट नहीं करना चाहिए तथापि उनको न मारने तक ही दयाधर्म सीमित नहीं है। उन्हें न मारना धर्मकी पहली सीढ़ी-भर है। किसी समय लोगोंमें ऐसी मान्यता रही होगी कि मनुष्यको बचानेकी खातिर किसी भी जन्तुकी हत्या करना पाप नहीं है; उस समय कोई साधु खड़ा हुआ होगा और उसने जन्तुओं-की रक्षापर अधिक जोर दिया होगा। इस साधुने कहा होगा कि 'मूर्ख! इस क्षणभंगुर देहकी खातिर जन्तुओंका नाश न कर। बल्कि तेरे मनमें इस बातकी आतु-रता होनी चाहिए कि यह देह कल नष्ट होता हो तो आज ही नष्ट हो जाये।" और इसीसे अहिंसाका जन्म हुआ होगा। लेकिन जो खटमलको तो नहीं मारता परन्तु अपनी स्त्री और पुत्रपर हाथ उठाता है वह व्यक्ति न तो जैन है, न हिन्दू है और न वैष्णव ही है; वह तो शून्य है। हम कविश्रीके जन्मोत्सवके मंगल अवसरपर दयाधर्मके संकुचित अर्थको छोड़ उसके व्यापक अर्थको ग्रहण करें। एक भी जीवको दुःख देना, उसे दुश्मन मानना, पाप है। जो यह चाहते हैं कि जनरल डायरको फाँसी दी जाये, सर माइकेल ओ'डायरको सुलगती हुई भट्टीमें झोंक दिया जाये — वह श्रावक नहीं है, वैष्णव भी नहीं, और न हिन्दू ही। वह कुछ भी नहीं है। अहिंसाका रहस्य यही है कि क्रोधका शमन करें, आत्माकी मलिनताको दूर करें। जनरल डायरकी परीक्षा लेनेवाला मैं कौन हूँ? मैं जानता हूँ कि मैं रोषसे भरा हुआ हूँ। मैं मन-ही-मन कितने ही लोगों-की हत्या करता होऊँगा, तब तो जनरल डायरका विचार करनेवाला मैं कौन? इसलिए मैंने निश्चय किया है कि अगर कोई मुझे तलवारसे मारे तो भी मुझे उसको नहीं मारना है। यह दयाधर्म है; यही असहयोग आन्दोलनका रहस्य है।

लेकिन जब मैं बोलता हूँ तब मैं दयाधर्म शब्दका प्रयोग नहीं करता। आज रायचन्दभाईकी जयन्ती होनेके कारण मैं दयाधर्मकी बात करता हूँ। मैं जानता हूँ कि इस आन्दोलनका परिणाम तो यही है और यह परिणाम होगा तो लोग अपने-आप ही इस बातको जान लेंगे।

सर्पको मारनेमें पाप है लेकिन उसकी अपेक्षा मनुष्य शरीरधारी सर्प अथवा बाघको मारनेमें अधिक पाप है। पशु-बाघको तो हम भयवश होकर मारते हैं, क्रोधसे प्रेरित होकर नहीं। यदि वास्तवमें कोई धर्मराज है और वह हमारे पाप-पुण्यका निर्णय करता है तो वह बाघको मारनेवाले व्यक्तिपर दया खाकर कदाचित् उसे माफ कर देगा। क्योंकि उसमें तो उस व्यक्तिने अपने पशुधर्मका ही पालन किया, एक पशुने दूसरे पशुको मार डाला। लेकिन मनुष्यकी हत्या करनेमें तो क्रोधका भाव होता है, अभिमान होता है, दम्भ होता है। धर्मराज कहेगा: "अरे मूर्ख! तूने अमुक

मनुष्यकी हत्या की, तो उसके पीछे तो जाने कितनी खटपट, कितना पाखण्ड रहा होगा।"

श्रावकोंसे और दूसरे सब लोगोंसे मैं कहता हूँ कि जीवदयाका अर्थ केवल कीड़े-मकौड़े आदि सूक्ष्म जन्तुओंको न मारना ही नहीं है। यह सच है कि उन्हें नहीं मारना चाहिए लेकिन मनुष्य योनिके किसी भी जीवको धोखा नहीं देना चाहिए। तिसपर भी अधिकांश व्यापारी इसके सिवा और क्या करते हैं? यदि कोई श्रावक मुझे अपनी बहियाँ दिखाये तो मैं उसे बता दूँगा कि वह श्रावक नहीं है। जिस कपड़ेका हम व्यापार करते हैं वह कैसे तैयार होता है? उसके उत्पादनमें कहीं कोई पापकर्म तो नहीं है; उसको जो माँड़ी दी जाती है उसमें चरबी तो नहीं होती, इन बातोंपर व्यापारियोंको विचार करना चाहिए। दुगुना दाम लेना उन्हें हराम होना चाहिए। यह श्रावकोंका धर्म नहीं है। अपनी मजदूरीके खयालसे चीजोंके दाममें वे एक पैसा अथवा दो पैसे चढ़ाएँ, यह तो ठीक है, लेकिन इतनी सब खटपट किसलिए? इतना पाखण्ड क्यों? ब्याज तो इतना अधिक लिया जाता है कि देनेवाला बिलकुल मर जाता है। जहाँ जाता हूँ वहाँ श्रावक और वैष्णव दोनों ही प्रकारके बनियोंके खिलाफ शिकायतें मिलती हैं। अनेक गोरे मुझपर व्यंग कसते हैं कि आपके लोग ही कितना ज्यादा ब्याज लेते हैं।

हमें नीच बनिया न रहकर शुद्ध क्षत्रिय बन जाना चाहिए। वैश्य-धर्म अर्थात् मजूरी बिलकुल नहीं, हल नहीं, शौर्य नहीं, विवेक नहीं — सो बात नहीं। सच्चा वैश्य तो अपनी उदारतामें शौर्य — क्षत्रियत्वका प्रदर्शन करता है, व्यापारमें विवेक बरतता है; वह शराब नहीं बेचेगा, मछली नहीं बेचेगा, सिर्फ शुद्ध खादी ही बेचेगा और वह विवेकका विकास करके ब्राह्मण-धर्मका भी पालन करेगा। अन्य सब लोग हमारे लिए मजदूरी करें और हम पड़े-पड़े खाते रहें तो हम पतित बनते हैं। यज्ञके रूपमें भी हमें प्रतिदिन थोड़ी-बहुत मजदूरी कर लेनी चाहिए।

बनियेका मुख्य धर्म तो व्यापार ही रहे लेकिन उसमें अन्य धर्मोंका समावेश भी अवश्य होना चाहिए। अपनी स्त्रीकी रक्षाके लिए अगर मुझे काबुली अथवा पठान रखना पड़े तो उसकी अपेक्षा मुझे — मेरे हिन्दू होनेके बावजूद — अपनी स्त्रीसे तलाक ले लेना चाहिए। लेकिन आज अधिकांश बनिये क्या करते हैं? उन्होंने सिपाही, भैया-लोग और पठान रख छोड़े हैं। वे भले ही इन्हें भी रखें इस बातसे मुझे कोई ईर्षा नहीं, लेकिन अगर आपमें अपनी स्त्री और बच्चोंकी रक्षा करनेकी ताकत नहीं है, तो आप जाकर कुटियामें बैठ जायें और वहाँ रहकर अपने धर्मको सुशोभित करें। उस हालतमें, दुखियोंकी रक्षाके लिए दौड़नेके धर्मसे बनिया मुक्त हो जायेगा; जब जहाँ ऐसे दुःखी दिखाई देंगे वहाँ क्षत्रिय उनकी रक्षा करनेके लिए पहुँच जायेंगे।

रायचन्दभाईके जीवनसे मुझे सबसे बड़ी बात यह दिखाई दी कि बनियेको बनिया ही बने रहना चाहिए। आज तो बनिये, बनिये नहीं रहे। सच्चा बनिया बननेके लिए बड़ा पण्डित बनने अथवा बड़ी-बड़ी पोथियाँ पढ़नेकी जरूरत नहीं है। जो मलिन न हो, यम-नियमका पालन करनेवाला हो, असत्य और अधर्मसे दूर रहनेवाला हो, जिसके हृदयको काम-वासना छू तक न गई हो, जिसके हृदयमें दयाधर्मका वास हो वह

"केवली"[1] बन सकेगा, उसके लिए केवल ज्ञान अप्राप्य नहीं होगा। इसलिए मैं आपसे यह नहीं कहता कि आप संस्कृत पढ़ें, या भगवती-सूत्रका पाठ करें। आप पढ़ें अथवा न पढ़ें — इस विषयमें मैं तटस्थ हूँ।

वढवाणमें जब जयन्ती मनाई गई थी तब "राजचन्द्र-पुस्तकालय" खोलनेका निश्चय किया गया था। पुस्तकालयकी इमारत बनवानेकी बात भी हुई थी। उसके सम्बन्धमें मैंने बहुत ज्यादा उत्साह प्रकट नहीं किया था। मैंने कहा था इमारत हो लेकिन अगर उसमें आत्मा न हो तो इमारत तो केवल ईंटकी बनी हुई है। आज तीन वर्षके बाद हमारा वह संकल्प सफल हो रहा है। सब अनुकूल संयोग इकट्ठे हो गये हैं। उसके लिए हमें मुनि जिनविजयजी-जैसे योग्य पुरुषकी सेवाएँ प्राप्त हुई हैं। पुरातत्व मन्दिरका पुस्तकालय भी उसीमें जोड़ दिया गया है। जो कोई वहाँ जानेकी तकलीफ उठायेगा उसे मुक्तभावसे उसका लाभ मिलेगा।

आपने जो-कुछ सुना है उसे अपने साथ ले जाना और अपने जीवनमें उतारना। जितना आपको टीका योग्य जान पड़े उतना तुरन्त त्याग देना लेकिन जो लेने योग्य जान पड़ा हो, कर्णप्रिय लगा हो, हृदयको अच्छा लगा हो उसका तो आज ही से अमल करना शुरू कर देना।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २४–११–१९२१

१८८. सन्देश : बम्बईकी सार्वजनिक सभाके लिए

१७ नवम्बर, १९२१ के पूर्व

मुझे दुःख है कि मैं स्वयं इस बार बम्बईमें एक दिनके लिए भी नहीं आ सकता।[2] लेकिन मैं यहाँ जिस कार्यमें रुका हुआ हूँ वह कार्य बम्बईमें किये जानेवाले सुन्दर कार्यसे भी अधिक महत्वका है, ऐसा जानकर आप मुझे क्षमा करेंगे, इस बातकी मुझे पूरी-पूरी उम्मीद है।

अगर आप बम्बईको सुशोभित करना चाहते हैं तो :

१. राजकुमारके स्वागतार्थ होनेवाले किसी भी समारोहमें एक बच्चातक न जाये।
२. तमाशोंको मुफ्तमें देखनेका आयोजन किया गया हो तो भी उसमें छोटे-बड़े कोई न जायें; तमाशा देखनेके लिए और बहुत सारे दिन पड़े हुए हैं।
३. कोई स्त्री या पुरुष १७ तारीखको बिना किसी कामके घरसे बाहर निकले ही नहीं।

१. जिसे विशुद्ध ज्ञान प्राप्त हो गया है।

२. लेकिन बादमें उन्हें आनेके लिए राजी कर लिया गया था। देखिए "भाषण: बम्बईकी सार्वजनिक सभामें", १७–११–१९२१।

४. जहाँ राजकुमारके लिए कोई समारोह हो रहा हो, उस दिशामें कोई भूलचूकसे, कौतूहलवश भी, न जाये।
५. घरमें बैठकर सूत कातें और अगर न आता हो तो आठ घंटे शान्त चित्त किसीके पास बैठकर सीख ले।
६. प्रत्येक व्यक्ति अधिक नहीं तो थोड़ा समय भगवत् भजन अथवा बन्दगीमें अवश्य व्यतीत करे। शहरके लोग ऐसा न समझें कि ईश्वर तो कहीं है ही नहीं अथवा है तो भी राष्ट्रके कार्यमें उसका नाम अथवा मदद माँगनेकी कोई जरूरत नहीं है।
७. राजकुमारके उतरनेका जो समय निर्धारित किया गया हो उसी समय एल्फिन्स्टन रोडके पासवाले मैदानमें आप लोग विदेशी कपड़ोंकी होली करें; होली करनेके लिए जहाँ-जहाँसे विदेशी कपड़े इकट्ठे न किये गये हों वहाँ-वहाँसे उन्हें इकट्ठा किया जाये।
८. चलती गाड़ी आदिसे किसीको बलपूर्वक न उतारें।
९. मजदूर या नौकरियाँ करनेवाले दूसरे लोग छुट्टीके बिना काम बन्द न करें।
१०. प्रत्येक कार्यमें मनुष्यको अपनी इच्छाके अनुसार व्यवहार करनेकी छूट हो, तभी हममें स्वराज्यकी योग्यता आयेगी।

याद रखिए :

राजकुमारके स्वागतार्थ किये जानेवाले समारोहोंमें हम भाग नहीं लेनेवाले हैं, उसका कारण हमें उनसे कोई व्यक्तिगत द्वेषभाव है सो नहीं; उन्होंने हमें कोई नुकसान नहीं पहुँचाया है। उसका कारण यह है कि नौकरशाही उनका जो दुरुपयोग कर रही है उससे हमें अलग रहना है। अतएव एक ओर जहाँ हमारा कर्त्तव्य स्वागत-सम्मानका बहिष्कार करना है वहाँ दूसरी ओर हमारा यह भी कर्त्तव्य है कि हम अपनेको जोखिममें डालकर भी युवराजके शरीरकी रक्षा करें; हमें ऐसा कुछ नहीं करना है जिससे उनका किंचित भी अपमान होता हो।

मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]
गुजराती, २०–११–१९२१

१८९. पत्र : हाजी सिद्दीक खत्रीको

[१७ नवम्बर, १९२१ के पूर्व][१]

भाईश्री अहमद हाजी सिद्दीक खत्री,

इसके साथ प्रस्तावका मसविदा भेज रहा हूँ। इसमें कुछ फेरफार करना हो तो करना। 'यंग इंडिया'में मैंने जो सुझाव दिया है उसे पढ़ जाना। उसके अनुसार सब स्थानोंपर किसी प्रतिष्ठित मौलानासे हस्ताक्षर करवा कर पर्चे बाँटे जायेंगे तो ठीक होगा। १७ तारीखको समस्त हिन्दुस्तानमें सम्पूर्ण शान्ति रहे, इसीपर हमारी विजयका आधार होगा। आजसे १७ तारीखतक अगर खूब काम किया जायेगा तो मुझे दृढ़ विश्वास है कि १७ तारीखको सब कामकाज बन्द रहेगा और शान्ति रहेगी। इस सम्बन्धमें हम पूरी तरह सत्यका ही सहारा लेंगे तभी सफल होंगे। यह जरूरी है कि नेता लोग एकान्तमें और सार्वजनिक रूपसे एक ही बात करें।

हाजी सिद्दीक खत्री
हिलाल मंजिल
८५, अब्दुल रहमान स्ट्रीट

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ६१६२)की फोटो-नकलसे।

१९०. टिप्पणियाँ

मेरी असंगतियाँ

एक पत्र-लेखकने अपने पत्रमें कुछ युक्ति-संगत प्रश्न इस तीखे ढंगसे रखे हैं:

"जब जुलू लोग अपनी आजादीके लिए उनपर अन्यायसे अपना कब्जा कर लेनेवाले ब्रिटिश लोगोंके खिलाफ उठ खड़े हुए थे तब आपने उनके उस कथित "बलवे"को दबानेके लिए अंग्रेजोंको मदद दी थी। क्या विदेशी शासनके जुएको उतार फेंकनेका प्रयत्न करना बलवा है? जोन ऑफ आर्क[२] बलवाई थी? क्या जॉर्ज वाशिंगटन[३] बागी थे? क्या डि वलेरा[४] भी बागी हैं? आप कहेंगे कि जुलू लोगोंने मारकाटका अवलम्बन लिया था। तब मैं पूछता हूँ कि उनका उद्देश्य

१. पत्र १७ नवम्बरको युवराजके बम्बई पहुँचनेपर किये जानेवाले प्रदर्शनोंके सम्बन्धमें लिखा गया था।

२. १४१२–१४३१; फ्रांसीसी बालिका, जिसकी प्रेरणासे फ्रांसीसियोंने अंग्रेजोंको ओरलीन्ससे बाहर खदेड़ा।

३. १७३२–९९; अमरीकाके प्रथम राष्ट्रपति।

४. एमॉन डि० वलेरा, आयरलैंडके प्रधान-मंत्री १९३८–४८, १९५१–५४; १९५६ से राष्ट्रपति।

बुरा था या साधन? उनके साधन भले ही बुरे रहे हों, परन्तु उनका उद्देश्य तो हरगिज बुरा नहीं था। अतः आप कृपा करके इस जटिल प्रश्नको समझाइए। इस पिछले महायुद्धमें भी, जिसमें जर्मन और आस्ट्रियाई वीर संसारकी संयुक्त शक्तियोंसे ऐसी वीरताके साथ लड़ रहे थे, आपने अंग्रेजी फौजके लिए रंगरूट भर्ती किये थे। किसलिए? जिन राष्ट्रोंने भारतका कुछ भी अहित नहीं किया था उनसे लड़नेके लिए? जब कभी दो जातियोंमें युद्ध छिड़ता है तब, किसीके पक्षमें या विपक्षमें निर्णय करनेके पहले, उन दोनों जातियोंकी बातें सुननी पड़ती हैं। पिछले महायुद्धमें हमें सिर्फ एकतरफा बातें मालूम होती थीं और सो भी उस राष्ट्रकी मार्फत जिसकी ख्याति सच्चाई और ईमानदारीके लिए हरगिज नहीं है। आप हमेशासे ही सत्याग्रह और अहिंसाकी तरफदारी करते आये हैं। तब आपने लोगोंको ऐसे युद्धमें शामिल होनेके लिए, जिसकी बुराई और अच्छाईका उन्हें पता नहीं था और ऐसी जातिको ऊपर उठानेके लिए, जो कीचड़में बुरी तरह लोट रही है, क्यों उत्साहित किया? शायद आप कहेंगे कि अंग्रेजी नौकरशाहीपर आपका भरोसा था। किन्तु क्या ऐसे विदेशी लोगोंपर कोई भरोसा रख सकता है जिनके व्यवहार और वचनोंमें सदा इतना साफ विरोध रहा है? और आपके सदृश उच्च गुण-सम्पन्न व्यक्ति तो ऐसा कर ही नहीं सकता। अतः आप कृपया इस दूसरे जटिल प्रश्नका भी उत्तर दीजिए।

अब एक दूसरी बातपर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। आप अहिंसाके प्रतिपादक हैं। वर्तमान परिस्थितिमें तो हमें कड़ाईसे अहिंसाका पालन करना चाहिए। परन्तु जब हिन्दुस्तान आजाद हो जायेगा, तब किसी दूसरे राष्ट्रका हमपर हमला होनेपर भी, क्या हम हथियारसे हाथ खींच लेंगे और उनसे बिलकुल काम न लेंगे? जब रेलवे, तार और जहाजोंके द्वारा हमारे देशकी पैदावारका दूसरे देशोंको अधिकाधिक भेजा जाना बन्द हो जायेगा, क्या तब भी आप इन वस्तुओंका बहिष्कार ही करेंगे?"

मैंने अपने बारेमें असंगतिके कई इल्जाम पढ़े और सुने हैं। परन्तु मैं उनका जवाब नहीं देता; क्योंकि उनका असर मेरे सिवा किसी दूसरेपर नहीं होता। तथापि इन सज्जनने जो प्रश्न किये हैं वे आमतौरपर मार्केके और उत्तर देनेके योग्य हैं। हाँ, वे मेरे लिए नये तो कदापि नहीं हैं। परन्तु मुझे याद नहीं आता कि मैंने 'यंग इंडिया'में कभी उनका जवाब दिया है।

मैंने महायुद्धमें सहायता क्यों दी?

सिर्फ जुलू जातिके बलवेके[1] समय ही मैंने अपनी सेवाएँ अर्पण नहीं कीं, बल्कि उससे पहले, बोअर युद्धके[2] समय भी, मैंने अपनी सेवाएँ दी थीं। और मैंने सिर्फ गत

१. देखिए खण्ड ५।
२. देखिए खण्ड ३ और ४।

महायुद्धके समय ही रंगरूट भरती नहीं किये थे[1] बल्कि १९१४ में भी लन्दनमें एक घायल शुश्रूषा दलका संगठन किया था।[2] इसलिए ऐसा करके यदि मैंने पाप किये हों तो मेरा यह पापोंका घड़ा अब पूरा भर चुका है। सरकारको सहायता देनेका कोई अवसर मैंने कभी नहीं गँवाया। उन तमाम कठिन प्रसंगोंपर दो सवाल मेरे मनमें उपस्थित हुआ करते थे। साम्राज्यके नागरिककी हैसियतसे — क्योंकि मैं पहले अपनेको इस साम्राज्यका नागरिक मानता था — मेरा क्या कर्त्तव्य है, और अहिंसा-धर्मके कट्टर अनुगामीकी हैसियतसे मेरा क्या कर्त्तव्य है?

अब मैं समझ गया कि उस समय जो मैं अपनेको इस साम्राज्यका नागरिक समझता था, वह मेरी गलती थी। किन्तु उन चारों मौकोंपर मेरा यह सच्चा विश्वास था कि यद्यपि मेरा देश अभी कितना ही निर्योग्यताओंसे पीड़ित है तथापि वह स्वतन्त्रताके मार्गपर बराबर आगे बढ़ रहा है। और मेरा विश्वास यह भी था कि लोगोंकी दृष्टिसे सरकार बिलकुल ही बुरी नहीं है तथा अंग्रेज शासक संकुचित दृष्टिवाले और जड़ होनेपर भी सच्चे हैं। मेरे विचार ऐसे थे; अतएव उस समय मैंने वैसे ही काम किये जैसे एक साधारण अंग्रेज उस परिस्थितिमें करता। उस समय मुझे इतना ज्ञान और महत्व प्राप्त नहीं हुआ था कि मैं किसी कामको स्वतन्त्र रूपसे करता। उस समय ब्रिटिश मंत्रियोंके निर्णयोंपर अदालती अहमियतके साथ विचार या छानबीन करना मेरा काम नहीं था। बोअर युद्ध, जुलू बलवे या गत महायुद्धके समय मैंने ब्रिटिश मन्त्रियोंपर 'दुर्भाव'का लांछन कभी नहीं लगाया। मैंने यह कभी खयाल नहीं किया और न अब भी करता हूँ कि अंग्रेज लोग खास तौरपर दूसरे लोगोंसे ज्यादा बुरे हैं। मैं पहले भी मानता था और अब भी मानता हूँ कि वे उतने ही महान उद्देश्य रख सकते हैं और कार्य कर सकते हैं और साथ ही उतनी गलतियाँ भी कर सकते हैं जितनी कि कोई भी दूसरा मानव-समुदाय। इसलिए मैं मानता था कि स्थानिक अथवा सामान्य आवश्यकताके समय इस साम्राज्यको अपनी क्षुद्र सेवाएँ अर्पण करके मैंने एक मनुष्य और साम्राज्यके नागरिककी हैसियतसे अपने कर्त्तव्यका पर्याप्त पालन किया है; और मैं हरएक हिन्दुस्तानीसे यह उम्मीद करता हूँ कि वह भी स्वराज्य स्थापित होनेपर इसी तरह देशके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन करेगा। अगर ऐसे हर खयाल आने लायक मौकेपर हममें से हरएक आदमी खुद अपनी मर्जीको ही अपना कानून मानेगा और इस देशकी भावी राष्ट्रीय संसदके प्रत्येक कार्यको सोनेके कांटेमें तोलेगा तो मुझे अत्यन्त दुःख होगा। मैं तो अधिकांश मामलोंमें अपना निर्णय राष्ट्रीय प्रतिनिधियोंके हवाले कर दूँगा — हाँ, उन प्रतिनिधियोंके चुनावमें अलबत्ता मैं खासतौरपर सावधान रहूँगा। मैं समझता हूँ, दूसरे किसी तरीकेसे कोई भी प्रजासत्तात्मक सरकार एक दिन भी नहीं टिक सकेगी।

परन्तु अब तो मेरी दृष्टिमें सारी स्थिति ही बदल गई है। मैं समझता हूँ अब मेरी आँखें खुल गई हैं। अनुभवोंने मुझे होशियार बना दिया है। अब मैं वर्तमान

१. देखिए खण्ड १४ और १५।

२. देखिए खण्ड १२।

शासन-प्रणालीको बिलकुल बुरा समझता हूँ और मानता हूँ कि इसको मिटाने या सुधारनेके लिए देशको खास तौरपर कोशिश करनेकी जरूरत है। अपना सुधार वह स्वयं नहीं कर सकती। हाँ, अब भी मैं यह जरूर मानता हूँ कि कितने ही अंग्रेज पदाधिकारी सच्चे हैं। परन्तु इससे मुझे कोई मदद नहीं मिल सकती; क्योंकि मैं समझता हूँ कि वे भी मेरी तरह ही अन्धे हो गये हैं और भ्रममें पड़े हुए हैं। इसलिए इस साम्राज्यको अपना कहनेमें या अपनेको इसका नागरिक कहनेमें मुझे जरा भी अभिमान नहीं मालूम होता। बल्कि, इसके विपरीत, मैं तो अच्छी तरह देख रहा हूँ कि मैं इस साम्राज्यमें एक अतिशूद्र अछूत हूँ। अतः जिस तरह एक हिन्दू अतिशूद्र अछूतके लिए ईश्वरसे हिन्दू-धर्म या हिन्दू-समाजके मूलतः पुनर्संगठन या सर्वनाशकी प्रार्थना करना सर्वथा न्याय है उसी तरह मेरे लिए परमात्मासे भी इस साम्राज्यके मूलतः पुनर्संगठन या सर्वनाशकी प्रार्थना करनेके अतिरिक्त दूसरी गति नहीं है।

अब अहिंसाके प्रश्नको लीजिए। यह और भी पेचीदा है। अहिंसाका जो अर्थ मैं समझता हूँ वह तो मुझे प्रायः इन तमाम हलचलोंसे, जिनमें आज मैं लगा हूँ, अलहदा रहनेकी ही प्रेरणा देता है। इधर मेरी आत्मा तबतक सन्तुष्ट नहीं होती जबतक मैं एक भी अत्याचारको या थोड़ेसे भी दुःखको असहाय बनकर चुपचाप खड़ा-खड़ा देखता रहूँ। लेकिन मुझ-जैसे एक दुर्बल चित्त, अशक्त और दुःखी प्राणीके लिए हरएक अन्यायको दूर करना या उन तमाम अत्याचारोंके दोषसे, जिन्हें मैं देखता हूँ, अपनेको मुक्त रखना मुमकिन नहीं है। मेरा आत्मभाव मुझे एक तरफ ले जाता है और देहभाव मुझे दूसरी तरफ खींचता है। हाँ, इन दोनों शक्तियोंके प्रभावसे मनुष्य मुक्त हो सकता है; परन्तु यह मुक्ति उसे धीरे-धीरे और एकके बाद एक कष्टकर मंजिलसे पार करके ही प्राप्त हो सकती है। मैं यन्त्रवत् बिना विचारे कर्म करना बन्द करके उस मुक्तिको नहीं पा सकता; बल्कि वह तो सारासार-विचारके साथ निष्काम रहकर कर्म करनेसे ही प्राप्त होगी। इस युद्धका यही निश्चित परिणाम है कि देहभाव निरन्तर क्षय होता चला जाये, जिससे आत्मा पूर्ण रूपसे मुक्त हो सके।

कुछ और बातें

फिर मैं एक मामूली नागरिक था। मैं अपने साथियोंसे अधिक समझदार न था। मैं तो अहिंसाका माननेवाला था; परन्तु दूसरे लोग उसके तनिक भी कायल नहीं थे। सरकारको मदद देना उनका कर्त्तव्य था। उसका पालन वे नहीं करते थे क्योंकि वे क्रोध और द्वेषके भावसे प्रेरित थे। वे अपने अज्ञान और दुर्बलताके कारण मुँह मोड़ रहे थे। अतः एक साथीके नाते उन्हें ठीक-ठीक मार्ग बताना मेरा कर्त्तव्य हो गया। मैंने उनको उनका कर्त्तव्य बताया, उन्हें अहिंसाका सिद्धान्त समझाया और उन्हें जो ठीक लगे वही करना उनकी मर्जीपर छोड़ दिया। अहिंसाकी दृष्टिसे मुझे अपने कार्योंका जरा भी अफसोस नहीं; क्योंकि स्वराज्यमें भी मैं उन लोगोंको जो हथियार बाँधना और अपने देशकी रक्षा करना चाहेंगे ऐसा करनेकी सलाह देनेमें जरा भी न हिचकूँगा।

भविष्यमें क्या होगा ?

इससे एक दूसरा प्रश्न मेरे सामने उपस्थित होता है। मेरे स्वप्नगत स्वराज्यमें तो शस्त्रास्त्रकी कतई जरूरत नहीं है। लेकिन मैं यह उम्मीद नहीं करता हूँ कि यह स्वप्न, इस वर्तमान प्रयत्नके फलस्वरूप, सोलहों आने सच्चा हो जायेगा। इसका पहला कारण तो यह है कि यह आन्दोलन इस ध्येयको तात्कालिक लक्ष्य बनाकर नहीं किया जा रहा है और दूसरा यह कि मैं अपनेको इतना आगे बढ़ा हुआ नहीं समझता कि राष्ट्रके सामने ऐसा विस्तृत व्यवहार-क्रम उपस्थित कर सकूँ और वह उसके अनुसार उसकी तैयारी कर सके। मैं खुद भी अभी इतना विकार-ग्रस्त हूँ और मुझमें मनुष्य-स्वभावकी इतनी कमजोरियाँ हैं, जिससे मुझे ऐसी प्रेरणाका या क्षमताका अनुभव नहीं होता। अपने लिए मैं अगर किसी बातका दावा कर सकता हूँ तो सिर्फ इसी बातका कि मैं अपनी कमजोरियोंको दूर करनेका निरन्तर प्रयत्न कर रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि मैंने अपनी इन्द्रियोंको दमन करने और वशमें करनेकी क्षमता बहुत-कुछ प्राप्त कर ली है; परन्तु अभी मैं इस लायक नहीं हुआ हूँ कि मुझसे कोई पाप बन न पड़े — अर्थात् मैं इन्द्रियोंसे प्रभावित न हो सकूँ। हाँ, मैं इस बातको मानता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य ऐसी मंगलमय अवर्णनीय पापरहित अवस्थाको प्राप्त कर सकता है और उसमें, अपने अन्तःकरणमें, किसी अन्यकी नहीं वरन केवल एक परमात्माकी उपस्थिति अनुभव कर सकता है। और मुझे मंजूर करना चाहिए कि अभी वह अवस्था मुझसे बहुत दूर है। अतः मेरे लिए देशको पूर्ण अहिंसाके व्यवहारका कोई मार्ग बताना अभी सम्भव नहीं है।

रेल और तार

जिस महान सिद्धान्तका विवेचन मैंने ऊपर किया है उसके मुकाबलेमें यह रेल और तारका प्रश्न बहुत ही नगण्य है। मैं खुद अपने लिए इन सुविधा-साधनोंसे परहेज नहीं कर रहा हूँ। मैं निश्चय ही न तो राष्ट्रसे इनका उपयोग छोड़ देनेकी उम्मीद करता हूँ और न स्वराज्य हो जानेपर उनका व्यवहार बन्द होनेकी अपेक्षा करता हूँ। लेकिन हाँ, स्वराज्यान्तर्गत राष्ट्रसे मैं यह जरूर चाहता हूँ कि वह इस बातपर विश्वास न करे कि इन सुविधा-साधनोंसे अवश्य ही हमारी नैतिक उन्नति होती है या ये हमारी भौतिक प्रगतिके लिए अनिवार्य हैं। मैं राष्ट्रको यह सलाह देता हूँ कि वह इन साधनोंका उपयोग कम मात्रामें करे और हिन्दुस्तानके साढ़े सात लाख गाँवोंमें तार और रेलका जाल बिछा देनेके लिए बुरी तरह लालायित न हो। राष्ट्र जब आजादीकी दमकसे दमकने लगेगा तब जान जायेगा कि हमारे शासकोंको उनकी आवश्यकता हमारे अज्ञान-अन्धकारको दूर करनेकी बनिस्बत हमें गुलाम बनानेके लिए ही अधिक थी। प्रगति तो लंगड़ी होती है। वह कूदती-फुदकती ही आ सकती है। आप उसे तार या रेलके द्वारा नहीं भेज सकते।

पतित बहनें

पाठक यह जानकर खुश होंगे कि बारीसालमें 'पतित बहनों' के सुधारका काम उत्साहसे शुरू कर दिया गया है। डाक्टर राय लिखते हैं कि हम कितनी ही बहनोंके

घरोंमें जा चुके हैं और अब कताई शुरू करा रहे हैं। बाबू अश्विनीकुमार दत्तके स्कूलके निरीक्षक जगदीश बाबूने उन युवक कार्यकर्त्ताओंकी रहनुमाई करनेका वचन दिया है, जिन्होंने इस जवाबदेहीकी सेवाका भार ग्रहण किया है। मुझे आशा है कि जिन लोगोंने इस परम आवश्यक कार्यको अपने हाथमें लिया है वे इसे अधूरा ही न छोड़ देंगे। उन्हें बार-बारकी निराशाओंका सामना करनेके लिए तैयार रहना चाहिए और धीरे-धीरे प्रगति होनेकी उम्मीद करनी चाहिए। सिर्फ ऐसे ही कार्यमें, जिसमें न तो किसी तरहकी उत्तेजनाकी गुंजाइश है और न शीघ्र ही प्रसिद्धि मिलनेकी सम्भावना है, सच्चे सेवा-प्रेमकी परीक्षा होती है। मैं बारीसालके इस उदाहरणको इस लायक मानता हूँ कि दूसरे शहरोंके लोग भी उसका अनुसरण करें। यह आत्मशुद्धि-का काम तो स्वराज्यके बाद भी जारी रहेगा। हाँ, हरएक आदमी इसे नहीं कर सकता। इसलिए सिर्फ वे लोग ही इस बढ़ते हुए पापाचारको मिटानेके लिए आगे बढ़ें जिनका दिल इसके लिए उत्सुक हो और जिनकी आत्मा काफी पवित्र हो। इस आन्दो-लनकी स्वभावतः दो शाखाएँ हैं — एक, पतित बहनोंका सुधार करना और दूसरी, पुरुषोंको इस पतनकारी पापसे विरत करना। इसी पापके कारण पुरुष अपनी इन बहनोंको कामुक दृष्टिसे देखते और उन्हें उसका शिकार बनानेके लिए ललचाते हैं। दोनों शाखाओंमें काम करनेके लिए एकसे ही गुणोंकी जरूरत है। दोनों दिशाओंमें साथ-ही-साथ काम होना चाहिए। तभी वह सफल हो सकता है।

कारावासका प्रभाव

डा० रायने अपने जिस पत्रमें बारीसालकी पतित बहनोंमें किये जानेवाले कार्यका वर्णन किया है, उसीमें वे लिखते हैं:

> **पूर्वी बंगालमें हिन्दू-मुस्लिम एकता अब काफी मजबूत है और लोगोंमें विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार प्रायः पूर्णतापर पहुँच चुका है। पूर्वी बंगाल इन दोनों बातोंके लिए पीर बादशाह मियाँकी गिरफ्तारीका ऋणी है।**

हर दिशासे इसी तरहके प्रमाण मिल रहे हैं। किन्तु हमें निश्चिन्त होकर नहीं बैठना है। अभी भी करनेके लिए बहुत काम बाकी है। एकता और बहिष्कार ये दोनों अभी कोमल पौधे-जैसे हैं। इनकी रक्षा आवश्यक है और उन्हें सावधानीसे सींचना जरूरी है। हिन्दू-मुस्लिम एकता हरेकको मजबूत करनी चाहिए और दोनोंको बिना किसी दिखावेके एक-दूसरेकी चुपचाप सेवा करनेके लिए सदा तैयार रहना चाहिए। विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार केवल इसी तरह जारी रखा जा सकता है कि सभी लोग हाथसे कताई करने लगें, और कुटिया-कुटियामें चरखेका सद्भाव-संचारी संगीत गूँजने लगे। गाँवोंके हर मण्डलमें एक ऐसा विशेषज्ञ होना चाहिए जो सूतको ज्यादा मजबूत, इकसार और महीन बनानेपर जोर दे। भारतमें काफी जुलाहे हैं। यदि हम उन्हें हाथका कता अच्छा सूत दे सकें तो उससे मिलके सूत-जैसी ही बुनाई हो सकती है। अकेले इस कार्यसे मिलके बने भारतीय कपड़ेकी कीमतें इतनी नीचे आ जायेंगी जितनी और किसी कार्यसे नहीं आ सकतीं।

एक रहस्यवादी द्वारा कताईकी प्रशंसा

एक मित्रने मुझे हाथ-कताईपर जॉर्ज मैकडॉनल्डकी 'द प्रिंस एण्ड कर्डी' पुस्तकसे यह उद्धरण भेजा है:

"वह झिझक ही रहा था कि तभी उसे चरखेकी घूं-घूं सुनाई दी। इस आवाजको वह तुरन्त पहचान गया। क्योंकि बहुत पहले उसने अपनी माँके चरखेसे ही बहुत-कुछ सीखा था, और वह अब भी उससे बहुत कुछ सीखता था। पहले-पहल उसने चरखेसे ही छन्द बनाना, गीत गाना और यह सोचना सीखा था कि उसके अन्तःकरणमें सब-कुछ ठीक है या नहीं? अथवा उसे कमसे-कम इन सब बातोंमें उससे सहायता अवश्य मिली थी। इसलिए, चरखेके संगीतको सुनते ही पहचान जाना इसके लिए कोई आश्चर्यकी बात नहीं थी।"

चटगाँवका उपद्रव[1]

मेरे तारके[2] उत्तरमें प्रसन्न बाबूने विस्तृत विवरण भेजा है। इसे यहाँ दे रहा हूँ:

यद्यपि लोगोंने पूर्णतया अहिंसाका पालन किया था, और गोरखोंने ही उनपर हमला करके मारपीट की थी, फिर भी नौकरशाहीने गिरफ्तमें आनेसे बचनेका एक शानदार तरीका निकाला है। उसने धारा १४४के अधीन नेताओं, स्वयंसेवकों और बाहरके लोगोंके नाम अन्धाधुन्ध नोटिस जारी किये हैं। इनमें बताया गया है कि वे न तो सार्वजनिक रास्तोंपर जुलूस निकालें और न ही उनमें शामिल हों, और इसका कारण यह बताया है कि २० तारीखके जुलूसमें जो लोग शामिल थे उन्होंने पुलिसपर पत्थर बरसाये थे और अन्य हिंसात्मक कार्रवाइयाँ की थीं। इस तरहके नोटिस इसी २७ तारीखको जारी किये गये। उनमें यह कहा गया है कि मजिस्ट्रेटको जुलूसके बारेमें और पुलिसको लोगोंके प्रहार करनेपर जो चोटें आईं उनके बारेमें पुलिस सुपरिंटेंडेंटकी रिपोर्टसे २५ तारीखको ही जानकारी मिली थी।

कल भारतीय दण्ड संहिताकी धारा १४४ और धारा १४७के अधीन खिलाफत कमेटीके अध्यक्ष मौलवी मुहम्मद काजिम अली, श्रीयुत कालीशंकर चक्रवर्ती, सम्पादक 'ज्योति' (स्थानीय बंगाली दैनिक) तथा प्रेमानन्द दत्त, सुखेन्दु-विकास सेन और मुहम्मद सिराजुल हक नामक स्वयंसेवकोंके खिलाफ एक झूठा मुकदमा भी किसी तरह बनाकर दायर कर दिया गया है। ये पाँचों अभियुक्त गिरफ्तार कर लिये गये हैं, जिनमें से दूसरे और पाँचवें अभियुक्त जमानत देकर बाहर आ गए हैं और बाकीने हवालातमें ही रहना पसन्द किया है। प्रेमानन्द दत्त २० तारीखको ढाकामें थे और फिर भी उनका नाम अभियुक्तोंमें दर्ज है।

१. देखिए "एक और गोरखा हमला", ३–११–१९२१।
२. उपलब्ध नहीं है।

लोग शान्तिसे कांग्रेसके कार्यक्रमपर अमल कर रहे हैं। सड़कोंपर शायद ही कोई आदमी विलायती कपड़े पहने नजर आता हो। हम आपको यह विश्वास दिला सकते हैं कि यहाँपर बहिष्कार आन्दोलन सफल रहा है।

आन्दोलनका गला घोंटनेका यह सुचिन्तित प्रयास निश्चय ही विफल होना है। उपद्रवकी पिछली सूचनामें जिस गैर-सरकारी आयोगका जिक्र था उसने बहुत ही फुर्तीसे काम किया है और अपनी रिपोर्ट प्रकाशित कर दी है। उससे स्थानीय कांग्रेसके मन्त्री द्वारा दिये गये तथ्योंकी पुष्टि होती है। रिपोर्टमें कहा गया है कि कमसे-कम १०४ लोगोंको चोटें लगीं और घाव आये। उनमें एक नौ सालका लड़का और कमसे-कम एक तो औरत भी थी। वह बेचारी यह चिल्लाती रही, मैं तो स्त्री हूँ, परन्तु उससे कोई लाभ नहीं हुआ। कुछ लोगोंको गहरे घाव आये हैं।

बहादुर विद्यार्थी

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका जब अधिवेशन हो रहा था, तभी विशाखा-पट्टमसे मेडिकल कालेजके बहादुर विद्यार्थियोंका नीचे दिया हुआ दिलचस्प तार मिला। पाठकोंको यह स्मरण होगा कि इन विद्यार्थियोंको खादी पहननेकी धृष्ठताके कारण कालेजसे निकाल दिया गया है :

खादी टोपी पहननेके कारण मेडिकल कालेजसे निकाले गये, विशाखापट्टमके हम उनतालीस छात्र कांग्रेस समितिके इस महत्वपूर्ण अधिवेशनके अवसरपर जिसमें ६ दिसम्बरतक स्वराज्यके प्रश्नका फैसला अवश्य कर दिया जायेगा, अपना सादर प्रणाम निवेदन करते हैं। भारतमाताकी पुकारपर, हमने संघर्षके दौरान पढ़ाई बन्द रखने और राष्ट्रीय सेवामें भाग लेनेका संकल्प किया है। इसीलिए हमने रामडाण्डु सेवा समितिके रूपमें अपना संगठन बना लिया है और हम घर-घर जाकर स्वदेशीका प्रचार कर रहे हैं। धनके लिए हम अभीतक अपने ऊपर ही निर्भर रहे हैं; आपको और कांग्रेस समितिको स्वराज्यके ध्येयके प्रति अपनी निष्ठाका विश्वास दिलाते हैं और विनम्रतापूर्वक अपनी सेवाएँ अर्पित करते हैं। हम भावी संघर्षमें कठिनाइयाँ झेलनेके लिए तैयार हैं। आपकी आज्ञाओं और सहायताकी हमें प्रतीक्षा है जो हमें हमारे प्रधान, सुन्दरराव या बैरिस्टर प्रकाशमके द्वारा भेजी जा सकती हैं।

मैं हर विद्यार्थीका ध्यान इस तारकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। इन नवयुवकोंने खादी टोपी पहनकर और आत्मसम्मानके लिए बहादुरीके साथ कष्ट उठाकर अपने स्वाभिमानी होनेका तथा अपना समय राष्ट्रकी सेवामें लगाकर देशप्रेमका परिचय दिया है।[1] यह देश दासताकी जीर्णव्याधिसे पीड़ित है। जो लोग इस व्याधिकी वास्तविक

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २४-११-१९२१ का उप-शीर्षक "चिकित्सा-शास्त्रके छात्रोंके बारेमें कुछ और।"

औषधि खोजने और उसे प्रयुक्त करनेमें अपनी शक्ति लगायेंगे, वे ही सच्चे सर्जन और डाक्टर बन जायेंगे और जब यह व्यापक व्याधि दूर हो जायेगी तो दूसरी बहुत-सी व्याधियाँ बिना किसी उपचारके ही गायब हो जायेंगी। उसके पश्चात् जो व्याधियाँ शेष रह जायेंगी उनके इलाजके लिए देश पुरुष और महिला चिकित्सक तैयार करनेकी ज्यादा अच्छी स्थितिमें होगा।

देशी रियासतें

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने कांग्रेसकी परराष्ट्र सम्बन्धी नीति निश्चित कर दी है। अतः हमारी देशी-रियासत सम्बन्धी नीतिको निश्चित करनेकी माँग भी रखी गई। यह स्वाभाविक ही था। नागपुरके अधिवेशनमें इस विषयकी स्थल रूपरेखा बनाई गई थी — अर्थात् यह बात तय पाई गई थी कि इन रियासतोंके भीतरी मामलोंमें हस्तक्षेप न किया जाये। देशी राज्य खुद भी इससे ज्यादा अच्छी या ज्यादा स्पष्ट बातकी अपेक्षा नहीं कर सकते थे। और अ० भा० कांग्रेस कमेटी तो सिर्फ उस प्रस्तावकी सीमाके अन्दर-ही-अन्दर अपनी नीति निश्चित कर सकती है। अ० भा० कांग्रेस कमेटीके कार्यकर्त्ताओंने बिलकुल उस प्रस्तावके अनुसार कार्य किया है। वे असहयोगका सन्देश देशी-राज्योंमें नहीं ले गये हैं। हाँ, उसके चिरस्थायी, आत्मशुद्धिकारी या आर्थिक भाग इसके अपवाद हैं; और वे बातें तो असहयोगके अलावा भी हितकर ही साबित होंगी। वे क्या हैं — शराबखोरी छुड़ाना, स्वदेशीका इस्तेमाल करना, हिन्दू-मुस्लिम एकताको बढ़ाना, अहिंसाका अवलम्बन लेना और छुआछूतको मिटाना। अ० भा० कांग्रेस कमेटी तो इन राज्योंके प्रति जबतक वहाँकी प्रजाके साथ अच्छा सलूक किया जाता है, सद्भावना ही रख सकती है। और उसके साथ दुर्व्यवहार किये जानेपर भी अ० भा० कांग्रेस कमेटी लोकमतके सिवा किसी दूसरे बल या दबावका प्रयोग नहीं कर सकती और न करेगी। इसलिए, जब आवश्यकता होती है, राष्ट्रीय दलके पत्र किसी राज्यकी प्रजाके दुख-दर्दकी पुकारपर कड़ी आलोचना करनेमें नहीं हिचकिचाते। एक मिसाल लीजिए। सेठ जमनालालजी और उनके कुछ साथी बीकानेर राज्यमें गये थे। वहाँ वे महज स्वदेशी-प्रचारका उद्योग करना चाहते थे। परन्तु राज्यकी ओरसे उनके साथ नादानीका और मनमाना बुरा बरताव किया गया। उसपर पत्रोंमें इसकी बहुत तीखी आलोचना की जाती रही है। यह ठीक है। जो राज्य प्रगतिशील हैं वे अ० भा० कांग्रेस कमेटीसे हर तरहके प्रोत्साहनकी और जो प्रतिक्रियावादी हैं वे अपनी कार्य-प्रणालियों और कार्य-साधनोंकी कड़ीसे-कड़ी नुक्ताचीनीकी आशा रख सकते हैं। इसके सिवा अ० भा० कांग्रेस कमेटी इन देशी राज्योंकी इस अपमानजनक हालतमें उनके साथ हमदर्दी रखनेके सिवा और क्या कर सकती है? साम्राज्य शक्तिने अपनी आर्थिक लूट-खसोटकी बाजीमें उन्हें अपना मोहरा बना रखा है। समय-समयपर जो नाजायज और दाव-पेंच भरा दबाव उनपर डाला जाता है, उसको रोकनेकी उनमें बहुत ही कम जुर्रत है। अतएव उन्हें यह जानना चाहिए कि जन-शक्तिकी बढ़तीका अर्थ है मेरे बताये हुए उस अपमानजनक प्रभावमें कमी।

समुद्र पारसे

कराचीके मुकदमोंकी समुद्र-पारके देशोंमें भी कितनी सराहना की गई है, यह ट्रान्सवाल ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष, श्री अस्वातके अभी-अभी मिले इस तारसे मालूम होगा :

> **अली-बन्धुओं, डा० किचलू और मातृभूमिके निमित्त जेल जानेवाले अन्य लोगोंके परिवारोंको सारी बिरादरीकी हार्दिक बधाइयाँ। ईश्वरसे प्रार्थना है कि आन्दोलन सफल हो।**

हमें अपने भारतसे बाहर रहनेवाले देशवासियोंकी ओरसे इस तरहके जो अनेक तार या पत्र प्राप्त हुए हैं मैंने यहाँ उनमें से केवल एक तार ही छापा है।

अमेरिकामें बसे हुए हमारे देशवासी भी देशके इस कार्यमें सक्रिय सहायता दे रहे हैं। हाल ही में न्यूयार्कसे दो तार प्राप्त हुए हैं। उनमें से आखिरमें मिले तारको मैं यहाँ देता हूँ :

> **एक हजार अमेरिकियोंकी खुले मैदानमें की गई सभाका अभिनन्दन स्वीकार करें। हम सविनय अवज्ञा आन्दोलनकी सफलताकी कामना करते हैं।**

सुदूर पश्चिममें रहनेवाले सभी युवक छात्रों व अन्य लोगोंसे मैं दो शब्द कहना चाहता हूँ। वे देशकी सबसे अधिक सेवा इस प्रकार कर सकते हैं कि वे इस आन्दोलनकी व्याख्या उसके यथार्थ रूपमें और पूर्वके अर्थोंमें करें, वे इसकी पाश्चात्य मिसालें खोजने और इसे पाश्चात्य रंग देनेकी कोशिश न करें। मेरा यह विश्वास है कि इसके वर्तमान रूपकी कोई मिसाल नहीं है। इसकी कल्पना प्राच्य बल्कि उससे भी अधिक भारतीय है और वह भारतकी स्थितियोंमें विशेष रूपसे उपयुक्त है। अभी यह कुछ कहा नहीं जा सकता कि जब इसकी जड़ें इतनी गहरी पहुँच जायेंगी कि अपनी शाखाएँ पश्चिममें फैला सकें तब आधुनिक दौड़में लगा पश्चिम इसको किस रूपमें अपनायेगा। अभी तो यह अपनी शैशवावस्थामें है और रूपरंगमें प्रायः पाश्चात्य दिखता है। दुर्भाग्यसे यह स्वीकार करना पड़ता है कि अभीतक इसका रूप बहुतोंको केवल विनाशात्मक दिखता है और वे उसे इसी रूपमें ग्रहण करते हैं। यद्यपि इसका यह विनाशात्मक रूप नितान्त आवश्यक है, फिर भी इसका स्थायी और सर्वश्रेष्ठ भाग तो रचनात्मक ही है। मैं इस तथ्यसे अभिज्ञ हूँ और मुझे इससे बहुत दुःख होता है कि बहुतसे लोगोंको यह असहयोग आन्दोलन केवल हिंसाकी तैयारी-मात्र लगता है; जबकि अहिंसा इसका केवल अभिन्न अंग ही नहीं है बल्कि एकमात्र पोषक अंग है। यह स्वयं-निर्माणका सबसे बड़ा भाग है। साथ ही अहिंसा इसको एक धार्मिक आन्दोलनका रूप दे देती है और मनुष्यको केवल ईश्वरपर आश्रित बना देती है। अहिंसा द्वारा असहयोगी दृढ़तासे अपने मार्गपर डटा रहता है और सभी अवस्थाओंमें धीर गतिसे आगे बढ़ता है। अहिंसा द्वारा असहयोगी अपने सिरजनहारके सामने नग्न रूपमें आ जाता है और दिव्य सहायता प्राप्त कर लेता है। वह उसके सम्मुख एक हाथमें 'बाइबिल,' 'कुरान' या 'गीता' लेकर और दूसरेमें बन्दूक लेकर उपस्थित नहीं हो सकता। इसके विपरीत वह उसके महान धवल सिंहासनके

आगे हाथ जोड़े एक विनम्र प्रार्थीके रूपमें उपस्थित होता है। दूसरे देशोंमें रहनेवाले भारतीय युवकोंको इस आन्दोलनके मूल अंगको पहले समझना चाहिए और उसके बाद ही पश्चिमके सामने इसकी व्याख्या करनेकी कोशिश करनी चाहिए। वे देखेंगे कि इसी प्रकार समझदारीसे दी गई सहायतासे, जो परिणाम अबतक निकले हैं उनसे कहीं अच्छे परिणाम निकलेंगे।

कांग्रेस अधिवेशनकी नई विशेषताएँ

आशा है कि आगामी कांग्रेस अधिवेशनकी, कुछ नई विशेषताएँ होंगी। इसकी एक विशेषता यह होगी कि इसमें प्रख्यात व्यक्ति चाहे उनकी राजनीतिक मान्यता कुछ भी हो, अपने-अपने विशिष्ट विषयोंपर भाषण देंगे। इसकी दूसरी विशेषता होगी एक संगीत सम्मेलन जिसमें समस्त भारतके संगीतकार भाग लेनेके लिए आमन्त्रित किये गये हैं। गन्धर्व महाविद्यालयके संगीताचार्य श्री ना० मो० खरे उसका आयोजन कर रहे हैं। मुझे विश्वास है कि देशकी ओरसे इसे आम समर्थन मिलेगा। प्रान्तीय और जिला कांग्रेस समितियोंके मन्त्री इस आयोजनमें सहायता दे सकते हैं। हो सकता है कि कुछ कलाकारों-की निगाह कांग्रेसकी सूचनाओंपर न जाये। उच्च कोटिका भारतीय संगीत प्रोत्साहन न मिलनेके कारण ह्रासको प्राप्त हो रहा है। सीधे-सादे भारतीय वाद्ययन्त्र कितना आश्चर्यजनक प्रभाव उत्पन्न करते हैं, इसका हमें ज्ञान नहीं है। कारण चाहे कुछ भी रहा हो, परन्तु हम इस भ्रांतिमें हैं कि जिस चीजपर बहुत खर्च नहीं आता या जो पश्चिमसे नहीं आई है उसमें कोई वास्तविक कला या विशेषता नहीं हो सकती। कांग्रेसके मंचसे संगीत-सम्मेलनके आयोजनका उद्देश्य यही है कि सर्वसाधारणके मनसे यह भ्रान्ति निकाल दी जाये। संगीत सम्मेलनके साथ भारतीय वाद्ययंत्रोंकी एक प्रदर्शनी भी होगी। मुझे आशा है कि भारतीय संगीतके प्रेमी श्री खरेसे शीघ्रातिशीघ्र पत्र-व्यवहार करेंगे और उनके कार्यमें हाथ बँटायेंगे। यह बतानेकी कोई आवश्यकता नहीं है कि कांग्रेस अधिकारियोंको उन्हींको आमंत्रित करना चाहिए जो इस क्षेत्रमें प्रमुख स्थान रखते हों।

अमंगलकारी प्रतिबन्ध

मेरा यह विश्वास है कि ईश्वर, हमारे द्वारा, व्यक्तियों और राष्ट्रोंके निमित्त या विरुद्ध कार्य करता है, और मेरा यह विश्वास उतना ही निश्चित है जितना सूर्यके नियमित रूपसे एक निश्चित समयपर उदय होनेका विश्वास। इसलिए जब मैं यह सुनता हूँ कि किसी खास स्कूलमें अछूतोंके प्रवेशपर प्रतिबन्ध लगा है तो मैं काँप जाता हूँ और यह जान लेता हूँ कि हम अभी स्वराज्यके योग्य नहीं हैं। मेरे सामने मद्रास अहातेसे आया एक पत्र है जिसमें यह शिकायत की गई है कि एक स्कूलके प्रधानाध्यापकने अपने छात्रोंको एक प्रवेशार्थी पंचम लड़केके प्रवेशके विरुद्ध भड़का दिया है। मैं आशा करता हूँ कि इस प्रकारका अचिन्तनीय पूर्वग्रह तेजीसे कम हो रहा है और इस तरहकी घटनाएँ विरल होती जा रही हैं। मुझे इसमें किसी भी प्रकारका सन्देह नहीं है कि हम यदि स्वराज्यसे अभी दूर लगते हैं तो इसका कारण हमारी अपनी कमजोरियाँ हैं और यह तथ्य है कि हमने अपने लिए खुद जो शर्तें रखी थीं वे पूरी नहीं की हैं। उनमें सबसे बड़ी शर्त है, अपने देशवासियोंके छठे भागके खिलाफ लगे इस

अमंगलकारी प्रतिबन्धको दूर करना। कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंको इसके खिलाफ एक जबर्दस्त आन्दोलन चलानेकी जरूरत महसूस करनी चाहिए। इससे उनके स्वदेशीके कार्यमें किसी तरहका विघ्न नहीं पड़ सकता, क्योंकि स्वयं स्वदेशीके गहन कार्यका प्रभाव हमारे दलित देशवासियोंके लिए बहुत ही शक्तिशाली और हितकारी होता है। यदि चरखेका सन्देश हमारे देशके इन अत्यन्त निःसहाय भाइयोंके घरोंमें नहीं पहुँचेगा तो, भारत आत्म-निर्भर नहीं हो सकेगा। और यह सन्देश इनतक तबतक नहीं पहुँचाया जा सकेगा जबतक हम इन्हें अपने सगे भाई-बहनोंकी तरह नहीं समझेंगे, जिन्हें हमारे अधिकसे-अधिक सौजन्य और प्रेमकी आवश्यकता है।

डेरा इस्माइलखाँ

डेरा इस्माइलखाँकी जिला कांग्रेस कमेटीके मंत्रीने लिखा है कि सर्वश्री प्याराखाँ, देवीदास, निर्मलदास, किशनचन्द भाटिया, हाजी अहमद्दीन, अल्लाबख्श और मुहम्मद रमजान द्वारा कराची प्रस्तावको दोहरानेके कारण उनसे जमानत दाखिल करनेको कहा गया था। चूँकि उन्होंने जमानत देनेसे इनकार कर दिया था, इसलिए उन्हें दो-दो वर्षकी साधारण कारावासकी सजा दे दी गई। मन्त्रीने आगे लिखा है कि मुकदमा एक तमाशा था जो सिर्फ दो घंटे चला। लाला प्याराखाँ अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सदस्य हैं। वे बलूचिस्तानमें पन्द्रह साल सरकारी नौकरी कर चुके हैं। जलियाँवाला बागके हत्याकांडके बाद वे सरकारी नौकरी छोड़कर कांग्रेसमें शामिल हो गये थे और गिरफ्तारीके समय उसके स्थानीय मन्त्री थे। उन्होंने पत्रमें लिखा है कि ये सजायें कराचीके मुकदमोंके फैसलेसे पहले सुनाई गई हैं। किन्तु इससे भी आश्चर्यकी बात तो यह है कि जिन्होंने यह प्रस्ताव बम्बईमें दुहराया और रहनुमाई की उन्हें तो छुआ भी नहीं गया; परन्तु जिन्होंने बम्बई घोषणा-पत्रके हस्ताक्षरकर्त्ताओंका अनुसरण किया उन्हें जेलमें बन्द कर दिया गया। मैं डेरा इस्माइलखाँके इन अधिक सौभाग्यशाली लोगोंको बधाई देता हूँ।

कुरान छीन ली गई

मीरपुर खासकी जिला खिलाफत कमेटीके मन्त्री लिखते हैं कि मौलवी अब्दुल करीम साहबसे, जिन्हें हाल ही में सजा हुई है और जो इस समय हैदराबाद जेलमें कैद भुगत रहे हैं, 'कुरान' छीन ली गई है। मौलवी उतने प्रसिद्ध नहीं हैं, क्या इसीलिए उनसे 'कुरान' छीन ली गई है? क्योंकि कराचीके प्रसिद्ध बन्दियोंके साथ तो ऐसा व्यवहार किया नहीं गया है। इसी तरहके अविचारपूर्ण और अनावश्यक अत्याचारसे दुर्भावना पैदा होती है, जिसे रोकना कठिन हो जाता है। कायदेकी लड़ाई किसीको बुरी नहीं लगती, परन्तु कैदीसे उसकी धार्मिक पुस्तक ले लेना नीचताकी हद है।

पूर्वग्रह और धृष्ठता

तंजौर जिलेसे एक मनुष्यने लिखा है, "मैं और मेरे भाई यद्यपि ब्राह्मण हैं, परन्तु हमने आलसी जीवन बितानेकी अपेक्षा कुछ काम करना ठीक समझा और 'हल चलाना शुरू कर दिया। इस तरह हम खेती करने लगे। यह बात हमारे गाँवके लोगोंको बहुत बुरी लगी और उन्होंने हमें बिरादरीसे निकाल दिया। परन्तु हम अपने निश्चयपर दृढ़

रहे। जब कुम्भकोणमके शंकराचार्य जिलेमें घूमते हुए हमारे इलाकेमें पधारे तो हम भी उनको भेंट देने गये। परन्तु उन्होंने हमारी भेंट स्वीकार नहीं की, क्योंकि हमने अपनी जीविकाके लिए श्रम करनेका पाप किया था। किन्तु मैं श्री शंकराचार्यके इस व्यवहारसे तनिक भी हतोत्साहित नहीं हुआ हूँ।" मैं इन भाइयोंको उनकी लोकसेवाकी भावनापर बधाई देता हूँ। एक अत्याचारी समाजसे निकाल दिया जाना वास्तवमें योग्यताका पुरस्कार है और उसका स्वागत किया जाना चाहिए। यह कहना कि ब्राह्मणको हल नहीं छूना चाहिए, वर्णाश्रम धर्मका मजाक है और 'भगवद्गीता' के अर्थका अनर्थ है। विभिन्न वर्णोंकी जो मुख्य विशेषताएँ बताई गई हैं, वे निश्चय ही अन्य वर्णोंके लिए निषिद्ध नहीं हैं। क्या वीरता केवल क्षत्रियका ही और संयम केवल ब्राह्मणका ही विशेषाधिकार है? क्या ब्राह्मणों, क्षत्रियों और शूद्रोंको गो-रक्षा नहीं करनी चाहिए? जो व्यक्ति गौ के लिए मरनेको तैयार न हो, क्या वह हिन्दू रह सकता है? फिर भी यह बहुत ही अजीब बात है कि मद्रास अहातेसे आये एक पत्रमें गम्भीरतापूर्वक यह कहा गया है कि वैश्योंके सिवाय अन्य किसीका गो-रक्षासे कोई सरोकार नहीं है। जब धृष्टताके साथ इतना अधिक अज्ञान भी हो तो सर्वश्रेष्ठ उपाय यही है कि मनुष्य तमाम खतरे उठाकर सुधारके मार्गपर चलता रहे और यह आशा रखे कि समय आनेपर उसकी सच्चाई सिद्ध हो जायेगी। यदि हम दृढ़ता और प्रेमसे काम करें तो अन्तमें हम समस्त विरोधको निरस्त्र कर देंगे। सुधारकोंको न तो पश्चात्ताप करना चाहिए और न क्रुद्ध ही होना चाहिए।

थियेटरोंमें खादी

एक पत्रमें सुझाव दिया गया है कि यदि बम्बई और अन्य स्थानोंके सभी थिएटर अपनी वेशभूषाके लिए खादीका उपयोग करने लगें, तो इससे खादीका चलन बढ़ जायेगा। विचार निश्चय ही बहुत अच्छा है। परन्तु इसका लागू होना बहुत हदतक दर्शकोंपर निर्भर करता है। यदि दर्शक खादीकी वेशभूषाके लिए आग्रह करने लगें तो थिएटरोंके मालिक उसे प्रयोगमें लानेको बाध्य हो जायेंगे। उनकी रुचि आम तौरपर वैसी ही होती है जैसी जनता बनाती है। थिएटरोंमें खादीकी पोशाकोंका उपयोग जारी करनेका सबसे अच्छा तरीका यही है कि नाटकोंके दर्शक खादीकी पोशाकोंकी माँग करने लगें। उन्हें इस बातपर भी नजर रखनी होगी कि कहीं चुपकेसे वहाँ नकली खादी न आ घुसे, क्योंकि अन्य स्थानोंकी अपेक्षा थिएटरोंमें तथाकथित कला या रुचिके नामपर सत्यकी बलि दिये जानेकी अधिक संभावना रहती है। मैं समझता हूँ कि दर्शक रंगों और तड़क-भड़कपर जोर देंगे। उधर, खादीमें रंगोंका हल्का और सुन्दर समन्वय तो पूर्णतया सम्भव है और उसमें कुछ सजावट भी लाई जा सकती है; परन्तु मोटी किस्ममें — और उसीको लोकप्रिय बनाना जरूरी है — विचित्र रंगोंका मेल करनेसे वह भद्दी ही लगेगी। इसलिए थिएटरोंमें खादीको बड़े पैमानेपर अपनानेका अर्थ है जनताकी रुचिमें क्रान्ति लाना और उसे फिर सादगी और स्वाभाविक सौन्दर्यकी ओर मोड़ना। हमारे आजके थिएटर अन्य देशोंके थिएटरोंकी तरह राष्ट्रीय नैतिकता या राष्ट्रीय रुचिकी कसौटी नहीं हैं, बल्कि वे विकृत रुचियों और राष्ट्रके अप्राकृतिक व अपरिपक्व विकासके फल हैं। यदि कोई साहसी व्यवस्थापक लोक-रुचिमें प्रगतिकारी

सुधारकी आवश्यकताको स्वीकार कर दृश्यपट और वेषभूषामें मौलिक परिवर्तन करे तो वह नाटक-प्रेमी जनताके धन्यवादका पात्र ही होगा।

अक्लमन्दीका एक सुझाव

खादीके आन्दोलनमें पूरा देश जिस तरहकी दिलचस्पी ले रहा है वह सचमुच उल्लेखनीय है। थियेटरोंके जरिये खादीको लोकप्रिय बनानेका सुझाव पूनाके एक ग्रेजुएटने भेजा था। पंजाबके एक सज्जनने अपने पंजाबके अनुभवके आधारपर यह सुझाव दिया है। भारतमें सबसे ज्यादा सर्दी शायद पंजाबमें ही पड़ती है और वहाँ शरीरको गर्म रखनेका सबसे आम तरीका है रुई-भरे चार सूती कपड़े पहनना और रुई-भरी रजाइयाँ ओढ़ना। उनसे शरीरको ऊनी कपड़ों और ऊनी कम्बलोंसे भी अधिक गर्मी मिलती है। लेकिन सूती कपड़े कुछ समय बाद बेहद गन्दे हो जाते हैं। इसके लिए उसका सुझाव है कि इन कपड़ोंको या इनके भीतरकी रुईको हर साल सर्दियोंमें बदल दिया जाये। रजाइयाँ बहुत ही आसानीसे बदली जा सकती हैं। इसलिए उसका कहना यह है कि इनकी रुईको फिर धुन लेना चाहिए और खादी बनानेके लिए कात लेना चाहिए। पहले लिहाफ, यदि विलायती हों तो, स्वभावतः नष्ट कर देने चाहिए। इनका जलाना उचित ठहरानेके लिए विनाशके गुण-दोषोंपर विचार करनेकी जरूरत नहीं है, क्योंकि इनमें से बहुतोंपर वर्षोंकी गन्दगी जमी होती है। लेकिन यदि लिहाफ खादीके बना लिये जायें तो वे रुई निकालकर गर्मियोंमें भी इस्तेमाल किये जा सकते हैं और इस सुझावके अनुसार जब फिर सर्दी आये तब उनके लिए नई रुई खरीद ली जा सकती है। यह सुझाव एक मेहनती परिवारके लिए वाकई बहुत अच्छा और एक गरीब परिवारके लिए बहुत किफायतका सुझाव है, क्योंकि इसमें कोई भी चीज बर्बाद नहीं जाती और सफाई रहती है। यदि गरीब लोग सिर्फ मामूली सिलाई सीख लें, जो कि जरूरी है, तो उन्हें बिना अधिक खर्चा किये ही कई सालतक अलग-अलग मौसमोंके लायक गर्म या ठंडे स्वास्थ्यप्रद कपड़े मिल सकते हैं। यदि यह सारी व्यवस्था होशियारीसे की जाये तो पाठक देखेंगे कि एक परिवारको हर साल थोड़ी रुई खरीदनेसे और ज्यादासे-ज्यादा अपने जुलाहेको बुनाई देनेसे, पहनने और ओढ़नेके कपड़े मिल सकते हैं। उससे धुनाई, कताई और सिलाईका खर्च बच जाता है। ये काम बिना किसी कठिनाईके फुरसतके समयमें किये जा सकते हैं। इनसे मनोरंजनके समयमें कोई कमी नहीं होगी, या जैसा कि स्वर्गीय लॉर्ड केल्विन अपने बारेमें कहा करते थे, कार्यके परिवर्तनसे मनोरंजन प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन मैं जितना किसी गुजरातीको जानता हूँ उतना ही पंजाबीको भी जानता हूँ। मुझे मालूम है कि कपड़ोंकी अपनी जरूरतोंको पूरा करनेके लिए उसके पास काफी समय बचता है। लेकिन अक्लमन्दीके इस सुझावको अमलमें लानेके लिये राष्ट्रीय आदतोंमें पूर्ण परिवर्तन करना आवश्यक है। यदि राष्ट्रको दरिद्रताकी स्थितिमें से निकालना है, तो इस तरहके परिवर्तनकी आवश्यकतासे कौन इनकार कर सकता है? जैसा कि श्री एन्ड्रयूजने अपने दो लेखोंमें[1] बहुत ही उचित ढंगसे दिखाया है, उष्ण कटि-

१. यंग इंडियामें ३-११-१९२१ और १०-११-१९२१ को प्रकाशित "हाथ-कताई और हाथ-बुनाई" शीर्षक लेख।

बन्धकी अर्थव्यवस्था समशीतोष्ण कटिबन्धकी अर्थव्यवस्थाकी तरह नहीं हो सकती। श्रमिकोंको एक जगह एकत्रित करके भारतको औद्योगिक देश बनाना राष्ट्रकी हत्या करना है। कुटियामें ही स्वास्थ्यप्रद तथा आवश्यक अतिरिक्त धन्धा देकर भारतको श्रमशील बनानेका अर्थ है भारतको स्वस्थ और सम्पन्न बनाना व सुखी और सन्तुष्ट बनाना।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-११-१९२१

१९१. कलम या तलवार?

लाहौरकी माल रोडपर जॉन लारेंसकी मूर्ति है। मूर्तिकी सूरत बड़ी घुड़कीली है और उसके दायें हाथमें कलम और बायेंमें तलवार है। उसके नीचे लिखा है — "तुम कलमकी हुकूमत चाहते हो या तलवारकी?" वह कलाकी दृष्टिसे तो एक अच्छी चीज बताई जाती है। लेकिन उसे देखकर लाहौरके लोगोंको सदा ही चिढ़ मालूम होती रहती है। उन्हें जबरदस्ती तो न कलमकी हुकूमत दरकार है और न तलवारकी।

यह मूर्ति नगरपालिकाकी सम्पत्ति है। वह १८८० के आसपास खड़ी की गई थी। उस समय लोगोंमें स्वाभिमानका भाव उतना जाग्रत नहीं था जितना जाग्रत वह आज है। तथापि, मुझे मालूम हुआ है कि उस समय भी कुछ नागरिकोंने इस अपमानको बहुत तीव्रतासे अनुभव किया था। अभी हाल ही में लाहौरकी नगरपालिकाने बहुमतसे यह प्रस्ताव पास किया था कि फिलहाल, अन्तिम फैसला होनेतक, वह मूर्ति उस जगहसे उठवाकर टाउन हालकी इमारतमें रखवा दी जाये। अन्य प्रस्तावोंकी तरह यह प्रस्ताव भी नियमके अनुसार सरकारके पास भेजा गया। इसके तीन-चार दिन बाद वहाँ नगरपालिकाकी ओरसे एक इंजीनियर यह देखनेके लिए भेजा गया कि मूर्ति वहाँसे किस तरह हटायी जा सकती है। उसपर वहाँके डिप्टी कमिश्नरने, नगरपालिकाको कोई सूचना दिये बिना ही, पुलिसका एक दल भेजा कि वह उस इंजीनियरको और उसके आदमियोंको वहाँसे हटा दे। और जब नगरपालिकाने पूछा कि यह अनुचित हस्तक्षेप क्यों और कैसे किया गया तब कमिश्नरने यह हुक्म जारी कर दिया[1]...।

इंजीनियर वहाँ बाकायदा अपना कर्त्तव्य पालन करनेके लिए गया था। उसको हटानेके लिए पुलिस भेजकर डिप्टी कमिश्नरने साफ तौरपर हमलेका जुर्म किया है। कमिश्नरका यह हुक्म कलमके मानीका नमूना है। कमिश्नरकी कलममें उतना ही अत्याचार भरा है जितना डिप्टी कमिश्नरकी तलवारमें। कमिश्नरको अदालती अधिकार नहीं हैं; परन्तु उसके पास तलवार है। इसलिए उसने उनका प्रयोग कर लिया। नगरपालिको खुद अपनी चीजको हटानेका अधिकार है या नहीं, इसका फैसला करना तो अदालतका काम है। परन्तु कमिश्नरको नगरपालिकापर 'दुर्भाव' की तोहमत

१. यह यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें कहा गया था कि नगरपालिकाके उस प्रस्तावको कार्यान्वित न किया जाये।

लगानेका क्या अधिकार था? बात यह है कि कमिश्नर इस बातको गवारा नहीं कर सकता कि उस मूर्तिसे जो भावना प्रदर्शित होती है वह लाहौरके उस बढ़िया हलकेसे लुप्त हो जाये। इसलिए उसने नगरपालिकाको कानून सिखानेमें आगा-पीछा नहीं सोचा।

इस तरह नगरपालिकाके मामलेकी एक मामूली घटना, जो इस नई जागृतिका परिणाम है, अब बड़ेसे-बड़े सार्वजनिक महत्वकी बात हो गई है। लाहौरके नागरिकों और करदाताओंको अवश्य ही आम सभायें करके नगरपालिकाके उन सदस्योंकी तरफदारी करनी चाहिए जिन्होंने उस प्रस्तावको पास किया है। और उन सदस्योंको भी चाहिए कि वे इस मामलेमें तुरन्त कदम बढ़ायें और सरकारको अबतक इस तरहका नोटिस न दिया हो तो अब दें कि अगर सरकार अपने पक्षके समर्थनमें कोई उचित कारण न देगी तो नगरपालिकाको अपना फर्ज अदा करना होगा और उस मूर्तिको वहाँसे हटाना होगा।

कमिश्नरने अनजानमें ही लाहौरके सत्याग्रहियोंको एक बड़ा अच्छा अवसर दिया है। वे इस अवसरपर साफ तरीकोंसे और जोरसे सविनय अवज्ञाकी आजमाइश कर सकते हैं। अगर सरकार नगरपालिकाको ललकारे और पशु-बलका उपयोगकर मूर्तिको न हटाने दे तो सत्याग्रही सरकारको अवश्य नोटिस देकर, उस मूर्तिको हटानेके इरादेसे उस मुकामपर जायें और गिरफ्तार हों अथवा अगर सरकार चाहे तो गोलियाँ खाकर वीर-गतिको प्राप्त हों।

लेकिन इस आखिरी कामके लिए सिर्फ वे लोग ही आगे बढ़ें जिन्होंने इसकी अच्छी तैयारी कर ली हो। यह काम उसी वक्त किया जा सकता है जब लाहौरके लोग एक होकर, एक आदमीकी तरह काम करनेको तैयार हों। वहाँ लोगोंकी भीड़ नहीं करनी चाहिए। वहाँ एक बारमें कुछ लोग, जैसे पाँच लोग जा सकते हैं और उनमें से एक आदमी उनका प्रवक्ता होना चाहिए। वे न तो गुल-गपाड़ा करें; न कोई दलील करें, बल्कि सिर्फ वहाँ जाकर गिरफ्तार हो जायें। क्योंकि इस समय उनका उद्देश्य मूर्तिको हटाना नहीं, बल्कि गिरफ्तार होना है। हाँ, अगर काफी स्त्रियाँ और पुरुष वहाँ अपनी बलि चढ़ानेके लिए मुस्तैद हों तो उससे जरूर ही यह मूर्ति वहाँसे हटा दी जायेगी। ऐसे कानून-भंगमें सफलता तभी मिल सकती है जब लोगोंमें शान्ति और अहिंसाकी भावना सोलहों आना आ जाये। मैं यह सविनय कानून-भंगकी उग्र दवा बताता तो हूँ; परन्तु साथ ही लाहौरके नागरिकोंको यह भी चेताये देता हूँ कि वे अच्छी तरह सोचे-समझे बिना इस दवाका इस्तेमाल हरगिज न करें। मुझे तो लाहौरके जन-समूहका यही तजुर्बा हुआ है कि वह सोचता-विचारता नहीं। वह नियम-पालन तो जानता ही नहीं। स्वयंसेवकोंको लोगोंमें एक कायदेसे काम करना चाहिए जिससे उनमें शान्ति और नियम पालनका वातावरण तैयार हो सके। पिछली ९ तारीखको राष्ट्रीय-शिक्षा-मण्डलकी ओरसे जो दीक्षान्त समारोह किया गया था उसमें कितने ही लोग बिना टिकट और बिना इजाजत ही ब्रेडला हॉलमें घुस आये थे। मुझे यह देखकर बड़ा दुःख हुआ। यह केवल असभ्यता ही नहीं, बल्कि ऐसी अवज्ञा भी है जिसे जुर्म कहना चाहिए, क्योंकि वे ऐसी जगह घुस आये थे जहाँ वे जानते थे कि उनकी इस जबर्दस्तीका विरोध

कोई बल-पूर्वक नहीं करेगा। ऐसे लोग सविनय कानून भंगके लायक नहीं हैं। सविनय कानून-भंगमें तो यह पहलेसे मान लिया जाता है कि लोग उन तमाम कानून-कायदोंको, जो नीतिके विरुद्ध नहीं हैं, स्वेच्छापूर्वक ठीक तरहसे मानेंगे। उस दीक्षान्त समारोहके व्यवस्थापकोंके बनाये नियमकी तरहके सार्वजनिक संस्थाओंके कानून-कायदोंको मानना, राज्यके काननोंको स्वेच्छापूर्वक बिना दरेग माननेकी पहली सीढ़ीके सिवा और कुछ नहीं है। अविचारपूर्वक अवज्ञा करनेका अर्थ है समाजको छिन्न-भिन्न कर देना। अतः जो लोग सविनय कानून-भंग की आकांक्षा रखते हों उनका पहला काम यह है कि वे सार्वजनिक संस्थाओंके, कांग्रेस अधिवेशनों, सम्मेलनों तथा दूसरी सभा-समितियोंके, कानून-कायदोंको बखुशी माननेकी कला सीखें। इसी प्रकार वे राज्यके कानूनोंको भी मानना सीखें, फिर चाहे वे उन्हें पसन्द करते हों चाहे न करते हों। सविनय कानून-भंगकी अवस्था अराजकता और मनमानीकी अवस्था नहीं है; बल्कि उसमें कानूनको माननेकी प्रवृत्ति और साथ ही आत्मसंयमका अन्तर्भाव पहले ही से गृहीत माना जाता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७–११–१९२१

१९२. गाली किसे कहते हैं?

संयुक्त प्रान्तसे एक महोदय लिखते हैं—

आजकल चारों तरफ बड़ी बुलन्द आवाजोंमें सरकारकी मलामत करनेकी बाढ़-सी आ रही है। . . . ऐसा मालूम होता है कि मानो हर आदमी इस बातकी कोशिश करता है कि सरकारको गालियाँ देनेमें मैं दूसरे लोगोंसे आगे किस तरह बढ़ जाऊँ। सच पूछिये तो हरएक व्याख्यान बदजबानी और गालियोंसे भरा रहता है। . . .

मुझे तो ऐसी बुरी बातसे बहुत नफरत होती है। . . .

मेरी दृष्टिमें हिंसा केवल दूसरोंपर प्रत्यक्ष हमला करने और उन्हें मार डालनेमें ही नहीं है; बल्कि बुरी बात मुँहसे निकालना भी हिंसाके अन्तर्गत आता है। अगर यह ठीक है तो मेरी समझमें नहीं आता कि आप खुद जो इस सरकारको 'शैतानी', 'राक्षसी' और 'बर्बर'की उपाधियाँ देते हैं उसका समर्थन कैसे किया जा सकता है। इस बातमें रत्ती-भर भी शक नहीं है कि इन शब्दोंका समावेश हिंसामें होता है; परन्तु इस बातका स्वप्नमें भी खयाल नहीं किया जा सकता कि आप अहिंसाके परम प्रचारक होकर भी हिंसापूर्ण शब्दोंका प्रयोग करेंगे।

यह तो गाली-गलौजकी बात हुई। अब मैं एक दूसरे सवालको लेता हूँ। आप हमेशा कहते हैं कि मैं और मेरे साथी लोग तो अंग्रेजी सरकारके खिलाफ

लड़नेके लिए खड़े हुए हैं, अंग्रेजोंके खिलाफ नहीं। आप इस शासन-प्रणालीके तो विरोधी हैं और इसे सुधारना या मिटाना चाहते हैं परन्तु खुद अंग्रेजोंके प्रति आपके दिलमें किसी तरहका बुरा खयाल नहीं है। अतः इससे यह साफ ही है कि यद्यपि आप इस शासन-पद्धतिको तो मटियामेट कर देना चाहते हैं, परन्तु अंग्रेजोंको निकालना नहीं चाहते। अगर यह बात ठीक है तो यह ऊँचा सिद्धान्त अभी उन लोगोंके हृदयमें भी पूरी तरह अंकित नहीं हुआ है जो आपके सच्चे अनुयायी होनेका दम भरते हैं। मैं इसकी एक मिसाल देता हूँ। आगरामें अभी हालमें राजनैतिक परिषद हुई थी। उसमें पण्डित जवाहरलाल नेहरूका भाषण हुआ, जिसमें उन्होंने विदेशी कपड़ेके बहिष्कारपर बोलते हुए कहा: "मैं उन लोगोंमें से हूँ जो सच्चे दिलसे अंग्रेजोंको भारतसे निकालना चाहते हैं और अगर मुझे इसका कोई उपाय हाथ लगा है तो वह है स्वदेशी।" यह बात अखबारोंमें भी प्रकाशित हो चुकी है और, मैं समझता हूँ, शायद आपने भी पढ़ी होगी। ऐसी हालतमें यह कैसे कहा जा सकता है कि पण्डित जवाहरलाल नेहरूने आपके उस सिद्धान्तका मर्म समझ लिया है जिसके द्वारा हम मनुष्य और उसके कार्यमें भेद कर सकते हैं, ताकि हम उसके कार्यकी तो निन्दा कर सकें; परन्तु स्वयं उसके प्रति हमारे मनमें किसी तरहका दुर्भाव न आये? इस मामलेमें तो मैं जोर देकर यह कह सकता हूँ कि नेहरूजीकी बात किसी तरह भी वाजिब नहीं कही जा सकती; तथापि मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या आप उसे पसन्द करते हैं या नापसन्द।[१]

अगर असहयोगी लोग गालियोंका व्यवहार करते हैं तो वे निस्सन्देह हिंसा करते हैं और अहिंसाके व्रतका भंग करते हैं। लेकिन मैं इस बातको नहीं मान सकता कि हरएक भाषणमें महज बदजबानी और बददुआएँ ही भरी रहती हैं। मैं लेखक महोदयको यकीन दिलाता हूँ कि भाषणोंमें क्या सरकारकी और क्या खुद हमारी दोनोंकी ही निन्दा होती है और उनमें निन्दाकी अपेक्षा अहिंसा, हिन्दू-मुस्लिम-एकता और स्वदेशी-समर्थक दलीलें ही अधिक रहती हैं। और इन तीनों बातोंका लोगोंकी ओरसे जो इतना आश्चर्य-जनक उत्तर मिला है, वह मेरे इस कथनका शायद सबसे बड़ा सबूत है। फिर लोगोंने इतनी प्रगति बिना प्रभावपूर्ण आग्रहके ही नहीं की है।

लेकिन आखिर गाली कहते किसे हैं? अंग्रेजीके कोषमें गालीके पर्यायवाची अंग्रेजी शब्दका अर्थ है—अनुचित प्रयोग, कुप्रयोग, बुरा प्रयोग। अतः अगर हम चोरको चोर अथवा बदमाशको बदमाश कहते हैं तो इससे हम उसे गाली नहीं देते। हम कोढ़ीको कोढ़ी कहते हैं तो वह इसका बुरा नहीं मानता। हाँ, यह जरूर है कि ऐसे विशेषणों-का प्रयोग उसी नीयतसे किया जाना चाहिए और उनके प्रयोगकर्त्ताके पास उसकी यथार्थताका प्रमाण होना चाहिए। इस दशामें मैं हर जगह और हर मौकेपर किये गये

१. जवाहरलाल नेहरूके उत्तरके लिए देखिए "टिप्पणियाँ", ८-१२-१९२१ का उप-शीर्षक, "पण्डित जवाहरलाल नेहरूका जवाब"।

इन विशेषणोंके प्रयोगको निन्दनीय नहीं मान सकता। मैं यह भी नहीं मानता कि इन निन्दाकारी शब्दोंका प्रयोग करना सदा हिंसाका लक्षण ही होता है। मैं यह बात अच्छी तरहसे जानता हूँ कि उचित विशेषणोंका प्रयोग भी हिंसाका लक्षण हो सकता है। परन्तु कब? तभी जब उनका उपयोग उस व्यक्तिके प्रति जिसकी निन्दा की गई है, हिंसाको उत्तेजन देनेके लिए किया गया हो। जब किसी मनुष्यकी निन्दा इसलिए की जाती है कि वह अपनी बुरी आदतको छोड़ दे या श्रोता उसका साथ छोड़ दें तो ऐसी निन्दा बिलकुल जायज होती है। हिन्दू-शास्त्र तो दुराचारियोंकी भर्त्सनासे भरे पड़े हैं। उन्होंने तो उन्हें कोसातक है—शापतक दिये हैं। तुलसीदास तो मूर्तिमान दयाके अवतार थे। उन्होंने अपनी 'रामायण'में भगवान रामके द्रोहियोंके लिए ढूँढ-ढूँढ कर बुरे विशेषण प्रयुक्त किये हैं। असलमें उन पापाचारियोंके जो नाम चुने गये हैं वे भी उनके गुणोंके ही सूचक हैं। ईसामसीह उन लोगोंपर दैवी कोप अवतरित करनेमें नहीं हिचके जिनको वे 'दुष्टों, धूर्तों, और पाखण्डियोंकी औलाद' कहते थे। बुद्धने उन लोगोंको नहीं छोड़ा जो धर्मके नामपर निरपराध बकरोंकी बलि देते थे। 'कुरान' और 'जेंद अवेस्ता' भी ऐसे प्रयोगोंसे बची हुई नहीं हैं। हाँ, उनका प्रयोग करनेमें उन सब ऋषियों और पैगम्बरोंकी कोई बुरी नीयत नहीं थी। उन्हें तो लोगों और चीजोंका यथार्थ वर्णन करना था और उन्हें इसके लिए ऐसी भाषाका सहारा लेना पड़ा जिससे हम लोग अच्छे और बुरेकी पहचान कर सकें। हाँ, इस बातमें मैं लेखकसे सहमत हूँ कि हम सरकार अथवा शासकोंके बारेमें जितना कम कहें हमारे लिए उतना ही अच्छा है। पहले ही हममें इतने विकार और दोष भरे हुए हैं कि हमारे लिए दिल दुखानेवाली बातोंका प्रयोग करना अनुचित हैं। हम इस सरकारका जो अच्छेसे-अच्छा उपयोग कर सकते हैं वह यह है कि हम इसके अस्तित्वकी उपेक्षा करें और इसका सम्पर्क भ्रष्टकारी और पतनकारी है, यह विश्वास करते हुए जहाँतक हो सके इसे अपने जीवनसे अलग रखें।

मैं बार-बार यह बात कहता जा रहा हूँ कि इस आन्दोलनका उद्देश्य अंग्रेजोंको निकालना नहीं है, बल्कि उस शासन-प्रणालीको सुधारना या मिटा देना है जो उन्होंने हमपर जबरदस्ती लाद रखी है। मैंने पण्डित जवाहरलाल नेहरूका वह भाषण नहीं पढ़ा है, जिसका जिक्र पत्र-प्रेषक महोदयने किया है। लेकिन मैं उन्हें इतनी अच्छी तरह जानता हूँ कि मुझे यह विश्वास नहीं हो सकता कि उन्होंने वह बात कही होगी, जिसका दोष उनपर लगाया गया है। मैं जानता हूँ कि वे मनमौजीपनके खातिर ही उनका चला जाना नहीं चाहते बल्कि वे उन अंग्रेज सज्जनोंको सबसे पहले अपने हार्दिक मित्रकी तरह गले लगायेंगे जो भारतके प्रेमी हैं और जो उसके सेवक बनकर यहाँ रहना चाहते हैं। इतना ही नहीं हम यह भी खयाल नहीं करते कि स्वतन्त्र भारतमें भी जो अंग्रेज हमारी आशाओंकी भावी राजसत्ता द्वारा तय हुई शर्तोंके अनुसार रहना चाहेंगे उन्हें यहाँ नहीं रहने दिया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७–११–१९२१

१९३. पत्र-लेखकोंसे

सी० एन० वेंकटशास्त्री : मुझे खेद है कि इन स्तम्भोंमें बताये गये कारणोंसे तुम्हारा पत्र प्रकाशित नहीं किया जा सकता। परन्तु मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे हिन्दू-धर्म सम्बन्धी लेखको[1] दुबारा पढ़ देखो। इससे तुम्हें पता चलेगा कि मेरे और तुम्हारे विचारोंमें साम्य अधिक और अन्तर कम है। तुम केवल सतहपर ही रह गये हो, मैं जड़तक पहुँच गया हूँ। इसलिए हमारे प्रयासोंके परिणाम भिन्न-भिन्न निकलना तो लाजमी ही था।

ए० एच० जयसिंहानी : १. असहयोगीके रूपमें मैं न जॉर्जको अपना राजा मानता हूँ और न इस बातसे इनकार करता हूँ कि वे मेरे राजा हैं, मैं तो राजाके नामसे चलाई जानेवाली शासन-व्यवस्थासे बिलकुल अलग हो गया हूँ। मैं इस बातके लए बिलकुल स्वतन्त्र हूँ कि यदि मैं उसके राज्यमें अपना पूर्ण विकास कर सकूँ और मुझे पंजाब और खिलाफतके सम्बन्धमें हुए अन्यायोंका पूर्ण प्रतिकार मिल जाये तो मैं उनको अपनी पूर्ण निष्ठा अर्पित कर दूँगा।

२. असहयोगियोंके रूपमें हमें जेलोंमें जरूर काम करना चाहिए क्योंकि हम जेलोंसे तो असहयोग नहीं करते। जब हम अदालतोंमें ले जाये जाते हैं तब हम अदालतोंके अनुशासनके सामने झुक जाते हैं। सविनय अवज्ञाका स्वरूप ही ऐसा है जिसके कारण हमारा जेलोंके कायदे-कानूनोंको मानना लाजिमी है क्योंकि सविनय विरोध करनेके कारण हम स्वयं कैदमें जाते हैं और इसीलिए उसके अनुशासनके कष्ट उठानेके लिए बाध्य होते हैं। लेकिन हम ऐसे कायदे-कानूनोंका सविनय विरोध कर सकते हैं जो केवल परेशान करनेवाले या कष्टसाध्य ही न हों, वरन् विशेष रूपसे असहयोगियोंको अपमानित करने और नीचा दिखानेके लिए ही बनाये गये हों। हमारे आत्म-सम्मानका यह तकाजा है कि हम स्वेच्छासे जेलके अनुशासनका पालन करें। इसी आत्मसम्मानके कारण हम ऐसे दुर्व्यवहारका विरोध भी कर सकते हैं जिसे नरम भाषामें अनुशासन कहते हैं। उदाहरणके लिए हम, चाहे जेलके भीतर हों या बाहर, अपनी नाक जमीनपर रगड़नेसे इनकार कर सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७–११–१९२१

१. देखिए "हिन्दू धर्म", ६–१०–१९२१।

१९४. निर्दोष अवज्ञा बनाम दोषपूर्ण अवज्ञा

जब आदमी खुद अपने बनाये हुए कानूनोंको खुद ही जान-बूझकर भंग करता है तब ऐसा कानून-भंग अपराध हो जाता है। क्योंकि तब वह अपने प्रति नहीं, बल्कि किसी दूसरेके प्रति अपराध करता है, और चूँकि कानून-निर्माताने उसकी कोई सजा अपने लिए निश्चित नहीं की है अतः वह न केवल इस कानून-भंगकी सजासे ही बचता है बल्कि उन कानूनोंका पालन करनेकी असुविधासे भी बच जाता है। जो बात व्यक्तिके विषयमें चरितार्थ होती है वही संस्थाओंके विषयमें भी चरितार्थ होती है। हम देखते हैं कि आज इसी प्रकार यह सरकार अपने ही बनाये कानूनोंको भारत-भरमें भंग कर रही है। दण्ड संहिता और फौजदारी कानूनकी धाराओंका मनमाना दुरुपयोग किया जा रहा है। और चूँकि असहयोगियोंने अधिकारियोंकी दी हुई आज्ञाओंपर आपत्ति करना छोड़ दिया है, इसलिए वे अब निडर होकर बड़ी निर्लज्जतासे गैरकानूनी कार्रवाइयाँ कर रहे हैं। हमने देखा है कि इस प्रकारकी कार्रवाइयाँ बुलन्दशहर, चटगाँव और तमाम सिन्ध-प्रान्तमें की गई हैं और वे मद्रास प्रान्तमें तो सबसे ज्यादा व्यवस्थित रूपसे और जानबूझकर की गई हैं। श्री याकूब हसनने ठीक-ठीक तौरसे यह दिखा दिया है कि उनकी गिरफ्तारी और सजा वाइसरायके वचनकी भावनाके खिलाफ है। सच पूछिए तो वह केवल लॉर्ड रीडिंगके वचनके भावके ही विरुद्ध नहीं है, बल्कि उनके पूर्ववर्ती वाइसरायकी उस विज्ञप्तिके भी अक्षरशः विरुद्ध है जिसमें उन्होंने गम्भीरतासे घोषित किया था कि दमन-नीतिका अवलम्बन तबतक नहीं लिया जायेगा जबतक असहयोग शान्तिमय बना रहेगा। और श्री याकूब हसनपर तो यह दोषारोपण कोई भी नहीं कर सकता कि उन्होंने अपने तंजौरके भाषणमें, जो उन्होंने खास-खास चुने हुए प्रतिनिधियोंके सामने दिया था, लोगोंको हिंसाके लिए उकसाया था; और तंजौर जिले-भरमें उनके उस भाषणसे खून-खराबी या झगड़ा-फसाद भी कहीं नहीं हुआ है। "देश-भक्तन्" के सम्पादक श्री अय्यरके मामलेमें तो मजिस्ट्रेटने स्पष्ट स्वीकार किया है कि जिन लेखोंको आपत्तिजनक माना गया है उनमें हिंसाकी भावनाका नामोनिशान तक नहीं है। इतना ही नहीं वरन् उनमें तो उलटा अहिंसाके पालनका अनुरोध किया गया है। कोयम्बतूरके प्रमुख वकील, श्री रामस्वामी आयंगार, महज इसलिए पकड़े गये हैं कि उन्होंने "हिन्दू" को एक जोशीला पत्र भेजा था, यद्यपि उसमें हिंसाका भाव जरा भी नहीं था। इसी तरह डा० वरदराजुलु और श्री गोपालकृष्णय्या भी भाषण और लेखोंके कारण गिरफ्तार किये गये हैं, यद्यपि उनके विषयमें यह कहा जाता है कि उनसे हिंसाको उत्तेजन नहीं मिलता, इतना ही नहीं बल्कि उत्तेजनाकी अवस्थामें भी उनका प्रभाव संयतकारी होता है। ऐसी हालतमें जब कि सरकार इस प्रकार चारों ओर दमन करनेपर तुली है, अगर कोई यह अनुमान करे कि सरकार लोगोंको झगड़ा-फसाद करनेके लिए उकसाना चाहती है, तो क्या आश्चर्य है? उक्त उदाहरणोंमें एक भी ऐसा नहीं है जिसमें किसीके इन सम्बन्धित लेखों या भाषणोंके कारण कहीं भी हिंसाका उद्रेक हुआ हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सरकार खुद अपने ही बनाये कानूनोंको भंग करनेका गुनाह कर रही है। और उन पीड़ित दुःखी व्यक्तियोंके पास सरकारके जुल्मसे बचावका कौन-सा कानूनी उपाय है? सचमुच यदि किन्हीं नीच उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए सरकार अपने बनाये कानूनका खुद ही दुरुपयोग करती है तो कानूनमें उसको रोकनेकी कोई व्यवस्था नहीं है। इसलिए जब कोई सरकार कानूनकी अवहेलना करके व्यवस्थित रूपसे मनमानी करने लगती है तब विशेषतः उन लोगोंके लिए सविनय कानून-भंग करना एक पवित्र कर्त्तव्य हो जाता है जिनका हाथ उस सरकारको या उसके कानूनको बनानेमें नहीं था। हाँ, एक दूसरा भी उपाय है और वह है — सशस्त्र विद्रोह। सविनय कानून-भंग उसका पूरा, कारगर और शान्तिमय रक्तपात-हीन स्थान-पूरक है। और यह भी अच्छा ही है कि हमने केवल अन्याय-युक्त ही नहीं, बल्कि गैरकानूनी आदेशोंका भी पालन करनेमें जिस अनुकरणीय संयम और नियम-पालनका परिचय दिया है उससे ठीक वैसी ही परिस्थिति तैयार हो गई है जैसी सविनय कानून-भंगके लिए आवश्यक होती है। इसका फल यह हुआ है कि एक ओर तो इस सरकारका अन्यायी रूप अधिक स्पष्ट दिखाई देने लग गया है और दूसरी ओर हम स्वयं स्वेच्छापूर्वक आज्ञापालन करके सविनय कानून-भंगके योग्य बन गये हैं।

साथ ही यह भी उतनी ही अच्छी बात है कि अब भी सविनय-भंगका क्षेत्र भरसक मर्यादित ही रखा जा रहा है। हाँ, हमें मानना होगा कि जिस तरह भ्रष्ट और प्रजा-निन्दित सरकार किसी सभ्य-समुन्नत समाजमें रोगकी तरह एक अस्वाभाविक वस्तु होती है उसी तरह कानूनका सविनय भंग भी एक असाधारण स्थिति है। इसलिए जिस नागरिकने राज्यके कानूनका स्वेच्छापूर्वक पालन करनेके विषयमें पूरी-पूरी तालीम पाई है वही बिरले प्रसंगोंपर जान-बूझकर परन्तु विनय-पूर्वक कानूनका भंग करके सजा प्राप्त करनेका अधिकारी हो सकता है। इसलिए यदि हमें थोड़ेसे-थोड़े समयमें अधिकसे-अधिक काम करना हो तो जबतक एक परिमित क्षेत्रमें भयंकरसे-भयंकर कानून-भंग चल रहा हो तबतक हमें दूसरे भागोंमें कानूनका पूरा पालन करना चाहिए, जिससे देशकी स्वेच्छापूर्वक आज्ञापालनकी शक्ति और सविनय कानून-भंगकी खूबीकी परीक्षा एक ही साथ हो जाये। इसलिए देशके किसी भी दूसरे भागमें अगर आवश्यक अधिकार और अनुमति प्राप्त किये बिना कानून-भंगकी थोड़ी भी शुरूआत होगी तो उससे हमारे कार्यको बड़ी हानि पहुँचेगी और सविनय कानून-भंगके सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें हमारा अक्षम्य अज्ञान प्रकट होगा।

हमें यह जरूर ध्यानमें रखना चाहिए कि सरकार अपनी सत्ताके इस भंगका, जो कि शीघ्र ही शुरू किया जानेवाला हैं, दमन करनेके लिए कठोरसे-कठोर उपायोंको काममें लायेगी; क्योंकि उसका सारा अस्तित्व उसीपर अवलम्बित है। केवल "आत्मरक्षा" की स्वाभाविक भावना ही उसे ऐसी दमन-नीतिका सहारा लेनेके लिए प्रेरित कर सकती है जो इस आन्दोलनको कुचलनेके लिए पर्याप्त हो और यदि वह नीति असफल रही तो सरकार अवश्य ही लुप्त हो जायेगी अर्थात् या तो वह देशके लोकमतके सामने झुक जायेगी या भंग हो जायेगी। सबसे बड़ा खतरा यह है कि उकसाये जानेके कारण कहीं हिंसाका उद्रेक न हो जाये। अगर ऐसा हो तो इससे हमारी

अहिंसाकी पुनीत प्रतिज्ञा तो निश्चित रूपसे भंग होगी ही; उसके अतिरिक्त इस प्रकार कठोरसे-कठोर दमनका आह्वान करनेके बाद उसके कारण क्रोधसे उन्मत्त होना और भी अनुचित और कायरतापूर्ण होगा। सम्भव है, मैं गिरफ्तार कर लिया जाऊँ और साथ ही इस शान्तिमय क्रांतिमें भाग लेनेवाले दूसरे हजारों भाई भी गिरफ्तार कर लिये जायें, जेलखानोंमें डाले दिये जायें और उत्पीड़ित भी किये जायें। फिर भी भारतके दूसरे भागोंके लोगोंको अपनी विचार-शक्ति न खो बैठनी चाहिए। उचित समय आनेपर वे भी सविनय कानून-भंग शुरू करें और गिरफ्तारी, कैद और उत्पीड़नका आह्वान करें। हमें तो केवल निरपराध लोगोंका ही बलिदान करना है। केवल ऐसा बलिदान ही परमात्माके यहाँ मंजूर किया जायेगा। इसलिए उस भारी जंगके पहले जो देशमें शीघ्र ही छिड़नेवाली है मेरा हरएक असहयोगीसे बार-बार यही हार्दिक अनुरोध है कि वह दिल्लीके प्रस्तावकी[1] हरएक शर्तका अक्षरशः पालन करके सविनय कानून-भंग करनेकी योग्यता प्राप्त करे और चारों ओर अहिंसा तथा शान्तिका वायुमण्डल तैयार करे। हमें केवल इतनेपर ही सन्तोष न मानना चाहिए कि हम व्यक्तिशः शान्ति भंग न करेंगे। हम तो दावेके साथ यह कहते हैं कि असहयोग तमाम हिन्दुस्तानमें फैल गया है। हम यह भी कहते हैं कि हमने भारतके उन बेकाबू जनसाधारणपर भी इतना अधिकार कर लिया है कि हम उनको हिंसा करनेसे रोक सकते हैं। हमें अपनी यह बात सच्ची कर दिखानी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७–११–१९२१

१९५. आत्म-निरीक्षण

अनेक लोगोंने बड़ी करुण भाषामें पत्र लिखकर मुझसे यह कहा है कि यदि जनवरीतक स्वराज्य न मिले और यदि उस समयतक मैं जेलसे बाहर ही रहूँ तो भी मैं आत्म-हत्या न करूँ। मैंने देखा है कि भाषा मनुष्यके विचारोंको पर्याप्त रूपसे व्यक्त करनेमें समर्थ नहीं हो पाती, विशेष रूपसे तब जब स्वयं विचार ही अपने-आपमें उलझे हुए या अपूर्ण हों। 'नवजीवन' में मैंने जो-कुछ लिखा[2], उसके बारेमें मेरा तो यही खयाल था कि वह बिलकुल स्पष्ट था। लेकिन मैं देखता हूँ कि उसके अनुवादको बहुत-से लोगोंने गलत समझा है। जो हाल अनुवादका हुआ है, वही हाल मूल लेखका भी हुआ है।

मेरी बातको गलत समझनेका एक बड़ा कारण तो यह है कि लोग मुझे लगभग पूर्ण पुरुष मानते हैं। जिन मित्रोंको 'भगवद्गीता' के प्रति मेरी आस्थाकी जानकारी है, उन्होंने सम्बन्धित श्लोकोंके दृष्टान्त दे-देकर यह दिखानेकी कोशिश की है कि आत्म-हत्या

१. देखिए "अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी", १०–११–१९२१।

२. देखिए "आशावाद", २३–१०–१९२१।

करनेकी मेरी धमकी किस प्रकार उन उपदेशोंके प्रतिकूल है जिनका पालन करनेका मैं प्रयास कर रहा हूँ। मुझे सदुपदेश देनेवाले ये सभी लोग शायद भूल जाते हैं कि मैं तो केवल एक सत्यान्वेषी हूँ। मेरा दावा है कि मैंने सत्यतक पहुँचनेका एक रास्ता ढूँढ़ लिया है। मेरा यह दावा भी है कि मैं सत्यतक पहुँचनेका अनवरत प्रयत्न कर रहा हूँ। लेकिन साथ ही मैं स्वीकार करता हूँ कि अबतक मुझे वह मिला नहीं है। पूर्ण सत्यको खोज निकालना तो स्वयं अपने-आपको पहचान लेना, अपने भवितव्यको समझ लेना है, अर्थात् सर्वथा त्रुटिरहित बन जाना है। मैं अपनी त्रुटियोंको जानता हूँ और इनका मुझे दुःख भी है। अपनी कमियोंकी इस जानकारीमें ही मेरी पूरी शक्ति निहित है, क्योंकि चन्द मनुष्य ही ऐसे होते हैं जो अपनी मर्यादाओंसे परिचित हों।

यदि मैं पूर्ण पुरुष होता, तो मुझे अपने पड़ोसियोंके कष्ट देखकर पीड़ाका अनुभव नहीं होता, जैसा कि अभी होता है। पूर्ण पुरुष होनेके नाते मेरा कर्त्तव्य तो यह होता कि मैं उनकी कठिनाइयाँ देखकर उनको दूर करनेका उपाय बताता और अपने भीतर निहित अजेय सत्यकी शक्तिसे उस उपायको अपनानेके लिए लोगोंको विवश कर देता। लेकिन मुझे तो अबतक ऐसा लगता है कि मैं सत्यको धुँधले काँचके पीछेसे ही देख पा रहा हूँ और इसीलिए मुझे लोगोंको किसी बातकी प्रतीति करानेमें बहुत धीमे और श्रमसाध्य तरीकोंको काममें लाना पड़ता है, और तब भी ऐसा नहीं कि मैं सदा सफल ही हो जाता हूँ। ऐसी स्थितिमें आज जब कि मैं देख रहा हूँ कि सारा भारत कष्टोंके भारसे —— ऐसे कष्टोंके भारसे जिनसे बचा जा सकता है —— दबा हुआ है और जगन्नाथस्वामीके चरणोंके नीचे ही इन्सान केवल हड्डियोंका ढाँचा-मात्र रह गया है, यदि मैं करोड़ों पीड़ित और मूक भारतीयोंके कष्टमें कष्टका अनुभव न करूँ तो अपने-आपको इन्सान नहीं मानूँगा। एक यही आशा मुझे सम्बल देती है कि जनताका यह कष्ट निरन्तर कम होता जायेगा। परन्तु मान लीजिये कि कष्ट, सुख-दुःख, सर्दी-गर्मीके प्रति अपनी इस समस्त संवेदनशीलताके बावजूद, चरखेका शान्तिप्रदायक सन्देश लोगोंके हृदयतक पहुँचानेकी अपनी सारी कोशिशोंके बावजूद, मैं लोगोंको केवल अपनी बात सुना ही सकूँ, उनके हृदयतक न पहुँचा सकूँ; और यह भी मान लीजिए कि सालके अन्तमें मैं यह देखूँ कि लोग चरखेकी शान्तिपूर्ण क्रान्ति द्वारा स्वराज्य प्राप्तिकी वर्तमान सम्भावनाके सम्बन्धमें उतने ही सन्देहशील बने हुए हैं जितने आज हैं; मान लीजिए मैं देखूँ कि पिछले बारह महीने बल्कि इससे भी अधिक अवधितक लोगोंमें जो उत्साह दिखाई देता रहा है वह महज ऊपरी हलचल और अस्थायी आवेश-मात्र था, हमारे कार्यक्रमके प्रति सुदृढ़ आस्थाका प्रतीक नहीं और अन्तमें मान लीजिए कि मैं देखूँ कि शान्तिका सन्देश अंग्रेजोंके हृदयमें घर नहीं कर पाया है तो उस हालतमें क्या मुझे अपनी समस्यापर सन्देह नहीं करना चाहिए और मुझे यह महसूस नहीं करना चाहिए कि मैं इस संघर्षका नेतृत्व करने योग्य नहीं हूँ? एक सच्चे इन्सानके रूपमें मुझे क्या करना चाहिए? क्या मुझे पूर्ण विनयके साथ अपने सिरजनहारके सामने घुटने टेककर उससे यह प्रार्थना नहीं करनी चाहिए कि वह इस व्यर्थ शरीरको उठा ले और मुझे सेवाका कोई अधिक उपयुक्त साधन बना दे?

स्वराज्यका मतलब सरकारको बदलना और उसपर जनताके वास्तविक नियन्त्रण-की स्थापना है। परन्तु वह तो केवल उसके स्वरूपकी बात हुई। लेकिन मैं जिस असली चीजके लिए लालायित हूँ वह तो यह है कि सरकारको बदलनेके साधनको निश्चित रूपसे स्वीकार किया जाये अर्थात् वास्तवमें जनताका हृदय-परिवर्तन हो। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि छुआछूतकी गलत प्रथाको त्यागनेके लिए हिन्दुओंको, तथा वैर-भाव छोड़कर हार्दिक मैत्रीभावको राष्ट्रीय-जीवनका चिरस्थायी अंग माननेके लिए हिन्दुओं व मुसलमानोंको और हिन्दुस्तानको आर्थिक दासतासे मुक्ति दिलानेवाले एकमात्र साधनके रूपमें चरखेको अपनानेके लिए समस्त जनताको युगोंका समय नहीं चाहिए; और अन्तमें सभीके हृदयमें यह विश्वास उत्पन्न होनेमें भी बहुत लम्बी अवधि नहीं लगनी चाहिए कि हिन्दुस्तानको अहिंसाके रास्तेसे ही स्वराज्य मिलेगा, अन्य किसी साधनसे नहीं। मेरा विश्वास है कि जनता द्वारा स्वेच्छासे समझ-बूझकर, निश्चित तौरपर इस कार्यक्रमको स्वीकार करना ही उस वास्तविक स्वराज्यको प्राप्त करना है। इसके बाद, स्वराज्यका प्रतीक अर्थात् सत्ता-हस्तान्तरण उसी प्रकार अवश्यम्भावी है जिस प्रकार सही ढंगसे बोया गया बीज बढ़कर वृक्षका रूप धारण कर लेता है।

पाठक इससे समझ गये होंगे कि मैंने संयोगवश जो बात पहले-पहल पूनामें कही और बादमें दूसरोंके सामने भी दोहराई वह और कुछ नहीं, केवल अपनी कमियोंकी स्वीकारोक्ति और अपनी इस धारणाकी अभिव्यक्ति-मात्र थी कि जिस महान् अभियान-का मैं इस समय नेतृत्व करता प्रतीत होता हूँ उसके लिए मैं अपने आपको कितना अयोग्य समझता हूँ। मैंने किसी निराशावादी विचारका प्रतिपादन नहीं किया है। उलटे, मुझे पहले कभी भी इस बातकी इतनी अधिक आशा नहीं थी जितनी यह लिखते समय है कि हम इस वर्षके भीतर स्वराज्यका सार प्राप्त कर लेंगे। साथ ही एक व्यावहारिक आदर्शवादीके रूपमें मैंने यह भी कहा है कि मुझे अपने-आपको ऐसे महान कार्यका नेतृत्व करने योग्य नहीं समझना चाहिए, जिसे संभाल सकनेका भरोसा मुझे स्वयं ही न हो। निष्काम कर्मका अर्थ जितना यह है कि अडिग भावसे सत्यकी खोजमें लगे रहो, उतना ही यह भी है कि अपनी गलती मालूम होनेपर गलत रास्तेसे पीछे हट जाओ और जब अपनेको नेतृत्वके अयोग्य समझने लगो उस समय नेतृत्वका मोह त्यागनेमें कष्टका अनुभव भी न करो। मैंने तो केवल अपनी इसी हार्दिक कामनाको अभिव्यक्ति दी है कि मैं अनन्तमें विलीन होकर सिरजनहारके हाथोंमें गीली मिट्टीका लोंदा बन जाऊँ ताकि मेरी सेवा अधिक प्रभावकारी हो, क्योंकि तब उसमें मेरे व्यक्तित्वका निकृष्ट अंश बाधक नहीं बनेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-११-१९२१

१९६. भाषण: बम्बईकी सार्वजनिक सभामें[1]

१७ नवम्बर, १९२१

अपने भाषणके दौरान महात्मा गांधीने कहा कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने मुझे कुछ काम दे रखा है। काम बहुत जरूरी है और मैं किसी दूसरे काममें एक क्षण भी लगानेकी स्थितिमें नहीं हूँ। इसलिए मैं लगभग अपनी मर्जीके खिलाफ ही बम्बई आया हूँ। श्री एच० एस० खत्री तथा श्रीमती एस० जी० बैंकरने मुझे आनेके लिए बार-बार तार भेजा। आखिरको मैं इस सभामें हाजिर होनेको बम्बई आ गया हूँ। उन्होंने बम्बईके लोगोंको बधाई देते हुए कहा कि आपके सामने उत्तेजनाके बहुतसे कारण आये। आपके स्वयंसेवकों और नेताओंने, युवराजकी यात्राके सम्बन्धमें आयोजित समारोहोंमें लोगोंसे शामिल न होनेका अनुरोध करते हुए दीवारोंपर पर्चे चिपकाये, और इतनेपर ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। फिर भी, आपने अबतक पूरी शान्ति बनाये रखी है, इसके लिए आपको बधाई देता हूँ। उन पर्चोंमें मुझे तो कोई भी बात आपत्तिजनक नहीं दिखाई देती। बल्कि इसके विपरीत, वे लोग युवराजको सम्मानित करनेके लिए ही वह सब कर रहे थे, क्योंकि उन पर्चोंके माध्यमसे वे उन्हें सत्यसे अवगत करा रहे थे। वे युवराजको इस सत्यसे अवगत करा रहे थे कि उनका जो स्वागत किया जा रहा है वह अधिकारियोंकी ओरसे किया जा रहा है और जनताका —— जनताके एक बहुत बड़े बहुमतका —— इसमें कोई हिस्सा नहीं है। ऐसा करके वे वास्तवमें अपने कर्त्तव्यका ही पालन कर रहे थे। इसके बाद महात्माजीने लोगोंको सलाह दी कि अगर आपसे सभी पर्चे छीन भी लिये जायें तब भी आप शान्ति बनाये रखिए और अहिंसापर दृढ़ रहिए, क्योंकि भारतीयोंको खिलाफत और पंजाबके साथ किये गये अन्यायोंका परिशोधन कराना है। अहिंसा आपका धर्म है और आपको बड़ीसे-बड़ी कीमत चुकाकर भी अपने इस धर्मपर आरूढ़ रहना है। अतः, मैं बम्बईके लोगोंको उनकी अहिंसावादितापर बधाई देता हूँ। बारडोली, आनन्द और नडियाद ताल्लुकोंमें से कहीं भी जब एक बार सविनय अवज्ञा प्रारम्भ कर दी जाये, तो मैं चाहता हूँ कि बम्बईके लोग, चाहे कुछ भी हो जाये, शान्त बने रहें। पहले लोग जेल जानेसे डरते थे, लेकिन अब हर कोई जेल जानेको उत्सुक है। मेरे पास आकर बहुतसे पुरुषों और स्त्रियोंने आकुलताके साथ मुझसे पूछा है कि क्या उनके लिए जेल जाना सम्भव नहीं है। सिपाही चाहे अपना कर्त्तव्य पूरा करते हुए मृत्युको प्राप्त हो, अथवा जेल जाये, या चुपचाप अपना कर्त्तव्य पूरा करता रहे —— उसके लिए यह सब एक ही बात है। जो आदेश दिये गये हैं, उनका हर मामलेमें आपको पालन करना

१. यह सभा एल्फिंस्टन मिल्सके पीछे साढ़े दस बजे दिनमें हुई थी।

है। आप सब स्वराज्य सेनाके सेनानी हैं और आपमें से हरएकको जो भी आदेश दिये जायें, उनका पालन करना है। बारडोलीमें सविनय अवज्ञा प्रारम्भ होनेपर गोलियाँ भी चल सकती हैं, लेकिन आप सभी बम्बई-वासियोंको शान्त बैठे रहना चाहिए — कोई हड़ताल नहीं होनी चाहिए, किसी तरहका उपद्रव नहीं होना चाहिए; स्वराज्य आपको तभी मिल सकता है। मेरा निश्चित मत है कि आवश्यक बलिदानके बिना आप कभी स्वराज्य नहीं पा सकते। मुझे यह भी लगता है कि हिन्दू-मुस्लिम एकताके बिना भी स्वराज्य नहीं हो सकता। मुझे लगता है कि अभी दोनों समुदायोंमें पूरी एकता नहीं है। हिन्दू मुसलमानोंसे डरते हैं और मुसलमान हिन्दुओंसे। सन्देह-शंकाकी ये सारी भावनाएँ सदाके लिए मिट जानी चाहिए। दोनों समुदायोंके भीतर आज जो एक-दूसरेके प्रति ये शंकाएँ हैं, उनका कारण यह है कि हम कायर हो गये हैं और हमने अपना धर्म छोड़ दिया है। जो अपने धर्मके नामपर मर-मिटनेको तैयार हैं वे ही सच्चे देशभक्त और धर्मनिष्ठ व्यक्ति हैं। इसलिए मैं हिन्दू भाइयोंसे कहता हूँ कि जबतक आप सच्चे हिन्दू बने हुए हैं तबतक किसी दूसरे धर्मसे डरनेका कोई कारण नहीं है। अगर कोई छः फुटा पठान भी अपना छुरा घुमाते हुए सामने आ जाये तब भी डरनेकी कोई बात नहीं है। यही सलाह मैंने मुसलमान भाइयोंको भी दी है। आज भी दोनों समुदायोंके मनमें एक-दूसरेके प्रति कुछ शंकाएँ बनी हुई हैं। दूसरी चीज है, स्वदेशी। सभामें आये हुए कुछ स्त्री-पुरुषोंके शरीरपर अब भी कुछ विदेशी कपड़े दिखाई दे रहे हैं। इस मामलेमें मौलाना आजाद सोबानीने अपना यह धन्धा ही बना लिया है कि वे अपने जिस किसी मित्रके शरीरपर विदेशी कपड़ा देखते हैं, उसे माँगकर नष्ट कर देते हैं। लोगोंको मोटा खद्दर पहनना भी बुरा नहीं मानना चाहिए। श्रीमती नायडूने मुझसे शिकायत की कि मोटा खद्दर पहनना तो बहुत मुश्किल काम है। लेकिन सत्याग्रह प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर करनेवालोंमें उनका नाम पहला या दूसरा है, इसलिए उन्हें खद्दर तो पहनना ही पड़ेगा। अगर आप मोटा खद्दर नहीं पहन सकते तो इसका मतलब है, आप कमजोर हो गये हैं और आपमें ऐसा करनेकी ताकत नहीं है। पंजाबमें एक बहनने मुझसे पूछा कि उसे अपने कपड़ोंके बारेमें क्या करना चाहिए। मैंने उसे सलाह दी कि उसे एक पेटीकोट और स्कर्टसे ही सन्तोष कर लेना चाहिए। जहाँतक बन सके आपको कम कपड़ेका इस्तेमाल करना चाहिए।

लोग अपना काम अहिंसक तरीकेसे करनेको कर्त्तव्य-बद्ध हैं। जबतक आप अहिंसा, स्वदेशी और हिन्दू-मुस्लिम एकतामें विश्वास करते हैं तबतक आपको हिंसाका सहारा लेनेका कोई अधिकार नहीं है। फिर आपके सामने अपने मरनेका भी कोई अवसर नहीं आयेगा। वैसे, जीवन और मृत्युमें कोई ज्यादा अन्तर नहीं है; दरअसल, वे एक समान हैं। जबतक आप मरनेको तैयार नहीं रहते, आपको स्वराज्य नहीं मिल सकता और न आप खिलाफत तथा पंजाब-सम्बन्धी अन्यायोंका ही निराकरण करा सकते हैं।

जब आप मर मिटनेको तैयार रहेंगे तभी आप अली-बन्धुओं और गंगाधर राव देशपाण्डे-को मुक्त करा सकेंगे। मैंने गंगाधर राव देशपाण्डेको एक पत्र[1] लिखा है; जिसमें कहा है कि पता नहीं, आपने किस बातसे प्रेरित होकर ऐसा किया। मैंने यह भी लिख दिया है कि ३१ दिसम्बरसे पहले आप जितना आराम कर सकें, कर लें, क्योंकि उसके बाद जब आप जेलसे बाहर आयेंगे तो आपको देशके लिए काम करना होगा। अपने भाइयोंको जेलसे छुड़ानेके लिए भारतीयोंको या तो स्वराज्य प्राप्त करना चाहिए, अथवा जेल जाना चाहिए, या अपने देशकी सेवा करते हुए मिट जाना चाहिए। मैं आपसे यही कहनेके लिए इस सभामें आया हूँ। बम्बईके लोग सुन्दर महीन कपड़ों और विला-सिताकी अन्य चीजोंके बड़े शौकीन हैं, लेकिन जिस क्षण आप सब स्वराज्यके लिए काम करने और मर मिटनेके लिए कटिबद्ध हो जायेंगे, उसी क्षण आपको स्वराज्य मिल जायगा। मुझे बम्बईके लोगोंसे अब भी बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। समय कम है, इसलिए आपको तत्पर रहकर अपना काम करना है। मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि ३१ दिसम्बरसे पहले क्या होगा। मैं ईश्वरसे बराबर यही प्रार्थना करता रहता हूँ कि उस दिनतक या तो मुझे जेल भेज दिया जाये या गोलीसे उड़ा दिया जाये, और नहीं तो भारत स्वतंत्र हो जाये। इस देशमें स्वराज्यके बारेमें मेरी जो कल्पना है वह अराजकताकी कल्पना नहीं है। मैं चाहता हूँ, लोग ईश्वरसे डरें, गुणवान् बनें तथा सत्यपरायण, धर्मनिष्ठ और बहादुर बनें। मैं नहीं जानता, आगे मेरे साथ क्या कुछ होनेवाला है, और हो सकता है मेरे ये शब्द आखिरी शब्द साबित हों। इसलिए आपसे मेरा निवेदन है कि आप देशके प्रति अपना कर्त्तव्य निर्भीकतासे निबाहें। हम किसीको मारनेके लिए तैयार नहीं हैं, लेकिन मरनेको तो तैयार हैं। अपने रवैयेसे आपको सरकारको इस बातकी प्रतीति करा देनी है कि इसके लिए आपको मारना या आपका दमन करना पाप है और यह ऐसा काम है जो नहीं किया जा सकता। जबतक आप दूसरोंका विश्वास नहीं करते, दूसरे आपका विश्वास नहीं करेंगे। तो मेरा अनुरोध है कि आप दूसरोंका विश्वास करें। ऐसा करके आप अपने शासकोंके मित्र बन जायेंगे। लेकिन चाहे आप उनके मित्र बनें या न बनें, हम भारतीयोंको अपने मनमें अपने शासकोंके प्रति किसी प्रकारका घृणाका भाव नहीं रखना है। आपको दूसरे पक्षके प्रति किसी तरहका घृणाका भाव रखे बिना स्वराज्यके लिए लड़ना चाहिए। अगर मैं भारतीयोंको इतनी सी बात समझा सकूँ तो उन्हें स्वराज्य मिल कर रहेगा। मैं आपके भीतर यह विश्वास जगाना चाहता हूँ कि मरनेमें मारनेसे ज्यादा बहादुरी है। मेरा यह भी अनुरोध है कि जबतक युवराज आपके बीच रहें, आप उनका बाल भी बाँका न करें, और न सरकारी अधिकारियोंका ही कोई नुकसान करें। अगर सरकार हम भारतीयोंको मारना चाहे तो उसे मारने दीजिए, क्योंकि हम

१. देखिए "पत्र : गंगाधर राव देशपाण्डेको", ८-१०-१९२१ के पूर्व।

तो मरनेके लिए तैयार ही बैठे हैं। मैं ईश्वरको धन्यवाद देता हूँ कि आजकी सुबह मुझे आपसे कुछ कहनेका मौका मिला।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १८-११-१९२१

१९७. पत्र : दयालजी और कल्याणजीको

बृहस्पतिवार [१७ नवम्बर, १९२१]

भाईश्री दयालजी और कल्याणजी,

मुझे लिखते हुए दुःख होता है कि बम्बईमें भारी हुल्लड़ हुआ है। शराबकी दूकानोंको जला दिया गया है। यह लिखते समय एक दूकान अभी भी जल रही है। निर्दोष लोगोंपर जबरदस्ती की गई है और उनके कपड़े उतार लिये गये हैं। एक ट्राम तोड़ दी गई है और बत्तियाँ फोड़ डाली गई हैं। मैं तो देखता हूँ कि लोगोंने सारी सीमाओंको तोड़ दिया है। छः सिपाही मर गये हैं। कुछ हमारे व्यक्ति भी मरे हैं। स्वराज्यका प्रथम दर्शन करके मैं लज्जित हूँ। आज रात क्या होगा, यह नहीं कहा जा सकता। ऐसी स्थितिमें मैं वहाँ कैसे आ सकता हूँ? इसलिए एक व्यक्तिको भेज रहा हूँ जो तुम्हें सब समाचार देगा और समझायेगा। अब सम्भव है, हमारे कार्यक्रममें भी थोड़ा फर्क हो। बहुत हुल्लड़ होगा तो हमारा सोचा हुआ रह जायेगा और भगवान जो चाहेगा वही होगा। आपके यहाँ तो सम्पूर्ण शान्ति होगी, ऐसा माने लेता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २६६९) की फोटो-नकलसे।

१९८. गहरा कलंक

[१८ नवम्बर, १९२१][1]

बम्बई वह स्थान है जिसके सहारे मैंने बहुतसे सपने सँजोये हैं। लेकिन कल जिस समय मैं सरल भावसे यहाँके नागरिकोंको बधाई दे रहा था[2] कि वे गम्भीर उत्तेजनाके बावजूद अहिंसा धर्मपर डटे रहें, ठीक उसी समय इस नगरकी प्रतिष्ठापर कालिख पुत रही थी।[3] बधाई देनेका कारण यह था कि पिछली रात स्वयंसेवकों और उनके

१. श्री गांधीने बम्बईमें हुए दुर्भाग्यपूर्ण उपद्रवोंको देखनेके बाद यह टिप्पणी इसी तिथिको एक पर्चेके रूपमें जारी की थी: देखिए **नवजीवन**, २४-११-१९२१।

२. देखिए "भाषण: बम्बईकी सार्वजनिक सभामें", १७-११-१९२१।

३. १७ नवम्बरको जब प्रिन्स ऑफ वेल्स बम्बई पहुँचे उनके आगमनके विरुद्ध प्रदर्शन किये गये थे, जिनमें विदेशी वस्त्रोंकी होली जलाना भी शामिल था, जिनके फलस्वरूप एक बड़े पैमानेपर उपद्रव हो गये थे।

कप्तानको निजी इमारतोंपर इश्तिहार चिपकानेके कारण गिरफ्तार किया गया था। उन इश्तिहारोंमें जनताको युवराजके स्वागतका बहिष्कार करनेकी सलाह दी गई थी। इश्तिहारोंको नष्ट कर दिया गया था। स्वराज्य-सभाके कार्यालयमें एक रहस्यपूर्ण ढंगसे प्रवेश करके गैर-इस्तेमालशुदा इश्तिहारोंको पुलिस उठा ले गई थी। जहाँतक मेरी जानकारी है, उन इश्तिहारोंको गैर-कानूनी घोषित नहीं किया गया था। युवराजका आगमन, और उनके सम्मानमें आयोजित समारोहोंकी परिस्थितियाँ और उन स्वागत-समारोहोंपर जनताके पैसोंकी बर्बादी, यह सब मिलकर असहनीय उत्तेजनाका कारण बन गये। इसपर भी बम्बईकी जनताने आत्म-संयमसे काम लिया था। मैंने इसे बधाई देने लायक बात मानी थी। सरकारने स्वार्थवश यह सब जो प्रदर्शन किया था, उसके जवाबमें विदेशी वस्त्रोंकी होली जलाना एक बहुत ही ठीक प्रदर्शन था।

लेकिन मुझे खबरतक नहीं थी कि युवराज जब सजी-सजाई सड़कोंसे गुजर रहे थे और विदेशी वस्त्रोंकी होली चलाई जा रही थी, ठीक उसी समय नगरके एक दूसरे हिस्सेमें मिल-मजदूर अपने मालिकोंकी इच्छाकी घोर अवज्ञा करके एक-एक करके जबरन मिलोंसे निकल भागे जा रहे थे। प्रतिक्षण बढ़ती हुई भीड़ ट्राम गाड़ियोंके यात्रियोंको बिना किसी कारण तंग कर रही थी और ट्रामोंका आवागमन रोक रही थी तथा विदेशी वस्त्रोंकी बनी टोपियाँ जबरन लोगोंके सिरोंसे उतार रही थी और सीधे-सादे यूरोपीयोंको तंग कर रही थी। दिन चढ़नेके साथ-साथ प्रारम्भिक सफलताके बाद भीड़का उन्माद और क्रोध भी बढ़ता गया। उसने ट्राम गाड़ियों और एक मोटर गाड़ीमें आग लगा दी, शराबकी दूकानें तहस-नहस कर दीं और दोमें आग लगा दी।

मुझे इस उत्पातकी खबर दिनमें लगभग एक बजे मिली। मैं तत्काल कुछ मित्रोंको लेकर एक मोटर-गाड़ीसे घटनास्थलपर गया और वहाँ पारसी बहनोंपर हुए अत्याचारकी अत्यन्त ही कष्टप्रद और लज्जाजनक कहानियाँ सुनीं। कुछ बहनोंको मारा-पीटा गया था और उनकी साड़ियाँ खींच ली गई थीं। यह सब एक पारसी सज्जनने बताया। वे बहुत गुस्सेमें थे और उनके होंठ काँप रहे थे। लेकिन उन्होंने भली प्रकार सोच-समझकर सारा किस्सा बताया। मेरी गाड़ीके चारों ओर खड़े पन्द्रह सौसे अधिक लोगोंमें से एकने भी उनके आरोपका खण्डन नहीं किया। एक बुजुर्ग पारसी सज्जन बोल उठे: "इस भीड़शाहीसे हमारी रक्षा कीजिए।" पारसी बहनोंके साथ किये गये इस अशोभनीय व्यवहारकी बात मेरे सीनेमें तीर-जैसी चुभ गई। मुझे लगा जैसे मेरी ही बहनों या पुत्रियोंके साथ उपद्रवकारी भीड़ने वह अशोभनीय बर्ताव किया हो। यह सही है कि कुछ पारसी स्वागत-समारोहमें शामिल हुए थे। उनको अपनी राय रखनेका पूरा-पूरा हक है, और उसके कारण उनको कोई परेशान नहीं कर सकता। स्वराज्यमें जोर-जबर्दस्ती नहीं चल सकती। कोई धर्मान्ध मोपला जब किसी हिन्दूको जबरन् मुसलमान बनाता है तब वह यही सोचता है कि उसने धर्मकी सेवा की है। किन्तु, अगर असहयोगी और उनके साथी इस तरहकी जोर-जबर्दस्ती करें, तो वे किसी भी तरह अपने ऐसे अपराधपूर्ण कृत्योंका औचित्य सिद्ध नहीं कर सकते।

मैंने "टू टैंक" हल्केमें पहुँचनेपर देखा कि शराबकी एक दुकान बिलकुल तहस-नहस हालतमें पड़ी हुई है और बुरी तरह घायल दो पुलिसवाले खाटपर बेहोश पड़े हैं। वहाँ

उनकी खबर लेनेवाला कोई नहीं था। मैं गाड़ीसे उतर गया। भीड़ने मुझको तुरन्त घेर लिया और नारे लगाने शुरू कर दिये: "महात्मा गांधीकी जय।" यह आवाज मेरे कानोंको वैसे भी अच्छी नहीं लगती, पर कल वह जितनी बुरी लगी उतनी पहले कभी नहीं लगी थी। जब भीड़ने उन दो घायल भाइयोंका जरा भी खयाल न करते हुए जोर-जोरसे मेरी जयकार शुरू कर दी तो मेरा दम घुटने लगा। मैंने उनको फटकारा। वे चुप हो गये। दोनों घायलोंके लिए पानी लाया गया। मैंने अपने दो साथियों और भीड़में से कुछ लोगोंसे अनुरोध किया कि उन दम तोड़ते पुलिसवालोंको अस्पताल पहुँचा दें। फिर कुछ ओर आगे बढ़नेपर मैंने देखा कि आगकी लपटें उठ रही हैं। भीड़ने दो ट्राम-गाड़ियोंमें आग लगा दी थी। लौटते हुए मैंने एक मोटर-गाड़ीको जलते हुए देखा। मैंने भीड़के लोगोंसे तितर-बितर होनेके लिए कहा और यह भी कहा कि आप लोगोंने खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य, तीनों ही उद्देश्योंको काफी धक्का पहुँचाया है। मैं दुःखी हृदय और मुरझाया मन लेकर वहाँसे लौटा।

करीब पाँच बजे चन्द सिन्धी वीर युवकोंने आकर खबर दी कि भिंडी बाजारमें लोग विलायती टोपी पहने हुए हर आदमीको तंग कर रहे हैं, और टोपियाँ न देनेवालोंको खूब पीटते भी हैं। एक वीर वृद्ध पारसीने बड़ी निडरतासे अपनी पगड़ी उतारनेसे इनकार कर दिया। उनके साथ बड़ा बुरा बर्ताव किया गया। मौलाना आजाद सोबानीके साथ मैं भिंडी बाजार गया और हमने भीड़के लोगोंको समझानेकी कोशिश की। हमने कहा कि निर्दोष आदमियोंको चोट पहुँचाकर आप अपने ही धर्मकी हानि कर रहे हैं। लोगोंने तितर-बितर होनेका रुख दिखाया। वहाँ पुलिस भी मौजूद थी। पर पुलिसने बड़े संयमसे काम लिया। हम और आगे बढ़ गये। लौटते समय हमने शराबकी एक दुकानको जलते पाया। दमकलोंको लोग आग नहीं बुझाने दे रहे थे। पण्डित नेकीराम शर्मा और अन्य लोगोंके सद्प्रयत्नसे ही दुकानके कर्मचारी बाहर निकल पाये थे।

उस भीड़में केवल उपद्रवकारी या लड़के ही नहीं थे। भीड़के सभी लोग नासमझ नहीं थे। उनमें सभी मिल-मजदूर भी नहीं थे। कुल मिलाकर वह एक मिली-जुली किस्मकी भीड़ थी, जो दूसरे किसीकी बातपर कान देनेके लिए तैयार नहीं थी। उस समय उन लोगोंका विवेक जाता रहा था। और भीड़ किसी एक हल्केके लोगोंकी भी नहीं थी, उसमें कई हल्कोंके लोग सिमट आये थे, जिनकी तादाद बीस हजारसे कम नहीं थी। वे सभी शरारत और तोड़फोड़पर तुले हुए थे।

मैंने सुना है कि गोली चली, जिसके फलस्वरूप कुछको जानसे हाथ धोना पड़ा। यह भी सुना कि आंग्ल भारतीयोंके मुहल्लोंसे खादीकी पोशाक पहनकर निकलनेवाले लोगोंको खादीकी टोपी या कमीज न उतारनेपर बुरी तरह पीटा गया। मैंने सुना कि बहुतोंको गम्भीर चोटें पहुँचीं। ये पंक्तियाँ लिखते समय मेरे पास छः हिन्दू और मुसलमान कार्यकर्त्ता बैठे हैं, जो अभी-अभी सिर तुड़वाकर आये हैं। उनकी खोपड़ियोंसे खून बह रहा है। एककी नाककी हड्डी टूट गई है और शरीरपर कई गहरे-गहरे जख्म हैं और उसकी जान खतरेमें है। ये लोग मौलाना आजाद सोबानी और मौलाना मुअज्जम अलीके साथ मिल-मजदूरोंको शान्त करने परेल गये थे। कहा जाता है कि वहाँ वे लोग ट्राम-गाड़ियोंको रोक रहे थे। ये कार्यकर्त्ता परेल पहुँच ही नहीं

पाये और खूनसे लथपथ जख्मी होकर लौट आये। ये जख्म खुद ही सारी कहानी बता रहे हैं।

इस प्रकार सार्वजनिक रूपसे सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू करनेकी आशा एक बार फिर मिट्टीमें मिल गई है। सविनय अवज्ञाके लिए अनुकूल वातावरण है ही नहीं। यह दलील देना ठीक नहीं होगा कि बारडोलीमें तो ऐसा वातावरण मौजूद है इसलिए बम्बईमें उत्पात मचे रहनेपर भी वहाँ आन्दोलन शुरू किया जा सकता है। यह चीज असम्भव है। न तो बारडोलीको और न बम्बईको ही अलग इकाईके रूपमें रखा जा सकता है। दोनों ही समूचे खण्डकी दो अविभाज्य इकाइयाँ हैं। मलाबारको तो मैं मानता हूँ अलग रखा जा सकता था। मालेगाँवको भी अनदेखा किया जा सकता था। लेकिन बम्बईको तो अनदेखा नहीं किया जा सकता।

असहयोगी लोग इसमें अपने दायित्वसे पल्ला नहीं छुड़ा सकते। यह सच है कि असहयोगी लोग जानकी जोखिम उठाकर भी हर कहीं लगातार लोगोंको उत्पातोंसे दूर रहनेके लिए कह रहे थे और उन्होंने कई लोगोंकी प्राण-रक्षा भी की है। लेकिन सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़नेके लिए या हिंसाकी जिम्मेदारीसे अपने-आपको मुक्त करनेके लिए इतना ही काफी नहीं है। हमारा दावा है कि हमने शान्तिपूर्ण वातावरण कायम कर लिया है, मतलब यह कि हमने अपनी अहिंसाके बलपर लोगोंको इतना नियन्त्रित कर लिया है कि वे अपनी हिंसक प्रवृत्तियोंको काबूमें रखें। लेकिन हमें जिस क्षण सफलता मिलनी चाहिए थी, उसी क्षण हम असफल हुए हैं। कलका दिन हमारी परीक्षाका दिन था। हम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार हर हानि और अपमानसे युवराजकी रक्षा करनेके लिए बँधे हुए थे। पर हमने यदि युवराजके स्वागत-समारोहमें भाग लेनेवाले एक भी यूरोपीय या अन्य किसी व्यक्तिको चोट पहुँचाई या उसका अपमान किया है तो उस हदतक हमने अपने वचनको भंग किया है। हमको स्वागत-समारोहसे अलग रहनेका जितना अधिकार था उतना ही अधिकार उनको उसमें हिस्सा लेनेका था। और मैं खुद भी अपनी जिम्मेदारीसे कैसे बच सकता हूँ; विद्रोहकी भावनाको पैदा करनेमें सबसे बड़ा हाथ मेरा ही रहा है। मैं उस भावनाको अनुशासित और नियंत्रित करनेमें अपने-आपको पूरी तौरपर समर्थ नहीं पाता। मुझे इसके लिए प्रायश्चित्त करना चाहिए। मेरे लिए तो यह संघर्ष सारतः धार्मिक है। मैं उपवास और प्रार्थनामें विश्वास रखता हूँ और इसीलिए मेरा निश्चय है कि आगेसे मैं स्वराज्यकी प्राप्तितक हर सोमवारको चौबीस घण्टेका उपवास रखा करूँगा...।[1]

कार्य-समितिको इस परिस्थितिपर विचार करना पड़ेगा और इसको ध्यानमें रखते हुए ही यह निर्णय करना पड़ेगा कि जनताको पूरी तौरपर नियंत्रित कर लेने तक सविनय अवज्ञाको जरा भी बढ़ावा दिया जा सकता है या नहीं। मैं व्यक्तिगत रूपसे तो सोच-विचारकर इसी निर्णयपर पहुँचा हूँ कि अभी इस समय तो सार्वजनिक सविनय अवज्ञा शुरू नहीं की जा सकती। मैं तो स्वीकार करता हूँ कि जबतक जनतामें अहिंसाकी भावना पूर्णतया पैदा नहीं हो जाती तबतक सविनय अवज्ञा-आन्दोलनको

१. यहाँ मूलमें कुछ शब्द छूट गये हैं।

सफलतापूर्वक चलानेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है। इस निष्कर्षके लिए मुझे दुःख है। यह अपनी असमर्थताकी एक शर्मनाक स्वीकारोक्ति है, लेकिन मैं जानता हूँ कि मेरा सिरजनहार मुझे तभी ज्यादा पसन्द करेगा जब मैं जो कुछ हूँ वही अपनेको दिखानेकी कोशिश करूँ, जो नहीं हूँ वह दिखानेकी कोशिश न करूँ। अगर मैं सरकार द्वारा की जानेवाली संगठित हिंसासे कोई सरोकार नहीं रखना चाहता, तो जनता द्वारा असंगठित रूपसे की जानेवाली हिंसासे तो और भी अलग रहना चाहता हूँ। मैं इन दोनों पाटोंके बीच कुचल जाना कहीं ज्यादा पसन्द करूँगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४–११–१९२१

१९९. अपील : बम्बईके नागरिकोंसे

१९ नवम्बर, १९२१[1]

मेरे बम्बईवासी भाइयो और बहनो,

गत दो दिनोंमें मैंने जो मानसिक व्यथा सहन की है उसका वर्णन करना सम्भव नहीं। यह [अपील] मैं आज सबेरे साढ़े तीन बजे पूर्ण मानसिक शान्ति अनुभव करते हुए लिख रहा हूँ। दो घंटोंकी प्रार्थना और ध्यानके बाद मैंने यह शान्ति अनुभव की है।

जबतक बम्बईके हिन्दू और मुसलमान यहाँके पारसियों, ईसाइयों और यहूदियोंसे मेल नहीं कर लेते तथा असहयोगी लोग सहयोगियोंसे मेल नहीं कर लेते, तबतक मैं जलके सिवाय और कुछ भी ग्रहण नहीं करूँगा।

गत दो दिनोंमें मैंने स्वराज्यका जो रूप देखा है उसकी सड़ायँध मेरे भीतरतक पैठ गई है। हिन्दू-मुस्लिम एकता मुट्ठी-भर पारसियों, ईसाइयों तथा यहूदियोंके लिए खतरा बनी है। असहयोगियोंकी अहिंसा सहयोगियोंकी हिंसासे भी बुरी साबित हुई है। कारण, हमने मुँहसे तो अहिंसा-अहिंसा कहा है, किन्तु वास्तवमें उन लोगोंको आतंकित किया है जो हमसे सहमत नहीं हैं। इस तरह हमने अपने ईश्वरको नकार दिया है। 'कुरान,' 'बाइबिल,' 'जेन्द-अवेस्ता,' 'तालमुड' अथवा 'गीता', किसी भी माध्यमसे देखिए, हम सबका ईश्वर एक ही है, और वह सत्य तथा प्रेम स्वरूप है। मुझे जीनेमें अगर कोई रुचि है तो सिर्फ इसीलिए है कि मैं अपने अन्दरकी इस आस्थाको सिद्ध कर देना चाहता हूँ। मैं अंग्रेज अथवा और भी किसीसे घृणा-द्वेष नहीं कर सकता। अंग्रेजोंकी संस्थाओं, विशेषकर भारतमें स्थापित उनकी शासन-प्रणाली, के विरुद्ध मैंने बहुत-कुछ लिखा और कहा है। जीता रहा तो फिर भी यही करता रहूँगा। पर मैं अंग्रेजोंकी

१. यह "बम्बईके नागरिकोंसे श्री गांधीकी अपील" शीर्षकसे एक पर्चेके रूपमें इसी तारीखको जारी किया गया था; देखिए **नवजीवन**, २४–११–१९२१ ।

इस प्रणालीकी निन्दा करता हूँ इससे आप यह न समझें कि मैं अंग्रेज-जातिके लोगोंको निन्दनीय मानता हूँ। धर्मतः मुझे अंग्रेजोंसे भी वैसा ही प्रेम करना चाहिए जैसा हम अपने-आपसे करते हैं। इस संकटके समय यदि मैं इसे सिद्ध करनेका प्रयत्न न करूँ तो यह ईश्वरसे मुँह मोड़ने-जैसा ही होगा।

पारसियोंके सम्बन्धमें मैंने जो-कुछ कहा है, उसका एक-एक शब्द मेरे हृदयसे निकला है। हिन्दू-मुसलमान यदि प्राण देकर भी पारसियोंके प्राण और सम्मानकी रक्षा नहीं करेंगे तो वे अपने-आपको स्वतन्त्रताके अयोग्य सिद्ध करेंगे। हालमें ही उन्होंने अपनी उदारता और मित्रताका परिचय दिया है। मुसलमानोंपर तो उनका विशेष उपकार है, क्योंकि संख्याकी दृष्टिसे देखें तो पारसियोंने खिलाफतके लिए अनुपातत: मुसलमानोंसे अधिक धन दिया है। जबतक हिन्दू और मुसलमान इसके लिए खुले रूपसे हार्दिक खेद प्रकट न करेंगे तबतक मैं उन पारसी स्त्री और पुरुषोंकी कातर आँखोंसे आँखें नहीं मिला सकूँगा जिनके बीच मैं अभी १७ तारीखको गया था। इसी तरह जबतक हम हिन्दुस्तानी ईसाइयोंके साथ किये गये दुर्व्यवहारके लिए प्रायश्चित्त नहीं करेंगे तबतक मैं पूर्व आफ्रिकासे लौट आनेपर श्री एन्ड्र्यूजसे भी आँखें नहीं मिला सकूँगा। अपने भाई और बहनोंकी तरह इनकी भी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। उन्होंने या पारसियोंने आत्मरक्षार्थ अथवा बदला लेनेके लिए हममें से कुछके साथ जो बर्ताव किया है, उसका हमें ख्याल नहीं करना चाहिए।

आप लोग अनायास ही समझ ले सकते हैं कि उन लोगोंको मुख्यतः अधिकसे-अधिक राहत पहुँचाना मेरा कर्त्तव्य है जिन्हें मेरे निमित्तसे उद्भूत इस हलचलका शिकार बनना पड़ा है। मेरी प्रार्थना है कि हर हिन्दू और मुसलमान ऐसा ही करे। पर किसीके लिए उपवास आवश्यक नहीं है। उपवाससे तभी लाभ होता है जब आत्माकी तीव्र इच्छा और प्रार्थनाके बाद उसकी आवश्यकता महसूस की जाये। मैं चाहता हूँ कि हर हिन्दू और मुसलमान अपने घर जाकर ईश्वरसे क्षमाकी प्रार्थना करे और सच्चे हृदयसे आहत समुदायोंको मित्र बनानेका प्रयत्न करे।

मेरे साथ काम करनेवालोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे मेरे लिए एक भी सहानुभूतिका शब्द न कहें। मुझे न इसकी जरूरत है, न मैं इसके योग्य हूँ। पर मेरा अनुरोध है कि वे उद्दण्ड किस्मके लोगोंपर काबू पानेका अथक प्रयत्न करते रहें। यह संघर्ष सचमें 'खाँड़ेकी धार' का-सा संघर्ष है। इसमें झूठ और प्रपंचके लिए कोई गुंजाइश नहीं। हम अपना हृदय निर्मल बनाकर ही इस दिशामें कोई प्रगति कर सकते हैं।

मुसलमान भाइयोंसे मैं खास तौरसे दो शब्द कहना चाहता हूँ। खिलाफतको मैं एक पवित्र उद्देश्य समझता हूँ। मैंने हिन्दू-मुस्लिम एकताका प्रयत्न किया है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि इसके बिना भारत स्वतन्त्र नहीं रह सकता और हमारे लिए एक-दूसरेको सहज शत्रु समझना ईश्वरके अस्तित्वको अस्वीकार करना होगा। मैंने अली-बन्धुओंको गले लगाया, क्योंकि मैं जानता हूँ कि वे सच्चे और खुदासे डरनेवाले आदमी हैं। मैंने सुना है कि गत दो दिनोंकी संहार-लीलामें मुसलमानोंने आगे बढ़कर हिस्सा लिया था। इससे मेरे मनको गहरी चोट लगी है। मैं प्रत्येक मुसलमान कार्य-

कर्त्तासे अपील करता हूँ कि वह अपनी पूरी ऊँचाईतक उठे, धर्मके प्रति अपने कर्त्तव्य-का स्मरण करे और इस संहारको रोकनेमें कोई कसर न रहने दे।

ईश्वर हम सबको हर कीमतपर उचित कार्य करनेकी सुबुद्धि और साहस दे।

आपका सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २४-११-१९२१

२००. पत्र : गिरधारीलाल दयालको

साबरमती
कार्तिक बदी ४ [१९ नवम्बर, १९२१][1]

शा० गिरधारीलाल,

आपका पत्र मिला। यह जानकर दुःख हुआ कि आपके बहनोईको चोट लग गई है। धैर्य रखनेको कहनेके अलावा मैं इसका और क्या उपाय सुझा सकता हूँ?

मोहनदास गांधी

शा० गिरधारीलाल दयाल
दूसरी मंजिल
ठक्कर कानजी केशवजीनो मालो
सातऋषि गली
बम्बई

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ७६८०)की फोटो-नकल से।

१. इस पत्रपर बेपता-पत्र कार्यालय (डेड-लेटर आफिस)की १० दिसम्बर, १९२१ की तारीख पड़ी हुई है, और गांधीजीने इसपर कार्तिक बदी ४ की तारीख दी है। १९२१ में कार्तिक बदी ४, १९ नवम्बरको पड़ी थी।

२०१. अपील : बम्बईके मवालियोंसे

[२० नवम्बर, १९२१][1]

बम्बईके मवालियोंसे

मैंने यह समझकर सबसे बड़ी भयंकर गलती की कि असहयोगियोंने आप लोगोंको प्रभावित कर दिया है, और आप लोगोंने नैतिक दृष्टिसे अहिंसाकी आवश्यकता भले न समझी हो, पर उसका सापेक्ष मूल्य, और राजनीतिक महत्व अवश्य समझ लिया है। मेरी यह धारणा हो गई थी कि आप लोगोंने अपने देशके हितोंको इतना अवश्य समझ लिया है जिससे आप कुछ ऐसा काम नहीं करेंगे कि आन्दोलनको हानि हो; और आप लोग अपने निम्नतम मनोविकारोंके वशीभूत न होंगे। पर मुझे यह देखकर मर्म-वेदना हो रही है कि आप लोगोंने जनताकी जागृतिको लूट-खसोट और अन्य अत्यन्त कुत्सित वासनाओंकी तृप्तिका साधन बना लिया है। आप लोग अपनेको हिन्दू कहते हों या मुसलमान, ईसाई कहते हों या यहूदी अथवा पारसी, आप लोगोंने अपने धार्मिक हितोंको भी नहीं समझा है और उनकी भी हानि की है। मैं जानता हूँ कि मेरे कुछ मित्र कहेंगे कि मैं मानव-स्वभावको नहीं समझता। यदि मुझे विश्वास हो जाये कि यह आरोप सही है तो मैं कहूँगा कि मैंने अपराध किया है और तब मैं सामाजिक कार्योंसे अपने आपको अलग कर लूँगा और मानव-स्वभावकी समझ अपने अन्दर पैदा करनेके बाद ही उनमें भाग लेना शुरू करूँगा। पर मैं यह जानता हूँ कि दक्षिण आफ्रिकामें मुझे हिन्दुस्तानी मवालियोंतक को नियंत्रित करनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई थी। इस सफलताका कारण यह था कि जहाँ मैं स्वतः नहीं पहुँच सकता था, वहाँ सहायक कार्यकर्त्ताओंके जरिये अपनी बात अवश्य पहुँचा देता था। परन्तु मैं देखता हूँ कि आप लोगोंतक हम लोग नहीं पहुँच पाये हैं। मैं यह नहीं मान सकता कि धर्म और देशकी पवित्र पुकारका आप लोगोंपर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।

देखिए कि आप लोगोंने क्या कर डाला है! हिन्दू और मुसलमान मवालियोंने पारसी मन्दिरोंकी पवित्रता भंग की है और इस प्रकार पारसी मवालियोंके लिए भी रास्ता खोल दिया है कि वे आपके धार्मिक स्थानोंकी दुर्गति करें। चन्द पारसियोंने युवराजके स्वागतमें सम्मिलित होना उचित समझा, सिर्फ इसीलिए हिन्दू और मुसलमान मवालियोंने अपने सामने पड़नेवाले हरएक पारसीकी फजीहत करना अपना कर्त्तव्य समझा। नतीजा यह हुआ कि पारसी मवाली भी हिन्दू और मुसलमानोंके साथ इसी तरह पेश आने लगे हैं। निश्चय ही, पारसी मवालियोंको उतना दोषी नहीं माना जा सकता। सभी हिन्दुओं और सभी मुसलमानोंकी बात तो दूर रही, अधिकांश हिन्दुओं और मुसलमानोंतकने सख्तीके साथ विदेशी वस्त्रोंका परित्याग नहीं किया है। लेकिन

१. यह अपील इसी तिथिको एक पर्चेके रूपमें जारी की गई थी; देखिए **नवजीवन**, २४-११-१९२१।

हिन्दू और मुसलमान मवालियोंने इस बातका कोई ख्याल न करके कुछ पारसियों और ईसाइयोंके शरीरोंपर से विलायती वस्त्र उजड्डपनसे जबर्दस्ती उतार लिये। इसी कारण पारसी और ईसाई मवाली प्रत्येक खद्दरपोश हिन्दू और मुसलमानसे उलझ रहे हैं। इस तरह एक कुटिल सिलसिला चल पड़ा है और इसमें देशका नुकसान हो रहा है।

मैं यह बात आप लोगोंको दोष देनेके लिए नहीं, आप लोगोंको सावधान करने और स्वयं यह स्वीकार करनेके लिए लिख रहा हूँ कि हमने आप लोगोंकी ओर ध्यान न देकर बड़ा अपराध किया। मैं एक ढंगसे इसका प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। दूसरे कार्यकर्ता दूसरे ढंगसे कर रहे हैं। सर्वश्री आजाद सोबानी, जयकर[1], जमनादास मेहता, साठे, मुअज्जम अली और अन्य कार्यकर्त्ता इस दुर्भाग्यपूर्ण विस्फोटको दबानेके लिए अपनी जान जोखिममें डाल रहे हैं। श्रीमती सरोजिनी नायडू आप लोगोंको समझाने और आपसे अनुरोध करनेके लिए प्राणोंकी परवाह न कर आपके समीप पहुँची। आप लोगोंके बीच हमारा कार्य अभी आरम्भ ही हुआ है। क्या आप लोग हिंसा-प्रतिहिंसाका यह सिलसिला बन्द करके हमें कार्यका अवसर नहीं देंगे? पारसियों या ईसाइयोंसे बदला लेनेमें हिन्दुओं और मुसलमानोंको शर्म आनी चाहिए। पारसियों और ईसाइयोंको भी जानना चाहिए कि हिन्दुओं-मुसलमानोंके क्रोधका जवाब पशुबलके प्रयोगसे देना आत्मघात होगा। उनके ऐसा करनेका परिणाम यह होगा कि उन्हें विदेशी सरकारसे सहायता लेनी पड़ेगी, अर्थात् अपनी स्वाधीनता बेच देनी पड़ेगी। उनके लिए सबसे अच्छा उपाय यही है कि वे अपनी राष्ट्रीयताको समझें और भरोसा रखें कि समझदार हिन्दू और मुसलमान अपने हितोंसे पहले अल्पसंख्यक समुदायोंके हितोंकी रक्षा करेंगे और उनको करनी भी चाहिए। जो भी हो, बम्बईको दो कार्य करने हैं—अल्पसंख्यक समुदायोंकी सुरक्षा सुनिश्चित बनाना और हुल्लड़बाजोंको नियन्त्रित करना।

बम्बईके आप सब मवालियोंका मुझे भरोसा है कि अब आप लोग अपने हाथ रोक लेंगे और उन लोगोंको काम करनेका मौका देंगे जो आपकी सेवा करनेके अभिलाषी हैं।

ईश्वर आपकी सहायता करे।

आपका मित्र,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २४-११-१९२१

१. मुकन्दराव रामराव जयकर (१८७३-१९५९); बम्बईके वकील और नरमदलीय नेता; सरकारसे सुलह और शान्तिकी बात चलानेवाले प्रमुख व्यक्ति; १९३७ में फेडरल कोर्ट ऑफ इंडियाके न्यायाधीश नियुक्त हुए।

२०२. लोहेके चने

सविनय कानून-भंगके लिए गुजरातका सबसे पहले कदम बढ़ाना लोहेके चने चबानेसे भी कठिनतर है। फिर भी एक भी तहसील अगर इसमें सफल हो जाये तो स्वराज्य हमारी मुट्ठीमें ही धरा है, मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं। इसका अर्थ यह है कि जो तहसील बीड़ा उठाये उसमें एक सत्याग्रही सेना तैयार हो जाये। मैं पहले कह चुका हूँ कि सत्याग्रही सेनामें औरत-मर्द, जवान-बूढ़े, लूले-लँगड़े, दुर्बल-सबल, हिन्दू-मुसलमान, पारसी-ईसाई-यहूदी, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-भंगी-चमार, सब भरती हो सकते हैं। प्रह्लादकी तरह कोई बालक भी आ जाये तो वह भी दाखिल हो सकता है। और माँ-बाप अपने लड़के-बालोंकी भी भरती करा सकते हैं। यह खासा पचमेल मेला ही है; पर फिर भी यह प्रतिपक्षी सेनाके मुकाबलेमें बहुत ही ज्यादा काम कर सकता है और इसपर खर्च भी [उसके मुकाबलेमें] क्या होगा? इस सेनाके सिपाहियोंमें एक गुण जरूर होना चाहिए — निर्भयता। उनमें मरनेकी शक्ति होनी चाहिए अर्थात् उस सिपाहीमें आस्तिकता होनी चाहिए।

जिन दूसरे गुणोंकी आवश्यकता मैंने बताई[1] है वे सदा आवश्यक नहीं हैं। वे गुण तो सिर्फ आजकी परिस्थितिके ही लिए आवश्यक हैं।

फिर भी, यद्यपि इस तरह लिख देना तो आसान है तथापि जबतक मनुष्य उसे समझ नहीं पाता तबतक वह कठिन मालूम होता है। जो तहसील बीड़ा उठाये उसमें जबर्दस्त परिवर्तन होने चाहिए। उस तहसीलके सिपाही एक पल भी व्यर्थ न बैठें। इससे जब युद्ध शुरू होगा तब प्रत्येक सत्याग्रही या ग्रहिणी या तो जेल जानेके लिए किसी जगह सविनय अवज्ञा करते दिखाई देंगे या सूत कातते हुए, खादी बुनते हुए, या रुई धुनकते और कपास लोढ़ते हुए पाये जायेंगे। कोई छिन-भर भी अकर्मण्य नहीं बैठ सकता, फिर चाहे वह धनी हो चाहे भिखारी। सिपाहीगिरीमें धनवान और निर्धनका भेद नहीं रहता। जार्ज पंचम जब जहाजपर काम करते थे तब वे भी औरोंकी तरह जमीनपर सोते थे, बिना दूधकी चाय पीते थे तथा चौकर मिली मोटी रोटी खाते थे। ऐसा ही होना चाहिए।

इसलिए जिस तहसीलको तैयारी करनी हो उसे तथा जो तैयार हो गई हों उन्हें भी अपनी तहसीलके गाँवोंका अलग-अलग नकशा तैयार करना चाहिए। उसमें नीचे लिखा ब्यौरा हो: —

१. गाँवका नाम

२. पड़ावसे उसका फासला

३. आबादी। इसमें स्त्री, पुरुष, सोलह वर्षके अन्दरके लड़के-लड़कियाँ, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, भंगी, चमारकी तादाद बताई जाये।

१. देखिए "परीक्षा", १३-११-१९२१।

४. तादाद चरखा
५. तादाद करघा
६. तादाद तांत
७. कपासका संग्रह
८. मदरसा और तादाद हाजिरी
९. तादाद पुलिस
१०. ब्रिटिश हुकूमतके अन्य प्रतीक
११. जेलमें जानेके लिए तैयार लोगोंकी तादाद
१२. शराबकी दुकानोंकी तादाद
१३. सरकारसे सहयोग करनेवाले लोग हों तो उनकी तादाद

अगर हम एक सेनाके रूपमें संगठित जायें तो हरएक गाँवमें प्रजाका प्रतिनिधि और प्रजाके पंच भी होंगे। बीस-बीस आदमियोंकी एक टुकड़ी बन जाये और उनमें एक उसका मुखिया निश्चित हो। जहाँतक हो सके, इसमें हिन्दू, मुसलमान अथवा दूसरे ऐसे दल न बनें। ठीक तो यह है कि टुकड़ी एक-एक टोलेकी ही बने। जहाँ लोकमत संगठित हो चुका है वहाँ तो इसमें जरा भी कठिनाई नहीं होनी चाहिए। ऐसा संगठन लोकमतकी तैयारीका एक बड़ा लक्षण है।

यदि हरएक गाँवमें अच्छे काम करनेवाले लोग हों तो यह काम बिना किसी मेहनतके दो दिनमें हो सकता है। हमारे यहाँके गाँवोंकी बस्ती बड़ी नहीं होती। एक दिन सवेरे उनकी सभा करके यह काम पूरा किया जा सकता है। मैं जिस तहसीलमें जाऊँगा वहाँ पूर्वोक्त तमाम बातोंकी जानकारी मिलनेकी आशा रखूँगा।

ऐसे छोटेसे कामका शीर्षक मैंने 'लोहेके चने' क्यों रखा? इसलिए कि हम सिपाहीगिरी भूल गये हैं। हम परमार्थको भूल गये हैं। हम न जातिके रहे, न देशके। किन्तु हमें तो अपने लिए नहीं मरना है। हमें जनताके लिए मरना है। और जनताके लिए मरनेके पहले जनताका तैयार हो जाना जरूरी है वरना उसको तैयार करते हुए हमें मर मिटना होगा।

यह बिलकुल ही सच है कि हमें उद्यमकी आदत नहीं रही या फिर हम निरर्थक कामोंमें अपना समय बिता रहे हैं और उन्हें करते हुए हम न लोक-सुखका खयाल करते हैं न लोक-संग्रहका। कुटुम्बसे आगे हमारी दृष्टि पहुँचती ही नहीं। हम सबका धर्म तो हमें यही शिक्षा देता है कि व्यक्ति कुटुम्बके लिए, कुटुम्ब गाँवके लिए, गाँव तहसीलके लिए, तहसील जिलेके लिए, जिला प्रान्तके लिए, प्रान्त भारतवर्षके लिए, और अन्तको भारतवर्ष सारे जगत्के लिए मरनेको तैयार हो जाये। इस स्वदेशाभिमानके लिए मैं जी रहा हूँ और उसको प्रकट करनेके लिए मर मिटना मुझे जीवित रहनेके बराबर ही प्रिय है। उसके बिना जीवित रहना मृत्युके ही समान है। संसारमें अगर कोई सुख है तो वह है परदुःखके लिए दुःखी होना और दूसरेकी रक्षाके लिए स्वयं मर जाना। ऐसा करनेवाले सहज सुखका उपभोग करते हैं। इसके लिए कोई भारी काम करना पड़े, सो बात नहीं। सिर्फ हृदयको बदल देनेकी जरूरत है। जरा

विचार करते ही यह हो सकता है। इसमें देरी लगनेकी कोई बात नहीं है; क्योंकि अपने पड़ौसीके लिए मरना तो आत्माका सहज-स्वभाव ही है।

तैयार हुई तहसील अगर इस तत्त्वको समझ जाये तो जो काम लोहेके चने चबानेसे भी कठिन मालूम होता है वह मुझ जैसे बूढ़ेके लिए तैयार किये गये मुलायम चने चबानेसे भी अधिक आसान मालूम होगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०–११–१९२१

२०३. सत्य क्या है?

अंग्रेजी धर्मशास्त्रमें एक कथा है। उसमें एक न्यायाधीशने प्रश्न किया— "सत्य क्या है?" उसका उत्तर उसे नहीं मिला। हिन्दू धर्म-ग्रंथोंमें सत्यके लिए हरिश्चन्द्रने सर्वस्व अर्पण कर दिया और खुद स्त्री-पुत्र-सहित चाण्डालके हाथ बिक गये। (उस जमानेमें अस्पृश्यताकी न जाने क्या स्थिति रही होगी?) इमाम, हसन और हुसैनने सत्यकी खातिर अपने प्राण दे दिये।

जो भी हो, पर उस न्यायधीशको अपने सवालका जवाब नहीं मिला। हरिश्चन्द्र जिसे सत्य समझते थे उसके लिए मिटकर वे अमर हो गये। इमाम हुसैनने जिसे सत्य जाना उसके लिए अपना प्यारी देहतक दे डाली। सम्भव है हरिश्चन्द्र और इमाम हुसैनका सत्य ही हमारा सत्य न हो; लेकिन इस परिमित सत्यके उपरान्त एक शुद्ध सत्य है। वह अखण्ड है, सर्वव्यापक है। परन्तु वह अवर्णनीय है। क्योंकि सत्य ही परमेश्वर है अथवा परमेश्वर ही सत्य है। दूसरी सब चीजें मिथ्या और असत्य हैं, अर्थात् उनमें जिस परिमाणमें जितना सत्य है वही ठीक है।

अतएव जो सत्यको जानता है, मन, वचन और कायासे सत्यका आचरण करता है, वह परमेश्वरको पहचानता है। इससे वह त्रिकालदर्शी हो जाता है। उसे इसी देहमें मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

ऐसा एक भी सत्याचारी यदि ३१ दिसम्बरके पहले तैयार हो जाये तो स्वराज्य मिला ही रखा है।

हममें से कितने ही तो केवल सत्याग्रही हैं— उन्हें सत्यके आचरणका आग्रह है। और वे भी शायद वाणीके सत्यतक ही पहुँच पाये हों। इससे स्पष्ट हो जायेगा कि सत्यका पालन कोई आसान बात नहीं है।

एक मित्रने मुझसे पूछा: "आप तो सत्य-व्रतका पालन करते हैं। फिर भी आपने श्रीयुत दासके तारका अर्थ अपने पक्षमें लगा लिया[1] और बंगालके १५ के बजाय २५ लाख प्रकट कर दिये। क्या इसमें आपने सूक्ष्म असत्यका आचरण नहीं किया?" निश्चय ही मैंने अपने पक्षमें अर्थ लगानेका कोई प्रयत्न नहीं किया था; अपने मनके अनुकूल अर्थ लगानेकी मुझे आदत नहीं है। वह तार रातको बारह बजेके बाद मिला। यह

१. गांधीजीने श्री चित्तरंजन दासके एक तारका अर्थ गलत लगा लिया था।

बात मैं अपनी सफाईके लिए नहीं कह रहा हूँ बल्कि यह बतानेके लिए कह रहा हूँ कि सत्य तो सूलीपर चढ़ाये जानेपर भी ज्योंका-त्यों ही झलकना चाहिए। जो तीनों कालमें सत्यका ही आचरण करनेकी इच्छा रखता है वह उतावली नहीं कर सकता। फिर सत्यवादी तो अनजानमें भी न असत्य कहता है, न करता है। वह असत्य कहने और करनेमें असमर्थ हो जाता है। इस व्याख्याके अनुसार मैंने सत्यका अवश्य ही उल्लंघन किया है।

पर मुझे सिर्फ इसी बातका सन्तोष है कि मैं सत्यका आग्रह रखनेके अतिरिक्त इस व्रतके विषयमें अधिक कोई दावा नहीं करता। जानबूझकर मैं असत्य भाषण नहीं कर सकता। एक बार अपने पू० पिताजीको धोखा देनेके लिए मैं जानबूझकर झूठ बोला था। इसके सिवा दूसरा कोई अवसर मुझे अपनी जिन्दगीमें याद नहीं आता। सत्य कहना और करना मेरा स्वभाव ही हो गया है। अलबत्ता जिस सत्यको मैं परोक्ष रूपमें ही जानता हूँ उसके पालन करनेका दावा मैं नहीं कर सकता। मुझसे अनजानमें भी अत्युक्ति हो जाती है, आत्मश्लाघा हो जाती है; मुझे अपने किये कामोंके वर्णनमें मजा आने लगता है। इस सबमें असत्यकी छाया है और ये सत्यकी कसौटीपर नहीं चढ़ सकते। जिसका जीवन सत्यमय है वह तो स्फटिक मणिकी तरह शुद्ध हो जाता है। उसके पास असत्य जरा देरके लिए भी नहीं ठहर सकता। सत्याचारीको कोई धोखा दे ही नहीं सकता; क्योंकि उसके सामने झूठ बोलना अशक्य हो जाना चाहिए। संसारमें सर्वाधिक कठिन व्रत सत्यका है। लाखों आदमी कोशिश करें तब कहीं इसी जन्ममें उनमें से एकाध पार उतर सके तो उतर सके।

मेरे सामने जब कोई असत्य बोलता है तब मुझे उसपर क्रोध आनेके बजाय स्वयं अपने ही ऊपर अधिक क्रोध आता है; क्योंकि मैं जानता हूँ कि अभी मेरे अन्तरमें कहीं असत्यका वास है।

सत्य शब्दकी उत्पत्ति सत् से हुई है। सत्का अर्थ है होना। तीनों कालमें एक ही रूपमें एकमात्र अस्तित्व परमात्माका ही है। जिस सज्जनने ऐसे सत्यकी भक्ति करके उसे अपने हृदयमें सदाके लिए स्थान दे दिया है उसे मेरा कोटि-कोटि नमस्कार है। इस सत्यकी सेवा करनेके लिए मैं जी-जानसे कोशिश कर रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि उसके लिए हिमालयकी चोटीसे कूद पड़नेकी हिम्मत मुझमें है। फिर भी मैं यह जानता हूँ कि अभी मैं उससे बहुत दूर हूँ। ज्यों-ज्यों मैं उसके नजदीक पहुँचता जाता हूँ त्यों-त्यों मुझे अपनी अशक्तिका ज्ञान अधिकाधिक होता जाता है और त्यों-त्यों यह ज्ञान मुझे नम्र बनाता जाता है। हाँ, अपनी अशक्तिको न जाननेके कारण अभिमान रखना सम्भव है। परन्तु जो जानता है उसका गर्व दूर हो जाता है। मेरा तो कभीका दूर हो गया है। तुलसीदासजीने अपनेको शठ कहा है। उसका मर्म मैं ठीक-ठीक समझ सकता हूँ। यह मार्ग शूरवीरोंका है, कायरोंका यहाँ काम नहीं। जो चौबीसों घण्टे प्रयत्न करता है, खाते, पीते, बैठते, सोते, सूत कातते, शौच आदि प्रत्येक काम करते हुए जो केवल सत्यका ही चिन्तन करता है, वह अवश्य सत्यमय हो जाता है। और जब किसी-के अन्दर सत्यका सूर्य सम्पूर्णतः प्रकाशित होता है तब वह प्रकाश छिपा नहीं रहता। तब उसे बोलने, बतलाने या समझानेकी जरूरत नहीं रहती। या उसके बोलमें इतना बल

होता है, इतना जीवन भरा होता है कि उसका असर लोगोंपर तुरन्त होता है। ऐसा सत्य मुझमें नहीं है। हाँ, इस मार्गपर मैं चल अवश्य रहा हूँ। अतएव मेरी यह दशा "रूख नहीं तँह रेंड प्रधान" की तरह दीन है।

सत्यमें प्रेम होता है। सत्यमें अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय आदिका समावेश हो जाता है। पाँच यम तो केवल सुविधाके लिए बताये गये हैं। सत्यको जान लेनेके बाद जो हिंसा करता है, वह सत्यका त्याग करता है। सत्यको जाननेके बाद जो व्यभिचार करता है वह तो मानो सूर्यके रहते हुए अंधेरेके अस्तित्वको मानता है। ऐसे शुद्ध सत्यका पूरी तरह पालन करनेवाला एक मनुष्य भी इस वर्षके अन्तके पहले निकल आये तो स्वराज्य मिले बिना नहीं रह सकता; क्योंकि उसका कहना सबको मानना ही पड़ेगा। सूर्यके प्रकाशको किसीके सामने सिद्ध नहीं करना पड़ता। सत्य स्वयं प्रकाशमान् और स्वयंसिद्ध है। ऐसा सत्याचरण इस विषम कालमें कठिन तो है पर असम्भव नहीं। यदि कुछ ही लोग कुछ ही अंशमें ऐसे सत्यके आग्रही हो जायें तो हम स्वराज्य प्राप्त कर लें और अगर कुछ लोग ऐसे सत्यके सख्त आग्रही हो जायें तो फिर कहना ही क्या है। पर हम सच्चे हों। सत्यके बदले सत्यका ढोंग काम नहीं दे सकता। भले ही रुपयेमें एक आना हों, पर हों हम सच्चे। इस थोड़े-बहुत सत्यमें भूले भटके, जान-अनजानमें वाणीके असत्यका किंचित् भी समावेश हरगिज न करें। मेरी तो यह महत्वाकांक्षा है कि इस धर्मयज्ञमें हम सब लोग सत्यका सेवन करनेवाले बनें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-११-१९२१

२०४. रेवरेंड जे० केलॉकके[1] नाम नोट

मौनवार, २१ नवम्बर, १९२१

मैं अंग्रेज मित्रोंको वहाँ जानेके लिए[2] धन्यवाद देता हूँ। मैं उठता नहीं हूँ क्योंकि उठनेसे जोर पड़ता है। मेरी आकांक्षा है कि भले ही हमारे बीच अधिकसे-अधिक मतभेद हो किन्तु हम मित्रवत् रहें।

अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० ४५०२) की फोटो-नकलसे।

१. विल्सन कालेज, बम्बईके प्रोफेसर।

२. विभिन्न जातियोंके एक सम्मिलित दलके सदस्योंकी हैसियतसे उपद्रवग्रस्त क्षेत्रोंमें विश्वास और शान्तिकी स्थापनाके लिए जानेके लिए।

२०५. वक्तव्य : उपवास तोड़नेसे पूर्व

[२१, नवम्बर, १९२१]

गांधीजीने सहयोगियों, असहयोगियों, हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों और पारसियों-की एक सभामें अपना उपवास तोड़ा। हर सम्प्रदायके एक-एक प्रतिनिधिने वहाँ सद्-भावनापूर्ण भाषण दिये। कार्य-समितिके सदस्य भी वहाँ उपस्थित थे। उपवास तोड़ने-से पहले, गांधीजीने गुजरातीमें एक वक्तव्य दिया।[1] उसका अनुवाद नीचे दिया जा रहा है:

मित्रो,

इस छोटी-सी सभामें हिन्दुओं, मुसलमानों, पारसियों और ईसाइयोंको एक साथ देखकर मेरा हृदय बहुत प्रसन्न है। मुझे आशा है कि आज सुबहका हमारा अल्प-फलाहार हमारी स्थायी मैत्रीका प्रतीक बन जायेगा। यद्यपि मैं जन्मसे ही आशावादी हूँ, फिर भी मेरी आदत हवामें किले खड़े करनेकी नहीं है। इसलिए इस सभासे मैं धोखेमें नहीं आ सकता। सभी सम्प्रदायोंके बीच स्थायी मैत्रीकी हमारी आशा तभी पूरी हो सकती है, जब यहाँ उपस्थित हम सभी लोग उसकी स्थापनाके लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहें। मैं अपना उपवास आप लोगोंके आश्वासनपर तोड़ रहा हूँ।[2] इन चार दिनोंमें असंख्य मित्र जिस प्रेमके साथ मुझे घेरे रहे हैं, उसका मुझे बराबर ध्यान रहा है। मैं उनका सदा आभारी रहूँगा। उन्हींके आकर्षणसे मैं शान्तिके इस लोकसे, जिसमें कि मैं इन दिनों रह रहा था, इस तूफानी समुद्रमें फिर कूद रहा हूँ। यद्यपि मेरे कानोंमें दुःखद वृत्तान्त पड़ते रहे हैं, फिर भी मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि खाली पेट रहनेके कारण मैंने शान्ति अनुभव की है। मैं जानता हूँ कि उपवास तोड़नेके बाद मैं उसे अनुभव नहीं कर सकूँगा। मानव होनेके कारण औरोंके दुःख मुझे प्रभावित करते हैं, और जब मुझे उन्हें दूर करनेका कोई उपाय नहीं सूझता तो मेरा मानव-स्वभाव मुझे इतना विक्षुब्ध कर देता है कि मैं मौतको गले लगानेके लिए उसी तरह तड़पने लगता हूँ जैसे कि कोई मुद्दतसे बिछुड़े अपने प्यारे मित्रके लिए तड़पता है। इसलिए, मैं यहाँ उपस्थित सभी मित्रोंको यह चेतावनी देता हूँ कि यदि बम्बईमें सच्चे मायनोंमें शान्ति स्थापित नहीं हुई और फिरसे दंगे शुरू हो गये और यदि उनके फलस्वरूप मुझे और भी कड़ी परीक्षामें उतरना पड़ा, तो उन्हें उसपर आश्चर्य या दुःख नहीं करना चाहिए। यदि शान्तिकी स्थापनामें उन्हें कुछ भी संशय हो, यदि हर सम्प्रदायमें अभी भी कटु भावना और सन्देह मौजूद है और यदि हम सब पिछली गलतियोंको भूलने और माफ करनेको तैयार नहीं हैं, तो फिर मैं यही चाहूँगा कि वे मुझपर

१. मूल गुजराती वक्तव्य उपलब्ध नहीं है।

२. देखिए परिशिष्ट २।

उपवास तोड़नेके लिए जोर न डालें। इस प्रकारके संयमको मैं सच्ची मित्रता की कसौटी मानूंगा।

हिन्दुओं और मुसलमानोंपर मैं खास जिम्मेदारी डालता हूँ। उनमें से अधिकांश असहयोगी हैं। उन्होंने फिलहाल अहिंसाका धर्म स्वीकार कर लिया है। उनके पास बहुसंख्याकी शक्ति है। सरकारी सहायताके बिना भी, वे छोटे सम्प्रदायोंके विरोधके सामने टिके रह सकते हैं। इसलिए यदि वे छोटे सम्प्रदायोंके प्रति मैत्री और उदारताका भाव रखें तो सब ठीक हो जायेगा। मैं पारसियों, ईसाइयों और यहूदियोंसे प्रार्थना करूँगा कि वे भारतकी नई जागृतिको ध्यानमें रखें। हिन्दू-मुस्लिम मानव-समुद्रमें उन्हें अनेक रंगोंका जल मिलेगा। किनारेपर उन्हें गदला जल दिखाई देगा। मैं उनसे आग्रह करूँगा कि उनके जो हिन्दू या मुसलमान पड़ौसी उनके प्रति दुर्व्यवहार करें उन्हें भी वे बरदाश्त करें और उस दुर्व्यवहारकी सूचना अपने नेताओंके द्वारा तुरन्त हिन्दू और मुसलमान नेताओंको भेजें, ताकि उन्हें न्याय प्राप्त हो सके। वस्तुतः मैं यह आशा करता हूँ कि इस दुर्भाग्यपूर्ण कलहके फलस्वरूप सभी अन्तर्जातीय झगड़ोंके निपटारेके लिए एक महाजन नियुक्त कर दिया जायेगा।

इस सभाका महत्व मेरे खयालमें इस बातमें है कि उसी एक ईश्वरके उपासक हम सब अपने मतभेदोंके बावजूद, इस निर्दोष भोजमें एक साथ शामिल हो सके हैं। हम आज इन मतभेदोंको कम करनेके उद्देश्यसे इकट्ठे नहीं हुए हैं, निश्चय ही हम अपने प्रिय सिद्धान्तोंमें से किसी एकको छोड़नेके लिए भी इकट्ठे नहीं हुए हैं। हम यहाँ इकट्ठे हुए हैं यह प्रदर्शित करनेके लिए कि हम, अपने सिद्धान्तोंके प्रति सच्चे रहते हुए भी, एक-दूसरेके प्रति दुर्भावनासे मुक्त रह सकते हैं।

ईश्वर हमारे प्रयत्नको सफल बनाये।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४–११–१९२१

२०६. साथी कार्यकर्त्ताओंसे

२२ नवम्बर, १९२१

साथियो,

ये पिछले कुछ दिन हमारी अग्नि-परीक्षाके दिन थे, और हमें परमात्माको धन्यवाद देना चाहिए कि हममें से कितने ही लोग उसमें कच्चे नहीं साबित हुए। अभी बहुतसे लोग मेरे सामने हैं, जिनके सिर फोड़ दिये गये हैं। ये घायल लोग तथा जिन लोगोंकी लाशोंका हाल मैंने प्रामाणिक सूत्रसे सुना है, इस बातके यथेष्ट प्रमाण हैं। कई कार्यकर्त्ताओंने शान्ति स्थापित करने तथा अपने सिरफिरे देशभाइयोंके कोपको शान्त करनेके कार्यमें अपनी जानें गँवाई हैं, हाथ-पैर तुड़वाये हैं, और गहरी चोटें खाई हैं। ये मौतें और ये चोटें साबित करती हैं कि यद्यपि हमारे अनेक देशभाई भूल कर बैठे हैं, तथापि हममें कुछ लोग जरूर ऐसे हैं जो अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए प्राणतक न्यौछावर

करनेपर कटिबद्ध हैं। अगर हम सब लोगोंके हृदयमें अहिंसाकी भावना अच्छी तरह रम गई होती, या थोड़े ही लोगोंने उसे हृदयंगम कर लिया होता, पर दूसरे लोग सिर्फ निरुपद्रवी ही बने रहते, तो किसी तरहका खून-खराबा न होता। किन्तु होनहार ऐसी नहीं थी। ऐसी हालतमें शान्तिपूर्ण वातावरण बनानेके लिए कुछ लोगोंके लिए स्वेच्छापूर्वक अपना खून बहाना जरूरी था। जबतक खून-खराबा करनेवाले दुर्बल लोग हमारे बीच मौजूद रहेंगे तबतक दूसरे ऐसे कमजोर लोग भी निकलेंगे ही जो मार-काटकी विद्यामें अधिक निपुण और हिंसाके साधनोंसे सम्पन्न लोगोंकी मदद लेना चाहेंगे। इसीलिए तो पारसियों और ईसाइयोंने सरकारकी सहायता माँगी और सरकारने दी भी —— यहाँतक दी कि उसने खुल्लमखुल्ला उनका पक्ष लिया और उनको हथियार देकर बदलेकी कार्रवाईके रूपमें खून-खराबा करनेके लिए उत्तेजित किया और उन लोगोंमें से किसी एककी भी जान बचानेकी जरा भी परवाह नहीं की, जो शुरूमें तो दरअसल गुनहगार थे, परन्तु बादमें पारसियों, ईसाइयों और यहूदियोंके क्षम्य कोपके शिकार हुए। इस तरह यह सरकार बिलकुल नग्नरूपमें सामने आ गई है। वह एक ऐसे पक्षके रूपमें सामने आई है जो शान्तिकी रक्षाके लिए ही नहीं, बल्कि अपने क्षतिग्रस्त समर्थकोंकी आक्रामक हिंसाको बल पहुँचानेके लिए हिंसापूर्ण कार्य करता है। वैसे ईसाइयोंका क्रोध सकारण था। परन्तु जब वे बेकसूर लोगोंकी सफेद टोपियाँ छीन रहे थे और अपनी टोपियाँ न देनेवाले लोगोंकी पिटाई कर रहे थे अथवा जब पारसी लोग आत्मरक्षाके लिए नहीं बल्कि केवल इसीलिए लोगोंको मार रहे थे और उनपर गोलियाँ चला रहे थे कि वे व्यक्ति हिन्दू या मुसलमान या असहयोगी थे, तब सरकारी पुलिस और फौज निष्ठुरतापूर्ण उपेक्षाके साथ अलग खड़ी तमाशा देखती रही। मैं उन दुःखी और पीड़ित पारसी और ईसाइयोंको तो क्षमा कर सकता हूँ; परन्तु पुलिस और फौजने तरफदारी करते हुए जो मुजरिमाना बर्ताव किया है, उसका कोई औचित्य नहीं दिखाई देता।

इसलिए असहयोगी कार्यकर्त्ताओंका तो यही कर्त्तव्य है कि वे सरकार तथा अपने इन पथ-भूले देशभाइयोंके हाथों चोटें सहन करें। बस, हिंसात्मक शक्तियोंको निष्प्रभावी बनानेका यह एक ही रास्ता हमारे लिए खुला है। शीघ्र स्वराज्य प्राप्तिका मार्ग तो यही है कि हम हिंसाकी ताकतोंपर अपना नियन्त्रण कायम कर लें —— सो भी अधिक हिंसात्मक उपायोंके द्वारा नहीं, बल्कि नैतिक प्रभाव डालकर। हमें यह सूरजकी रोशनीकी तरह साफ-साफ दिखाई देना चाहिए कि हिंसात्मक कार्रवाइयोंके लिए अपने-आपको इतना प्रशिक्षित कर लेना, इतनी साधन-सामग्री जुटा लेना हमारे लिए असम्भव है कि उसके जरिये हम इस वर्तमान सरकारको बदल दें।

कई लोग यह खयाल करते हैं कि सत्रह तारीखके उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन यह दंगा-फसाद खड़ा हो जानेसे युवराजके स्वागतके प्रति जनताका रोष जिस तीव्रतासे प्रकट हुआ है उतने कारगर तौरसे वह दूसरे ढंगसे शायद ही होता। इस दलीलसे जितना अज्ञान प्रकट होता है उतनी ही दुर्बलता भी। अज्ञान इस दृष्टिसे कि हमारा लक्ष्य स्वागतको हानि पहुँचाना नहीं था, और दुर्बलता इस दृष्टिसे कि अब भी हम अपने बलकी जानकारीसे सन्तुष्ट रहनेकी अपेक्षा उसे दूसरोंपर जाहिर करनेके लिए मरे जाते

हैं। काश कि मैं हरएकको समझा सकता कि जो कुछ हुआ उससे खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य-सम्बन्धी त्रिविध लक्ष्योंकी ओर हमारी प्रगतिको धक्का पहुँचा है?

किन्तु यदि कार्यकर्त्ता लोग अपनी जवाबदेहीको समझकर उसके अनुसार कार्य करें तो अब भी बाजी हाथसे गई नहीं है। हमें बम्बईके उपद्रवी तत्त्वोंका पूरा सहयोग हासिल करना चाहिए। हमें मिल-मजदूरोंसे परिचित होना चाहिए। वे या तो सरकार-का साथ दें या हमारा, अर्थात् या तो मार-काटमें शामिल हों या ऐसे उपद्रवोंका सामना शान्तिके साथ करें। इसमें बीचका कोई रास्ता हो ही नहीं सकता। उन्हें हमारे कार्योंमें दखल हरगिज न देना चाहिए। या तो वे हमारे प्रेमके अधीन हो जायें या असहाय होकर संगीनोंके आगे सिर झुका दें। किन्तु हिंसा करनेके लिए वे अहिंसाके झंडेकी आड़ लेनेकी कोशिश न करें। और अपना सन्देश उनतक पहुँचानेके लिए हमें एक-एक मिल मजदूरके पास जाना चाहिए और उसे अपने संघर्षके हर पहलूकी जानकारी करा देनी चाहिए। इसी प्रकार हमें दूसरे उपद्रवी लोगोंसे भी मिलना चाहिए, उनसे मेल-मुहब्बत बढ़ानी चाहिए और उन्हें इस संघर्षका धार्मिक स्वरूप समझनेमें मदद देनी चाहिए। हम उन्हें भुला नहीं सकते; पर उन्हें अपने सिरपर भी नहीं चढ़ा सकते। हमें तो बस उनका सेवक बन जाना चाहिए।

हम जोर-जबर्दस्तीसे स्थापित शान्ति नहीं चाहते। हमें तो सरकारकी सहायता-के बिना, और कभी-कभी उसके प्रत्यक्ष विरोधके बावजूद स्थायी शान्तिकी गारंटीकी जरूरत है। हमें तो हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई और यहूदी—इन सबके हृदयोंकी एकताकी जरूरत है। हाँ, ये आखिरी तीन जातियाँ पहली दो जातियोंका अविश्वास कर सकती हैं और शायद करेंगी भी। हालकी घटनाओंने ऐसे अविश्वासको पक्का बनानेके कारण उपस्थित कर दिये हैं। इस अविश्वासको दूर करनेके लिए हमारी तरफसे खासतौर पर प्रयत्न होने चाहिए। अगर वे पूरे असहयोगी न बनें या स्वदेशीको न अपनायें और स्वदेशीकी प्रतीक अर्थात् खादीकी सफेद टोपी न पहनें, तो भी हमें उन्हें परेशान न करना चाहिए। अगर वे हर वक्त सरकारकी ही तरफदारी करें तो भी हमें चिढ़ उठनेकी जरूरत नहीं है। हमें तो सिर्फ प्रेम-भरी सेवाके बलपर ही उन्हें अपना बनाना है। वर्तमान स्थितिमें यही हमारी आवश्यकता है। इसका विकल्प है, गृह-युद्ध। और ऐसी दशामें, जब कि एक तीसरी विदेशी सत्ता कभी एक, और कभी दूसरेका पक्ष लेकर अपनी सत्ताकी जड़ें अधिकाधिक मजबूत करनेके लिए घात लगाये बैठी है, निकट भविष्यमें गृह-युद्धको असम्भाव्य ही मानना चाहिए।

और जो बात छोटी जातियोंके विषयमें सच है, वह सहयोगियोंके विषयमें भी उतनी ही सच है। हमें उनके प्रति भी अधीर न होना चाहिए; उनकी हरकतें सहन करनी चाहिए। अगर हम सरकारके साथ असहयोग करनेके लिए अपनेको स्वतन्त्र मानते हैं, तो फिर सरकारके साथ सहयोग करनेकी उनकी स्वतन्त्रताको भी हमें स्वीकार करना चाहिए। अगर हमारी संख्या कम होती और सहयोगी लोग अधिक संख्यामें होनेके कारण हमपर हिंसा करने लगते, तो हमें कैसा लगता? अपने विरो-धियोंके हृदयको जीत लेनेके जितने भी तरीके दुनियाको मालूम हैं उनमें सबसे अधिक

सफल और कारगर तरीका अहिंसात्मक असहयोग ही है। हमारे इस संघर्षका उद्देश्य ही यह है कि हम अंग्रेजों-सहित अपने हरएक प्रतिपक्षीको इसी उपायसे अपने पक्षमें कर लें। और यह हम तब ही कर सकते हैं जब कमजोरसे-कमजोरसे लेकर बलवानसे-बलवान मनुष्यके प्रति द्वेष-भावका त्याग कर दें। और द्वेष-भावका त्याग हम उसी अवस्थामें कर सकते हैं, जब हम अपने अन्तःस्थित विश्वासकी खातिर उन लोगोंका जो उस सत्यको नहीं देख सकते, शिरोच्छेद न करें, बल्कि जिस सत्यका प्रतिपादन हम करते हैं, उसके लिए मरनेको तैयार हो जायें।

आपका विश्वस्त साथी,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४–११–१९२१

२०७. टिप्पणियाँ

शौकत अलीका अभाव

अपनी कठिन परीक्षाके इन दिनोंमें मुझे मौलाना शौकत अलीका अपने साथ न होना बहुत खटकता रहा है। मुसलमान भाइयोंको मैं किसी मुसलमान भाईके जरिये ही प्रभावित कर सकता हूँ। वैसे कितने ही बहादुर और नेक मुसलमान भाई हैं जिनसे मेरा परिचय है; परन्तु मौलाना शौकत अली मुझे जितनी अच्छी तरह जानते हैं उतनी अच्छी तरह दूसरे कोई मुसलमान भाई मुझे नहीं जानते। अब तो मैं देखता हूँ कि उनका काम भी मुझे खुद ही करना पड़ता है। वे सब बातें मुसलमान भाइयोंसे खुद मुझे ही कहनी पड़ती हैं, जिन्हें मैं खासतौर पर उनके लिए रख छोड़ता था। मैं देखता हूँ कि पहले ही मेरी एक अपीलका गलत अर्थ लगा लिया गया है। इस समय अगर मौलाना शौकत अली मेरे साथ होते तो अपनी अपीलमें मुझे मुसलमानोंके सम्बन्धमें खासतौर पर एक पैरा लिखना ही न पड़ता। और, अगर १७ तारीखको वे बम्बईमें होते तो शायद यह दंगा हुआ ही न होता। कितनी ही बातें जो हुई हैं वे न हो पातीं। सचमुच अगर मियाँ छोटानी १७ तारीखको बम्बईमें होते, या श्री अहमद हाजी खत्री रोग-शैयापर न पड़े होते, तो घटनाओंका रुख कुछ और ही होता। पर बीती हुई बातोंपर सिर धुननेकी मेरी इच्छा नहीं। मौलाना शौकत अलीका जिक्र मैंने यहाँ अपने मुसलमान भाइयोंको यह विश्वास दिलानेके लिए किया है कि मैं मौलाना शौकत अलीके हिस्सेके काम भी अपने ऊपर लेनेको तैयार हूँ और मैं उनसे आशा करता हूँ कि वे मुझे गलत नहीं समझेंगे। उनके कामको मैं अपनी जिम्मेदारी समझता हूँ और जानबूझकर तो उनके साथ मैं कभी दगा नहीं करूँगा। इसी प्रकार मित्रोंसे भी मेरा अनुरोध है कि जहाँ वे मुझे भूल करते देखें, वहाँ निःसंकोच मुझे बता दें, और मैं उन्हें यकीन दिलाता हूँ कि अगर मुझे अपनी भूलका इत्मीनान हो जायेगा

तो मैं उसे पूरी तरह स्वीकार करनेमें कभी पीछे नहीं हटूँगा। पर मैं उन्हें पहले ही इतना जताये देता हूँ कि मैं आम तौरपर जल्दीमें अथवा बिना काफी आधारके कोई बात नहीं करता। अतएव अगर मैं अपनी भूलोंको आसानीसे स्वीकार न करूँ, तो इसपर वे चकरायें नहीं। मुझे जो इस विषयपर यहाँ इतना लिखना पड़ा है, इससे यही सूचित होता है कि दोनों जातियोंको एक दूसरेके विषयमें या एक-दूसरेकी कोई बात बड़ी सावधानीके साथ लिखनी पड़ती है। यह है तो बर्फकी पतली परतके ऊपर चलने-जैसा खतरनाक खेल ही, परन्तु हमें तो तथ्योंको उनके यथार्थ रूपमें स्वीकार करना चाहिए और उनका अच्छेसे-अच्छा उपयोग करना चाहिए।

अच्छा और बुरा

जब मैं कहता हूँ कि इन चार दिनोंके दौरान बम्बईके दंगेके बारेमें मेरे पास अच्छी और बुरी दोनों तरहकी खबरें आती रही हैं तो आशा है पाठक इस बातको समझेंगे। असहयोगी घायल हुए हैं। हिन्दू और मुसलमान पारसियोंपर हमला कर रहे हैं। पारसी उनपर गोलियाँ चला रहे हैं। ईसाई लोग खादीकी टोपी और कपड़े पहननेवालोंपर टूट पड़े हैं। हिन्दू और मुसलमान ईसाइयोंपर हमले कर रहे हैं। इन छिट-पुट खबरोंके बीच यह खुशखबरी भी आई कि पारसी दूसरे पारसियोंके हाथोंसे हिन्दू और मुसलमानोंकी जानें बचा रहे हैं, कुछ ईसाई भी हिन्दू मुसलमानोंको बचा रहे हैं और हिन्दू-मुसलमान दोनों पारसियों तथा ईसाइयोंको आश्रय दे रहे हैं, तथा असहयोगी अपनी जानकी जोखिम उठाकर भी शान्तिकी स्थापनाके लिए प्रयत्न कर रहे हैं। मुझे अपने मनमें दो अत्यन्त शक्तिशाली और परस्पर-विरोधी भावनाओंका संघर्ष झेलनेका दुर्भाग्य इससे पूर्व कभी नहीं मिला है। और फिर ऐसी नाजुक और विकट स्थितिमें मित्रोंका पथ-प्रदर्शन करना, उनको मौतके जबड़ेमें ढकेलना और साथ ही अपनेको मौतसे बचाये रखना! कितनी कष्टकर स्थिति थी? ऐसे कठिन अवसरपर, बस, उपवास ही मेरा बाहरी सहारा और हार्दिक प्रार्थना ही मेरा आन्तरिक बल रहा है। १७ तारीखको तो मुझे लगा, मानों मेरा सारा बल ही जाता रहा हो। मैं जनसमुदायको स्थायी तौरपर प्रभावित क्यों नहीं कर पाया? मेरा अहिंसाका बल कहाँ चला गया? मेरा कर्त्तव्य क्या है? जिनके साथ ज्यादती हुई है उनसे मैं यह तो कह नहीं सकता, और कह भी कैसे सकता हूँ, कि सरकारकी मदद लो? हमारे यहाँ पंचायतें भी नहीं, जो इन्साफ करें। ऐसा कोई नहीं दिखाई देता जिसके पास मैं जाकर कहूँ और जो बीचमें पड़कर सुलह करा दे। यह तो मैं कर नहीं सकता और न करूँगा ही कि शारीरिक बलके सहारे शान्ति स्थापित करानेके लिए लोगोंकी कुछ टुकड़ियाँ बनाऊँ। तो अब, मैं उन लोगोंको किस तरह राहत पहुँचाऊँ जो उपद्रवियोंकी हिंसाके शिकार हुए हैं। क्या मैं उन पारसियों या ईसाइयोंकी क्रोधाग्निमें, जिनका कुपित होना बेजा नहीं है, अपनी आहुति दे दूँ? पर इससे तो उलटे खूनकी नदियाँ बह जायेंगी। एक सिपाहीकी हैसियतसे तो मुझे एक भी अनिवार्य संकटको पीठ दिखाना लाजिम नहीं था। परन्तु बिना सोचे-विचारे अपनी जान जोखिममें डालना भी मेरे लिए ठीक नहीं था। अब मुझे करना क्या चाहिए? आखिर उपवासका विचार मेरे मनमें आया और इसने

मेरी आत्माको राहत दी। अगर आदमीके हाथों अपनेको मरवा डालना मेरे लिए उचित नहीं, तो जबतक मेरी अर्जी प्रभुके यहाँ मंजूर न हो तबतक अनशन-व्रत लेकर मुझे ईश्वरसे यह प्रार्थना करनी चाहिए कि ईश्वर मुझे उठा ले। मुझ-जैसा दिवालिया और कर भी क्या सकता था? निर्दोष जनतामें अपनी साखका मैं भरोसा नहीं कर सकता। १७ तारीखको उस साखके बलपर मैंने खुद ही जनताके सामने जो हुंडी पेश की थी उसको जनताने सिकारनेसे इनकार कर दिया — मेरी बात माननेसे इनकार कर दिया।[1] अब तो मुझे हर हालतमें खोयी हुई साख फिरसे जमानी थी या उसकी कोशिश करते हुए मर-मिटना था। अब मैं बस ईश्वरका ही एक सहारा ले सकता था, जिससे वह अपना काम मुझसे करवानेके लिए मेरी उठी हुई साखको फिर जमानेमें मेरी मदद करे। और ऐसा करनेका एक ही उपाय दिखाई दिया — यह कि मैं अपनेको अधिकसे-अधिक विनम्र बनकर उसके सामने साष्टांग पड़ जाऊँ और उसका दिया अन्न खानेसे इनकार करूँ। मुझे हजारों तरहसे अपनी सच्चाई उसपर प्रकट करनी चाहिए और उससे यह प्रार्थना करनी चाहिए कि अगर मैं तेरा काम करनेके लायक साबित न होऊँ तो मुझे वापस बुला ले और मेरी योग्यता और अपनी इच्छाके अनुसार नये सिरेसे मेरा निर्माणकर। और इसलिए मैंने अनाहार-व्रत लिया है। अब ये खबरें सुनकर कि 'मेरे साथियोंको चोटें लगी हैं या उपद्रवकारियोंको चोटें लगी हैं, मेरा चित्त अस्थिर नहीं होता। मेरा तो एकमात्र सहारा मेरी निजी अहिंसा ही है। अगर वह असर नहीं कर सकती, तो मुझे उसके लिए चिन्ता करना उचित नहीं। भारतके दूसरे भागोंमें हजारों लोग मरते हैं। उनकी मृत्युसे मेरे हृदयको दुःख होता है; पर उनके लिए मैं चिन्तित नहीं होता। उसी प्रकार इस मामलेमें भी, जब कि मैं जो-कुछ जानता हूँ वह सब कर चुका हूँ, मेरा चिन्तित और व्याकुल होना व्यर्थ ही है। इस प्रकार यह उपवास मेरे लिए प्रायश्चित्त, आत्मशुद्धि और भूल-सुधार सब-कुछ रहा है। यह कार्यकर्त्ताओंको एक चेतावनी भी है कि इस संघर्षमें वे मेरे साथ खिलवाड़ न करें। इस युद्धमें सिर्फ वही लोग शामिल रहें जो सच्चे दिलसे अहिंसाके कायल हों। ऐसे सच्चे और पक्के कार्यकर्त्ता अगर इने-गिने ही होंगे तो भी यह लड़ाई बेखटके और बिना उलझनोंके चलाई जा सकेगी। पर कार्यकर्त्ता अगर नेक और सच्चे न हों, तो उनकी संख्या बहुत होने पर भी, उनसे इस आन्दोलनको हानि ही पहुँचेगी। और अन्तिम बात यह कि उपवास शीघ्र शान्ति स्थापित करनेका एक उपाय है। लेकिन यह अन्तिम बात तो एक व्युत्पन्न वस्तु है, जो प्रायश्चित्त, आत्म-शुद्धि और भूल-सुधारके फलस्वरूप प्राप्त होती है। यह एक ईश्वर-प्रदत्त साख है।

कार्यकर्त्ताओ, सावधान!

उपवास तोड़ देनेके सम्बन्धमें मुझसे अनेक तरहसे अनुनय-विनय किया जा रहा है। कई लोगोंने तो मेरे दुःखसे दुःखी होकर खुद भी उपवास करना आरम्भ कर दिया है। मैं ऐसे सब सज्जनोंको यह जता देना चाहता हूँ कि वे भूल कर रहे हैं। मेरे लिए तो उपवास जरूरी हो गया था। मैं तो अपराधी था, दिवालिया था। मेरे लिए

१. देखिए "भाषण: बम्बईकी सार्वजनिक सभामें", १७-११-१९२१।

प्रायश्चित्त एक आवश्यक चीज थी। दूसरे लोगोंका काम तो यह है कि वे स्थितिको समझें, अपने अन्दर अगर हिंसा-भावका लेश भी बाकी रह गया हो तो उसका त्याग करें, दूसरोंमें अहिंसाका प्रचार करें और अच्छी तरह याद रखें कि हिंसाका तनिक भी उद्रेक हमारे कामको बिगाड़नेवाला है। वे चरखेको अपनी प्रिय वस्तु बना लें और केवल हिन्दू-मुस्लिम एकताका ही नहीं, बल्कि तमाम जातियोंमें एकता स्थापित करनेके लिए प्रयत्न करें। हिन्दू-मुस्लिम एकताका अर्थ अगर यह न हो कि वे दोनों जातियाँ अपने हितोंके मुकाबले छोटी जातियोंके हितोंको तरजीह दें, तो ऐसी हिन्दू-मुस्लिम एकता किसी कामकी नहीं। भारत-भूमिमें पैदा हुए ईसाई और यहूदी विदेशी नहीं हैं और न ही पारसी लोग विदेशी हैं। उनसे आगे बढ़कर मित्रता करना, उनकी सेवा और सहायता करना, खास तौरपर हमसे उन्हें कोई हानि न पहुँचे इससे उनकी रक्षा करना आवश्यक है। इसी प्रकार असहयोगी कार्यकर्त्ताओंको सहयोगी लोगोंके साथ भी मेलजोल रखनेकी आवश्यकता है। वे चाहे अंग्रेज हों, चाहे हिन्दुस्तानी, हमें उनके लिए अपने मुँहसे एक भी अपशब्द न निकालना चाहिए। हमें तो अपने उद्देश्यकी सच्चाई और कष्ट-सहनकी अपनी क्षमतामें ही विश्वास करना चाहिए। कमसे-कम फिलहाल तो हमने ईश्वरको साक्षी रखकर दुनियाके सामने यह घोषणा की है कि हम किसी भी अंग्रेजको किसी तरहसे नुकसान न पहुँचायेंगे, भले ही वह हमारे साथ कुछ भी क्यों न करे। इस प्रकार दुनियाके सामने ऐसी प्रतिज्ञा करके अगर उसकी ओटमें हम किसी भी अंग्रेज या हिन्दुस्तानी सहयोगीपर हाथ उठायेंगे तो हम ईश्वर और दुनियाके सामने गुनहगार ठहरेंगे।

शान्तिका अर्थ

अपनी दूसरी अपीलमें मैंने शान्तिकी जो बात कही है, मित्रोंने उसका अर्थ गलत समझा है। मैं जो शान्ति चाहता हूँ वह असहयोगियोंको स्थापित करनी है। इसका अर्थ यह नहीं कि कार्यका एक समान आधार ढूँढ़नेके लिए हम सिद्धान्त या नीतिको छोड़ दें। वह, मेरे खयालमें, एक असम्भव कार्य है, क्योंकि विभिन्न दलोंकी पद्धतियाँ एक-दूसरेसे बिलकुल भिन्न हैं। जब एक दल देशकी भलाई कौंसिलोंमें जानेमें देखता हो और दूसरा उनसे बाहर रहनेमें, तो उनमें मेल कैसे हो सकता है? किन्तु यदि हममें मतभेद है तो यह आवश्यक नहीं कि हम एक-दूसरेके साथ बदसलूकी करें, या एक-दूसरेका सिर फोड़ें। अहिंसाके सिद्धान्तका, जबतक हम उस सिद्धान्तपर चल रहे हैं, तकाजा है कि हम बदला लेनेके लिए अपना हाथ न उठायें। मुझे विश्वास है कि यदि हम सहिष्णुताका वातावरण पैदा कर सकें, तो हम अपना क्षेत्र बेहद बढ़ा सकते हैं। आज हम अपने ही सन्देहों और संशयोंमें जकड़े हुए हैं। हम यह निश्चित रूपसे नहीं कह सकते कि ये हजारों लोग जो हमारी सभाओंमें जमा होते हैं, अहिंसाका पालन करेंगे ही। यदि हम इतने लोकप्रिय न होते तो अबतक इससे कहीं अधिक प्रगति कर लेते। और इसके लिए हममें अपने विरोधियोंके लिए सद्भाव होना परम आवश्यक है। हमें सरकार या उसके समर्थकोंकी गलतियों और कमियोंकी बातें नहीं करनी चाहिए। हमें तो शान्तचित्त होकर अपनी शक्ति, अपने भाषणों, लेखों और कार्यों, इन सभीका प्रयोग

कार्यक्रमको पूरा करनेमें ही लगा देना चाहिए। हमें प्रबलसे-प्रबल उपद्रवकारी तत्त्वोंको भी काबूमें करना चाहिए; तब हम शीघ्र ही स्वराज्य स्थापित कर सकते हैं।

चिकित्सा-शास्त्रके छात्रोंके बारेमें कुछ और

मैं इस सप्ताह विशाखापट्टमके चिकित्सा-शास्त्रके छात्रोंसे सम्बन्धित पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर रहा हूँ। पत्र-व्यवहार लम्बा, पर साथ ही रोचक और शिक्षाप्रद भी है। इससे चिकित्सा अधिकारियोंकी और सरकारकी भी मनोवृत्तिका पता चल जाता है। छात्रोंको कालेजसे निकलनेके अन्तिम आदेश मद्रास सरकारकी सलाहपर या उसकी जानकारीमें दिये गये थे। पाठक इसमें देखेंगे कि पोशाक-सम्बन्धी नियमोंका कड़ाईसे पालन नहीं होता था और टोपियोंको काले रंगमें रँग देनेके बाद तो उनपर पाबन्दी लगानेका कोई कारण ही नहीं रह जाता था। किन्तु छात्रोंने खादी पहननेका जो साहस दिखाया, कालेज अधिकारियोंके क्रोधको भड़कानेके लिए वही काफी था।[1] पाठक यह भी देखेंगे कि पोशाक-सम्बन्धी विनियम कितने अपमानजनक हैं। चोटी या गंजे सिरको, जो धर्म और सम्मानका सूचक है, ढकना जरूरी है क्योंकि इससे पाश्चात्य प्रोफेसरोंकी पाश्चात्य रुचिको ठेस पहुँचती है। छात्र हिन्दुस्तानी जूते पहनकर कालेजके अन्दर दाखिल नहीं हो सकते। उन्हें अंग्रेजी जूते पहनने होंगे या फिर नंगे पाँव रहना होगा। इस तरह छात्रोंको कच्ची उम्रमें ही, जब उनके मस्तिष्क ग्रहणशील होते हैं, राष्ट्रीय वेशभूषाको त्यागनेकी शिक्षा दी जाती है। वस्तुतः देशी जूते हिन्दुस्तानकी जलवायुमें अंग्रेजी जूतोंसे कहीं अच्छे होते हैं। उनके खुले होनेसे पैरोंको हवा लगती रहती है, और इसलिए वे सफाई और स्वास्थ्यकी दृष्टिसे बेहतर होते हैं। मोजोंका उपयोग भारतकी गर्म जलवायुमें गँवारू और बिलकुल बेकार है। मोजे पहननेवालोंको मालूम है कि यहाँकी आबहवामें उनके मोजोंसे कितनी बू आने लगती है। यदि हम गुलाम न होते तो इन सब हानिकारक और अनुचित नये तौर-तरीकोंको बिना किसी हिचकके तुरन्त दूर कर सकते थे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४–११–१९२१

१. देखिए "टिप्पणियाँ", १७–११–१९२१ का उप-शीर्षक "बहादुर छात्र"।

२०८. नैतिक मसला

नैतिक आधारसे स्खलित होनेका मतलब है, धर्मके धरातलसे च्युत हो जाना। धर्म नैतिकताकी अवहेलना करके चले ऐसा कुछ सम्भव ही नहीं है। उदाहरणके लिए, मनुष्य झूठा, निष्ठुर या संयमहीन होते हुए ईश्वरका कृपापात्र कभी नहीं हो सकता। बम्बईमें असहयोगसे हमदर्दी रखनेवाले लोगोंने अपना नैतिक सन्तुलन खो दिया। वे उन पारसियों और ईसाइयोंपर क्रुद्ध हो उठे, जो युवराजके स्वागत-समारोहमें शरीक हुए थे और उन्होंने उन्हें "एक सबक सिखाने" की कोशिश की। उन्होंने वैर और बदलेको न्योता दिया और वही उन्हें मिला। १७ तारीखके बाद तो मारकाटकी एक खासी बाजी-सी लग गई, जिसमें फायदा तो वास्तवमें किसीका भी नहीं हुआ, हाँ, हानि अलबत्ता सबकी हुई।

स्वराज्यका यह रास्ता नहीं है। भारत बोल्शेविज़्म, विप्लववाद नहीं चाहता। यहाँके लोग इतने शान्तिप्रिय हैं कि वे अराजकताको सहन ही नहीं कर सकते। वे तो उसीके आगे घुटने टेक देंगे जो तथाकथित शान्तिकी स्थापना कर दे। भारतीयोंकी इस मनोवृत्तिको आपको समझना चाहिए। शान्तिके पीछे इस तरह पड़ जाना अच्छा है या बुरा, इसकी छानबीनकी जरूरत यहाँ नहीं। आम तौरपर भारतके मुसलमान दुनियाके दूसरे मुल्कोंके मुसलमानोंसे बिलकुल ही भिन्न हैं। भारतके वायुमण्डलमें रहनेके कारण दूसरे देशोंके अपने धर्म-भाइयोंकी बनिस्बत उनके मिजाजमें ज्यादा नरमी आ गई है। अपनी जानोमालपर किसी यथार्थ संकटको वे बहुत लम्बे अर्सेतक बर्दाश्त नहीं कर सकते। और हिन्दुओंके मिजाजकी नरमी तो मशहूर ही है। वे लगभग दयनीय स्थितितक नरम हैं। पारसी और ईसाई भी कलहकी अपेक्षा शान्तिके ही अधिक प्रेमी हैं। सच तो यह है कि धर्मको हमने प्रायः शान्तिका सेवक ही बना लिया है। यह मनोवृत्ति हमारी कमजोरी भी है, और साथ ही हमारा बल भी।

हमारी इस मनोवृत्तिका जो उत्तम भाग है, धार्मिक भाग है, उसीका पोषण हमें करना चाहिए। "धर्मके मामलेमें कोई दबाव न होना चाहिए।" क्या हमारे लिए स्वदेशी-व्रतका पालन करना, अतएव खादी पहनना, धर्म नहीं है? परन्तु अगर दूसरे लोगोंका धर्म यह न चाहता हो कि स्वदेशीको अपनायें, तो हमें उन्हें इसके लिए मजबूर न करना चाहिए। ऐसा करके हमने 'कुरान शरीफ' में दोहराये गये विश्वजनीन सिद्धान्तके प्रतिकूल आचरण किया है; और उस सिद्धान्तका यह अर्थ नहीं है कि धर्मको छोड़कर दूसरे मामलोंमें जबर्दस्ती की जाये। उस आयतका मतलब तो यह है कि जिस मजहबपर हमारी पक्की श्रद्धा हो उसके लिए भी दूसरोंपर जबर्दस्ती करना अगर बुरा है तो उससे कम दर्जेके मामलोंमें ऐसा करना तो और भी बुरा है।

इसलिए हम तो अपने प्रतिपक्षियोंको युक्तियाँ और दलीलें पेश करके ही समझा सकते हैं। और अधिकसे-अधिक हम उनके साथ अहिंसात्मक असहयोग कर सकते हैं, जैसा कि सरकारके साथ कर रहे हैं। लेकिन खानगी मामलोंमें हम उनके साथ

असहयोग नहीं कर सकते; क्योंकि हम उन लोगोंके साथ व्यक्तियोंके रूपमें तो असहयोग कर नहीं रहे हैं, जो सरकारी तन्त्र चलाते हैं; हम तो उनकी उस शासन-प्रणालीके साथ असहयोग कर रहे हैं। गवर्नरकी हैसियतसे सर जॉर्ज लॉयडको हम सरकारी काममें मदद देनेसे इनकार करते हैं; परन्तु एक अंग्रेज भाईके नाते हम सर जॉर्ज लॉयडको सामाजिक सेवाओंसे कभी वंचित नहीं कर सकते।

मुझे यह कहते दुःख होता है कि यह शरारत हिन्दुओं और मुसलमानोंसे ही शुरू हुई। सामाजिक रूपसे लोगोंको तंग किया गया और उनके साथ जबर्दस्ती की गई। हाँ, मैं स्वीकार करता हूँ कि मैंने हमेशा ही इन बातोंकी उतने जोरसे निन्दा नहीं की जितनी कि मैं कर सकता था। जब यह प्रवृत्ति आम बनने लगी थी तब मैं आन्दोलनसे अपनेको अलग कर सकता था। पर हमने शीघ्र ही अपने मार्गको स्थितिके अनुसार सुधार लिया। हम अधिक सहनशील हो गये। परन्तु आँखोंको स्पष्ट न दिखे, ऐसे रूपमें जबर्दस्ती चलती रही। मैंने उसे चलने दिया — सोचा कि यह आप ही अपनी मौत मर जायेगी। परन्तु बम्बईमें मैंने देखा कि वह मरी नहीं। १७ तारीखको तो उसने बड़ा ही उग्र रूप धारण कर लिया।

हमने अपने हाथों अपने पाँवपर कुल्हाड़ी मार ली। हमने खिलाफतके कामको और उसके साथ ही पंजाब और स्वराज्यके कामको भी नुकसान पहुँचाया। अब हमको अपनी भूल सुधारनी होगी और अल्पसंख्यक जातियोंको अच्छी तरह यकीन दिलाना होगा कि हम उनको जरा भी तंग न करेंगे। अगर ईसाई लोग हैट लगाना और अंग्रेज बनकर रहना पसन्द करते हैं, तो उन्हें इसकी आजादी होनी चाहिए। अगर पारसी अपने फेंटेको ही पहनना चाहें, तो उन्हें हर तरहसे इसका हक है। अगर ये दोनों सरकारके साथ रहनेमें ही अपना हित समझते हों, तो हम सिर्फ दलीलोंसे समझाकर ही उनको गलतीसे विमुख कर सकते हैं, उनको मारपीट कर नहीं। हम जितनी ज्यादा जबर्दस्ती करेंगे उतनी ही अधिक सुरक्षा हम सरकारको प्रदान करेंगे; भले ही इसका कारण सिर्फ यही हो कि हमारी बनिस्बत सरकारके पास जबर्दस्ती करनेका ज्यादा कारगर साधन मौजूद है। अगर हम सरकारकी अपेक्षा ज्यादा बलप्रयोग करते हैं, तो इसका मतलब होगा भारत-माताको और भी अधिक गुलामीमें जकड़ना।

स्वराज्यका अर्थ है — हरएकको आजादी हो — छोटेसे-छोटे लोग भी अपनी मर्जीके मुताबिक चलें और रहें — उनकी स्वाधीनतामें बलपूर्वक कोई भी हस्तक्षेप न किया जाये। और यह अहिंसात्मक असहयोग स्वतन्त्र लोकमत तैयार करने और उसको प्रभावपूर्ण बनानेका ही उपाय है। यह स्पष्ट ही है कि जब देशमें पूर्ण मत-स्वातन्त्र्य होगा, तब बहुमतके अनुसार ही काम चलेगा। यदि हमारी संख्या कम हो, तो जोर-जबर्दस्तीके बावजूद हम अपने धर्मपर आरूढ़ रहकर सच्चे धर्मनिष्ठ सिद्ध हो सकते हैं। हज़रत मुहम्मद बहुमतके दबावको मानकर भी अपने धर्मपर दृढ़ बने रहे; और ज्यों ही बहुमत उनकी ओर हुआ, उन्होंने अपने अनुयायियोंसे साफ कह दिया कि "मजहबके मामलेमें जोर-जबर्दस्ती न होनी चाहिए।" शाब्दिक या शारीरिक रूपसे

हिंसा करके हमें हजरत मुहम्मदके बतलाये मार्गसे भटकना नहीं चाहिए, और अपनी ही मूर्खतासे प्रगतिके चक्रको पीछेकी ओर नहीं घुमाना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-११-१९२१

२०९. बम्बईके नागरिकोंसे[1]

बम्बई

२६ नवम्बर, १९२१

ईश्वरकी कृपासे एक बार फिर हमारे बीच शान्ति स्थापित हो गई है। अब हम एक-दूसरेका सिर फोड़ने, एक दूसरेपर पथराव करने और इमारतें जलानेमें नहीं लगे हुए हैं। फिर भी, हममें से कुछ लोग अब भी नाराज हैं, उनमें कटुता है और हमारे भीतर भय है। यह बात मिलनेवाले अनेक लोगों और पत्र-लेखकोंकी भाषासे जाहिर होती है। हम तभी इस शान्तिको सच्ची शान्ति कह सकते हैं जब हमारे मन इन कलुषोंसे मुक्त हो जायें। ऐसी स्थिति उत्पन्न करनेके लिए पहला काम यह करना चाहिए कि हिन्दू और मुसलमान साफ दिलसे अपना अपराध स्वीकार करें। जिन्होंने पहले हाथ उठाया, दोषी उन्हींको माना जायेगा। यदि मैं अपनी बात किसीको अपशब्द कहकर शुरू करता हूँ तो उसके सारे नतीजेके लिए जिम्मेदार मैं ही होऊँगा। यदि हिन्दुओं और मुसलमानोंने लोगोंके सिरपरसे जबरदस्ती विदेशी टोपियाँ हटाकर या पत्थर चलाकर किसी वारदातकी शुरूआत की तो दोषी पक्ष उन्हींका है। इसके अलावा उनका बहुत भारी बहुमत है; और अधिकांशतः हिन्दुओं तथा मुसलमानोंने ही अहिंसाकी शपथ ली है। इसलिए पहले उन्हींको अपनी जिम्मेदारी समझनी चाहिए।

मैं यहाँपर कानूनकी निगाहसे जिम्मेदारीका विचार नहीं कर रहा हूँ। मैं तो केवल आदमी-आदमीके बीच पारस्परिक व्यवहारकी दृष्टिसे इस बातका विचार कर रहा हूँ। यदि पारसी और ईसाई, उनका जितना दोष है, उसे महसूस नहीं करते, तो स्थायी शान्ति प्रस्थापित करना कठिन है। जिस समय हिन्दुओं और मुसलमानोंने हिंसा शुरू की उस समय यदि पारसी और ईसाइयोंने जवाबमें हाथ न उठाया होता तो उन्हें देवदूत समझा जाता और उन्होंने संसारको अपने आत्मिक बलका अद्‌भुत परिचय दिया होता। वे अपने बचावमें हाथ उठाते, यह तो बिल्कुल ठीक था, किन्तु उन्होंने केवल अपना बचाव ही नहीं किया वरन वे भी क्रुद्ध हो उठे और आत्मरक्षाकी सीमाओंसे आगे बढ़ गये। उनमें से कुछने जरूरतसे ज्यादा हिंसाका प्रयोग किया। और यदि वे उतना-भर स्वीकार नहीं करते तो तत्काल हार्दिक शान्ति पाना कठिन होगा, क्योंकि इस तथ्यके बावजूद कि पारसियों और ईसाइयोंको उत्तेजित किया गया था, हिन्दू और मुसलमान

१. यह अंग्रेजीमें 'वे टु पीस' (शान्तिका मार्ग) शीर्षकसे छपा था और प्रारम्भिक टिप्पणीमें बताया गया था कि यह गांधीजी द्वारा जारी की गई गुजराती अपीलका अनुवाद है।

उन्हें पूरी तरह बेगुनाह नहीं मानेंगे। यदि केवल एक ही पक्ष अपराध करता रहे और दूसरा बराबर धैर्यसे सहता रहे तो अपराधी पक्ष अपने प्रयत्नमें थक जायेगा। यदि क्रियाकी कोई प्रतिक्रिया ही न हो तो संसारका उद्धार हो जाये। लेकिन आमतौरपर हम गालीका जवाब तमाचेसे देते हैं। एक तमाचेका जवाब दोसे दिया जाता है और फिर उसका जवाब लातसे और लातका गोलीसे दिया जाता है। इस तरह पापका दायरा बराबर बढ़ता जाता है। परन्तु आमतौर पर जो लोग "दाँतके बदले दाँत" के सिद्धान्तमें विश्वास रखते हैं, वे कुछ समय बाद एक-दूसरेको क्षमा कर देते हैं और दोस्त बन जाते हैं। क्या इस सामान्य नियमपर चलना असम्भव है? इसलिए मैं पारसी और ईसाई दोस्तोंसे यह कहनेमें नहीं झिझकता कि वे पारस्परिक क्षमा-दानके नियमपर चलकर एक दूसरेके अपराध भूल जायें।

परन्तु हिन्दुओं और मुसलमानोंपर जो विशेष उत्तरदायित्व है, उसपर मैं अवश्य ही जोर देता हूँ। पारसी और ईसाई क्षमा करें या न करें, हिन्दुओं और मुसलमानोंको अपना अपराध स्वीकार करके, ईश्वरसे क्षमा माँगकर और शान्त रहकर अपने आपको शुद्ध करना है। जिन लोगोंको क्षति पहुँची है या जिन्हें प्रियजनोंसे वंचित होना पड़ा है उन्हें इस तरहकी चोटोंका असर अवश्य महसूस होगा। उनमें से कुछ तो इतने गरीब हैं कि नुकसान झेल ही नहीं सकते। हमें उनकी स्थिति समझनी चाहिए। और मुझे विश्वास है कि जो इस नुकसानकी मार सह नहीं सकते, ऐसे लोगोंके नुकसानकी जाँच करने और अन्दाजा लगानेके लिए एक गैर-सरकारी समिति नियुक्त की जायेगी और यह समिति उन लोगोंकी सहायताके लिए आवश्यक राशि संग्रह करेगी। साथ ही मुझे आशा है कि कोई भी पक्ष कानून या सरकारकी शरणमें नहीं जायेगा। यह सलाह मैं सिर्फ एक असहयोगीके ही नाते नहीं दे रहा हूँ, यह सलाह अपने इस अनुभवके आधार पर दे रहा हूँ कि निजी पंच-फैसले द्वारा ऐसे मामलोंका अधिक सच्चा और उपयुक्त निपटारा होता है। कटुतासे बचनेका भी यही रास्ता है। शान्ति कायम करनेका सबसे आसान तरीका यह है कि हम अदालतमें एक-दूसरेके खिलाफ शिकायत करनेका खयाल छोड़कर निरोधक उपायोंकी ओर अपना ध्यान केन्द्रित करें ताकि ऐसा पागलपन फिर नहीं किया जा सके। और मुझे आशा है कि ऐसे उपाय अपनाकर बम्बई अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा फिर प्राप्त कर लेगा।

आपका सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १–१२–१९२१

२१०. सन्देश : बम्बईके मिल-मजदूरोंको[1]

[२७ नवम्बर, १९२१ के पूर्व]

मिलमें काम करनेवाले बन्धुओ,

यह सच है कि मैं आपको व्यक्तिगत रूपसे नहीं जानता लेकिन समस्त हिन्दुस्तानके मजदूरोंके लिए मैं मजदूर बना हूँ। इसलिए आपके साथ मेरा निकटका सम्बन्ध है। मेरी इच्छा है कि आप सब मिलोंके खुलते ही तुरन्त कामपर जायें और फिर कभी मालिकोंके छुट्टी दिये बिना कामसे अलग न रहें और न किसी भी उपद्रवमें भाग लें।

आपका हितैषी,
मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]
गुजराती, २७–११–१९२१

२११. उदार दलवालोंके नाम

[२७ नवम्बर, १९२१][2]

मित्रो,

हम सब दूसरी बातोंमें इतने व्यस्त हैं कि मलाबारकी घटनाओंपर शायद ही उतना ध्यान दे रहे हों जितना कि देना चाहिए। इस झगड़ेको खत्म करना बहुत ही जरूरी हो गया है। यह सीधा-सादा मानवीयताका प्रश्न है। मोपला लोग चाहे कितने भी बुरे हों, पर उनके साथ मानवीयताका बर्ताव होना चाहिए। उनके बीवी-बच्चोंके साथ हमारी सहानुभूति होनी चाहिए। सबके-सब वे बुरे भी नहीं हैं। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि बहुत-से निर्दोष व्यक्ति भी अपराधी मान लिये गये होंगे। जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तन एक भयानक चीज है। परन्तु मोपलोंकी वीरताकी हमें सराहना करनी चाहिए। ये मलाबारी इसीलिए नहीं लड़ते कि लड़ाईसे इन्हें प्रेम है। ये उस चीजके लिए लड़ रहे हैं जिसे ये अपना धर्म समझते हैं, और जिस ढंगसे लड़ रहे हैं उसे भी ये धार्मिक समझते हैं। इनकी भारी बहुसंख्याको अपना प्रतिरोध जारी रखनेसे कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं होगा। इनका अपराध ऐसा नहीं है जो जान-बूझकर किया गया हो, बल्कि उसका कारण इनका अज्ञान ही है।

१. बम्बईके मिल-मजदूरोंके क्षेत्रमें एक पर्चेके रूपमें वितरित।

२. यह "मोपलोंके बारेमें" शीर्षकसे इसी तिथिको प्रकाशित किया गया था।

इस तरहके वीर लोगोंको यदि हम निर्मूल हो जाने देंगे तो इतिहास इसे हमारे विरुद्ध याद रखेगा और यह भारतकी कायरता मानी जायेगी।

मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि यदि श्री याकूब हसनको मलाबार जाने दिया गया होता, यदि मलाबारमें मेरे प्रवेशपर प्रतिबन्ध न लगाया गया होता, यदि ऐसे मुसलमानोंको, जिनका सचमुच प्रभाव है, वहाँ जानेके लिए आमन्त्रित किया गया होता, तो इस लम्बे उत्पीड़नसे बचा जा सकता था। परन्तु अभी भी बहुत देर नहीं हुई है।

तलवारका जोर आजमाते तीन महीने हो गये हैं, पर इससे उद्देश्य पूरा नहीं हो सका। वह गर्वीले मोपलोंको झुका नहीं सका, और न हिन्दुओंको ही उनकी लूट-मार और वासनासे बचा सका है। तलवार मोपलाओंको पूरे मद्रास अहातेपर हावी होनेसे रोक-भर पाई है। वह जनताकी रक्षा करनेकी अपनी सामर्थ्य सिद्ध नहीं कर पाई है।

मुझे यकीन है कि आप अपनी असमर्थताकी दुहाई नहीं देंगे। यह सच है कि पुलिस और सेनाका कार्य-भार आपको नहीं सौंपा गया है। परन्तु नैतिक जिम्मेदारीसे आप बच नहीं सकते। मलाबार-सम्बन्धी सरकारी नीतिका आप समर्थन कर रहे हैं।

और न मैं यह आशा करता हूँ कि आप इसके जवाबमें असहयोगियोंको ही दोषी ठहराने लगेंगे। इस झगड़ेके लिए वे किसी भी तरहकी जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं ले सकते, वैसे यदि हर तरहके आन्दोलनको ही दोषी ठहराया जाये तो बात दूसरी है। परन्तु, मैं यह मानता हूँ कि असहयोगी अपना सन्देश मोपलोंके बीच पहुँचा नहीं पाये हैं। और इसके लिए आन्दोलनको कम करना नहीं, बल्कि और बढ़ाना होगा।

लेकिन मैंने इस समय लेखनी असहयोगियोंकी सफाई देनेके लिए नहीं उठाई है। मेरा यह निवेदन है कि आप इस प्रश्नके व्यापक मानवीय पहलुओंपर विचार करें, और सरकारको इस बातके लिए बाध्य करें कि वह लड़ाई रोक दे, यह वायदा करे कि आत्मसमर्पण करनेपर मोपलोंको पिछली लूट-मारके लिए क्षमा कर दिया जायेगा, और असहयोगियोंको मलाबारमें जाने और मोपलोंको आत्मसमर्पणके लिए राजी करनेकी अनुमति दे। मैं जानता हूँ कि इस अन्तिम सुझावका अर्थ असहयोगियोंको महत्व देना है। निश्चय ही आपको उनकी संख्या या उनके प्रभावके बारेमें सन्देह नहीं है। यदि है, तो आपको इस जातिको निर्मूल कर देनेके अलावा इस झगड़ेका कोई और समाधान ढूँढ़ना चाहिए। मुझे चिन्ता केवल यह है कि मलाबारमें चल रही यह लज्जाजनक नृशंसता, जिसे उदारदलीय और असहयोगी दोनों लाचार दर्शकोंकी तरह देख रहे हैं, बन्द होनी चाहिए। मैंने यह पत्र सरकारके नाम न लिखकर आपके नाम इसलिए लिखा है कि आपके नैतिक समर्थनके बिना सरकार विध्वंसका यह निर्दयतापूर्ण मार्ग अपना नहीं सकती थी। मेरी आपसे यही विनती है कि आप मुझे अपना प्रिय मित्र मानकर मेरी प्रार्थनापर ध्यान दें।

आपका मित्र,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १–१२–१९२१

२१२. पत्र : बारडोली और आनन्दके निवासियोंके नाम

बारडोली और आनन्दके भाई-बहनो,

मैं जानता हूँ कि आपके दुःखकी सीमा नहीं रही। आपने बड़ी आशा की थी। आपने इसी वर्षके भीतर अपने यज्ञ, अपने बलिदानके द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने, मुसलमान-भाइयों तथा पंजाबके घावोंको भरने और अली-भाई इत्यादि कैदियोंको छुड़वानेका जिम्मा लिया था।

पर ईश्वरने कुछ और ही सोचा था। भक्त नरसिंहने[1] सच ही कहा है 'बने नरसे तो कोई न रहे दुःखी'। किन्तु फल हमारे हाथमें कहाँ है? हमें तो अपने उद्देश्यकी दिशामें परिश्रम ही करना चाहिए। जब श्री रामचन्द्र-जैसोंको राजगद्दी मिलनेके समय वनवास मिला तो फिर हमारी क्या बिसात है?

मैं अपने परम मित्रकी[2] बात सोचता हूँ। उन्होंने पंजाबमें मेरे साथ काम किया था। वे पंजाबके दुःखको देख कर रो पड़ते थे। सारी जिन्दगी वे ऐश-आराममें रहे। उन्होंने मेरी बात सुनकर आराम छोड़ दिया है, जवानोंकी तरह काममें जुट गये हैं और उसमें सुख मान लिया है। उन्हें यह सोचकर बड़ी पीड़ा होती है कि वे आज अपने खेड़ा जिले और उसमें भी आनन्द ताल्लुकेके लोगोंको तुरन्त जेल नहीं भेज पा रहे हैं। किन्तु मैं उनको और आप सबको इस बातका विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि सब्रका फल मीठा ही होगा।

अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। हम बाजी हार नहीं गये हैं। बल्कि हम तो दुःखमेंसे सुख पैदा करनेमें समर्थ हुए हैं। अशान्ति हुई अवश्य, परन्तु ऐसा मालूम होता है कि उसमें से हमने शान्ति प्राप्त की। ईश्वरने छोटा-सा दुःख देकर हमें बड़े दुःखसे बचा लिया है।

बारडोलीसे मुझे एक पत्र मिला है। बारडोलीके बारेमें भी एक अन्य पत्र आया है और खेड़ाके बारेमें भी एक पत्र मैंने देखा है। उन सबसे यही जान पड़ता है कि आप अच्छी तरह तैयार नहीं हैं। न शान्तिके मामलेमें, न स्वदेशीके मामलेमें। एक पत्रमें ब्यौरा दे कर कहा गया है कि बारडोलीमें बलप्रयोग किया गया। जबर्दस्ती विदेशी टोपियाँ छीनी गईं और शराबके दूकानदारोंके प्रति भी बलका प्रयोग किया गया और उन्हें गालियाँ दी गईं। इन दोनों जिलोंमें बहुतसे लोग दिखावेके लिए खादी पहनते हैं। बहुतसे ऐसे लोग हैं जो घरके बाहर तो खादी पहनकर निकलते हैं मगर जिनके घरोंमें विदेशी कपड़ेसे सन्दूकें भरी हैं और खूंटियोंपर भी विदेशी कपड़े टँगे हुए हैं। औरतोंमें तो मरदोंसे भी कम स्वदेशी वस्त्रोंका चलन है। खेड़ासे प्राप्त पत्रमें कहा गया है कि सब-कुछ खरा-ही-खरा नहीं है — खोटा या तो आँखोंकी

१. १४१४–१४७९; गुजरातके सन्त-कवि।

२. अब्बास तैयबजी।

ओट रखा जाता है या उसपर मुलम्मा चढ़ा दिया गया है। अगर कोई बोले तो उसे चुप करवा दिया जाता है।

मैं यह नहीं कहता कि ये सारी बातें ठीक ही हैं। थोड़ी-बहुत अतिशयोक्ति इसमें होगी। किन्तु हम आलोचकोंसे काफी-कुछ सीख ले सकते हैं। अगर हम उनकी नजरोंसे अपनेको देखना सीख लें तो देखते-ही-देखते अपने दोषोंसे मुक्त हो जायें। अपनी पीठ हम स्वयं नहीं देख सकते — वह तो दूसरेको ही दिखती है।

आपसे मैं शुद्धसे-शुद्ध यज्ञकी अपेक्षा करता हूँ। ईश्वरके दरबारमें शुद्ध बलिदान ही मंजूर होता है। बिना माँगे जो अवसर हाथ लगा है उसमें अपने तमाम ऐबोंको ढूँढ़-ढूँढ़ कर निकाल दो। सब चरखा-धर्मका खूब पालन करो। ऐसी तजवीज करो कि हर घरमें अच्छा, मजबूत, बिना गर्दका सूत रोज कते, कोई भूखों न मरे, किसीके घरमें विदेशी कपड़ेकी गंदगी न रहे। मेरे सुझाए हुए आँकड़े इकट्ठे करो।

अगर किसीके कपड़े जबरदस्ती छीने गये हों तो हम उससे माफी माँगें। सहयोगियोंके प्रति मनमें जरा गुस्सा न रखें। उनके दुःखमें उनकी सेवा करें। हम सरकारी कर्मचारियोंकी न खुशामद करें, न उनसे डरें। पुलिसका डर छोड़ दें। उन्हें भी अपना भाई समझकर उनपर प्रेम करें। आपके बच्चे यदि आज भी सरकारी मदरसोंमें जाते हों तो उन्हें वहाँसे उठा लें और असहयोग आन्दोलनको बढ़ाते हुए बल प्रयोग न करें। गाँवमें एक भी सहयोगी बच गया हो तो उसके साथ भी वैरभाव न रखें; बल्कि यह समझें कि हमें अपने मतपर दृढ़ रहनेका जितना हक है उतना ही उसे भी है।

यदि गाँवोंमें आपसमें दुश्मनी हो तो उसे हटा दें। सत्याग्रही गाँवोंमें वैरभावके लिए जगह ही नहीं है।

मनमें अगर भंगी-चमारोंके प्रति तिरस्कारकी भावना रही हो तो उसे निकाल दें। उनके लड़कोंको अपने मदरसोंमें प्रेमके साथ रखें और बुलाकर भरती करें। उनके रहनेके स्थानोंकी देखभाल करें और पानी आदिकी सुविधा न हो तो करें। उन्हें जूठन न देकर उसके बदले कच्चा, बिना पका हुआ अन्न दें या वेतन बढ़ा दें।

गाँवोंमें जो लोग शराब पीते हों, उन्हें प्रेमपूर्वक कह-सुनकर, समझा-बुझाकर, उनकी यह बुरी आदत छुड़ायें। न मानें तो उनकी मर्जी। शराबकी दूकान हो तो दूकानदारको भी नम्रतापूर्वक ही समझायें। उसपर रोष न करें। उसपर ममता रखें।

गाँवोंमें कोई बदमाश, उपद्रवी या चोर-डाकू रहता हो तो उससे न तो खुद डरें और न उसे डरायें। उसे भी अपना भाई समझकर मिलें और उसकी हालत समझकर उसकी आदत छुड़ायें तथा ऐसे चोर-डाकुओंके दिलको बदलनेका प्रयत्न करें और साथ ही उसके जोर-जुल्मसे स्वयं बचने और बाल-बच्चों तथा अपने धनमालकी रक्षा करनेकी शक्ति प्राप्त करें। इसके लिए आप अपने ही चौकीदार रख सकते हैं। उन्हें चोरोंके साथ लड़नेकी जरूरत नहीं पड़ेगी। पहरा हो तो चोर नहीं आते। 'जागतेको भय नहीं' यह कहावत बिलकुल सही है; तो भी सम्भव है कोई हाथ मार जाये। तो उससे निडर रहना। अपनी तहसीलके बदमाश लोगोंका आपको पता तो होना ही चाहिए।

आनन्दमें तो डाकोरजी विराजमान हैं। मैं इस विषयमें एक बार लिख चुका हूँ।[1] यदि आप लोग आनन्द ताल्लुकेकी बाहरी और भीतरी व्यवस्थामें सुधार कर डालें तो यह जिला वास्तवमें योग्यता प्राप्त कर ले। क्या मन्दिरका टंटा समाप्त हो गया है? तालाब साफ कर लिया गया है? जो यात्री यहाँ आते हैं वे केवल नामके ही तीर्थयात्री न रहकर शुद्ध तीर्थ-यात्री बने? क्या अत्याचार होने बन्द हुए? डाकोरमें सर्वत्र स्वच्छता छाई? मन्दिरसे विदेशी कपड़ेका बहिष्कार हो चुका? क्या जिलेके लोग आज भी अपने मतभेद लेकर अदालतोंमें ही जाते हैं?

आप निश्चय रखिए कि यदि असहयोगी सच्चे हो जायें, उनमें परस्पर प्रेम उत्पन्न हो जाये तो सब लोग उस प्रेमके वशमें हो जायेंगे। मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि यदि आपकी दोनों तहसीलें असहयोगके समस्त अंगोंका अब भी सर्वांशमें पालन कर सकें तो आप इसी वर्षमें स्वराज्य ले लेंगे। और अगर आप निश्चय कर लें तो उसका पालन करना तनिक भी कठिन नहीं है। अगर यह बात आप सबके मनमें लग गई है तो फिर उसका आचरण बिलकुल ही आसान है। अगर आप बिना समझे और द्वेषभावसे काम कर रहे होंगे तो बात मुश्किल है।

मैं कितनी ही बार कह चुका हूँ कि असहयोगका मूल प्रेम है, वैर नहीं। आत्मबल प्रेमबल है और जगत् इसी बलके अधीन है। यदि अपने बलसे भारतको मुक्त करना है तो आप सब प्रेमकी वर्षा करें। आपको परदु:खभंजन कहलाना हो तो आपके मनमें सहनशीलता, शौर्य, सत्य इत्यादि मूर्तिमान होने चाहिए। केवल दिखावेसे स्वराज्य नहीं मिलेगा।

बम्बईमें हुई भूलोंके बावजूद यदि आपको इसी वर्ष स्वराज्य प्राप्त करना है तो आपको आजकी अपेक्षा बहुत ही अधिक आत्मशुद्धि करनी पड़ेगी। अर्थात् आपको सच्चा हिन्दू, सच्चा मुसलमान, सच्चा पारसी और सच्चा ईसाई होना पड़ेगा।

आप अपने यहाँके पारसियों और ईसाइयोंसे मिलते-जुलते रहनेकी बात कभी न भूलें और उन्हें अपने प्रेमके बलपर निर्भय कर दें।

आप मेरी आशा न छोड़ें और स्वयं भी ऐसा करते जायें कि मुझे आपकी आशा न छोड़नी पड़े। मैं आपसे शीघ्र ही मिलने आऊँगा। इस बीच आप अपनी तैयारीमें लगे रहें।

आपका सेवक,
मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २७–११–१९२१

१. देखिए खण्ड १६, पृष्ठ २८४–८६।

२१३. टिप्पणियाँ

उपवासके बाद

यह टिप्पणी मैं अपने उपवास छोड़नेके बाद लिख रहा हूँ। 'यंग इंडिया' के बहुतेरे लेख उपवासकी अवधिमें ही लिखे गये हैं। उन दिनोंके मेरे विचार और आजके अपने विचारोंमें मुझे कोई अन्तर नजर नहीं आता। उपवासके पहलेके मेरे विचार ज्योंके-त्यों बने हुए हैं।

एक परिवर्तन

सिर्फ एक बातमें परिवर्तन हुआ है। परन्तु इसका कारण उपवास नहीं है बल्कि इसका कारण जो दृश्य मैंने १० ता० गुरुवारको बम्बईमें देखा तथा शुक्रवार और शनिवारको जिन दुर्घटनाओंका हाल मैंने सुना, वे हैं। अब मैं यह देख पा रहा हूँ कि सविनय-अवज्ञाके लिए हम अभी तैयार नहीं हैं। ऐसी अवस्थामें बारडोलीमें सविनय-अवज्ञा शुरू करनेका अर्थ अपनी बाजी हारना ही है। उसका प्रयोजन स्वराज्यकी प्राप्ति, खिलाफतका निपटारा और पंजाबके प्रश्नपर सरकारसे माफी मँगवाना है। वर्तमान अवस्थामें कानून-भंग करनेसे इन तीनमें से किसी भी उद्देश्यकी पूर्ति नहीं हो सकती। बम्बई और बारडोली-आनन्दका परस्पर इतना निकटका सम्बन्ध है कि वे एक-दूसरेकी मदद करना चाहते हैं और उनमें यह शक्ति विद्यमान भी है। इधर हम बारडोली और आनन्दमें सविनय-अवज्ञा शुरू करें और उधर बम्बईमें हिंसापर उतारू हो जायें तो, थोड़ा भी सोचनेसे यह बात ध्यानमें आ सकती है कि बम्बईसे हमको मदद नहीं मिल पायेगी — यही नहीं, बम्बई हमारे संग्रामको हानि भी पहुँचा सकती है।

कानूनके मनमाने भंगका अर्थ तो सरकारके साथ पूरे सहयोगके सिवा दूसरा कुछ नहीं हो सकता। क्या हम अभीतक यह भी नहीं समझे हैं कि सरकार महज हमारी कमजोरियोंपर, कानूनको मनमाने तौरपर भंग करनेकी हमारी आदतपर, हमारी मारकाटपर टिकी हुई है? वकीलोंके असहयोगसे सरकार जितनी कमजोर हुई है उससे अधिक कमजोर वह हमारी शान्तिकी बदौलत हुई है। वकीलवर्गके सहयोगसे सरकारको जितना बल मिलता है उससे अधिक बल उसे हमारे शान्तिभंग करनेसे मिलता है। क्योंकि इससे सरकारको अत्याचार करके, लोगोंको भयभीत करके, अपनी सत्ता अधिक मजबूत करनेका मौका मिल जाता है। अतएव एक जगह अविनय और दूसरी जगह विनय हो तो वह पहाड़ खोदकर चूहा निकालने जैसा है, नहा-धोकर फिर कीचड़में कूदने जैसा है। फूटे लोटेमें चाहे कितना पानी क्यों न डाला जाये, वह उसमें कभी ठहर नहीं सकता। इसी प्रकार विनय रहित वायुमण्डलमें चाहे विजयकी कितनी ही कोशिश करते रहिए, वह व्यर्थ गये बिना नहीं रह सकती। पहले तो हमें सारे हिन्दुस्तानमें विनयपूर्ण — शान्त — वायुमण्डल तैयार करना चाहिए। सौभाग्य अथवा दुर्भाग्यसे हम तो यह दावा करते हैं कि सारा हिन्दुस्तान हमारे साथ

है — असहयोगी है। हम यह दावा करते हैं कि महासभाके दफ्तरोंमें दर्ज लाखों आदमी हमारे साथ हैं — यही क्यों, दूसरे करोड़ों आदमियोंपर हमारा इतना प्रभाव हो गया है कि वे भी हमारे साथ ही हैं। हमारा ऐसा दावा करना उचित ही है। अगर लोग हमारे साथ न हों तो फिर स्वराज्य किसके लिए प्राप्त किया जाये? अगर लोग सरकारके साथ हों तो क्या उनको बलपूर्वक आजाद किया जा सकता है? हमारी स्वराज्यकी इस वर्तमान हलचलका, खिलाफत और पंजाबकी हलचलका आधार ही इस बातपर है कि हम लोगोंके दुःख-दर्दको प्रकट कर रहे हैं और उन्हीं साधनोंका उपयोग कर रहे हैं जिन्हें लोगोंने पसन्द किया। इसका अर्थ यह हुआ कि लोग शान्तिके साथ विजय प्राप्त करना चाहते हैं।

अगर मेरी यह पूर्वोक्त बात गलत हो तो मैंने — हमने — बड़ी गहरी भूल की है। अगर हम, शान्तिको सच्चे दिलसे मानने और चाहनेवाले, मुट्ठीभर ही हों तो भी हम स्वराज्य प्राप्तिमें समर्थ हैं। परन्तु उस अवस्थामें हमारा संगठन दूसरे प्रकारसे होना चाहिए। फिर कोई असहयोगी चाहे जेल जाये, चाहे मर जाये, उसके पीछे झुण्ड-के-झुण्ड लोगोंको जेल नहीं जाना चाहिए। यदि सहयोगियोंकी तरह लोगोंमें हम भी अप्रतिष्ठित होते तो हम मनमानी अवज्ञा कर सकते थे। क्योंकि उस अवस्थामें हम पर होनेवाले अत्याचारके कारण उत्तेजित होकर कोई शान्ति भंग न करता।

भेद

गुजरातमें हम शीघ्र ही जिस सविनय अवज्ञाके मनसूबे बाँध रहे थे, वह सारे हिन्दुस्तानके लिए थी। उस अवज्ञाके बलपर हम खिलाफतको ताकत पहुँचानेकी और स्वराज्य प्राप्त करनेकी आशा रखते थे। अतएव सारे हिन्दुस्तानके लिए उसमें सहमत होने और शान्ति बनाये रखनेकी जरूरत है। यों स्थानीय कष्टों और दुःखोंके लिए हर व्यक्ति सविनय अवज्ञा कर सकता है, जैसा कि आज चिरला-पेरला और मूलशी पेठामें चल रहा है। उनके साथ हमारी हमदर्दी भी है, और हम उनकी सहायता भी कर सकते हैं। परन्तु यों हमें स्वयं तटस्थ ही रहना चाहिए। अशान्ति बड़ी जल्दी फैलती है। अगर हम चिरला-पेरलाके नामपर बम्बईमें अशान्ति कर बैठे तो चिरला-पेरलाको अधिक कष्ट भोगना पड़ेगा।

बड़ी आवश्यकता

इसलिए सबसे बड़ी आवश्यकता इस समय हर जगह तत्काल ही शान्ति स्थापित करनेकी है। अगर खुद हमारे मनमें शान्तिकी आवश्यकताको लेकर कुछ शक बाकी रह गया हो तो हम उसे दूर कर डालें। पहले हमें उपद्रवियोंपर काबू पाना चाहिए। वे भी हमारे भाई हैं। हम उन्हें छोड़ नहीं सकते। किन्तु हम उनके हाथमें भी नहीं रह सकते। अगर हम उनकी मर्जीको चलने दें तो हिन्दुस्तानमें स्वराज्य नहीं, गुंडोंका राज होगा। गुंडोंका राज होने देना मानो उनकी और हमारी दोनोंकी मौत है। हमें यह समझ लेना चाहिए कि गुंडोंके राज्यको लोग जरा भी सहन नहीं कर सकते। गुंडोंके राजमें रहनेवाले जानोमालके तात्कालिक नुकसानके भयको अंगीकार करनेके बजाय सरकारके तात्कालिक रक्षणको खुशी-खुशी कबूल कर लेंगे। अतएव हमें चाहिए

कि हम इन उपद्रवी लोगोंसे मिलें, बातचीत करें, उन्हें धर्मका और देशका हित समझायें और उनसे कहें कि भाई, अपनी अशान्तिके द्वारा देशके कार्यमें विघ्न न डालो। यह कोई बड़ा लम्बा कार्यक्रम नहीं है। बम्बईमें यह काम सिर्फ पन्द्रह दिनोंमें हो सकता है। उपद्रवी लोगोंको मैं सीधे-सादे, परन्तु भ्रमवश उलटा मार्ग पकड़ लेने-वाले भाई मानता हूँ। उन्हें हमने अपने किसी अन्ध स्वार्थके लिए बुरा बनाया अथवा बना रखा है। अतएव ऐसी स्थिति भी सहज ही बनाई जा सकती है जिसमें वे हमारे धर्मयुद्धमें रुकावट न डालें। असहयोगके समय उन्हें अपनी मारकाटकी या लूटमारकी कुटेवका प्रयोग न करना चाहिए। अगर हम उनपर अपना इतना भी असर न डाल सकें तो हम स्वराज्यके अयोग्य सिद्ध होंगे। मान लीजिए कि अंग्रेजी सत्ता हिन्दुस्तानसे चली गई, तो फिर इन उपद्रवी लोगोंकी आदतोंसे हमें कौन बचायेगा? यह शुद्धि स्वराज्यके बाद नहीं होगी, बल्कि यह शुद्धि होना तो स्वराज्य प्राप्तिकी एक शर्त है। यदि हम उन्हें अपने प्रेमके द्वारा अपने वशमें न कर सके तो उन्हें वश करनेके लिए आवश्यक तलवार-बल तो हमारे पास है ही नहीं। और मुझ-जैसे लोग तो उनकी तलवारसे टुकड़े-टुकड़े हो जाना पसन्द करेंगे; पर उन्हें तलवारके घाट उतारकर स्वयं जिन्दा रहनेका प्रयत्नतक न करेंगे।

बाधाएँ

यह सुधार होना है तो आसान, पर हमारे रास्तेमें बाधाएँ हैं। हमारे देशमें आज छः मत प्रचलित हैं:

(१) जो यह मानते हैं कि हिंसाके बिना स्वराज्य कभी नहीं मिल सकता। इसलिए वे शान्तिका उपयोग अशान्ति फैलानेके काममें करते हैं।

(२) जो यह समझते हैं कि शान्ति और अशान्ति दोनोंको एक-साथ जारी रखनेमें ही कल्याण है। इससे वे अशान्तिका भी स्वागत करते हैं। इनका हेतु आत्म-शुद्धि नहीं, बल्कि केवल सरकारको परेशान करना है।

(३) वह वर्ग जो अशान्तिको रोकते हुए भी, लेकिन अगर वह जारी ही रहे तो भी, शान्तिके किसी प्रयोगको बन्द करनेकी इच्छा नहीं रखता।

(४) यह माननेवाले कि जितना सरकारके साथ रहकर किया जा सके उतना ही काम करना उचित है।

(५) जो शान्तिका प्रयोगके तौरपर या नीतिके तौरपर प्रचार करते हैं और जब उसका प्रयोग शुरू कर दिया जाता है तब मनमें दुःखी होते हैं।

(६) जो शान्तिको ही हिन्दुस्तानकी मुक्ति और हिन्दू-मुस्लिम एकताका मार्ग समझकर काम करते हैं और इसलिए अनजानमें भी लोगोंकी तरफसे होनेवाले उप-द्रवोंको पसन्द नहीं करते।

थोड़ा भी विचार करनेसे हम यह देख सकते हैं कि पाँचवें और छठे वर्गके लोग ही हमारे सहायक हैं और केवल इन्हीं लोगोंसे हमारा काम चल सकता है। शेष सब मतोंके लोग हमें नुकसान पहुँचानेवाले हैं। उन्हें हमें विनयसे, दलीलसे, सेवासे अपना बना लेना है। परन्तु चौथा अर्थात् सहयोगियोंका वर्ग बहुत भयानक नहीं है। वह हमें

ज्यादा नुकसान नहीं पहुँचा सकता। फिर हम उस वर्गको पहचानते हैं। उसका संघ है। उसकी हलचल प्रकट रूपसे होती है। पहले तीन मतके लोगोंका कोई संघ नहीं है। उनकी कोई संस्था नहीं, कोई मण्डल नहीं। वे सब देशमें दूर-दूर बिखरे हुए हैं और जब मौका देखते हैं तभी लोगोंपर अपना असर डालते हैं। ये लोग बिखरे हुए हैं, इसलिए उनतक पहुँचना भी मुश्किल है। परन्तु जब-जब उपद्रव होते हैं तब वे मैदानमें आते हैं और लोगोंमें अशान्ति फैलाते हैं। इनमें से कितने ही लोग शुद्ध हेतुसे, परन्तु अज्ञानवश, असहयोगी मण्डलोंमें सम्मिलित होकर अपने मतको फैलानेका भी प्रयत्न करते हैं। उस हालतमें उनकी यह हलचल अधिक हानिकारक सिद्ध होती है। ये सब पागल लोग बम्बईमें गुरुवारसे रविवारतक काम कर रहे थे। इसी कारण हमने तरह-तरहकी अफवाहें सुनीं। और जो लोग सिर्फ इन लोगोंकी बात सुनकर अपने-अपने कामपर चले जाना चाहते थे वे भी बहकावेमें आकर दोबारा मुँह फेरकर खड़े हो गये।

खुफिया पुलिस

कुछ लोग कहते हैं कि यह सब काम खुफिया पुलिसका ही था। मैं यह बात बिलकुल नहीं मानता। हाँ, यह ठीक है कि खुफिया पुलिसका थोड़ा-बहुत इसमें हाथ था। खुफिया पुलिसके कितने ही लोगोंको उपद्रव न हो तो चैन ही नहीं पड़ती। परन्तु खुफिया पुलिसके लोगोंके सिवा कुछ ऐसे लोग भी जिनका खुदका मत अशान्तिके पक्षमें था, काम कर रहे थे। उन लोगोंमें ऐसे उपद्रवी लोग भी, थे जिनका पेशा लूटना आदि ही है। इसलिए वे तो बिलकुल ही झूठी अफवाहें उड़ा-उड़ाकर अपना काम बना रहे थे।

एकमात्र उपाय

इसके लिए अपने पास एक ही उपाय है। हमारा रास्ता सीधा है। हमें इन सबके ऊपर अपना असर डालना चाहिए। जब दूसरे सभी लोग जनताको अपने हाथ-का पांसा बना रहे हों तब अगर उसकी समझमें यह बात बैठ जाये कि उसे तो असहयोगियोंकी बात ही माननी है तो वह ऐसे उपद्रवोंमें शामिल नहीं होगी। हम यदि जनताको अपनी बात समझा सकें तो शान्ति फैल सकेगी; और शान्तिका फैल जाना इस बातको जाहिर करेगा कि हममें शान्तिकी स्थापना और उसकी रक्षा करनेकी शक्ति है। किन्तु इसके लिए हमारा सच्चा और उद्यमी होना जरूरी है। अपने साधनोंमें हमें पूरा विश्वास होना चाहिए और सदा सावधान रहना चाहिए। बम्बईके कार्यकर्त्ता सावधान नहीं रहे। वे गफलतमें पड़े रहे। उन्होंने मान लिया था कि अब तो लोग हमारी बातको इतनी अच्छी तरह समझ गये हैं कि उपद्रव हो ही नहीं सकते। इससे उन्होंने युवराज-के स्वागतके बहिष्कारकी तैयारियाँ तो खूब कीं; परन्तु पूर्ण शान्तिकी रक्षाके लिए जितने प्रयत्न कर रखने थे, वे न कर पाये। परिणाम जो हुआ सो हमने देखा ही है। चाहे जो हो, पुलिसकी उलटी कोशिश होते हुए भी जब हम शान्ति रक्षा करनेमें समर्थ बन जायें तभी हम सरकारसे बढ़े-चढ़े और स्वराज्यके लायक माने जा सकते हैं। दोष

पुलिसके माथे मढ़कर अगर हम अपनेको बहलाते रहें तो हम हार जायेंगे। दुश्मन हमें छका दे, ऐसा कुछ कर गुजरे जो हमारे ध्यानमें ही नहीं आया हो और तब यदि हम ऐसा कहें कि "दुश्मन तो हमें जीतने ही नहीं देता, हमें दम ही नहीं लेने देता", तो फिर हम काहेके योद्धा? दुश्मन जो चाहे किया करे, तथापि जब हम यह सिद्ध कर दिखायें कि हममें लड़नेकी शक्ति है, तभी हम जीतनेकी आशा रख सकते हैं। सरकार चाहे जो-कुछ करे फिर भी हम शान्तिकी रक्षा कर सकते हैं। जबतक हम ऐसा न कर सकेंगे तबतक जीतनेकी आशा ही नहीं रखनी चाहिए।

आत्म-निरीक्षण

अतएव पुलिसके ऐब निकालनेकी बनिस्बत हमारा धर्म तो यही है कि हम अपना ही ऐब ढूँढ़ें। हमने क्योंकर एकदम भोले बनकर हर तरहकी अफवाहें मान लीं? सवाल है, हमने जबरदस्ती की या नहीं, विदेशी टोपियाँ जबरन छीनी या नहीं, ट्रामगाड़िया जलाईं कि नहीं, शराबकी दुकानोंमें आग लगाई या नहीं, दूसरोंकी देखा-देखी जानमालको नुकसान पहुँचाया या नहीं? हमने अपने मनमें मैल रखा या नहीं? सहयोगियोंके प्रति मनमें वैर-भाव रखा या नहीं? अगर हमने यह सब किया हो — और मैंने देखा है कि हमने ऐसा किया है — तो हमें ईश्वरके नजदीक हाथ जोड़कर माफी माँगनी चाहिए, आत्मशुद्धि करनी चाहिए और अब आगे ऐसा न करनेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिए। 'आप भले तो जग भला' इस कहावतमें एक बड़ा सिद्धान्त छिपा हुआ है। हमारे दिलमें मैल है और हम डरपोक हैं तभी तो हम हरएक हाकिम और पुलिसको अपना दुश्मन मानते हैं। हम अगर डरको निकालकर दूर रख दें तो छिपी या खुली किसी भी पुलिससे न डरें और न किसीके बहकानेसे बहकें। हम तो केवल अपने आंतरिक बलके सहारे ही जूझना चाहते हैं; और वह बल किसीके दियेसे हमें नहीं मिल सकता। वह तो ईश्वरसे ही मिल सकता है। बस अपनी कमजोरियोंको जीतनेकी देर है कि स्वराज्य हथेलीमें रखा है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-११-१९२१

२१४. टिप्पणियाँ

सफेद झूठ

बम्बईमें हालके उपद्रवके सम्बन्धमें मैंने वक्तव्य[1] दिया था कि उसमें पुलिस और फौजने पक्षपात किया और उन्होंने नहीं, बल्कि बम्बईके निवासियोंने शान्ति स्थापित की है। बम्बई-सरकारने मेरे इस वक्तव्यका प्रतिवाद किया है। उसके इस प्रतिवाद-पर मुझे दुःख है। मैंने इसकी आशा नहीं की थी। अब तो मैं उन आरोपोंमें एक आरोप और जोड़कर सारे चित्रको पूरा किये देता हूँ। पुलिस या फौज लोगोंके जान-मालकी रक्षा करनेमें असमर्थ थी। सत्रह तारीखको मैंने देखा कि वह जलती हुई ट्राम और मोटर गाड़ियोंको बचा नहीं सकी। भिंडी बाजारमें शराबकी दुकान जला कर खाक कर दी गई; लेकिन पुलिस या फौज उसके बचावका कोई प्रबन्ध न कर सकी। और १८ तथा १९ तारीखको भी उन्होंने इससे बेहतर कुछ नहीं किया। आग-जनी और लूट-मार जारी रही, पर पुलिस और फौज मुँह ताकती रही। जब किसीने कुछ मदद चाही, तो उससे साफ कह दिया गया कि हमारे पास अब अधिक जवान नहीं हैं; तमाम लोग युवराजके स्वागतके इन्तजाममें लगे हुए हैं।

पुलिस या फौज जब उपद्रव-ग्रस्त स्थानोंपर किसीके भी जान-मालकी रक्षातक न कर पाई, तब उसके लिए शान्तिकी स्थापना करना क्या सम्भव था? शान्तिकी स्थापनाका श्रेय अकेले असहयोगियोंको ही नहीं दिया जा रहा है। मैं तो इसका श्रेय सहयोगी-असहयोगी, हिन्दू-मुसलमान, पारसी-ईसाई सभीको देता हूँ और ईसाइयोंमें अंग्रेज भी शामिल हैं। यदि बम्बईके तमाम शान्ति-प्रिय लोग साथ न देते तो शान्तिकी स्थापना नहीं हो पाती। इसका श्रेय मैं मियाँ छोटानीको देता हूँ। २० तारीखको सर फिरोज सेठनाके ही प्रयत्नसे फौज एक भीड़पर गोली चलानेसे रुकी; और डा० पावरी तथा श्री बैंकरकी कोशिशोंके फलस्वरूप वह भीड़ पाँच मिनटमें ही छँट गई। मैं कितने ही ऐसे उदाहरण दे सकता हूँ जिनमें बम्बईके लोगोंने इस तरह भीड़को तितर-बितर किया है। इसमें सभी मतों, सभी दलोंके लोगोंका हाथ था। श्रीमती सरोजिनी नायडूसे तो फौजके लोगोंने कई बार कहा था कि भीड़ हटानेमें हमें मदद दीजिए। इसमें कोई शक नहीं कि सहयोगी और असहयोगी दोनों ही प्रकारके पार-सियोंने यदि सहायता न दी होती, तो शान्तिकी स्थापना असम्भव थी। शान्तिकी स्थापनाके बाद जिस दिन बम्बईके कितने ही सज्जनोंके साथ मैंने फलाहार किया था, उस दिन श्री एच० पी० मोदीने भी शान्ति-स्थापनाके लिए नगरवासियोंको ही श्रेय प्रदान किया। श्री पुरुषोत्तमदासने यद्यपि असहयोगियोंको आरम्भिक उत्तेजनाके लिए बड़ी शिष्टताके साथ उलाहना दिया, तथापि उन्होंने भी इस बातको अस्वीकार नहीं किया कि जनताने ही शान्तिकी स्थापना की। श्री नटराजन्ने भी उन लोगोंकी मुक्त-

१. देखिए "गहरा कलंक", १८-११-१९२१।

कंठसे प्रशंसा की, जिन्होंने अतिवांछित शान्ति स्थापित की थी। श्री के० टी० पॉल और श्री डगलसने भी उनकी कुछ कम तारीफ नहीं की। श्री बीमादलालने अन्तमें धन्यवाद देते हुए मियाँ छोटानीका उल्लेख खास तौरपर किया था।

अब पक्षपातके विषयको लीजिए। एक ओर जहाँ पुलिस पारसियोंकी रक्षा करनेमें असमर्थ रही, वहीं दूसरी ओर कितने ही पारसियोंने मुझसे कहा है कि जब पारसी हुल्लड़बाज उपद्रव मचा रहे थे तब पुलिस खड़ी-खड़ी तमाशा देखती रही। लेकिन मैं इस बातपर ज्यादा जोर नहीं देना चाहता। मेरी इच्छा नहीं है कि मैं पुलिस या फौजके आदमियोंपर व्यक्तिके नाते दोषारोपण करूँ। मुझे आशा है कि एक-न-एक दिन मैं उन्हें सत्यके मार्गपर चलनेवाले निर्दोष लोगोंके पक्षमें ले आऊँगा। उनमें अधिकांश हिन्दुस्तानी हैं। और मैं तो अंग्रेज लोगोंके बारेमें भी आशा करता हूँ कि अन्तमें उनपर भी अनुकूल प्रतिक्रिया अवश्य होगी, बशर्ते कि असहयोगी लोग अपने अहिंसा-धर्मका पालन सच्चे हृदयसे करें। हाँ, पुलिस और फौजवालोंको इतना श्रेय दिया जा सकता है कि उन्होंने अन्धान्धुध तरीकेसे लोगोंकी जानें नहीं ली हैं; उन्होंने आतंक स्थापित करनेकी कोशिश नहीं की। अब मैं मलाबार और मद्रासका उदाहरण देकर इस अध्यायको समाप्त करता हूँ। चूँकि लोगोंको मलाबारमें काम करनेके लिए नहीं जाने दिया जाता है, इसलिए वहाँ अभीतक झगड़ा चल रहा है। इसी तरह मद्रासमें भी कोई दो महीनेतक हड़तालवाले स्थानोंमें जो मार-काट जारी रही, उसका यही कारण था कि वहाँ भी लोगोंको काम नहीं करने दिया गया या वे कर नहीं पाये। हाँ, बम्बई-सरकार, अगर चाहे तो, यह श्रेय ले सकती है कि जब लोग शान्ति स्थापनाकी चेष्टा कर रहे थे तब उसने उनके काममें किसी तरह हस्तक्षेप नहीं किया।

इसकी जड़में कौन था?

ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है जो कहते हैं कि यह सारी गड़बड़ी खुफिया पुलिसकी खड़ी की हुई थी और उसीने इसको कायम रखा। मुझे यहाँ, भारतमें, रहते कोई छः साल हो गये हैं। और इस अवधिमें मैं बराबर खुफिया पुलिसके खिलाफ ऐसी शिकायत सुनता रहा हूँ। खुद मुझपर भी उसकी नजर रही है। लेकिन मैं उन तमाम बेबुनियाद अफवाहोंको माननेमें असमर्थ हूँ जो उसके विषयमें चारों ओर फैलाई जा रही हैं। मैं मानता हूँ कि वह भ्रष्ट है और उसपर लगाये जानेवाले बहुतसे इल्जाम सही साबित किये जा सकते हैं; पर उनमें अतिरंजना बहुत है। अगर ये तमाम आरोप सच हों, तब तो बड़ी भयंकर बात होगी; और वह हमारी पहले दर्जेकी कायरताका सबूत होगा। इस महकमेके सम्बन्धमें जितनी गन्दी बातें सुनी जाती हैं, वे उन्हीं लोगोंके बीच सम्भव हो सकती हैं, जिनमें न तो बहादुरी हो और न आत्म-सम्मानकी भावना। बम्बईके उपद्रवके दिनोंमें कई जिम्मेदार और प्रतिष्ठित आदमियोंने कहा कि श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा मेरे और दूसरे लोगोंपर हमला होनेकी तथा मस्जिदों, गिरजाघरों आदिको नुकसान पहुँचानेकी अफवाहें खुफिया पुलिसवालोंने ही फैलाई थीं। यह कहा गया कि आगजनी और ट्रामगाड़ियोंकी तोड़फोड़ भी उन्होंने कराई। मैं इन सब बातोंपर विश्वास करनेमें असमर्थ हूँ। और अगर वे सच हों तो कहना होगा

कि वम्बईके लोग बड़ी आसानीसे झाँसेमें आ जाते हैं, और अपने नागरिक अधिकारों-का उपयोग करने लायक भी नहीं हैं। स्वराज्य-प्राप्तिके योग्य वननेके लिए हमें जिन गुणोंकी जरूरत है, उनमें एक यह गुण भी आवश्यक है कि हममें खुफिया पुलिसको मात देनेकी योग्यता हो। अगर हम ऐसे काम करनेके लिए आसानीसे उकसाये जा सकते हों जिनसे हमें हानि पहुँचती हो, या उन बातोंपर हमारा विश्वास कराया जा सके, जिनको हमें न मानना चाहिए, तो हम अपने लक्ष्यतक कभी नहीं पहुँच सकते। यदि हम खुल्लमखुल्ला और सच्चे दिलसे अहिंसक बने रहें, तो हम गलत रास्तेपर नहीं भटक सकते। हमारे बीच जो उपद्रवी लोग हैं उनपर या तो हमारा नियन्त्रण रहेगा या फिर खुफिया पुलिसका। यदि हम उन्हें काबूमें नहीं रख सकते तो हमें निकट भविष्यमें स्वराज्य पानेके खयालको बस नमस्कार ही कर लेना चाहिए।

अफवाहोंसे होशियार

इन घटनाओंसे हमें अनेक सीखें मिलती हैं। उनमें एक यह है कि हमें अफवाहों-पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए और हरएक बड़े-बड़े मुहल्ले और बड़ी-बड़ी सड़कोंपर कांग्रेस और खिलाफतका एक-एक दफ्तर होना चाहिए, जहाँ जाकर लोग अफवाहोंकी सचाई और झुठाईका इत्मीनान कर सकें। यदि सफल होना है तो हम सबको बिल्कुल एक होकर एक दिलसे काम करना जरूरी है, और इसके लिए हमें यह जरूर जानना चाहिए कि महज अफवाहोंके भरोसे बिना सोचे-समझे कोई काम न करें। सनसनी फैलानेमें तीन-चौथाई हाथ शरारतभरी अफवाहोंका ही था। अगर लोग सुनें कि कुछ मन्दिर आदि तोड़ दिये गये हैं और कुछ बड़े नेता मारे गये या घायल हुए हैं तो भी क्या हुआ? उन्हें बिना सलाह-मशविरेके काम न करना चाहिए। क्या कोई सैनिक अपने सेना-नायककी मृत्युकी अथवा अपनी मसजिद या मन्दिरकी पवित्रता भंग की जानेकी खबर सुनकर मनमाने ढंगसे आचरण करने लगता है? यदि वह ऐसा करे तो अपने उद्देश्यको हानि पहुँचायेगा और गोलीतक मार देनेके लायक समझा जायेगा। फिर हम तो शान्ति-सेनाके सैनिक हैं। अपनी ही खुशीसे हम इसमें दाखिल हुए हैं। शस्त्र-सज्जित सैनिकोंकी अपेक्षा हममें आत्मसंयमकी क्षमता अधिक है। फिर हमें कोई एकाध लड़ाई तो नहीं लड़नी है, हमें देश और धर्मकी आजादी हासिल करनी है। तब तो हमारे लिए और भी आवश्यक है कि हम पूरी तरह मिल-जुलकर काम करें।

आवश्यक अतिरंजना

अतिरंजना हमेशा ही निन्दनीय होती है; परन्तु इस नियममें सिर्फ एक ही अपवाद है। स्वयं अपने दोषोंके सम्बन्धमें अतिरंजना अवश्य करनी चाहिए। हमें अपने दोष बहुट छोटे दिखाई देते हैं और जब हम उन्हें हजार गुना बड़ा बनाकर देखेंगे तभी उनका सच्चा रूप हमारी नजरमें आयेगा। परन्तु दूसरोंके दोष हमें हमेशा बड़े ही नजर आते हैं। अतएव यह आवश्यक है कि हम दूसरोंके दोषोंको कम करके देखें। और यदि हम इन दोनों प्रक्रियाओंको एक ही साथ और विवेकपूर्वक लागू करें तो हम वांछित

और सुन्दर मध्यबिन्दुतक पहुँच सकते हैं। मेरे इस कथनपर कि इस दंगेमें मुसलमान भाइयोंने ही पहल की है, कुछ मुसलमान मित्रोंने मुझसे शिकायत की है। और मेरे इस वक्तव्यपर कि हिन्दुओं और मुसलमानोंने पहले आक्रमण किया है अतएव दोषके भागी वही हैं, हिन्दू और मुसलमान दोनोंने एतराज किया है। इन दोनों आक्षेपोंपर मैंने खूब अच्छी तरह विचार किया है, और फिर भी मैं इसी नतीजेपर पहुँचा कि मुझे अपने पहले ही कथनपर दृढ़ रहना चाहिए। जबतक हमें अपने खिलाफ पड़नेवाली तमाम बातें ठीक-ठीक मालूम न होंगी, तबतक हम अपनेको शुद्ध नहीं बना सकते —— अपने दोषोंको अपने अन्दरसे निकाल नहीं सकते। मैं जो कुछ जानता या अनुभव करता हूँ उसे यदि मैं न कहूँ तो मैं मुसलमान भाइयोंके साथ बेईमानी करूँगा और यदि मैं हिन्दुओंका प्रेम खोनेके डरसे अथवा किसी दूसरे कारणसे, सच बात न कहूँ तो मैं हिन्दू न रहूँगा। यह कहनेकी तो आवश्यकता ही नहीं कि कानूनकी दृष्टिसे ऐसे कथनका क्या परिणाम होगा। यह सोचना मेरा काम नहीं। सरकार जो चाहे सो करे। यदि पारसी और ईसाई लोग समझदार होंगे तो वे उसके हाथके खिलौने न बनेंगे। परन्तु एक असहयोगीकी हैसियतसे मुझे कानूनी नतीजोंसे कोई वास्ता नहीं। जिन लोगोंने जान-मालका नुकसान किया, वे या तो असहयोगी थे, या उनसे हमदर्दी रखनेवाले या महज शरारती लोग थे। पहले दो लोग तो, यदि बेकुसूर होते हुए सजा पायें तो उन्हें खुशी ही होनी चाहिए; क्योंकि हम निर्दोष होते हुए जेल जानेको ही महत्व देते हैं। पर यदि उन्होंने वास्तवमें गलती की हो तो फिर उन्हें दण्ड पानेपर रंज करनेकी जरूरत ही नहीं है। और शरारती लोग तो मुझसे किसी तरहके बचावकी आशा ही न करें। अतएव मेरे पास जो अच्छेसे-अच्छा रक्षाका साधन है और जो अच्छीसे-अच्छी सेवा मैं कर सकता हूँ वह यही है कि नतीजेका खयाल किये बिना सच बात कह दूँ। यह एक महान् संघर्ष है। करोड़ों आदमियोंका ताल्लुक इससे है। इसमें नित नई स्थिति और अनिश्चित बातें पैदा होती रहती हैं, और उनका सामना करना पड़ता है। ऐसे विकट संघर्षका संचालन किसी दूसरे प्रकारसे सम्भव ही नहीं है। ऐसी अनिश्चित अवस्थाओंमें हमारे पास अगर कोई अमोघ अस्त्र है तो वह सत्य और अहिंसा ही है।

जेलका डर

यद्यपि हमने जेलके डरको बहुत-कुछ दूर भगा दिया है; फिर भी आगे बढ़कर जेल जानेमें कुछ हिचक और उसको टालनेकी चिन्ता अभी भी है। हमें एक ओर जहाँ नेक और सच्चे तथा अहिंसापूर्ण रहना चाहिए, वहीं दूसरी ओर हमें सरकारी जेलोंके अन्दर पहुँचनेके लिए प्रायः उत्सुक भी रहना चाहिए। जिस सरकारको हम सुधारना या मिटाना चाहते हैं उसकी अधीनतामें मिलनेवाली इस नाम-मात्रकी आजादीका उपयोग करना हमें निश्चय ही यदि कष्टकर नहीं तो अटपटा अवश्य लगना चाहिए। हमें यह अनुभव करना चाहिए कि अपनी आजादीको कायम रखनेके लिए हमें कुछ गैर-मुनासिब या भारी कीमत चुकानी पड़ रही है। अतएव यदि हम निरपराध होते हुए जेल भेजे जायें तो हमें हर्ष होना चाहिए; क्योंकि इससे जरूर ही हमारे मनमें यह भाव उठना चाहिए कि अब आजादी नजदीक है। जो सैकड़ों लोग अपनी मातृ-

भूमिके लिए हँसते हुए कैद भोग रहे हैं, क्या उनके कारण आजादी पहलेसे ज्यादा नजदीक नहीं आ गई है? बम्बईके असहयोगियोंके लिए इससे बेहतर बात और क्या हो सकती है कि निरपराध होते हुए भी उन्हें अपराधियोंके बदले जेल भेज दिया जाये?

खरा हृदय

लेकिन मेरे ये उद्गार उन्हीं लोगोंको अच्छे मालूम होंगे जिन्होंने अपने दिलको बदल दिया है — उन हिन्दू और मुसलमान भाइयोंको नहीं, जो अब भी यह मानते हैं कि हिन्दुओं और मुसलमानोंकी बनिस्बत पारसियों और ईसाइयोंका ही अधिक दोष है। मेरे कथनके विरोधमें मेरे पास कितने ही पत्र आये हैं। उनसे मालूम होता है कि बहुतेरे हिन्दू और मुसलमान भाइयोंका यह विश्वास है कि पहला वार पारसियों और ईसाइयोंने ही किया था। पर यद्यपि मेरी जानकारी इसके प्रतिकूल है, तथापि मैं यह माननेके लिए तैयार हूँ कि आरम्भ उन्हींकी ओरसे हुआ; तो भी क्या हिन्दू और मुसलमान अपनी प्रतिज्ञाके कारण, अपनी बड़ी संख्या और अपने धर्मके कारण बदला न लेने तथा उनसे मेल-जोल करने और उनकी रक्षा करनेके लिए बाध्य नहीं हैं? फिर ऐसा करनेके लिए उन्हें विशेष प्रयत्न भी करना पड़े, तो कोई हर्ज नहीं।

मौलाना बारीका फतवा

अब मौलाना अब्दुल बारीकी बात सुनिए। बम्बईके उपद्रवोंका सविस्तर हाल जाननेपर उन्होंने एक फतवा जारी किया था; उसे यहाँ उद्धृत करनेके लिए कोई सफाई देना मैं जरूरी नहीं समझता :

> **हम यह हरगिज नहीं चाहते कि युवराजकी बेइज्जती की जाये, या उनको कोई जिस्मानी नुकसान पहुँचाया जाये। हम तो सिर्फ उन्हें नौकरशाहीके रुतबेके धोखेसे बचाना चाहते हैं और हिन्दुस्तानके और यहाँके लोगोंके सच्चे जजबातसे उनको बाखबर करना चाहते हैं। इसके लिए जो जरिया हमने तजवीज किया है वह है हड़ताल, ऐसी हड़ताल जिसमें हिंसाका नामोनिशान तक न हो।**
>
> **. . . हम बम्बईके दंगे-फसादको अपने सियासी उसूलोंके ही नहीं, मजहबी उसूलोंके भी खिलाफ मानते हैं। . . . आगे चलकर अगर ऐसी गड़बड़ियोंकी रोकथाम न की गई तो अकलियतके लोग हिन्दुस्तानी जम्हूरियतपर कभी यकीन नहीं ला सकेंगे। . . .**

अल्पसंख्यकोंके अधिकार

इसलिए जबतक हम पारसियों, ईसाइयों या यहूदियोंके बारेमें अपने दिलमें रत्ती-भर भी बुरा खयाल रहने देंगे तबतक हम अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकते। अल्प-संख्यक जातियोंके लोग हमारी राजनीतिक अथवा दूसरी बातोंको मानें, तभी हम उनकी रक्षा करें, यह शर्त नहीं लगाई जा सकती। इसे रक्षा नहीं कहते। सच्ची रक्षा तो वही है जो मतभेद होते हुए और यहाँतक कि अल्पसंख्यक जातियोंका विरोध होते हुए भी की जाये। अगर हम इस देशमें पूर्ण स्वातन्त्र्य चाहते हैं, तो हमें अल्प-

संख्यक जातियोंके स्वत्वोंकी रक्षा सबसे पहले करनी चाहिए। यहाँतक कि एक बच्चा भी अपनी राय बेरोक-टोक प्रकट कर सके। बहुमतका शासन अल्पसंख्यक जातियोंको कुचलनेके काममें लाया जाये तो यह बर्बरता है। स्वतन्त्र भारतमें हम यह नहीं चाहते कि लोग दबकर समान-रूप हो जायें। यह तो निर्जीव समानता होगी। हम तो यह चाहते हैं कि लोग अपनी जुदा-जुदा रायें रखें, उनके व्यवहारमें भी भिन्नता रहे, परन्तु उनमें बोलबाला उसीका हो जिसकी बात सबसे अच्छी और लाभदायक हो; सो भी लाठीके बलपर नहीं, बल्कि न्यायके बलपर। सत्ताके भारके नीचे तो हम बहुत दिनोंसे कराह रहे हैं; और बहुसंख्यक लोगोंके दबावमें उतनी ही पशुता हो सकती है जितनी कि अल्पसंख्यक लोगोंकी गोलियोंमें है। अतएव यदि हम आजाद होना चाहते हों, तो हमें अपने पारसी और ईसाई-भाइयोंके साथ धीरजसे पेश आनेकी जरूरत है। पारसियों और ईसाइयोंके सम्बन्धमें जो अन्ध दुर्भाव दिखाई देता है, वह तो मुझे खुद हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए भी हानिकारक मालूम होता है। यदि हम पारसियों या ईसाइयोंके मतभेद आदिको सहन नहीं कर सकते तो इस बातका क्या इत्मीनान है कि हिन्दू भी, जब वे पाशविक शक्तिमें अपनेको बढ़कर पायेंगे तब, अल्पसंख्यक मुसलमानोंपर अपनी इच्छा न थोप देंगे, या जब मुसलमान अपनेको अपेक्षाकृत अधिक पशु-बलका प्रयोग करनेकी अवस्थामें पायेंगे तब वे कमजोर हिन्दुओंको, उनकी संख्या अधिक होनेपर भी, न धर दबायेंगे ?

बंगालसे आई एक प्रतिध्वनि

बंगालसे एक मित्रने पत्र लिखा है। पत्र-प्रेषक महाशय इस विषयके जानकार हैं। वे कहते हैं:

> मैं आपसे यह कह देना चाहता हूँ कि यदि पूर्वी बंगालमें सविनय अवज्ञा शुरू हुई तो इसका नतीजा और भी ज्यादा बुरा होगा। वहाँ मुसलमानोंकी तादाद ७० फी सदीसे भी ज्यादा है। उनमें ज्यादातर लोग हुल्लड़बाज हैं। जहाँ ये लोग जोशपर चढ़े कि हिन्दुओंपर टूट पड़ेंगे, बड़ा जोरोजुल्म कर बैठेंगे और हिन्दू जमींदारों और सेठ-साहूकारोंको आतंकित कर देंगे। उनमें जो समझदार और शरीफ लोग हैं, वे उनको काबूमें न रख सकेंगे। हिन्दू-मुस्लिम एकता जरा-से धक्केसे भरभरा जायेगी। कलकत्तामें भी हालत बहुत ही खराब हो जायेगी। मैं आपसे सच्चे दिलसे अनुरोध करता हूँ कि आप हिन्दुस्तानके लोगोंसे और यहाँके हालातके बारेमें बहुत ज्यादा उम्मीद न रखें। आप दक्षिण आफ्रिकाकी परिस्थितियों और वहाँके लोगोंको जितना अधिक पहचानते हैं उतना इस भारतभूमि और यहाँके लोगोंको नहीं पहचानते। इस स्पष्टोक्तिके लिए मुझे माफ कीजिएगा। अभी आप सविनय अवज्ञा शुरू करनेके खिलाफ जान पड़ते हैं। पर यदि आपने अपना इरादा बदल दिया, तो मुझे इसके सिवा दूसरा नतीजा नहीं दिखाई देता कि चारों ओर भय और आतंक छा जायेगा। आपके उच्चतम आदर्श चौपट हो जायेंगे और देश और भी अधिक उत्पीड़न और

विपत्तियोंका शिकार हो जायेगा। इन वर्षोंमें आपने जो-कुछ भी किया है, वह सब मिट्टीमें मिल जायेगा।

इस किस्मकी यह एक ही चेतावनी मुझे नहीं मिली है। बम्बई देशका एक सबसे बड़ा केन्द्र है। अतएव उसकी बदौलत लोगोंमें उथल-पुथल होना स्वाभाविक है। अल्पसंख्यक लोगोंके अधिकारोंकी रक्षाका अर्थ है, कमजोरोंकी रक्षा, और कमजोरोंकी रक्षाके मानी हैं, बूढ़ों, बालकों और अबलाओं तथा उन सब लोगोंकी रक्षा जो दीन-दुःखी हैं। और यदि आज हिन्दुओं और मुसलमानोंकी एकताका उपयोग पारसियों और ईसाइयोंके खिलाफ किया जाता है तो कल ही वह एकता लोभ-लालचके अथवा मिथ्या धार्मिकताके दबावसे टूट सकती है। यह किसी भी तरह स्वराज्यका कोई अच्छा चित्र तो नहीं है। भारतको यदि स्वतन्त्र होना है, तो इसके लिए पूर्ण और सच्ची अहिंसाके सिवा दूसरा मार्ग ही नहीं है। अतएव अहिंसाका उपयोग हिंसाकी तैयारीके लिए बिलकुल न होना चाहिए। इसको समझना स्वराज्यका और स्वधर्मका साक्षात्कार करना है। हिन्दू और मुसलमान सावधान रहें, 'गीता' और 'कुरान'का गलत अर्थ न लगायें। और आजमाइशके तौरपर वे अपने संयुक्त बलको अल्पसंख्यक जातियोंकी रक्षामें लगायें। इससे वे एक-दूसरेकी रक्षा करना सीखेंगे।

नीति नहीं बल्कि धर्म

और यह तबतक नहीं किया जा सकता जबतक कि इस सालके अनुभवसे हम यह न सीख लें कि "भारतकी स्वतन्त्रता और भारतके सभी धर्मों और सम्प्रदायोंकी एकता प्राप्त करनेके लिए और उसे कायम रखनेके लिए, अहिंसाको हमें अपना एकमात्र धर्म मानना चाहिए।" इसके बाद भी हर सम्प्रदायको अपने धर्मकी रक्षाके लिए, और सबको मिलकर भारतकी प्रतिरक्षाके लिए, लड़नेकी स्वतन्त्रता रह जाती है। किन्तु अहिंसाको एक ऐसी नीति या तरकीब नहीं समझना चाहिए जिसे हमें भारतकी स्वतन्त्रता प्राप्त करने या उसे मजबूत बनानेके लिए आजमाना है। इसलिए हिन्दुओं और मुसलमानोंको शुभारम्भके तौरपर पारसियों, यहूदियों और ईसाइयोंसे, जिनमें अंग्रेज भी शामिल हैं, चाहे वे सहयोगी हों या असहयोगी, प्रेम करना चाहिए और उनकी सेवा करनी चाहिए। और यदि हमें ऐसा करना है तो हमारी वाणीमें कटुता नहीं होनी चाहिए और, लोगोंसे अपना मत स्वीकार करानेकी प्रक्रियामें, किसी बच्चेपर भी — उसकी टोपी उतारनेके लिए — हाथ नहीं लगाना चाहिए, और न ही शराबियोंके साथ उनकी शराबकी लत छुड़ानेके लिए जोर-जबर्दस्ती करनी चाहिए। हमारा ध्येय केवल यह होना चाहिए कि हमारी अपील उनके विवेकके लिए, दिमागके लिए और हृदयके लिए हो। हमें कभी भी, वचनों द्वारा या शारीरिक रूपसे, पाशविक शक्तिका प्रयोग नहीं करना चाहिए। जब भारतके लाखों-करोड़ों लोग स्वेच्छासे और अपनी समझसे हमारे पक्षमें हो जायेंगे, तो हम स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे। सहयोगियोंको सबसे बड़ा भय यह है कि अहिंसा हिंसाके लिए एक पर्दा है और नेक-नीयत लोगोंकी कोशिशके बावजूद यह आन्दोलन अन्तमें उच्छृंखल और उपद्रवी लोगोंके हाथमें चला जायेगा। हम इस भयको तर्कसे दूर नहीं कर सकते। ऐसे

निर्विवाद तथ्योंका एक लगातार सिलसिला ही उसे दूर कर सकता है, जिनके लिए प्रमाणकी कोई जरूरत नहीं हो। हमने बहुत प्रगति की है, पर हम यह दावा नहीं कर सकते कि हमारी वाणी या कर्ममें कोई गलती नहीं रही है। प्रेम, उदारता, विनम्रता, कोमलता, इनके लिए किसी स्पष्ट प्रमाणकी आवश्यकता नहीं। इसलिए हमें अहिंसापर ज्यादा और असहयोगपर कम जोर देना चाहिए। अहिंसा ही असहयोग है। सरकारका एकमात्र सहारा हिंसा है। क्या हमारा एकमात्र सहारा अहिंसा है? क्या हमने खुदको हिंसाकी उसकी विचारधारासे पूरी तरह अलग कर लिया है? उसकी सबसे बड़ी शिक्षा-संस्था तो हिंसा ही है। जिस दिन हम हिंसाकी प्रतिष्ठा पूरी तरह मिटा देंगे, उस दिन हम स्वराज्य स्थापित कर लेंगे। और ऐसा करनेके योग्य बननेके लिए हमें यह सीखना चाहिए कि अंग्रेजकी उस प्रणालीसे घृणा करते हुए भी जिसके अधीन वह भारतपर शासन करनेका दम भरता है, हमें अंग्रेजसे प्रेम करना है। मौलाना अब्दुल बारीके शब्दोंमें, हमारी अंग्रेजसे कोई लड़ाई नहीं है, हमारी लड़ाई तो उसके जोर-जबर्दस्तीके शासनसे है।

व्यावहारिक सुझाव

तब यदि हम अपने विरोधियोंसे प्रेम करते हैं तो हमारा प्रेम हमारे कार्योंमें प्रकट होना चाहिए। हमें उन्हें अपनी सभाओंमें बुलाना चाहिए और उनकी बात धैर्य और शिष्टतासे सुननी चाहिए। उनके बारेमें बोलते हुए हमें उन्हें बुरा-भला नहीं कहना चाहिए। उनका नाम सुनकर हमें "शर्म, शर्म" के नारे नहीं लगाने चाहिए। हमें उनकी उसी तरह निःसंकोच सामाजिक सेवा करनी चाहिए जिस तरह हम अपने पक्षवालोंकी करते हैं। हमें केवल उनकी राजनीतिक सेवा नहीं करनी है या उन्हें राजनीतिक सहायता नहीं देनी है। हमें सभी प्रकारके उत्तेजनात्मक भाषणों और तमाम नारोंसे बचना चाहिए। "महात्मा गांधीकी जय" और अन्य नारे बिलकुल बन्द कर देने चाहिए। हमें अपनी सभाएँ इस तरहके नारोंके बिना ही चलानी चाहिए। और यदि हम इस तरहके नारोंके बिना भारी भीड़ इकट्ठी न कर सकें, तो उसका न होना हमारे लिए बेहतर ही होगा। जिस जिले या तहसीलमें इस तरहका नियन्त्रण कायम नहीं किया जा सकेगा, उसे मैं सविनय अवज्ञा-आन्दोलनके योग्य नहीं समझूँगा। धरनेको बहुत ही शंकाकी दृष्टिसे देखना चाहिए। निःसन्देह यह हर कहीं पूर्णतया अहिंसात्मक नहीं रहा है। इसमें वाणीकी हिंसा या हिंसाका दिखावा होता रहा है। इसलिए धरना देना कमसे-कम फिलहाल, या जबतक कि हममें बहुत अधिक आत्म-नियन्त्रण न आ जाये और हम बहुत अनुभव न प्राप्त कर लें, रोक देना चाहिए। हम अपना ध्यान अभी शराबियोंके बीच काम करने तक सीमित रख सकते हैं।

हड़तालें

यदि पूर्ण शान्तिकी गारण्टी की जा सके और हर तरहकी जोर-जबर्दस्तीसे बचा जा सके, तो जहाँ-जहाँ युवराजको ले जाया जा रहा है, वहाँ-वहाँ हड़तालोंका ऐलान किया जा सकता है। यदि ट्रामें चलती हैं, तो हमें उसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

यदि लोग ट्राम-गाड़ियोंका उपयोग करते हैं तो हमें यह जान लेना चाहिए कि वे हमारे साथ शामिल नहीं होना चाहते। यदि एक भी आदमी अपनी दुकान खुली रखना चाहता है, तो हमें उसकी इस स्वतन्त्रताकी रक्षा करनी चाहिए। हड़तालका बहुत अधिक महत्व है लेकिन तभी जब यह पूर्णतया स्वेच्छासे हो।

पारसी और ईसाई

बम्बईके पारसियों और ईसाइयोंके लिए यह भारी परीक्षा और प्रलोभनकी घड़ी है। बहुत सम्भव है कि उन्हें हिन्दुओं और मुसलमानोंके खिलाफ दावे दायर करनेका लोभ दिखाया जाये। इस लोभमें फँसना एक घातक गलती होगी। उन्हें अपने-आपको इस अवसरके योग्य सिद्ध करना चाहिए; और अदालतोंके जरिये राहत या हर्जाने हासिल करनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए। पूरी सतर्कताके बावजूद कभी-कभी झगड़े रोके नहीं जा सकते। वे जानते हैं कि हिन्दुओं और मुसलमानोंमें जो सबसे समझदार हैं उन्हें इस दुर्भाग्यपूर्ण झगड़ेसे गहरा दुःख पहुँचा है और वे हिन्दुओं और मुसलमानों द्वारा किये गये आक्रमणपर लज्जित हैं। पारसियों और ईसाइयोंको अब सिर्फ ऐसी राहतके लिए ही कोशिश करनी चाहिए, जो उन्हें एक गैर-सरकारी समितिके जरिये मिल सकती है। यह सच है कि यदि वे सरकारके जरिये भी हर्जाना हासिल करनेकी कोशिश करें तो भी हिन्दुओं और मुसलमानोंको अपना दिमाग ठंडा रखना चाहिए। पर यदि उन्होंने गैर-सरकारी कार्यवाहीकी जगह सरकारी कार्यवाही ही पसन्द की, तो मानव-स्वभावको देखते हुए लोगोंके लिए अपने-आपको ठंडा रखना कठिन तो हो ही जायेगा।

सरकारके बारेमें

पत्र लिखनेवालोंने जहाँ मुझे पारसियों, ईसाइयों और यहूदियोंसे क्षमा माँगनेके लिए बधाई दी है, वहीं सरकारसे क्षमा न माँगनेके लिए फटकारा भी है। किन्तु यह फटकार बताते हुए उन्होंने क्षमा-याचनाकी मुख्य बातको नहीं देखा। कोई प्रणाली झगड़ोंके लिए यदि अधिक नहीं तो असहयोगियों जितनी ही जिम्मेदार हो, तो मैं उस प्रणालीसे या उसके प्रशासकोंसे क्षमा नहीं माँग सकता। अपनी बातको मैं इस धारणाके साथ शुरू करता हूँ कि इस प्रणालीके प्रशासकोंको इन झगड़ोंमें आनन्द आता है और वे उन्हें खुद बुलावा देते हैं। इसके लिए वे एक तो अप्रिय कार्यों द्वारा उत्तेजना पैदा करते हैं और दूसरे जनताके क्रोधके उबालको दबानेके लिए भयावह तैयारियाँ करते हैं। ईसाइयों, अंग्रेजों और सहयोगियोंसे जो क्षमा माँगी गई है, उसमें व्यक्तियोंकी हैसियतसे प्रशासकोंसे भी क्षमा-याचना शामिल है। मैंने कहा है कि यदि असहयोगियोंने युवराजके स्वागतमें शामिल होनेवाले एक भी व्यक्तिका अपमान किया है, तो उन्होंने युवराजका अपमान किया है और अहिंसाकी प्रतिज्ञा तोड़ी है। मैं नहीं समझता कि असहयोगियोंने इन तीन शर्मनाक दिनोंमें सरकारको किसी भी रूपमें या किसी भी तरहसे चोट पहुँचाई है। इसके विपरीत, मैं यह महसूस करता हूँ और जानता हूँ कि गुमराह शरारतियोंसे सरकारको और बल मिला है। इस तरह, पाठक यह देखेंगे कि एक ऐसी सरकारसे क्षमा माँगना, जिसका इन घटनाओंसे हित सिद्ध

हुआ हो या जिसे लाभ पहुँचा हो, कोई उपयुक्त कार्य नहीं होगा। मेरा एक लघु उद्देश्य एक प्रणालीके रूपमें सरकारको, और इसलिए उसके प्रशासकोंकी प्रतिष्ठाको, चोट पहुँचाना भी है। लेकिन मैं यह काम पूरी तरह अहिंसात्मक रहकर और हर सम्भव व अहिंसात्मक तरीकेसे उससे कोई सम्पर्क न रखकर तथा दूसरोंको भी ऐसा ही करनेके लिए प्रेरित करके करता हूँ। वस्तुतः यदि अहिंसा सरकार और जनता दोनोंका समान धर्म बन जाये, तो किसी भी झगड़ेकी कतई गुंजाइश नहीं रहेगी और तब असहयोगका प्रश्न ही नहीं उठेगा।

कुछ और उल्लेखनीय व्यक्ति जेलमें

मौलाना शरर मद्रास अहातेके एक प्रभावशाली वक्ता और खिलाफतके कट्टर कार्यकर्त्ता हैं। वे एक अच्छे लेखक भी हैं। मद्रास सरकारने उनकी आवाज एक सालके लिए बन्द कर दी है। पंजाब सरकारने पण्डित नेकीराम शर्माको गिरफ्तार कर लिया है। बम्बईकी जनता उनसे अपरिचित नहीं है। १७ तारीखको जब भिण्डी बाजारमें शराबकी एक दुकान जलाकर खाक कर दी गई थी तब उन्होंने कई जानें बचाई थीं। श्री गंगाधरराव देशपाण्डेको छः मासका साधारण कारावास दिया गया है। मैं आशा करता था कि उन्हें तथा और लोगोंको इस सालके आखिरसे अधिक समयतक आराम करनेका मौका नहीं मिलेगा। बम्बईकी घटनाओंने, लगता है, मेरी आशाएँ धूलमें मिला दी हैं। उससे पहले मुझे यह यकीन था कि या तो हम जेलके दरवाजे खुलवा सकेंगे, या कमसे-कम खुद भी अपने साथियोंके पास उनके आराम-घरोंमें पहुँच जायेंगे। लेकिन अब ईश्वर ही जानता है, क्या होगा?

बहादुर सिक्खोंकी गिरफ्तारी

'बॉम्बे क्रॉनिकल'में छपे एक तारसे पता चलता है कि पंजाब सरकारने सिखोंको सविनय अवज्ञाके लिए उत्तेजित किया है। अमृतसरमें होनेवाले एक सिख दीवानपर सरकारने पाबन्दी लगा दी थी। सिखोंको यह सहन नहीं हुआ। उन्होंने दीवान किया, और फलस्वरूप ग्यारह सुप्रसिद्ध सिख गिरफ्तार कर लिये गये। उनमें गुरुद्वारा कमेटीके प्रधान, पुराने नेता सरदार खड़गसिंह हैं। दूसरे हैं सरदार बहादुर मेहताबसिंह, जिन्होंने हाल ही में गुरुद्वारेके प्रश्नपर पंजाब विधान परिषदके उपाध्यक्ष-पदसे तथा सरकारी वकीलके पदसे त्यागपत्र दिया है। तीसरे व्यक्ति अमृतसर नगर कांग्रेस कमेटीके प्रधान सरदार दानसिंह हैं। यदि सिख बराबर शान्त किन्तु दृढ़ बने रहे, तो सिख नेताओंका कारावास गुरुद्वारेके प्रश्नका वांछित समाधान करके रहेगा।

हड़तालें

हड़ताल होनेपर जिन मिल मजदूरों और अन्य कर्मचारियोंको अपने सहानुभूति न रखनेवाले या विदेशी मालिकोंसे छुट्टी नहीं मिल सकती, उन्हें क्या करना चाहिए? अहिंसाकी दृष्टिसे इसका केवल एक ही उत्तर हो सकता है। जो कर्मचारी अपने-आप छुट्टी करता है, वह हिंसा करता है, क्योंकि वह अपनी नौकरीका करार तोड़नेका अपराध करता है। अपने मालिककी इजाजत बिना वह गैरहाजिर नहीं हो सकता।

यदि वह अपने मालिकसे सन्तुष्ट न हो, तो वह केवल इस्तीफा दे सकता है। परन्तु कर्मचारियोंका समूचा समुदाय तो इकबारगी ऐसा भी नहीं कर सकता, क्योंकि अपनी राजनीतिक रायको मनवानेके लिए वे बिना वाजिब नोटिसके काम छोड़नेकी धमकी नहीं दे सकते। संक्षेपमें, मिल-मजदूरों और ऐसे अन्य कर्मचारियोंको इस बातके लिए नहीं उकसाना चाहिए कि वे अपने मालिकोंपर छुट्टी देनेके लिए दबाव डालें। अहिंसात्मक कार्यवाही उतनी आसान नहीं है जितनी कि बहुतसे लोग समझते हैं। मैंने लोगोंको यह कहते सुना है कि शराबकी दुकानोंपर जानेवालोंकी कसकर टाँगें पकड़ लेना अहिंसा है। इसी तरह लड़कोंने शराब बेचनेवालोंको गन्दी गालियाँ देना अहिंसात्मक कार्य मान रखा है। यह भाषाके साथ सिर्फ खिलवाड़ है और बम्बईमें इसका कड़वा फल चखनेको मिला है। यदि हम अहिंसाको अच्छी तरह आजमाना चाहते हैं तो हमें स्वयं अपने प्रति सच्चा होना चाहिए। यदि हम अपने विचारोंको अहिंसात्मक न बना सकें, तो भी हमें अपने वचन और कर्मको तो इतना संयमित करना ही चाहिए कि वे पूर्णतया अहिंसात्मक हो जायें। यदि हमें व्यवहारमें यह चीज असम्भव या अत्यन्त कठिन लगती हो, तो हमें कोशिश छोड़ देनी चाहिए। किन्तु हमें अपनी असमर्थताके बदले जीवनके इस महानतम सिद्धान्तको दोषी नहीं ठहराना चाहिए। यदि हमें असफलता ही मिलनी है, तो वह अहिंसाकी असफलता नहीं होगी, बल्कि अहिंसाके पालनमें हिंसक लोगोंकी असफलता होगी।

आन्ध्र द्वारा की गई परिभाषा

स्वराज्यकी विभिन्न परिभाषाएँ की गई हैं। श्री गोपाल कृष्णैयाने, जिनपर दूसरी बार मुकदमा चलाया गया है और जिन्हें और सजा दी गई है, जो कि पहलीके साथ-साथ ही चलेगी, मजिस्ट्रेटके सामने एक लम्बा वक्तव्य दिया है। यह उनके राजनीतिक मतकी विज्ञप्तिसे अधिक उनके विश्वासका आध्यात्मिक विवेचन है। इससे निश्चय ही यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस भाषणपर मुकदमा चलाया गया है उसमें न तो हिंसा थी और न हिंसाके लिए उकसानेकी ही बात थी। लेकिन मेरी दिलचस्पी यहाँ केवल स्वराज्यकी उनकी रोचक परिभाषामें है। वह यहाँ दी जा रही है:

> **फारसके हमलोंसे जैसे पुराने यूनानियोंमें एकता आ गई थी, उसी तरह समान राजनीतिक यातना हिन्दू और मुसलमानोंको एक नहीं कर सकेगी, बल्कि वह एकता एक दूसरेके धर्मके लिए सम्मान, आदर और प्रेम रखनेसे तथा उनके अपने-अपने रूपको आवश्यक समझनेसे ही स्थापित हो सकेगी। इसलिए स्वराज्यका अर्थ हिन्दूधर्म, मुस्लिम धर्म, ईसाई धर्म, पारसी धर्म, सिख धर्म — संक्षेपमें सबके स्वधर्मकी रक्षा और सबका एक संयुक्त संघ है। सभी धर्मोंको आज प्रत्यक्षवादी नास्तिक दर्शन, औद्योगिक अराजकता और आध्यात्मिक दिवालियापनसे, जो इस समय संसारको घेरे हुए है, विनाशका खतरा है।**

चरित्रवान व्यक्तियोंको जब उनके धार्मिक विश्वासके लिए कारावास दिया जा रहा हो, तो निश्चय ही इसका अर्थ यह है कि हम अपने लक्ष्यके निकट पहुँच रहे हैं।

सरदार गुरुदत्तसिंह

सात सालतक छिपे रहना और पुलिसके हाथ न आना और उसके बाद अपनेको खुले आम पुलिसके हाथ सौंप देना कोई मामूली बात नहीं है। परन्तु सरदार गुरदत्त-सिंहने ऐसा ही आश्चर्यजनक काम किया है। मेरे सामने उनका खुला पत्र और दूसरे कागजात हैं। अपनी अन्य व्यस्तताओंके कारण मैं इनपर ध्यान नहीं दे पा रहा हूँ। परन्तु मैं सिखोंको इस बातके लिए बधाई दिये बिना नहीं रह सकता कि जब सरदार गुरदत्तसिंहने आत्मसमर्पण किया और मजिस्ट्रेटने उन्हें हिरासतमें लिया, उस समय उन्होंने शान्ति रखी। अहिंसाके बारेमें हमें इतना दृढ़ होना चाहिए कि हम बड़ेसे-बड़े साहसके कदम भी पूर्ण आत्मविश्वासके साथ उठा सकें। अहिंसात्मक बननेके लिए स्वदेशीसे बढ़कर और कोई चीज नहीं। एक व्यक्तिने मुझे लम्बा पत्र भेजा है जिसमें यह कहा गया है कि मुझे इस बातपर आग्रह करना चाहिए कि स्वदेशीका कार्यक्रम पूरा होनेसे पहले कोई भी तहसील सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू न करे। मैं इस बातसे पूरी तरह सहमत हूँ। मैं यह जानता हूँ कि यदि समस्त भारत स्वदेशीको अपना ले, अर्थात् अपनी करोड़ों कुटियोंमें खादी तैयार करके विदेशी वस्त्रका पूर्ण बहि-ष्कार कर दे, तो हिंसा असम्भव हो जायेगी। मैं चाहूँगा कि सिख और अन्य भारतीय अपना सारा ध्यान हाथसे सूत कातने और कपड़ा बुननेपर लगायें।

खादी टोपीके लिए दस दिनकी सजा

बम्बईके पिछले दंगेमें खादी टोपीकी बहुत चर्चा रही। डा० साठेपर अपनी खादी टोपी न उतारनेके कारण बुरी तरह हमला किया गया। अब मैंने सुना है कि फोर्टके नाविकोंने बहुत-से निर्दोष व्यक्तियोंकी खादी टोपियाँ जबर्दस्ती छीनी हैं। मैं तो यही आशा करता हूँ कि इस निरर्थक अत्याचारसे राष्ट्रका संकल्प और दृढ़ होगा और हजारों लोग खादी टोपीके लिए, जो तेजीके साथ स्वदेशी और स्वराज्यका एक स्पष्ट प्रतीक बनती जा रही है, मरनेको तैयार हो जायेंगे। परन्तु इसका सबसे स्पष्ट उदा-हरण बंगालसे मिला है। बंगालके कोमिल्ला जिलेमें ब्राह्मण-बाड़ीके एस० डी० ओ० श्री टी० एच० एलिसने १६ तारीखको यह नोटिस जारी किया :

> **सरकारने यह फैसला किया है कि तथाकथित गांधी टोपियाँ पहनना भारतीय दण्ड-संहिताकी धारा २२८के अधीन एक अपराध है। भद्र लोगोंको यह चेतावनी दी जाती है कि आदेश लागू किया जायेगा।**

परिणामस्वरूप, एक स्वयंसेवकपर, इस आदेशके बावजूद खादी टोपी पहननेपर, दस रुपया जुर्माना किया गया। उसने जुर्माना अदा करनेसे इनकार कर दिया और दस दिन जेलमें रहना पसन्द किया। मैं यहाँ धारा २२८ उद्धृत कर रहा हूँ :

> **जो भी कोई व्यक्ति किसी सरकारी कर्मचारीका, जब कि वह सरकारी कर्मचारी अदालती कार्रवाईकी किसी भी स्थितिमें बैठा हो, जानबूझकर अपमान करेगा या उसको किसी प्रकारकी बाधा पहुँचायेगा, उसे छः मासतक के साधारण कारावासकी या एक हजार रुपयेतक के जुर्मानेकी अथवा दोनोंकी सजा दी जायेगी।**

इस प्रकार खादी टोपी पहनना अबसे बंगालमें सरकारी कर्मचारीका अपमान माना जायेगा। मैं समझता हूँ कि इस एस० डी० ओ०ने खुद वे अधिकार हथिया लिये हैं जो बंगाल सरकार द्वारा उसे या किसी भी अन्य मजिस्ट्रेटको कभी भी दिये नहीं गये थे। कुछ भी हो, यदि यह आदेश आम है तो वैसे नंगे सिर रहनेवाले बंगाली सिर्फ आत्म-सम्मानकी भावनाके कारण शीघ्र ही खादी टोपियाँ पहनना शुरू कर देंगे। मैं इस स्वयंसेवकको, जो खादी टोपी पहननेके अपराधपर कारावासका सम्मान प्राप्त करनेवाला पहला व्यक्ति है, बधाई देता हूँ।

मद्य-निषेधकका प्रमाण-पत्र

मद्य-निषेधकका निम्नलिखित पत्र प्राप्त कर मुझे हर्ष और आश्चर्य हुआ। मुझे आशा थी कि डा० जॉन्सनसे भेंटका सौभाग्य मिलेगा, परन्तु हमारे कार्यक्रमोंकी पटरी नहीं बैठ सकी। इसलिए उनका एक पत्र पाकर, जिसमें मद्य-निषेधके हमारे कार्यको उन्होंने मान्यता दी है, विशेष सन्तोष मिला :

"प्रिय श्री गांधी,

आपके देशसे विदा होते हुए, मेरा मन बार-बार उस शानदार कामकी ही बात सोच रहा है जो आप मद्य-निषेधके ध्येयके लिए भारत और परिणामतः समस्त संसारके लिए कर रहे हैं। . . .

"अपनी धर्मपत्नीको कृपया मेरा सस्नेह स्मरण करा दें और अपने भाईको भी, जिनसे कुछ देर भेंटका सौभाग्य मुझे मिला था।

सस्नेह आपका,
डब्ल्यू० ई० जॉन्सन"

जहाजसे
१९ नवम्बर, १९२१

इस पत्रको पाठकोंके सम्मुख निःसंकोच मैं केवल इसीलिए रख पा रहा हूँ कि जिस कामको डा० जॉन्सनने सचमुच शानदार बताया है उसका श्रेय मैं अपनेको नहीं दे सकता। जो कार्य हुआ है उसमें दो वर्ष भी नहीं लगे हैं। परन्तु इसका श्रेय उन अज्ञात कार्यकर्त्ताओंके विशाल समूहको है जिन्होंने इस आन्दोलनकी धार्मिकतासे अनुप्राणित होकर मद्यनिषेधका कार्य स्वयं आगे बढ़कर किया है। मैं चाहता था कि इस तरहका गौरवपूर्ण कार्य बम्बईमें शराबकी दूकानोंको जलानेकी उच्छृंखल और हिंसात्मक कार्रवाइयोंसे लांछित न होता। मुझे आशा है कि जोर-जबर्दस्तीका लेश भी इस सुधारमें नहीं रहेगा और भारत शीघ्र ही स्वेच्छासे मद्यका परित्याग कर देगा।

अस्पृश्यता-निवारणका अर्थ

एक बंगाली मित्रने अपने पत्रमें लिखा है :

अस्पृश्यता-निवारणको आपने राष्ट्रीय कार्यक्रममें मुख्य स्थान दिया है। परन्तु जहाँतक मुझे ज्ञात है, आपने इसकी कोई स्पष्ट व्याख्या नहीं की है

कि इससे आपका ठीक-ठीक आशय क्या है। अन्तर्जातीय विवाहके प्रश्नसे अलग, इससे इन तीन सम्भव अर्थोंमें से कोई भी निकाला जा सकता है। इसका अर्थ या तो मनुष्यके स्पर्शको धार्मिक दृष्टिसे अपवित्र न मानना हो सकता है, या उसके हाथसे जल स्वीकार करना हो सकता है, या उसके साथ भोजन करनेमें — विशेषकर उसके हाथका पका भात खानेमें आपत्ति न होना हो सकता है।

इस प्रश्नका उत्तर सामान्यतः मैं यह कहकर दे सकता हूँ कि अस्पृश्यता-निवारणका अर्थ पंचम वर्णकी समाप्ति है। इसलिए इसका अर्थ कमसे-कम तो यह है कि मनुष्यका स्पर्श-मात्र अपवित्र न समझा जाये। तथाकथित अस्पृश्योंको वैसी ही स्वतन्त्रता होनी चाहिए जैसी कि स्पृश्योंको है। इसलिए, आमतौरपर, अभीतक अस्पृश्य समझे जानेवालोंके हाथके जलको अपवित्र नहीं समझा जायेगा। अस्पृश्यता-निवारणके अन्तर्गत किसी अस्पृश्यके या और किसीके हाथका पका भात या अन्य भोजन खाना नहीं आता। यह जाति-प्रथामें होनेवाले सुधारका विषय है और अस्पृश्यता सम्बन्धी कार्यक्रमके अन्तर्गत नहीं है। विवाह और सहभोज सम्बन्धी प्रतिबन्ध अवांछनीय हो सकते हैं और उनमें परिवर्तन आवश्यक हो सकता है। परन्तु मैं उन्हें हिन्दू-धर्मका कलंक नहीं मानता, जैसा कि मैं अस्पृश्यताको मानता हूँ। अस्पृश्यता लोगोंके एक वर्गको सामाजिक सेवाकी परिधिसे बाहर कर देती है और इसलिए वह एक अमानवीय प्रथा है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १–१२–१९२१

२१५. एक प्रतिवाद

सम्पादक,

'यंग इंडिया'

मान्यवर,

१० तारीखको 'यंग इंडिया' में आपने मुझे जो कड़ी फटकार[1] बताई है, उसे मैंने ठीक इस भावनासे ग्रहण किया है मानो कोई बुद्धिमान और दूरदर्शी सेनापति किसी गलती करनेवाले सैनिकको फटकार रहा हो। परन्तु कृपया मुझे विनम्रतापूर्ण प्रतिवादके कुछ शब्द कहनेकी अनुमति दीजिए। आपकी सख्त टिप्पणियाँ पढ़नेमें बहुत सुखकर नहीं थीं। यह देखकर तो निश्चय ही बहुत दुःख हुआ कि आपने जिस ढंगसे मेरे बारेमें लिखा है उसमें आपने स्वयं अपनी महानताके प्रति अन्याय किया है। शान्त गरिमा, बड़ेसे-बड़े शत्रुके प्रति भी अति सतर्क न्यायपरायणता, निर्बाध उदारता और मधुर युक्तिपूर्णता, आपकी बहसकी

१. देखिए "अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी", १०–११–१९२१।

प्रणालीकी ये मुख्य विशेषताएँ रही हैं। परन्तु दुर्भाग्यसे इस विशेष अवसरपर उनका प्रायः अभाव ही रहा।

मेरी यह पक्की राय थी कि अध्यक्ष द्वारा स्थगनके बावजूद दिल्लीकी बैठक करना संवैधानिक औचित्यकी अवहेलना करना था। बंगाल और मद्रासके सदस्योंको वहाँ बैठनेका कोई अधिकार नहीं था, क्योंकि अध्यक्ष विनिर्णय दे चुके थे कि उनका चुनाव अवैध है . . . कि कार्यकारिणी समिति तेजीके साथ सारी शक्ति हथियाती जा रही है। मुझे यह देखकर निराशा हुई कि अखिल भारतीय कांग्रेस समिति, कार्यकारिणी समितिको सुशोभित करनेवाले महान व्यक्तियोंकी प्रशंसक होनेके कारण, उस समितिको न केवल एक-एक करके अपने सभी अधिकार सौंपती जा रही है, बल्कि जो चीज इससे भी खराब है वह यह कि वह उसे अध्यक्षके अधिकार भी, उसकी अनुमतिके बिना और इच्छाके विरुद्ध सौंप दे रही है, और इस तरहसे उसे केवल एक कठपुतली बनाये दे रही है। . . . मेरी आत्मा इस उलटा-पलटीके विरुद्ध विद्रोह कर उठी। मैं यह नहीं मानता कि कांग्रेसका संविधान अध्यक्षको केवल एक नाम-मात्रका नेता मानता है, जिसे कार्यकारिणी समिति जिस तरह चाहे नचा सकती है। अध्यक्षका चुनाव राष्ट्र द्वारा किया जाता है। कांग्रेस महासभा उसे सीधे-सीधे सत्ता सौंपती है और वह, संविधानके सिद्धान्तके अनुसार सभाके सभी प्रतिनिधियोंकी सामूहिक प्रज्ञा और सत्ताका मूर्त-रूप है। कांग्रेस-संविधानकी व्याख्या और उसके निर्वहणका एकमात्र अधिकार उसीको है और इन मामलोंमें तथा कार्यविधि सम्बन्धी प्रश्नों-पर उसके विनिर्णय सर्वोपरि और निर्णायक हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि अध्यक्षके विनिर्णय सदा सही होते हैं। परन्तु उन्हें ठीक करानेका तरीका यह नहीं है कि अध्यक्ष-पदकी गरिमापर ही कुठाराघात किया जाये, जैसा कि दिल्लीमें किया गया है। . . . आपकी कड़ी फटकारसे मेरा विश्वास डिगा नहीं है, बल्कि और मजबूत हो गया है . . . पर मेरे रुखको बाधा डालनेवाला बताना तो पूर्व-ग्रहकी भाषा बोलना है, ईमानदाराना मतभेदोंका मजाक उड़ाना है, और यह संकेत देना है कि एक आदमी काफी असुविधा झेलकर और इतना खर्च करके बम्बईसे दिल्ली केवल अपने और औरोंके मनोरंजनके लिए गया होगा। यही शायद सबसे ज्यादा चोट पहुँचानेवाला आक्षेप है, और यदि आप आज्ञा दें तो कहूँ कि यह सच्ची गांधीवादी मनोवृत्ति नहीं है।

मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि महाराष्ट्र दलका आपने जो उल्लेख किया है वह प्रशंसाके लिए है। परन्तु मुझे पूरा विश्वास है कि महाराष्ट्रसे बाहर भी वह उस रूपमें नहीं लिया जायेगा। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है . . . मैं बेकारकी शेखी बघारनेके लिए नहीं बल्कि विनम्र कृतज्ञताके साथ, यह कहनेका साहस करता हूँ कि यह पूरा जिला, जिसके साथ मेरा भाग्य बँधा

है, मेरी मनोवृत्तिके बारेमें आपके अनुमानका पूर्णतया खण्डन करेगा; और आप स्वयं भी किसी दिन दुःखके साथ यह अनुभव करेंगे कि आपने एक विनीत अनुयायी और सहकर्मीके साथ अन्याय किया है।

भवदीय,

हार्वे रोड **जमनादास एम० मेहता**
बम्बई,
१७ नवम्बर, १९२१

श्री मेहताके प्रतिवादको मैं सहर्ष स्थान दे रहा हूँ। मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं उनकी भावनाओंको चोट नहीं पहुँचाना चाहता था, बल्कि मेरी टिप्पणियाँ पूर्ण सद्भावनाके साथ लिखी गई थीं। यदि श्री मेहता अपनी आपत्तिके सम्बन्धमें पूर्णतया गम्भीर थे, तो मुझे यह कहनेके लिए क्षमा किया जाये कि मुझे उनके भाषण-में कोई तर्क नजर नहीं आया। परन्तु श्री मेहताने अपनी गम्भीरताका जो विश्वास दिलाया है, उसे मैं पूर्णतया स्वीकार करता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १–१२–१९२१

२१६. पत्र-लेखकोंसे

ए० मोहम्मद यासीन : लाहौरमें उलेमाओंके सम्मेलनने एक प्रस्ताव पास कर-के जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तनकी निन्दा की है। मैं आपकी इस बातसे सहमत हूँ कि मलाबारके मोपला और हिन्दू अभीतक मित्रोंकी तरह रहते आये थे और यदि कलक्टरने आवेश और लापरवाही न दिखाई होती तो यह उपद्रव खड़ा न होता।

सी० वी० नायडू पूछते हैं :

> **१. यदि नगरपालिकाएँ और स्थानीय बोर्ड भी जनतापर जबर्दस्ती थोप दिये गये हों, जैसा कि चिरलामें हुआ है, तो क्या इन संस्थाओंको कर अदा नहीं करने चाहिए?**

यदि स्थानीय कष्टोंसे छुटकारा पानेके लिए सविनय अवज्ञाका सहारा लिया जाता है, तो इस तरहके करोंकी अदायगी रोक देना न्यायोचित ही होगा, और यदि किसी खास इलाकेके कर-दाता स्वराज्यके लिए सविनय अवज्ञाके इस रूपको अपनाते हैं, तो भी करोंका रोक देना उतना ही न्यायोचित होगा। जाहिर है कि यह दूसरा तरीका वहाँ नहीं अपनाया जा सकेगा जहाँ नगरपालिका जनता द्वारा निर्वाचित है और जहाँ उसके साथ असहयोग नहीं किया जा रहा है। प्रत्येक अवस्थामें वातावरण अहिंसात्मक रखना है, यह बात हम पहले ही मान कर चलते हैं।

> **२. क्या कोई असहयोगी नगरपालिकाओं और स्थानीय बोर्डोंमें निर्वाचित सदस्यकी हैसियतसे प्रवेश कर सकता है?**

वस्तुतः असहयोगी भारत-भरमें नगरपालिकाओंमें प्रवेश कर रहे हैं, और जहाँ उनके बहुमतकी सम्भावना है वहाँ तो वे विशेष रूपसे ऐसा कर रहे हैं।

३. क्या आप समझते हैं कि दक्षिण भारत अपने यहाँ फैली हुई अस्पृश्यताको देखते सविनय अवज्ञाके किसी भी रूपको अपनानेका अधिकारी है? (आन्ध्र इसमें शामिल नहीं है, केवल तमिलसे ही अभिप्राय है।)

यदि तमिल-भारतका कोई भी भाग अस्पृश्यताके पापको नहीं छोड़ता, तो वह सविनय अवज्ञा करनेके उपयुक्त नहीं माना जा सकता।

एक पारसी: चेचकके टीकेको बहुत ही नापसन्द करते हुए भी, मुझे 'यंग इंडिया'के स्तम्भोंमें उन बातोंके प्रचारके लोभको रोकना पड़ता है जिन्हें मेरे मित्र मेरी सनक कहते हैं। लेकिन टीका और इसी तरहकी दूसरी बुराइयोंका समाधान स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके बाद ही निकाला जा सकेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-१२-१९२१

२१७. मानवताके नामपर

उदारदलीय लोगोंके नाम अपने पत्रमें[1] मैंने अपनी पूरी बात कह दी है, उसकी व्याख्याकी आवश्यकता नहीं। उसमें मैंने मलाबारकी घटनाओंके अप्रमाणित या एकतरफा विवरणोंके बारेमें कुछ नहीं कहा है। परन्तु मेरे सामने ऐसे पत्र हैं जिनमें ऐसी-ऐसी अमानुषिकताओंका उल्लेख किया गया है जिनके आगे पंजाबके अत्याचार भी फीके पड़ जाते हैं। मलाबारमें प्रवेश निषिद्ध है। वहाँ जिस तरहकी नृशंसता हो रही बताई जाती है उसमें कैदियोंको दम घोटकर मारनेकी खबर सबसे अधिक चौंकानेवाली चीज है, यद्यपि यही सबसे क्रूर अत्याचार नहीं है। स्वार्थपूर्ण विवरणोंके कारण हिन्दुओंकी दृष्टि पूर्वग्रहोंसे अंधी हो गई है। मैं इस बातसे इनकार नहीं करता कि मोपलाओंने जबर्दस्ती धर्मपरिवर्तन व अन्य अत्याचार किये हैं। परन्तु मेरी आत्मा यह स्वीकार नहीं करती कि उसका बदला निर्दोष मोपलाओंसे या अपराधियोंके बीवी-बच्चोंसे लिया जाये; न ही अन्यायी लोगोंको यन्त्रणा देनेसे मुझे कोई खुशी हासिल होगी। इस प्रकारके प्रतिशोध मानवीय नहीं हैं।

मुझे तथ्यों या आरोपोंकी और अधिक चर्चा नहीं करनी है। मैं तो केवल शान्तिकी अपील करता हूँ। सरकार क्या कर रही है? वह सुरक्षा प्रदान करनेमें इतनी असमर्थ क्यों सिद्ध हुई है? या उसका कर्त्तव्य केवल प्रतिशोध लेनेतक और मोपलाओं तथा उनके शिकार हिन्दुओंको अलग कर देनेतक ही सीमित है?

यदि यह मान भी लिया जाये कि असहयोगियोंने मोपलाओंको सरकारके विरुद्ध भड़का कर यह उपद्रव शुरू किया था, तो क्या इस समय भी असहयोगी लोग मोपलाओं-

१. देखिए "उदार दलवालोंके नाम", २७-११-१९२१।

के रोषकी ज्वाला भड़का रहे हैं? क्या विद्रोहको कुचलनेसे वे सरकारको रोक रहे हैं? सरकार असहयोगियोंको वहाँ जाने और मोपलाओंको समझानेके लिए अनुमति-पत्र क्यों नहीं देती? यदि वे अपने दिये गये वचनके विपरीत कुछ करें तो बेशक उन्हें गोलीसे उड़ा दिया जाये। सरकार नेकचलनीके लिए कुछ व्यक्तियोंको जमानतके तौरपर अपनी हिरासतमें रख ले। जब एक सम्भव उपाय सामने है और जब असहयोगी, कुछ शर्तोंके अधीन, वहाँ जाने और शान्तिके लिए प्रयत्न करनेका प्रस्ताव रख रहे हैं, उस समय सरकारके लिए मनमाने ढंगसे विध्वंस और विनाशपर ही तुले रहना बिलकुल अमानुषिकता है।

यद्यपि शान्ति और मेलजोल स्थापित करनेका काम निश्चित रूपसे बहुत ही कठिन बना दिया गया है, फिर भी यदि असहयोगियोंको उपद्रव-क्षेत्रमें जाने और मोपलाओंको समझाने-बुझानेकी पूरी सुविधाएँ दी जायें, तो मैं अब भी उसकी सफलताके बारेमें आशावान हूँ। मोपलाओंने अपनी वीरताका चाहे कितना ही गलत प्रयोग किया हो, पर उनके साथ अच्छा व्यवहार होना चाहिए।

मैं मद्रास प्रेसीडेंसीके हिन्दुओंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे शान्त रहें और पथभ्रष्ट मोपलाओंको अपने हृदयमें स्थान दें। उनका धर्म उन्हें यह नहीं सिखाता कि कुछ व्यक्तियोंकी गलतियोंके लिए पूरी जातिको ही लांछित किया जाये। उन्हें अपनी गलती भी स्वीकार करनी चाहिए। वे मोपलाओंको जानते थे फिर भी उन्होंने मोपलाओंको और अच्छा पड़ोसी बनानेकी कोशिश नहीं की। हम अपनी पिछली लापरवाहीका फल भोग रहे हैं। अब बिना कोई फर्क किये सभी मोपलाओंको राक्षस बताना और कहना कि वे मानवीय सहानुभूतिके पात्र नहीं हैं, हमारे लिए उचित नहीं है। मोपलाओंकी पाशविकतासे इस्लामको निःसन्देह क्षति पहुँची है। परन्तु, मोपलाओंके खूनका प्यासा होनेसे, हिन्दूधर्मको भी इस्लामकी ही तरह क्षति पहुँच रही है। बलात्कार या हत्या करना काफी बुरी बात है, परन्तु बलात्कारी या हत्यारेकी खाल उधेड़ना, उसके घरकी औरतोंके साथ बलात्कार करना या उसके परिवारके बाकी लोगोंकी हत्या करना भी यदि अधिक नहीं तो उतनी ही बुरी बात जरूर है। मैं नहीं जानता कि दुराचारी या हत्यारा आकस्मिक आवेशमें अपराध कर बैठनेकी दलील नहीं दे सकता। परन्तु मनमाने ढंगसे प्रतिशोध लेनेवाला भी क्या अपनी सफाईमें कोई दलील दे सकता है? हिन्दुओंको मोपलाओंके खूनका प्यासा बनकर डायर और ओ'डायरके कारनामोंका औचित्य सिद्ध नहीं करना चाहिए। यदि हम मोपलाओंके सम्बन्धमें वीभत्सता और मान-मर्दनकी नीति अपना सकते हैं, तो क्या वैसा करके हम सर माइकेल ओ'डायर और जनरल डायरके कारनामोंको उचित नहीं ठहराते जिन्होंने कल्पित अन्याय और भयके कारण पंजाबमें आतंक फैला दिया था? मुझे भय है कि सरकार मलाबारके उपद्रवोंको जारी रखनेके लिए हिन्दुओंके रोषको भड़काकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रही है। मलाबार और मद्रासके हिन्दुओंको सावधान हो जाना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १–१२–१९२१

२१८. स्वयंसेवक-दलपर कुठार

बम्बईने प्रान्तीय सरकारोंको यह मौका दे दिया है कि वे व्यवस्थित ढंगसे दमन-चक्र चलायें और असहयोग आन्दोलनको बिलकुल समाप्त कर देनेकी कोशिश करें। बंगाल, संयुक्त प्रान्त, पंजाब और दिल्लीकी सरकारोंने स्वयंसेवक-संगठनोंको छिन्न-भिन्न कर देनेकी जो अधिसूचनाएँ जारी की हैं वे बम्बईकी सरकारके जवाबमें ही हैं। मैं अपनी तरफसे तो इन अधिसूचनाओंका स्वागत ही करता हूँ। इन अधिसूचनाओंके रूपमें हमें एक ऐसा कारण मिल गया जिससे हम अब सहज ही सविनय अवज्ञा कर सकते हैं। यदि हम सरकारकी इस चुनौतीको स्वीकार करनेके लिए तैयार हैं, तो हम तत्काल अपनी ताकत आजमा सकते हैं। सत्याग्रही अपना संघर्ष शुरू करनेका अवसर स्वयं आप ही निश्चित करता है। यह सविनय अवज्ञाकी एक अपनी खूबी है। वह तबतक अवज्ञा करना उचित नहीं समझता, जबतक उसे ऐसा करना आवश्यक न लगे। सरकार अपनी तरफसे उसे कितना ही उत्तेजित क्यों न करे, वह उससे सविनय अवज्ञा शुरू नहीं करा सकती।

ऐसी अवस्थामें यदि वे प्रान्त जहाँ ये अधिसूचनाएँ जारी हुई हैं तैयार हों तो उनके लिए सिर्फ इतना ही काफी है कि वे अपने स्वयंसेवक संगठनोंको भंग करनेसे इनकार कर दें, और हर स्वयंसेवक अपनेको जेल पहुँचा सकता है। लेकिन हमें पहले अपनी बुनियाद अच्छी तरह देख लेनी चाहिए। इन संगठनोंपर जो आरोप लगाया गया है वह यह है कि वे ऐसी संस्थाएँ हैं जो बल-प्रयोगका साधन बनती हैं, शान्ति-रक्षाका नहीं। अतएव हमारा पहला फर्ज यह है कि हम इस आरोपकी जाँच करें और अगर वह किसी भी अंशमें हमपर घटता हो तो अपने उस दोषको बिलकुल निर्मूल कर डालें। जिन-जिन स्वयंसेवकोंने बल-प्रयोग किया हो या अपने वचनों और कार्योंके द्वारा बल-प्रयोगकी धमकी भी दी हो, उनको अवश्य उनके कामसे हटा देना चाहिए।

संयोगसे कार्यसमितिने भी इसी मौकेपर स्वयंसेवक-दलोंका संगठन करनेका प्रस्ताव[1] स्वीकृत किया है। मुझे आशा है कि प्रत्येक प्रान्तकी कांग्रेस कमेटी और खिलाफत-समितियाँ इस कामको तुरन्त उठा लेंगी और तमाम स्वयंसेवक-दल एक ही संगठनमें शामिल हो जायेंगे तथा जो भी स्वयंसेवक अहिंसाके सिद्धान्तका कायल न हो वह उसमें न रहने पायेगा। तब यदि इन संस्थाओंके काममें किसी तरहका हस्तक्षेप किया गया तो हम संघर्ष छेड़ सकते हैं। पर इस संघर्षकी शर्त यह है कि जब स्वयंसेवकोंको जेल भेजा जाये तब शेष सभी लोग खामोश रहें और शान्ति बनाये रखें। बिना शोरगुलके, बिना भीड़-भाड़के जेलोंको भर देनेका यही सबसे उचित अवसर होगा। यदि हम चुपचाप कष्ट-सहन करनेके महत्वके कायल हों, तो हमें सरकारके लिए अपनी गिर-

१. बम्बईमें २३-११-१९२१ को स्वीकृत प्रस्ताव।

फ्तारी आसान कर देनी चाहिए। जब हर दफा हम उसका प्रदर्शन करने लगते हैं और जुलूस निकालते हैं तब सरकारके लिए गिरफ्तारी करना कठिन हो जाता है। जेलकी सजाएँ तो हमारे सामान्य दैनिक व्यवहारकी बात हो जानी चाहिए। जब हम हवाखोरीके लिए या पिकनिक आदिपर जाते हैं तब इतना सारा प्रदर्शन तो नहीं होता। मैं कहता हूँ कि ऐसी ही उदासीनता जेल जानेके विषयमें भी हमारे मनमें आ जानी चाहिए। मैं अदालतमें बयान देनेके सम्बन्धमें श्री जयकरके इस नुस्खेको बहुत अच्छा समझता हूँ कि एक मसविदा बना लें और सब लोग वैसा ही बयान दें। अगर बयान देने या न देनेमें से किसी एकको चुनना हो तो मैं न देनेके पक्षमें अपना मत बिना हिचकिचाहटके दे दूँगा। जेल जानेसे किसी तरहकी सनसनी नहीं फैलनी चाहिए; क्योंकि सनसनीसे उत्तेजना बढ़ती है और उत्तेजनासे दंगे-फसादकी नौबत आ सकती है और दंगे-फसाद शुरू हो जानेसे निरपराध लोगोंके लगातार जेल जानेके क्रममें गड़बड़ी पैदा होती है।

जेल जानेसे भी ज्यादा महत्वकी बात है शान्तिपूर्ण वातावरण बनाये रखना। अतएव संगठन-भंग करनेकी सरकारी आज्ञाओंका उल्लंघन करके हिंसाको बढ़ावा मिलनेकी जोखिम उठाना और जेल जानेकी जल्दी मचाना किसी भी प्रान्तके लिए ठीक न होगा। अहिंसाको स्थायी रूप देनेमें यदि हमें देर भी लगे तो उससे अन्तमें हमारी कुछ भी हानि नहीं होगी। हमारी स्वराज्यकी क्षमता इसी बातमें है कि हम उन हरएक तजवीजों और बन्दिशोंको जो हमसे हिंसा-काण्ड मचवानेके लिए की जा रही हों, पहले ही से समझ लें और उनकी दाल न गलने दें; फिर वे चाहे खुफिया पुलिसके द्वारा कराई गई हों, अथवा अन्य किसी तरीकेसे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १–१२–१९२१

२१९. पत्र-लेखकोंसे

डी० वी० राव पूछते हैं:

> **१. क्या आपका यह विश्वास है कि श्रीकृष्णने अर्जुनको अहिंसाके सिद्धान्तका उपदेश न दे कर गलती की थी? या उन्होंने युद्ध और हिंसाका प्रतिपादन करके ठीक किया था?**

मेरे विचारमें 'भगवद्गीता' एक विशुद्ध धार्मिक ग्रंथ है, ऐतिहासिक नहीं। एक ऐतिहासिक और लौकिक घटनाको लेकर इसमें एक महान धार्मिक सिद्धान्तकी स्थापना की गई है। इसमें मानव-मनमें नित्य चल रही बुराई और भलाईकी शक्तियोंके बीच, अहुरमज्द और अहरमनके बीच, हाइड और जेकिलके बीच चलनेवाले संघर्षपर प्रकाश डाला गया है। मन रूपी इस लघु कुरुक्षेत्रमें उभरनेवाले सभी दुष्ट मनोवेगोंपर हम जितनी भी हिंसा करें थोड़ी है। ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करनेपर 'भगवद्गीता' यह

दिखाना चाहती है कि अर्जुन निर्णय कर चुकनेके बाद, मिथ्या भावनाके वशीभूत हो, युद्धसे अलग नहीं हो सकता था। 'गीता'कारने युद्ध या हिंसाका कभी भी प्रतिपादन नहीं किया है। 'गीता' तो अहिंसाका उपदेश है। क्रोध और आवेशसे रहित युद्ध आत्मिक ही हो सकता है।

२. क्या सीताको पुनः प्राप्त करनेके लिए रामने रावणके विरुद्ध हिंसाका मार्ग अपनाकर गलती या पाप किया था? या हिंसा केवल विशेष परिस्थितियोंमें ही उचित है? यदि ऐसा है तो वे स्थितियाँ कौनसी हैं?

मैं 'रामायण'को भी उसी दृष्टिसे देखता हूँ जिससे कि 'भगवद्गीता'को। रामने जो शस्त्र प्रयुक्त किये वे विशुद्ध रूपसे आत्मिक थे। रावणपर रामकी विजय बुराईपर भलाईकी, अहंकारपर विनम्रताकी, पशु बने हुए एक मानवपर ईश्वरकी सहायता पानेवाली एक अबला और पतिव्रता नारीकी विजयका समारोह है।

किसीने पूछा है:

१. मान लीजिए सरकार दुष्टतापूर्ण उपायोंसे हमें उत्पीड़ित करती है, तो हम कबतक अहिंसात्मक रहें?

निश्चय ही तबतक जबतक कि हम सरकारको निरस्त्र न कर दें। हमने जब शपथ ली थी तो यह आशा नहीं की थी कि सरकार हमें झुकानेके लिए नरमीका बर्ताव करेगी।

२. स्वराज्य प्राप्त कर लेनेपर हम अन्य राष्ट्रोंके आक्रमणोंसे अपनी रक्षा कैसे करेंगे?

आपको 'यंग इंडिया' की पुरानी फाइलें देखनी चाहिए। परन्तु सामान्यतः कहा जा सकता है कि हमें अन्य देशोंसे किसी झगड़ेकी आशंका ही नहीं करनी चाहिए। किन्तु यदि वे, हमारी ओरसे कोई अपराध न होनेपर भी, हमपर चढ़ाई करते हैं तो, हमें सभी आक्रमणकारियोंसे अपनी प्रतिरक्षा कर सकनेके लिए कष्ट-सहनकी अपनी सामर्थ्यपर भरोसा रखना चाहिए।

३. क्या सामन्ती रियासतोंकी सत्ता कायम रहेगी?

निःसन्देह। उनके विरुद्ध हमारी कोई योजना नहीं है। तब उनके पास आजसे अधिक वास्तविक शक्ति होगी। तब स्वभावतः उनको जनमतका दबाव मानना पड़ेगा, चाहे वह जनमत उनकी रियासतकी सीमाओंके भीतरका हो या बाहरका।

४. यदि आप सविनय अवज्ञामें सफल हो गये तो, क्या आप गणराज्यकी घोषणा करेंगे? मौलाना शौकत अलीने ऐसी ही राय जाहिर की है।

मैंने दिल्लीमें जिस उग्र ढंगकी सविनय अवज्ञाकी कल्पना की थी, बम्बईने कुछ समयके लिए उसे धराशायी कर दिया है। किसी भी हालतमें मैं यह नहीं समझता कि असहयोगियोंने अपनी शक्ति अभी इतनी संगठित कर ली है, या इतना रचनात्मक कार्य कर लिया है कि सालके आखिरतक एक प्रभावशाली गणराज्यकी घोषणाकी जा सके। जो भी हो, गणराज्यकी घोषणा करना या न करना किसी एक आदमीपर निर्भर नहीं।

५. क्या आप पारसियोंको, जो मुख्य रूपसे शरारती रहे हैं, हर्जाना देंगे ?

पारसियोंको 'शरारती' कहकर आप स्पष्ट ही एक दूसरा प्रश्न खड़ा कर रहे हैं। मुझे पक्का विश्वास है कि शरारत हिन्दुओं और मुसलमानोंने शुरू की थी। निश्चय ही मैं आशा करता हूँ कि पारसी और ईसाई अपने-आपको इतने देशभक्त सिद्ध करेंगे कि वे सरकारके जरिये हर्जाना हासिल करनेकी कोशिश न करें; और निष्पक्ष सहयोगियोंकी एक गैरसरकारी समिति बनाई जायेगी, जो इस दुर्भाग्यपूर्ण उपद्रवसे पीड़ित सभी व्यक्तियोंके हर्जानेके दावोंको सुनेगी और उनकी जाँच करेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १–१२–१९२१

२२०. पत्र : अब्बास तैयबजीको

गुरुवार [१ दिसम्बर, १९२१]

प्रिय मित्र,

आपका पत्र कल अहमदाबादमें मिला। अब मालूम हुआ है, आप खाट पकड़े हुए हैं। सिपाहियोंके लिए बीमार पड़नेकी गुंजाइश कहाँ ? इसलिए आपको जल्द ही स्वस्थ होकर तेजीसे काम करनेमें जुट जाना चाहिए। आपके स्वास्थ्य और शक्तिका आज बहुत ज्यादा महत्व है; आपको एक दिनकी भी मुहलत नहीं दी जा सकती। इस सबका मतलब है आपको जल्दी स्वस्थ होनेकी प्रेरणा और उत्साह देना, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि आप पूरी तरह स्वस्थ हुए बिना ही बिस्तर छोड़ दें। जितने आरामकी जरूरत हो, कीजिए ताकि बीमारी दुबारा न उभर पाये। ऐसी बातोंमें जल्दबाजीसे काम बिगड़ता है।

आपके निर्देशोंके अनुसार मैंने धारालाओंके नाम एक अपील लिखकर श्री फूलचन्दको[१] दे दी है।

आशा है, शनिवारकी शामतक मैं बारडोलीमें रहूँगा और उसके बाद बम्बई जाऊँगा। अधिकसे-अधिक गुरुवारतक वहाँसे लौट आनेकी आशा रखता हूँ और उसके बाद, अगर इस बीचमें आपकी तबीयत बेहतर हुई होगी और आपकी इच्छा होगी तो, मैं आपको खेड़ाके लिए दो-तीन दिन दूँगा। हमारी तैयारी ठोस और पक्की होनी चाहिए। स्वदेशीकी जड़ें गहरी जम जानी चाहिए, अस्पृश्यता सचमुच समाप्त हो जानी चाहिए और हिन्दू-मुस्लिम एकता सच्ची होनी चाहिए। यह सब अहिंसात्मक भावनाके बिना असम्भव है।

१. फूलचन्द कस्तूरचन्द शाह, सौराष्ट्रके एक राजनीतिक और रचनात्मक कार्यकर्त्ता।

पूरे परिवारसे मेरा सस्नेह निवेदन करें। ईश्वर आपको स्वस्थ बनाये।

आपका,

मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ९५९७) की फोटो नकलसे।

२२१. भाषण: बारडोलीमें

[३ दिसम्बर, १९२१]

उन्होंने कहा, इस ताल्लुकेमें मैं पिछले दो दिनोंसे हूँ। इस बीच मैं जो कुछ देख सका हूँ, उसके बाद मैं यहाँके लोगोंको हार्दिक बधाइयाँ ही दे सकता हूँ। यह लोगोंके लिए बहुत प्रशंसनीय बात है कि उन्होंने अपने मनसे अस्पृश्यताको इस हदतक निकाल दिया है और उन्होंने आम तौरपर जिस तरह शान्ति बनाये रखी है, उसके लिए वे अधिकसे-अधिक सराहनाके पात्र हैं। लेकिन मुझे यह जानकर बहुत गहरा दुःख हुआ कि स्वदेशीके मामलेमें ऐसा बहुत-कुछ नहीं किया गया है जो करना चाहिए, हालाँकि स्वदेशी सबका सार है। आप लोग अब भी खद्दरके लिए बाहरी लोगोंकी उदारताके मोहताज हैं, जिससे प्रकट होता है कि कताईके साथ-साथ अभी गाँवोंमें बुनाईका प्रवेश नहीं हुआ है। यह एक बहुत बड़ी खामी है। हर गाँवमें कुछ करघे स्थापित कर देना कोई मुश्किल काम नहीं है। औरतें मोटा और कमजोर सूत इसलिए कातती हैं कि गाँवोंमें अभी बुनाई नहीं होती और इसलिए उस सूतकी परीक्षा नहीं हो पाती। यह काफी नहीं है कि श्रोताओंमें से बहुत ज्यादा लोगोंने खादी पहन रखी है। मैं इस तथ्यकी उपेक्षा नहीं कर सकता कि बहुत-सी औरतोंने खादी इसलिए नहीं पहनी है कि उतनी खादी मिलती नहीं। उपाय स्वयं आपके ही हाथोंमें है। मुझे पूरा विश्वास है कि आप चौकेमें अपना परिश्रम बचानेके लिए बाहरसे आटा गुंधवाना मंजूर नहीं करेंगी। यह व्यवस्था बेतुकी होगी और उतनी ही बेतुकी बुनाईके बिना कताई भी है। अगर आप अपने मनमें तय कर लें तो मैं जानता हूँ कि बहुत जल्दी इसे सीखा जा सकता है। स्वराज्य आप चन्द महीनोंमें ही प्राप्त कर सकते हैं, उसमें वर्षों लगनेकी कोई बात नहीं है। मैं चाहता हूँ कि अब इतना-कुछ कर लेनेके बाद आप पूर्णता प्राप्त करनेके लिए और भी कठोर श्रम करें। अगर अबतक आप सार्वजनिक सभाओंमें अछूतोंके आगमनका स्वागत करने लग गये हैं और उन्हें आपने अपने कुओंका भी उपयोग करने दिया है तो आपसे यह आशा करना उचित ही होगा कि

१. पिछले शीर्षकसे प्रकट है कि गांधीजीने बारडोली ताल्लुका शनिवार तारीख ३ दिसम्बरको छोड़ा था और रिपोर्टमें उल्लेख है कि यह भाषण गांधीजीने वहाँसे रवाना होनेके कुछ ही समय पहले दिया था।

आप एक कदम आगे जायें। उदाहरणके लिए, उनके घरोंमें जाकर शंकाशील माता-पिताओंको अपने बच्चोंको राष्ट्रीय स्कूलोंमें भेजनेके लिए समझायें-बुझायें।

सरकार द्वारा संचालित शैक्षणिक तथा अन्य संस्थाओंके बहिष्कारके लिए आपके ताल्लुकेमें कहीं-कहीं अबतक जो तरीके अपनाये गये हैं, आगे उनसे भिन्न और अच्छे तरीकोंसे काम लिया जा सकता है। जैसी कि खबर है, कुछ स्वयंसेवकोंने माता-पिताओंके दयाभावको जगानेके लिए इस खयालसे अनशन किया कि वे अपने-अपने बच्चोंको इन संस्थाओंसे हटा लें। यह अनशन भी एक तरहसे नैतिक हिंसा ही है। इस उपायके अवलम्बनका परिणाम आम तौरपर यह होता है कि लोग कहनेवालोंकी बात अनिच्छापूर्वक मान लेते हैं। लेकिन असहयोगियोंके लिए यह आचरण वांछनीय नहीं है, क्योंकि वे तो सभीके लिए अधिकसे-अधिक स्वतन्त्रताकी वकालत करते हैं। लेकिन मैं चाहता हूँ, बारडोलीकी शानदार उपलब्धिकी कोई खामी बतानेका मतलब लोग यह न समझें कि मैं अपनी निराशा व्यक्त कर रहा हूँ। यह तो है कि मैं बारडोली तहसीलके लिए यह नहीं कह सकता कि उसने तत्काल सविनय अवज्ञा करनेकी योग्यता प्राप्त कर ली है, और इसलिए उसे पूरे अंक तो नहीं दे सकता, लेकिन साथ ही आपके सन्तोषके लिए मैं आपको बड़े हर्षके साथ आश्वस्त करता हूँ कि सविनय-अवज्ञा और इस तरह स्वराज्यकी तैयारीके रास्तेपर मैंने किसी भी अन्य ताल्लुकेकी अपेक्षा बारडोलीको ज्यादा अच्छी तरह चलते पाया है। आपकी सादगी और उत्कटताका तो कोई सानी नहीं है। हिन्दू-मुस्लिम एकता जितनी सुरक्षित और निश्चित यहाँ है उतनी और कहीं नहीं। मुझे आशा है कि बारडोली अपने इस महान उपक्रममें इसी उत्साहके साथ लगा रहेगा, और तैयारीके रूपमें अब जो थोड़ा-बहुत करना बच रहा है उसे भी वह यथासमय पूरा कर लेगा। केवल तभी आप मुझे एक बार फिर बुलाकर कह सकते हैं कि "अब आप हमारे युद्धका संचालन करिये" और इसी तरह आप मुझे एक शान्तिपूर्ण क्रान्तिका नेतृत्व करनेका आनन्द दे सकते हैं, बशर्ते कि तब भी उसकी आवश्यकता बची रहे।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १०-१२-१९२१

२२२. गुर किल्ली

ताप त्रिविध प्रेम-आप दूर ही करै।

—तुलसीदास

बड़ी-बड़ी संस्थाओंमें सभी कमरोंके तालोंके लिए एक चाबी रहती है। सभी कमरोंके ताले उससे खुल जाते हैं। अलग-अलग चाबियाँ भी रहती हैं; परन्तु व्यवस्थापक-के पास एक ऐसी चाबी रहती है जो सबमें लग जाती है। उसे अंग्रेजीमें 'मास्टर की' कहते हैं। 'गुर किल्ली' उसीका अनुवाद है।

धारा-सभाओंका बहिष्कार करनेसे कौंसिलोंमें जानेवाले रुक सकते हैं; मदरसोंके बहिष्कारसे मदरसे जानेवाले, और अदालतोंके बहिष्कारसे मुकदमेबाज, किन्तु जब हमारी अपीलोंका इन सभीपर असर नहीं पड़ता तब हमारे कार्यक्रमकी सफलताके विषयमें पर्याप्त शंकाएँ की जाने लगती हैं।

परन्तु इन सब बाधाओंकी गुर किल्ली प्रेम है; और वही हमारे सब लोगोंके लिए रामबाण है।

जिस असहयोगमें प्रेम नहीं वह राक्षसी असहयोग है, और जिसमें प्रेम है वह ईश्वरी। हजरत मुहम्मदने तेरह वर्षतक मक्काके अरब लोगोंके साथ जो असहयोग किया वह प्रेमके ही वश होकर किया। मक्काके लोगोंकी आँखें उन्होंने प्रेमके बलपर ही खोलीं। मीराबाईने राणा कुम्भाके साथ जो असहयोग किया उसमें द्वेष नहीं था। राणा कुम्भा द्वारा दिये गये कठोर दण्ड उसने प्रेम-पूर्वक स्वीकार किये। हमारे असह-योगका मूल भी प्रेम ही है। उसके बिना सब फीका, सब खाली है। प्रेम हमारे लिए केवल मुख्य चाबी ही नहीं बल्कि वह हमारे लिए एकमात्र चाबी है। शिक्षालयोंका त्याग करनेवाले लोग यदि त्याग न करनेवालोंसे द्वेष करें तो त्याग करनेवालोंका त्याग निरर्थक कहलायेगा। धारा-सभामें जानेवालोंके साथ द्वेष किया जाये तो हमारा धारासभा-का त्याग बेकार हो जाये। जो हमारे मतको न मानें उन्हें प्रेमसे जीतना तो धार्मिक वृत्ति है और उनपर रोष करना राक्षसी, नास्तिक वृत्ति है।

हमें शर्मके साथ यह कबूल करना चाहिए कि हमारे त्यागमें कुछ-न-कुछ रोष और जहर बाकी रहा है, और इसीसे यह त्याग न पूरी तरह फूला, न पूरी तरह फैला। जितने आदमियोंने त्याग किया है उन्होंने यदि त्याग न करनेवालोंके प्रति द्वेष न किया होता तो हमारी हालत आज बहुत ही अच्छी होती और हम स्वराज्य स्थापनाकी अवस्थामें होते।

अतएव हमारा बड़ेसे-बड़ा काम यही है कि हम चारों ओर प्रेमकी वर्षा कर दें। प्रेम बरसानेका अर्थ यह नहीं है कि हम उनके साथ हो जायें। वह तो मोह होगा, गलत काममें साथ देना कहलायेगा। हम अपने विरोधियोंके साथ भी प्रेम रखें, उन्हें मूर्ख न मानें और उनकी सेवा करें—यह प्रेम है? हिन्दू यदि हिन्दूपर प्रेम करे

तो इसमें कौन बड़ाई है? हिन्दू यदि मुसलमानके साथ भी उतना ही प्रेम करें, उनके रिवाजोंको बरदाश्त करें तो यह अच्छाईकी निशानी है। असहयोगी असहयोगीके साथ मेलजोल रखे तो इसमें कौन खूबी है? परन्तु असहयोगी सहयोगीके साथ तीव्र मतभेद होते हुए भी, मुहब्बत करे, धीरज रखे — यह वीरता है, नम्रता है। उनको बदनाम करने, तुच्छ मानने और धिक्कारने में बड़प्पन नहीं है। बड़प्पन उनके घर नंगे पैर दौड़े जाकर उनकी सेवा करनेमें है।

हमने अपना यह कर्त्तव्य जितना चाहिए उतना नहीं निबाहा। मैंने भी इसके विषयमें लिखा और कहा; परन्तु जितना चाहिए उतना जोर नहीं दिया। मुझे इसका पछतावा हो रहा है। बम्बईके अनुभवने मेरी आँखें खोल दी हैं। बम्बईके अनुभवने बतला दिया है कि मेरी सहिष्णुता उथली थी। जब-जब सहयोगियोंके ऊपर शाब्दिक आक्रमण हुए, तब-तब यदि मैंने कड़ाईसे काम लिया होता तो आज हम बहुत उन्नति कर चुके होते। जब कभी किसीने जबरदस्ती किसीकी टोपी छीनी तब यदि हर बार मैंने उसका जोरसे विरोध किया होता तो आज उसका बड़ा अच्छा फल मिला होता। ऐसे महान संग्रामके नायकपदका उपभोग करना और पूरे तौरपर जाग्रत न रहना महापाप है। यह मैं जानता हूँ। इस युद्धके नायकमें यदि दीनता, दुर्बलता, और लाचारी हो तो उसे अपना पद छोड़ देना चाहिए।

जहाँसे भूले हैं, अब वहींसे हमें अपनी भूल सुधारनी होगी।

अब हमें अपने मनसे सहयोगियोंके प्रति, पारसियों और ईसाइयोंके प्रति, तथा अंग्रेजोंके प्रति रोषको निकाल डालना चाहिए। उन्हें भी भाई समझना चाहिए। उनका हम बहिष्कार न करें। उनके पानी, नाई आदिको न रोकें। उन्हें खाना खिलाकर खायें, उनकी सेवा करके प्रसन्न रहें। सभी धर्मोंमें निहित इस नियमका रहस्य समझ सकनेके बाद ही स्वराज्य जल्दी और आसानीसे मिल सकेगा, उसके पहले नहीं। अतएव जहाँ-जहाँ कानूनके सविनय-भंगकी तैयारियाँ हो रही हैं वहाँ-वहाँ हमें सबसे पहले यही काम करना है कि वहाँ जितने सहयोगी हैं उन सबके साथ मेल-मुहब्बत करें और मतभेद रहते हुए भी मित्रता कायम रखें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४–१२–१९२१

२२३. हिन्दू-मुस्लिम-पारसी

मुझे हिन्दुओंकी ओरसे तथा उसी तरह पारसियोंकी ओरसे पत्र प्राप्त होते रहते हैं। इन पत्रोंमें वे एक-दूसरेके दोष बताते रहते हैं। ऐसा करनेसे हम सच्ची एकताकी स्थापना नहीं कर सकते। हिन्दुओं और मुसलमानोंको याद रखना चाहिए कि पारसी कौम छोटी है और लगभग एक ही स्थानपर रहती है। इसलिए हमें उनके दोष ही दिखाई देते हैं, हम उनके गुणोंको भूल जाते हैं। यदि हम परिवारके लोगोंके दोष ही देखें तो जगतमें पूर्ण तो हम अपनेको ही मानेंगे और बाकी सब तो दोषोंसे इतने भरे हुए जान पड़ेंगे कि उनका स्पर्श-मात्र करनेसे हम अपनेको दूषित मानेंगे। लेकिन सत्य यह है कि इस तरह दोष देखनेवाला ही सबसे बड़ा पापी होता है।

दोष देखनेवाला अपनी दुर्बलताका परिचय देता है। और जो हिन्दू या मुसलमान पारसियोंके दोष निकालते रहते हैं वे अवश्य दुर्बल हैं। अगर हम अपने ही दोष देख सकें तो हम खुद उन्नति करें और औरोंको भी उन्नत करें। हमारा सबसे भारी दोष तो यह है कि हम सहिष्णुता खो बैठे हैं। नये धर्मको अंगीकार करनेके बाद हम उसकी मर्यादा भूलकर धर्मोन्मत्त बन गये। हमें असहयोग हाथ लगा; हमने उसकी कीमत पहिचानी; इसलिए जो इसे नहीं पहचान पाये उन्हें हमने बेअक्ल, अज्ञानी, देशद्रोही और पापी माना! ऐसा करके हमने अपने असहयोगको लांछित किया है। अभी कलतक हम भी सहयोगी ही थे, इस बातको हम भूल गये। हमने धीरज खो दिया। बलपूर्वक लोगोंसे विलायती कपड़ेकी टोपियोंको उतरवाया, लेकिन अपने पास पड़ी विलायती धोतियोंको तो हम भूल ही गये हैं।

पारसी भाइयोंकी हमने बहुत आलोचना करनी शुरू कर दी। हमने मान लिया कि ये कभी समझनेवाले नहीं हैं। इन्होंने अंगोरा-कोषमें, तिलक-कोषमें चन्दा दिया था, सो भूल गये। इनमें से बहुत सारे लोग खादी पहनते हैं, पारसी बहनें भी खादी पहनने लगी हैं, यह सब भूल गये और पारसी भाई-बहनोंपर क्रोधित हो उठे। उनमें से अनेक व्यक्तियोंने जो त्याग किया है उसे हमने बिसार दिया।

लेकिन आपके पास इस बातका क्या जवाब है कि पारसियोंने ही यह सारा झगड़ा शुरू किया है? कोई ऐसा प्रश्न पूछ सकता है। हम यदि एक लाख होते तो क्या करते, क्या इसका विचार हम नहीं करेंगे? हम बाईस करोड़ अथवा सात करोड़ न हों, हिन्दुस्तानमें हमारी संख्या केवल एक लाख रह जाये तो हम क्या करेंगे —इसका अगर हम खयाल करें तो हमें पता चले। प्रत्येक पाठकको किसीन-किसी स्थानपर अल्पसंख्यामें होनेका अनुभव आया होगा। वह उस समयकी अपनी उस अवस्थाका विचार करे। अभी हिन्दुओं और मुसलमानोंने भी एक दूसरेके भयको नहीं छोड़ा है तो ऐसा वे कैसे मान सकते हैं कि पारसी अपने इस भयको तुरन्त छोड़ दें। पारसियोंके साथ वैर बाँधकर अगर हिन्दू और मुसलमान राज्य करना चाहें तो यह एक बुरी इच्छा कही जायेगी। अल्पसंख्यक समुदायोंके साथ मित्रता करना और उन्हें

अभयदान देना, हिन्दू-मुसलमानका पहला धर्म है। उनका विश्वास जीतनेके प्रयत्नमें उन्हें अमूल्य रत्न हाथ लगेंगे।

याद रखना चाहिए कि ईश्वर असहायोंका सहारा है। यदि हम दुर्बलोंकी रक्षा करेंगे तो हम स्वयं भी रक्षाके पात्र बनेंगे। मौलाना अब्दुल बारी साहबकी यह बात बिलकुल सत्य है कि छोटे समुदायोंके साथ मित्रता करनेमें हमारी परीक्षा होगी। उन्हें निर्भय नहीं बनायेंगे तो हम स्वयं कभी निर्भय नहीं बनेंगे।

अल्प-संख्यक समुदायोंके लोग हिन्दुओं और मुसलमानोंके पास लाचार होकर आयें, इसकी न तो उन्हें अपेक्षा करनी चाहिए और न उनके साथ ऐसा व्यवहार ही करना चाहिए। हमारा धर्म है कि हम पारसी, ईसाई आदिको अपने पास स्वयं बुलायें, उनके प्रति मैत्रीका भाव रखें।

ऐसा करते समय मैं झूठी खुशामदकी सिफारिश नहीं करता। उनके दु:खमें भाग लेना, उनके साथ झगड़ा न करना, वे सरकारके साथ सहयोग करें तो सहन करना, उनके विदेशी कपड़े पहननेकी टीका न करना, उसके कारण उनपर क्रोध न करना और शुद्ध हृदयसे उन्हें अपना भाई समझना — यह सब करना जरूरी है। अगर हमारे पड़ोसमें दो-चार पारसी और ईसाई रहते हों तो उनके साथ हमें ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए मानो उन्हें कभी हम मिले ही न हों, बल्कि हमारा धर्म यह है कि हम उनकी सेवा करें और उनसे परिचय बढायें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४–१२–१९२१

२२४. कांग्रेसका आगामी अधिवेशन

इस अंकके प्रकाशित होनेके बाद कांग्रेसके आगामी अधिवेशनके शुरू होनेमें बीस दिन रह जायेंगे। यह अधिवेशन दूसरे अधिवेशनोंसे बिलकुल भिन्न प्रकारका होगा। इसमें कांग्रेस स्वराज्यकी प्राप्तिका उत्सव तो नहीं मनायेगी तथापि उसे कुछ उसके जैसा ही करना पड़ेगा अर्थात् उसे हर तरहसे अपने कार्यमें स्वराज्यकी योग्यता बतानी पड़ेगी। व्यवस्थामें कौशल, विवेकमें पूर्णता, निर्भीकता और स्वतन्त्रतामें किसी प्रकारकी कोई त्रुटिका न होना — यह सब हमें बताना पड़ेगा।

व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि हम किसी भी चीजको न भूलें। खाने, रहने, नहाने और सफाईका पूरा प्रबन्ध होना चाहिए। कूड़ेके स्थानपर कूड़ा, पानीके स्थानपर पानी होना चाहिए। कूड़ा, पानी और मैला बहुत ज्यादा होनेके बावजूद जहाँ दृष्टि जाये वहाँ स्वच्छता दिखाई देनी चाहिए। कहीं भी पानीके गड्ढे नजर न आयें। टट्टियोंका उपयोग तो सब करें, लेकिन जहाँ देखो वहाँ सफाई नजर आनी चाहिए। यह तो शरीरका प्रथम धर्म है और चूँकि इकट्ठे होनेवाले हम सब लोग शरीरधारी हैं, इसलिए हमारी दृष्टि सबसे पहले स्वच्छताकी ओर जानी चाहिए। खादीनगरको स्वच्छताका आदर्श पदार्थपाठ होना चाहिए।

लोगोंको पहलेसे ही पत्रिकाओंसे, भाषणोंसे इस बातकी तालीम देनी चाहिए कि वे तनिक भी आवाज न करें, झुण्ड बना-बनाकर खादीनगरमें खड़े न रहें, स्वयंसेवकोंके सुझावोंको मानें। जहाँ जानेकी मनाही हो या मनाही की जाये वहाँ न जायें और जहाँ जायें वहाँ वे सब ऐसा कुछ न करें जिससे दूसरोंको असुविधा हो। ये संघमें रहनेकी हमारी योग्यताके लक्षण हैं और जो इस अवसरपर प्रकट होने चाहिए।

स्वयंसेवक गरीब व्यक्तिको भी 'तू' न कहें। वे सबको सिपाहीकी तरह आदेश न दें; जो कहना हो उसे विनयपूर्वक कहें। स्वयंसेवकोंका व्यवहार सामान्य सिपाहीसे उलटा होता है।

दुकानदार जो बेचें, उसके ठीक-ठीक दाम लें; आये हुए मेहमानोंको लूटनेका विचार न करें। इससे सिद्ध होगा कि हम सभ्य और सुशिक्षित लोग हैं।

वहाँ तथाकथित तथा सच्चे असहयोगियोंका काफी बड़ा समुदाय इकट्ठा होगा। वे ऐसा न मानें कि उन्हें पृथ्वीके राज्यका पट्टा मिल गया है। वे सिर्फ यह मानें कि वे सेवा करनेके लिए पैदा हुए हैं। हम ऐसी आशा रखते हैं कि सब लोग खादी पहनकर ही आयेंगे। [स्वागत-समितिके] सभी सदस्य और कांग्रेसके प्रतिनिधि, ये सब खादी पहनकर ही आयें लेकिन अतिथि अथवा यात्री अथवा दर्शक चाहे जिस पोशाकमें आयें, कोई उनका अपमान न करे। जो सहयोगी माने जाते हैं, उनकी बात भी विनयपूर्वक सुनी जाये। कोई बालकको भी हाथ न लगाये। कोई किसीके कपड़ेको न छुए। "देख बिचारी बकरीका भी कोई न पकड़े कान", यह कविता इस राज्यके सम्बन्धमें तो गलत साबित हुई है, लेकिन स्वराज्यके सम्बन्धमें गलत साबित न हो, यह हमें बता देना होगा।

यदि हम स्वागत समितिके अध्यक्षपर ही सारा बोझ डालनेका विचार रखते हों तो हम आजसे ही कांग्रेसके इस अधिवेशनको विफल हुआ मान सकते हैं। स्वागत-समितिका अध्यक्ष तो निमित्त-मात्र है। उसे मदद करनेवाले हजारों होंगे तभी वह यश प्राप्त कर सकेगा। उसके हाथपैर स्वयंसेवक हैं। अहमदाबादके स्वयंसेवक अगर प्रत्येक स्थानपर फैल जायें, अपने कार्यसे उसे सुवासित करें, तभी काम अच्छी तरहसे हो सकता है। एक भी अनजान व्यक्तिको भटकना न पड़े। जाने-माने और अपरिचित, दोनों तरहके प्रतिनिधियोंके लिए ठीक व्यवस्था होनी चाहिए।

ये तो हमारी योग्यताकी निशानियाँ हुईं; प्रभुसे मेरी प्रार्थना है कि अहमदाबाद और गुजरातके लोग इसमें उत्तीर्ण हों।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-१२-१९२१

२२५. टिप्पणियाँ

मेरा अज्ञान

गुजरातके भूगोलके सम्बन्धमें मेरे अज्ञानका कोई हिसाब नहीं है। आनन्दके एक निवासी और खेड़ाके मुखिया अब्बास साहब अभिमानपूर्वक मुझे मेरी भूल[1] बताते हैं कि डाकोर कोई आनन्दमें नहीं है कि उसके सुधारका बोझ मैं आनन्दके कन्धोंपर डाल सकूँ। यद्यपि मैं यह जानता था कि डाकोर ढासरा ताल्लुकेमें है तथापि लेख लिखते समय मैं भूलसे डाकोरको आनन्दमें लिख गया। इस अज्ञानके लिए मैं पाठकोंसे क्षमा चाहता हूँ, तथापि मैं अपनी भूलपर कायम रहना चाहता हूँ। सरकारकी सहूलियतके लिए डाकोरजी भले ढासरामें रहे, लेकिन आनन्द अपने उत्तरदायित्वको नहीं छोड़ सकता। आनन्द ताल्लुकेके सब निवासी धार्मिक अर्थात् शूरवीर, विवेकी और सदाचारी बनें तथा इसका असर उनके पड़ौसमें रहनेवाले डाकोरके लोगोंपर न पड़े, यह हो ही नहीं सकता। डाकोरको सुधारनेके बोझको मैं आनन्द ताल्लुकेपर नहीं डालता। लेकिन डाकोर मेरे लिए आनन्द ताल्लुकेमें होनेवाले सुधारोंका थर्मामीटर होगा।

हृदय-परिवर्तनकी आवश्यकता

जिन सुधारोंकी मुझे जरूरत है, जिन सुधारोंसे ही आनन्द और बारडोलीको विजय प्राप्त हो सकती है, वे सुधार अगर ऊपरी दिखावा-भर हुए तो व्यर्थ जायेंगे। उनका प्रभाव गहरा होना चाहिए। लोगोंके हृदयका परिवर्तन होना चाहिए। भय दूर हो गया है, इसका दिखावा नहीं, भयका सचमुच नाश होना चाहिए। शान्तिका दिखावा नहीं, उसका ज्ञानपूर्वक पालन किया जाना चाहिए। खादीका स्वांग नहीं, उसका शौक उत्पन्न होना चाहिए। चरखेकी पूजा नहीं, प्रत्येक घरमें उसका धर्म समझकर उपयोग किया जाना चाहिए। तभी हमारी जीत होगी। अगर हृदयमें हम गुलामीका सेवन करते रहे तो हमें स्वतन्त्रता कभी नहीं मिलेगी।

अनोखी लड़ाई

यह कसौटी सत्यकी अर्थात् सत्यके आग्रहकी है। संसारमें आजतक किसी भी राष्ट्रने केवल सत्यके आग्रहका दावा करके स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं की है। जो अनुकूल मालूम हुआ वैसा करके राष्ट्रोंने स्वतन्त्रता नहीं, अन्य राष्ट्रोंपर सत्ता प्राप्त की है। इंग्लैंड स्वतन्त्र नहीं, सत्तावान् है। उसने हमें गुलाम बनाया है। गुलामको अपना मालिक स्वाधीन-जैसा दीख पड़ता है और वह भी उसके जैसा बननेका प्रयत्न करता है, अर्थात् दूसरोंको गुलाम बनानेमें आनन्दका अनुभव करता है। यह गुलाम स्वतन्त्र नहीं बनता; हमेशा अपनेसे अधिक बलशाली व्यक्तिका गुलाम ही बनता है।

१. देखिए "पत्र: बारडोली और आनन्दके निवासियोंके नाम", २७-११-१९२१।

सत्य अर्थात् सत्य

लेकिन इस समय मैं पाठकोंको इतने गहरेमें नहीं ले जाना चाहता। उसका रूप जो भी हो, हमने अपनी स्वतन्त्रता सत्याग्रह द्वारा प्राप्त करनेकी प्रतिज्ञा की है। इसलिए मिथ्याचारसे तो वह हमें मिलनेवाली नहीं है और जो बिना समझे अथवा समझनेके बावजूद छलपूर्वक सत्याग्रहमें शामिल हुए होंगे उन्हें खुद सन्तोष नहीं मिलेगा, जनताको भी वे सन्तुष्ट नहीं कर सकेंगे और अन्तमें वे देखेंगे कि उनके हाथ कुछ भी नहीं लगा है, और सचमुच ऐसा ही होगा। क्या ढेढ़ और भंगीके प्रति तिरस्कारका भाव रखकर और स्पर्श करनेका केवल ढोंग रचकर हम अस्पृश्यताके पापसे मुक्त हो जायेंगे? हम जबतक मनसे मलिनताको दूर करके उन्हें अपने भाई-बहनके जैसा नहीं समझेंगे और उनके दुःखमें दुखी नहीं होंगे तबतक हम स्वतन्त्र नहीं होंगे, क्योंकि तबतक हम उसके योग्य नहीं होंगे। वे ही हमारी प्रगतिको रोकेंगे। कोई व्यक्ति अपने-आपको इस भुलावेमें डालकर कि उसे ज्वर नहीं है और उसमें पर्याप्त शक्ति है, कितनी दूरतक जा सकता है। भयके कारण ही अगर हम हिन्दू और मुसलमानकी दोस्तीका ढोंग कर रहे होंगे तो हम अन्तिम घड़ीतक कभी एक साथ नहीं रह सकते और हमारे मनकी मलिनता ठीक समयपर उभरकर ऊपर आ जायेगी। हमारी पूरी कसौटी हुए बिना हमें स्वराज्य कैसे मिलेगा? और कदाचित् अंग्रेज अधिकारी एक बार धोखा खा भी जायें तो भी हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरेके साथ लड़ने लग जायेंगे। उस हालतमें हम कभी स्वराज्यकी शुरुआत ही नहीं कर सकेंगे। आरम्भसे ही हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरेसे द्वेष और भय करने लगेंगे। फलतः यह मित्रता बिलकुल सच्ची होगी तभी हम आगे बढ़ सकेंगे।

हमारी स्थिति

मैं स्वयं स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए जितना अधीर हो रहा हूँ, मुझमें उतना ही धैर्य भी है और हर व्यक्तिको मेरी सलाह है कि वह भी ऐसा ही बने। हमने जिन उपायोंपर अमल करनेका निश्चय किया है, अगर हम उनपर सचमुच अमल करें तो स्वराज्य प्राप्त करना आसान है। और इन उपायोंके बिना मैं इस वर्ष तो क्या इस युगमें भी स्वराज्य प्राप्त करना असम्भव समझता हूँ।

अन्य सब लोगोंकी अपेक्षा हमारी स्थिति भिन्न है, यह बात हमें याद रखनी चाहिए। हमारी संख्या ही हमारा बल है और यही हमारी दुर्बलता है। हिन्दुस्तानकी तरह किसी भी देशमें ऐसे भिन्नधर्मी लोग नहीं रहते जो आजतक एक-दूसरेको अपना शत्रु मानते हैं, किसी भी देशमें हिन्दुस्तानकी भाँति जनताका एक बड़ा हिस्सा अस्त्र-शस्त्रके प्रयोगसे इतना नहीं डरता और किसी भी देशमें मनुष्य-जातिका इतना अपमान नहीं किया जाता जितना हिन्दुस्तानमें ढेढ़ और भंगीका किया जाता है। इसलिए हमारे देशके रोगका उपचार भी नया होना चाहिए।

भूलमें न रहें

गुजराती भूलमें न रहें ऐसी मेरी इच्छा है। लकड़ीकी तलवारसे हमारा काम नहीं चलनेवाला। सत्याग्रहकी तलवार फौलादकी तलवारकी अपेक्षा अधिक पैनी और

तेज है। यह कोई बच्चोंका खेल नहीं, यह तो एक खरा और सच्चा खेल है। इसमें झूठको तनिक भी अवकाश नहीं। यदि हम सच्चे बनें तो इसी वर्ष स्वराज्य मिल जाये। लेकिन स्वराज्य मिलनेसे हम आज जो कर रहे हैं उसमें कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है, हमारी मुश्किलें कम होनेवाली नहीं हैं। अभी तो हममें से अधिकांश लोगोंका समय लड़नेमें अर्थात् प्रहारको सहनेमें जाता है। लेकिन बादमें तो हमें निर्माण करना होगा, नाजुक प्रश्नोंका निर्णय करना होगा, देशका शासन-प्रबन्ध चलाना होगा। क्या हम फिरसे अस्पृश्यताको दाखिल करेंगे? बादमें हम खादी कम पहनने लगेंगे कि ज्यादा? बादमें हम चरखेको जला डालेंगे या उसे और ज्यादा चलायेंगे? क्या बादमें हिन्दू मुसलमानोंको और मुसलमान हिन्दुओंको तथा ये दोनों ईसाइयों और पारसियोंको भुला देंगे और एक दूसरेके लिए अपरिचित बन जायेंगे? क्या बादमें हमें स्कूल चलानेकी जरूरत न रहेगी अथवा अभी जो स्कूल सरकारी कहलाते हैं उनका भी प्रबन्ध हमें करना पड़ेगा? क्या बादमें हम अदालतोंमें और ज्यादा भीड़ लगाने लगेंगे अथवा बादमें वकालतकी मौजूदा पद्धतिको भी बदलकर अदालतोंका संगठन आज जैसा है उसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन करेंगे? कोई मन-ही-मन इस बातका भरोसा न रखे कि बादमें तो हमारे पास एकाएक कार्यदक्ष व्यक्तियोंकी बरसात होगी। अगर आज इसकी कमी है तो उस समय और भी ज्यादा कमी होगी। देशका शासन-प्रबन्ध हमें चलाना होगा। उसका बीज तो हमने नागपुर कांग्रेसमें बो दिया। जैसा हमने बोया है वैसा हमें काटना भी होगा।

एक वर्ष बाद

इसलिए यदि कुछ लोग ऐसा मानते हों कि दिसम्बरके बाद हम हवाखोरीके लिए निकल पड़ेंगे तो इसके जैसी कोई और भूल नहीं हो सकती। स्वराज्य अभी मिले अथवा बादमें, हम आज जो कर रहे हैं, उसमें बहुत ही कम परिवर्तन होगा। बादमें भी आत्म-शुद्धिका कार्य तो हमें करते ही रहना होगा। आज उसमें जो अपूर्णता है तब हमें उसे पूरा करना ही होगा। यदि आनन्द, बारडोली आदि लड़ना चाहते हैं तो वे यह समझ लें कि एक बार रणक्षेत्रमें उतरनेके बाद एक वर्ष लगे अथवा अनेक वर्ष, वे फिर पीछे नहीं हट सकेंगे और वे यदि आगे आयेंगे तो जैसे उनकी विजय होनी निश्चित है वैसे ही उन्हें इस समय कष्ट सहन करनेका निश्चय भी करना होगा। वे कदम आगे न बढ़ायें तो उन्हें कोई कुछ कहनेवाला नहीं है, लेकिन एक बार कदम बढ़ानेपर उनके लिए लड़ने अथवा मरनेके सिवा कोई और चारा न रहेगा। इतना शौर्य और धैर्य अनिवार्य है।

निराश न हों

ये वाक्य मैं गुजरातियोंको निराश करनेके लिए नहीं लिख रहा हूँ। बल्कि उन्हें उनका कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व बतानेके लिए लिख रहा हूँ। इसलिए लिख रहा हूँ कि वे गलतफहमीमें न रहें — ऐसा मानकर कि इसमें क्या बड़ी मुश्किल है। मैदानमें उतरनेके बाद अपने-आपको हँसीका पात्र न बनायें। जो इस लड़ाईके रहस्यको समझ

गये हैं, जो सत्य और अहिंसाका सेवन करने लगे हैं वे तो मेरे ऐसा लिखनेसे तनिक भी चौंकनेवाले नहीं हैं। लेकिन यदि कोई गुजराती अभीतक इस लड़ाईके मर्मको नहीं समझा है तो वह समझ जाये, ऐसा सोचकर मैंने स्पष्ट शब्दोंमें यह चेतावनी दी है।

पवित्रताकी सीमा

खादीकी पवित्रता उसके स्वदेशी होनेमें है, यह मैं अनेक बार कह चुका हूँ। गेहूँ पवित्र खाद्यान्न है, लेकिन उसे संन्यासी और चोर दोनों ही खाते हैं। इसी तरह पवित्र खादी पाखण्डी भी पहनते हैं और पुण्यवान् भी। भारतीयोंका यह शारीरिक धर्म है; इसका जो त्याग करता है वह भूल करता है और हिन्दुस्तानको नुकसान पहुँचाता है। यह सच है कि इस सन्धिकालमें खादीमें अन्य अनेक गुणोंका आरोपण किया जाता है और पाखण्डी लोग खादी पहनकर अपने पाखण्डका पोषण करते हैं। लेकिन ऐसा अधिक समयतक नहीं चल सकता। जब खादी पहनना हमारा सहज धर्म हो जायेगा तब उसकी जो कीमत होगी वही आँकी जायेगी। जिन लोगोंने खादी पहनने और उसका उत्पादन करनेके धर्मको समझ लिया है वे अगर किसी स्थानपर खादीका दुरुपयोग होते हुए देखेंगे तो भी अपने इस धर्मसे कभी विमुख नहीं होंगे।

एक मित्रने कुछेक ऐसे प्रश्न उठाए हैं जिनका उत्तर देते हुए धर्म-संकट जैसा महसूस होता है; उन्हें समझनेमें अब कोई कठिनाई नहीं होगी। यह हमारा सौभाग्य है कि अब देशमें विवाह अथवा मरण आदि प्रसंगोंमें खादीका उपयोग करना आवश्यक माना जाने लगा है। अहमदाबादमें अभी हालमें ऐसे अनेक विवाह हुए हैं, जिनमें पूरी तरह तो नहीं पर मुख्य रूपसे खादीका उपयोग किया गया। सुना है कि एक वरने तो यह कहा कि अगर बहूको खादीकी साड़ी न पहनाई गई तो वह विवाह नहीं करेगा। अब प्रश्न यह उठता है कि खादीको उत्तेजन देनेके लिए क्या हमें उन विवाहों-में भी शामिल होना चाहिए जो अन्यथा अपवाद रूप हों? अगर हम शामिल न हों और कदाचित् ऐसे वर-वधूको इससे दुःख पहुँचे और वे खादीका भी त्याग कर दें तो? यह प्रश्न कायरतापूर्ण है। यदि कोई बतौर घूसके खादी पहनता है तो इसे हमें कदापि स्वीकार नहीं करना चाहिए। प्रत्येक वस्तुका मूल्यांकन उसके गुण-दोषको देखते हुए करना चाहिए। साठ बरसका बूढ़ा भगवे रंगकी खादी और रुद्राक्षकी माला पहनकर तथा भभूत लगाकर बारह वर्षकी कन्याके साथ विवाह करनेके लिए निकले तो भी हमें खादीको उत्तेजन देने अथवा उसके सादेपनका बखान करनेकी खातिर उसकी शादीमें शरीक नहीं होना चाहिए। और उसी तरह पच्चीस वर्षका युवक अगर अपनी स्त्रीके मरनेपर श्मशानमें ही किसी दूसरी स्त्रीके साथ सगाई करता है और दूसरे दिन विवाह करनेके लिए निकल पड़ता है तो हमें उसके विवाहमें भी नहीं जाना चाहिए। खादीकी और विवाहकी नीति अलग-अलग है। विवाह दूसरी तरहसे उचित हो किन्तु यदि उसमें खादीका प्रयोग न किया जा रहा हो तो जिस तरह हम वहाँ जानेमें आनाकानी करते हैं उसी तरह खादीसे लदी हुई अनमेल जोड़ीके विवाहमें भी हमें शरीक न होना चाहिए।

इसी प्रसंगमें मुझे एक अन्य मित्रका पत्र प्राप्त हुआ है जिसमें वे दुःखी हृदयसे लिखते हैं: "हम खादीकी महिमासे तो परिचित हैं, लेकिन जिस विवाहमें उपस्थित लोग खादीसे सज्जित हों, स्त्रियाँ भी खादी पहने हों, पर अश्लील गालियाँ गा रही हों, तो वहाँ क्या करना चाहिए? खादीकी खातिर ये गन्दी गालियाँ सुनें अथवा खादीकी पोशाक होनेके बावजूद ऐसी गालियोंसे अपने कानोंको अपवित्र होनेसे रोकें?" इस प्रश्नको मैंने कोई उत्तर देनेके विचारसे नहीं लिखा है और प्रश्नकर्त्ताने भी उत्तर पानेके उद्देश्यसे इसे नहीं पूछा है। प्रश्नकर्त्ताने तो टीकाके लोभसे इस रिवाजकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है। उनका कहना है कि जहाँ लड़के और लड़कियोंको भी ऐसी बीभत्स शिक्षा दी जाती है वहाँ धर्म-राज्यकी क्या आशा की जा सकती है? प्रश्न दुःख उपजानेवाला है। स्त्रियाँ जिस समय ऐसे अश्लील गीत गाती हैं उस समय उन्हें उनकी अश्लीलताका शायद ही भान रहता होगा। ऐसी बुरी आदतें गई नहीं हैं, इसके लिए पुरुष वर्ग ही दोषी है। पुरुष वर्गने इस बातका विचार ही नहीं किया कि उन्हें जो ज्ञानोपलब्धि हुई है उसे उन्हें स्त्रियोंको भी देना चाहिए। ऐसे विषयोंपर पुरुषवर्ग बहुत आसानीसे सत्याग्रह कर सकता है। यह युग नवयुवकोंका है। वे यदि नम्र और नीतिमान हों तो ऐसी कुप्रथाको तुरन्त दूर कर सकते हैं। शिक्षित लड़कियाँ भी ऐसे रिवाजके विरुद्ध सत्याग्रह कर उसे दूर कर सकती हैं। प्रत्येक पाठक बहन ऐसी कुप्रथाओंका विरोध कर सकती है। समझदार स्त्रियाँ अगर ऐसे कार्योंमें भाग लेनेसे इनकार कर दें तो यह रिवाज तुरन्त बन्द हो जाये।

बेमेल जोड़ी

बेमेल जोड़ों तथा पुरुषोंके दूसरी और तीसरी बार विवाह करनेकी समस्या कठिन है। यह गन्दगी शायद काठियावाड़में सबसे अधिक है। जबतक गरीब माता-पिता अपनी लड़कियोंको बेचनेके लिए और विषयान्ध धनवान केवल अपनी विषय-वासनाकी तृप्तिके लिए पैसा देनेको तैयार होते हैं तथा जबतक समाज इस बातको सहन कर सकता है तबतक इस गन्दगीका दूर होना लगभग असम्भव है। स्वराज्यकी प्रवृत्तिमें धर्मकी जो झाँकी दिखाई दे रही है उसके सिलसिलेमें अगर पुरुष अपनी विषय-वासनाको मर्यादित करना सीखें तो ही साठ वर्षके बूढ़े पत्नीकी मृत्यु होनेपर दूसरे ही दिन विवाह करनेसे रुकेंगे। समाज अगर दूसरोंके दोषोंकी चौकसी-भर करे तो यह सुधार नहीं हो सकता। ऐसे दुःखोंका निवारण तिरस्कारसे नहीं हो सकता। यह तो केवल विवेकसे, दलीलसे और दयासे होगा। जो पिता अपनी लड़कीको बेचता है और जो उस लड़कीको खरीदता है, वे दोनों रोगी हैं और दयाके पात्र हैं। अगर हम हमेशा उनका तिरस्कार करेंगे तो वे अपना हृदय कठोर बना लेंगे और निर्लज्ज हो जायेंगे। लेकिन यदि हम उनके रोगका उपचार कर उन्हें शर्मिन्दा करेंगे तो वे अवश्य मर्यादा सीखेंगे। प्रत्येक जाति-बिरादरी इस सम्बन्धमें समय रहते सुधार कर सकती है। ऐसे विवाहोंमें समझदार लोग शरीक न हों, इस बातको मैं केवल उपचारके रूपमें ही नहीं देखता, बल्कि इसे धर्म मानता हूँ। इस धर्मके पालनमें दया होनी चाहिए, तिरस्कार अथवा अभिमान नहीं।

धाराला, गरासिया आदि भाइयोंसे

आप क्षत्रिय होनेका दावा करते हैं। इस धर्म-यज्ञमें हमें सब कौमोंका, सब वर्णोंका सहयोग चाहिए। जबतक सब लोग एक-दूसरेको भाई न मानेंगे और एक-दूसरेकी रक्षा करना नहीं सीखेंगे तबतक स्वराज्य मिलना कठिन है।

क्षत्रियका धन्धा तो विशेष रूपसे रक्षा करनेका ही है। इसके विपरीत घाराला भाइयोंमें से अधिकांशने उल्टा रास्ता अपनाया है। उनपर तो सरकार अनेक बार अपराधी जातियोंसे सम्बन्धित कानून भी लागू करती है।

मेरी अब आप सबसे प्रार्थना है कि आप अपने साहस और सहनशीलताका उपयोग देशके हितार्थ करें। मारनेकी हिम्मत रखनेकी अपेक्षा मरनेकी हिम्मत रखना अधिक अच्छा है और इसीकी सारा जगत प्रशंसा करता है। मैं आपसे देशकी खातिर मारे बिना मरनेकी हिम्मत रखनेकी अपेक्षा रखता हूँ।

मैं आपसे यह माँगता हूँ कि आप पिछले वैरको भुलाकर अपने शान्त व्यवहारसे पास-पड़ौसके लोगोंको निर्भय बनायें।

आप अपने घरोंमें पींजना, कातना और बुनना शुरू करें तो संकटके वर्षोंमें भी आपको अनाज और वस्त्रकी कमी महसूस न होगी। ये तीनों क्रियाएँ सहल और गृहस्थ लोगोंको शोभान्वित करनेवाली हैं। उनसे परिवार अपना भरण-पोषण कर सकते हैं। आप इन्हें ग्रहण करें, ऐसी मेरी कामना है।

आपका शुभ-चिन्तक,
मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ४–१२–१९२१

२२६. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको[1]

मंगलवार, ६ दिसम्बर, १९२१

वहाँकी बातोंको सुननेके बाद मुझे लगता है कि तुम्हें अब शूरवीर बननेकी जरूरत है। अर्थात् जहाँ जरूरत जान पड़े वहाँ शान्तिपूर्वक लेकिन दृढ़तासे बात करो और विरोध करो। विरोध करते समय व्यवहारमें सख्ती नहीं आनी चाहिए और क्रोध तो कतई नहीं आना चाहिए। अगर तुम ऐसा करोगे तो सब तुम्हारी बात ध्यानसे सुनने लगेंगे। दूसरी ओर अपने मतदाताओंको ठीक जानकारी दो और अपने निर्वाचन-क्षेत्रको ताकतवर बनाओ। इस तरह सत्य प्रकट होगा तो यह क्षणिक तूफान शान्त हो जायेगा। जो लोग यह चाहते हैं कि सब-कुछ शुद्ध तरीकेसे हो वे आपसमें मिल-कर विचार कर लें कि उनका क्या कर्त्तव्य है। जो भूल करते दीख पड़ते हों उनके

१. गांधीजीने यह पत्र बम्बईकी कार्रवाइयोंसे सम्बन्धित प्रेषी द्वारा भेजे गये अनेक पत्रोंके उत्तरमें लिखा था।

प्रति दिलमें तनिक भी क्रोध नहीं होना चाहिए, केवल प्रेम और दया होनी चाहिए। इसका असर उनपर भी पड़े बिना न रहेगा। यह तो मैंने तुम्हें राजयोगका मार्ग सुझाया है। तुम इस मार्गको अपनाने योग्य हो। मेरी इच्छा है कि निराश न होओ।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

२२७. तार : चित्तरंजन दासको

[७ दिसम्बर, १९२१को या उसके प्रश्चात्][1]

हार्दिक बधाई। आपकी पत्नी और बहनके नेतृत्वमें बंगालकी पचास औरतें। अब स्वराज्य सुनिश्चित और समीप है। मुझे आपसे ईर्षा होती है। आशा है कि पूर्ण शान्ति होगी।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १३-१२-१९२१

२२८. टिप्पणियाँ

निराशाकी जरूरत नहीं

कुछ लोगोंने चिन्ता प्रकट की है कि पंजाबमें लाला लाजपतराय शायद शीघ्र ही जेलके मेहमान हो जायेंगे, असममें सर्वश्री फूकेन और बारदोलोई पहले ही जेल भेजे जा चुके हैं और इसी तरह अजमेरकी कांग्रेस कमेटी और खिलाफत कमेटी, दोनोंके सभापति मौलाना मोहिउद्दीन जेल भेजे जा चुके हैं, तब इस अवस्थामें इन प्रान्तों-में आगे काम कैसे होगा? मैंने यह जवाब दिया कि इन नेताओंके जेल जानेसे हमारा कार्य और आगे ही बढ़ेगा। इन लोगोंके जेल जानेके फलस्वरूप मैं तो यही उम्मीद करता हूँ कि इन प्रान्तोंके लोग अधिक संयमका और अपने दायित्वके प्रति अधिक जागरूकताका परिचय देंगे। इन प्रान्तोंमें और ज्यादा खादी तैयार होने लगेगी; विद्या-र्थियों और वकीलोंमें और अधिक जागृति पैदा होगी। यदि हम अपना शासन आप करनेके लायक होंगे तो इन नेताओंकी वीरता अवश्य ही दूसरोंको प्रेरणा देगी। दमनके साथ-ही-साथ हमें भी अधिकाधिक ऊपर उठना चाहिए। जब-जब लोग सरकारके दमनसे दब जायेंगे तब-तब पशुबलपर आधारित सरकारको दमनका सहारा लेनेमें फायदा दिखता रहेगा। फिर अन्तमें चाहे भले ही लोग फिर उठ खड़े हों। जो सरकार पशु-बलपर अपनी हस्ती कायम रखती है वह चार दिनोंतक ठहरती है और केवल दमनके

१. श्रीमती दास और दूसरोंको ७ दिसम्बरको गिरफ्तार किया गया लेकिन तत्काल छोड़ दिया गया था।

ही बलपर जीती है। जब उसके जोर-जुल्मके उपाय कारगर नहीं रह जाते तब वह अपने आप मौतके घाट उतर जाती है। अपने नेताओंके हमसे अलग कर दिये जानेके बाद यदि हमने खुद अपने अन्दर और अपने द्वारा उनके तेज और उत्साहको प्रकट नहीं किया, तो कहना चाहिए कि हम उनके अनुगामी होनेके लायक थे ही नहीं।

सिखोंका बलिदान

हमारे सिख भाई खुद अपनी और सारे भारतकी समस्या हल कर रहे हैं। अपने मत और विश्वासके नामपर सभी बड़े-बड़े सिख अपनेको बलिवेदीपर चढ़ा रहे हैं। सच्चे सैनिकोंकी तरह, वे एकके बाद एक जेल जा रहे हैं और सो भी बिना भीड़-भाड़, बिना तड़क-भड़क और बिना जरा भी हिंसाके। यदि वे बराबर ऐसा ही साहस, और ऐसी ही शान्ति दिखाते रहे तो वे इसके द्वारा निस्सन्देह अपनी समस्या हल कर लेंगे और भारतकी समस्याको सुलझानेमें भी सहायक होंगे। सिख भाई इस समय जो अपने धर्म-प्रेमका परिचय दे रहे हैं उसकी ओर सारा भारत उत्सुकताके साथ टकटकी लगाये है।

भारत-प्रेमका पुरस्कार

जहाँतक मेरी जानकारी है लाहौरमें श्री स्टोक्सकी गिरफ्तारीके सम्बन्धमें बम्बईके समाचारपत्रोंको कोई भी तार नहीं मिला है। यह ताज्जुबकी बात है। मैंने 'ट्रिब्यून' में इस घटनाके बारेमें एक पैरा देखा है। मैं सोच ही नहीं पाता कि एक इतनी सनसनीखेज गिरफ्तारीके बारेमें किसीने कोई तार न भेजा हो। इससे मैं यह नतीजा निकालता हूँ कि गिरफ्तारीकी सूचनाके तारोंको अली-भाइयोंकी गिरफ्तारीके बारेमें भेजे गये तारोंकी तरह ही या तो दबा दिया गया है या उनको कुछ समयके लिए रोक लिया गया है। श्री स्टोक्सको 'ट्रिब्यून' में छपे उनके लेखोंके सिलसिलेमें ३ तारीखको लाहौर छावनीमें गिरफ्तार किया गया था। उन लेखोंके बारेमें यह आपत्ति थी कि वे "राजद्रोहकी भावना और सम्राट्की प्रजाके विभिन्न वर्गोंमें घृणाका प्रचार करते" हैं। जिला मजिस्ट्रेटने श्री स्टोक्सको जमानतपर छोड़नेकी बात कही थी, पर श्री स्टोक्सने उसे स्वीकार नहीं किया। सरकारने यह एक विचित्र-सा कदम उठाया है। श्री स्टोक्स मूलतः एक अमेरिकी हैं, जिन्होंने अपने आपको स्वेच्छया ब्रिटिश प्रजा बना लिया है। उन्होंने भारतको अपना घर बना लिया है। शायद ही किसी अमेरिकी या अंग्रेजने आजतक ऐसा किया हो। पिछले महायुद्धके दौरान उन्होंने सरकारकी बड़ी-बड़ी सेवाएँ की थीं और उच्चाधिकारी लोगोंमें वह सरकारके शुभचिन्तकके रूपमें जाने जाते हैं। उनमें किसी भी दुर्भावनाका कोई सन्देहतक नहीं कर सकता। पर सरकार यह सहन नहीं कर सकी कि वह अपने आपको भारतीयोंके साथ एकात्म महसूस करें और भारतीयोंके दुःखमें दुःख मानें और उनकी ओरसे संघर्षमें हाथ बँटायें। आलोचनाकी खुली छूट उनको नहीं दी जा सकी और इस प्रकार सरकारने उनकी गोरी चमड़ीका जरा भी कोई लिहाज नहीं किया। सरकार आन्दोलनको हर कीमत-पर कुचलनेके लिए तुली हुई है। लेकिन यह उसके बसकी बात नहीं। श्री स्टोक्सकी

गिरफ्तारी सरकारकी कमजोरीकी जितनी बड़ी निशानी है, लालाजीकी गिरफ्तारी भी शायद इतनी नहीं थी। लालाजीको युद्धके दौरान सरकारकी सेवाका श्रेय प्राप्त नहीं था। लालाजीको एक आन्दोलनकारी माना जाता था। वह गोरी जातिके नहीं हैं। इसलिए जब श्री स्टोक्स-जैसे व्यक्तिको गिरफ्तार किया जाता है तब तो बाहरके लोग भी सरकारकी सदाशयताको सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगते हैं।

बारडोली

बारडोली तहसीलके लोग बड़ी उत्कण्ठासे मेरे आनेकी राह देख रहे थे। आखिरकार मौलाना आजाद सोबानीके साथ मैं वहाँ गया। बारडोली तहसीलकी आबादी कोई एक लाख है। उसमें करीब १४० गाँव हैं। वहाँ लगभग ६५ सरकारी मदरसे थे। उनमें से ५१ राष्ट्रीय पाठशालाके रूपमें परिणत हो चुके हैं। जहाँ-कहीं सरकारी मदरसे जारी हैं उनमें लड़कोंकी उपस्थिति-संख्या १० से भी कम है। राष्ट्रीय पाठशालाओंमें छः हजारसे ऊपर विद्यार्थी पढ़ रहे हैं; जिनमें कुछ सौ लड़कियाँ भी हैं। इन तमाम पाठशालाओंमें सूत-कताई अनिवार्य है। हाँ, अभी नियमपूर्वक उसकी शिक्षा नहीं दी जा रही है और न उसका अभ्यास कराया जाता है। अधिकांश मदरसे तो इन पिछले तीन महीनोंमें ही राष्ट्रीय बनाये गये हैं। सभी गाँवोंमें मैंने देखा कि स्त्रियाँ इस राष्ट्रीय आन्दोलनमें बड़ी दिलचस्पी ले रही हैं। हम वहाँ दो रोज ठहरे। इस बीच छः गाँवोंमें दौरा किया और हजारों आदमियोंसे मिले। अधिकांश लोग ऊपरसे नीचेतक शुद्ध हाथकती खादी पहने थे और औरतें भी बहुत बड़ी तादादमें इसी लिबासमें थीं। जो लोग खादी नहीं पहने थे उन्होंने इस बातकी शिकायत की कि हमें खादी नहीं मिल सकी। परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि वहाँ स्त्री-पुरुषोंने विदेशी कपड़े सर्वथा त्याग दिये हैं। मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि कितने ही लोग अब भी घरोंमें उन्हीं कपड़ोंको बरतते हैं। खादी तैयार करनेका काम अभी बहुत-कुछ होना बाकी है। बारडोली तहसीलमें चरखे तो बहुतेरे हैं, पर करघे बहुत ही थोड़े हैं। यहाँकी खास पैदावार कपास है। पाठकोंको यह जानकर दुःख होगा कि अबतक सारी पैदावार बाहर भेजी जाती थी। यहाँ हिन्दू और मुसलमानोंमें पूरा मेल-जोल है। सहयोगियोंके साथके सम्बन्धोंमें कटुता नहीं है। अछूत लोग बेधड़क सभाओंमें आते हैं। फिर भी मैंने यह जता दिया है कि यह स्थिति तबतक सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती जबतक राष्ट्रीय पाठशालाओंके व्यवस्थापक 'अछूत' लड़कोंको अपनी पाठशालाओंमें भरती करनेका विशेष प्रयत्न नहीं करते और गाँवके लोग अपने इन दलित भाइयोंके कल्याणके लिए खुद अपने तईं दिलचस्पी नहीं लेते। कितनी ही शराबकी दुकानोंपर खरीदार दिखते ही नहीं। मुझे जितना कुछ ब्यौरा मालूम हुआ है उसके अनुसार बिना जोरो-जब्रके ही, अथवा बहुत थोड़ी डर-धमकी दिखाकर ही इतनी आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की गई है। सिर्फ दो या तीन मिसालें ऐसी मिलती हैं कि स्वयंसेवक गाँववालोंके यहाँ गये और जबतक बेचारे उन लोगोंने तंग आकर अपने लड़के सरकारी मदरसोंसे नहीं उठा लिये तबतक वे उनके दरवाजेपर धरना देकर बैठे रहे और उपवास करते रहे। मैंने कार्यकर्त्ताओंको सूचित किया कि इस

प्रकारका दबाव भी हिंसाके ही बराबर है, क्योंकि हमें अनशन करके लोगोंको अपनी रायके अनुसार चलानेका कोई हक नहीं। हाँ, अपने हकको प्राप्त करनेके लिए तो उपवास करना ठीक हो सकता है; परन्तु दूसरोंको अपनी राय माननेपर मजबूर करनेके लिए नहीं।

एक दुकानदारने शराब न बेचनेका वचन दिया था; पर उसने निबाहा नहीं। अतएव समाजकी ओरसे उसका बहिष्कार भी किया गया था। परन्तु मैंने लोगोंको ऐसे बहिष्कार भी न करनेकी सलाह दी है; क्योंकि यहाँकी प्रजा तो बेचारी यों ही असहाय है। वर्तमान अवस्थामें तो हमारी भीतरी बुराइयोंके सुधारका एकमात्र इलाज 'प्रबल लोकमत' ही हो सकता है। सामाजिक बहिष्कार, जैसे नाई, धोबी आदि बन्द कर देना, तो निस्सन्देह एक तरहकी सजा है। वह स्वतन्त्र समाजमें ही लाभदायक हो सकती है, पर जो समाज बरसोंसे पशु-बल द्वारा शासित हो रहा है उसमें तो यह साधन दमनकारी बन जाता है।

बारडोली तहसीलके जीवनके अनेक अंगोंमें जो इतना गहरा सुधार हुआ और सो भी प्रायः बिलकुल शान्तिपूर्ण ढंगसे, उसे देखकर मुझे सचमुच बड़ा कौतूहल हुआ। एक और बड़ी अच्छी लेकिन साथ ही ताज्जुबकी बात यह है कि यहाँ इस आन्दोलन-का संचालन ऐसे बूढ़े लोग कर रहे हैं जिन्होंने पहले कभी देशके राजनीतिक जीवनमें भाग नहीं लिया था। पाठक यह सुनकर खुश होंगे और आश्चर्य करेंगे कि बारडोलीमें यह इतना बड़ा काम ऐसे स्वयंसेवकों द्वारा हुआ है जिन्होंने उसके लिए एक कौड़ी तक नहीं ली है। बारडोली एक ऐसी तहसील है जिसमें कंगाल लोग बहुत ही कम हैं और अधिकांश निवासियोंके जीवन-निर्वाहके साधन कम मेहनतके हैं। यहाँके सार्व-जनिक जीवनका यह स्फुरण इसलिए और भी प्रशंसनीय है कि यह यदि पूर्णतः नहीं तो मुख्यतः उन सुयोग्य और उत्साही कार्यकर्त्ताओंकी पूर्ण निःस्वार्थ सेवाका फल है जो केवल यही बात जानते हैं — करो या मरो। परन्तु इतना बड़ा कार्य सम्पन्न हो जानेपर भी, अपनी इच्छाके विपरीत, मुझे यही फैसला देना पड़ा कि एक महान् साम्राज्यकी सत्ताको ललकारनेके पहले बारडोलीको अपना स्वदेशीका कार्यक्रम पूरा कर देना चाहिए — यहाँतक कि अपनी जरूरतका कपड़ा उसे खुद ही कातकर तैयार करना चाहिए, अपने राष्ट्रीय विद्यालयोंमें अछूत लड़कोंको बिना दिक्कत भरती करना चाहिए और इतनी कड़ाईके साथ अहिंसाका पालन और शान्तिकी रक्षा करनी चाहिए कि निहत्थे और अकेले सहयोगी और अंग्रेज तथा दूसरे हाकिम अपनेको हर तरहसे सुरक्षित महसूस करने लगें। मौलाना आजाद सोबानी भी मेरी बातसे सहमत हुए और वहाँके उदार हृदय कार्यकर्त्ताओंने भी इसे स्वीकार किया। और यदि ईश्वरने चाहा तो बारडोलीके उत्साही लोग अपने वचनके अनुसार कुछ ही महीनोंमें इन शर्तोंको पूरा कर दिखायेंगे। एक वृद्ध सहयोगी सज्जनने कहा कि ज्यादासे-ज्यादा छः महीनेमें यह सब हो जायेगा। एक उत्साही नवयुवकने कहा कि "नहीं जी, एक ही महीनेमें हो सकता है"। वह अपने कथनकी गम्भीरताको जानता था। अब मैं पाठकोंको यह सूचना देते हुए बारडोली-यात्राके अपने इन सुखकर संस्मरणोंको समाप्त करता हूँ कि कितने ही सहयोगी-भाइयोंने — जिन-जिनसे मैं मिला — इस बातकी पुष्टि की है कि स्वयंसेवकोंने

इस तहसीलमें बड़ी शान्ति और उत्साहके साथ काम किया है। आइए, हम आशा करें कि यदि आवश्यकता हुई तो, इस तहसीलको सरकारसे युद्ध ठाननेका सौभाग्य प्राप्त होगा।

सभापति दासको चेतावनी

बंगालके गवर्नर लॉर्ड रोनाल्डशेने उस दिन अपने भाषणमें कांग्रेसके मनोनीत सभापति देशबन्धु दासको कुछ नसीहतें और साथ ही यह चेतावनी भी दी कि यदि अहमदाबादके कांग्रेस-अधिवेशनमें देशबन्धुने ठीक-ठीक आचरण नहीं किया तो गवर्नर साहब उनको इसका मजा चखायेंगे। यदि सभापति महाशय इस मजेको न चख सके, तो मैं जानता हूँ, इसमें उनका दोष नहीं होगा। उन्होंने अपने देशके लिए सर्वस्व अर्पित कर दिया है। वे ऐसे समयमें कांग्रेसके सभापति-जैसे ऊँचे पदपर विराजमान हो रहे हैं, जो इस देशके इतिहासमें सबसे अधिक नाजुक है। वे बंगालमें अपने अविराम प्रयत्नों द्वारा नया जीवन फूँक रहे हैं। वे मौका-बेमौका बराबर अहिंसाके सिद्धान्तका प्रचार कर रहे हैं और खुद भी उसपर आचरण कर रहे हैं। उनके इस कठिन कार्यमें हमें हर तरहसे निष्ठापूर्वक उनका साथ देना आवश्यक है। यदि हरएक प्रतिनिधि इस तैयारीसे और इस दृढ़ निश्चयके साथ आयेगा कि चाहे कैसा ही संकट क्यों न उपस्थित हो, हम लड़ाईमें विजय प्राप्त करके ही मानेंगे, तो सभापतिका काम कुछ हल्का हो जायेगा।

प्रतिनिधियोंके सम्बन्धमें

मैं आशा करता हूँ कि सभी प्रतिनिधियोंका निर्वाचन हर हालतमें कांग्रेसके संविधानके अनुसार ही हुआ होगा। इस प्रकार चुने हुए ये सज्जन अपने मतदाताओंके सच्चे प्रतिनिधि होंगे। मतदाता तो वही लोग हो सकते हैं जिनके नाम कांग्रेसके पत्रकोंमें दर्ज हैं। जहाँ किसी प्रतिनिधिको जेल जाना पड़ा हो, वहाँ उपचुनाव द्वारा उसकी जगह दूसरा प्रतिनिधि चुना जाना चाहिए। आवश्यक प्रस्तावोंको स्वीकार करते समय सभी प्रतिनिधियोंको उपस्थित रहना चाहिए। मैं आदर्श प्रतिनिधि उसीको मानता हूँ जिसका निजी और सार्वजनिक जीवन निष्कलंक हो, कांग्रेसके कार्यक्रमके सम्बन्धमें उसे अपने जिलेकी जानकारी हो, वह सूत कातनेमें इतना होशियार हो कि दूसरेको सिखा सके, वह हाथकती-बुनी खादी पहननेका आदी हो गया हो, वह अपने राष्ट्रीय ध्येयको सिद्ध करनेके लिए तथा हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई, यहूदी इन सबकी एकताको चिरस्थायी रूप देनेके लिए अहिंसाको अपना धर्म मानता हो, असहयोग कार्यक्रमकी जो-जो बातें उसपर घटित होती हों उनके अनुसार व्यवहार करता हो, उसने जेल जानेकी तैयारी कर रखी हो और यदि सारा नहीं तो अपना अधिकांश समय देशकार्यके लिए दे डाला हो। इसके अलावा यदि वह हिन्दू हो तो उसने छुआछूतका त्याग कर दिया हो और इस साल अपने जिलेके अछूतोंकी कुछ-न-कुछ सेवाएँ की हों। ३० करोड़ देशभाइयोंकी सेवाके लिए छः हजार कट्टर, सच्चे और निर्भीक तथा पूरे समय काम करनेवाले लोगोंसे इतनेकी उम्मीद रखना कुछ ज्यादा नहीं है। मैं इसी अनुपातसे

मुसलमान और सिख प्रतिनिधियोंकी संख्याकी भी आशा करता हूँ। मैं यह भी आशा करता हूँ कि प्रत्येक प्रान्तसे महिलाएँ तथा 'अछूत' प्रतिनिधि भी काफी तादादमें आयेंगे।

पण्डित जवाहरलाल नेहरूका जवाब

एक पत्र-लेखकने पण्डित जवाहरलाल नेहरूपर यह आरोप लगाया था कि उन्होंने वर्तमान शासन प्रणालीके बदले इस प्रणालीके अंग्रेज प्रणेताओं और प्रशासकोंकी निन्दा की है।[1] मैंने इस विषयपर उनसे जिज्ञासा की। उन्होंने उसका बिलकुल साफ और पूरा उत्तर भेजा है, जो नीचे दिया जा रहा है:

> आगरेके प्रान्तीय सम्मेलनमें मैं तीन मौकोंपर बोला। यह तो नहीं बता सकता कि मैंने ठीक-ठीक किन लफ्जोंका इस्तेमाल किया, लेकिन मेरा मतलब क्या था, यह मेरे दिमागमें बहुत साफ था। पहले मौकेपर तो जब प्रच्छन्न रूपसे हिंसाकी चर्चा हुई तो मैंने उसका विरोध किया। हसरत मोहानी अध्यक्ष थे और अपने अध्यक्षीय भाषणमें उन्होंने अहिंसाके सिद्धान्तके प्रति असन्तोष प्रकट किया। कई वक्ताओंने बहुत उग्र भाषाका प्रयोग किया और उनकी बातोंसे स्पष्ट था कि वे उस दिनकी कामना कर रहे हैं जब हिंसाको खुलकर खेलनेका मौका मिलेगा। ये सब बातें कराची प्रस्तावके सन्दर्भमें कही गईं। मैंने संघर्षके अहिंसात्मक स्वरूपपर जोर दिया और कहा कि स्वदेशी ही हमारी एकमात्र आशा है।
>
> दूसरे दिन मैंने स्वदेशीपर प्रस्ताव पेश किया। एक संशोधनका नोटिस दिया गया था जिसमें ब्रिटिश मालके बहिष्कारकी बात थी। शायद इसी मौके-पर मैंने ऐसे मुहावरों और शब्दोंका इस्तेमाल किया जिन्हें श्री गांधीसे प्रश्न पूछनेवाले व्यक्तिने गलत समझा। मेरा सम्पूर्ण तर्क यही था कि अभीतक तो सिवा स्वदेशीके, स्वतन्त्रता पानेका दूसरा कोई रास्ता हमें कोई दिखा नहीं सका है। मैं हिंसाके सवालपर भी बोला और उसका समाधान कर दिया। इसके बाद मैंने अन्य बहुत-सी आपत्तियोंका जवाब दिया। मैंने कहा कि भारतको अंग्रेजोंकी प्रभुतासे मुक्त करानेकी मेरी उत्कट इच्छा है, और स्पष्टतः चरखा और स्वदेशी ही इसके उपाय हैं।
>
> तीसरी बार मैं ब्रिटिश मालके बहिष्कारके सम्बन्धमें पेश किये गये संशो-धनके उत्तरमें बोला। इस संशोधनका मैंने विरोध किया, और उसपर बड़ी गरमा-गरम बहस हुई। दूसरे पक्षसे कोई बीस वक्ता बोले। संशोधनपर मत लिया गया और वह पास न हो सका।

१. देखिए "गाली किसे कहते हैं?", १७-११-१९२१।

स्पष्ट है कि कुछ अखबारोंमें मेरे भाषणकी गलत रिपोर्ट छपी है। अभी तक मैंने अपने भाषणोंकी कोई रिपोर्ट नहीं देखी है, इसलिए मुझे मालूम नहीं है कि किस अखबारमें ऐसा किया गया है। मैंने जो "अंग्रेजोंकी प्रभुता" या "अंग्रेजी हुकूमत"—इन शब्दावलियोंका प्रयोग किया, उन्हें अंग्रेज जनतापर लागू कर दिया गया है। हो सकता है कि मैंने "अंग्रेजोंको हिन्दुस्तानसे अलग करना" या ऐसे ही शब्दोंका प्रयोग किया हो, और संवाददाता इन्हीं शब्दोंको सन्दर्भसे अलग करके ले उड़े हों। सच तो यह है कि मैं "अंग्रेजोंको" स्वदेशीके बलपर निकाल बाहर करना चाहता हूँ, इस बातसे ही सुननेवालोंको यह समझ जाना चाहिए था कि मैं व्यक्ति नहीं प्रणालीकी चर्चा कर रहा था। चरखेके बलपर किसी भी अंग्रेजको यहाँसे निकालनेकी कोशिश करना मूर्खता ही होगी।

बेशक, मैं यह तो नहीं ही कह सकता कि अंग्रेजोंके रूपमें अंग्रेजोंके प्रति मेरी भावना सर्वथा अवैयक्तिक है। इस प्रणालीसे तो मुझे घृणा है ही, साथ ही, न चाहते हुए भी कभी-कभी व्यक्ति-विशेषके प्रति भी मेरे मनमें कमसे-कम कुछ देरके लिए दुर्भावना आ जाती है और फिर यही दुर्भावना सम्पूर्ण अंग्रेज जातिके प्रति दुर्भावनाका रूप धारण कर लेती है। लेकिन ऐसी भावना बराबर क्षणिक ही हुआ करती है। वास्तवमें मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि अंग्रेजोंके प्रति आम तौरपर मेरे मनमें कोई दुर्भावना नहीं है।

यह बात कुछ विचित्र-सी है कि जिन वाक्योंको लेकर आपत्ति की गई है वे ब्रिटिश मालके बहिष्कारके विरोधमें दिये गये मेरे भाषणमें आये थे। बहिष्कारका विरोध मैंने जिन बातोंके आधारपर किया उनमें एक यह थी कि यह काम असहयोगके विरुद्ध है और यह प्रेम नहीं, घृणापर आधारित है, आदि। जिन लोगोंने भी मेरी बातें सुनीं और सुननेवालोंमें से जिन लोगोंको भी उर्दू आती होगी, वे मनपर कभी ऐसी छाप ले कर जा ही नहीं सकते थे कि मैं व्यक्तियोंके रूपमें अंग्रेजोंके खिलाफ जिहादमें शामिल था।

मनुष्यको उसके कामसे अलग करके देख पाना बराबर एक कठिन बात है। बेशक, मैं ऐसा मान सकता हूँ कि अगर कोई अंग्रेज मुझे अपमानित करे तो मैं उबल पड़ूँगा और उसपर प्रहार कर दूँगा। लेकिन मैं समझता हूँ, यह मेरी कमजोरी ही होगी। मुझे अपने ऊपर पूरा नियन्त्रण नहीं है, और तनिक-सी उत्तेजनापर मैं आपा खो बैठ सकता हूँ। कभी-कभी मैं अंग्रेजोंपर बहुत नाराज हो जाता हूँ। लेकिन अंग्रेजोंके रूपमें अंग्रेजोंको भारतसे 'निकालने' की इच्छा मुझमें कभी नहीं जगी। तमाम बातोंके बावजूद मैं अंग्रेजोंका बहुत बड़ा प्रशंसक हूँ, और मैं अब भी महसूस करता हूँ कि कई बातोंमें मुझे कोई अंग्रेज एक सामान्य भारतीयकी अपेक्षा ज्यादा समझ सकता है।

यह पत्र अखबारी रिपोर्टोंपर भरोसा करनेके कुपरिणामका एक उदाहरण है। स्वर्गीय सर फीरोजशाह मेहता गलत रिपोर्ट छपनेकी आशंकासे इतने भयभीत रहते थे कि उन्होंने बिना लिखे कभी कोई भाषण दिया ही नहीं। स्वर्गीय श्री गोखले भी अक्सर अपने भाषणोंकी रिपोर्टें खुद दोहरा जानेपर आग्रह रखते थे। अगर वाग्मिताके इन विशारदोंको भी यह खतरा रहता था कि उनके भाषणोंकी गलत रिपोर्ट छाप दी जा सकती है तो उनके बारेमें तो कुछ कहना ही नहीं जो भाषण देते हैं हिन्दुस्तानीमें और जिनके दुर्भाग्यसे उन भाषणोंकी रिपोर्ट दी जाती है अंग्रेजीमें। अधिकसे-अधिक सद्भावना रखते हुए भी संवाददाता मेरे भाषणोंकी बिलकुल सही रिपोर्ट कदाचित् ही दे पाये हैं। दरअसल, सर्वोत्तम बात तो यह होगी कि जबतक भाषणोंके विवरण स्वयं वक्ताओंको न दिखा लिये जायें तबतक अखबारोंमें प्रकाशित ही न किये जायें। अगर इस सीधे-सादे नियमका पालन किया जाये तो बहुत-सी गलतफहमियाँ टाली जा सकती हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८–१२–१९२१

२२९. असल रंग

पंजाबमें लाला लाजपतराय, मलिक लालखान, श्री सन्तानम् और श्री गोपीनाथकी, असममें श्री फूकन और बारदोलोईकी, बंगालमें बाबू जितेन्द्रलाल बनर्जीकी, अजमेरमें मौलाना मोहिउद्दीन तथा अन्य लोगोंकी और लखनऊमें पण्डित हरकरणनाथ मिश्र तथा अन्य व्यक्तियोंकी गिरफ्तारियोंसे पता चलता है कि सरकार अब कुछ करनेपर आमादा है। यह पकड़-धकड़ केवल यही नहीं दिखलाती कि सरकार अब कृतसंकल्प है, बल्कि यह भी कि अब वह सचमुच असहयोग आन्दोलनको सहन नहीं करेगी। अब सवाल केवल हिंसाको दबानेका ही नहीं रह गया है, बल्कि लोगोंको सहयोग करनेके लिए विवश करनेका हो गया है। ठीक है, चाहिए भी यही था। किसी-न-किसी दिन तो सरकारको अपना असली रूप प्रकट करना ही था। युवराजका जैसा स्वागत यहाँ हो रहा है वैसा किसी भी युवराजका कहीं न हुआ होगा। और इसलिए जनताके चुनिन्दा नेताओंको रास्तेसे हटाया जा रहा है जिससे लोगोंपर सरकारका रोब गँठ जाये, वह उसके बताये ढंगसे चलें, और विभिन्न प्रान्तोंमें जहाँ-जहाँ युवराज जायें वहाँ-वहाँ उनके पहुँचनेके दिन हड़ताल न होने पाये।

भारत सरकारको, अपने वर्तमान गठनके अनुरूप, यह सब-कुछ करनेका अधिकार है। वह इस अधिकारका दावा भी करती है और उपयुक्त समयपर अपने अधिकारोंका प्रयोग भी करती है; और इसीलिए हम उसके साथ असहयोग कर रहे हैं। उसका यह हक है क्या? जनतापर अपनी इच्छा थोपना और प्रजाका उसकी इच्छाके अनुसार चलनेका अधिकार स्वीकार न करना और इसके लिए जेलका भय दिखलाना। मसला साफ है, और लॉरेंस साहबकी मूर्तिके मामलेने उसे बिलकुल साफ तौरपर प्रकट कर

दिया है। कानूनन उस मूर्तिपर लोगोंका स्वामित्व है, तो भी सरकार उसे वहाँसे हटाने नहीं देती। वह या तो हुक्मनामे निकालकर "कलमके द्वारा शासन करना चाहती है या तलवारके बलपर।" एक बार फिर लोगोंको कलम या तलवार, दोनोंमें से कोई एक चुननेके लिए कहा गया है। क्या जनता तलवारसे शासित होनेका अधिक सम्मानप्रद विकल्प चुनकर, कलमके अपमानजनक हुक्मका विकल्प अस्वीकार करेगी ?

लोगोंको असहयोगका प्रशिक्षण प्राप्त करते १५ महीने हो गये हैं। इतनेपर भी यदि वे यह न जान पाये हों कि इस समय हमें क्या करना चाहिए तो उन्हें शिकायतके लिए कोई गुंजाइश नहीं। हाँ, सबसे अच्छी बात जो वे कर सकते हैं, यह है कि वे कुछ न करें—अर्थात् वे जैसे थे वैसे ही बने रहें और अपने तमाम काम इस तरह करते रहें मानो कोई असाधारण बात हुई ही न हो। लॉर्ड किचनरके मर जानेसे इंग्लैंडने युद्धसे मुँह नहीं मोड़ लिया। उसका तो यही सिद्धान्त-वाक्य था—"जो काम जैसे चल रहा था वैसा ही चलता रहे।" उसका हिंसा-बल सुसंगठित था—इतना सुसंगठित कि वह बिना सेना-नायकके, अथवा लगातार एकके न रहनेपर दूसरा सेना-नायक जुटाकर अपना काम चला सके। क्या हमारा अहिंसा-बल इतना सुसंगठित हो गया है कि हम बिना नेताके, अर्थात् लगातार एकके बाद दूसरा नेता जुटाकर अपना युद्ध जारी रख सकें ?

लाला लाजपतरायको गिरफ्तार कर सरकारने हमारे एक बड़ेसे-बड़े मुखियाको पकड़ लिया है। उनका नाम भारतके बच्चे-बच्चेकी जबानपर है। अपने आत्मत्यागके बलपर वे अपने देशभाइयोंके हृदयमें उच्च स्थान प्राप्त कर चुके हैं। अहिंसाके प्रचारके लिए और उसके साथ ही लोकमतको संगठित करने और उसकी निर्बाध अभिव्यक्तिके लिए उन्होंने जितना परिश्रम किया है, उतना बहुत ही थोड़े लोगोंने किया है। उनकी गिरफ्तारीसे सरकारके रुखका जितना ठीक पता चलता है, उतना दूसरी किसी बातसे नहीं।

पंजाबने तुरन्त ही उनकी जगह लेनेके लिए अपना दूसरा नेता चुन लिया। उन्होंने आगा सफदरको अपना अगुवा बनाया है। पंजाबी भाइयोंको उनसे अच्छा नेता नहीं मिल सकता था। वे एक सच्चे मुसलमान और एक वीर हिन्दुस्तानी हैं। उन्होंने जितनी सेवाएँ की हैं वे सब बिना दिखावेकी हैं। मुझे इस बातमें जरा भी सन्देह नहीं है कि लोग लालाजीकी तरह ही सच्चे हृदयसे उनका साथ देंगे। पंजाबी भाई लालाजीका बड़ेसे-बड़ा सम्मान जो कर सकते हैं वह यही है कि वे यही समझ कर उनका काम बराबर आगे बढ़ाते रहें कि लालाजी हमारे साथ ही हैं। वह प्रेम जो कि अविनाशी आत्माको धारण करनेवाले इस कलेवरके कुछ दिनोंके लिए अथवा हमेशाके लिए जुदा हो जानेके बाद खतम हो जाता है, अन्धा, मूढ़ और स्वार्थी प्रेम है। सम्भव है, पंजाबी भाई हमेशा ही लालाजीकी जगहपर किसी आगा सफदरको अपनी रहनुमाईके लिए न पायें। मुमकिन है कि हमारे अनुमानसे पहले ही वे हम लोगोंसे जुदा कर दिये जायें। जिन संस्थाओंका संगठन अच्छा होता है, वहाँ नेताओंका

चुनाव केवल कार्यकी सुविधाके लिए किया जाता है, किसी असाधारण गुणके कारण नहीं। नेता क्या है? अपने बराबरीवालोंमें सबसे आगेका व्यक्ति। किसी-न-किसीको तो आगे रखना ही चाहिए। परन्तु यह कोई जरूरी नहीं कि वह जंजीरकी कमजोरसे-कमजोर कड़ीसे अधिक मजबूत हो ही। लेकिन एक बार चुनाव कर लेनेके बाद हमारे लिए उसका अनुसरण करना लाजिमी है; अन्यथा जंजीर टूट जायेगी और सब-कुछ नष्ट हो जायेगा।

हमें अपने ध्येयतक पहुँचनेके लिए अब बहुत-कुछ करना बाकी नहीं रहा है। मैं अपना यह विश्वास लोगोंके दिलमें बैठा देना चाहता हूँ। हमारा रास्ता बिलकुल साफ है। कांग्रेसके मनोनीत सभापति देशबन्धु दासने उसे बिलकुल स्पष्ट शब्दोंमें रखा है:

> **मेरा पहला और आखिरी निवेदन आपसे यही है कि आप लोग अहिंसात्मक असहयोगके आदर्शसे कभी च्युत न हों। मैं जानता हूँ कि इस धर्मका पालन करना कठिन है। मैं यह भी जानता हूँ कि कभी-कभी उत्तेजना इतनी अधिक होती है कि विचार, वाणी और कर्ममें अहिंसक बने रहना अत्यन्त कठिन हो जाता है। तथापि इस आन्दोलनकी सफलता तो इसी महान् सिद्धान्तपर अवलम्बित है।**

इस महान् सिद्धान्तको अपने जीवनमें उतारनेकी क्षमता अपने अन्दर पैदा करनेके लिए हमें उत्तेजनाकी सभी सम्भावनाओंसे अपनेको बचाना चाहिए। अतएव अब न तो जुलूसोंकी जरूरत है, न विशाल सभाओंकी। जिन लोगोंमें जागृति आ चुकी है बस उनको ही इस ढंगसे अनुशासित बना देना चाहिए कि वे उत्तेजनाके समय भी स्थिरचित्त, शान्त रह सकें और रुई धुनने, हाथसे सूत कातने, बुनने आदि रचनात्मक राष्ट्रीय कार्योंके संगठनमें लग जायें, जिससे राष्ट्रके लाखों बेकार लोगोंको रोजी मिले और देशके स्वल्प साधनोंमें वृद्धि हो। हिन्दू-मुस्लिम एकता हमारा अटल सिद्धान्त है। उसके स्थापित करने या प्रदर्शित करनेका एक ही मार्ग है और वह है राष्ट्रीय उत्थानके लिए सब लोग एक साथ मिलजुल कर काम करें अर्थात् सभी लोग अपना सारा समय अकेले खादीकी तैयारीमें ही लगायें।

ज्यों ही हम विदेशी कपड़ेका पूर्ण रूपसे बहिष्कार कर देंगे और अपने-अपने प्रान्तों और गाँवोंके लिए आवश्यक खादी वहीं तैयार करना शुरू कर देंगे, त्यों ही हम, सम्भवतः बिना सामूहिक सविनय-अवज्ञाके ही आजाद हो सकेंगे। इसलिए हमें उद्धत किस्मकी सविनय अवज्ञाको कमसे-कम उस अवस्थातक तो टालना ही चाहिए जबतक कि हम विदेशी कपड़ोंका पूर्ण रूपसे बहिष्कार करके हाथसे कती और बुनी खादी तैयार करनेके योग्य न बन जायें। हाँ, अपने आन्दोलनको आगे बढ़ाते हुए जब-जब हम सविनय अवज्ञा करनेको बाध्य हो जायें, तब-तब हमें उसका हृदयसे स्वागत करना चाहिए।

इन गिरफ्तारियों और सजाओंकी बदौलत यदि हमारा दिल बैठ गया या हम भटक गये, तो यह हमारी कमजोरी और स्वराज्य पानेकी हमारी अयोग्यताका स्पष्ट

चिह्न होगा। जो सिपाही मरनेसे डरता है या पूरी कीमत चुकानेसे जी चुराता है वह सच्चा सिपाही नहीं। सच्चे सिपाहीको तो जितना ही अधिक जूझनेका अवसर मिलता है, उतनी ही अधिक खुशीसे वह सबसे आगे बढ़ता है। सरकार अपनी जेलोंमें हमसे जो-जो काम कराये वह सब हमें करना चाहिए। हमारे लिए इस बातको समझ लेना और इसपर कायम रहना आवश्यक है। मुझे इसपर पूर्ण विश्वास हो चला है कि दलीलोंके द्वारा नहीं, बल्कि बेगुनाह लोगोंके कष्टसहनके द्वारा ही सजा देनेवाले और और सजा पानेवाले, दोनोंके दिलपर गहरा असर होता है। ऐसे कष्टसहनको देखकर एक ओर तो देश अपने आलस्य और उदासीनताको त्यागकर उठ खड़ा होगा और दूसरी ओर सरकारको भी अपनी निर्दयता त्यागनी पड़ेगी। परन्तु यह कष्टसहन उन लोगों द्वारा होना चाहिए जो बहादुरीके साथ खुशी-खुशी उसे उठायें, उन अनिच्छुक लोगों द्वारा नहीं जो कमजोर और लाचार हों। जो जेल जा चुके हैं या जानेकी तैयारीमें हैं, वे कह सकते हैं — 'बस, हमारा काम खतम हुआ।' लेकिन हम लोगोंको, जो अभी जेलोंके बाहर हैं, उनके खतम किये हुए कामके लायक अपने आपको सिद्ध करना है। यह हम किस तरह सिद्ध करें? जबतक हम उन्हें आजाद न कर दें या उनके साथ जेलोंमें शामिल न हो जायें, तबतक बराबर उनका काम जारी रखकर हम वैसा करें। जो अधिकसे-अधिक कष्टसहन करता है, वही अधिकसे-अधिक सेवा करता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८–१२–१९२१

२३०. हम क्या करें?

श्री जयकरके भाषणके परिणामस्वरूप अकोलामें सारे महाराष्ट्रका एक सम्मेलन हुआ है। श्री जयकर एक विचारक हैं, उन्हें अपने देशसे प्यार है। उनकी बातें बरबस ध्यानसे सुननी पड़ती हैं; और ध्यान देने लायक वे होती भी हैं। जो लोग अकोलामें इकट्ठे हुए वे सब उत्कट देशभक्त और देशके तपे हुए सैनिक हैं। वे देशके निर्भीकसे-निर्भीक और सर्वाधिक अनुशासनबद्ध कार्यकर्त्ताओंमें से हैं। अतः जब ये लोग किसी कार्यक्रमसे असहमत हों तब एक बार रुककर सोचना जरूरी ही हो जाता है।

श्री जयकरके भाषण और अकोला सम्मेलनने मेरे भीतर विचारोंका तूफान खड़ा कर दिया है। जो परिवर्तन सुझाये गये हैं, उन्हें समझनेमें, उनके महत्वको ग्रहण करनेमें कोई कठिनाई नहीं हो सकती। अगर अनुचित न माना जाये तो मैं तो कहूँगा कि यह एक अविश्वाससे प्रेरित कार्यक्रम है। यह इस मान्यतापर आधारित है कि स्वराज्य जल्दी नहीं मिल सकता और हमें चाहिए कि मौजूदा शासन-तन्त्रको सुधारनेके खयालसे उसका जैसा बन पड़े, वैसा उपयोग करें। अभी जिस कार्यक्रमपर अमल किया जा रहा है वह इस विश्वासपर आधारित है कि मौजूदा तन्त्र बिलकुल बेकार

है और इसके उपयोगसे हमारी प्रगतिके मार्गमें बाधा ही पड़ती है और हमारा ध्यान बँटता है।

इस राष्ट्रीय आन्दोलनका मूल आधार है हिंसासे असहयोग — चाहे वह हिंसा कलमकी हो या तलवारकी। शिक्षा और विधि-निर्माणका काम आज हिंसक हाथोंके साधन बनकर रह गये हैं। सरकारकी अदालतों, या धारासभाओं अथवा उसके स्कूलों-का उपयोग करना उसकी हिंसामें भाग लेना है। दोनों प्रक्रियाओंमें बुनियादी अन्तर है। एक कीटाणु-निरोधक है तो दूसरा कीटाणु-नाशक। वे एक-दूसरेसे सर्वथा भिन्न हैं। एकमें तो आप शरीर-तन्त्रकी अन्तर्निहित स्वच्छताका भरोसा करते हुए आश्वस्त रहते हैं कि इस शरीरमें जो भी विषैले कीटाणु प्रविष्ट हो गये हैं उनका नाश अपने-आप हो जायेगा, लेकिन दूसरेमें आप बाहरी साधनोंका सहारा लेते हैं। अर्थात् जो कीटाणु शरीरमें प्रवेश कर गये हैं उनका नाश करनेके लिए आप अधिक शक्तिशाली विषका उपयोग करते हैं। दोनों ही प्रक्रियाएँ प्रभावकारी हो सकती हैं, लेकिन दोनोंका प्रयोग एक-साथ नहीं किया जा सकता। गत वर्ष हमने निश्चित रूपसे कीटाणु-नाशक विधिको अस्वीकार कर दिया। लेकिन महाराष्ट्रका बहुमत अब फिर खुल्लमखुल्ला उसी रास्तेपर लौट आनेको कहता है।

अब हम अन्धकारमें नहीं हैं। पन्द्रह महीनोंके प्रयोगका परिणाम हमारे सामने है। अदालतों, स्कूलों और कौंसिलोंका त्याग इस कार्यक्रमका एक अभिन्न हिस्सा है। अगर हमें विश्वास है कि इस कार्यक्रमका अमुक हिस्सा अपने-आपमें वांछनीय है तो हम सिर्फ इसीलिए तो उसे छोड़ नहीं सकते कि हमें पूरी सफलता नहीं मिली। यद्यपि हम इन तीनों संस्थाओंको पूरी तरह त्याग नहीं पाये हैं, फिर भी उनकी प्रतिष्ठा तो हमने समाप्त कर ही दी है। अब न उनसे हमें कोई परेशानी होती है और न वे हमें चमत्कृत करती हैं। यह सही है कि बहुतसे माता-पिताओं, बहुतसे वकीलों और बहुतसे विधायकोंने यह पुकार अनसुनी कर दी है, लेकिन इससे सिर्फ यही प्रकट होता है कि हमें उन्हें उस ओरसे विमुख करनेके लिए और अधिक प्रयत्न करना चाहिए और यह कि अब प्रयत्नका तरीका उनके सामने दलील करना नहीं होगा, बल्कि इन संस्थाओंका त्याग करनेवालों द्वारा उनके सामने आदर्श आचरणका नमूना पेश करना होगा। मेरे लिए तो वे ही सरकार हैं। जैसे मुझे सिर्फ इस कारणसे किसी वैतनिक पदके लिए अर्जी नहीं देनी चाहिए कि इन पदोंपर काम कर रहे लोग इनका त्याग नहीं करते, उसी तरह मुझे सिर्फ इस कारणसे अवैतनिक पद भी नहीं स्वीकार करना चाहिए कि इन पदोंपर काम करनेवाले इनका परित्याग नहीं कर रहे हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि देशमें आज जो जागरण दिखाई दे रहा है उसका कारण यही है कि इन थोड़ेसे लोगोंने भी मौजूदा सरकारके प्रतीकोंसे अपने आपको अलग रखा है।

लोगोंने कार्यक्रमके इस हिस्सेके प्रति पर्याप्त उत्साह नहीं दिखाया, मगर यही बात, अगर हम करें तो, अच्छे राष्ट्रीय स्कूलों और अच्छी पंचायतें स्थापित करनेका एक जोरदार कारण है। इस अपर्याप्त उत्साहके कारण हमें अपनी अक्षमता स्वीकार करके पुनः इन संस्थाओंकी शरणमें जाकर ऐशोआरामकी जिन्दगी अपनानेकी बात नहीं सोचनी चाहिए।

लेकिन हम वाद-विवादकी मंजिल पार कर चुके हैं। जब सूरज आपके माथेपर चमक रहा हो तो उसकी गरमी देनेकी ताकत किसीको दलील देकर समझानेकी जरूरत नहीं है। और अगर कोई धूपमें भी काँप रहा हो, तो आप लाख दलील दें, उसे सूरजकी गरमीका विश्वास नहीं होगा, और न आप उस काँपते हुए व्यक्तिसे इस कारण झगड़ा ही कर सकते हैं। वह अपने-आपको गरमी पहुँचानेके लिए दूसरे उपाय —— अगर ऐसे दूसरे उपाय हों तो —— ढूँढ़ेगा ही। मेरा कहना यह है कि हर कोई अपने-अपने विश्वासके अनुसार काम करे। कांग्रेसके मंचपर अनेक विचारोंके लिए स्थान है। इसका सिद्धान्त आश्चर्यजनक रूपसे सीधा और सरल है। कोई पूर्ण सहयोगी तथा ऐसा राष्ट्रवादी भी इसमें रहकर काम कर सकता है जो इस कार्यक्रममें परिवर्तन चाहता है। संस्थाके आदेशकी दलीलको हास्यास्पद सीमातक नहीं खींच ले जाना चाहिए और बहुमतके प्रस्तावोंका गुलाम नहीं बन-बैठना चाहिए। यह तो पशु-बलको और भी घातक रूपमें पुनः प्रतिष्ठित करना होगा। और अल्पमतवालोंके अधिकारोंका खयाल रखना है तो बहुमतवालोंको उनके विचार और कार्यके प्रति सहिष्णुता बरतनी चाहिए, उसका आदर करना चाहिए। ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं देता कि राष्ट्रवादी लोग वकालत करने, अपने बच्चोंको सरकारी स्कूलोंमें भेजने और कौंसिलोंके लिए चुनाव लड़नेके बावजूद कांग्रेसमें क्यों नहीं बने रह सकते। हाँ, इतना जरूर है कि जबतक वे कांग्रेसके बहुमतसे अपना विचार स्वीकार न करवा लें तबतक कांग्रेसके नामपर काम नहीं करें। इसका ध्यान रखना बहुमतवालोंका कर्त्तव्य होगा कि अल्पमतवालोंकी बात ठीकसे सुनी जाये और अन्य तरीकोंसे भी उन्हें अपमानित नहीं किया जाये। अगर व्यक्तियोंको अपनी निर्णय-बुद्धिको बहुमतकी मर्जीपर ही छोड़ देना पड़े तो स्वराज्य बिलकुल बेमानी चीज हो जायेगा।

मैं सभी कांग्रेसी भाइयोंसे एक व्यक्तिगत अनुरोध करना चाहता हूँ। वे मेरी इस बातको सच मानें कि अगर इस कार्यक्रमके पक्षमें मत देनेवाले लोगोंने मेरे साथ हार्दिक सहयोग नहीं किया तो कलकत्तेमें प्रारम्भ हुए इस आन्दोलनके नेता और प्रणेताके रूपमें मुझे अपना मार्ग बहुत ही विघ्न-बाधाओंसे भरा लगेगा। अगर इस कार्यक्रमके समर्थक लोग अल्पमतमें हों तब भी मैं खुशी-खुशी और विश्वासपूर्वक विजयकी मंजिलकी ओर कूच कर सकूँगा। अगर दृढ़ता और धार्मिक निष्ठासे विरोध किया जाये तो यह सरकार एक जिलेके विरोधके सामने भी एक दिन नहीं ठहर सकती बशर्ते कि दूसरे उस तरहसे बीचमें न आयें जिस तरह बम्बई आ गया था।

ईमानदार लोगोंकी संख्याको देखते हुए हमारे महान् देशमें अनेक दलोंके लिए भी गुंजाइश है। जिस तरह मैं चाहूँगा कि सभी संगठन उन सम्पूर्णतावादियोंके प्रति सहिष्णुता बरतें जो सरकारसे सारे सम्भव सम्बन्ध तोड़ लेना चाहते हैं, उसी तरह मैं ऐसे किसी कार्यक्षम और अच्छे संगठनका भी स्वागत करूँगा जो सरकारी संस्थाओंका उपभोग करनेमें विश्वास रखते हैं और उनसे जितना सन्तोष उन्हें मिल सकता हो उतना प्राप्त करना चाहते हैं। कोई कारण नहीं कि जो प्रान्त जनताको अपने साथ लेकर चल सकता हो वह इन दोमें से किसी भी एक आधारपर अपना संगठन न करे।

मतलब यह कि मैं तो सच्चा कार्यक्रम और सच्चा दल चाहता हूँ। लोग उन्हीं कार्यक्रमोंपर अमल करें जिनमें उनका पूरा विश्वास हो। मानवीय संस्थाओंके प्रति वफादारीकी कुछ सुनिश्चित सीमाएँ हैं, किसी संगठनके प्रति वफादार होनेका मतलब यह नहीं है कि व्यक्ति अपने निश्चित विश्वासोंकी बलि चढ़ा दे। दल बन सकते हैं, बिगड़ सकते हैं। लेकिन अगर हमें स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है तो हमारे आन्तरिक विश्वासोंपर ऐसे अस्थायी परिवर्तनोंका कोई असर नहीं होना चाहिए।

हम एक नये जीवनके द्वारपर खड़े हैं। हो सकता है कि इस महीनेके अन्त तक हम स्वराज्यके क्षितिजको अपनी आँखोंके सामने उभरा नहीं देखें, लेकिन आगे जो-कुछ होनेवाला है उसके आह्लादकारी प्रकाशका अनुभव तो हमें स्पष्ट रूपसे होना ही चाहिए। और उसका अनुभव हम तभी कर पायेंगे जब हर कोई स्वयं अपने प्रति ईमानदार रहनेकी कोशिश करेगा। अपने साधनोंकी अव्यर्थतामें अटूट विश्वास होनेका मतलब ही स्वराज्य प्राप्त करना है। इस बार कांग्रेसमें जो मतदान हो वह यह मानकर नहीं होना चाहिए कि हम अँधेरेमें कदम रख रहे हैं या कोई प्रयोग कर रहे हैं। हमें या तो मौजूदा कार्यक्रमको जोरदार ढंगसे स्वीकार करना है या स्पष्ट रूपसे अस्वीकार कर देना है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८–१२–१९२१

२३१. दुःखद मोपला-काण्ड

मुझे मोपलाओंके दुःखद काण्डके सम्बन्धमें एक बड़ा मार्मिक पत्र मिला है। उसका एक अंश यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ :

> बम्बई नगरके दुःखद काण्डके बीच भी आपका ध्यान रेलके कालकोठरी-जैसे माल-डिब्बोंमें मोपला बन्दियोंके ठूँसे जानेके काण्डकी ओर अवश्य गया होगा। फिर भी मैं आपको अखबारकी दो कतरनें भेज रहा हूँ। इनमें सारी कहानी मौजूद है। यह काण्ड मात्र दुःखद नहीं है। यह मलाबारके अधिकारियोंकी मनोवृत्तिका परिचायक भी है। ऊपरके अधिकारियोंकी भावना ही निश्चित करती है कि नीचेके अधिकारी मानवीयता और कर्त्तव्यकी ओर कितना ध्यान किस ढंगसे दें। दूसरी प्रेस विज्ञप्तिसे हमें मद्रास सरकारकी मनोवृत्तिका पता चलता है। उसमें स्वीकार किया गया है कि मोपला कैदी अक्सर ही सील-बन्द माल डिब्बोंमें "चलते थे" और उनके स्वास्थ्यपर किसी भी तरहका बुरा प्रभाव नहीं पड़ता था। उनके कष्टोंके प्रति दिन-दिन बढ़ती उदासीनता और सभी सम्बन्धित अधिकारियोंकी पशुताने ही उनको कमसे-कम जगहमें ज्यादासे-ज्यादा कैदियोंको ठूँसते जानेके लिए प्रेरित किया। यहाँतक कि १८ फुट लम्बे, ९ फुट चौड़े और साढ़े सात फुट ऊँचे लोहेके एक ही डिब्बेमें ऊँचे-पूरे १२७

आदमियोंको ठूँस दिया गया और उसे सीलबन्द कर दिया गया। डिब्बा भी ऐसा जिसमें न कोई दरवाजा था और न खिड़की ही। १२७ आदमियोंके लिए इस लम्बाई-चौड़ाईके डिब्बेमें १६२ वर्गफुटका क्षेत्रफल था। वे उसमें बैठतक नहीं सकते थे। सभी खड़े-खड़े एक-दूसरेसे सटे हुए गये। जाहिर है, इस तरहकी असहनीय स्थिति छः घण्टेसे ज्यादा समयतक नहीं रह सकी। क्या अमानवीयताकी यह पराकाष्ठा भी इस प्रकारकी सभी कार्रवाइयोंको बन्द कर सकेगी? यदि सैनिक कार्रवाई बन्द कर दी जाये और मोपला लोगोंकी निराशाके कारण दूर कर दिये जायें, और आपको तथा आपके मित्रोंको उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रमें जानेकी अनुमति दे दी जाये तो हम आपको गारंटी दे सकते हैं कि एक ही सप्ताहमें शान्ति स्थापित हो जायेगी।

इस पत्रके साथ ही, मुझे 'सर्वेंट ऑफ इंडिया' की यह अप्रत्याशित एक कतरन भी एक दूसरे सज्जनने भेजी है:

श्री गांधीको असहयोगियोंकी शक्तिमें अपार विश्वास है। इसी विश्वासके आधारपर वह समझते हैं कि मलाबारमें बल-प्रयोग किये बिना फिर व्यवस्था कायम की जा सकती है। विचित्र बात है कि श्री गांधी वर्तमान वैमनस्यके लिए सिर्फ सरकारको ही जिम्मेदार ठहराते हैं। उनका खयाल है कि इस स्थितिके जारी रहनेका मतलब है — मोपला लोगोंका अविचारपूर्ण विनाश। यह तो सोचा भी नहीं जा सकता कि यह वैमनस्य तभी खत्म होगा जब समूची मोपला जाति नष्ट हो जायेगी, पर जो लोग श्री गांधी-जैसी सहज श्रद्धाके साथ असहयोगियोंकी इन अद्भुत शक्तियोंमें विश्वास नहीं रखते, उनको इस समस्यामें कुछ ऐसी पेचीदगियाँ दिखाई पड़ती हैं जो श्री गांधीकी समझमें नहीं आतीं। और नरम दलीय नेताओंके नाम अपनी अपीलके पीछे जो उनकी नीति है वह और भी विचित्र है। अहिंसाका उनका सिद्धान्त उनको किसी भी मामलेमें सरकारसे सीधी बात करनेसे रोकता है, और इसीलिए वह मलाबारके मामलेमें नरमदलीय नेताओंके जरिये सरकारसे बातचीत करना चाहते हैं। वह नरमदलीय नेताओंसे अपील इसलिए कर रहे हैं कि वे नेता सरकारको अन्य बातोंके साथ-साथ असहयोगियोंको उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रोंमें जानेकी अनुमति देनेके लिए भी राजी कर लें। हम पूछना चाहते हैं कि क्या इसे सहयोग नहीं कहा जायेगा? दूसरी चीज यह कि सरकारने आम तौरपर कोई प्रतिबन्ध तो लगाया नहीं है, इसलिए असहयोगी यदि चाहें तो सम्मिलित रूपसे आम लोगोंकी तरह मलाबार जा सकते हैं; और अभीतक तो वे इस उपद्रव-ग्रस्त जिलेमें शान्ति स्थापित करनेमें समर्थ हो नहीं पाये हैं। लेकिन यदि केवल श्री गांधी ही शान्ति स्थापित कर सकते हैं, तो हमारा यही विनम्र सुझाव है कि सविनय-अवज्ञा आन्दोलन शुरू करनेका समय आनेपर उनको इस निषेधाज्ञाकी ही अवज्ञा करनी चाहिए। उस स्थितिमें वे

सरकारको झुकानेके साथ-साथ इन वर्तमान अत्याचारोंको भी रोक सकेंगे। इस बीच वह कमसे-कम मलाबारके असहयोगियोंको तो यह समझा सकते हैं कि गड़बड़ी-को रोकनेका सबसे अच्छा तरीका यही है कि सरकार अपनी फौज वापस बुला ले। हमारे सुननेमें जो शिकायत आई है वह यह है कि जरूरतसे ज्यादा बल-प्रयोग करना तो दूर, सरकार पर्याप्त बल-प्रयोग भी नहीं कर रही है और इस तरह असहयोगियोंको सबक सिखानेके उद्देश्यसे ही जानबूझकर जनताके कष्ट मिटानेमें विलम्ब कर रही है।

मैंने कभी सोचातक नहीं था कि 'सर्वेंट ऑफ इंडिया' कभी मेरे दृष्टिकोणको इतने गलत रूपमें समझेगा। नरमदलीय नेताओंसे अपील करनेके पीछे कोई नीति-चातुरी नहीं थी। सहयोगका तो बिलकुल कोई प्रश्न उठता ही नहीं। और मलाबारमें शान्ति स्थापित करनेके लिए लोगोंके वहाँ जानेकी अनुमति लेनेके लिए सरकारसे सीधे बात करनेमें भी मुझे कोई संकोच नहीं; हजार बार उसकी जरूरत पड़े तो मैं उसके लिए भी तैयार हूँ। मैंने अपनी अपीलमें यही कहा है कि नरमदलीय नेता हस्तक्षेप करें और सरकारको अनुमति देनेके लिए बाध्य करें। मैं उसमें यह मानकर चला था कि नरमदलीय नेताओंको इस बातकी जानकारी अवश्य होगी कि मेरे कालीकट जानेकी बात मालूम होते ही मुझे वहाँसे वापस कर देनेकी धमकी दी गई थी और [कांग्रेसके] सचिवकी हैसियतसे मलाबारमें सहायता-कार्यके लिए जानेकी अनुमति माँगनेपर श्री च० राजगोपालाचारीको मना कर दिया गया था, और श्री याकूब हसनको उपद्रव शुरू होते ही मोपलाओंको शान्त करनेके लिए मलाबार जानेकी अनुमति नहीं दी गई थी। मैं यह माननेके लिए बिलकुल तैयार हूँ कि कई मामलोंमें असहयोगियोंका बिलकुल कोई वश नहीं चलता। अहिंसामें उनका विश्वास ही इसका कारण है। असहयोगी शान्ति स्थापित करनेवाले कार्यके लिए आवश्यक होनेपर अनुमति माँगनेमें कोई संकोच नहीं करता। वह अपने विश्वासके कारण किसी भी ऐसी परिस्थितिमें स्वेच्छासे हाथ नहीं डालता जिससे उसका अलग रहना सम्भव हो; और यदि सरकारकी सहायता-के बिना काम चल सकता हो तो वह उसे माँगने नहीं जाता।

इस अनुच्छेदके लेखकने सविनय-अवज्ञाका सुझाव बड़ी निर्दयतासे दिया है। सविनय-अवज्ञा अपनी बहादुरी दिखानेका तो साधन नहीं है। यदि सविनय-अवज्ञासे यह गड़बड़ी ठीक की जा सकती तो वह बहुत पहले शुरू कर दिया जाता। और अहिंसापूर्ण आचरणकी बात सुनिश्चित हो जानेपर इस सीधेसे मसलेको लेकर भी सार्व-जनिक रूपसे सविनय-अवज्ञा आन्दोलन शुरू किया जायेगा।

मैं इस गड़बड़ीके लिए सरकारको ही पूरी तौरपर जिम्मेदार मानता हूँ — यह "विचित्र" बात क्यों है? सरकार यदि चाहती तो खिलाफतके सवालका मसला तय करके इस गड़बड़ीको रोक सकती थी; वह असहयोगियोंको मोपलाओंके बीच जाकर अहिंसाका सन्देश सुनानेकी अनुमति देकर इस गड़बड़ीको टाल सकती थी। यदि कलक्टरने मोपलाओंकी धार्मिक भावनाका खयाल किया होता, तो यह उपद्रव खड़ा ही न होता।

म सरकारको इस बातके लिए सचमुच दोषी ठहराता हूँ कि शरारत शुरू हो जानेके बाद मोपलाओंके अत्याचारोंसे हिन्दुओंकी रक्षा करनेके बदले वह मोपलाओंको दण्ड देनेमें ही लगी रही। यदि ये अत्याचार हिन्दू परिवारोंके बदले अंग्रेज परिवारोंपर हो रहे होते, तो भी क्या सरकार इतनी ही ढिलाईके साथ काम करती? यदि ये तथाकथित विद्रोही लोग मोपला न होकर अंग्रेज होते, तो भी क्या सरकार उनके साथ इतनी ही अमानवीयता बरतती? मुझे खेदपूर्वक यही कहना पड़ता है कि सरकारने हिन्दुओंकी रक्षा करने और मोपलाओंके साथ मानवीयताका बरताव करनेके अपने दोनों ही कर्त्तव्योंके प्रति अपराधपूर्ण उपेक्षा दिखाई है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-१२-१९२१

२३२. भारतीय अर्थशास्त्र

एक मित्रने भारतीय वस्त्र-व्यवसायपर एक विवरण पुस्तिका (बुलेटिन) मुझे दी जिसे भारत सरकारके आदेशपर श्री एस० सी० काओत्रो, सी० बी० ई०ने तैयार किया था। इसमें पूर्व-कथनके रूपमें निम्नलिखित टिप्पणी दी हुई है:

> **"सरकार चाहती है कि इस विवरणिकामें प्रस्तुत विवरण या विचार स्वयं लेखकके ही माने जायें।"**

यदि ऐसा है तो सरकार इस प्रकारके प्रकाशनोंपर धन व्यर्थ खर्च करके कर-दाताओंपर और अधिक बोझ क्यों डालती है? यह जो मेरे सामने पुस्तिका है वह इस मालाकी १६वीं पुस्तिका है। क्या सरकार प्रश्नके दोनों पक्ष पेश करती है?

प्रस्तुत विवरणिकाका मंशा स्वदेशी-आन्दोलनका उत्तर देना है। इसमें विभिन्न तालिकाओं द्वारा देशमें आयात किये गये तथा निर्मित वस्त्रोंपर जिनमें हाथका बुना कपड़ा भी शामिल है, प्रकाश डाला गया है। किन्तु इससे पाठकको आन्दोलनके अध्ययनमें कोई सहायता नहीं मिलती। अध्यवसायी लेखकने वर्तमान आन्दोलन अथवा उसके क्षेत्रका अध्ययन करनेका कष्ट नहीं उठाया। भारत सरकार इस देशमें चलनेवाले इस रचनात्मक तथा सहकारी आन्दोलनको इतनी तिरस्कारपूर्ण दृष्टिसे देखती है और जनताके धनको उसके एक सद्भावनापूर्ण अध्ययन और विवेचनके बदले व्यर्थके खण्डन-मण्डनके प्रयासोंपर खर्च करती है। जिस व्यवस्थाके अन्तर्गत यह सब किया जाता है उसकी भर्त्सना इससे बढ़कर और क्या हो सकती है?

लेखकका तर्क है कि:

१. यदि आन्दोलन सफल होता है, तो इससे खादीको संरक्षण नहीं मिलेगा, उससे केवल विदेशी वस्त्रोंका निषेध ही होगा।

२. इससे केवल भारतके पूंजीपतियोंको ही लाभ होगा तथा उपभोक्ताओंको हानि होगी।

३. आयात किये जानेवाले वस्त्रोंके क्षेत्रमें कोई प्रतियोगिता नहीं है, क्योंकि वे भारतमें तैयार नहीं होते।

४. ऐसे आयातित वस्त्रोंके बहिष्कारका परिणाम यही होगा कि मूल्य बढ़ जायेंगे, पर साथमें मुनाफा उतना नहीं बढ़ेगा।

५. और चूँकि बहिष्कार, माँग तथा सम्भरण और उपभोक्ताओंके प्रतिकूल पड़ता है, इसलिए वह सफल नहीं होगा।

६. मैंने हाथकी कताईके उद्योगके जिस विनाशकी निन्दा की है वह समयकी बचतके उपकरणोंके आविष्कार-जैसे स्वाभाविक कारणोंसे हुआ है, और इसलिए यह अनिवार्य ही था।

७. कपासके उत्पादनको जो किसी समय बड़ी ही उन्नत अवस्थामें था, स्वयं ही आलस्यवश नष्ट कर देनेसे भारतीय कृषक ही इस विनाशके लिए उत्तरदायी हैं।

८. अतएव मैं कृषकोंकी सबसे अच्छी सेवा यही कर सकता हूँ कि उनसे कपासकी किस्ममें सुधार करनेके लिए कहूँ।

९. अन्तमें, लेखकका कथन है कि :

> **घर-घरमें व्यर्थके चरखे चलवानेके स्थानपर यदि वे (अर्थात् गांधी) कपासकी, विशेषकर लम्बे रेशेवाली कपासकी, सघन खेतीके प्रोत्साहनके लिए प्रचार करें तो उनका प्रभाव न केवल आज अपितु आगामी कई पीढ़ियाँ भी महसूस करेंगी।**

इसी प्रकार पाठक देखेंगे कि जिसे मैंने भारतकी आर्थिक मुक्तिके लिए सर्वोपरि आवश्यकता माना है, लेखक उसे परले सिरेकी मूर्खता समझता है। इसलिए हम दोनोंके विचार एक-दूसरेसे सर्वथा भिन्न हैं। मैंने जिसे उद्धृत किया है, भारत-सरकारके उस पूर्व-कथनके बावजूद लेखक सरकारी दृष्टिकोणको ही पेश करता है। मैंने जनताको और विशेषकर सरकारके साथ सहयोगमें विश्वास करनेवालोंको भी हर सूरतमें इस जन-आन्दोलनका साथ देनेके लिए आमंत्रित किया है। उन्हें इसके राजनीतिक परिणामोंपर ध्यान नहीं देना चाहिए, क्योंकि इसमें उनका विश्वास नहीं है; और यदि उनकी आशाओंके विपरीत चरखेकी प्रगतिसे जनताकी राजनीतिक शक्ति बढ़ती है तो निश्चय ही उन्हें दुःखी होनेकी जरूरत नहीं। खादीके विरुद्ध युद्ध छेड़नेके स्थानपर, वे उसके उपयोगको लोकप्रिय बना सकते हैं। और अपने इस बिलकुल ही निर्मूल सन्देहका निवारण कर सकते हैं कि इसका मंशा भारतीय कृषकोंको हानि पहुँचाकर विदेशी कारखानेदारोंको लाभ पहुँचाना है। मेरा निमन्त्रण सदैव सभीके लिए प्रस्तुत है। मेरी भविष्यवाणी है कि राष्ट्रीय कार्यक्रमकी अन्य बातोंमें चाहे जो फेर-बदल हो जाये, पर स्वदेशी अपने वर्तमान रूपमें सदा इसी तरह बनी रहेगी और यदि भारतसे दरिद्रताको निर्वासित करना है तो इसे बनी ही रहना चाहिए।

यद्यपि मैं अर्थशास्त्रका पण्डित नहीं, एक सामान्य व्यक्ति ही हूँ फिर भी मैं कह सकता हूँ कि अर्थशास्त्रकी पुस्तकों द्वारा निर्धारित ये तथाकथित नियम भी मीडो तथा पारसियोंके नियमोंके समान अपरिवर्तनशील नहीं हैं और न सार्वभौमिक ही

हैं। इंग्लैंडका आर्थिक गठन जर्मनीसे भिन्न है। जर्मनीने अपने यहाँके व्यवसायियोंको चुकन्दरसे चीनी बनानेका उद्योग खूब बढ़ानेके लिए सहायता देकर अपने-आपको समृद्ध बनाया है। इंग्लैंडने विदेशी बाजारोंका शोषण करके समृद्धि प्राप्त की है। एक छोटेसे घने बसे क्षेत्रके लिए जो सम्भव था वही एक १९०० मील लम्बे तथा १५०० मील चौड़े क्षेत्रके लिए सम्भव नहीं। हर देशका अर्थशास्त्र उसकी जलवायु, भूतत्त्वीय दशा तथा जनताके मानसिक गठन द्वारा निर्धारित होता है। भारतीय परिस्थितियाँ इंग्लैंडसे सभी बातोंमें भिन्न हैं। इंग्लैंडके लिए जो लाभकर है, वही भारतके लिए अनेक अवस्थाओंमें विष है। गोमांसका शोरबा इंग्लैंडकी जलवायुमें लाभकारी हो सकता है, किन्तु धर्म-प्रवण भारतकी उष्ण जलवायुके लिए तो वह विष है। ब्रिटिश द्वीपके उत्तरमें व्हिस्की-जैसी तेज शराब एक आवश्यकता हो सकती है किन्तु भारतीयोंको तो वह समाजमें उठने-बैठने अथवा काम-धन्धेके लिए सर्वथा अनुपयुक्त बना देती है। फरके कोट स्काटलैंडमें अपरिहार्य हैं, किन्तु भारतकी जलवायुमें तो वे एकदम असह्य ही होंगे। उस देशके लिए जो औद्योगिक बन गया है, जिसकी जनसंख्या नगरोंमें निवास कर सकती है और करती है, जिसकी जनता दूसरे देशोंको लूटना बुरा नहीं समझती और इसलिए अपने कृत्रिम व्यापारके सुरक्षार्थ विशाल नौ सेना रखे हुए है, ऐसे ही देशके लिए निर्बाध व्यापार आर्थिक दृष्टिसे लाभकारी हो सकता है (यद्यपि जैसा कि पाठकोंको ज्ञात है इसकी नैतिकतापर मुझे आपत्ति है)। मुक्त व्यापार भारतके लिए तो अभिशाप ही सिद्ध हुआ है। उसने भारतकी पराधीनता कायम रखी है।

अब श्री काओब्रोकी स्थापनाओंके विषयमें :

१. आन्दोलनका मंशा ऐच्छिक रूपसे विदेशी व्यापारका निषेध करना ही है।

२. किन्तु आन्दोलनकी योजना इस प्रकार बनाई गई है कि इससे न तो पूँजीपतियोंको ही अनुचित लाभ प्राप्त हो सकेगा और न उपभोक्ताओंको ही हानि उठानी पड़ेगी। संक्रमणकी एक बहुत छोटी-सी अवधिमें ही देशमें तैयार होनेवाली वस्तुओंके मूल्योंमें तदनुरूप वृद्धि हो सकती है। किन्तु यह वृद्धि अल्पकालिक ही होगी क्योंकि अधिकांश उपभोक्ता अपनी आवश्यकताका वस्त्र स्वयं तैयार करने लगेंगे। जिस प्रकारसे घरोंमें तैयार होनेवाला भोजन महँगा नहीं होता और उसका स्थान होटलका भोजन नहीं ले सकता, उसी प्रकारसे घरोंमें तैयार किया जानेवाला यह सूत तथा वस्त्र मँहगा नहीं पड़ सकता। २५ करोड़से भी अधिक लोग अपने हाथसे सूत कातनेका कार्य कर रहे होंगे और इस प्रकार काते गये इस सूतसे पास-पड़ौसमें ही वस्त्र बुनवा लिया जायेगा। यह जनसंख्या कृषिपर निर्भर रहती है तथा वर्षमें कमसे-कम चार मासतक उसके पास काम नहीं रहता।

यदि वे इस खाली अवधिमें सूत कातें तथा उससे वस्त्र बुनवाकर पहनें तो मिलका वस्त्र उनकी इस खादीकी प्रतियोगितामें टिक ही नहीं सकता। इस प्रकार निर्मित वस्त्र उनके लिए सबसे सस्ता पड़ेगा। यदि शेष जनसंख्या इस कार्यक्रममें भाग नहीं लेती, तो भी इन २५ करोड़ लोगों द्वारा किये गये अतिरिक्त उत्पादनमें से ही उनकी आवश्यकताओंकी पूर्ति सरलतासे की जा सकेगी।

३. यह सही है कि भारतीय मिलोंके उत्पादनसे प्रतियोगिता करनेवाले आयातकी तुलनामें स्पर्द्धारहित आयातकी मात्रा कहीं अधिक है। मैंने जो योजना की है उसमें यह प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि उसमें अन्य देशोंके विरुद्ध व्यापारिक युद्ध छेड़नेका इतना विचार नहीं है जितना कि राष्ट्रके फालतू समयका उपयोग करके और इस प्रकार इस स्वाभाविक प्रक्रिया द्वारा अपनी बढ़ती हुई दरिद्रतासे मुक्ति पानेमें सहयोग लेना है।

४. मैं यह पहले ही सिद्ध कर चुका हूँ कि इस बहिष्कारके फलस्वरूप अन्तमें वस्त्रोंके मूल्यमें वृद्धि नहीं होगी।

५. प्रस्तावित बहिष्कार माँग और सम्भरणके नियमके विरुद्ध नहीं है क्योंकि यह सम्भरणके लिए पर्याप्त उत्पादन करके उस नियमको लागू करनेकी आवश्यकता ही नहीं रहने देता। आन्दोलन तो उन व्यक्तियोंकी, जिन्होंने बड़े महीन किस्मके वस्त्रोंको अपना लिया है तथा जो विभिन्न रंगों तथा डिजाइनोंके तड़क-भड़कदार वस्त्रोंकी चकाचौंधमें फँस गये हैं, रुचिमें परिवर्तन लानेकी अपेक्षा रखता है।

६. मैंने इन्हीं पृष्ठोंमें दर्शाया है कि ईस्ट इंडिया कम्पनीके एजेंटों द्वारा किस प्रकार अत्यन्त ही अमानुषिक ढंगसे हाथसे सूत कातनेकी कलाको विनष्ट करनेकी रूपरेखा बनाई तथा क्रियान्वित की गई थी। यदि इसके विनाशके लिए एक व्यवस्थित ढंगसे यह कृत्रिम और अमानुषिक तरीका न अपनाया जाता तो इस राष्ट्रीय कला और उद्योगको नष्ट नहीं किया जा सकता था, फिर चाहे जितने और जिस भी प्रकारके नये-नये उपकरण प्रयुक्त होने लगते। वे इस उद्योगको पदच्युत नहीं कर सकते थे।

७. मैं कपासके उत्पादनकी अवनतिके लिए भारतीय कृषकको उत्तरदायी ठहरानेमें सर्वथा असमर्थ हूँ। जब हाथकी कताईको ही विनष्ट कर दिया गया तो कपासके उत्पादनकी कोई प्रेरणा ही नहीं रह गई। सरकारने कभी भी कृषकोंकी चिन्ता नहीं की।

८. मुझे यह सोचकर गर्वका अनुभव होता है कि मेरे कार्योंने कृषकोंका ध्यान कपासके सुधारकी ओर खींचा है। राष्ट्रकी कला-प्रियताका यह आग्रह रहेगा ही कि कपाससे महीन किस्मके बढ़िया वस्त्र तैयार किये जायें, जिसके लिए लम्बे रेशेकी कपास आवश्यक है। केवल कपासका उत्पादन ही भारतकी निर्धनताकी समस्याका समाधान नहीं कर सकता; इसलिए कि इसके बाद भी लाचारीके कारण फालतू समय पड़ा रहनेकी समस्या ज्योंकी-त्यों बनी रहेगी।

९. इसीलिए मेरा दावा है कि केवल चरखा ही एक ऐसा साधन है जो आर्थिक विपन्नताकी समस्याको सबसे अधिक स्वाभाविक, सरल, कमखर्च तथा कारगर ढंगसे हल करनेमें समर्थ हो सकता है। अतएव चरखा अनुपयोगी नहीं है जैसा कि लेखकने अज्ञानतावश सुझाया है बल्कि वह तो प्रत्येक घरके लिए एक उपयोगी तथा अत्यन्त ही अपरिहार्य वस्तु है। यह राष्ट्रकी समृद्धिका और इस तरह उसकी स्वतन्त्रताका प्रतीक है। यह व्यापारिक युद्धका नहीं अपितु व्यापारिक शान्तिका प्रतीक है। यह संसारके अन्य राष्ट्रोंके प्रति दुर्भावनाका नहीं अपितु सद्भावना तथा आत्म-निर्भर-

ताका सन्देश देता है। इसे संसारकी शान्तिको खतरा पैदा करनेवाली तथा उसके साधनोंका शोषण करनेवाली नौ-सेनाके संरक्षणकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी; अपितु इसे करोड़ों लोगोंके सच्चे संकल्पकी आवश्यकता है कि वे जिस प्रकार अपने घरोंमें अपना भोजन स्वयं तैयार करते हैं उसी प्रकारसे अपना सूत कातेंगे। हो सकता है कि भावी पीढ़ियाँ मुझे अनेक भूल-चूकोंका दोषी ठहरायें, पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे चरखेके पुनरुद्धारका सुझाव देनेके लिए मुझे आशीष देंगी। इस बाजीपर मैं अपना सब-कुछ लगा सकता हूँ। इसलिए कि चरखा अपनी गतिके साथ शान्ति, सद्भावना और प्रेमके तार कातता चलता है। और साथ ही जिस प्रकार चरखेके लोपका फल भारतकी गुलामी हुआ है, उसी प्रकार इसके स्वैच्छिक पुनरुद्धारका फल होगा भारतका स्वतन्त्र होना।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८–१२–१९२१

२३३. पत्र-लेखकोंसे

आर० वी० बाहुलेकर: १. कृपया गतांकमें पत्र-लेखकोंको दिये गये उत्तरोंको पढ़िए। दया और घृणा उस व्यक्तिके लिए समान ही हैं जिसने पूर्णता प्राप्त कर ली हो। उसके समक्ष हत्याका कोई कारण नहीं रह जायेगा। मेरे जैसे अपूर्ण व्यक्तिके लिए प्रेम और घृणा दो भिन्न-भिन्न तथा परस्पर-विरोधी अनुभूतियाँ हैं; और अपूर्ण व्यक्तियोंके सम्बन्धमें 'गीता' के उपदेशको लागू करनेपर मुझे यह विश्वास करना बड़ा कठिन जान पड़ता है कि हम क्रोध किये बिना भी हत्या कर सकते हैं। मेरी विनम्र सम्मतिमें अपूर्ण व्यक्तियोंपर इसका प्रयोग करना वेदान्तके साथ व्यभिचार करना है। ऐसा आचरण तो पूर्ण व्यक्तियोंके लिए ही सम्भव है।

२. मैंने त्रावणकोरके सुसंस्कृत "अछूतों"को परामर्श दिया है कि वे सामूहिक रूपसे नहीं, मन्दिरोंमें केवल अपने ही लिए प्रवेशाधिकारकी माँग कर सकते हैं, बशर्ते कि वे संयमसे काम लें तथा न्यायालयोंकी सहायता लिये बिना प्रबन्धकर्त्ताओंके अपमानजनक व्यवहारको सहन कर सकें। जबतक अस्पृश्यताकी यह बुराई देशमें मौजूद है, तबतक "अछूतों"को मेरी यही सलाह है कि वे मन्दिरोंमें अपने प्रवेशाधिकारकी आजमाइश न करें। मैंने किसी भी दशामें धार्मिक स्थलोंमें प्रवेशका परामर्श नहीं दिया है। सिद्धान्ततः मेरा यह मत है कि हिन्दू मन्दिरोंके संरक्षकोंको अछूतोंके लिए भी उन भागोंके कपाट खोल देने चाहिए जो अन्य वर्गोंके लोगोंके लिए खुले हैं।

एस० गोविन्द स्वामी अय्यर: आपकी आस्था असहयोगमें है, तो विद्यार्थियोंकी सैनिक टुकड़ीमें आप सम्मिलित नहीं हो सकते।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८–१२–१९२१

२३४. संयुक्त प्रान्तमें स्वदेशी आन्दोलन

संयुक्त प्रान्तमें स्वदेशी आन्दोलनकी प्रगतिसे, जिसके सम्बन्धमें संयुक्त प्रान्तकी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीने एक रिपोर्ट[1] तैयार की है, भारतके अन्य प्रान्त संगठन-कार्यकी कई दिशाओंमें मिली सफलताओंके बारेमें और सामने आनेवाली कठिनाइयोंके बारेमें भी कई बातें सीख सकते हैं। इस कार्यपर निम्नलिखित शीर्षकोंके अन्तर्गत विचार किया गया था: (१) चरखोंका वितरण; (२) एक खादी-भण्डारकी व्यवस्था करना; (३) जुलाहोंको हाथका कता सूत देना और उन्हें केवल इसी तरहके सूतसे कपड़ा बुननेके लिए प्रेरित करना; और (४) बहिष्कार आन्दोलनका प्रचार-प्रसार करना।

संयुक्त प्रान्तकी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीको स्वदेशीके कार्यकी उसकी प्रगतिपर बधाई दी जानी चाहिए। परन्तु, मुझे आशा है कि जबतक वहाँ सारी खादी हाथके कते सूतसे नहीं बनने लगेगी, तबतक वह चैनसे नहीं बैठेगी। भारतकी दरिद्रताको दूर करनेका गुर हाथकी कताईका विकास ही है। हाथके कते सूतकी किस्मको सुधारने और सुस्थिर बनानेके लिए विशेषज्ञोंकी आवश्यकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८–१२–१९२१

२३५. घृणा नहीं प्रेम

साबरमती

८ दिसम्बर, १९२१

इलाहाबादसे तार प्राप्त हुआ है कि पण्डित मोतीलाल नेहरू, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, पण्डित श्यामलाल नेहरू तथा 'इंडिपेंडेंट'के सम्पादक जॉर्ज जोजेफ महोदय गिरफ्तार कर लिये गये हैं। तार गत रात्रि ११ बजे प्राप्त हुआ था। इससे निःसन्देह मुझे बड़ी ही प्रसन्नता हुई। मैंने इसके लिए ईश्वरको धन्यवाद दिया।

मुझे पण्डितजीकी गिरफ्तारीकी आशा नहीं थी। अपनी चर्चाओंमें मैं पण्डितजीसे कहा करता था कि उन्हें यदि सरकार गिरफ्तार करेगी भी तो सबसे बादमें। सर हरकोर्ट बटलर उनपर हाथ डालनेका साहस न करेंगे। यदि उन्हें गिरफ्तार किया गया तो उनके मित्र महमूदाबादके राजा साहब अपने पदपर रहना स्वीकार न करेंगे। सर हरकोर्ट बटलरने जिस निश्चित भावसे यह कदम उठाया है, उसपर मुझे हैरानी

१. संक्षिप्त रिपोर्टका आरम्भिक अनुच्छेद ही यहाँ दिया गया है।

होती है। पण्डितजी अत्यन्त ही विषम परिस्थितियोंमें भी कार्य करते रहे हैं। उन्हें अपने पुराने शत्रु दमेसे भी जूझते रहना पड़ा है। मैं जानता हूँ कि उन्होंने कभी भी अपने धनीमानी मुवक्किलोंके लिए इतना परिश्रम नहीं किया, और न उन्होंने कभी आपद्ग्रस्त पंजाबके लिए ही इतनी लगनसे काम किया था जितना कि वे इस निर्धन भारतके लिए करते रहे हैं। मैंने उनसे आराम करनेका अनुरोध किया था; किन्तु उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया। मुझे इस विचारसे प्रसन्नता ही होती है कि अब वे शरीरको दिन-दिन जर्जर बनानेवाले कठोर परिश्रमसे छुट्टी पा जायेंगे। पर मुझे और भी अधिक प्रसन्नता यह सोचकर हुई है कि बम्बईके हमारे अपराधके कारण मैं समझ रहा था कि जो चीज इस वर्षके खतम होनेसे पहले नहीं हो पायेगी, वही अब देशके सर्वोत्तम और बड़ेसे-बड़े नेताओंके निरपराध कष्ट-सहनके कारण अभी इसी समय पूरी होने जा रही है। सर्वथा निरपराध व्यक्तियोंकी ये गिरफ्तारियाँ ही सच्चा स्वराज्य है। अब अली-बन्धु तथा उनके साथियोंका जेलमें रहना कोई शर्मकी बात नहीं। भारत उनके बलिदानके प्रति सदैव सचेत रहा है।

किन्तु मेरी प्रसन्नता, जिसमें मुझे आशा है कि और भी हजारों लोग साथ देंगे, तभी कायम रह सकेगी जब हमारे नेताओंको चुन-चुनकर जेल भेज दिये जाने-पर भी जनता पूर्णतः शान्तिपूर्ण बनी रहे। "गिरफ्तारियोंके बावजूद यदि हम पूरी तरह अहिंसक बने रहे तो विजय बिलकुल निश्चित है। पर यदि हम सभी लोगोंको नियन्त्रणमें रखकर भी शान्ति बनाये रखनेमें असफल हुए तो पराजय निश्चित है।" हम किसीकी जान लिये बिना जान देनेके लिए तैयार हैं। क्रोध अथवा दुःख अनुभव किये बिना जेल जानेका हमने निश्चय किया है। हमने स्वयं ही जो बन्दिश अपने ऊपर लगाई है, उसे हमें तोड़ना नहीं चाहिए।

बल्कि इसके विपरीत हमारी अहिंसा तो हमें अपने शत्रुओंसे भी प्रेम करना सिखाती है। हम अहिंसात्मक असहयोग द्वारा अंग्रेज प्रशासकों तथा उनके समर्थकोंके क्रोधपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं। हमें उनसे प्रेम करना चाहिए तथा ईश्वरसे यह प्रार्थना कि वह उनको इतनी सद्बुद्धि दे कि वे भी अपनी उन भूलोंको समझ सकें जिनको हम भूलें मानते हैं। यह प्रार्थना सबलकी होनी चाहिए, निर्बलकी नहीं। हमें सशक्त होकर अपने ईश्वरके प्रति विनम्र होना चाहिए।

अपनी इस परीक्षा तथा विजयकी घड़ीमें मैं अपनी आस्था फिर व्यक्त कर देना चाहता हूँ कि मैं अपने शत्रुओंको भी प्रेम करनेमें विश्वास करता हूँ। मेरा विश्वास है कि केवल अहिंसा ही भारतके हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई और यहूदियोंके लिए एकमात्र उपाय है। मेरा विश्वास है कि कष्ट-सहनमें कठोरतम हृदयोंको भी पिघला देनेकी शक्ति है। युद्धका प्रहार प्रथम तीन, अर्थात् हिन्दू, मुसलमान और सिखोंको ही झेलना चाहिए। अन्तिम तीन — पारसी, ईसाई और यहूदी — तो प्रथम तीनके सम्मिलित बलसे भयभीत हैं। हमें अपने सत्यनिष्ठ आचरणसे स्पष्ट कर देना चाहिए कि वे हमारे ही अपने बन्धु हैं। हमें अपने व्यवहारसे प्रत्येक अंग्रेजको यह दिखा देना चाहिए कि वह भारतके किसी भी कोनेमें उतना ही निरापद है जितना कि मशीनगनके पीछे वह अपने-आपको अनुभव करता है।

इस्लाम, हिन्दू, सिख, जरतुश्त, तथा यहूदी — प्रत्येक धर्मकी वास्तवमें यह परीक्षा है। हम ईश्वरपर तथा उसकी सत्य-प्रियतापर विश्वास रखते हैं या नहीं रखते। भलेसे-भले मुसलमानोंके सम्पर्कमें आकर मैंने यही सीखा है कि इस्लाम तलवारके बलपर नहीं अपितु उसके फकीरों और सन्तोंके भक्तिपूर्ण प्रेमके बलपर फैला है। इस्लाममें तलवारके प्रयोगकी आज्ञा है, किन्तु इसकी शर्तें इतनी कठोर हैं कि उनका पालन प्रत्येकके वशकी बात नहीं। ऐसा दोष-रहित सेनापति है कहाँ जो जिहादका आदेश दे सके? कहाँ है वह कष्ट-सहन, प्रेम और पवित्रता, जो तलवारके प्रयोगकी एक अनिवार्य शर्त है? हिन्दू भी अपने धर्मके इसी प्रकारके प्रतिबन्धोंसे कमसे-कम इतने तो बँधे ही हैं जितने कि भारतीय मुसलमान। सिखोंका अपना ही हालका गौरवमय इतिहास उनको बल-प्रयोगके विरुद्ध आगाह करता है। हम इतने अपूर्ण, इतने दोष-पूर्ण तथा इतने स्वार्थी हैं कि, शौकतअलीके कथनानुसार, ईश्वरके काममें भी सशस्त्र युद्ध करनेको तैयार रहते हैं। क्या सब प्रकारसे दोषरहित भारतको कभी तलवार उठानेकी आवश्यकता पड़ेगी? गत वर्ष कलकत्तामें हमने दोषरहित बननेकी, आत्म-शुद्धीकरणकी इसी प्रक्रियाका सूत्रपात किया था।

तब हम क्या करें? निश्चित रूपसे हम अहिंसावादी बने रहें तथा अपने अन्दर इतनी सामर्थ्य रखें कि सरकार जितने भी व्यक्तियोंको गिरफ्तार करना चाहे उतने ही व्यक्तियोंको हम स्वेच्छापूर्वक प्रस्तुत करते जायें। हमारा कार्य घड़ीके काँटेके सदृश्य नियमिततासे चलता रहे। प्रत्येक प्रान्त अपने यहाँके उत्तराधिकारी नेताओंका चुनाव स्वयं करे। लालाजीने सभी आवश्यक प्रबन्ध करके एक शानदार उदाहरण प्रस्तुत किया है। प्रत्येक प्रान्तमें कांग्रेसके अध्यक्ष तथा मन्त्रीको आपत्कालीन अधिकार दिये जाने चाहिए। कार्यकारिणी-समिति यथासम्भव छोटीसे-छोटी हो। प्रत्येक कांग्रेसीको स्वयंसेवक बनना चाहिए।

हमें गिरफ्तारियोंसे बचना नहीं चाहिए, पर अनावश्यक ढंगसे उसका अवसर भी नहीं पैदा करना चाहिए।

जबतक हम अपनी आवश्यकतानुरूप पूर्णरूपेण हाथकी कती खादीका उत्पादन करनेमें पूरी तौरपर संगठित न हो जायें तथा विदेशी वस्त्रोंका पूर्ण बहिष्कार न कर दें, हमें स्वदेशी-आन्दोलनमें पूरी शक्तिसे जुटे रहना चाहिए।

एक-एक करके हमारे सभी नेताओंके गिरफ्तार हो जानेपर भी, हमें हर कीमतपर कांग्रेसका अधिवेशन करना चाहिए, जबतक कि सरकार ही इसे बलात् भंग न कर दे। और यदि हम हतोत्साहित हुए बिना और उत्तेजित होकर हिंसाको अपनाये बिना अपना राष्ट्रीय कार्य जारी रखनेमें समर्थ रहे, तो हम निश्चय ही स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे। इसलिए कि संसारकी कोई भी शक्ति शान्तिपूर्ण, दृढ़प्रतिज्ञ तथा ईश्वर-भक्त लोगोंको आगे बढ़नेसे नहीं रोक सकती।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८–१२–१९२१

२३६. अन्त्यजोंकी पुकार

दो अन्त्यज भाई लिखते हैं:[1]

इसमें कुछ हदतक अज्ञान और अज्ञानसे उत्पन्न रोष है तथापि पत्रका उतना हिस्सा छोड़ दें तो उनकी बात विचारणीय है। अन्त्यजोंके सम्बन्धमें प्रस्ताव पास करके, उनकी समस्याओंकी चर्चा करके हमने उनमें आशाका संचार किया है। ऐसा करनेकी जरूरत भी थी। उनमें आशाका संचार अवश्य होना चाहिए था और अगर हम कहें कि वह हुआ भी है, तो इतना ही उत्तर अन्त्यज भाइयोंके सन्तोषके लिए पर्याप्त होना चाहिए। दूसरा जवाब यह है कि वे सारा बोझ मेरे कन्धोंपर डालते हैं। उनके कथनमें जो मार्मिक दंश है, उसे मैं समझ सकता हूँ। मुझपर यह आरोप लगाया जाता है कि मैं स्वयं थोड़ा बहुत करके सन्तोष मान लेता हूँ और दूसरे मुझे धोखा देते हैं और मैं धोखेमें आ जाता हूँ।

अस्पृश्यता एक वृत्ति है, वस्तु नहीं। इसलिए लोगोंके मनसे उसे निकालना, विद्यार्थियोंको [सरकारी] स्कूलोंसे निकालने-जैसी बात नहीं है। उसके सम्बन्धमें स्कूलों-जैसा आन्दोलन नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार शान्ति [अर्थात् अहिंसा] का सिद्धान्त स्वीकार करनेके लिए हृदय-परिवर्तनकी आवश्यकता है, उसी प्रकार इसमें भी हृदय-परिवर्तनकी आवश्यकता है। इसलिए अस्पृश्यता-निवारणका आन्दोलन भी शान्ति या अहिंसाके प्रसारके आन्दोलनकी तरह ही चलाया जा सकता है। जिस तरह शान्तिका माप अपवादरूपसे होनेवाली अशान्तिसे निकाला जा सकता है उसी तरह अस्पृश्यता-का भी निकाला जा सकता है। इसपर गणित-शास्त्रका नियम लागू नहीं किया जा सकता। आज इतने हिन्दुओंने इतने अन्त्यजोंका स्पर्श किया तो सब हिन्दुओंको सब अन्त्यजोंका स्पर्श करनेमें कितना समय लेगा? इस तरह इसका हिसाब नहीं निकाला जा सकता। लेकिन समय आनेपर उसका पता चल जाता है। इस बातपर सबसे पहले सिद्धान्तरूपमें गुजरात विद्यापीठमें चर्चा हुई थी। इस चर्चाके परिणाम-स्वरूप विद्यापीठने अपने अस्तित्वको जोखिममें डालकर भी अन्त्यजोंको स्कूलमें जगह देनेके सिद्धान्तको स्वीकार किया और उसी कारण त्याग-पत्र देनेवाले कुछेक सदस्योंको विद्यापीठसे चले जाने दिया। आज दक्षिणामूर्ति-भवन जैसी महान् संस्थाका अस्तित्व खतरेमें पड़ गया है, उसका मूल कारण भी यही है। जो शिक्षक इस संस्थाके प्राण हैं वे वहाँ केवल इस सिद्धान्तको स्वीकार करवानेकी खातिर ही जूझ रहे हैं। इन दोनों परिणामोंके यशका मैं भागी नहीं बन सकता। विद्यापीठके सदस्य अगर विरोध करते तो मुझे पराजय स्वीकार करनी पड़ती। लेकिन वे लोग स्वतन्त्र रूपसे सिद्धान्तको माननेवाले थे। दक्षिणामूर्ति भवनमें जो धर्मयुद्ध चल रहा है उसमें तो व्यक्तिके रूपमें भी मेरा कोई हाथ नहीं है। इस सिद्धान्तकी खातिर ही तिलक स्वराज्य कोषमें कुछ

१. यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है।

लोग चन्दा देते-देते रुक गये, लेकिन व्यवस्थापकोंने इसकी कोई परवाह नहीं की। गुजरात तथा अन्य स्थानोंपर हुई सैकड़ों सभाओंमें अन्त्यजोंने बिना किसी रोक-टोकके भाग लिया है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने अन्त्यजोंके लिए अलग-अलग स्थानोंपर लगभग ५०,००० रुपयेकी रकम मंजूर की है। प्रान्तोंने जो पैसा खर्च किया है, सो अलग है। इस तरह असहयोगी चारों ओर निष्पक्ष होकर काम कर रहे हैं। प्रत्येक प्रान्तमें उत्साही और चारित्र्यवान युवक शुद्ध अन्तःकरणसे अन्त्यजोंकी सेवामें सर्वार्पण कर रहे हैं। यह पहला अवसर है कि अन्त्यज भाइयोंके माँग न करनेपर भी उन्हें प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्रसे प्रतिनिधि चुना गया है।

इतना तो उपर्युक्त अन्त्यज भाइयों और उन-जैसे अन्य असन्तुष्ट भाइयोंके सन्तोषकी खातिर हुआ। लेकिन यह बताते समय कि अस्पृश्यता-निवारणका यह आन्दोलन आगे बढ़ रहा है हमें इस बातको भी स्वीकार करना होगा कि उनकी फरियादमें सचाई है। अनेक लोग अपने दोषोंको छिपानेकी खातिर स्पर्श करनेका ढोंग करते हैं, लेकिन नितान्त निर्मल हृदयसे नहीं। इस तरह किये गये स्पर्शका फल कड़वा होगा। अस्पृश्यता अधर्म है, इसलिए यह दोष जब दिलसे, लोगोंके हृदयसे निर्मूल होगा तभी इसका मधुर फल प्राप्त होगा। यह कोई राजनीतिकी चीज नहीं है कि जिसमें दूसरोंको धोखा देकर भी काम चलाया जा सकता है। यह अन्त्यजोंको सन्तोष देने अथवा घूस देनेकी प्रवृत्ति नहीं है। यह तो केवल आत्माको सन्तुष्ट करनेकी बात है। और उसके सम्बन्धमें हमारी कल्पना भी यही है कि जबतक हिन्दू समाज इस पाप-को निकाल बाहर नहीं फेंकेगा तबतक यह पाप अदृश्य रूपसे हमारे आड़े आता रहेगा और हमें स्वराज्य प्राप्त नहीं करने देगा। कर्मकी गति गहन है। कर्मके विधानमें अप-वाद नहीं है। अपने अच्छे-बुरे कर्मोंका, पाप-पुण्य आदिका फल हमें प्रकट या अप्रकट रूपसे मिलता ही रहता है।

मैं यह स्पष्ट रूपसे मानता हूँ कि हम जबतक इस मैलको दिलसे निकाल बाहर नहीं फेंकेंगे, शान्तिके [अहिंसाके] मार्गको नहीं अपनायेंगे, हिन्दू-मुसलमान सच्चे मनसे एक नहीं हो जायेंगे तबतक हम स्वाधीन नहीं होंगे। इन तीनों वस्तुओंको स्थूल रूपसे नहीं मापा जा सकता। ये जबतक सिद्ध नहीं हो जातीं तबतक स्वराज्य नहीं मिल सकता और जब स्वराज्य मिलेगा तब ये तीनों सिद्धियाँ हमें मिल चुकी होंगी। जबतक छः करोड़ अन्त्यज हमारे द्वारपर पुकार करते रहेंगे और हम लोग उनकी पुकार नहीं सुनेंगे तबतक हमें स्वराज्य नहीं मिलेगा —— कभी नहीं मिलेगा।

लेकिन हिन्दू अपने पापोंका परिमार्जन कर भी लें तो इससे क्या अन्त्यजोंको विमान मिल जायेगा —— क्या उन्हें स्वर्ग प्राप्त हो जायेगा? यह पुरुषार्थ तो उन्हें स्वयं ही करना होगा। उन्हें शराब पीना, जूठा अन्न लेना छोड़ देना चाहिए। उन्हें माँसाहार छोड़ देना चाहिए, सेवाकी खातिर गन्दगीकी सफाईका ऐसा काम करते हुए भी, जिसमें गन्दे होनेका डर है, स्वच्छ रहना और ईश-भजन करना चाहिए। यह सब तो तभी हो सकता है जब अन्त्यज खुद इसे करें, उनके लिए दूसरे लोग यह नहीं कर सकते। उनकी भूखको दूर करनेके लिए चरखा और करघा मौजूद ही हैं। हजारों अन्त्यज इसे अपनाकर अपनी दशा सुधारनेमें सफल हुए हैं। स्वदेशीका आन्दोलन

ही ऐसा है कि वह समाजके सब अंगोंका पोषण करता है और मेरा तो विश्वास है कि ज्यों ज्यों समय बीतेगा, यह हिन्दुस्तानकी गरीबीको भी दूर करेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८–१२–१९२१

२३७. तार : श्रीमती मोतीलाल नेहरूको[1]

अहमदाबाद
८ दिसम्बर, १९२१

श्रीमती नेहरू
इलाहाबाद

आपको और कमलाको बधाई। ईश्वर आपको साहस और आशा प्रदान करे।

गांधी

मूल अंग्रेजी तारसे
सौजन्य : म्यूनिसिपल म्यूजियम, इलाहाबाद

२३८. पत्र : महादेव देसाईको

[साबरमती
८ दिसम्बर, १९२१][2]

चि० महादेव,

तुम्हारा तार और पत्र मिले। श्रीमती नेहरू शान्त होंगी। तुम निश्चिन्त भावसे अपना काम करते रहना।

देवदास आ रहा है; तुम्हें उसकी पूरी मदद मिलेगी। और मददकी जरूरत हो तो माँगना। 'इंडिपेंडेंट' को सुधारना। संवाददाताओंकी रिपोर्टोंपर खूब अंकुश रखना। चाहे कम मिलें लेकिन अच्छी हों, ऐसा प्रबन्ध करना। सतीशबाबूकी[3] मदद मिले तो

१. ६ दिसम्बरको मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरूकी गिरफ्तारीपर। इसीके साथ गांधीजीने श्रीमती उमा नेहरूको भी एक सन्देश भेजा था, जिसका अनुवाद **आज**, १०–१२–१९२१ में प्रकाशित हुआ था।

२. महादेवभाईका तार ७ तारीखको रातमें देरसे मिला था और देवदास ८ तारीखकी सुबह दिल्लीके लिए रवाना हो गये थे।

३. सतीशचन्द्र मुकर्जी।

लेना। एन्ड्रयूजको मैंने तो नहीं लिखा है लेकिन तुम लिख सकते हो। मैंने नहीं लिखा क्योंकि यह कुछ दबाव डालनेकी बात मानी जायेगी।

श्रीमती नेहरू अगर मुझे पत्र लिखें तो इससे मुझे खुशी होगी।

दूसरों द्वारा बताये गये व्रतोंको लेनेमें निश्चय ही भय है। तुम्हें जो व्रत सुझाये गये हैं उनमें से जो तुम्हें लेने योग्य मालूम हो और लिया जा सकता हो उसे ले लो और उसके साथ भूतकी तरह लगे रहो। अभी लेनेकी शक्ति न हो तो मत लेना। न लेनेमें विघ्न नहीं है, विघ्न तो उसके न पालनेमें है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ११४२८) की फोटो-नकलसे।

२३९. पत्र : महादेव देसाईको

शुक्रवार [९ दिसम्बर, १९२१][1]

चि० महादेव,

तुम्हारा तार मिला। 'इंडिपेंडेंट' के प्रकाशनके लिए तुम्हें जमानत जमा करानी पड़ी, यह बात मुझे अच्छी नहीं लगी, लेकिन पण्डितजी जो कुछ कहें, उसे करना हमारा कर्त्तव्य है। तुम गिरफ्तार हो जाओ तो निश्चय ही मुझे खुशी होगी। लेकिन पण्डितजीसे कह दो कि अगर फिर कोई जमानत माँगी जाती है तो उसे जमा न कराकर हस्तलिखित पत्र निकालना अच्छा होगा। ऐसा करना सबसे आसान है। वे निश्चय ही तुम्हें गिरफ्तार कर लेंगे, लेकिन इसकी कोई चिन्ता नहीं है। सरूप और रणजीत वहाँ जा रहे हैं; वे भी [पत्रके] मालिक बन सकते हैं। मैं यहाँसे किसीको भेजनेकी कोशिश जरूर करूँगा।

प्यारेलाल बेशक आ सकता है।

बापूके आशीर्वाद

मूल अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १०६०२८) से।

१. महादेव देसाईने जमानत देकर ७ तारीखको 'इंडिपेंडेंट' का काम-काज अपने हाथमें लिया। शुक्रवारको उपर्युक्त तिथि ही पड़ती थी।

२४०. तार : श्रीमती वासंतीदेवी दासको[1]

[१० दिसम्बर, १९२१ को या उसके पश्चात्]

आपको और आपके पतिको बधाई। आशा है आप अहमदाबाद आ रही हैं।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १३–१२–१९२१

२४१. श्यामसुन्दर चक्रवर्तीको लिखे पत्रका अंश

[अहमदाबाद
१० दिसम्बर, १९२१ के पश्चात्][2]

इन गिरफ्तारियोंकी खबर सुनकर खुशी होती है। स्वराज्यकी शीघ्र स्थापनाके लिए दो चीजोंकी जरूरत है — सविनय अवज्ञा करनेवालोंका ताँता कभी न टूटे और वातावरण अहिंसात्मक रहे। मुझे आशा है कि इन दोनों मामलोंमें बंगाल सबसे आगे रहेगा।

[अंग्रेजीसे]

सेवन मंथ्स विद महात्मा गांधी

२४२. साल-भरका वादा

एक तरफ तो मुझसे यह अनुरोध किया जा रहा है कि यदि इस सालके अखीर तक स्वराज्य न मिला तो मैं हिमालय चल देनेकी अपनी धमकीपर अमल न करूँ और दूसरी तरफसे यह भी पूछा जा रहा है कि स्वराज्य न मिलनेपर आप लोगोंको क्या मुँह दिखायेंगे? बेचारी जनता कितनी निराश हो जायेगी? मुझे इतना बड़ा वादा करके पछताना पड़ेगा।

मेरी समझमें 'नवजीवन' के पाठकोंके दिलमें ऐसे विचार नहीं उठते होंगे। फिर भी मैं जानता हूँ कि कुछ लोग इस तरह सोचते हैं। मेरा वादा शर्तोंके साथ

१. देशबन्धु दासकी गिरफ्तारीपर; वे १० दिसम्बरको गिरफ्तार हुए थे।

२. देशबन्धु दास १० दिसम्बर, १९२१ को गिरफ्तार हुए थे और बंगाल कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष श्री चक्रवर्ती बने थे। अतः यह पत्र उस तिथिके बाद ही लिखा गया होगा।

है। मैंने जो शर्तें पेश की थीं उनका पालन किया जा सकता है। मैंने कहा था "इन शर्तोंका पालन करो और स्वराज्य ले लो।"

कहा जा सकता है, व्यवहार-कुशल मनुष्यको शर्तें पेश करते समय पालन करनेवाले लोगोंकी शक्तिका अन्दाज लगाकर ही वादा करना चाहिए। यह बात सच है। मैं व्यवहार-कुशल होनेका दावा भी रखता हूँ। यदि मेरा यह दावा गलत सिद्ध हो तो मुझे सार्वजनिक जीवनसे अलग हो जाना चाहिए।

अतएव यदि वर्षके अन्तमें लोगोंको यह पूछना पड़े कि 'स्वराज्य कहाँ है?' तो कहना होगा कि मेरी व्यवहार कुशलता सिद्ध नहीं हुई और मुझे हिमालयकी राह ले लेनी चाहिए।

पर यदि उन्हें निश्चित रूपसे यह दिखाई दे कि स्वराज्यका रास्ता वही है जो मैंने लोगोंको बताया है, और उन्हें यह मालूम हो कि उस रास्तेको तय करते हुए वे बहुत दूर, लगभग अन्ततक आ पहुँचे हैं, तो न उन्हें मुझे ताना मारनेकी जरूरत रहे और न मुझे हिमालय भाग जानेकी ही। वह तो स्वराज्य मिलनेके बराबर ही होगा। जिसे मोक्षका मार्ग मिल गया है वह यम-नियम आदिका पालन करता चला जाता है। जो प्रत्यक्ष देख रहा है कि तड़ातड़ बन्धन टूटते जा रहे हैं वह मोक्षको प्राप्त कर चुकनेवाले पुरुषके समान ही है। वह अपने मार्गसे इधर-उधर नहीं भटकता। वह दिनपर-दिन बलवान् होता जाता है। उसे मार्ग-दर्शककी आवश्यकता नहीं रहती। जिसे सन्देह है उसका कहीं ठिकाना नहीं। उसका नाश निश्चित है। वह रास्ता चलते हुए भी नहीं चलता; क्योंकि वह यही नहीं जानता कि मैं हूँ कहाँ।

इसी प्रकार यदि दिसम्बरमें आनेवाले समस्त प्रतिनिधि बिना बहसमें पड़े यह कबूल कर लें कि स्वराज्य-प्राप्तिका मार्ग यही है, हम स्वराज्यकी झाँकी तैयार कर रहे हैं, जितना काम इस वर्षमें हुआ है उतना पिछले किसी वर्षमें नहीं हुआ और हम तो इसी मार्गसे जाना चाहते हैं तो मैं कहूँगा कि यह स्वराज्य मिल जानेके बराबर हो गया। जो कुछ अधूरा बच जायेगा इसका कारण हमारे परिश्रमकी कमी है। जहाँ जरा ज्यादा मेहनत की कि काम पूरा हुआ।

जो लोग यह मान बैठे हैं अथवा जिन्होंने लोगोंको ऐसा समझा रखा है कि स्वराज्य तो गांधी जिस तरह बन पड़ेगा दिसम्बरके पहले दिला देगा, तो वे दोनों अनजाने ही स्वयं अपने तथा देशके दुश्मन हैं। वे स्वराज्यका अर्थ ही नहीं समझे हैं। स्वराज्यका अर्थ केवल स्वावलम्बन ही है। मेरे हाथों स्वराज्य पानेका मतलब तो केवल परावलम्बन ही हुआ। मैं तो उसे पानेका रास्ता बतानेवाला हूँ। लेना तो लोगोंके ही हाथमें है। मैं वैद्य हूँ, दवा बताता हूँ। खानेकी विधि, उसका अनुपान, मात्रा, पथ्य इत्यादि बताता हूँ पर अन्तमें वह सब करना तो रोगीको ही पड़ेगा।

यदि एक वर्षके अन्तमें लोगोंको यह प्रत्यक्ष अनुभव न हुआ हो कि स्वराज्य शान्तिके द्वारा, हिन्दू-मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई, यहूदीकी एकताके द्वारा, स्वदेशी और अस्पृश्यताके नाशके द्वारा ही मिल सकता है तो मेरी व्यवहार-कुशलता पूरी तरह न्यून सिद्ध हुई और मुझे हिमालय अवश्य ही भाग जाना चाहिए।

यह अवश्य ठीक है कि मैंने आशा इससे अधिक की थी। मैंने सोचा था कि हम इस वर्षमें न केवल स्वराज्यका मार्ग देख लेंगे, बल्कि स्वराज्यकी प्रतिमा भी हमारे सामने आकर खड़ी हो जायेगी; हम शासन-कर्त्ताओंके साथ सुलह कर लेंगे, असहयोग समाप्त हो जायेगा तथा शुद्ध सहयोग शुरू हो जायेगा। पर अब मुझे डर है कि इन शेष दिनोंमें हम शायद इस स्थितिका अनुभव न कर सकें। बल्कि, इसके विपरीत हमारे असहयोगका वेग और भी तीव्र हो जायेगा और ऐसा मालूम होगा कि मानो अब सहयोग होनेकी सम्भावना ही नहीं रही। परन्तु यही अनुभव सहयोगको नजदीक लानेवाला होगा। प्रभातके पहलेका अन्धकार घोरतम होता है। प्रसूतिके पहलेकी वेदनायें असह्य होती हैं और इसलिए स्वयं प्रसवके ही विषयमें माँको सन्देह उत्पन्न होने लगता है। उसी प्रकार हमारा प्रसूतिकाल भी कठिनसे-कठिन होगा।

बम्बईने उसमें विघ्न डाल दिया। हमने स्वेच्छासे जो जोर लगाना चाहा था, हमने स्वयं अपने ऊपर दुःख झेलनेकी जो प्रतिज्ञा की थी, बम्बईने उसका द्वार बन्द कर दिया। परन्तु सौभाग्यसे सरकारने हमारे लिए अधिक कर्तृत्व करने, अधिक दुःख भोगनेका दरवाजा खोल दिया है। उसने दमनका वेग बढ़ा दिया है। यदि हम निर्भय होकर इस सिंहद्वारमें प्रवेश कर जायें तो स्वराज्यकी प्रतिमाके हमारे सम्मुख आकर खड़ी होनेमें देर नहीं लगेगी।

पर अभी मैं निश्चयपूर्वक यह क्यों नहीं कह रहा हूँ कि इस वर्षमें स्वराज्यकी प्रतिमा खड़ी हो ही जायेगी? इसलिए कि मुझे भविष्य ठीक-ठीक ज्ञात नहीं है। मैं त्रिकालदर्शी नहीं हूँ। मुझे दिखाई नहीं देता, मैं तो केवल श्रद्धालु हूँ। मैं ईश्वरको सर्वशक्तिमान मानता हूँ। हमारे हृदयमें वह कब कोई बड़ी उथल-पुथल कर डालेगा, यह कौन कह सकता है? १७ नवम्बरको जिस समय मैं आशाकी बड़ी-बड़ी बातें कर रहा था उसी समय निराशाजनक घटनाएँ घट रही थीं, इसकी मुझे क्या खबर थी? और अब जब कि मुझे भी इतने दिनोंमें प्रतिमा खड़ी हो जानेमें सन्देह है, यदि ईश्वर वह प्रतिमा तैयार कर रहा हो तो मैं क्या जानूँ? जिस प्रकार मैं वैद्य हूँ, उसी प्रकार मैं रोगी भी हूँ। जो स्वराज्य मुझे लेना है उसे मैं ले नहीं पाया। मुझे रास्ता मिल गया है और मैं उसे हर्गिज नहीं छोड़ूँगा। मेरा स्वराज्य तो बहुत दूर है। पर इसी महीनेमें मैं उसे पा जाऊँ तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। मैं पाठकोंको निस्सन्देह यह विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने अपने प्रयत्नमें कोई कोर-कसर नहीं रख छोड़ी है। मेरी तो यही धारणा है कि भारतके लिए स्वराज्य प्राप्त करनेके प्रयत्नमें ही मेरा मोक्ष है। यदि मुझे ऐसा मालूम होगा कि मोक्ष प्राप्त करनेके बजाय मैं बन्धनमें जकड़ा जा रहा हूँ, चढ़नेके बजाय गिर रहा हूँ, तो फिर मैं हिमालय चल देनेमें रोके नहीं रुकूँगा। अभीतक तो मुझे ऐसा नहीं मालूम होता कि मैं अधिक बँधता जा रहा हूँ। जनवरीकी पहली तारीखको मेरे मनकी दशा कैसी होगी, यह मैं निश्चय ही नहीं जानता। इससे पाठक समझ गये होंगे कि स्वराज्य मेरी साधना है, मेरे मोक्षका द्वार है। मेरा आन्दोलन केवल स्वार्थमूलक है और ऐसा ही रहेगा।

एक दृष्टिसे, मैं यह नहीं चाहता कि इस वर्षके भीतर स्वराज्यकी प्रतिमा खड़ी हो जाये। मैं अपने बारेमें सभी प्रकारके भ्रमसे बचना चाहता हूँ। मैं लोगोंको यह

समझाना चाहता हूँ कि मैं तो एक लघुजीव हूँ और अपनेको महात्मा समझने देनेमें मैं लोगोंकी तथा अपनी हानि ही देखता हूँ। भले ही मेरा अनुमान गलत माना जाये, भले ही मैं बेवकूफ ठहरूँ, भले ही मैं अव्यावहारिक आदमी माना जाऊँ, अभीष्ट तो यही है कि लोग यह माननेकी अपेक्षा कि मेरे बलके द्वारा कुछ मिला है, यह मानें कि जो-कुछ मिला है वह उन्हींके बलके द्वारा, उन्हींकी तपश्चर्याके द्वारा, उन्हींकी आत्मशुद्धिके द्वारा मिला है। अपने सम्बन्धमें तो मैं बस इतनी ही श्रद्धाका भूखा हूँ — 'जिस समय उसे जो सच्चा दिखाई दिया वह उसने निर्भय होकर लोगोंके सामने उपस्थित किया।' इससे बड़ा कोई प्रमाणपत्र मुझे नहीं चाहिए। इससे अधिकके लायक मैं हूँ भी नहीं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-१२-१९२१

२४३. बारडोली

मौलाना आजाद सोबानी और अपनी बारडोली ताल्लुकेकी यात्राकी याद मुझे हमेशा बनी रहेगी। इस ताल्लुकेके लोगोंकी सादगी, भलमनसाहत, सरलता और दृढ़तासे हम दोनों चकित रह गये। बारडोली ताल्लुकेमें बहुत सुन्दर काम हुआ है, इसमें कोई शक नहीं है। हम दोनोंने यह बात महसूस की कि कुल मिलाकर यह ताल्लुका सविनय-अवज्ञाके लिए सबसे जल्दी तैयार हो सकता है।

वहाँ लगभग ६५ सरकारी स्कूल होंगे, जिनमें से ५१ राष्ट्रीय स्कूलोंमें परिवर्तित हो चुके हैं। और इसमें सन्देह नहीं कि जहाँ-जहाँ स्कूल राष्ट्रीय बनते जाते हैं वहाँ-वहाँ उत्साह बढ़ता जाता है। स्कूलोंको लोगोंके अधिकारमें आये हुए अभी थोड़े ही हफ्ते हुए हैं, इसलिए उनका कार्य धीमी रफ्तारसे चल रहा है। बालकोंको चरखा चलानेका अभ्यास कराया जा रहा है। पुरुषोंमें खादीका पहरावा खूब बढ़ गया है। सब लोग खादीका कुर्ता, धोती या जाँघिया और टोपी पहने दीख पड़े। स्त्रियाँ भी सभाओंमें खासी संख्यामें खादीकी साड़ियाँ पहन कर आई थीं।

हिन्दू-मुसलमानोंके बीचमें अच्छी एकता दिखाई देती है। जो ढेढ़ और भंगी सभामें आते हैं उन्हें छूनेमें कोई दोष नहीं मानता और वे मिलकर सब लोगोंके साथ बैठ सकते हैं। यह सब करनेमें बारडोलीके लोगोंने शान्तिका अच्छा पालन किया है। सरकारी अधिकारियोंके साथ भी स्नेह बनाये रखा है और सरकारसे सहयोग करने-वालोंके साथ भी उनकी कोई दुश्मनी नहीं है।

इतनी अधिक प्रगतिके लिए हम वहाँके लोगोंको बधाई दिये बिना नहीं रह सकते।

तथापि यह चित्र पूर्ण नहीं है। स्कूलोंपर लोगोंका इतना अधिक अधिकार-होना चाहिए कि वे सरकारी स्कूलों अथवा सरकारी शिक्षाका नामतक भी न लें। स्कूलोंकी व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि विद्यार्थी यहाँ-वहाँ घूमते न फिरें और

चरित्रवान् शिक्षकोंके मार्गदर्शनमें अपने चरित्रका निर्माण करें। हिन्दू बालक और बालिकाएँ संस्कृत सीखें और 'गीता' पढ़ें। मुसलमान बालक अरबी सीखें और 'कुरान' पढ़ें। सब बालक सुन्दर, मजबूत, पर्याप्त बटवाला और समान सूत कातें। इसके सिवा, कुछ बालक धुनना और बुनना भी सीखें। स्त्रियोंमें खादीका अधिक प्रसार हो और स्त्री-पुरुष सब खादी पहनने लगें। इतना ही नहीं, ताल्लुकेकी जरूरतकी खादी ताल्लुकेमें ही काती और बुनी जानी चाहिए तथा उसमें मिलके तानेका प्रयोग नहीं होना चाहिए। यह काम अभी बहुत पिछड़ा हुआ है। करघे कम हैं। चरखोंकी संख्या करघोंकी अपेक्षा अच्छी है, लेकिन यह बहुत ज्यादा होनी चाहिए और वे निरन्तर चलते रहने चाहिए। बारडोलीमें विदेशी अथवा मिलका बना कपड़ा मिलना असम्भव अथवा अत्यन्त कठिन होना चाहिए।

ढेढ़ और भंगी सभामें आजादीसे आ सकें, इतना ही पर्याप्त नहीं है। अस्पृश्यता-निवारणका रहस्य समझना चाहिए। लोगोंके दिलोंमें उनके प्रति प्रेमभाव उत्पन्न होना चाहिए। ऐसी परिस्थिति होनी चाहिए कि उनके बच्चे राष्ट्रीय स्कूलोंमें आजादीसे आ सकें। अगर वे न आयें तो उनके माता-पिताको समझाकर उन्हें ले आना चाहिए। उनके मुहल्लोंमें जाकर उनकी तकलीफोंकी जाँच करनी चाहिए। उनसे विनम्रतापूर्वक अपनी बुरी आदतोंको छोड़नेके लिए कहना चाहिए। हिन्दू-मुसलमानोंके बीच कोई झगड़ा न हो, यह बहुत अच्छी बात है, लेकिन दोनोंके दिलोंका मैल भी पूर्ण रूपमें निकल जाना चाहिए। पारसी, ईसाई और 'सहयोगियों' के साथ हमारा ऐसा विनय-भरा व्यवहार होना चाहिए कि उन्हें असहयोगियोंसे जरा भी भय न लगे। शराबकी दुकानवाले समझानेपर अपनी दुकानोंको स्वयं बन्द रखें तभी वे बन्द रखाई जायें। लोग उनका बहिष्कार न करें और न उनका हुक्का-पानी बन्द करें। उनसे तथा शराब पीनेवालोंसे प्रेमसे जितना काम लिया जा सकता है, उतना ही लें। उनके साथ किसी तरहकी जबरदस्ती करनेकी गंध भी नहीं आनी चाहिए। उन्हें बिलकुल निर्भय होना चाहिए। विद्यार्थियोंसे सरकारी स्कूल खाली करवानेके लिए स्वयंसेवकोंके दल न जायें, वे [इसके लिए] गाँवोंमें जाकर उपवास भी न करें। लोगोंकी बुद्धि जागे और वे स्वयं सोच-समझकर अपने बच्चोंको सरकारी स्कूलोंसे उठा लें, तभी यह कार्य सही अर्थमें सफल हुआ माना जायेगा।

मेरे मनपर ऐसी छाप अवश्य पड़ी है कि लोगोंने खूब काम किया है। लेकिन उसमें कुछ अज्ञान भी रहा है। मालूम होता है, लोगोंके मनमें यह खयाल रहा है कि खादी-मात्र दिसम्बरतक ही पहननी पड़ेगी। स्कूल भी हमें दिसम्बरके बाद नहीं चलाने पड़ेंगे। और बादमें ढेढ़ तथा भंगीको भी स्पर्श करनेकी जरूरत न रहेगी। इस भावना-से किया गया कार्य तो बहुत कृत्रिम हुआ; और उसका असर अच्छा पड़नेके बजाय बुरा ही पड़ेगा। दिसम्बरमें हमारे हाथमें सत्ता आ जायेगी, ऐसा मुझे तो नहीं जान पड़ता। लेकिन सत्ता आनेके बाद भी हम अपने ताल्लुके अथवा गाँवमें कता और बुना कपड़ा ही पहननेवाले हैं, तब भी स्कूल दूसरे लोग आकर नहीं चलायेंगे, उस समय भी सारा बन्दोबस्त हमारे ही हाथमें होगा। आज दो सत्ताएँ हैं इसके बदले स्वराज्यमें एक ही सत्ता होगी। अगर सरकार हमारी होगी तो सत्ता भी हमारी ही

होगी। आज हमें जितना उद्यम करना पड़ता है, आज जितना उत्तरदायित्व हमारे सिरपर है, उतना ही उद्यम हमें तब भी करना पड़ेगा, उतना ही उत्तरदायित्व हमारे कन्धोंपर तब भी होगा। तब भी हम ढेढ़ और भंगीका स्पर्श करेंगे, उनपर प्रेमभाव रखेंगे। आज हम जो करते हैं वह सब सोच-समझकर करें और यह मानकर करें कि यह हमेशाके लिए है; ऐसा करनेपर ही हममें योग्यता आयेगी।

मैं मानता हूँ कि बारडोली ताल्लुकेमें यह सब करनेकी पूर्ण शक्ति है। जो-कुछ अधूरा रहा सो कुछ तो समयकी तंगीके कारण और कुछ अधूरी समझके कारण। इस लिए मैं बिलकुल ही निराश नहीं हुआ हूँ, लेकिन ऐसा मानता हूँ कि समस्त त्रुटियोंको थोड़े ही समयमें दूर करके लोग सविनय कानून-भंग करनेकी पूर्ण योग्यता प्राप्त करेंगे।

जिन 'सहयोगियों' से मैं मिला हूँ उन्होंने भी इस बातकी गवाही दी है कि सारा काम शान्तिपूर्वक हुआ है और कहा है कि छः महीनोंमें बारडोली ताल्लुका तैयार हो जायेगा। ताल्लुकेके प्राणरूप भाई कुँवरजी मानते हैं कि वे एक मासमें कातने-बुननेका तथा दूसरा काम पूरा कर सकेंगे। सम्भव है कि दोनोंके कथनमें जाने-अनजाने कुछ अतिशयोक्ति हो। लेकिन बारडोलीके भले स्त्री-पुरुषोंने मेरे ऊपर यह छाप जरूर डाली है कि वे थोड़े ही समयमें योग्यताका प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेंगे।

सबसे सुन्दर बात तो मुझे यह दिखाई दी कि काम करनेवाले लोगोंमें सिर्फ युवक ही नहीं बल्कि बुजुर्ग लोग भी हैं। स्त्रियाँ भी दिलचस्पी लेती हैं। स्वयंसेवक बिना पैसेके काम करते हैं। जो रुपया-पैसा खर्च होता है वह सब बारडोलीमें से ही पूरा किया जाता है। इसलिए जागृति सारे ताल्लुकेकी ही मानी जायेगी, उसके अमुक वर्ग-की नहीं।

बारडोलीका उत्तरदायित्व अब बढ़ गया है। बारडोलीने ही मुझे दिल्लीमें सविनय अवज्ञाकी योजनाको स्पष्ट स्वरूप प्रदान करनेके लिए प्रेरित किया। इससे अन्य प्रान्तोंमें भी उत्साह बढ़ा, इसीके परिणामस्वरूप हमारे कई महान् योद्धा आज जेलमें बिराज रहे हैं। इस तरह उत्साहका निमित्त बननेके बाद बारडोली चुपचाप नहीं बैठा रह सकता। बारडोलीको एकदम पूर्ण आत्मशुद्धि करनी होगी और उस शुद्धिके लिए महान पुरुषार्थ करना होगा। लोग विचारपूर्वक काम, काम और सिर्फ काम ही करते रहें और यदि उनका सच्चा हृदय परिवर्तन हो गया हो तो जिस प्रयत्नकी जरूरत है, उसे करना कठिन नहीं होगा।

पाठक देखेंगे कि लोगोंमें दुःख सहन करनेकी, जेल जानेकी और गालियाँ खानेकी ताकत है या नहीं — मैंने इस बातकी चर्चा ही नहीं की है। मैंने किसीसे पूछा भी नहीं है। मेरा अनुभव है और मेरा विश्वास है कि जब मनुष्य अपने कर्त्तव्यका पालन करता है तब उसमें दुःख सहन करनेकी शक्ति तुरन्त आ जाती है। बारडोलीके लोग तो जेल जानेकी योग्यता प्राप्त करनेकी खातिर इतना प्रयास कर रहे हैं तो फिर मैं यह प्रश्न करके कि उनमें जेल जानेकी शक्ति है या नहीं, उनका अपमान कैसे कर सकता हूँ? यह समय ऐसा है कि जेल जाना कठिन है; जेल न जाना ही आसान है। जो व्यक्ति सूत नहीं कातता, खादी नहीं पहनता, ईमानदार नहीं है, विनयशील नहीं है, सबके साथ द्वेष करता है, ढेढ़ और भंगीका स्पर्श नहीं करता उसे जेल जानेके लिए

कह ही कौन सकता है? जिस ताल्लुकेके लोग अस्पृश्यतासे चिपके रहते हैं उस ताल्लुके-को जेल जानेका आमन्त्रण कोई नहीं देगा, अतएव बारडोलीके लोगोंकी हिम्मत और जेल जानेकी इच्छाके सम्बन्धमें मुझे जरा भी शंका नहीं है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-१२-१९२१

२४४. टिप्पणियाँ

पधारिए कर्नल प्रतापसिंहजी

कोई एक हफ्तेसे यह सुना जा रहा है कि कांग्रेसके समय सरकार अहमदाबादका कब्जा कर्नल प्रतापसिंह तथा उनके सिपाहियोंको सौंप देगी और कर्नल प्रतापसिंहने कांग्रेसके प्रतिनिधियोंको सीधा करनेका काम अपने सिरपर लिया है। मैं इस अफवाहको बिलकुल झूठ मानता हूँ। सरकार इतनी डरपोक, नीच या मूर्ख नहीं है। सरकारके पास कांग्रेसके प्रतिनिधियोंसे निपटनेके पूरे साधन हैं। मैं यह नहीं मानता कि उसे कर्नल प्रतापसिंहकी मददसे अपना काम चलाना जरूरी है। फिर भी मैं सुनता हूँ कि मिलोंमें काम करनेवाले सीधे-सादे मजदूरोंको डरा दिया गया है और वे भयभीत हैं। ऐसी अफवाहें एक तो किसीको सुननी ही नहीं चाहिए और यदि सुन लें तो उन्हें सुनकर फैलाना नहीं चाहिए। किसी भी प्रकारके डरका अन्देशा हुआ तो कांग्रेसकी तरफसे सूचना मिलेगी। मनगढ़न्त अफवाहोंसे घबरा जाना भीरुताका चिह्न है और भीरु लोग न तो स्वराज्य ले ही सकते हैं और न पा जानेपर उसे कायम ही रख सकते हैं। फिर यह नास्तिकताका भी चिह्न है। अतः यह समझ कर कि 'जो ईश्वरको मंजूर होगा सो होगा', हम शान्त क्यों न रहें?

पर मान लीजिए कि कर्नल प्रतापसिंहजी अपना दल-बल लेकर यहाँ पधार जायें तो भी डर किस बातका है? वे भी हमारे ही हैं। उनके सिपाही भी हमारे ही हैं। हमें उनका आगमन सहन करना चाहिए, उनका स्वागत करना चाहिए और उनके सिपाहियोंकी गोलियाँ भी बरदाश्त करनी चाहिए। हम उन्हें गोलियाँ चलानेका मौका ही क्यों दें? क्या वे रास्ते चलते हुए को छेड़ेंगे? छेड़ें तो छेड़ते रहें — हमें अपने रास्ते जानेसे काम। क्या वे हमारी खादीकी टोपी उतरवायेंगे? यदि जबर्दस्ती उतारें तो हम टोपी न छोड़ें और मारका स्वागत करें। इतनेपर भी उतार लें तो दूसरी टोपी पहनकर निकलें और फिर मार बर्दाश्त करें। अन्तको वे थक जायेंगे। जिनमें मार खाने लायक शक्ति न हो [जहाँ उनके सिपाही हों] ऐसे रास्तेसे वे न जायें, पर सफेद टोपी छोड़ें हरगिज नहीं। जिस प्रकार निरामिष भोजी उन देशोंमें नहीं जाता जहाँ माँस खाये बिना गुजर ही नहीं, जैसा कि उत्तरी ध्रुवके पास, परन्तु यदि उत्तरी ध्रुवमें पहुँच ही जाये तो प्राण भले ही चले जायें पर वह माँस-भक्षण नहीं करेगा। धर्म तो वही जिसका पालन प्राण देकर भी किया जाये, नहीं तो फिर वह सुविधा या विलास ही हुआ।

यदि हमने गोरे सिपाहियोंसे डरना छोड़ देनेका निश्चय कर लिया हो तो फिर हमें कर्नल प्रतापसिंहके गेहुँए रंगके सिपाहियोंसे डर क्यों मानना चाहिए?

डरना तो हमारी अपनी अशान्ति और वैर-भावकी सूचना है। जिसे हम दुश्मन मानेंगे वह जरूर ही हमारा दुश्मन हो जायेगा। यदि हम दुश्मनको भी अपना मित्र मानकर उसके साथ वैसा ही व्यवहार करेंगे तो वह समय पाकर जरूर ही मित्र हो जायेगा। मनुष्य जैसा विचार करता है, वैसा ही बनता है। करे मित्रता, परन्तु पाये दुश्मनी, यह हो ही नहीं सकता। हमारा असहयोग शत्रुको भी मित्रताके द्वारा जीतनेका साधन है।

यह केवल हिन्दू धर्मकी ही नहीं, इस्लामकी भी यही शिक्षा है। इस्लाममें धैर्य-को सबसे ऊँचा पद दिया गया है। युद्धके लिए विधान तो है; पर वह तभी जब दूसरे सब उपाय चुक गये हों और जालिमकी अपेक्षा उनकी संख्या कम हो तथा न लड़ना कायरताका चिह्न माना जाये एवं युद्ध करवानेवाला नेता कोई ऐसी उज्ज्वल आत्मा हो कि जिसपर सबका भरोसा हो और जिसने हर तरहके स्वार्थको तिलांजलि दे दी हो। पर हिन्दुस्तानकी अवस्था ऐसी है ही नहीं और हो भी नहीं सकती। हमारी तादाद बहुत है। फिर हमें वैसी लड़ाईके लिए प्रेरित करनेवाला कोई नहीं। ऐसा युद्ध हमारी मर्दानगीका चिह्न नहीं है; और न हम खुद अभी दूसरे उपायोंको करके थक ही चुके हैं। हमने अभी शान्तिका पाठ पूरा-पूरा नहीं पढ़ा है। हमने अभी स्वदेशी व्रतका पूरा पालन नहीं किया है। हम अभी प्रामाणिक नहीं बने। हिन्दू और मुसलमानोंने अभी पारस्परिक मनोमालिन्यको पूरी तरह धो नहीं डाला है। अभीतक हमारे बहुतसे लोगोंको सरकारका साथ देना प्यारा मालूम होता है। ऐसी स्थितिमें युद्ध ठानना 'जेहाद' नहीं बल्कि 'फसाद' माना जा सकता है। मैंने कितने ही आलिमोंके मुँहसे यह बात सुनी है।

अतएव प्रत्येक धर्मकी दृष्टिसे विचार करते हुए एक ही निर्णय लिया जा सकता है कि हमें दुश्मनको प्रेमके बलपर जीतना है। सो, चाहे गोरी सेना आये चाहे काली, उसके साथ हमारा व्यवहार एक ही-सा होना चाहिए। इसलिए, यद्यपि मेरी धारणा है कि कर्नल प्रतापसिंहजी हमें दण्ड देनेके लिए आनेवाले नहीं हैं, तथापि मान लीजिए कि वे आयें अथवा और कोई कर्नल अपनी टुकड़ी लेकर आये तो हम कह सकते हैं— "पधारिए कर्नल साहब"।

दास पकड़े गये?

ऐसी ही अफवाह देशबन्धु दासके पकड़े जानेके विषयमें उड़ रही है। मैं नहीं मानता कि वे गिरफ्तार कर लिये गये हैं। पर हाँ, कर्नल प्रतापसिंहके यहाँ आनेकी अपेक्षा देशबन्धुकी गिरफ्तारीकी सम्भावना अधिक सच हो सकती है। जहाँ दमन-नीति हमेशा बढ़ती जा रही है, और भारतके बादलका रँग बदलता रहता है वहाँ हम क्या कह सकते हैं कि कौन कब पकड़ा जायेगा? साथ ही, यह जाननेकी भी हमें क्या जरूरत कि "कौन पकड़ा गया है।" चाहे तमाम अगुआ लोग क्यों न पकड़ लिये जायें, हमें अशान्त होनेका कोई कारण नहीं। यदि हम आलसी हों तो काममें जुट

जायें, यदि नेताओंकी मौजूदगीमें हमारा मन कामके बजाय खेलमें ज्यादा रमता हो तो उनकी गैरहाजिरीमें हमें खुद जवाबदेही अपने सिरपर लेकर अगुआ हो जाना चाहिए। हमारे इस संग्राममें सबको अग्रणी होनेका अधिकार है। क्योंकि यहाँ अग्रणी वही है जो सबसे अधिक सेवा करे। सेवाके लिए अगुआ होनेमें द्वेष किस बातका?

सो, यदि देशबन्धु दास गिरफ्तार हो जायें तो हमें खुश होना चाहिए, निराश न होते हुए अधिक उत्साहवान होना चाहिए। और यह आशा रखनी चाहिए कि अब हमारी विजय नजदीक आती जा रही है। कसौटीपर चढ़े बिना हमें कुछ भी नहीं मिल सकता और यदि बिना कसौटीके मिल गया तो वह टिकनेवाला नहीं। जिस प्रकार बिना भूखके खाया हुआ भोजन नहीं पचता उसी प्रकार बिना दुःखके सुख भी नहीं पच सकता। ज्यों-ज्यों हमारे बन्धन हमारे आन्तरिक बलसे एकके बाद एक टूटते हैं त्यों-त्यों हमारी शक्ति बढ़ती है। परन्तु यदि बँधे हुए मनुष्यको कोई एकाएक छोड़ दे तो बन्धन टूट जानेपर भी वह अपंग-जैसा दिखाई देता है और वह होता भी है। वही हाल हमारा भी हो सकता है। अतएव हमारे नेताओंका जेल जाना मानो हमारी स्वतन्त्रताके प्रभातकालकी सूचना है।

कांग्रेसके अधिवेशनमें भले ही हमारे नेता न आ पायें —— उसमें लालाजी न हों, दास न हों, मोहिउद्दीन साहब न हों, असमके फूकन न हों, फरुखाबादके शान्तिस्वरूप न हों, लखनऊके हरकरणनाथ न हों, आन्ध्रके गुप्ता न हों, मद्रासके याकूब हसन न हों, किचलू न हों, स्टोक्स न हों, पण्डित नेकीराम, पण्डित सुन्दरलाल, भगवानदीनजी, पीर बादशाह मियाँ, जितेन्द्रलाल बनर्जी, सेनगुप्त और ऐसे ही अन्य अनेक योद्धा भी न हों। लेकिन इसकी क्या चिन्ता? भले उसमें अली-बन्धु न हों, वीर सिख सरदार न हों, हमें इसकी परवाह नहीं करनी चाहिए। उनका शरीर चाहे न रहे पर उनकी आत्मायें तो हमारे साथ ही रहेंगी। वे हमारे पराक्रमको देखेंगी। हमारी परीक्षा लेंगी। वे जाँचेंगी कि हम उनके बलिदानके लायक हैं या नहीं? लड़नेवाले घायल हो जानेसे घबराते नहीं। वे तो समझते हैं कि घाव खानेसे तो अपना बल सिद्ध होता है और बल सिद्ध करना मानो विजय प्राप्त करना है। हमें यह दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि जो जेलसे बाहर रहकर सेवा करता है वह जब निर्दोष होते हुए भी जेल जाता है, तब अधिक सेवा करता है।

पारसी भाई-बहनोंको

मैं जानता हूँ कि कई जगह पारसी भाई-बहन कुछ घबराये हुए हैं और हिन्दुओं तथा मुसलमानोंसे डरका अनुभव करते हैं। मुझे यह बात लिखते हुए भी लज्जा आती है। जिस समय हम स्वराज्यके मन्त्रका जप कर रहे हैं उस समय यदि किसी एक समाजको, किसी समाजको ही क्यों, एक निर्दोष व्यक्तिको भी यदि भयका कारण रहता है तो स्वराज्यवादीके लिए यह लज्जाकी बात है। पारसी भाई-बहनोंको इतना आश्वासन तो मैं देता हूँ कि ऐसे सैकड़ों हिन्दू और मुसलमान हैं जो उनके लिए और इसी प्रकार ईसाई आदि अन्य अल्पसंख्यक समाजोंके लिए अपने प्राण दे सकते हैं। हो सकता है कि उन्हें कुछ अंग्रेज अधिकारी समझ-बूझकर या अनजाने भड़का

रहे हों। लेकिन पारसी भाई-बहनोंकी शोभा तो इस बातमें है कि वे किसीके डरानेसे डरें नहीं। ऐसा समझें कि हिन्दू और मुसलमान उनके भाई ही हैं और उनपर विश्वास रखें। मैं उनसे यह याचना करता हूँ कि हम सब, मरना हो तो एक-दूसरेके हाथसे और बचना हो तो एक-दूसरेके हाथसे बचनेका निश्चय करें। विश्वाससे विश्वास बढ़ता है और अविश्वाससे अविश्वास।

इतना आश्वासन देनेके बाद भी पारसी भाई-बहनोंको मेरी यह सलाह है कि जहाँ-जहाँ उन्हें थोड़ा भी डर लगता हो वहाँ-वहाँ वे कांग्रेसके दफ्तरमें या खिलाफतके दफ्तरमें इस बातकी खबर दें। सूचना मिलनेपर मैं मानता हूँ कि उनकी रक्षाके लिए उन-उन दफ्तरोंके लोग पूरा प्रबन्ध करेंगे और उसमें थोड़ी भी असावधानी नहीं दिखायेंगे। बम्बईमें मुझे कई पारसी भाइयोंने कहा था कि अनेक मेमन भाइयोंने पारसी भाई-बहनोंको सम्पूर्ण संरक्षण दिया था। कई मारवाड़ी घरोंमें भी पारसी कुटुम्बोंकी रक्षा हुई थी। कोई पारसी भाई या बहन ऐसा तो नहीं मानते होंगे कि सारा हिन्दू समाज या सारा मुस्लिम समाज पारसियोंके खिलाफ हो गया है।

कोई-कोई पारसी भाई उन्हें जो नुकसान हुआ है उसके सम्बन्धमें मुझे लिखते रहते हैं। उन्हें मैं इतनी ही सान्त्वना दे सकता हूँ कि ऐसे मामलोंकी जाँच करनेके लिए मैं पारसी समाजके प्रमुख व्यक्तियोंके साथ एक कमेटी नियुक्त करनेकी बातचीत कर रहा हूँ। यदि ऐसी कमेटी बन जाती है तो जिन्हें नुकसान हुआ है और जो उस नुकसानको सहनेमें समर्थ नहीं हैं. ऐसे सब लोगोंके लिए कुछ किया जा सकेगा। मैं चाहता हूँ कि एक भी पारसी अपने नुकसानकी भरपाईकी मांग करनेके लिए सरकारके पास न जाये।

कपड़वंज और ठासरा

किसानोंका कहना है कि इस वर्ष कपड़वंज और ठासरा ताल्लुकोंमें फसल कुछ जगह रुपयेमें छः आनेसे और कहीं चार आनेसे भी कम हुई है। वे पूछते हैं कि इस हालतमें वे क्या करें? असहयोगीके नाते मैं तो उन्हें एक ही सलाह दे सकता हूँ कि सरकारके पास राहत माँगनेके लिए तो उन्हें नहीं जाना चाहिए। लेकिन यदि उनमें हिम्मत हो तो वे सरकारको यह नोटिस दे सकते हैं कि फसल चार आनेसे भी कम हुई है, अतः वे लगान नहीं दे सकेंगे। यदि सरकारको फसलके बारेमें किसानोंका अनुमान स्वीकार न हो तो वह पंच-समिति नियुक्त करे जिसमें सरकार और किसानोंके प्रतिनिधियोंकी संख्या बराबर हो। यह समिति जो भी निर्णय दे उसे दोनों पक्षोंको स्वीकार कर लेना चाहिए। यदि सरकार इस तरह पंच-फैसला करा लेनेकी बात न माने तो किसान लगान न भरें और तब यदि सरकार उनकी सम्पत्ति बेचकर लगान वसूल करना चाहे तो उसे वैसा करने दें। लेकिन ऐसा कदम उठानेके पहले किसानोंको पूरा विचार कर लेना चाहिए।

१. क्या वे एक रह सकेंगे?

२. अपने मवेशी, बर्तन और घरके सामान आदिका बिकना वे सह सकेंगे?

३. क्या वे शान्तिका पालन कर सकेंगे?

यदि इन तीनों प्रश्नोंका जवाब "हाँ' में हो तो वे, जैसा ऊपर बताया है उस तरह, सरकारसे पंच नियुक्त करनेके लिए कह सकते हैं और अपने इस प्रस्तावके नामंजूर होनेपर लगान देना बन्द कर सकते हैं। किसानोंको यह भी याद रखना चाहिए कि उनकी इस निजी लड़ाईमें कांग्रेस उन्हें कोई सहायता नहीं दे सकती। उन्हें अपने ही बलपर लड़ना होगा। इसके लिए उनके पास कुशल नेता होने चाहिए। इसके सिवा, लड़ाईमें झूठको कोई स्थान नहीं मिलना चाहिए।

यह तो हुआ किसानोंकी इस स्थानिक तकलीफके बारेमें।

अब, इसके आगे यदि किसान स्वराज्यकी या खिलाफतकी लड़ाईमें भाग लेना चाहते हों तो उन्हें और भी ज्यादा कष्ट सहनेके लिए तैयार होना चाहिए। उसमें यह सवाल नहीं उठाया जा सकता है कि उनकी फसल रुपयेमें इतने आना हुई है। उन्हें स्वदेशीके व्रतका पूरा पालन करना चाहिए; इसके लिए स्त्रियोंको भी समझाना चाहिए, अस्पृश्यताके दोषको दूर करना चाहिए। ऐसा करें तो ही वे कानूनका सविनय-भंग करनेके लिए तैयार हुए कहे जा सकते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-१२-१९२१

२४५. सन्देश : हरिलाल गांधीको[1]

[११ दिसम्बर, १९२१ को या उसके पश्चात्]

तुमने बहुत अच्छा काम किया। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे। रामदास, देवदास तथा अन्य लोग भी तुम्हारा अनुकरण करेंगे।

आज, १५-१२-१९२१

२४६. तार : देवदास गांधीको[2]

[साबरमती
११ दिसम्बर, १९२१ को या उसके पश्चात्]

तुम जब चाहो तब अपनेको गिरफ्तार करा दो।

बापू

[अंग्रेजीसे]

सेवन मंथ्स विद महात्मा गांधी,

१. ११ दिसम्बरको हरिलाल गांधीकी गिरफ्तारीके बाद गांधीजीने यह सन्देश भेजा था।

२. यह तार हरिलाल गांधीकी गिरफ्तारीके बाद भेजा गया था।

२४७. पत्र : सी० एम० डोकको

साबरमती
१३ दिसम्बर, [१९२१][1]

प्रिय क्लीमेंट[2],

आपका पत्र पाकर कितना अधिक आनन्द हुआ ? इसने हमारी पहलेकी सभी सुखद स्मृतियोंको फिरसे ताजा कर दिया है। कृपया माँ, ऑलिव[3], विली[4] तथा श्रीमती इवान्सको मेरा प्यार कहें।

मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं प्रार्थना किये बिना कुछ नहीं करता।

श्रीमती गांधी और रामदास मेरे साथ हैं। देवदास इलाहाबादमें है। हरिलाल अभी हाल ही एक सविनय अवज्ञाकारीके रूपमें कलकत्ता जेलमें गया है। मणिलाल[5] दक्षिण आफ्रिकामें 'इंडियन ओपिनियन' का काम देख रहा है।

कृपया कभी-कभी लिखते रहा करें।

आप व श्रीमती क्लीमेंट हमारे समादर लें।

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ७४४) की फोटो-नकलसे।

१. देवदास और हरिलालके उल्लेखको ध्यानमें रखते हुए लगता है कि यह पत्र निश्चय ही १९२१ में लिखा गया था।

२. रेवरेंड जे० जे० डोकके पुत्र, जो दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके निकट सहयोगी थे।

३. रेवरेंड डोककी पुत्री।

४. रेवरेंड डोकके ज्येष्ठ पुत्र।

५. गांधीजीके द्वितीय पुत्र, जो दक्षिण आफ्रिकामें थे।

२४८. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

मंगलवार

१३ दिसम्बर, १९२१

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें जो चोट आ गई थी, आशा है, वह अबतक ठीक हो गई होगी। अब तो हमें स्वस्थ और प्रसन्न रहना है और लक्ष्मीके टीकेकी राह देखते हुई बैठना है।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

२४९. तार : मदनमोहन मालवीयको[1]

[१४ दिसम्बर, १९२१ या उसके पश्चात्]

पण्डित मालवीयजी

बनारस सिटी

अहमदाबाद छोड़ना असम्भव। तेईसको यहाँ कार्य-समितिकी बैठक हो रही है। सम्मेलन यदि अहमदाबादमें करें या कांग्रेसके बाद, जिसमें कृपया आप शामिल हों तो मैं उसमें सहर्ष उपस्थित होऊँगा।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७७१५) की फोटो-नकलसे।

१. यह तार मालवीयजीके १४ दिसम्बर, १९२१ के तारके जवाबमें दिया गया था। उनका तार इस प्रकार था : "तारके लिए धन्यवाद। अठारहको आश्रम पहुँच रहा हूँ। वर्तमान परिस्थितिमें सम्मिलित रूपसे क्या कदम उठाया जाये इसपर विचार करनेके लिए सभी दलोंके प्रतिनिधियोंका सम्मेलन बाईस और तेईसको बम्बईमें बुला रहा हूँ। विश्वास है कि आप उसमें शरीक होंगे। तार दीजिए।"

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

प्रोफेसर टी० एल० वास्वानीका उत्तर[2]

प्रिय महोदय,

आपका ३० तारीखका पत्र मुझे कल डाकसे मिला। मुझे मैत्रीपूर्ण मुलाकातके बारेमें तो कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती थी। परन्तु मैं अब भी यही समझता हूँ कि आपके पत्रोंसे जिस मनोदशाका आभास मिलता है, उस मनोदशामें मुलाकात निष्फल ही रहेगी और सचमुच आपके आखिरी पत्रसे तो लगता है कि जैसे आप मुझे कोई 'आन्दोलनकारी' समझते हैं और आपको शक है कि मैं मुकदमेके उस ढोंगको 'राजनीतिक चाल' की तरह और 'अपने मित्रके विक्षोभको राजनीतिक प्रचार' के लिए इस्तेमाल कर रहा हूँ। अपने यूरोपीय मित्रोंके लिए मेरे हृदयमें प्रेम और आदर-के भाव हैं, यूरोपीय कवियों और स्वतन्त्रताका उद्घोष करनवाले मनीषियोंके सामने मैं श्रद्धानत हूँ और इस प्रेम, आदर और श्रद्धाकी खातिर अपने देशमें बसनेवाले यूरोपीय मेरे व्यक्तित्व और उद्देश्योंके बारेमें जो भी कहेंगे, मुझे सुनना ही पड़ेगा। आप कहते हैं कि मेरे मित्रको दी गई सजा अत्यन्त कठोर मालूम पड़ती है, इससे मुझे प्रसन्नता हुई। मैं आशावादी हूँ; और अब भी मुझे आशा है कि इस मामलेपर सावधानीके साथ विचार करनेके बाद आप मेरी इस बातसे सहमत होंगे कि यह सजा सर्वथा अन्यायपूर्ण है। न्यायका तकाजा है कि उनको रिहा कर दिया जाये।

आप इसे कहते हैं--'भारतीय न्यायाधीशका न्याय'। मुकदमेकी कार्यवाही और फिर फैसला सुननेके लिए उस कमरेमें बैठे-बैठे मुझे लगा कि मेरी महान् मातृ-भूमिका अपमान किया गया है। ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि सजा पहलेसे ही तय थी। निश्चय ही वह कार्यवाही न्यायोचित नहीं थी।

आप कहते हैं -- "[सजा पर] पुनर्विचार करवानेके साधन आपको सुलभ हैं; आप उनका उपयोग क्यों नहीं करते?" **स्वामीको रिहा कर देना ही एकमात्र न्याय-पूर्ण पुनर्विचार होगा।** किन्तु वे उच्चतर न्यायालयमें अपील नहीं करेंगे। आप पूछते हैं: क्यों नहीं करेंगे? इसपर मैं आपके सामने कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके पत्रका यह अंश पेश करता हूँ: "मुझे याद है कि स्कूलके दिनोंमें मेरे एक ऐसे अध्यापक थे जो बात-बातपर अपशब्द निकालते थे और विवेकहीन व्यवहार करते थे। वे मुझे मारते-पीटते और अपमानित करते रहते थे; परन्तु मैं न रोता था न तो इसकी किसीसे

२. जैसा कि पत्रमें उल्लेख है, यह पत्र 'तिलक-दिवस' के अवसरपर लिखा गया था।

शिकायत करने दौड़ता था। वास्तवमें **मैं इस दण्डके प्रति उपेक्षा दिखाकर अपने सम्मानको कायम रखनेका प्रयत्न करता था; और इस प्रकार नैतिक विजय मेरी होती थी।**" यह बात स्वामीके विषयमें भी लागू है। उनको जितने ही ज्यादा दिनोंतक बन्दी रखा जायेगा, ईमानदार लोगोंकी नजरमें सरकार उतनी ही ज्यादा ओछी सिद्ध होगी।

हाँ, बेचैनी है; और आप जितना सोचते हैं, उससे गहरी। इसको कम करनेका उपाय? सो तो मैंने अपने पिछले पत्रमें लिखा था। सिन्धके अधिकारियोंको न्याय-परायण होना चाहिए तथा "नई भावना" को समझकर चलना चाहिए। आप कहते हैं कि आप आदर्शोंको उतना ही महत्व देते हैं, जहाँतक कि वे अमलमें लाये जा सकते हैं। और अधिकारी वर्ग स्वतन्त्रता, समानता तथा न्यायके जिन आदर्शोंका दम भरता है, हमारे प्रति व्यवहारमें उन्हीं आदर्शोंको अमलमें लानेमें वह बार-बार असफल रहा है। मेरे दृष्टिकोणसे **सच्चा आदर्शवादी तो व्यावहारिक होता है और जो व्यक्ति प्रामाणिकताके साथ व्यावहारिक हो, वह आदर्शवादी ही है। उसके कार्यमें आदर्शवादिता है।** स्वामीको दी गई सजाके पीछे मुझे सरकारकी शक्ति जतलानेकी इच्छा दिखाई पड़ती है। **इस प्रकारकी शक्ति दुर्बलता ही है।** इसलिए कि न्यायको पैरों तले कुचलने वाली शक्ति वास्तवमें दुर्बलता होती है — हिंसाकी दुर्बलता।

आप इतने सुसंस्कृत हैं, देश-देशान्तर घूम चुके हैं इसपर भी लगता है कि आप सरकारकी नीतिको न्याय-संगत ठहराते हैं। इसका मैं केवल एक ही कारण समझ पाया हूँ और वह यह कि एक गुलाम देशको जो अपमान और कष्ट सहने पड़ते हैं उनकी जानकारी आपको है ही नहीं। डायरने ३००–४०० भारतीयोंको गोलियोंसे उड़ा दिया; और वह ९०० पौंड वार्षिक पेंशन पा रहा है और मुझे मालूम हुआ है कि उसके यूरोपीय प्रशंसकोंने उसे लगभग ३०,००० पौंडकी एक थैली भी भेंटमें दी है। किन्तु स्वामी-जैसे निर्दोष भारतीय केवल देश-प्रेमके अपराधमें जेलोंमें सड़ रहे हैं। एक समय था जब ब्रिटिश अधिकारी सहनशीलता, सहानुभूति तथा न्याय आदि महान् गुणोंसे विभूषित माने जाते थे। यहाँतक कि १९१४में जब महायुद्ध शुरू हुआ, तो राष्ट्रीय कांग्रेसने निश्चय किया था कि "भारत हर समय और हर हालतमें साम्राज्यका साथ देगा।" आज कांग्रेस युवराजके आगमनका बहिष्कार कर रही है और इसमें महाविभव-का अपना कोई दोष नहीं है। इसका कारण? बेचनी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। क्यों? राज्य और राष्ट्र, सरकार और जनताके बीचकी खाई दिन-प्रतिदिन चौड़ी होती जा रही है। क्यों? सरकार अपने राजदण्डका प्रयोग करनेके लिए अत्यधिक उतावली हो रही है; उसका बल-प्रयोगमें विश्वास है।

क्या आप जानते हैं कि राजनीतिक विचारोंके कारण हमारे कितने नौजवान आज जेलमें हैं? तिलक-दिवसपर लिखते हुए, क्या मैं यह भूल सकता हूँ कि भारत-की सेवा करनेवालोंमें से सर्वश्रेष्ठ लोगोंको एक-न-एक बार अपनी देशभक्तिके लिए दण्ड भोगना ही पड़ा है। विद्वान् तिलक, देशभक्त तिलकको एकसे अधिक बार जेल भेजा गया। एनी बेसेंटको नजरबन्द किया गया था, लाला लाजपतरायको निर्वासित किया गया था। विपिनचन्द्र पालको पंजाबमें घुसने नहीं दिया जाता था। वे विद्रोही

नहीं थे। किन्तु वे भारतसे प्रेम करते थे। बंगालमें कितने नवयुवकोंको राष्ट्रीय आजादीका राजनीतिक आदर्श रखनेके कारण जेल भेजा गया? और उनमें से कुछको जेल भी किस तरह भेजा गया था? एक बंगाली प्राध्यापकको नजरबन्द किया गया — उसे किसी भी अपराधके लिए सजा नहीं सुनाई गई थी। बस उसे बहुत दूरके एक जेलमें नजरबन्द कर दिया गया — उसकी माँको इसकी सूचना तक नहीं दी गई। उसे अपने पुत्रकी दुर्दशाका हाल एक लम्बे अर्से बाद मालूम हुआ। उसने अपने पुत्रके मामलेकी उचित ढंगसे जाँच-पड़ताल करनेके लिए याचिका भेजी। उसे सूचना दी गई कि उसका पुत्र एक काल-कोठरीमें बन्द है और वहाँ पागल हो गया है! पुलिसने एक गाँवमें दो महिलाओंको गिरफ्तार किया। उन्हें जेल भेज दिया गया। अखबारोंने पुलिस-जुल्मका पर्दाफाश किया। सरकारने गलती स्वीकार की और उनकी रिहाईका आदेश जारी किया। किन्तु महिलाओंको इसपर भी १५ दिन और जेलमें रोक रखा गया। उनकी रिहाईका आदेश देनेवाले तारको इधर-उधर कर दिया गया! उनकी रिहाईके बाद पुलिसके एक भी सिपाहीको दण्ड नहीं दिया गया। अभी पिछले ही सप्ताह सिन्धके एक गाँव मटियारीमें पुलिसने निहत्थी भीड़पर गोली चलाई। एक व्यक्तिकी मृत्यु हो गई और एक दर्जन लोग घायल हुए। इस करतूतकी लीपापोती करनेके लिए सभी अखबारोंमें एक सरकारी विवरण छपवा दिया गया। गैर-सरकारी विवरणको सिन्धके तार कार्यालयके अधिकारियोंने आपत्तिजनक करार देकर रोक लिया। जलियाँवाला बागकी कहानी आपको मालूम है ही। मैं पूछता हूँ, आज यूरोपके किस सभ्य देशमें इस तरहकी ज्यादतियाँ बर्दाश्त की जायेंगी? निर्दोष व्यक्तियोंका निर्वासन, उनको नजरबन्द करना तथा जेल भेजना! निर्दोष व्यक्तियोंको बेंत लगवाना और गोलियोंका शिकार बनाना! वर्षोंसे भारतकी यही कहानी चली आ रही है। मेरे देखे-सुने यूरोपके किसी भी देशकी ऐसी कहानी नहीं रही। इसका कारण ढूँढ़नेके लिए दूर नहीं जाना पड़ेगा। वे स्वतन्त्र हैं और भारत गुलामीकी बेड़ीमें जकड़ा हुआ है।

मैंने ब्रिटिश साम्राज्यवादकी चर्चा की थी। मैंने कहा था कि यह साम्राज्यवाद एशिया, फारस, मेसोपोटामिया, मिस्र और भारतमें मानव-भावनाके विपरीत चल रहा है। वह पूर्वी देशोंपर अपना आर्थिक नियन्त्रण बनाये रखनेकी धुनमें लगा रहता है; और यहाँ इस देशमें हम स्वदेशीके शान्तिपूर्ण साधनके प्रयोगके द्वारा उसकी 'शान्तिपूर्ण घुसपैठ'को रोकनेका प्रयत्न कर रहे हैं। आयरलैंडकी तरह, मिस्र और भारतमें, और अब मुस्लिम देशोंमें भी साम्राज्य राष्ट्रीयताके सिद्धान्तके विपरीत आचरण कर रहा है। किन्तु यह एक ऐसा विषय है जिसपर अलगसे विचार करनेकी आवश्यकता है।

आपने अपने पत्रमें "वैयक्तिक स्वतन्त्रताके सच्चे आदर्श" का उल्लेख किया है और इसपर मेरी राय माँगी है। मुझे खेद है कि मैंने उसे बड़ी जल्दीमें 'गजट' में देखा था, और इस समय वह मेरे सामने नहीं है। किन्तु मेरा खयाल है, आप यह सिद्ध करना चाहते हैं कि शराबकी दुकानोंपर धरना देना वैयक्तिक स्वतन्त्रताके सच्चे आदर्शसे मेल नहीं खाता। यदि मेरी बात गलत हो तो मैं उसे ठीक करनेको तैयार हूँ। यदि वास्तवमें आपका यही खयाल है कि धरना देना वैयक्तिक स्वतन्त्रतासे मेल नहीं खाता, तो मुझे सचमुच दुःख होगा। वैयक्तिक स्वतन्त्रताका आदर्श हर फ्रांसीसी-

को बड़ा प्यारा है। इसका उस धरनेसे जिसका प्रयोग स्वामीने किया है, कोई विरोध नहीं है। उनका धरना तो नैतिक आग्रह-मात्र था। हिन्दू तथा मुसलमान धर्म-शास्त्रोंमें शराब पीनेकी अनुमति नहीं है। भारत-जैसे देशमें राष्ट्रीय सरकार शराबबन्दीका कानून अवश्य ही पास करेगी। यहाँ तो यह सरकार लोकमत और राष्ट्रीय प्रवृत्तियोंका विरोध करती है, और जनता तो धरनोंके साधनसे केवल वही उद्देश्य पूरा करना चाहती है जिसे राष्ट्रीय सरकार शराबबन्दीका कानून बनाकर आसानीसे पूरा कर देगी। मैं समझता हूँ कि गोखलेने ही वर्षों पहले पूनामें धरना देना प्रारम्भ किया था। सच्ची लगनवाले कुछ सुधारक धरना देनेको एक नैतिक कर्त्तव्य मानते हैं। फिर भी कई अन्य निर्दोष साधनोंके समान, धरनोंका भी दुरुपयोग हो ही सकता है, और वह जोर-जबर्दस्तीका रूप धारण कर सकता है। **डाँट-डपट, जोर-जबर्दस्ती, सामाजिक बहिष्कार, हिंसा — ये सभी मेरे वैयक्तिक स्वतन्त्रताके आदर्शके प्रतिकूल पड़ते हैं।** मैं नहीं जानता कि स्वामी वैयक्तिक स्वतन्त्रता-सम्बन्धी मेरे इन विचारोंसे सिद्धान्ततः पूर्ण सहमत होंगे या नहीं। मैं जानता हूँ कि मेरे बहुतसे मित्र मेरे इन विचारोंसे सहमत नहीं होंगे। उन्हें शराबके व्यापारके इस कलंकको समाप्त करानेके लिए सामाजिक बहिष्कारका साधन अपनानेपर कोई आपत्ति नहीं होगी। पर मैं एक बात पक्के तौरपर जानता हूँ कि स्वामी सदा ही अनुरोध और आग्रहके ही हामी रहे हैं, धमकी और दबावके कभी नहीं। एक बात जोर देकर फिर कह रहा हूँ: उन्होंने पुलिसके सिपाहीको नहीं पीटा; उन्होंने हिंसाका प्रयोग नहीं किया। मैंने उनसे यह प्रश्न पूछा था; उनका साफ जवाब था — 'नहीं'। वे झूठ नहीं बोल सकते और मैं आपके सभी पुलिसवालोंके मुकाबले उनकी ही बातका विश्वास करूँगा। मैं फिर कहता हूँ, उन्होंने किसीपर भी हमला नहीं किया और न उन्होंने हिंसाकी शक्तिका प्रयोग ही किया है। किन्तु उन्होंने इस सबसे ज्यादा खतरनाक एक काम किया अर्थात् उन्होंने मद्यपान-विरोधी आन्दोलन बड़ी मुस्तैदीसे चलाया और उन्होंने अनैतिक व्यापारसे प्राप्त होनेवाले राजस्वमें कमी पैदा करनेका खतरा खड़ा कर दिया और उन्मत्त सरकारने जनतापर असर डालनेके लिए जोर-जुल्मकी नीतिका सहारा लेकर उनको बारह महीनेके सपरिश्रम, कठोर कारावासकी सजा दे दी। इस सजासे असर तो पड़ा है। जैसे-जैसे यह खबर एक शहरसे दूसरे शहर जायेगी भारतकी समूची जनता समझ जायेगी कि 'सुधारों' के इस 'नये युग' में सिन्धमें न्याय और सहज विवेकका कैसा मखौल उड़ाया जा रहा है।

आपका सच्चा,
टी० एल० वास्वानी

[अंग्रजीसे]
यंग इंडिया, २५–८–१९२१

परिशिष्ट २

नागरिकोंसे अपील

निम्नलिखित अपील जनताके लिए जारी की गई है। इसपर सभी सम्प्रदायोंके प्रतिनिधियोंने हस्ताक्षर किये हैं :

बम्बईके नागरिकोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हिन्दू, मुसलमान तथा पारसी नेताओंके संगठित प्रयत्नोंके फलस्वरूप नगरके अधिकांश भागोंमें पुनः शान्ति स्थापित हो गई है। वे सुबहसे राततक गाड़ियोंमें बैठकर नगरके चक्कर लगाते रहे और जनतासे शान्त रहने तथा शान्ति बनाये रखनेका अनुरोध करते रहे। जनताने भी उनके अनुरोधका अनुकूल उत्तर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ बस्तियोंमें अब भी थोड़ी उत्तेजना फैली हुई है। उन इलाकोंमें पुनः शान्ति स्थापित करनेके लिए प्रत्येक व्यक्तिको प्रयत्नशील होना चाहिए। एक-दूसरेकी गलतियोंको भूल कर क्षमा कर देनेमें हमारी शोभा है। भारतमें रहनेवाले हिन्दुओं, मुसलमानों, पारसियों, ईसाइयों तथा यहूदियोंको भाई-बहनकी तरह रहना चाहिए और एक-दूसरेके मतभेदों तथा त्रुटियोंको सहन करना चाहिए। बम्बईके निष्कलंक नामपर लगनेवाला यह धब्बा हम सभीके लिए लज्जास्पद है। शान्ति स्थापित करके तथा उसे बनाये रखकर ही हम उस कलंकको धो सकते हैं; हम बम्बईके सभी नागरिकोंसे अपील करते हैं कि वे इस मामलेमें हार्दिक सहयोग दें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-११-१९२१

सामग्रीके साधन-सूत्र

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली; गांधी साहित्य और सम्बन्धित कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

नगरपालिका संग्रहालय, इलाहाबाद।

साबरमती संग्रहालय: पुस्तकालय तथा आलेख संग्रहालय; जिनमें गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल तथा १९३३ तकके भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात रखे हैं। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

'अमृत बाजार पत्रिका': कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'आज': बनारससे प्रकाशित हिन्दी दैनिक।

'गुजराती': बम्बईसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'ट्रिब्यून': अम्बालासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'नवजीवन' (१९१९–१९३१); गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'बॉम्बे क्रॉनिकल': बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'यंग इंडिया' (१९१८–३१); अहमदाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक। गांधीजी द्वारा सम्पादित तथा मोहनलाल मगनलाल भट्ट द्वारा प्रकाशित।

'हिन्दी नवजीवन' (१९२१–१९३५); गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबाद-से प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक।

'हिन्दू': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स।

'टू अवेकिंग इंडिया' (अंग्रेजी): एस० ई० स्टोक्स, गणेश ऐंड कंपनी, मद्रास, १९२२।

'बापुना पत्रो–२: सरदार वल्लभभाईने': मणिबहेन पटेल द्वारा सम्पादित, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५७।

'बापुना पत्रो–४: मणिबहेन पटेलने:' मणिबहेन पटेल द्वारा सम्पादित, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५७।

'माई डियर चाइल्ड' (अंग्रेजी): एलिस एम० बार्न्ज द्वारा सम्पादित; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५६।

'सेवन मन्थ्स विद महात्मा गांधी' (अंग्रेजी); खण्ड २: कृष्णदास, प्रकाशक रामविनोद सिन्हा, गांधी कुटीर, दिघवाड़ा, बिहार, १९२८।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती): मथुरादास त्रिकमजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(२१ अगस्तसे, १४ दिसम्बर १९२१)

२१ अगस्त : मलाबारमें २० अगस्तको मोपलों द्वारा विद्रोह करने, खिलाफत राज स्थापित करने और हिन्दू जमींदारोंको लूटनेके सम्बन्धमें सरकारने सैनिक-घोषणा की।

२२ अगस्त : तेजपुरकी एक सार्वजनिक सभामें गांधीजीने विदेशी कपड़ोंकी होली जलाई।

२४ अगस्त : जोरहाटमें कर-दाता संघ और सार्वजनिक सभा द्वारा अभिनन्दन। तिनसुखिया होते हुए डिब्रूगढ़को रवाना हुए।

२५ अगस्त : डिब्रूगढ़में स्त्रियोंकी सभा और सार्वजनिक सभामें भाषण।

३० अगस्त : युवराजके आगमनके विरोधमें हड़ताल करनेकी सलाह देते हुए सिलहटसे वल्लभभाई पटेलको पत्र और तार भेजा।

३१ अगस्त : चटगाँवमें हड़ताली रेल कर्मचारियोंको बताया कि उन्होंने दक्षिण आफ्रिकामें किस प्रकार चालीस हजार मजदूरोंकी हड़तालका सफलतापूर्वक नेतृत्व किया था।

१ सितम्बर : विदेशी कपड़ोंकी होली जलानेके सम्बन्धमें सी० एफ० एन्ड्रयूजको उत्तर देते हुए "विनाशका नैतिक औचित्य" शीर्षकसे 'यंग इंडिया' में एक लेख लिखा।

५ सितम्बर : वल्लभभाई पटेलको सविनय अवज्ञा स्थगित रखनेके सम्बन्धमें लिखा।

६ सितम्बर : गांधीजी कलकत्तामें रवीन्द्रनाथ ठाकुरसे मिले।

७ सितम्बर : पंजाब सभाकी बैठकमें भाषण। मारवाड़ी व्यापारियोंसे बातचीत की।

८ सितम्बर : विदेशी कपड़ेके बहिष्कारपर सार्वजनिक सभामें भाषण।

१० सितम्बर : खिलाफत स्वयंसेवकोंके समक्ष भाषण।

१३ सितम्बर : मिदनापुरकी सभामें भाषण।

१४ सितम्बर : मलाबार जाते हुए वालटेयरमें मुहम्मद अलीकी गिरफ्तारी। मुहम्मद अली तथा अन्य लोगोंकी गिरफ्तारीपर गांधीजीने बम्बईके नागरिकोंको सन्देश भेजा।

१४ सितम्बरके पश्चात् : एक ज्ञापन-पत्र जारी किया जिसमें मुहम्मद अली तथा अन्य लोगोंकी गिरफ्तारीपर विचार-विमर्श करनेके लिए नेताओंको बम्बई आमन्त्रित किया।

१५ सितम्बर : मद्रास पहुँचे।
'डेली एक्सप्रेस' और 'मद्रास मेल'के प्रतिनिधियोंसे भेंट।
सार्वजनिक सभामें भाषण।
मद्रासमें हिन्दी प्रचारके लिए हिन्दी-प्रेमियोंसे आर्थिक सहायता देनेकी अपील।

१६ सितम्बर: मद्रासमें स्त्रियों, कपड़ेके व्यापारियों और मजदूरोंकी सभामें भाषण।

१७ सितम्बर: कडालोरकी सार्वजनिक सभामें भाषण।
पोर्टनोव होते हुए कुम्भकोणम् रवाना। सर शंकरन् नायरने भारत परिषद्से त्यागपत्र दे दिया।

१८ सितम्बर: चित्तरंजनदास कांग्रेस अध्यक्ष चुने गये।
कुम्भकोणम्में गांधीजीने सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

१९ सितम्बर: त्रिचिनापल्लीमें नगरपालिका और कांग्रेस कमेटी द्वारा दिये गये मान-पत्रके उत्तरमें भाषण।

२० सितम्बर: श्रीरंगम्में नगरपालिकाके मानपत्रके उत्तरमें तथा सार्वजनिक सभामें भाषण।

२१ सितम्बर: डिंडीगलमें नगरपालिकाके मानपत्रके उत्तरमें तथा सार्वजनिक सभामें भाषण। मदुराके स्वागत समारोहमें भाषण।

२२ सितम्बर: मदुरामें स्वदेशी और लंगोटीके सम्बन्धमें सन्देश।
तिरुपत्तूरके नागरिकोंकी सभामें भाषण।
कनाडुकातन, कोट्टायुर और देवकोट्टाकी सभाओंमें भाषण।

२३ सितम्बर: 'देशाभिमानी'के सम्पादकसे भेंट।
तिन्नवेलीमें भाषण।

२४ सितम्बर: गांधीजीने अली-भाइयोंकी गिरफ्तारीपर भारतके मुसलमानोंके नाम एक अपील जारी की।

२५ सितम्बर: त्रिचिनापल्लीसे कोयम्बटूर रवाना हुये।

२६ सितम्बर: अली-भाइयों और अन्य लोगोंके मामलेकी सुनवाई कराचीमें शुरू हुई।

२७ सितम्बर: सेलममें गांधीजीने नगरपालिकाके मानपत्रके उत्तरमें तथा सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

२८ सितम्बर: तिरुपतिमें नगरपालिकाके मानपत्रके उत्तरमें भाषण।

२९ सितम्बर: विदेशी कपड़ेके बहिष्कारके सम्बन्धमें अपील जारी की।
बम्बईके गवर्नरकी राजद्रोह सम्बन्धी चेतावनीके उत्तरमें 'यंग इंडिया' में 'राज-भक्तिसे भ्रष्ट करनेका आरोप" शीर्षक एक लेख लिखा।
'नवजीवन' में 'मेरी लंगोटी' शीर्षक लेख लिखा।

१ अक्तूबर: बेल्लारी नगरपालिकाके मानपत्रके उत्तरमें भाषण।

२ अक्तूबर: अपने जन्मदिवसपर भगिनी समाज, बम्बईको स्वदेशीपर एक सन्देश भेजा।

४ अक्तूबर: गांधीजी तथा अन्य नेताओंने सैनिकों और नागरिकोंके नाम संयुक्त ज्ञापन जारी करते हुए अपील की कि वे सरकारसे अपना सम्बन्ध तोड़ लें।

५ अक्तूबर: गांधीजीने 'बॉम्बे क्रॉनिकल'को लिखे पत्रमें लोगोंसे अपील की कि मेरे गिरफ्तार होनेपर भी वे शान्त बने रहें।
रायल सीमाके मजदूरोंको सन्देश।

६ अक्तूबर: पूर्व आफ्रिकामें बसे भारतीयोंकी समस्याओंपर 'नवजीवन' में लेख।

८ अक्तूबर: अहमदाबादमें मजदूरोंकी पाठशालाओंके छात्रोंके समक्ष भाषण।

९ अक्तूबर: अपने गिरफ्तार किए जानेपर अहिंसा और स्वदेशीका पूर्ण पालन करनेकी सलाह, 'नवजीवन' में।

'गुजरातकी परीक्षा' शीर्षक लेख लिखकर गुजरातकी जनतासे असहयोगके कार्यक्रमके पालन करनेमें एक आदर्श उपस्थित करनेका आह्वान।

१२ अक्तूबर: सूरतमें स्वदेशीपर भाषण।

१३ अक्तूबर: रवीन्द्रनाथ ठाकुरको उत्तर देते हुए 'यंग इंडिया' में "महान प्रहरी" शीर्षकसे एक लेख लिखा।

१६ अक्तूबर: बम्बईसे सविनय अवज्ञा शुरू करनेके योग्य बननेकी अपील की।

फिजी और पूर्वी आफ्रिकामें रंग-द्वेषकी नीति और भारतमें अस्पृश्यताकी भर्त्सना करते हुए 'नवजीवन' में टिप्पणियाँ लिखी।

१९ अक्तूबर: कार्यसमिति और अ० भा० कां० कमेटीके अध्यक्षके अधिकारोंके सम्बन्धमें विजयराघवाचार्य और मोतीलाल नेहरूको तार भेजा।

२३ अक्तूबर: अहमदाबादमें स्त्रियोंकी सभामें स्वदेशीपर भाषण।

२७ अक्तूबर: कराची जेलसे गांधीजीको लिखा मुहम्मद अलीका पत्र 'यंग इंडिया' में प्रकाशित हुआ।

गांधीजीने 'यंग इंडिया' में "युवराजका स्वागत करें" शीर्षकसे प्रकाशित लेखमें युवराजके सम्मानमें किये जा रहे समस्त समारोहोंका पूर्ण बहिष्कार करनेकी अपील की और साथ-साथ अपनेसे भिन्न मत रखनेवालोंके प्रति सहिष्णुता बरतनेको कहा।

'यंग इंडिया' में "असहयोगका रहस्य" शीर्षकसे प्रकाशित लेखमें गांधीजीने २४ महत्वपूर्ण प्रश्नोंके उत्तर दिये।

२९ अक्तूबर: अहमदाबादमें विदेशी कपड़ोंकी होलीके समय भाषण।

३१ अक्तूबर: प्रतिदिन दूसरी बार भोजन करनेसे पहले आधा घंटा कातने तथा न कात पानेपर भोजन न करनेका व्रत लिया।

४ नवम्बर: दिल्लीमें हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें सविनय अवज्ञापर भाषण।

५ नवम्बर: सेनाकी नौकरी तथा अन्य सभी सरकारी नौकरियाँ छोड़नेके प्रस्तावपर कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें भाषण।

९ नवम्बर: लाहौर राष्ट्रीय कालेजके दीक्षान्त समारोहमें भाषण।

१० नवम्बर: लाहौरकी सार्वजनिक सभामें अली-बन्धुओंको दी गई सजापर भाषण।

'यंग इंडिया' में लेख लिखकर सविनय अवज्ञाकी शर्तोंका स्पष्टीकरण किया।

१६ नवम्बर: अहमदाबादमें श्रीमद् राजचन्द्र जयन्तीके अवसरपर भाषण।

१७ नवम्बरसे पूर्व: बम्बईकी सार्वजनिक सभाको भेजे गये अपने सन्देशमें गांधीजीने युवराजके स्वागतार्थ आयोजित समारोहोंका बहिष्कार करनेकी सलाह दी।

१७ नवम्बर: बम्बईकी सार्वजनिक सभामें भाषण देते हुए गांधीजीने पूर्ण अहिंसा, स्वदेशी और हिन्दू-मुस्लिम एकतापर जोर दिया।

युवराजके आगमनपर बम्बईमें दंगा।

'यंग इंडिया' में प्रकाशित अपने लेख "आत्मनिरीक्षण" में गांधीजीने दिसम्बरके अन्ततक स्वराज्य न मिलनेपर आत्महत्या कर लेनेकी अपनी बातको स्पष्ट किया।

१८ नवम्बर: "गहरा कलंक" शीर्षक लेख लिखकर बम्बईके दंगोंकी भर्त्सना की।

१९ नवम्बर: उपवास प्रारम्भ किया; बम्बईके सभी सम्प्रदायोंके लोगोंसे आपसमें मिल-जुलकर रहने तथा शान्ति बनाये रखनेकी अपील की।

२० नवम्बर: बम्बईके मवालियोंसे अपील की।

२१ नवम्बर: हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और पारसियोंकी एक सभामें उपवास तोड़ा तथा अपने वक्तव्यमें साम्प्रदायिक एकता बनाए रखनेकी अपील की।

२२ नवम्बर: साथी कार्यकर्त्ताओंके नाम गांधीजीकी अपील 'यंग इंडिया' में प्रकाशित हुई।

२५ नवम्बर: इलाहाबादके जिलाधीशने कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंके नाम सविनय अवज्ञा सम्बन्धी सभाएँ न करनेका आदेश जारी किया।

२६ नवम्बर: पंजाब वाणिज्य संघ (पंजाब चेम्बर ऑफ कॉमर्स) के प्रतिनिधि मण्डलको उत्तर देते हुए वाइसरायने असहयोग सम्बन्धी सरकारकी नीतिका स्पष्टीकरण किया।

गांधीजीने बम्बईके नागरिकोंसे साम्प्रदायिक एकताकी अपील की।

२७ नवम्बर: उदार दलके लोगोंके नाम मलाबार दुर्घटनाके सम्बन्धमें एक पत्र लिखा।

२ दिसम्बर: राजद्रोहात्मक सभा कानूनके अन्तर्गत लाला लाजपत राय, के० सन्तानम् तथा अन्य लोगोंको गिरफ्तार किया गया।

३ दिसम्बर: अस्पृश्यता निवारणपर बारडोलीके लोगोंको बधाई दी।

४ दिसम्बर: 'नवजीवन' के अपने लेखमें प्रेमको असहयोगकी 'गुर-किल्ली' कहा।

६ दिसम्बर: मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, तथा अन्य लोगोंको इलाहाबादमें भारतीय दण्डविधि संशोधन अधिनियमके अन्तर्गत गिरफ्तार किया गया।

७ दिसम्बर या उसके पश्चात्: चित्तरंजन दासको उनकी पत्नी तथा बंगालकी अन्य स्त्रियोंकी गिरफ्तारीपर बधाई दी।

१० दिसम्बर: 'इंडिपेंडेंट' के सम्पादक जॉर्ज जोजेफको १८ महीनेकी सादी कैदकी सजा दी गई।

कलकत्तामें चित्तरंजन दासको गिरफ्तार कर लिया गया।

११ दिसम्बर: गांधीजीके पुत्र, हरिलाल तथा अन्य स्वयंसेवक गिरफ्तार।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

आ

ख

ग

घ

च

छ

ज

ट

ठ

ध

न

प

फ

ब

भ

श

स

ह